

इस सनातनधर्मोद्धार के, लिखवाने में जिस बिख्यात महाशय ने सहायता (लेखकों का वेतन, कागज, स्याही दो चार खुद्रितपुस्तक) दी थी और छपाने में जिन मेरे सुहृद् देशीय धर्मानुरागी महाशयों ने सहायता दी है, उन को शतशः धन्यवाद दे कर उन की नामावली को सहि प्रकाशित करता हूँ।

(१) श्रीमान् पं॰ माननीय मदनमोहन मालवीय, श्रीप्रयाग 2/रक

(२) श्रीमत्परमहंसपरिबाजकाचार्य, श्रीस्त्रामी जगदीशानन्दगिरि जी महाराज,

(३) श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य, श्रीखामी रामकृष्णानन्द्िारिजी महंत बावंबरी,

(४) श्रीमान् हरिबंशासाद त्रिपाठी,

(५) पं॰ श्रीचण्डीप्रसाद शुक्क,

(६) श्रीमान् महाबीरपंसाद शुक्क,

(७) बाबू महादेवप्रसाद गुप्त,

(८) श्रीमान् बाबू सन्यूप्रसाद पांडे,

(९) श्रीमान् बाबू जगत्बहादुरसाहि,

(१०) पं० श्रीहारहरकुपाल दिबेदी,

(११) श्रीमान् नागेश्वरप्रसाद मिश्र,

(१२) श्रीमान् बाबू उत्तमस्रोक्तराव,

(१३) श्रीमान् रामकृष्णशुक्क, प्र. स्वामीनाथशुक्क

(१४) पं॰ श्रीव्रजमोहन पाठक,

(१५) पं॰ श्रीरमाकान्त मिश्र,

(१६) पं॰ श्रीबच्चूराम दिबेदी,

(१७) बाबू आदिसप्रसाद वकील,

क्षा । भी श्रीप्रयाग । मी रामपुर जि॰ गोरखपुर ।

मा॰ रामपुर जि॰ गारखपुर ।
प्रधानाध्यापक इ॰ सी हाईरकूल-खुर्जा-जि॰ बस्ती ।
मौ॰ संपही जि॰ बस्ती ।
मौ॰ कोटिया, जि॰ बस्ती ।
मौ॰ कोटिया, जि॰ बस्ती ।
मौ॰ डुमिरया, जि॰ चंपारन ।
प्रधानाध्यापक तनसुखरायपाठशाला-पटना ।
बांसी-जि॰ बस्ती ।
मौ॰ साहजनवा, जि॰ गोरखपूर ।
मौ॰ बनगाई जि॰ बस्ती ।

मौ० सिसवा जि० बस्ती ।

मौ० देवघाट जि० गोरखपूर ।

द्वारपण्डित राजापड़रौना जि०
गोरखपूर ।

बसन्तपूर, गोरखपूर ।

PART II.

Minor objections answered

(40) Weber's opinion criticised.			41
(41) Maxmuller's do			46
(42) Dayanand's theory about the non-Voor of the Brahmanas.	edic cha	racter	48
(43) Its refutation by P. Mohanlal Udasi			49
(44) Authorities about the Vedic charact	er of th	e Brahma	inas
Total number of proofs (a) Proofs advanced by the said P. Mohan lal (b) Do. given by the present author (c) Additional proofs referred to	 	(102 <i>i</i> 	4)
(45) Other theories of Swami Dayanand r	egardin	g Vedas	59
(46) Their criticism			60
Restatement in clear terms of three o	ut of se	ven sour	ces of Dharm
(47) The bearing of the following upon th	e prece	ding port	ion 61
(48) Authoritative character of Smritis			61
(a) Non-authoritative character of the I	Budha a	nd Jaina s	criptures (61)
(b) Number and author of Smritis			(65)
(c) Authority of Sankhya, Yoga, Par Pashupat tested.	ncha∡rat	tra and	.(666
(49) Comments on the authoritativeness of	the Pu	rans and	Histories 67
(50) Authority of generally accepted mor Conscience.	al cond	uct and	70
(51) Reconciliation of inconsistencies in t	he Ved	ic texts.	7:

॥ सनातनधर्मोद्धार के सामान्यकाण्ड के द्वितीयखण्ड की विषयसूची।।

पूर्बार्च द्वितीयखण्ड।

क्षुद्रोपद्रवाविद्रावण २ मः अर्थात् वेद की स्वतःप्रमाणता पर दुर्वछ २ विरुद्धमतों की समाछोचना।

49

59

60

arn

61

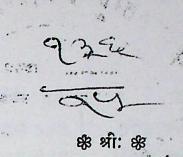
61

	A CHANGE CONTROL OF THE CONTROL OF T	
विषय के	अङ्क बिषय	पृष्ठ से पृष्ठ तक
[88]	थोरपदेश के पं, वेवर के मत की परीक्षा।	४११ — ४६९
[88]	योरपदेश के पं० मैकसम्यूलर और अन्यों के मत की परीक्षा।	859 - 868
[83]	बेदभाष्यभूमिकानामक प्रन्थ के 'बेदसञ्ज्ञाबिचार ' प्रकरण में स्वामी	
	दयानन्दसरस्वती का यह मत कि ' ब्राह्मणभाग बेद नहीं है '	858 - 858
[83]	पं. मोहनळाळ उदासीनकृत महामोहबिद्रावणनामक प्रन्थ के प्रथमप्रवी	4
	से स्वामी द्यानन्दसरस्वती के पूर्वोक्तमत का खण्डन।	890 - 470
[88]	ब्राह्मणभाग के बेदत्व में, प्रमाणों की सङ्ख्या (१०२४)।	५२० — ५९६
	चक्त प्रथमप्रबोध में कहे प्रमाण (१८)।	[420-420]
	बिशेष से गिने हुए प्रमाण (१५४)।	[420-498]
	इस प्रनथ के बिस्तारभय के कारण, सामान्य से सूचित प्रमाण (८५०	o)
	व प्रमाणस्य तीन वाक्यों में प्रमाण २	[५९४ ५९६]
[84]	उक्त बेदभाष्यभूमिका के 'बेदबिषयाबिचारबिषय ' प्रकरण में उक्त	
	स्वामी का मत।	. ५९६ — ६०७
[8 &]	इस्र मत की परीक्षा ।	६०७ ६११
	परिखापरिष्कार ४ म. अर्थात् बेदरूपी किले की, स्मृति, सदान	वार,
	आत्मतुष्टि, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्वबेद, अर्थबेद, रूपी ७ खा	हयों .
	में से प्राथमिक ३ का जीणींद्धार ।	
[80]	आगे और पीछे के प्रन्थों की संगति मिल तथा यह निर्णय कि 'स्म	ते
	इस शब्द के दो अथे है एक यह कि बेद से अन्य अर्थात पराण न्या	य
	मीमासा, धर्मशास्त्र, शिक्षा, कल्प, ज्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्यौतिष, क्	्र पी
	द्श बिद्याएं। दूसरा यह कि केवल धर्मशास्त्र।	६११ — ६१५
[86]	स्मृतियों की प्रमाणता ।	६१५ ६७१
(事)	पूर्वपक्ष ।	[६१५—६२४]
(펞)	सिद्धान्त ।	[428-436]

बिषय	क अडू	पृष्ठ स—-१
	(न) केन के माहा अर्थात बंध जिन, आदि के धर्ममन्थ प्रमाण नहीं हैं।	[६३८-६
	(घ) बेदवाह्य प्रन्थों के अहिंसा, सत्य, आदि के विधायक वाक्य भी धर्म	में
	वमाण नहीं हैं।	[£88—E
	(ड) बुद्ध जिन आदि के धर्मप्रनथ जैसे स्मृति नहीं हैं वैसे बेद भी नहीं	कहे
	जा सकते।	[883-8
	(च) स्मृतियों की सङ्ख्या और कर्ता आदि ।	[600-
	(छ) साङ्ख्य, योग, पाञ्चरात्र, पाशुपत, आदि झाखों में कौन धर्म में प्र	माण_
	हें और कौन नहीं।	[६६६ –
	[४९] पुराण और इतिहास की प्रमाणता का विशेषरूप से निर्णय।	६७१ —
	[५०] सदाचार और आत्मतुष्टि की प्रमाणता ।	908 -
	[५१] बेद आदि धर्मप्रमाणों के परस्पर में यदि बिरोध हो तो कौन प्रबद्ध	
	और कौन दुर्बल है।	७३३ —

परिखापरिष्कार ४ प्रकरण और धर्मप्रमाणप्रामाण्यनिरूपणरूपी पूर्वार्द्ध की समाप्ति







॥ सनातनधर्मोद्धार के सामान्यकाण्ड के दितीयखण्ड का शुद्धिपत्र॥

॥ पूर्वार्च द्वितीयखण्ड ॥

58	पंक्ति	अशुद्ध	गुद्ध	प्रष्ठ	पांकि	अशुद्ध	शुद्ध
866	8	बिद्रावयास्यव	विद्रावयाम्यत्र	४२९	8	रू क्तेन	रुक्तेन
"	२९	भावृस.	भागृत	830.	9	तिहासप्रमाण्य	तिहासप्रामाण्य
884	8	प्रभृत्पवासीत्	प्रस्वेवासीत्	27	10	बणियद्यते	बर्णियिष्यते
"	88	मूछ प्रकृति	मृलप्रकृति	"	28	अवश ञ्यकता	आवंद्यकता
866	२०	हाता	होता	४३१	94	ह	है
"	53	ह	A CONTRACTOR	77	77	आर	और
"	२३	E	Aito	77	12	इस्यादि	इत्यादि
885	१३	करता ह वैस	करता है वैसे	77	१७	शतरुद्रश्च	शतरुद्राद्ध्य
"	३३	कही ह	कही है	४३२	१६	ब्रह्माबिष्णुद्राणां	. ब्रह्मविष्णुरुद्रा
४१९	88	प्रमाणिक	प्रामाणिक				णाम्
४२२	१३	दोप	दोष	77	१७	तैजन	तैजसं
"	१५	सा	स्रो	"	२७	म	में
४२३	\$ 6	छिखान	छिखा	४३३	३३	अधार	आधार
858	२९	सहेब	साहेब	४३५	२	सुंख	सुखं
"	३१	द्वापरयु	द्वापरयुग	"	8	कौन्तय	कौन्तेय
"	३२	बेदवहा	बेदवाह्य	"	१६	सनान्ये	सेनान्ये
४२६	88	यज	यजुष	"	३ २	उबारने वाले	चतारनेवा ळे
5)	२८	आर	और	४३६	१३	अन्तंपमपणे	अन्तर्यामिणे
४२७	9	भमवती	भगवती	7,	१६	माययेत्यथः	माययेत्यर्थः
४२८	8		र- पूर्वमुपपादित-	"	28	परापरूपो	परापररूपो
		किंच। त	त्वाच। किञ्च।	27	२०	बृषभौदारं	बृषभोदारं
			तानि ।	37	३० .	बिरुपाक्ष	बिरूपाक्ष
"	₹.	पादु ब्यवस्था ख्यो	क पाद्ब्यवस्थारू	13	३५	घर्म	धर्म
			पोक्त	-४३७	28	खडमात्रधरम्	खङ्गमात्रधरम्
"	३	छप्त शिष्ठा	छप्तशिष्टा	"	२०	धन्व धनुप्रेरकत्वे	नि- धन्वं धनुःप्रेर-
"	*	एब	एव			स्यास्तीति	करवेनास्यास्तीति
"		अहोस्वित् .	आहोस्तित् ।	77	२१	मार्बी	मौर्वी
४२९	३	स्वयमेच	खयमेव	8.80	२८	गन्धमाइन	गन्धमाद्न

पृष्ठ पंक्ति भशुद्ध शुद्ध	पृष्ठ पंकि अशुद्ध	शुद्ध
४४१ २ योत्काङ्गानि ये।काङ्गानि	४५८ २६ नप्ट	नष्ट
,, १० बिद्यत्कृत्वा बिद्युतकृत्वा	४६१ २७ योजपदेश	योरपदेश
🤧 २१ योत्काणि योत्काणि	४६२ ५ सम्यादयन्ती	सम्पाद्यन्ति
,, २६ शरपक्षपुङ्वरू- शरपक्षपुङ्खरू	,, ६ पुराणयु	षुराणेषु
वाणि वाणि	४६३ ६ तात्पर्यत्	तात्पर्यम्
,, ३१ देवताओं ऋषियों देवताओं और	,, १० महात्म्यम्	माहात्म्यम्
ऋषियों	,, ३१ महात्स्य	माहात्म्य
४४२ ६ तात्पयमीश्वरे तात्पर्यमीश्वरे	४६४ ९ त्बेनान्वेति	त्वेनान्वेति
४४३ १ कदस्या कुदस्या	,, १३ पपदाभावन	पपदाभावन
,, ११ ध्यात्त्रा ध्यात्वा	,, १५ केवल	केवल
,, १२ शकादींखः शकादींखः	" १८ यत्किञ्चिद्याक्ति	यत्कि चिद्व चित्र
,, ३२ ब्रह्मज्ञ ब्रह्मज्ञा	४६६ १० दुर्बारत्वात्	दुर्बारत्वात्
४४४ ६ श्रत्वा श्रुत्वा	.४६७ ६ निबन्धंना	निबन्धना
,, ११ त्रिद्शश्रेष्टो त्रिद्शश्रेष्टो	,, १८ स्थाख्यायिकारूपं	
४४५ ६ घोरचान्या घोराचान्या	४६८ १५ मनल्यजल्पनैः	मंनल्पजल्पनै:
४४६ ५ यद्धकं यद्धकं	,, ३४ जा चुका	जा चुका है
४४९ ३ भन्यं भन्यं	४७७ १९ इसं	इस
,, २० तालब्यादिपाठे तालव्यादिपाठे	४७८ १५ करणस्वेब	करणस्थैव
४५० १९ रुपेण ह्रपेण	४९० ५ समधिगतः	सममधिगतः
४५१ ४ बायुर्विषमस्थेषु बायुर्विषमस्थेषु	४९६ ३४ तोनई	इतने
" १६ शुद्रो मोज्य इत्यर्थः शुद्रो भोज्यइत्यर्थः	५०४ २० छोकिकेति	डौिकके ति
,, १९ भोत्का भोका	५०५ २६ एतिहासिक	ऐतिहासिक
४९२ १ तेजसी तैजसी	५०९ १९ प्रताकानिति	प्रतीका निति
,, १२ भोत्की भोका	५१० २ ब्राह्मणेपु	ब्राह्मणेषु
,, १३ क्रोधाघाविष्टो क्रोधाद्याविष्टो	परप १३ तस्त्रात्	तस्मात्
४५३ ८ देवदेवस्य देवदेवस्य	५२७ ७ मुभयतः सन्दंशे	मुभयतः सन्दंशे
" ११ स्त्रोत्रं स्तोत्रं	५२९ ३२ गेपाय	गोपाय े
" २१ सृष्टि सृष्टि	५३१ ९ पुनक्छन्दांसीतिप्रदं पु	
४५७ ३ यत्रविशेषमन्त्र- यत्रविशेषमन्त्र-		किञ्च प्रमा०(४)
र्थता र्थता	0.03	न्बृहस्पते
,, ३३ स्वाभाविक स्वाभाविक	५३३ १९ ज्योख्ययो	न्द्रहरूता ह्यांख्येयो
846 रे न्तराराण्यपि न्तराण्यपि	५४३ ५ मिस्रेच्छास्रार्थ	मित्येतच्छा ह्यार्थ
ग ,, रंचायित्वा रचायित्वा		• इचै ऋचा
" ९ द्वितीयिक श्वेत्या - द्वितीया कि श्वे-	५४४ १२ इद्घटके	तद्वटके
A	५४६ ६ त्युच्यते	द्वा <u>य</u> च्यते
	104 4 3047	413 0411

48	पंक्ति	अ शुद्ध	शुद्ध ं	ब्रह्म	पंचि	अशुद्ध	शुद्ध
480	Ę	यथाक्त	यथोक्त	E88	२२	गवा	गया
77	१७	समपणीयम्	समपेणीयम्	६१२	१२	हति	इति
,,	२२	नियमा	नियमों	६१३	9	पुराण	पुराण .
3,9	30	स	चे च	६१४	१५	प्रधारयेन	प्राधान्येन
489	र्व	लोंकि वाक्य	छौ।केकवाक्य	६१५	१६	समज्ञना	समझना
440	20	भार	और	६१७	b	तथाऽष्टकादि	त्थाऽष्टकादि
"	28	नहीं हे	नहीं है	६१९	8	अतो नि	अतो
444	१२	मन्त्रस्य ।	मन्त्रस्य	६२०	2	शा० मूळत्वा	शां० निर्मूछत्वा
468	३२	द्वितीयंसूत्र	द्वितीयसूत्र	६२२	28	नही	नहीं
408	68	क्रियन्ते	क्रियन्ते •	६२४	ц	बिर्मूलमपि	निर्मू छम पि
404	१२	तत्रवाह्निके	तत्रैवाह्निके	६२८	v	सनुसार	भनुसार अनुसार
468	२५	कवल	केवल	;,	१७	नदी	नहीं नहीं
		श्रुंति	श्रुति	Ę 30	8	स्मृत्ते	स्मृते
465	9	8	9	६३१	२१	प्रमाणत्वे	प्रमाणत्वे
466	2	त्तरिमश्च	तासमँख्र	६३५	88	आ बृतियां	भा बृत्तियां
5)		न्बिबर्तेतं	न्निबर्त्तेत	६३६	२७	तत्त्व क	तत्त्व के
		सख्याया	त्सङ्ख्याया	६३८		र्भकञ्चकच्छार्य	विभकञ्चुकच्छाया
		₹8	२३	६४३	Ę	सामध्यमस्ति	
		२५	28	६५१	80	प्रयुक्ते र्वेद	सामर्थ्यमस्ति
490		२९	26	६५६	88	प्रयोगोनियमा प्रयोगोनियमा	प्रागुक्तेर्बेद
"		18	40	६५७	6		प्रयोगनियमा
		16	44	६५८		अश्व लायन एंव	· भाश्वलायन ्
			मन्त्र को		86		एवं
		वृतिसामान्पा	श्रुतिसामान्या	६६६		मृह्य	गृह्य
	२ ह	नेवयत् नेवयत्	निर्वपे त्		28	मी	भी
498 8		पुसां	भूयसां .	६६८	80	बेदसारमपत्व	बेद् सारमय त्व
494 8		ाद्वान्यष्टौ 	साद्धी-यष्टी	६७१	१५	की शूद्र	खाँशूद
,, R		माण दो २	प्रमाण दो		२६	से अनेक	अनेक
५९६ २६		सं १०२४	चौबीस १०२४	६७६	80.	प्रमाणता	प्रमाणता
६०१ ३			से	.६८०	१६	मभ्यवदनू	मभ्यवदन्
		ज्ञुति		६८५	8	निखि	निखिल
		प्रभात गमिमी	त्फळश्रुति पर्णमयी	६८७	8	बाधाद्धारस्तवा	बाधोद्धारस्तेषा
", Eou 8		योतिष्टामे		77	4	पुरुषाथपयवसा-	पुरुषार्थपर्यवसा-
600 0		^{यातष्टा} म रोघेनव	च्योतिष्टोमे			यिता	यिता .
६०८ २९			बिरोधनैव	"	6	नि बृत्युप	निबृत्त्युप
700 4	, 4	•	कर	"	३२	पुरषार्थ	पुरुषार्थ
The second name of the second na							

व्रष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	वृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६९ ३	8	बिस्मथावकाशः	बिस्मयावकाशः	७२२	v	एब	एव
७०१		जिस क	जिस के	७२३	१७	घर्मब्यातिक्रम	धर्मब्यातिक्रम
७०२		नुमन्तुमई:		75	२२	निन्धं	निम्नं
,,	१६	पर्यावसायिताया	पर्यवसायिताया	"	२६	(गुड की सुरा)	गुड़ की सुरा)१
908	३	प्यश्रुतवन्तः	प्यश्रुतवन्तः	"	32	निन्धं .	निघ्नं
७०९		करते ऐसी	करते तब ऐसी	७२४	२	बञ्बदत्यो	ब्रूव्दसो
७१०			मनुवाक्य	77	9	'धयैवैक' निच	'यथेवैके' ति च
७१३	9	अन्यान्य	अ न्योन्य	७२५	4	यद्याप ·	यद्यपि 🦠
	१२	बेदवाक्य का	बेदवाक्य की	७२६	38	मरा	मेरा
७१५		धम्त:करणों	अन्त:करणों	७२७	v	यक्ता	युक्ता
७१६	6.	रन्थत्र	रन्यत्र	७२८	२४	ओर	भौर
7.7	१३		भ्यूहत्यार्ष	७३०	२९	खयं	खयं
	२१	यदार्य	यदार्थम	७३१	२७	चतुर्य	चातुर्य
" ७१८	4	वाहरपा जार	वाहल्याजार	७३२	8	षरबञ्चन	परबञ्चन
७१९	9	तंपोबलन ·	तपोबछेन	97	38	छाग	छोग
77	6	स्नहापितृभक्ति	स्नेहापितृभक्ति	७३३	३३	कर	करे
"	२९	थ	थे	77	"	€ .	र्ह
७२०	28	पमाण	प्रमाण	"	34	गत्य	त्याग
	"	होता ह	हाता है	७३५	१४	जिघां बन्तं	जिघांसन्तं
"	?' २ ७	त्रमाण	प्रमाण	७३६	२१	ह	<u> </u>
" ७२१	Ę	पाण्डुपुत्राणीमक	पाण्डुपुत्राणामेक			ऽनुकरपेनं	ऽ नुकल्पन
"	१२	अमुचित	अनुचित			-8-	



सनातन यमोद्रारः

(सामान्यकाण्डस्य पूर्वार्द्धः)

॥ द्वितीयः खण्डः॥ सुद्रोपद्रविद्रावणम्

अथ वाह्यान्वेद दुर्गाद पि क्षुद्रानुपद्रवान् ।
नन्यान्विद्रावयाम्यत्र धर्मराजस्य शासनात् ॥ १ ॥
अमूलान्केवलं वलात्कपोलवलकिपतान् ।
क्लुप्तयुक्तिवलेनैव लोलूये दुरुपष्ठवान् ॥ २ ॥
नामग्राहं न गृह्णामि तेषां जनियतृञ्जनान् ।
कोऽभिद्रह्योत्प्रयानभ्रातृनज्ञानेनापराध्यतः ॥ ३ ॥
अन्तर्यामिपराधीने पक्षपातिववित्रिते ।
सन्तः पश्यन्तु को दोषो ममास्तीह विचारणे ॥ ४ ॥
'सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवाबृताः' ।
इति स्मरन्तो मृष्यन्तु भ्रेषान्यंभूय भूयसः ॥ ५ ॥

॥ भाषा ॥

धर्म और बेद के बिषय में जो २ आक्षेप नास्तिकों के छ (६) दर्शनों के ओर से किये जाते हैं उनका, इन पूर्व दो प्रकरणों अर्थात् प्रथमखण्ड में प्रतिपदाक्त समाधान पूर्ण रूप से हो चुका। और उक्त विषय में छोटे २ आक्षेप तो आप से आप इन दोनों प्रकरण रूपी चन्द्रमा और सूर्य के प्रकाश से अन्धकारवत् नष्ट हो गये तथा बेद रूपी दुर्ग (किछा) से बहुत दूर रहने वाले अत्यन्त क्षुद्र आधुनिक अनेक दुष्टमत रूपी उपद्रव तो अपने स्थान हीं पर फटफट करते हैं उनकी पहुंच बेद दुर्ग की परिसा (खाई) तक भी नहीं है। इस से उनके बिद्रावण (भगाना) में प्रयत्न करना यद्यपि आवश्यक नहीं है तथापि वे क्षुद्रउपद्रव अपने स्थानगतम नुख्यों में कुछ अज्ञान और अश्रद्धा फैछाते हैं इस कारण धर्मराज की आज्ञानुसार उक्त क्षुद्रउपद्रवों का भी अब बिद्रावण किया जाता है। उन उपद्रवों के मूळपुरुषों का नाम संस्कृतभाग में इस कारण नहीं छिया गया है कि वे छोग भी अपने भ्रात्वग ही हैं और बेदतत्त्व को न जानने से उनका यह क्षुद्रउपद्रवरूप अपराध है इस से उनके मतमात्र का खण्डन उचित है और उनका नाम छेना इस अवसर पर उचित नहीं है। उनके मत का जो बिचार अब किया जाता है उसको सत्युक्त छोग देखें कि जब मैं अन्तर्थामी के पराधीन हूं और किसी मत का पक्षपाती नहीं हूं तब इस बिचार में मेरा क्या दोष है। भ्रम, प्रमाद आदि सामान्य, पुरुषदोष से, मेरे इस बिचार में जो २ दोष हों सत्युक्षछोग "सर्वारम्भा हि दोषण धूमे-नाग्निरिवाहताः" (जैसे धूम से अग्नि आवृत रहता है वसे ही सब काम दोष से आहत होते हैं)

यतु केनचित् प्रथमः समयो बैदिकिनिबन्धश्रेत्युपक्रम्य ऋग्बेदादीन्वेदभेदान्परिगणय्य तेषां प्रत्येकं संहिता ब्राह्मणं सूत्रंचीत त्रयो भेदाः प्रदर्शिताः अनन्तरं च संहितादीनां स्वरूपाणि प्रदर्शयता प्रथमतः संहितानां स्वरूपं मिथःसबन्धश्र विणते । तथाहि । तत्र ऋग्बेदस्य संहिता, स्वाभिजनात्सिन्धुनदीतटादार्थपुत्रैरानीतानां तेषां गेयवाक्यानां संग्रहो यानि प्रातरूपासनायां पत्थादिसमृद्धिफिलिकायां तैः परिश्वालितान्यासन् येषु चेन्द्रासुरसंग्रामस्तस्मादुत्तीणीनां च जीवानां धन्यवादो विणतः तानि गीतानि यत्र यत्र कविकुले रचितानि तेषां तत्किविकुलनास्त्रेव विभागोऽस्ति । अत्र च यद्यपि विभागक्रमो निर्दोषः तथाऽप्यसौ यज्ञादिकर्मक्रमानुभारोपयोगिनीभ्यां यज्ञःसामसंहित।भ्यामर्वाचीनः, ऋक्संहितामन्त्राणामेव तयाः प्रायश उपलम्भेन ताभ्यामेव ऋक्संहिताया उद्धृतत्वात्

॥ भाषा ॥

इस गीतावाक्य को सारण कर उन दोषों को क्षमा करें। उन मतों में भी प्रथम योरपदेशवासी महाशयों के मत का बिचार किया जाता है। यद्यपि इस मत के प्रनथ द्वीपान्तर की भाषा में हैं तथापि उनके अनुवादप्रनथों के अनुसार उन मतों का उपन्यास कर बिचार किया जाता है।

भौर इन मतों में भी प्रथम आल्ब्रेट् वेवर साहेब के बेद्विषयकमत पर विचार किया जाता है इस मत का मुद्रितपुस्तक वह है जिसके टाइटिल् पेज् पर यह लिखा है कि 'शास्त्रसार अर्थात् बेद, शास्त्र, पुराण, काव्य, साहित्य, कोश, चिकित्सा, ज्यौतिष और बाद्धदर्शन प्रभृति हिन्दुस्तानी शास्त्रों के इतिहासवर्णन में जो ज्याख्यान, आल्ब्रेट् वेवरसाहेब के अंग्रजीभाष्य में छपे हुए हैं उनका हिन्दी अनुवाद आरिएंटल काल्ज् लाहौर के मुख्य संस्कृताध्यापक श्रीयुत पण्डित गुरुप्रसाद शर्मा ने पंजाब युनिवर्सिटी के निमित्त बनाया' इति।

आल्बेट् वेवर का मत पृ. १० पं.१० से पृ. १५ पं. १३ पर्यन्त।

चक्त साहेब ने "पहिला समय और बैदिकनिबन्ध" लिख कर ऋग्बेदादि चार बेदों की गणना कर प्रत्येक बेद में तीन मेद, अर्थात् १ संहिता २ ब्राह्मण ३ सूत्र लिखा। तदनन्तर संहिता आदि का खरूप और परस्पर सम्बन्ध इस रीति से लिखा कि ऋग्बेद की संहिता, केवल गाने योग्य वाक्यों का एक संग्रह है इसमें ऐसे गीतों का समूह है कि जिनको हिन्दूलोग अपने प्राचीन निवासक्थल सिन्धुनदी के तटस्थ देशों से लाए, जिसका वहां वे अपनी प्रात:काल की चपासना में अपने पशुओं और अपनी, समृद्धि के लिये उपयोग में लाते थे, उन गीतों में बज्रपाणि अर्थात् इन्द्र और अन्धकारशक्ति अर्थात् तमोगुणी असुरों के युद्ध और उस युद्ध में बच रहने से स्वर्गीयजीवों का धन्यवाद बर्णन किया है। जिस कविकुल से जो गीत निर्मित हैं उन्हीं के नाम से उनका बिमाग है। बिमाग का क्रम सुरीतियुक्त है इसलिये यद्यपि कुल अधिक नहीं कह सकते तो भी यह सम्भव है कि मूलपाठ का बिन्यास, जिन दोनों संहिताओं का बर्णन इनके अनन्तर ही इम करेंग और जिनकी आवश्यकता यज्ञ की रीति आरम्भ होते ही हुई क्योंकि वे दोनों संहिताएं यज्ञादिकमीपयोगी हैं, उनसे नवीन हुआ होगा, क्योंकि सामसंहिता और यजुर्वेद की दोनों संहितायें केवल ऐसी ऋचाओं और यज्ञसम्बन्धी विधियों से बनी हैं जो कि सोमयज्ञ तथा

नचासिद्धः, यजुःसामसंहितास्थऋङ्मन्त्रापेक्षयांऽशेंऽशे भिन्नपाठवद्धिर्मन्त्रेर्क्ष्क् संहिताया घाटितत्वात् । असो पाठभेदश्च तादृश्चसंहिताद्धयगतानामृङ्मन्त्राणां यज्ञकमेसु चिरतरोपयानाभ्यस्तानामपरिवर्तनीयत्वेन सुरक्षितत्या प्राचीनत्वादितश्चद्धत्वाच । ऋक् मंहितापाठस्य तु गानमात्रोपयोगिनो यज्ञकर्मासम्बन्धनातिसुरक्षितत्वाभावाच भवितुमहित । यद्धा यजुःसामसंहिते एव ऋक् संहितापेक्षया नवीने, यज्ञघटककर्मभकाश्चानातुमारेण ऋक् संहितासम्त्रपाठान्पारिवर्त्व पश्चादेतयोरचनायाः संभवात् । अथवा यजुःसामसंहिते ऋक संहितासम्बालिक यावेव । उक्तः पाठभेदस्तु येषु ऋषिवंशेषु पूर्व संहितापाठः प्राचारीत् तत्र यथापूर्वावस्थमेवासीत् यत्र तु पश्चात्, तत्र परीवर्त्तमन्वभूदितिपाठमचारपूर्वापरभावनिवन्धनः । इदं च मदीयं व्याख्यानत्रयं सर्वत्रेताहशेऽवसरे न विस्मरणीयम् । किंच सामसंहिताया निवदा ऋङ्मन्त्राः प्राचीनाः, तद्धटकशब्दानां प्राचीनव्याकरणरीत्या साधुत्वात् । यजुषां शुक्क कृष्णसंहितयोक्षपनिवध्यमाना ऋङ्मन्त्रास्तु तद्धिपरीता इति तेषां पाठः पश्चात् संशोध्य स्थापित इत्यनुमीयते । अनन्तरोक्ततृतीयव्याख्यानस्य च सामयजुःसंहिते तुल्यमेवोदाह-रणम् । संहितास्वसंख्यानामुक्तमन्त्रपाठभेदानां शाखाभेदानां च प्रत्यक्षमनुभूयमानानां

॥ भाषा ॥

अन्य यहों में पढ़ी जाती हैं, और ये ऋचाएं उसी कम से छिखी हैं कि जैसे इनका यहां में काम पड़ता है, और की तो नहीं चलाते परन्तु यजुसंहिता में हमको निश्चय से ज्ञात है कि यही क्रम है। सामसंहिता में केवल ऋचा (पद्य) ही भरी हैं, परन्तु यर्जुर्वेदसंहिता में ऋचा ओर गद्य (वाक्य) दोनों हैं। ये सम्पूर्ण ऋचाएं कुछ थोड़ी सी ऋचाओं को छोड़ कर ऋग्वेद की संहिता में आती हैं, यहां तक कि सामसंहिता कोई नवीन वस्तु नहीं है किन्तु ऋग्बंदसंहिता के जो गान सोमयज्ञ में प्रयुक्त होते हैं उन्हीं में से उद्भृत है। सम्प्रति जो ऋचाएं सामसंहिता और यजुसंहिता में मिलती हैं वे किसी २ अंश में ऋग्वेदसंहिता के मूलपाठ से बहुत अदल बदल हुई हैं। इसका समर्थन सीन प्रकार से हो सकता है। पहिले तो यह कि इन संहिताओं का पाठ ऋक्संहिता के पाठ से प्राचीन और शुद्ध है क्योंकि इनका प्रयोजन यज्ञों में पड़ता है इस हेतु कुछ परिवर्तन नहीं हुआ। परन्तु जो केवल गानभाग है अर्थात् जिसका यज्ञ में साक्षात् सम्बन्ध नहीं है उनकी रक्षा कम हुई। दूसरे यह कि ये, ऋक्संहिता से नवीन हैं, और जिस प्रकार के यज्ञ में इनका उपयोग होता ठीक डसी के अनुरूप अर्थ वाले पद्य बना कर पढ़ जाने से चाहे पाठमेद हो गया हो। तीसरे यह कि वे ऋक्संहिता के समान ही हैं और बिचित्रता वा भेद इन में यों पड़ा कि जिस प्रदेश भौर बंश में पिहले पहिल मूलपाठ प्रचिलत हुआ उस में तो बड़ी प्रामाणिक रीति से सुरक्षित रहा भौर अन्यत्र अर्थात् जहां पीछे से इनका प्रचार हुआ वहां पर इनकी रक्षा उतनी न हुई। ये तीनों ब्याख्यान एक से ही शुद्ध हैं और जहां कोई विशेष अवसर आन पड़े वहां अवस्य इन तीनों हीं को मन में रखना चाहिये। परन्तु जब हम इन ऋचाओं के परस्परसम्बन्ध में आधिक ध्यान देते तो ऐसा कह सकते हैं कि जो ऋचाएं सामसंहिता में आती हैं वे अपने अतिप्राचीन मुख्यस्करप में हैं क्योंकि इनका शब्दसाधुत्व ब्याकरण की अधिक पुरानी रीति से किया हुआ है। ओर जो यजुर्वेद की दोनों संहिताओं में आती हैं वे इसके विपरीत, ऐसा ध्यान में आती हैं कि द्वितीयबार के संशोधन से सिद्ध हुई हैं। तीसरी रीति के ब्याख्यान का उदाहरण सामसंहिता और यजुसंहिता

पूर्वव्याख्यानत्रयप्रतिपादितेभ्यः कारणेभ्योऽन्यत्कारणं न शक्यतं वक्तुम्। निह तदानीं कण्ठपाठमात्रस्य सन्तात्पाठव्यत्यासोऽभूत्, तस्मिन्याचीनसभये छेखरीतरसन्ते प्रमाणाभावात् । नापि पाठपरीवर्तः शाखाभेदो वा नाभूदिति, तस्याद्याप्युपछभ्यमानत्वात् । यद्यपि ऋङ्मन्त्राः भायशः सिन्धुनदीतीर एव विरचितास्तथापि तेषः यथावत्संग्रहो, विशेषतः क्रमस्थापनं चार्यदेशेष्ववाभूदिति संभाव्यते । किंतु कदाऽभूदिति न प्रतिपादयितुं शक्यते कितपये च ऋक्संहिताभागा नवीनाः येषां रचनासमये ब्राह्मणादिजातिविभागो विशेषतः प्रचिति आसीत्, शाकल्यपाश्चाछवाभ्रव्ययोराख्याने हि तयोर्ऋक्संहितामन्त्रक्रमञ्चवस्थापकत्वमुच्यते अतएव च विदेहपाश्चाछसमृद्धिसमये ऋङ्मन्त्रसंहितानिर्माणमनुमीयत इत्यग्ने वक्ष्यते । सामसंहितायाः पर्याछोचनेन तु न तद्रचनासमयो निर्णेतुं शक्यते, तस्या श्रामिरेव घटितत्वात् कित्वेतावदेव ज्ञायते यदेतस्या रचनासमये ऋक्संहिताया नवीना भागा रचिता नामनिति । परंत्वद्ययावदस्मिन्विषये समुचितमन्त्रेषणं नाभूत् । यजुणां शुक्कष्णसंहिते तु सिन्धुनद्याः पाचीनेषु देशेषु ब्राह्मणलोकेर्धमेषु रचितेषु स्वप्रभुत्वज्ञाति-भेदतदीतिषु च स्थापितासु रचिते इति यजुर्गद्यरचनाभ्य एव छभ्यते । किंच शुक्कयजुः-

॥ भाषा॥

दोनों में बराबर ही अर्थात् तुल्यसंख्यक देख पड़ता है। इस बात को अधिक दढता से हम नहीं कह सकते कि ऋचा और सूक्त, मौखिक पठनपाठनरीति के हेतु बहुत ही परिवर्त्तित हो जाते रहे होंग । क्योंकि उस प्राचीनसमय में लिखने की शिति से ही वे सुरक्षित हो सकते थे यह भी नहीं फह सकते बरक ब्राह्मणप्रनथों के समय में भी पाठपरिबर्तन नहीं हुआ यह नहीं कहा जा सकता है अर्थात् उस समय में परिवर्तन अवस्य मानना पड़ता है अन्यथा इन प्रन्थों के मूलपाठ में भी जो असंख्य भेद हैं उनका तथा शाखाओं के भेदों का अन्य कारण नहीं कहा जा सकता। यद्यपि ऋक्, गान, अथवा उनमें से अधिकांश सिन्धुनदी के तीर पर रचे गये थे परन्तु उनका बिधि-पूर्वक संग्रह और क्रमस्थापन मुख्य हिन्दुस्तान ही में हुआ होगा, पर यह नहीं कह सकते कि किस समय में हुआ। कुछ खण्ड ऐसे नवीनसमय के हैं कि जिनकी रचनासमय में जातिबिभाग भलीभांति प्रचलित हो गया था, शाकल्य और पाञ्चालबाभ्रव्य के आख्यान में ऐसा बर्णित हुआ है कि ऋक्संहिता के क्रमनियम में इन दोनों का प्रधानकरृत्व था इस से यह चोतित होता है कि बिद्ह और पंचालों के समृद्धि के समय यह हुआ था, जैसा हम आगे दिखलावेंगे। सामसंहिता सर्वथा ऋग्बेद से छी हुई है इस हेतु यह अपने आदिनिर्माण के समय का पता नहीं देती है, इतना ही केवल हम लोगों को सूचित होता है कि इस के निर्माणसमय में ऋक्संहिता के नवीन भाग निर्मित नहीं थे। परन्तु इस विषय का अच्छा अन्वेषण अब तक हुआ नहीं है। यजुर्वेद की दोनों संहिताओं के बिषय में हम छोगों को उनकी गद्यरचनाओं से जो कि उन्हीं में बिशेषता से पाई जाती हैं स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि ये दोनों अधिक करके सिन्धुनदी के पूरब हिन्दुस्तान में रचित हुई हैं अर्थात् कुरुपाञ्चाछदेश में। यह बात भी सुचित होती है कि इनका निर्माण उस समय में हुआ जब कि ब्राह्मण छोगों के रचे हुए धर्म और उनका प्रभुल तथा जातिभेद की रीतियां पूरी २ बन गई थीं। इतना ही नहीं इसमें हमको बाह्य प्रमाण भी ऐसा अनुमान कराते हैं कि शुक्रयजुर्वेद की संहिता का वर्तमान विन्यास सन् ई० से पहिले तीसरी सदी में हुआ है क्योंकि संहिताया वर्तमानो बिन्यासः । विस्ताब्देभ्यः पूर्व तृतीयश्वतके जात इति ज्ञायते 'मेगेस्यनीज' नामक ऐतिहासिको हि 'मेडिवोडिनै' सञ्ज्ञकान् मनुष्यान् वर्णयति । इदं च नाम
शुक्रयजुषो माध्यंदिनसंप्रदाये दृश्यते अत्राधिकमग्ने वर्णयिष्यते एवमथर्वसहिताया आरम्भो
ब्राह्मणक्रोकर्वितधर्ममावस्यसम्यात्मशृत्यवासीत् यतोऽत्र ब्राह्मणलोकप्रशृत्वसमयस्य गीतसमूहोऽप्यस्मिन्नस्ति । इमानि गीतानि ऋग्गीततुल्यानि । ऋगथर्वसंहितयोस्तु भावौ
वस्तुतः सवयेव भिन्नो । तथाहि । ऋक्सहितायां सूलमक्कतरितमनोहरो भावः प्रेमोत्साहपूवकः स्वाभाविको दृश्यते । अथर्वनिहितायां तु तस्याः परिणामभूतभ्यो भयानकसत्येभ्यो
महद्भयं तेषां मायिकः प्रभावश्च विजेते, तथा ऋक्संहितायां मनुष्याणां स्वतन्त्रता कार्यतत्परता च दृश्यते अथर्वनिहितायां तु तेषां ब्राह्मणपरतन्त्रता मिथ्याविश्वासनिगडवन्ध्य ।
एवमथर्वसंहितायां वहूनि प्राचीनान्यवंविधानि वाक्यानि दृश्यन्ते यानि तुष्ण्ञनातीयेषु
मनुष्यवेत्वित्रचिलतान्यनुमीयन्ते ऋक्संहितागीतानि तु महाकुलीनेष्वेव । किंच कल्हाननत्रमर्थवसंहिता चतुर्थी वेदपद्यीमध्याल्ढा । अपिच प्राचीनेषु ऋग्वेदादिब्राह्मणस्र्येषु
नाथर्वगीतानामुल्लेखः, तेन तद्राह्मणग्रंथालण्डरचनासमकालमेवाथर्वगीतानि निर्मितानीत्यसुमीयते अतएव ऋग्वेदादिब्राह्मणग्रंथानां मूतनेषु भागेष्वर्थवगीतचर्चाऽप्युपपद्यत इत्युक्तम् ।
अत्रोच्यते सिन्धुनदीतटादार्यपुत्रैरानीतानामिति तावदयुक्तम्, प्रमाणाभावात् वेदे

भेगेस्थनीज्, एक प्रकार के मनुष्यों का बर्णन जिन्हें छोग (मेडिवोडिनै) कहते, करता है और यह नाम माध्यंदिनों से, जी शुक्रयजु का प्रधान सम्प्रदाय है, मिलता है। इस विषय का अधिक वर्णन आगे होगान अथवेसंहिता का प्रारम्भसमय भी जब ब्राह्मणलोगों का रचित धर्म प्रबस्त हुआ था तब से ही है। और सब बातें इसकी ठीक ऋक्संहिता के समान हैं, और ब्राह्मण छोगों के इस प्रभुलसमय का गानसमृह भी इस में है। जो प्रन्थ ऋक्संहिता का वहुत प्राचीन नहीं है चसमें भी ये गान बहुत से पाये जाते हैं। अक्संहिता के बिन्याससमय की नवीनतम बोजना ये गान हैं, और अथवेंग में के ठीक उन्नी समय के हैं जिस समय वह वेद रचित हुआ था। इन दोनों संप्रहों का भाव वस्तुतः सर्वथा भिन्न है। ऋक्संहिता में मूलप्रकृति का अति मनोहर, प्रेम खत्साहपूर्वक, खासाविक भाव देख पड़ता है और अथबेण में इसके विपरीत, उस मूछ प्रकृति के सया-नक सत्वों का महाभय और उनके माया के प्रभाव वर्णित हैं। ऋक्संहिता में मनुष्यों की स्वतन्त्रता धीर कार्यतत्परता पाई जाती है और अथर्वण में हम उनको ब्राह्मणों के प्रमुल और मिध्या विश्वास के निगड (बेड़ी) में बंधे हुए देखते हैं। परन्तु अर्थवसंहिता में बहुतेरे अति प्राचीन वाक्य भी देख जाते हैं, जो अनुमान से लघुवर्ग के मनुष्यों में अधिक प्रचलित थे, और ऋक्संहिता के गान तो उत्तमकुल वाले मनुष्यों के मुख्य अधिकार में थे। बड़े भारी कलह के अनन्तर अथर्वण के गान चतुर्थ बेद की गणना में गिने राए। उनका नामोहेख ऋक्, साम और यजुर्वेद के बाह्यण-प्रनथों के अति प्राचीन खण्डों में कुछ भी नहीं है सच है कि वे इन ब्राह्मणप्रनथों के समकाछ ही

समालोचना ।

" मल्संहिता को हिन्दू लोग सिन्धु नदी के तरस देशों से छाए"

में दने थे और इसी कारण उनके नवीन भागों ही में उनकी चर्चा आई है।

किचित्सिन्धुनद्याश्चर्यामात्रसत्त्वेऽपि तत एतादृशार्थलाभे मानाभावात् । किंच यानि यानि गीतानि यत्र यत्र किवकुले रचितानीत्याद्यपि कपोलकल्पनामात्रम्, मानाभावादेव। तथाहि। न तावद्रचना कस्यचित्रत्यक्षगम्याऽभूत्। तथासित रचितत्वे विवादाभावप्रसङ्गात्, नहि घटादीनां रचितत्वे विवदन्ते। नाष्यनुमेया, लिङ्गाभावात्। तन्नास्त्रा तद्धिभागप्रसिद्धिरेव लिङ्गामिति चेत्, न तथापि तद्रचितत्वस्यासिद्धेः। विभागस्य रचनातोऽत्यन्तिभन्नत्वात्। किंच सिद्धे हि वस्तुनि विभागो भवति नासिद्धे, रचनात्वसिद्धस्यैव नत्नु सिद्धस्य एवंच तद्भित्वसाधनाय तत्कर्तृकं विभागं साधनतयोपन्यस्यता वेदवाह्यन स्वपतिकूलमेव स्वा-

॥ भाषा ॥

- (१) यह बहुत ही अश्रामाणिक है क्योंकि बेद में सिन्धुनदी की चर्चामात्र से ऐसे मृत्तान्त का छाम कदापि नहीं हो सकता इससे उक्त नदी की चर्चामात्र से इस बृत्तान्त का अनुमान करना मिथ्या साहस ही है क्योंकि यदि ऐसा हो तो गंगा आदि नदी की चर्चा भी बेद में है इस से उन नदियों के सम्बन्ध में भी ऐसे अनेक अनुमान खड़े हो जायंगे।
- (२) मैक्सम्यूलर साहेब के मत की समालोचना में पूर्णरीति से यह बात आगे दिखलाई जायगी कि बेद में किया के मूतकाल का वाचक कोई शब्द नहीं होता। तब ऐसी दशा में बेद के किसी शब्द का यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि हिन्दू लोग संहिता को लाये। "जिस किवकुल में जो गीतें निर्मित हैं उन्हीं के नाम से उनका विभाग है"
- (१) यह भी कपोलकल्पनामात्र ही है अर्थान् इसमें कोई प्रमाण नहीं है क्योंकि एक कियों को एक ऋचा की रचना करते समय यदि किसी ने प्रत्यक्ष देखा होता तो जैसे अन्य-प्रन्थों के कतीओं का निश्चय होता है अथवा जैसे घटादिपदार्थों के कुलालादिरचित होने का निश्चय तब से आजतक चला ही आता और ऐसी दशा में यह बिवाद ही नहीं होता कि बेद, किसी का रचित हे बा नहीं। और यह बिवाद भी नास्तिकों के साथ आस्तिकों का और आस्तिकों में भी तार्किकों के साथ बैदिक-दार्शनिकों का अनादिकाल से चला आता है सो भी न होता यदि बेद की रचना करते किसी को किसी ने कभी देखा होता। इस से यह सिद्ध है कि ऋचाओं की रचना होना प्रत्यक्षप्रमाण से नहीं सिद्ध है। और अनुमान भी इस बिषय में नहीं हो सकता कि ऋचाओं की रचना ऋषियों ने किया, क्योंकि किसी हेतु से किसी साध्य का अनुमान होता है और उक्तिवषय में कोई हेतु नहीं है।

साधन—जब उन २ ऋचाओं का बिभाग उन ऋषियों के नाम से आज तक प्रसिद्ध है।

खण्डन—(१) उक्तप्रासिद्धि से इतना ही सिद्ध हो सकता है कि उन ऋषियों ने उन अस्वाओं का विभागमात्र किया और यह बात बैदिकों के भी असम्मत नहीं है परन्तु उक्तप्रसिद्धि से बानाओं की रचना कदापि नहीं सिद्ध हो सकती क्योंकि विभाग दूसरी वस्तु है और रचना दूसरी।

ख॰—(२) बिमाग के बिषय में यह नियम सब के अनुभव से सिंद्ध है कि जिस पदार्थ का जो बिमाग किया जाता है उस बिभाग से पूर्व, वह पदार्थ सिद्ध ही रहता है। और रचना के विषय में उक्तिन्यम से पूर्णिबिएरीत नियम यह है कि जिस पदार्थ की जो रचना होती है नुकूळत्वेन गृहीतम् । तदरचितत्वे तन्नाम्ना विभागानुपपितिरत्यात्य इति चेन्नं । अन्यरिक्तिस्याप्यन्येन विभागस्य दृष्ट्चरत्या व्यभिचारात् । किंच तन्नाम्ना प्रसिद्धिरापि वैदिकेषु वा, वेदवाह्येषु वा, तदुभयसाधारणी वा, विवक्षिता । नाद्यः वैदिकेषु तादश्वेदभागानामर-चितत्वस्यैव प्रसिद्ध्या हेतोरेवासिद्धत्वेनाभासत्वप्रसङ्गात् । अतएव न दितीयः तस्याः स्वतो- इसभवेन वैदिकप्रसिद्धावेवान्तर्भावात् । नापि तृतीयः तत्कर्तृकविभागस्य स्वरसत् उभयत्र प्रसिद्ध्यभावात् । अथ तेषां वेदवावयानामृषयो ये विश्वामित्रादयो वैदिकप्रसिद्धास्तरेव तानि रचितानीत्यात्रय इति चेत्, तिई वैदिकप्रसिद्धिमाश्रित्य तत्तनमन्त्राणां तत्तदृषिराचिन् ॥ भाषा ॥

एस रचना से पूर्व, वह पदार्थ आसिद्ध ही रहता है जैसे उस घट की रचना से पूर्व, वह घट। अब यह स्पष्टक्ष से प्रकट होता है कि वेवर साहेब ने जो ऋचाओं का विभाग सिद्ध किया उस से उछटे यह सिद्ध हुआ कि ऋचाओं के ऋषिकृत विभाग से पूर्व, वे ऋचाएं अवश्य ही सिद्ध थीं क्योंकि यदि वे पूर्व में न होतीं तो विभाग किनका होता ? और जब विभाग से पूर्व में वे थीं तब उनकी अनादिता, विभाग कहने वाले के मुख ही से सिद्ध हो गई।

सा०—यदि वे ऋचाएं उन ऋषियों की रचित न होतीं तो उनका बिभाग उन ऋषियों

के नाम से प्रसिद्ध न होता।

ख०—(१) पिता आदि के रिचत वस्तुओं को भी पुत्र आदि विभाग करते हैं इस से यह कोई नियम नहीं है कि जिस वस्तु का जिस के नाम से विभाग हो वह वस्तु उसी की रिचत होती है और जब यह नियम ही नहीं है तब उन ऋषियों के नाम से विभाग होने के कारण कदापि वे ऋचाएं उनकी रिचत निश्चित नहीं हो सकतीं।

ख०-(२) बैदिकों में उन ऋषियों के नाम से उन ऋचाओं की प्रसिद्धि होने से यह अनु-मान किया जाता है कि वे ऋचाएं उन ऋषियों की रचित हैं (१) अथवा बेदबाह्य मनुष्यों में उक्त प्रसिद्धि से उक्त अनुमान किया जाता है (२) किंबा अनुमान में उक्त प्रसिद्धिमात्र ही हेतु है

चाहै वह प्रसिद्धि किसी प्रकार के मनुष्यों में हो (३) ?

पहिला पक्ष ठीक नहीं है क्योंकि बैदिकों में यह प्रसिद्धि ही नहीं है कि ऋचाएं ऋषियों की रिचत हैं किन्तु इसके बिरुद्ध यह प्रसिद्धि है कि बेद किसी का रिचत नहीं किन्तु अनादि है ऐसे ही द्वितीयपक्ष भी निर्मूल ही है क्योंकि बेदबाह्यमनुष्यों में उक्त प्रसिद्धि है ही नहीं । प्रसिद्ध है कि बेदबाह्य सब मत आधुनिक हैं और उन में जो प्रसिद्धि है वह भी पूर्वोक्त अनुमान ही से है न कि किसी शब्दप्रमाण से। और जब वे बेदबिरुद्ध हैं तब उन मतप्रन्थों में कही हुई प्रसिद्धि बादकथा में बैदिकों के प्रति हेतु बना कर बेदबाह्यों के ओर से कदापि नहीं कही जा सकतीं क्योंकि बैदिक छोग उस प्रसिद्धि को झूठी कहते हैं और यह भी कहते हैं कि ऋचाओं के बिभाग की प्रसिद्धिमात्र सत्य है परन्तु उस से रचना नहीं सिद्ध हो सकती। इन दोनों प्रक्षों के खण्डन से तृतीयपक्ष का भी खण्डन हो चुका।

सा० बैदिकसंप्रदाय में जिन मन्त्रों के जो ऋषि (बिश्वामित्र आदि) प्रसिद्ध हैं वे

सन्त्र, उन्ही ऋषियों के रचित हैं यही आन्तरिक आशय वेवर साहेब का है।

स् - (१) इस जाशयवर्णन से यही निकला कि वैदिकसम्प्रदाय ही में जो प्रसिद्ध

तत्वमुच्यत इत्यायातम् साच मिसाद्धिरेवमाकारा, 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टार' इत्यभियुक्ता निरुक्त-कारादय आच्छते । दर्शनं चोपदेशानवेशं भाग्भवीयतत्तन्यन्त्राभ्यासाविशेषात्त्रपेसहकु-तात्परमेश्वरानुग्रहाद्धा स्वतः भित्रभानम् सप्तमतिबुद्धस्ये पूर्वेद्युरवगतानामर्थावाश्। तादशमन्त्र-मित्रभाषिकारोपाधिकाचेयम् विसञ्ज्ञेत्युक्तमधस्तान्यन्त्रोपयोगमकरणे । एवं विश्वामित्रादिरिष् सत्तन्यन्त्रविषयकतथाविधमित्रभादिकारोपाधिकवानादिः सञ्ज्ञा मञ्चादिसञ्ज्ञावत् । यद्धाः। तत्तन्यन्त्रस्वतः भित्रभाविषयकज्ञानाभिव्यक्षया एव विश्वामित्रत्वादयो जातिविशेषाः कठ-त्वादिवत् । तथाच नैमिचिवय एव विश्वामित्रादयः सञ्ज्ञाः स्वीकिकगवादिसञ्ज्ञावत् । सभ-

।। काषा ॥

है उसी के अनुसार वेवर साहेब मन्त्रों को बिश्वासित्र आदि ऋषियों का रचित सिद्ध किया चाहते हैं। इस से अब बैदिकसम्प्रदाय में जो प्रासी है है उसे दिखळाता हूं। उक्त प्रसिद्धि दो प्रकार की है एक यह कि निरुक्तकार आदि महाशय कहते हैं "ऋषयो मन्त्रद्रष्टार:" इस का यह अर्थ है कि गुरू के उपदेश विना अर्थात् आप से आप पूर्वजनम के तपस्याविशेष और मन्त्रों के अभ्यासविशेष के बळ से अथवा परमेश्वर के अनुप्रह से, जैसे रात्रि में शयन कर प्रात:काल में जगा मनुष्य पूर्व-दिन के जाने हुए पदार्थों को बिना उपदेश के सारण करता है वैसे पूर्वसृष्टि में अनुभूत मन्त्रों का उत्तरहृष्टि के आदि में जिनके अन्तः करणों में प्रतिभा होती है उन्हीं को ऋषि कहते हैं जैसे विश्वामित्र आदि । और जैसे 'ऋषि' नाम किसी व्यक्तिविशेष का नहीं है किन्तु अनन्तरोक्त लक्षण जिस में हो वही ऋषि कहलाता है वैसे ही मनु, ब्यास, आदि पूर्वोक्तसब्जा के नाई 'बिश्वामित्र' आदि शब्द सी किसी ब्यक्तिबिशेष के नाम नहीं हैं किन्तु पूर्वीक उन मन्त्रों के प्रतिभा का जी र थाधिकारी होता है वही विश्वामित्र आदि उन २ शब्दों से कहा जाता है अर्थात भिन्न २ सृष्टियों में भिन्न ही भिन्न पुरुष बिश्वामित्र होते हैं और यही रीति वसिष्ठ आदि में भी है, निद्दन ब्यास आदि सञ्ज्ञा के नाई विश्वामित्र आदि शब्द भी अधिकार के अनुसार औषाधिकी अनादि सञ्ज्ञा ही हैं न कि किसी पुरुषिकरोष के नाम । और दूसरी प्रासिद्धि यह है कि जैसे बेद के अपीरुषेयता प्रकरण में पूर्व हीं कहे हुए (पृ॰ १४४) "आख्याप्रवचनात्" इस मीमांसासूत्र के अनुसार कठत्व आदि जाति के वाचक कठ आदि शब्द हैं वैसे ही विश्वामित्रल आदि जाति के वाचक विश्वामित्र आदि शब्द हैं अर्थात् जिन मन्त्रों के विश्वामित्र ऋषि हैं उन मन्त्रों की पूर्वोक्त प्रतिमा, प्रत्येक सृष्टियों में प्रथम २ किसी विश्वामित्र ही जाति के पुरुष में होती है और उन सब पुरुषों में वह एक ही जाति है जिसका नाम विश्वामित्रल है। ऐसे ही अगस्यत्व आदि जाति को समझना चाहिये। और जैसे गो आदि शब्द, गोल आदि जाति के वाचक होने से नैमित्तिकी अनादि सब्झा हैं वैसे ही विश्वामित्र आदि शब्द भी नैमित्तिकी अनादि सञ्ज्ञा हैं। उक्त इन दोनों प्रसिद्धियों के अनुसार यही सिद्ध होता है कि बिश्वामित्र आदि सञ्ज्ञा अनादि ही हैं। तात्पर्य यह है कि 'बिश्वामित्र' आहि शब्द, चैत्र मैत्र आदि शब्द के नाई किसी एक अनित्य ब्यक्ति के नाम नहीं हैं किन्तु प्रािह्ववाक (जज) आदि शब्दों के नाई अनादि उपाधि अथवा गौ आदि शब्द के नाई बिश्वामित्रल आदिसपी अनाहि-जाति के बोधक हैं। और उचित भी यही है क्योंकि अनादि मन्त्रों के प्रतिभाऽर्थ अनादि ही संज्ञा अनुकूछ है और इसी रीति से, बेद में ऋषियों की जो बंगपरम्परा कही है वह भी अनित्य ज्यकियों की परम्परा नहीं है किन्तु उसका वात्पर्य भी अनादि जाति ही में है। अब ध्यान देना

यथवन नैत्रादिवन्न कस्याश्रिद्धणकेरसाधारण्यो विश्वामित्रादयः सञ्ज्ञाः । अनादीनां हि मन्त्राणामनादयएव सञ्ज्ञाः सम्प्रदायबृद्धावुपयोगिन्यो भवन्ति । एवमेव वंशपरम्पराऽपि वेदोक्ता नानित्यार्थिकेति । तथाचेमां प्रसिद्धि प्रामाणिकीमभ्युपेत्य न तत्तद्दिपरिचितत्वं साधियत्तं शक्यते, उक्तद्रष्ट्दत्वमात्रस्थैतत्प्राक्षिद्धिवषयत्वात् । यदित्वमां प्रसिद्धिमप्रामाणि-कीमप्याश्रित्य तत्तद्दिपरिचितत्वमापाद्यते तदिप नोपपद्यते, आपादकानुरूपं द्धापाद्यं भवति नच रचितत्वमनवगाहमानाया अस्याः प्रसिद्धेरचितत्वमनुरूपम् । नच वाक्यत्वेनैव भारनतादिदृष्टान्तोपोद्धिलेतेन सामान्यतो रचितत्वमनुमायास्या द्रष्टत्वप्रसिद्धिमिनकत्वं प्रसाध्य तत्तदिष्ट्यानतत्वे पर्यवसानमुरूपते वाद्यमेति वाच्यम् । अग्रक्तवान्तित्वापत्तेः तन्नाम्ना विभागमसिद्धिमात्रमाश्रित्य हि बाह्येन तत्तद्दिष्टिचितत्वसाधनमुक्तम् नत्वेवं पर्ययसानम् । किंच तत्तद्दिषरचितत्व विश्वपत्त्वत्यस्याणविश्वष्ठस्य नच तदनुरूपा काचिद्वेशेषिकी ॥ भाषा॥

चाहिये कि इन दोनों प्रसिद्धियों के अनुसार यही सिद्ध है कि बेद अनादि ही हैं रचित नहीं। सब ऐसी दशा में इन प्रसिद्धियों से बेद के रचित होने को सिद्ध करना, सूर्यमण्डल से अन्धकार उत्पन्न करने के तुल्य है।

साव वेवर साहेब का यह आशय है कि उक्त प्रसिद्धियां प्रमाणिक नहीं हैं किन्तु वैदिकीं कि क्योळक रूपनामात्र हैं वस्तुत: जिस मन्त्र का जो ऋषि है वही उसका कर्ता है।

ख॰—यदि यह आशय है तब प्रसिद्धि का अनुसरण करना ब्यर्थ ही है और यह भी बतलाना पड़ेगा कि किस प्रमाण के अनुसार उक्त साहेब ने यह निश्चय किया कि जिस मन्त्र का जो ऋषि है वही उसका कर्ता है ? क्योंकि उक्त रीति से, ऋषि होना अन्य वस्तु है और कर्ता होना अन्य । और इससे तो यही ज्ञात होता है कि जब मन्त्र के कर्ता होने में उक्त साहेब, कोई प्रमाण नहीं दिखलाते तब कर्ता होने की करपना ही उनकी कपोलकरपना है।

सा०—उक्त साहेब का यह आशय है कि वाक्य जितने हैं सब, किसी के रिचत ही होते हैं जैसे महाभारत आदि, और बेद भी वाक्यरूपी हैं इसी से अवश्य, रिचत हैं और रचना करनेवाला जब कोई अन्य मनुष्य प्रसिद्ध नहीं है तब यही स्वीकार करना उचित है कि जिस मन्त्र का जो ऋषि है वही उसका रचना करनेवाला है, क्योंकि यदि ऐसा न माना जाय तो बैदिकों को यह अवश्य कहना पड़ेगा कि ऋषियों से अन्य किसने बेद की रचना किया और जब वे बेद को अनादि मानते हैं तब रचना करने वाला किसको बतलावैंगे।

खं - यह तो वही हुआ कि "अन्यद् मुक्तम् अन्यद् बान्तम्" (भोजन किया भात और बमन किया रोटी) क्यों कि उक्त साहेब ने यही कहा है कि उन ऋषियों के नाम से मन्त्रों का बिमाग प्रसिद्ध है इसी से सिद्ध होता है कि ये मन्त्र उन ऋषियों के रचित हैं। और उक्त आराय के साथ इस कथन का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। तथा यदि यही आराय उनका मान भी लिया जाय तो इसका खण्डन, बेद के अपौरुषेयत्वप्रकरण में पूर्णरूप से पूर्व खण्ड में हो चुका है। तथा इस बात पर भी ध्यान होना चाहिये कि उक्त साहेब, बिशेषरूप से यह प्रमाणित नहीं कर सकते कि ऋषियों की प्रसिद्धि किस समय से आरम्भ हुई ? और दिस २ वर्ष, मास, पक्ष, तिथि, में किस २ ऋषि में कहां २ किस २ मन्त्र की रचना की ? और रचना करते किस २ ने देखा, तो

प्रसिद्धिरस्ति अयं मन्त्रोऽग्रुना ऋषिणाऽग्रुष्मिन्संवत्सरं मासे पक्षे तिथा देशे च रचित इति। किंचोक्तायाः प्रसिद्धेरपि नात्र पर्यवसानं संभवति, प्रमाणाभावात्, अनानुरूष्याच।सामान्यस्य
हि विशेषे प्रयवसानं प्रमाणविशेषवल।देव भवति, नच दृष्टत्वस्य रचितत्व पर्यवसाने प्रमाणमस्ति प्रत्युत विरोधएव। किंच द्रष्टत्वप्रसिद्धेर्वाम्भिकत्वोक्तिरपि न युक्ता, प्रमाणाभावात्,
अनादित्वाच। अपिच वाक्यत्वहेतुकं रचितत्वस्य सामान्यतोदृष्टानुमानमपि पृतिकृष्माण्डाः
अनादित्वाच। अपिच वाक्यत्वहेतुकं रचितत्वात्। किंच उक्तपाठभेदेन ऋक्संहिताया
यितमेव, वेदापौक्षयत्वप्रकरणे पूर्व निःशेषितत्वात्। किंच उक्तपाठभेदेन ऋक्संहिताया
यज्ञःसामसंहित अपेक्ष्य नव्यत्वानुमानमपि न संभवति। तथा हि । ऋक्संहितापदेन किं शाकली विवक्ष्यते किंवा लुप्ता काचिद्दक्संहिता।तत्र नाद्यः। लुप्तसंहितापाठानुसारित्वेनोक्तसंकली विवक्ष्यते किंवा लुप्ता काचिद्दक्संहिता।तत्र नाद्यः। लुप्तसंहितापाठानुसारित्वेनोक्तसंकली विवक्ष्यते किंवा लुप्ता काचिद्दक्संहिता।तत्र नाद्यः। लुप्तसंहितापाठानुसारित्वेनोक्तसंकली विवक्ष्यते किंवा लुप्ता काचिद्दक्संहिता।तत्र नाद्यः। लुप्तसंहितापाठानुसारित्वेच शाक्तः
हिताद्वयात्वस्यान्त्रसारितासु कस्यांचित्संहितायां भविष्यतीति सुवचत्वात् । सर्वासामेव संहितानां
पाठस्ताभ्यामनुसर्तव्य इत्यत्र प्रमाणाभावाच । न द्वितियः। तत्पाठस्योपलस्य कुप्तात्वस्यैव
ब्याघातात् अनुपलस्ये तु पाठभेदस्यैव दुरवधारणत्वात् । एवंच पाठभेदस्योपपत्यर्थ प्रथमब्याघातात् विवितत्वमनुमात् भवत्वते । पाठभेदान्यथापपत्तरम्व निवेदितत्वात्।
हितयोरिप नैव नवीनत्वमनुमात् भवत्वते । पाठभेदान्यथापपत्तरमुपदमेव निवेदितत्वात्।

ऐसी अवस्था में यही निश्चय हो सकता है कि बेद अनादि है और उसी के साथ ऋषियों की प्रसिद्धि भी वैसे ही अनादि है जैसे कि सृष्टियों और संहारों की परम्परा। और ऐसे अनादि पदार्थ कों भी अप्रामाणिक कहना किसी रीति से उचित नहीं है।

"यजु और साम की संहिताओं की अपेक्षा ऋक्संहिता, नवीन है क्योंकि इनके पाठ

की अपेक्षा ऋक्संहितां का पाठ भिन्न है"।

समय प्रचित है अथवा ऋग्वेद की छप्तमहिताओं में से कोई संहिता ? यदि प्रथमपक्ष है तो यह कह सकते हैं कि छप्तऋक्संहिताओं के पाठ के अनुसार यज्ञ और साम की संहिता का पाठ है और ऐसी दशा में शाकछीसहिता में पाठभेद होने से क्या हुआ क्योंकि शाकछी का पाठ जैसा प्रथम रहा वैसा ही अब है और उसके नवीन होने का अनुमान नहीं हो सकता।

प्र०--यदि ऐसा है तो यह बतलाना चाहिये कि यजु और साम की किस संहिता में

शाक्की के मन्त्रपाठ के अनुसार ऋक्मन्त्र का पाठ है ?

उ०-(१) यजु और साम की पूर्वोक्त लुप्तसंहिताओं में से किसी संहिता में होगा।

च०—(२) यह कोई नियम नहीं है कि प्रचित यजु और साम की सहिता का पाठ भी सब, ऋक्संहिताओं के पाठ का अनुसारी ही हो, इससे यदि यजु और साम की किसी संहिता, का पाठ शाककींसहिता के पाठ का अनुसारी न हुआ तो हानि ही क्या है ? कुछ भी नहीं

उक्त द्वितीयपक्ष भी ठीक नहीं है क्योंकि जब संहिता ही छुप्त है तब उसका पाठभेद कैसे कात हो सकता है और यदि पाठभेद ज्ञात होता है तो वह संहिता छुप्त कैसे कही जा सकती है ? इस राति से उक्त पाठभेद का अनुसारी अथम ज्याख्यान, उक्त साहेब का पूर्णक्रप से खण्डत पतेन पाठभेदाक्षिप्तं दितीयमपि ब्याख्यानं प्रतिक्षिप्तम् । किंच प्रचारपौर्वापर्यमात्रकृतः पाठभेदः, ऋक्संहिता तु तयोः समकाछैनेति तृतीयब्याख्यानमपि न युक्तम्, उक्तरीत्याऽन्ययैनोपपन्नस्य पाठभेदस्यानादितया तत्र प्रचारपौर्वापर्यस्याप्रयोजकत्वेन छुप्तशाखापाठानुसारिणि सर्वयैन निर्दोषे तस्मिन् प्रचारदोषप्रयुक्तमिध्याभूतदोषारोपस्य दूरतरानिरस्तत्वात् ।
समकाछिकत्वोक्तिस्तु भूषणमेन संहितानाम्, भगवता कृष्णद्वेपायनेन तासां सङ्कलनायाः
पौराणिन्याः पूर्वप्रपादितत्वात् । नचैतावता बेदस्य पौरुषेयत्वं शक्यप्रत्योक्षतुं बेदवाह्येन,
संहितामन्त्राणामपौरुषेयाणां सङ्कलनमात्रस्य ब्यासकायत्वाभ्युपगमात् । तस्मात्सुजनोक्तिदेवेयं समकाछिकत्वोक्तः, यतः—

गुणायन्ते दोषाः सुजनवदने दुर्जनमुखे
गुणा दोषायन्ते ब्याभेचरति नैतत्कचिदपि ।
यथा जीम्तोऽयं छवणजछधेर्बारि मधुरम्
फणी पीत्वा क्षीरं बमति गरछं दुःसहतरम्।।

॥ भाषा ॥

हो गया, और इसी खण्डन से पाठभेद की उपपत्तिरूपी उनका द्वितीय ज्याख्यान भी चूर्णित हो गया। अब अविशष्ट रहा "ऋक् संहिता, यजु और सामसंहिता के तुल्यकाल ही की है पाठभेद तो उनके आगे पीछे प्रचार होने से हो गया है" यह तृतीय ज्याख्यान, सो भी ठीक नहीं है क्योंकि अनन्तरोक्त रीति से जब उक्त पाठभेद, अन्य ही प्रकार से सिद्ध हो गया तब प्रचार के आगे पीछे होने से पाठभेद का उपपादन कैसे हो सकता है ? क्योंकि पाठभेद, अनादि और लुप्त शाखाओं के अनुसार ठीक है तो ऐसे निर्दोष पाठभेद पर प्रचारदोष से दोषारोप करना अत्यन्त ही अनुचित है। और तीनों संहिताओं को तुल्यकाल कहना तो बैदिकों के अनुकूल ही है न कि प्रतिकृल, क्योंकि बैदिकसम्प्रदाय मे जब बेद अनादि हैं और पूर्वखण्डोक्तयुक्तियों से यह सिद्ध हो चुका है कि कृष्ण-द्वैपायनज्यास ने मन्त्रों को बेद के स्थान २ से निकाल कर एकत्रित मात्र किया जिसकों कि संहिता कहते हैं तब इतने मात्र से उक्त साहेब क्या, काई बेदबाह्म, यह नहीं सिद्ध कर सकता कि बंद, पुरुषरचित हैं और ऐसी दशा में उक्त तीनों संहिता का उक्त साहेब, तुल्यकाल न कहें तो क्या कहीं ? निदान उक्त संहिताओं को तुल्यकाल कहना, उक्त साहेब के सौजन्य को सचमुच प्रकट करता है क्योंकि—

"गुणायन्ते दोषा: सुजनवद्ने दुर्जनमुखे गुणा दोषायन्ते व्यभिचरित नैतत्कचिदिप । यथा जीमूतोऽयं छवणजछधेर्बारि मधुरम् फणी पीला क्षीरं बमित गरछं दु:सहतरम्"॥ अ०—यह नियम है कि जैसे मेघ, समुद्र से खारे जल को पी कर उसे मधुर बना कर बरसते हैं वैसे ही सुजन लोग अपने ज्ञात, आरोपित बा सत्य, अन्य के दाषों को वचन के द्वारा गुण सा बना कर उगलते हैं । और जैसे सर्प, मधुरदुग्ध को पान कर भी दु:सह भयदूर गरल (विष) को उगलते हैं वैसे ही दुर्जन लोग अपने हृदयश्चित आरोपित बा सत्य पराये गुणों को बचन के द्वारा दोष सा बना कर उगलते हैं। तात्पर्य यह है कि उक्त साहेब ने संहिताओं को अपने हृदय में पुरुषरिचत समझा था जो कि आरोपितदोष है परन्तु कहते २ यही कहा कि अस्त्संहिता, यजु और सामसंहिताओं से तुल्यकाल ही है और इस कथन से वह दोष भी गुण हो

किंच स्वोक्तस्य व्याख्यानत्रयस्याविसारणीयत्वोक्तिरप्यविसारणीयव । प्राचीनत्व-नवीनत्वसमकालिकत्वानामन्यतमं भविष्यत्येवेत्यपूर्वनिश्चयफलकत्वस्य 'चैत्रो जीवित एव यहा मृत एवं ति वाक्य इव तत्रापि सत्त्वादिति साध्वी बुद्धिः । एवंभूतमापि, यदि व्याख्यानं नाम तदा 'चैत्रो जीवित एव यहा मृत एवं 'वेदोऽपि पौरुषय एव यहा व्याख्यानं नाम तदा 'चैत्रो जीवित एव यहा मृत एवं 'वेदोऽपि पौरुषय एव यहा व्याख्यानं त्यादेः किं नाम नामेत्यापि बाह्यएव प्रष्ट्व्यः ।

एवम् किंचेत्यारभ्य अनुमीयत इत्यन्तमिष निःसारमेव। प्राचीननवीनव्याकरणप्रयुक्तस्य संहितामन्त्रशब्दसाधुत्वभेदस्यासिद्धस्य व्याकरणानिभिज्ञानैकमूलतामपहाय गत्यनतरासंभवात्। किंच यदि वेदो निर्मीयत तदा साधुत्वभेदेन काचिदुत्प्रेक्षाऽपि क्षमेत, पौरुवेयत्वं तु बाह्यनासाधितमेवेति साधुत्वभेदस्याभ्युपगमेऽपि तस्यानादित्वादेवोत्प्रेक्षाऽनवकाशः,व्याकरणंत्वनुशासनमात्रं साधुत्वस्येति किमत्रोक्तौ सारम्। अपिच संहितास्वित्यारभ्य
काशः,व्याकरणंत्वनुशासनमात्रं साधुत्वस्योति किमत्रोक्तौ सारम्। अपिच संहितास्वित्यारभ्य
कक्तुमित्यन्तमिष मोचितम्, पाठभेदस्यानुपदमेव बाह्योक्तकारणत्रयातिरिक्तेन प्रकारेणोप-

गया क्योंकि जब बेद अनादि हैं तब मन्त्ररूपी संहिताएं भी अनादि और तुस्यकाल ही हैं और यह तुल्यकाल होना गुण ही है न कि दोष । तथा उक्त साहेब ने जो यह कहा कि "मेरे इब तीत ह्याख्यानों को सब अवसर पर भूलना नहीं चाहिये, अर्थात् ऋक्संहिता, यजु और सामसहिताओं की अपेक्षा प्रथम बनी होगी अथवा प्रश्चात् अथवा साथ ही" सो यह साहेव की उक्ति भी भूछने योग्य नहीं है क्योंकि जो उनके सन्देह की तीन कोटियां हैं उनकी अपेक्षा चौथी कोटि का सम्भव ही नहीं है और यह नहीं ज्ञात होता कि जब उनको सन्देह ही रहा तो वह क्यों निर्णय छिखने छग-पड़े और उनके इस सन्देह से तो, उनके अभिप्राय के बिरुद्ध यही सिद्ध होता है कि साहताएं भी अनादि ही हैं क्योंकि यदि रचित होतीं तो वह अवश्य यह निश्चय कर सकते कि ये संहिताएं आगे पीछे बनीं बा साथ। और यह नहीं निश्चित होता कि अपने तीनों ब्याख्यानों में क्या तत्त्व समझ कर उन्हों ने यह कहा कि इनको भूलना नहीं चाहिये क्योंकि जैसे यह वाक्य "दो में से एक बात अवद्य है कि देवदत्त मरगया वा जीता है " है ऐसा ही उनका व क्य है। अर्थात् सन्देह का नाम, ' व्याख्यान ' नहीं होता । संक्षेप यह है कि उक्त साहेब ने यदि मन्त्रों के विषय में तीन व्याख्यान दिया तो अनुचित ही है क्योंकि उन्हों ने मन्त्रों को किसी प्रमाण स, रचित नहीं सिद्ध किया है सीर यदि व्यासकृत संप्रहरूपी संहिता के विषय में उनका व्याख्यान है तो व्यर्थ ही है क्यों के श्रीमद्भागवत के, पूर्वखण्डोक्त कों से यह सिद्ध ही हो चुका है कि तीनों संहिता एक समय में संगृहीत हुई तो उनके विषय में अटकलपश्ची बातों की क्या आवश्यकता है। और संहितारूपी संप्रहमात्र के आगे पीछे होने के निश्चय से उक्त साहेब बा किसी को लाभ ही क्या है ? ।

"जो ऋचाएं सामग्राहिता में आती हैं.....संशोधन से सिद्ध हुई हैं "

- (१) प्राचीन और नवीन व्यांकरणों से शब्दों के साधुत्व, परस्पर में बिरुद्ध नहीं हो सकते क्योंकि नवीनव्याकरण, प्राचीनव्याकरण का अनुसारी होता है और संहिताओं में पाठभेद की उपपित्त पूर्व में दिखला दी गई है इस कारण उक्त साहेब का व्याकरणभेद कहना, व्याकरण न पढ़ने ही का फल है।
 - (२) यदि बेद, राचित होता तो कदाचित् उसके रचना करने वाले पुरुष के दोष से

पादिततया गर्ववचनस्य खर्वतमत्वात् । नाह वाह्योक्तस्य वेदनव्यत्वाभिप्रायगर्भितस्य पाठ-भेदोपपादकस्य कारणत्रयस्य निबृत्तिपात्रात्सन्यनादिः पाठभेदो निवर्ततामिति कथंचिद्पि स्वीकारार्हम्,तदुपपादकान्तरस्यापदान्तरमेवोक्तत्वात् । ईदृश्येव च विषये न्यायाचार्योक्तो भौतिविचारोपहास उल्लस्ति । तथाच आत्मतत्त्वविवेके न्यायाचार्याः—

केनचिद्धौतेन राजद्वारि द्विरदमालोक्य विकल्पितम् किम्, अयम् अन्धकारो मूल-

॥ भाषा ॥

शब्दों के साधुलमेद की शंका भी हो सकती परन्तु उक्त साहेब ने जब किसी दृढ़ प्रमाण से बद का पौरुषेय होना नहीं सिद्ध किया तब बेद के अनादि होने में क्या सन्हेह है और जब बेद अनादि है तब उसके शब्दों का साधुलमेद भी अनादि ही हुआ, तो अनादिपदार्थ पर आक्षेप कैस हो सकता है। बेद के बिष्य में ब्याकरण की शक्ति पूरी उलटी होती है अर्थात् लौकिकवाक्यों की, लोग ब्याकरण के अनुसार रचना करते हैं और बैदिकवाक्य तो अनादि हैं इस कारण बैदशब्दों ही के अनुसार ऋषियों को ब्याकरण बनाना पड़ता है। तो ऐसी दशा में बैदिक-पाठमेदों को ब्याकरण का अनुसारी कहना अज्ञान ही है।

"अन्यथा इन प्रथों के मूळपाठ में भी जो असंख्य भेद हैं उनका तथा शाखाओं के भेदों का अन्य कारण नहीं कहा जा सकता"

उक्त साहेब ने अपने उक्त तीन ज्याख्यानों में पाठभेद के जो तीन कारण बतलाया है उनसे अन्य चतुर्थ कारण अर्थात् छप्तशाखाओं का पाठ, पूर्व में स्पष्टरूप से दिखला दिया गया है। ता ऐसी दशा में यह कहना कि "मरे कह हुए कारणों से अन्य कारण नहीं कहा जा सकता" केवल अभिमानमात्र है। इसमें कारण यह है कि बेद का पुरुषरचित मान कर उक्त साहेब ने अपने कहे हुए तीन कारणों से उक्त पाठभेद की घटना की है परन्तु उक्त पाठभेद का मुख्यकारण जो पूर्व में दिखलाया गया वह बंदों के अनादि होने ही से दृढ़तर है और बेंद का अनादि होना यदापि पूर्वखण्ड में अनेक प्रबल्पमाणों से सिद्ध किया गया और वास्तविक में सत्य भी है तथापि उक्त साहेब उन प्रमाणों को जानते नहीं थे और छौकिक स्थूलदृष्टि के अनुसार, बेद का अनादि होना उक्त साहेब की श्रद्धा से बिरुद्ध भी था, इसी से अनन्तरोक्त चतुर्थकारण पर उनकी दृष्टि नहीं गई जिसस उन्हों ने यह अभिमानवाक्य छिखा कि "अन्य कारण नहीं कहा जा सकता" उक्त साहेंब को उचित था कि "बेद पौरुषेय है बा अपारुषेय" इस बिचार को किसी निपुण मीमांसक पण्डित से निपटा कर जो निश्चित होता उसके अनुसार ब्याख्यान करते। और अपने ब्याख्यानों से पाठभेद के जिन कारणों का सन्देह उन्हों ने किया उनमें से एक कारण भी यदि घाटित न हो, तो इससे वासाविक स्वतः तिद्ध और अन दि उक्त पाठ भेद, क्या भिट सकता है? कदापि नहीं क्योंकि किसी सिद्ध वस्तु के बिषय में कोई पुरुष अपने मनमाने दो चार प्रकारों को कह कर उनका खण्डन कर द तो इससे उस सत्य वस्तु का खरूप नहीं मिटता। इस विषय में आत्मतत्त्विबेबेक' नामक प्रनथ में न्यायाचार्य उद्यन ने एक दृष्टान्त भी कहा है जो छिखाने जाता है कि-

'किसी मनुष्य ने राजाकीर पर स्थित दन्तावल हस्ती को देख कर यह बिकल्प (सन्देह) किया कि (१) यह, क्या अन्धकार है जो कि मूली खा रहा है। (२) किंवा मेघ है जो कि बकुलों कमित्त शिवत्, जलवाहो बलाकान्वर्षति गर्जात च शियद्वा, बान्धवोऽयम् शिराज-द्वारे रमशाने च यस्तिष्ठति स बान्धव' इति परमाचार्यवचनात्। अथवा, योऽयं भूमौ दृश्यते तस्य च्छाया शहित। दृषितं च, तत्र न द्यः, तस्य शूपेयुगलप्रस्फोटनाभावात्। न द्वितीयः तस्य स्तम्भचतुष्ठयाभावात्। न तृतीयः। तस्य लगुडभ्रमणाभावात्। न चतुर्थः, तस्य नरशिरः शतो-दिरणाभावात् ततो न किंचिदिद्मिति। किमेतावता द्विरदरूपं निवर्ततामिति।

एतेन निह तदानीमित्यारभ्य उपलभ्यमानत्वादित्यन्तमिप प्रतिक्षिप्तम् । एवम् यद्य-पीत्यादिकमप्यश्रद्धेयमेव । रचितत्वस्यैव प्रत्याख्यातपूर्वत्या सिन्धुनदीतीरे रचितत्वोक्तेर-त्यन्ताप्रामाणिकत्वात्, ऋङ्मन्त्राणां संग्रहक्रमस्थापनसंभावनंचार्यदेशेष्वेवाश्रदिति तु ना-स्माकं प्रतिक्लस्, मन्त्रापौरुषेयत्वापितक्लत्वात् किंत्वचुक्लमेव व्यासकर्तृकसंहितानिर्मा-णोक्तेरचुक्लत्वात् । यत्तु किंतु कदाऽभूदिति न प्रतिपादियतुं शक्यत इति तत्तु युक्तमेव, पुराणादिष्वधीतिना हि द्वापरस्यास्याब्यवहितस्यान्ते तदभूदिति वक्तुंशक्यते नतु पुराणा-दिविद्वेषिणा वेदबाह्येनापीति किमत्राश्चर्यम् ।

॥ भाषा ॥

को बरसाता और गर्जता भी है। (३) यद्वा मेरा बन्धुजन है क्योंकि बड़े आचार्य ने कहा है कि "राजद्वारे इमशाने च यस्तिष्ठित स बान्धवः" (राजद्वार और इमशान में जो खड़ा होता है वह बन्धुजन है) (४) अथवा यह जो (हस्ती) भूमि पर देख पड़ता है इसी की छाया है। ऐसा विकल्प कर प्रत्येकपक्ष का खण्डन भी यों किया कि (१) कल्प (पक्ष) ठीक नहीं है क्योंकि अन्धकार दो शूपों (सूप) से फटकता नहीं रहता, (२० कल्प भी उचित नहीं है क्योंकि मेघ के नीच चार स्तम्भ नहीं छगे रहते, (३) कल्प भी दुष्ट है क्योंकि यह, बन्धुजन होता तो मुझे देख कर मेरी ओर मोटा छठ क्यों घुमाता, (४) भी युक्त नहीं है क्योंकि छाया, अनेक नरमुण्ड नहीं उगला करती। ऐसा खण्डन कर उस महाझय ने कहा कि इस बिषय में मेरी अगाधबुद्धि के अनुसार चारो प्रकार नहीं हो सकते तो यह कोई पदार्थ ही नहीं है"। ऐसा कह कर न्यायाचार्य ने यह कहा है कि क्या इस खण्डन से वास्तिवक हस्ती का खरूप निवृत्त हो जाता है ? कदापि नहीं।

"यद्यपि००००००००० किस समय में हुआ"

जब बेदों का, राचित अथीत् पौरुषेय होना ही उक्त साहेब ने किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं किया तब "सिन्धुनदी के तीर में रचा गया" इत्यादि उनका कथन नहीं प्रामाणिक हैं। सकता है। और "ऋग्मन्त्रों का संग्रह और कम का स्थापन आयदेश ही में हुआ" यह उनका कथन बैदिकों के प्रतिकृत्न नहीं है क्योंकि जब मन्त्र अपीरुषेय हैं तब उनका संग्रहमात्र अर्थात् संहिता तो आर्यदेश ही में ज्यास के द्वारा ज्यवस्थापित हुई यह बात भागवत के स्रोकों से पूर्वखण्ड में कहीं गई है। और ज्यास का स्थान, आर्यदेश को छोड़ अन्य देश में नहीं था। तथा उक्त साहेब ने जो कहा कि 'मन्त्रों का संग्रह कब हुआ यह नहीं ज्ञात होता' यह उनका कथन कुछ आश्चर्य नहीं है क्योंकि पुराणादिग्रंथों के पढ़नेवाले ही पुरुष यह जान सकते हैं कि इस गत द्वापरयुग के अन्त में छिण्णेद्वपायनज्यास ने मन्त्रों का संग्रहरूपी संहिताओं की रचना की, और जो बेदवाहा-पुरुष, पुराणादिग्रंथों को बिना देखे सुने दूर ही से द्वेष के आबेश में आ कर उनकी निन्दा करते हैं बे कैसे जानेंगे कि मन्त्रसंहिताओं का बिभाग कब हुआ।

एवम् कातिपयंचेत्यतः, वक्ष्यत इत्यन्तमि मनोमोदकभोजनमेव । रचनायाः पूर्वमेव
निराकरणात् । शाकल्यपाश्चालवाभ्रव्ययोः संहिताक्रमब्यवस्थापकताया उक्तावण्यनन्तरोक्तरीत्या तयोरजन्यत्वात् । तस्या आख्यायिकाया भूतार्थवादतया संहितामन्त्रस्तुतिमात्रतात्पर्यकत्वेन 'पर्वताग्रे रथोयाती' त्यादिवाचयानामिव वाच्यार्थे तात्पर्याभावेन ततस्तादशभागनवीनतालाभाशाया बन्ध्यादोहित्र।शायमानत्वाच । विदेहपञ्चालादिशब्दानामिप
'किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गाव' इत्यादिमन्त्रेषु पूर्वखण्डाकृतमीमांसावार्तिकोक्तया रीत्याप्रवाहिनत्यार्थकत्या ततोऽपि विदेहादिबृद्धिममयोत्प्रेक्षाया मीमांसापरिचयाभावमूलकत्वाच ।
वेदस्थलुङादीनामभूतकालार्थताम्वपाद्य लदसमानयोगक्षेमताया अस्मिनेव क्षद्रोपद्रविद्वावणप्रकरणे सिद्धान्तयिष्यमाणतया लाह्याख्यानादौ तत्सच्वेऽपि ततस्तन्मन्त्रभाग-

माया ॥

"कुछ खण्ड ००००० अगि दिखलावेंगे."

(१) यह भी मन का लड्डू खाना ही है क्योंकि बेद अनादि है और उस पर, रचित होने का आरोप मिध्या ही है ये दोनों बातें बेद की अपारुषेयताप्रकरण और इस प्रकरण में भी जब सिद्ध हो चुकी हैं तब ऐसी दशा मे पुन: बेद के बिषय में रचना का नाम लेना मन का मोदक खाना नहीं है तो और क्या है?

(२) यदि शाकल्य और पाञ्चालबाभ्रव्य का, संहिताकम के प्रति व्यवस्थापक होना थोड़े समय तक मान लिया जाय तब भी मन्त्रों के अनादि होने में कोई क्षति नहीं हो सकती

क्योंकि क्रम की व्यवस्था की, रचना नहीं कहते ।

(३) वस्तुतः, बेद में शाकल्य और पाश्चालवाभ्रव्य की कथा जो है सो मालती-माधव, सिद्धान्तचनद्रोदय, आदि नाटकों के नाई आख्यायिकामात्र है इससे उसका अपने अर्थ में बात्यों ही नहीं है किन्तु, मन्त्रों की प्रशासामात्र में उसका ताल्पर्य है और शाकल्य आदि नाम मालती आदि नामों के नाई उसमें किल्पत ही हैं और अर्थवाद के प्रकरण में पूर्व ही यह मली भांति सिद्ध हो चुका है कि जिस अर्थ में ताल्पर्य न हो उस अर्थ के मिथ्या होने से कोई वाक्य मिथ्या नहीं हो सकता जैसे पहेली आदि। तो ऐसी दशा में मीमांसादर्शन के इस सिद्धान्त को पढ़े और समझे बिना, उक्तकथा से बेदभाग की नवीनता की आशा, बन्ध्या सी से दौहित्र (बेटी का बेटा) की आशा के समान असम्भव ही है।

(४) "कि ते कृण्विन्त कीकटेषु गावः" इस मन्त्र के विषय में मीमांसाबार्तिक की कही हुई और मन्त्रप्रकरण में पूर्व हीं स्पष्टरूप से दिखलाई हुई रीति के अनुसार उक्त बैदिकआख्यायिका में बिदेह, पंचाल, आदि शब्द के देशिबशेषरूपी अनित्य अर्थ नहीं हो सकते, किन्तु अनेक सृष्टियों – में बर्तमान बिदेह आदि अनेक देशों की परम्परा ही अर्थात् बिदेहत्व आदि जातिरूपी नित्यही वस्तु उन शब्दों के अर्थ हैं तो ऐसी दशा में "बिदेह और पंचालों के समृद्धिसमय" वह कथन

मीमांसा के परिचय न होने हीं का फल है।

(५) जब कि इसी श्लुद्रोपद्रविद्रावणप्रकरण में आगे चल कर इस सिद्धान्त का वर्णन होगा कि वेद में ऐसा कोई शब्द नहीं होता जो कि भूतकाल का बोधक हो, तब ऐसी दशा में उक्तकथा से भूतकालिक बृत्तान्त को निकाल कर उसके अनुसार किसी मन्त्रभाग को नवीन नब्यतालाभासंभवाच । निर्माणानुमाने दोषाणां पूर्वमुक्तत्वेन तत्कथनस्य शुष्कचर्वणायितत्वाच । एवम् सामेत्यारभ्य नाभूदित्यन्तमि निरुपात्तिकम् । सामसंहिताया रचना हि तन्मन्त्राणां रचना वा तत्संग्रहो वा । नाद्यः । तस्याः पूर्वमेव निरस्तत्वात् । न द्वितीयः । सामसंहितायाः पर्यालोचनया तत्संग्रहो वा । नाद्यः । तस्याः पूर्वमेव निरस्तत्वात् । न द्वितीयः । सामसंहितायाः पर्यालोचनया तत्संकलनासमयो निर्णेतुं शक्यते । पुराणादित एव त्वव्यवहितद्वापरान्त-रूपसमयलाभः सर्वस्यामेव संहितायां सम्भवतीति द्युक्तमेव । किंच तस्यां सामसंहिताया-मजुपनिवन्धमात्रेण न कस्यचिद्दक्तंहिताभागस्य नव्यत्वमनुमामाक्रामित, सामसंहिताया-नत्तरेषु लुप्तशाखीयेषु भूयः सुक्रचित्तदुपनिवन्धस्य सुवचत्वात् । साममन्त्राणां गानमात्र-शरीरताया व्यवस्थापितपूर्वतया सतीनामिप गानायोग्यत्या सामयोनितामनापन्नानामृचां सामसंहितायामनुपनिवन्धस्यवैवित्येन व्यभिचाराच । अपिच अद्ययावदस्थिन्वषये समुचितमन्वेषणं नाभूदिति यदा स्वयमेवोच्यते तदा किमन्यदत्रवक्तव्यम् । तथा यजुष-

वनाना अज्ञान ही है।

"सामसंहिता सर्वथा ० ० ० ० ० अच्छा अन्वेषण अब तक नहीं हुआ"

- (१) सामसंहिता की रचना, क्या साममन्त्रों की रचना है ? अथवा उनका संमह मात्र ? मन्त्रों की रचना, पूर्व हीं खण्डित हो चुकी और अनादिता स्थापित हो चुकी तो ऐसी दशा में केवल रचनाशब्द के उच्चारण से क्या लाभ है ? और सामसंहिता के पर्यालोचन से यदि उसके आरम्भसमय का पता नहीं चलता तो यह कोई दूषण नहीं है क्योंकि किसी अन्त्रसंहिता में यह नहीं कहा है कि संमहरूपी उस संहिता का आरम्भ अमुक समय में हुआ। और जब सब संहिताओं की यही दशा है तो सामसंहिता ही पर क्या विशेष आक्षेप है १। और पूर्वखण्ड में तो यह कहा ही जा चुका है कि गत द्वापर के अन्तिम समय में मन्त्रों का संमहरूपी संहिताएं बनी हैं तथा यह बात उक्त पुराणवाक्यों से सिद्ध है तो ऐसी दशा में पुराणों के न जानने वाले उक्त साहेब को यदि पता नहीं चला तो इसमें क्या आक्षर्य है।
- (२) इस बर्तमान सामसंहिता में किसी ऋक्मन्त्र के न रहने मात्र से ऋक्संहिता के किसी भाग के नवीनत्व का अनुमान कदापि नहीं हो सकता क्यों कि बहुत सी सामसंहिता छुप्त हो गई हैं जिन में उस ऋक्मन्त्र का सम्भव है। और यह कोई नियम भी नहीं है कि जितनी ऋचाएं हैं सब को सामसंहिता में आ जाना चाहिये क्यों कि पूर्वस्वण्ड में उक्तरीति से यह सिद्धान्त हो चुका है कि साममन्त्र अक्षररूपी नहीं हैं किन्तु गानरूपी हैं तो जितनी ऋचाओं में साममन्त्रों के गान होते हैं उतनी हीं ऋचाएं सामसंहिता में हैं। अप जिनमें गान नहीं होता वे ऋचाएं कैसे सामसंहिता में रहने योग्य हैं ? इसी से वे ऋचाएं सामसंहिता में नहीं हैं तो इससे कैसे नवीनत्व का अनुमान हो सकता है ? क्योंकि व ऋचाएं अनादि ही हैं परन्तु गानयांग्य न होने से सामसंहिता में नहीं पढ़ी गई। और जब उक्त साहेब अपने मुख से कहते हैं कि "इस विषय में पूर्ण अन्वेषण नहीं हुआ" तब इस विषय में आधिक कहना ही क्या है ?

"यजुर्बेद की दोनों संहिताओं ०००० अधीत् कुरु पंचाल देशों में " (१) जब उक्त साहब ने किसी प्रमाण से बेद की पौक्रवेयता नहीं सिद्ध किया है इत्यनन्तरम् लभ्यतइत्यन्तमि आशामोदकायतएव । अपीक्पेयेवेदेविहितानां धर्माणां मवाहानादितया ब्राह्मणजातीयपुरुषरचितत्वे मानाभावेन तदुक्तं ब्रह्मद्रोहेकदोइद्त्वेनोपेक्ष-णीयत्वात् । ब्राह्मणानां मस्रत्वोक्तेरिप ताहशसंभावनोल्लासैकसहायत्वाच । यजुर्गद्यरचना-नामाख्यायिकात्वेन तद्वाच्यार्थमादाय स्वमनोरथपूरणस्याकौशलेकमूलकत्वाच । को हि नाम परीक्षकः महेलिकानां वाच्यार्थं प्रमाणीकृत्योपवर्णयेदन्तरेणासूयकम् । तथा किंचेत्यादिकम् ह्रयतइत्यन्तमिष, स्वमानसोल्लासमात्रम् । अपयोजकत्वात् नह्नेकमिष किंचिच्यामिकस्येव भवतीति कोऽपि धीमान्वक्तुमहित । नाम्त्रां ग्रामाणां च नियमे। नास्तीं तिमवादस्य हालिकपर्यन्तमिपिसिद्धेः अन्यथा मिर्जादिनामधेय। जुसारेण वेदबाह्यं मत्यिप तदनिष्ट स्य भमवतीभक्तत्वादेः प्रसङ्गस्य दुर्शरत्वात् नहि प्रमाणान्तरगम्येऽर्थे नामापि पाश्चात्यां संभावनां प्रसूप प्रमाणसहायीभवतीत्येतावतेव सर्वत्रेव प्रमाणश्चरे बाह्योक्ते ' विस्ताब्दे-भ्य' इत्याद्यर्थेऽपि तत्प्रमाणं स्यादिति वक्तुं शक्यम् ।

एवम् योऽयमथर्वेत्यादिकम् तुरुयानीत्यन्तमि निः सारमेव। धर्मेब्राह्मणलोकरचितत्व-स्यात्यन्ताप्रमाणिकत्वात्। तस्यापौरुषेयवेदम्लकत्वेनप्रवाहानादितायाअसकृदावेदितत्वाच ।

और पूर्वखण्ड में बेद की नित्यता तथा धर्मों के प्रवाह की अनादिता प्रबलप्रमाणों के द्वारा सिद्ध हो चुकी है तब उक्त साहेब का यह कथन कि "बेद को ब्राह्मणजातीय पुरुषों ने बनाया" केवल देषमूलक अथवा भूल ही से हैं तथा यह कथन भी कि "ब्राह्मणों का प्रभुल था" असूयामात्र (गुण में दोष निकालना) ही है क्योंकि बंद में कही हुई, पहेलियों के समान प्रशंसामात्र में तात्पर्य रखनेवाली कि पत्रआख्यायिका को, उनके बाच्यार्थ में भी प्रमाणित कर उनके अनुसार आक्षेप करना असूयक ही का काम है।

"यह बात भी ००००० प्रधान सम्प्रदाय है मिलता है"

यह भी उक्त साहेब की कल्यनामात्र है क्योंकि कोई बुद्धिमान यह नहीं कह सकता कि एक नाम एक ही पुरुष का होता है किन्तु प्रामीण भी कहते हैं कि "नाम और प्राम का ठिकाना नहीं होता"। और ऐसा ही ठीक भी है क्योंकि यदि नाममात्र ही से अर्थ छगाया जाय तो यह भी कहा जा सकता है कि "गिर्जा" गिरिजा शब्द का अपभ्रंश (खराबी) है और गिरिजा नाम भगवती का है तथा गिरिजा के छपासक उक्त साहेब और उनके सजातीय छोग, भगवती के भक्त हैं निदान किसी नाममात्र के अनुसार कोई कल्पना ठीक नहीं हो सकती किंतु कल्पना के छिये प्रमाण होना आवश्यक होता है। यह दूसरी वात है कि प्रबछ प्रमाणों से जब कोई बिषय सिद्ध हो चुका और अन्य कोई प्रबछ प्रमाण उसके विरुद्ध नहीं है तब उस बिषय में नाम का भी अनुसार दिखला दिया जाता है अर्थात नाम के अनुसारमात्र से उक्त साहेब का यह कथन "शुक्त यजुर्वेद की संहिता का बर्तमान बिन्यास सन् ईसवी से पहिले तीसरी सदी में हुआ है" अनुचित ही है।

"अथर्बसंहिता का ० ० ० ० ऋक् संहिता के समान है"

(१) यह भी ठीक नहीं है क्योंकि इस विषय में उक्त साहेब ने कुछ भी प्रमाण नहीं दिया कि "धर्म, ब्राह्मणों के बनाए हुए हैं"

(२) यह अनेकबार पूर्व हीं सिद्ध हो चुका है कि धर्मी का प्रवाह नित्य बेद्मृलक

गातसमूहस्याथान्तरपरतया प्रवाहिनत्यार्थकतायाअपि पूर्वमुपपादित्व। च्य । किंच । त ऋगीतान्येव नतु तत्तुल्यानि । पादब्यवस्थारुपोक्तग्र्वक्षणस्य तेषु वर्तमानत्वात् । वाह्यस्य तु तल्लक्षणानभिज्ञस्य लुप्तिशिष्ठा बेदब्याससंक्रिते शाकलऋक्संहिताग्रन्थे ये मन्त्रास्त एवर्क्-पदेनोच्यन्ते नत्वन्य इति भ्रम एव ।

एवम् ऋगर्थेत्य।दिना महाकुळीनेष्वेवेत्यन्तेन ऋगर्थर्वमंहितयायीं भावभेदः पकारत्रयेण

बर्णितः स पकृते निष्पयोजनएब, अनुवादमात्रत्वेतु न नः का ऽपि हानिः।

तथा किंचेत्यादिकमपि तात्पर्याज्ञानि छिसितमेव, कलहा एयायिकाया अर्थवादतया ऋग्वे दादित्रयसाध्ययज्ञानां प्रशंसामात्रे तात्पर्यात् । तथाच शावरम् 'नहि निन्दा निन्दा निन्द

तुस्पवर्तते किंतु विधेयं स्तोतुम् ' इति ।

तथा अपिचेत्यादिकमप्यनर्गलमेव। तथाहि । प्राचीनर्ग्वेदादिब्राह्मणखण्डेष्वित्यनेन किं सुप्तब्राह्मणखण्डेषु कानि चिद्विविक्षितानि अहोस्वित् शिष्टेषु ब्राह्मणेषु १ नाद्यः तेषाः सुप्तत्वादेव तेष्वयर्वगीतानुक्षेत्रस्य दुर्ज्ञानतयाऽसिद्धेन हेतुनाऽनुमानस्यैवासंभवात्। न द्वितीयः॥ शिष्टेष्वयर्वगीतानामनुपलम्भेऽपि सुप्तेषु तेषामुक्षेत्रसंभवेन ताहशानुपलम्भस्याधर्वगीतरचनाः ॥ भाषा॥

और अनादि है। और यह भी कहा जा चुका है कि जिन ऋचाओं को उक्त साहेब गीत बतला।

हैं उनका कोई अर्थ, अनित्य नहीं है किंतु उनके अर्थों का प्रवाह नित्य ही है।

(३) साहेब की कही हुई अथर्बसंहिता की गीतें ऋक्संहिता की गीतों के समान नहीं हैं किंतु वेही हैं क्योंकि मन्त्रप्रकरण में ऋचाओं का पादब्यवस्थारूप छक्षण, जो पूर्वहीं कहा जा चुका है अथर्बसंहिता के मन्त्रों में वही बर्तमान है। उक्त साहेब को तो उक्त छक्षण ज्ञात नहीं था इसी से उनको यह भ्रम हो गया कि बर्तमान ऋक्संहिता में जितने मन्त्र पढ़े हुए हैं उतने ही को ऋचा कहते हैं।

"और ब्राह्मण छोगों के ० ० ० ० ० व मुख्य अधिकार में थे"

यहां उक्त साहेब ने ऋक्संहिता और अथर्वसंहिता के अभिप्रायों में तीन प्रकार से भेद दिखलाया है वह भी अनुवादमात्र है और उस से बैदिक सिद्धान्त में कोई हानि भी नहीं है।

"बड़ा भारी कलह के अनन्तर" इलादि—

यह पूर्व में कहा जा चुका है कि बेद को कथाएं प्रायः किएत आख्यायिकारूपी होती हैं। वैसे ही यह कलह की आख्यायिका भी अर्थवाद ही है और इसका तत्पर्य ऋग्वेद आदि की प्रशंसामात्र में है निक अथववेद की निन्दा में। इसी से मीमांसाभाष्यकार शवरस्वामी ने कहा है कि "निन्दावाक्यों का किसी की निन्दा में तात्पर्य नहीं होता किंतु विधेय की प्रशंसा ही में"।

"उनका नामोल्लेख ० ० ० ० ० ० उनकी चर्चा आई है"

(१) यह भी असंवद्ध ही है क्योंकि "प्राचीन ब्राह्मणखण्ड" शब्द से उक्त साहेब के यदि छप्त ब्राह्मणखण्डों को कहा है तो जब वे छप्त ही हैं तब उक्त साहेब को कैसे ज्ञात हुआ कि उनमें अथर्वगीतों का उद्घेख नहीं है, और जब यह बिषय ज्ञात नहीं है तब किस भरोसे पर उक्त अनुमान खड़ा हो सकता है १। और यदि "प्राचीन ब्राह्मणखण्ड" शब्द से बर्तमान ब्राह्मणभागीं को साहेब ने कहा है तो उसपर यह कहा जा सकता है कि इन ब्राह्मणखण्डों में अथर्वगीत के

कीलिविशेष। जुनानेऽनैक। नितकत्वात् । किंच वेदरचनायाः पूर्वमेवोन्मूलनेन तद्घटितसाध्यासिद्ध्या कथिमदमनुमानं संभवपथमप्यवतरीतुमीशीत। अपिच। ऋग्वेदादिब्राह्मणग्रन्थानां
नृतनेषु भागेष्वथर्वगीतचर्चेति स्वयमेच बाह्येनोच्यते तत्रच खण्डानां प्राचीनत्वनवीनत्वयो
कृत्केच पौक्षेयत्वानिराकरणेनैव निराकृतत्वात्केषुचिद्धः ह्मणखण्डेष्वर्थर्वगीतो छेलो न सर्वेप्वत्येवपर्यवस्यति एतावता च न कथमप्यथर्वगीतिविषये किंचिदुत्मे क्षितुमपि शक्यते । निर्द्ध सर्वखण्डेषु तदु छेल इति कश्चिदापे बैदिको मन्यते, तस्मादर्थवगीतरचनाकालविशेषानुमानमत्यन्तासंभवदु क्तिकमेव । तत्तत्समयिशेषवशेन भचारोत्पिचिवनाशिवमद्दर्शनापमर्दितविवेकशक्तेस्तु वेदबाह्यस्य मचारगतयोरेव प्राचीनत्वनवीनत्वयोक्तर्भवेदा। दिब्राह्मण। नां तेषु
तेषु खण्डेषु भ्रमस्तं मुखरीकरोतीतित्वन्यत् ।

तस्मात्।

प्रज्ञाचक्षुः करामशीकी लत्वादि विकल्पयन् । बाच्यश्रेद्वेदबाह्योऽपि वाच्य एवं वद्सतदा ॥ १॥

यत्तु तेनैव, ब्राह्मणभागग्रन्थानुपत्रम्य बहुशः प्रशस्य तद्रीतीश्र यथामति सामान्यतो-षणियत्वा तद्रचनासमयसंभावनादिकम्रुपन्यस्तम् तद्रिप पूर्वीक्ततदुक्तिपत्युक्तिभिरेव

उद्येख न होने से वह क्या सिद्ध कर सकते हैं ? जब कि छप्त ब्राह्मणखण्डों में उनके उद्येख का सम्भव हैं। और छुप्तों में तो उनका उद्येख न होना निश्चित ही नहीं हो सकता तो कैसे अथर्बगीत की रचमा के काल का अनुमान हो सकता है ?

- (२) सची बात तो यह है कि बेद के बिषय में जब रचना, पूर्व ही पूर्णरूपसे खण्डित हो चुकी और उक्त साहेब ने भी उक्त रचना में कुछ भी प्रमाण नहीं दिया तो बार २ रचना का नाम छेना उक्त साहेब का निर्मूछ और नाम ही नाम है।
- (३) जब कि उक्त साहेब अपने मुख से यह कहते हैं कि "ऋग्बेद आदि के ब्राह्मण-प्रन्थों के अति प्राचीन खण्डों में अथर्बगीतों का नामोछेख नहीं है" और इस प्रन्थ में पूर्वोक्त प्रकार से बेदकी पौरुषेयता के खण्डित होने से बेदखण्डों का उक्त प्राचीनल नवीनल भी मूल ही से खण्डित हो चुके तब साहेब के अनन्तरोक्त वाक्य का पर्यवसित (निचोड़) अर्थ यही हुआ कि "किसी २ ब्राह्मणखण्ड में अथर्बगीतों का उछेख है निक सब में" तो इतनेमात्र से अथर्बगीतों के बिषय में कुछ भी नहीं सिद्ध हो सकता क्योंकि यह कीन बैदिक कहता है कि 'सब ब्राह्मणखण्डों में अथर्बगीतों का उछेख है कि जिसके खण्डन के लिये साहेब का यह परिश्रम है। तस्मात अथर्बगीतों की रचना के काल का अनुमान जो उक्त साहेब ने किया है सो खेल ही खल है। सल तो यह है कि समय २ में बैदिक सम्प्रदाय के प्रचार का हास और वृद्धि के अनुसार उक्त साहेब को बेद के खण्डों में प्राचीनल और नवीनल का भ्रम हो गया।

पृष्ठ १५ प० १४ से, पृ० २० प० १६ तक जो उक्त साहेब ने ब्राह्मणभागों की बहुत प्रशंसा कर उनकी रोतियों का बर्णन किया है उसमें मुझे कहना नहीं है। और उनकी रचना-समय के बिषय में जो कुछ संभावना (अटकल) उक्त साहेब ने दिखलाया है वह तो अनन्तरोक्त ही युक्तियों से चूर्णीभूत हो गया। तैया उक्त पंक्ति के आगे जो सूत्रों के बिषय में उक्त साहेब ने

पत्युक्तमित्यलं पुनस्तदुपन्यासेन ।

सूत्राणां तु बेदत्वमेवनास्तीति तद्विषये बाह्योक्तेर्नेदानीं निराकरणावसर इति बोध्यम्। यतु तेनैव, अथ बदानां विषये पृथग्बिचार इत्युवक्रम्य ऋग्वेदबिषये, उपाख्यानानां ब्राह्मणभागनिबद्धानां वाच्यार्थमात्रमनुसृत्य पौराणिकतत्ततुपाख्यानमालोच्य तयोर्योजनया अमुकोऽमुकस्य सम्बन्धी अमुकसमयेऽभूदित्यादिकं महता ग्रन्थेन प्रपश्चितम् तत्तु पूर्वतर-मत्रवग्रन्थे प्रतिपादितस्यार्थवादाधिकरणस्यापरिचयाद्गगनमुष्टिग्रहायमाणमेव । नहार्थवाद-भूताभ्योबैदिकीभ्य आख्यायिकाभ्यः स्तुतिनिन्दे बिहाय किंचिदन्यदिष वृत्तान्तादिकं लब्धं श्वक्यते इति पूर्वे प्रतिपादितत्वात् पौराणिकानामैतिहासिकानां चोपाख्यानानां तत्त्वंतु पुराणे. तिहासप्रमाण्यनिरूपणावसरे बर्णयिष्यते ।

सामबेद बिषये बिचार्यते इति प्रतिज्ञाय तु तेन तद्रीत्यादिकमेवोक्तमतस्तत्र किमालोचनीयम्। यद्पि तेनैव, शुक्कयजुर्वेदमुपक्रम्य कचित्सप्रमाणकमिव किंचिदुत्मेक्षितं तदुपन्यस्यते । मायस्तु बैदिकीराख्यायिका एवाश्रित्यास्मिन् प्रकरणे सकला एवोत्पेक्षाः, 'अत्र

रुद्राध्यायः पश्चाद्रचयित्व।योजित'इति । 'प्रायो वदिकशास्त्रप्रन्थानामत्यन्तमेव लोपोऽभूदिति महान् खेद इति च !। तत्रोच्यते, रुद्रा-ध्यायविषयातावदुत्मेक्षा द्वेषाभिनिवेशमूलिकैव, वेदे रुद्राध्यायस्या-

कहा है उसपर इस समय बिचार करने का अवसर नहीं है क्योंकि बेदबिषयक ही बिचार का यह प्रकरण है।

पृ० ४३ पं० १९ से, पृ० ७६ पं० ८ तक, उक्त साहेब ने ब्राह्मणभागों में बर्तमान, ऋग्बेद्बिषयक आख्यायिकाओं का तात्पर्यार्थ छोड़कर वाक्यार्थ के अनुसार उनको पौराणिक खपाल्यानों के साथ योजित किया और उस से यह निकाला कि अमुक का सम्बन्धी अमुक, अमुक समय में हुआ इत्यादि । इसपर हमको इस समय इतना ही कहना है कि पूर्वहीं बेददुर्गसज्जन में जो अर्थवादाधिकरण का बर्णन किया गया है, उक्त साहेब उस से परिचित न थे क्योंकि उसमें स्पष्टरूप से यह सिद्धान्त किया गया है कि विधेय और निषेध्य की स्तुति और निन्दा से अति।रिक्त किसी वृत्तान्त आदि अर्थ में बैदिक आख्यायिकाओं का तात्पर्य नहीं होता, वहां की युक्तियों का यहां पुन: छिखना प्रन्थ विस्तार का कारण होगा इस से जिस महाशय का दखना हो व उसी. प्रकरण में देख छें। पौराणिक और ऐतिहासिक उपाख्यानों का तत्त्व तो आगे चलकर पुराण के प्रकरण में दिखलाया जायगा।

इस ७६ पृष्ठ से उत्पर पृष्ठ १६२ तक उक्त साहेब ने कोई प्रामाणिक सी और अति बिरुद्ध बात नहीं छिखी है कि उसपर कुछ बिचार की अवशस्यकता हो। पृ० १६२ पं० १७ से, पृ० १८४ पं० ६ तक शुक्रयजु संदिता के विषय में उक्त साहेब ने जो कुछ वर्णन किया है वह सर्व प्राय: बैदिक आख्यायिकाओं के आश्रय से संभावनामात्र ही है। केवल एक नवीन बार्ती उसमें यह कही है कि "अध्याय १६ जिसमें नमस्ते आदि ६६ मन्त्र हैं और जिसे रुट्राध्याय कहते हैं

वह, शुक्रुयजुसंहिता में पश्चात् कल्पित कर मिलादिया गया है "

इसपर कथनीय यह है कि यजुर्मन्त्रसंहिता जिसकी संकलित है - उन्हों ने अर्थात् कृष्ण-द्वैपायनब्यास ने अर्जुन के ही प्रति महाभारत में अपने मुख से यह कहा है कि शतक्रिय अर्थात नादित्वात् । अतएव 'साऽस्यदेवते' त्यर्थे 'शतरुद्राद्घँश्वे' ति वार्तिकेन भगवान् कात्यायनो-रुद्राध्यायवाचिनः शतरुद्रियशब्दस्य साधिमानं सस्मार । रुद्रमहादेवादिशब्दाश्च श्री १००८ परमेश्वरवाचिनएव । सर्वचैतत् अर्जुनं प्रति भगवता कृष्णद्वैपायनेन ब्यासेन सप्रपंचम्रुपव-णितम् महाभारते द्रोणपर्वाण नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि शतरुद्रिये २०३ अध्याये । तद्यथा ।

धराष्ट्र उ॰ तस्मिन्नतिरथे द्रोणे निहते पार्षतेन वै ।

मामकाः पाण्डवाश्चेव किमकुर्वस्ततः परम् ॥ १ ॥
संजय उ० तस्मिन्नतिरथे द्राणे निहते पार्षतेन वै ।

कौरवेषु च भग्नेषु कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ २ ॥

अत्र भारतभावदीपः। तदेवं विष्णोः शिवमयत्वं ब्याख्याय विष्णुत्राणात्तन्मयस्य जगत-स्त्राणमपि शैवमेवकर्मेत्युक्तम् । तस्मिनित्यत आरभ्य पर्वसमाप्तिपर्यन्तस्य ग्रन्थस्य तात्पर्य-मपि भूभारावतारहेतुरपि शिवएवेति ।

हष्ट्वा सुमहदाश्चर्यमात्मनो विजयावहम्। यहच्छयाऽऽगतं व्यासं पप्रच्छ भरतर्षभ ॥ ३ ॥ अर्जुन उ० संग्रामे न्यहनं शत्रून् शराधैविंमळैरहम्।

रुद्राध्याय, बेद में है। और रुद्र, महादेव, आदि शब्द परमेश्वर के वाचक हैं इस्थादि। तथा 'शत-रुद्रिय' यह नाम भी अनादि है क्योंकि इस नाम के साधुलार्थ कात्यायनमहार्ष ने एक बार्तिक-वाक्य ही निर्मित किया है कि 'शतरुद्राद्धश्च' (शतरुद्र शब्द से घन और छ प्रत्यय हों अर्थात् शतरुद्रियम् और शतरुद्रीयम् दो रूप होते हैं) इस से भी यह सिद्ध होता है कि यजुर्वेद में रुद्रा ध्याय का पाठ अनादि है। और उस भारतभाग को, केवल उक्त साहेब के लण्डनार्थ ही नहीं, किंतु पाठ, श्रवण और अर्थवोध के द्वारा जगत् के सब प्रकार मंगल के लिये इस अवसर पर दिखाना अत्यावश्यक है क्योंकि श्रीत (बदिक) शतरुद्रिय ही के मूल से यह स्मार्त (स्मृति का) शतरुद्रिय कृष्णद्वेपायन ब्यास ने अर्जुन से कहा है जो यह है। महाभारत द्रोणपर्व में नारायणास्त्र-मोक्षपर्व के शतरुद्रिय नामक स्तान्न का अन्तिम अर्थात् द्रोणपर्व का २०३ अध्याय, भारतभावदीप नामक टीका सहित—

धृतराष्ट्र — हे संजय ! जब वह अतिरथ (महारथीं को बिजय करनेवाले) द्रोणाचार्य, पार्षत (धृष्टधुम्न) के हाथ से निहत हुए उसके अनन्तर मेरे कौरवीं और पाण्डवीं ने क्या किया।।१॥

संजय — हे भरतर्षभ ! (भरतबंदा के प्रधान अर्थात् धृतराष्ट्र) द्रोणाचार्य के निहत होने और कौरवों के परांजित होने के अनन्तर, कुन्ती के पुत्र धनंजय (अर्जुन) ने अपने बिजय का कारण, एक अति आश्चर्य देख कर अकस्मात् आए हुए ब्यास कृष्णद्वेपायन से पृष्ठा।

भा. भा. दी.-इस अध्याय से पूर्व प्रबन्ध में यह कहा गया है कि विष्णु, शिवमय हैं और विष्णु को रक्षित करने के द्वारा बिष्णुमय जगत् की रक्षा करना भी शिवजी ही का काम है। अब इस संपूर्ण अध्याय का यह पिण्डित तात्पर्य है कि पृथ्वी के भार उतारने में भी प्रधान कारण शिवजी ही हैं।। २।। ३।।

अग्रतो लक्षये यान्तं पुरुषं पावकप्रभम् ॥ ४ ॥
ज्वलन्तं सूलमुद्यम्य यां दिशं प्रतिपद्यते ।
तस्यां दिशि विशीर्यन्ते शत्रवो मे महामुने ॥ ५ ॥
तेन भग्नानि सैन्यानि पृष्टतोऽनुतुदाम्यहम् ॥ ६ ॥
भगवँस्तम्ममाचक्ष्व को वे स पुरुषोत्तमः ।
श्रूलपाणिर्मया दृष्टस्तेजसा सूर्यसिष्ठभः ॥ ७ ॥
न पद्मां स्पृश्चते सूर्मि नच शूलं विमुख्यति ।
श्रूलाच्छूलसहस्राणि निष्पेतुस्तस्य तेजसा ॥ ८ ॥
प्रजापतीनां प्रथमं तेजसं पुरुषं प्रभुम् ॥ ९ ॥
भूतनं भूभुवं देवं सर्वलोकेश्वरं प्रभुम् ॥ ९ ॥
ईशानं वरदं पार्थं दृष्टवानिस श्रङ्करम् ।

•यास उ०

यहच्छया-दैवेन ॥ ३ ॥

न्यहनंशत्रुनित्यत्रनिद्यतःशत्रुनितिपाठे शरीघैः शत्रुशिद्यतोममाग्रतोयान्तं पुरुषमहं लक्षये इत्यन्वयः ॥ ४ ॥

मजानां सर्गस्थित्यन्तकर्तृत्वेन पतीनां ब्रह्मविष्णुद्राणां प्रथयितारं कारण-

मित्यर्थः तैज मं स्वार्थेति दितः चिन्मात्ररूपं पुरुषं सर्वपूर्षे शरीरगुहासु शयानम् अतएव प्रश्नमन्तर्यामित्वेन शास्तारं भुवनं घौः भूः पृथिवी भुवमन्तरिक्षम् त्रैलोक्यशरीर-मित्यर्थः देवं द्यातमानं सर्वलोकेश्वरं प्रभ्रामिति राजवद्वहिः स्थित्वा ऽपि नियमयन्तमित्यर्थः ॥९॥

ईशानम् अनन्याधिपतिम् बरदम् श्रेष्ठानपि खण्डयितारम् भ्रुवनेश्वरम् भ्रुवन

ब्यापिनम् ॥ १०॥

भ भाषा ॥

अर्जुन-जिस समय संग्राम में मैं विमल बाणों से शत्रुओं को मारता हूं उस समय अपने आगे चलते हुए अग्नि के समान एक पुरुष को देखता हूं ॥ ४ ॥

हे महामुने ! जाज्वल्यमान त्रिशुल को उठा कर वह महापुरुष जिस दिशा की ओर अपनी टाप्ट देते हैं उस दिशा में मेरे शत्रुगण छिम भिन्न हो जाया करते हैं।। ५॥

दर्शक जन, उसी पुरुष के निहत मेरे शत्रुगण को मेरे हाथ से निहत समझते हैं परंतु तत्त्व यही है कि उनके मारे हुए अपनी शत्रुसेना को प्रधात में मारता हूं।। ६॥

हे भगवन (ब्यास) यह मुझ से कहिए कि वह सूर्य के समान तेजस्वी और हाथ में त्रिशूल लिए मेरे प्रत्यक्ष कीन पुरुषोत्तम हैं जो कि न अपने चरणों से पृथ्वी को स्पर्श करते और न शूल को छोड़ते हैं किंतु उनके प्रताप से उस शूल के द्वारा सहस्रों शूल निकलते हैं।।७।।८।।

व्यास-हे पार्थ ! तुमने शङ्कर को देखा जो कि प्रजाओं की सृष्टि, स्थिति, संहार, के खामी ब्रह्मा, बिष्णु, रुद्र, इन तीनों देवताओं के मूलकारण, तैजस, (निमलज्ञानरूप) पुरुष, (सब शरीरों में व्यापक) प्रभु (अन्तर्यामी होने से सब के शासनकर्ता) भुवन, भू भुव, (यह ब्रेलेक्य जिसका शरीर है) देव (स्वत: प्रकाशमान) सर्व लोकेश्वर प्रभु (राजा के नाई पृथक् श्थित हो कर भी जगत के शासन करनेवाले) ईशान (जिसका कोई खामी नहीं है) तथा बर्ड (बड़ों के भी खण्डन करनेवाले) हैं। और तुम उन्हीं के शरण जाओ ॥ ९ ॥ १० ॥

तं गच्छ शरणं देवं वरदं श्रुवनेश्वरम् ॥ १० ॥

महादेवं महात्मानमीशानं जाटिछं शिवम् ।

न्यक्षं महाशुं रुद्रं शिखिनं चीरवाससम् ॥ ११ ॥

महादेवं हरं स्थाणुं वरदं श्रुवनेश्वरम् ।

जगत्मधानमधिकं जगत्मीतिमधीश्वरम् ॥ १२ ॥

जगद्यानिं जगद्गीजं जिन्दां जगतो गतिम् ।

विश्वात्मानं विश्वराजं विश्वपूर्तिं यशस्विनम् ॥ १३ ॥

विश्वरात्मानं विश्वराजं विश्वपूर्तिं यशस्विनम् ॥ १३ ॥

विश्वरां विश्वनरं कर्मणामीश्वरं प्रशुम् ।

श्वम्श्रं स्वयंश्रं भूतेशं भूतभव्यभवोद्धवम् ॥ १४ ॥

योगं योगेश्वरं सर्वं सर्वछोकेश्वरेश्वरम् ।

सर्वश्रेष्ठं जगच्छेष्ठं वरिष्ठं परमेष्ठिनम् ॥ १५ ॥

छोकत्रयविधातारमेकं छोकत्रयाश्रयम् ।

सुदुर्जयं जगन्नायं जन्ममृत्युजरातिगम् ॥ १६ ॥

इानात्मानं ज्ञानगम्यं ज्ञानश्रेष्ठं सुदुर्विदम् ।

दातारं चैव मक्तानां प्रसादविदितान् वरान् ॥ १७ ॥

जिटलंशिकिनमिति रूपभेदाभिप्रायेण विशेषणद्वयं योज्यम् ॥ ११ ॥ जगत्रीतिम् जगदानन्दकरम् अधीश्वरम् ईश्वरादप्यधिकं निरुपाधिचिन्मात्रमित्यर्थः १२ जगद्योनिं जगद्वीजमिति जगर्तां मातापितृरूपम् ॥ १३ ॥

बिश्वनरम् बिश्वस्य नेतारम् भूतस्य भव्यस्य भवस्य वर्तमानस्य चोद्धवम् ॥ १४ ॥ योगम् कर्मयोगादिरूपम् योगेश्वरम् योगिनामीशम् योगानां फलपदं वा सर्वे सर्वात्मकम् ॥ १५ ॥

सुद्धुर्नेयम् अत्यन्तं दुष्पापमनिषकारिभिः॥ १७॥

जो महादेव, महात्मा, ईशान, ज्यक्ष, रुद्र कहलाते हैं और जिनकी भुजा बड़ी है तथा कभी शिखाबाल और कभी जटावाले हैं।। ११॥

तथा जो जगत् के प्रधान, जगत् के आनम्ददाता और ईश्वरों (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र), से

तथा जो जगत के मूळ (योनि और बीज अर्थात् माता पिता दोनों) महाबिजयी, जगत्रूपी और जगत् की गति हैं।। १३॥

तथा विश्वेश्वर, बिश्व के नेता, और भूत भविष्य, बर्तमान सब पदार्थों के उत्पत्ति-

तथा जो कर्मयोगस्त्री, योगियों के स्वामी, सर्वात्मक' सर्वछोकेश्वरों के ईश्वर और सब से श्रेष्ट हैं ॥ १५॥

तथा तीन लोकों के अधार, और विधान के कती, धनिधकारियों की दुर्लम, जन्म मृत्यु जरा से रहित, और जगत् के स्वामी हैं।। १६।।

तथा ज्ञानरूपी, तत्त्वज्ञान से प्राप्य, शुद्धनैतन्यरूपी होतेसे आति उत्तम, विषय न

तस्य पारिषदा दिव्या रूपैर्नानाविषेविभोः। ्बामना जटिला मुण्डा ह्रस्वग्रीवा महोदराः ॥१८॥ महाकाया महोत्साहा महाकर्णास्तथापरे। आननैर्विकृतैः पादैः पार्थ बेर्गश्य बैकृतैः ॥ १९॥ इंट्रेंगेः स महादेवः पूज्यमानो महेश्वरः । स शिवस्तात तेजस्वी प्रसादाद्याति तेऽग्रतः ॥ २०॥ तस्मिन् घोरे सदा पार्थ संग्रामे लोमहर्षणे। द्रोणकर्णकृपैर्गुप्तां महेष्वासैः महारिभिः ॥ २१ ॥ कस्तां सेनां तदा पार्थ मनसाऽपि प्रधर्षयेत्। ऋते देवान्महेप्वासाद्वहुरूपान्महेश्वरात् ॥ २२ ॥ स्थातुम्रत्सहते कश्चित्र तस्मित्रग्रतःस्थिते । नहि भूतं समं तेन त्रिषु छोकेषु विद्यते ॥ २३ ॥ गन्धेनापि हि संग्रामे तस्य ऋदस्य शत्रवः। बिसंज्ञा इतभायिष्ठा बेपान्ति च पतन्ति च ॥ २४ ॥ तसौ नमस्तु कुर्वन्तो देवास्तिष्ठन्ति वै दिवि। ये चान्ये मानवा छोके ये च स्वर्गजितो नराः ॥ ३५ ॥

ज्ञानात्मानं ज्ञानस्वरूपं ज्ञानगम्यं परिवद्याप्राप्यम् ज्ञानश्रेष्ठं चिन्मात्ररूपत्वेनैव प्रशास्यतमम् अतएव सुदुर्विदम् अविषयत्वाद्द्रीयम् ॥ १८ ॥

पारिषदा गणाः ॥ १९ ॥ प्रधर्षयेत् अभिभवेत् ॥ २३ ॥ भक्ताः भजन्त इति भक्ताः ॥ २६ ॥

॥ भाषा ॥

होने से दुईंय, और अपने भक्तों को प्रसन्न हो कर अनेक बरों के देनेवाले हैं।। १७॥

बामन, जिटल, मुण्डित महाशरीर, बड़े उत्साही, बड़े कर्णवाल, दिव्य अनेकरूपधारी विचित्र मुख और बेष वाले, छोटी प्रीवा, और बड़े उदर, इत्यादि अनेक बिचित्रता से संयुक्त, उन प्रमुक्त गण और पूजक हैं। हे तात ! वह तेजस्ती श्री शिवजी प्रसन्न हो कर तुम्हारे अगाड़ी चलते हैं—॥ १८॥ १९॥ २०॥

क्योंकि उस अति भयंकर रोमांचकारी संप्राम में, युद्ध में अति कुशल दोण, कर्ण और कृप से सुरक्षित उस सेना को, उन अनेकरूपी महेश्वर से अन्य कीन ऐसा (जीव) है कि जो मन से भी धर्षण (पराजय) कर सके ॥ २१ ॥ २२ ॥

और उन महेश्वर के आगे कोई युद्ध करने की इच्छा से श्वित होने का उत्साह भी

नहीं कर सकता क्योंकि कोई चेतन उनके समान नहीं है।। २३।।

भूमिपतित हो जाते हैं ॥ २४ ।

जन्हीं महेश्वर की नमस्कार करते, हुए देवतालाग-खर्ग में और खर्गिवजयी मनुष्य आदि भी अन्यान्य लोकों में स्थित हैं ॥ २५ ॥

ये भक्ता बरदं देवं शिवं रुद्रमुमापतिम्। इह लोके सुंख पाप्य ते यान्ति परमाक्षतिम् ॥ २६ ॥ नमस्कुरुष्व कौन्तय तस्मै शान्ताय वै सदा। रुद्राय शितिकण्ठाय कनिष्ठाय सुवर्चसे ॥ २७॥ कपर्दिने करालाय हर्यक्षबरदायच। याम्यायाब्यक्तकेशाय सद्वते शंकराय च ॥ २८॥ काम्याय हरिनेत्राय स्थाणवे पुरुषाय च। हरिकेशाय मुण्डाय कृशायोत्तारणाय च ॥ २९ ॥ भास्कराय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे। वहुरूपाय सर्वाय प्रियाय प्रियवाससे ॥ ३० ॥ उष्णीषिणे सुवक्ताय सहस्राक्षाय मीहुषे। गिरिशाय सुशान्ताय पतये चीरवाससे ॥ ३१ ॥ हिरण्यबाहबे राजञ्जुग्राय पतये दिशाम्। पर्जन्यपतये चैव भूतानां पतये नमः ॥ ३२ ॥ बृक्षाणां पतये चैव गवां च पतयेनमः । बुक्षैरावृतकायाय सेनान्ये मध्यमाय च ॥ ३३ ॥

नमस्करणं प्रह्वीभावस्तंकुरुष्व शितिकण्ठाय नीलग्रीवाय कनिष्ठाय सुक्ष्मायेति प्राञ्चः

कनीदीसौ दीप्ततमाय ॥ २७ ॥

हर्यक्षःपिङ्गाक्षः कुवेरः याम्याय यामकत्त्रं कालाय अव्यक्तकेशाय अव्यक्तं माया-शवलं केशवद्रिममात्रम् यस्य । सद्धत्तेभक्ते शंकराय सुखकराय ॥ २८ ॥

मुण्डाय यजमानमूर्तित्वात् कृशाय तपोनिष्ठत्वात् उत्तारणाय संसारादितिशेषः ॥२९॥

रंहसे बेगवते ॥ ३० ॥

सर्वे अयाः शुभावहाविधयः प्रिया यस्य तस्मै सर्वायप्रियाय प्रियवाससे सोमाय वाससः सोमदेवत्यत्वात् उष्णीषिणे शिरोवेष्टनवते मीहुषे दृष्टिकत्त्रे गिरिशाय पर्वतशायिने

॥ भाषा॥ और जो छोग उमापति शिवदेव के भक्त हैं वे इस छोक में सुख भोगकर अन्त में

परम गति को प्राप्त होते हैं।। २६॥

हे कौन्तेय ! उन शान्तरूपी रुद्र को सदा नमस्कार किया करो जो शितिकण्ठ (नील-प्रीव) किन्छ (तेजस्वी) कपर्दी, (जटाधारी) कराल (पापियों के लिय भयङ्कर) हर्यक्षवरद, (कुवेर के बरदाता) याम्य, (प्रहर्गविभाग के कर्ता) अन्यक्तकेश, (माया जिसके केश के तुल्य है। भक्त के शङ्कर (कल्याणकारी) काम्य, (कामों के पूर्ण करनेवाले) हरिनेत्र (सूर्य जिसके नेत्र हैं) स्थाणु (निर्विकार) पुरुष, हरिकेश, (कालकेशवाले) मुण्ड, (मुण्डित अर्थात् यजमानरूपी) कुश (तपस्वी) उत्तारण (संसार के पार उत्तारनेवाले) भास्कर (सूर्यक्ष्पी) सुतीर्थ, (पूजित स्थान) देवदेव, (देवताओं के भी देवता) रहम्। (बेगवाले) बहुकूप, सर्वायप्रिय, (सब धर्म जिसके प्रिय हैं) प्रियवासाः, (वस्न के देवता चन्द्रमा जिसके प्रिय हैं) उद्याषी, (प्राडीवाले) मीदुष, (ब्रष्टिके कता)

सुवहस्ताय देवाय धन्विन भागेवाय च । बहुरूपाय विश्वस्य पतये ग्रुंजवाससे ॥ ३४ ॥ सहस्रशिरसे चैव सहस्रनयनाय च ॥ ३५ ॥ सहस्रबाहवे चैव सहस्रचरणाय च ॥ ३५ ॥ शरणं गच्छ कौन्तेय वरदं भुवनेश्वरम् । उपापति बिरूपाक्षं दक्षयज्ञनिवर्हणम् ॥ ३६ ॥ प्रजानां पतिमन्यम् भूतानां पतिमन्ययम् । कपादिनं वृषावर्तं वृषनामं वृषध्वजम् ॥ ३७ ॥ वृषद्पं वृषपति वृषपृकं वृषपमम् । वृषाङ्कं वृषमोदारं वृषमं वृषमेक्षणम् ॥ ३८ ॥

चीरं बल्कलम् ॥ ३१ ॥

हिरण्यबाहवे सुवर्णालंकृतभुनाय ॥ ३२ ॥

रक्षेत्रधनयोग्यदेहैं रावृतकायाय आच्छादितस्वरूपाय मध्यमाय अन्तयामणे ॥३॥ स्वहस्ताय अध्वर्यवेभार्गवाय रामाय । मुंजोबल्कलं तृणतन्तवो बा तन्मयवाससे ॥ ३४॥

अन्यग्रम् अनाकुलम् कपिदिनं जटाज्रद्वन्तम् वृषावर्तं वृषाणां श्रेष्ठानां ब्रह्मादीनामावर्तायतारम् तानिष श्रमयन्तं माययेत्यथः वृषनामम् सर्वलोकाश्रयत्वेन प्रशस्ततमगर्भम्
वृषध्वजम् नान्दिवाहनम् वृषद्पम् वृषः समर्थञ्जलोक्यसंहारक्षमोदपेऽहंकारोयस्य तम् वृषस्यधमस्य पितं तत्फलपदातृत्वेन वृषोधमेष्व परापरक्षपोविश्ववपुषः शृङ्कभूतज्ञतरोयस्य तम्
अत्तप्व वृषषभम् वृषाणांफलविणामिन्द्रादीनामृषभंश्रष्ठम् वृषोवलीवदेऽके ध्वजेयस्यतं
वृषांकम् वृषमादारं वृषभेषु धर्मेणभासमानेषु उदारं बहुफलपदं अत्तप्व वृषभं वृषेणधर्मेण
निमित्तेन भानं साक्षात्कारोयस्य तं वृषभं योगधर्मैकगम्यं वृषभेक्षणम् स्पष्टार्थम् ॥ ३८॥

गिरिश, (पर्वतपर शयन करनेवाले) सहस्राक्ष, चीरवासा, (बल्कलधारी) हिरण्यबाहु, (सुवर्ण से मूचित बाहुवाले) दिशाओं के पति, मेघमाला के पति, सब प्राणियों के स्वामी हैं।। २७॥ ।। २८॥ २८॥ ३०॥ ३०॥ ३१॥ ३२॥

वृक्षों के पति को नमस्कार, गौओं के पति को नल, लोक के अनित्य शरीरों से जिसका

स्वरूप आच्छादित है उसको न०, अन्तर्यामी को न०, सेनानी, (सेनापति) को न० ॥ ३३॥

सुवहस्त अर्थात् अध्वर्यु नामक ऋग्वेदी ऋतिजरूपी देव को न०, धन्वी (धनु छिए) देव को न०, मार्गव (परशुरामरूपधारी) अनन्तरूपी देव को न०, संसार के खामी देव को न०, सुजमयवस्त्रधारी देव को न०,सहस्रीशर,सहस्रोनत्र,सहस्रवाहु और सहस्रपाद देव को न०। ३४॥ ३५॥

हे कीन्तय! (अर्जुन) उन मुंबनेश्वर, बरद, बिरुपाक्ष, (तीन आंखवाले) उमापति, दक्षप्रजापित के यहाहन्ता, प्रजाओं के पित, अब्यम, (शान्त) प्राणियों के पित और निर्विकार देव के शरण जावो जोकि कपदी, (जटाजूट्यारी) बुषावर्त, बुष अर्थात् ब्रह्मा आदि शेष देवीं की भी अपनी माया सं जनमगरणरूपी संसार में प्रमण करानेवाले बृषनाभ (सब लोकों के आध्रय होने से प्रशंसनीय) बृषध्वज, (नन्दीश्वर पर चढ़नेवाले) बृषद्प, (त्रेलोक्य के संहार में समर्थ उत्साह वाले) बृषपति, (धमके फलदाता) वृषश्वन (प्रवृत्तिह्म और निवृत्तिह्मप दोनों वर्ष जिस

वृषायुपं वृषशरं वृषश्नतं सहेश्वरम् ।

महोदरं महाकायं द्वीपिचर्मानिवासिनम् ॥ ३९ ॥
लोकेशं वरदं सुण्डं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणियम् ।
क्रिश्चलपाणं वरदं खड्गचर्मधरं प्रश्चम् ॥४०॥
पिनाकिनं खण्डपरश्चं लोकानांपितमीश्वरम् ।
प्रपद्ये दवमीश्वानं शरण्यं चीरवाससम् ॥ ४१॥
नमस्तस्य सुरेशाय यस्य वैश्ववणःसखा ।
सुवाससे नमो नित्यं सुब्रताय सुधन्विने ॥ ४२ ॥
धनुर्धराय देवाय प्रियधन्वाय धन्विने ।
धन्वन्तराय धनुषे धन्वाचार्याय ते नमः ॥ ४३ ॥
उग्रायुधाय देवाय नमः सुखकरायच ।
नमोऽस्तु बहुरूपाय नमस्त बहुधन्विने ॥ ४४ ॥
नमोऽस्तु स्थाणवे नित्यं नमस्तस्य सुधन्विने ॥ विश्व ॥
नमोऽस्तु स्थाणवे नित्यं नमस्तस्य सुधन्विने ॥
नमोऽस्तु त्रिपुरद्वाय भग्नद्वाय च वे नमः ॥ ४५ ॥
नमोऽस्तु त्रिपुरद्वाय भग्नद्वाय च वे नमः ॥ ४५ ॥

बृषायुधं श्रेष्ठमहरणम् बृषोविष्णुःशरो यस्य तं बृषशरम्। बृषभूतं धर्मैकवपुषम् महत् अनेककोटिब्रह्मण्डाश्रयभूतम्रदरं यस्य तं महोदरम् महाकायम् त्रेलोक्यशरीरम् द्वीपिचर्म-विवासिनम् व्याघ्रचर्मणा नितरां छादितम् ॥ ३९॥

खड्गधरं खड्मात्रधरम् ॥ ४०॥

सुधन्विने शोभनाधन्विनोधनुर्धराः पार्षदा अस्य सन्ति तसं स्वयमपि धनुर्धराय अतएव नियधन्वाय धन्व धनुः नेरकत्वेनस्यास्तीतितसौ बाणाय धन्वन्तराय धनुषि अन्तरे मध्येऽस्तीति धन्वन्तरं मोबी तद्र्पाय सन्धिराषः धनुषे धनुः स्वरूपाय धन्वाचार्याय धनुर्वेदगुरवे ॥ ४३ ॥

भगन्नाय भगनेत्रभिदे ॥ ४५॥

भ भाषा॥
के शक्तवत् अर्थात् ऊंचे हैं। और वृषर्भ, (वृष अर्थात् यज्ञफलों की वृष्टि करनेवाले जो इन्द्रादि
देव हैं उनसे भी बड़े) हैं।। ३६॥ ३७॥ ३८॥ ३९॥

भौर जो बृषाङ्क, (जिसके ध्वज में बृषम का आकार है) बृषमोदार, (बृषम अर्थात् धर्मात्माओं के छिए छदार अर्थात् पूर्णफछदाता). बृषम (बृष अर्थात् धर्म सं जिनका दर्शन होता है अर्थात् योगधर्मही से गम्य बृषमक्षण, (जिनके नेत्र बड़े २ हैं बृषायुध, (श्रेष्ठ आयुधवाछे) बृषशर (त्रिपुर युद्ध में बृष अर्थात् विष्णु जिसके बाणक्षपी हुए) बृषभूत, (धर्मक्षी) महेश्वर, (सबसे बड़ा खामी) महोदर, (जिनके पेट में अनेक कोटि ब्रह्माण्ड रहते हैं) महाकाय, (विराट-रूप) बाघंबर ओढ़े, छोक के खामी, ब्राह्मणों के प्रिय, खड़, चर्म, त्रिशूछ, पिनाक नामक धनु, परश्च, छिए और छोकों के परमेश्वर हैं में उनके शरण जाता हूं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

खेतर जिनके सिन्न हैं उन देवदेव को नमस्कार, अच्छे वस्रवाले को न०, जिनके गण भनुषभारी हैं इनको न०, बाणक्ष्पी देव को न०, धनुधारण करनेवाले को न०, धनुकी प्रस्था।

बनस्पतीनां पतये नराणां पतये नमः। मातृणां पतये चैव गणानाम्पतये नमः ॥ ४६ ॥ गवांच पतये नित्यं यज्ञानांपतये नमः। अपांच पतये नित्यं देवानां पतये नमः ॥ ४७ ॥ पूष्णोदन्तविनाशाय त्र्यक्षाय बरदाय च । इराय नीलकण्ठाय स्वर्णकेशाय वै नमः ॥ ४८॥ कर्माणि यानि दिव्यानि महादेवस्य धीमतः। तानि ते कीर्तायेष्यामि यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम् ॥ ४९ ॥ न सुरा नासुरा लोके न गन्धर्वा न राक्षसाः। सुखमेधन्ति कुपिते तस्मिन्नाप गुहागताः ॥ ५०॥ दक्षस्य यजमानस्य बिधिवत्संभृतं पुरा। विच्याध कुपितो यज्ञं निर्दयस्त्वभवत्तदा ॥ ५१ ॥ धनुषा बाणमुतसूज्य सघोषं बिननाद् च । ते न शर्मकृतः शान्ति लेभिरे सा सुरास्तदा ॥५२॥ बिद्रते सहसा यज्ञे क्रिपते च महेश्वरे । तेन ज्यातलघोषेण सर्वे देवाः समाक्रलाः ॥ ५३ ॥ बभूबुर्वश्रगाःपार्थे निपेतुश्च सुरासुराः। आपश्चुक्षुभिरे सर्वाश्रकम्पे च वसुन्धरा ॥ ५४ ॥

गुहागताः पातालगताः अपीत्यर्थः ॥ ५० ॥ न सुखमधन्तीत्युक्तं तदेवाह दक्षस्येत्यादिना ॥ ५१ ॥

(तन्त्री) ह्रपी देव को न०, धनुरूपी देव को न०, धनुर्वेद के गुरुह्मपी देव को न०, अनेक धनुवाले को न०, स्थाणु (सदानिर्धिकार को न०, त्रिपुर के हन्ता को न०, भग नामक देव के नेत्रहारी को न०, ब्रक्षों के पित को न०, मनुष्यों के पित को न०, माताओं के पित को न०, गौओं के पित को न०, गौओं के पित को न०, यहाँ के पित को नित्य, न०, जलों के पित को नित्य, न०, देवताओं के पित को न०, पूषा के दन्त तोड़नेवाल को न०, त्रिलोचन को न०, हर को न०, नीलकण्ड को न०, सुवर्णकेश को न० । ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४० ॥ ४८ ॥

अनुसार में तुमसे कहता हूं ॥ ४९॥

सुख नहीं पाते ॥ ५० ॥

एक समय, दक्षप्रजापित के सकलसामगी से पूर्ण यहा की शिवजी ने कृपित हो कर मारा, धनु से बाण छोड़ा और गर्जे भी जिससे कि सब देवता अधीर हो गए एकाएकी परमिश्चर की कीए और उससे यहा का बिध्वंस हो गया तथा उक्त शब्द से देवता और देख आकुल ब्याकुल हो कर गिरपह समुद्रों में प्रलयकाल के समान लहरें उठने लगीं प्रथवी कांपने लगी पर्वतप्रण दूटने पर्वताश्र व्यशीर्यनत दिशोनागाश्र मोहिताः। अन्धेन तपसा लोका न प्राकाशन्त संबृताः ॥५५॥ जिव्रवान् सह सूर्येण सर्वेषां ज्योतिषां प्रभाः। चुक्षु अभयभीताश्र शान्ति श्रक्रस्तयैव च ॥ ५६ ॥ ऋषयःसबभूतानामात्मनश्च सुखैषिणः। पूषाणमभ्यद्रवंत शंकरः महसन्निव ॥ ५७ ॥ पुरोडार्शं भक्षयतो दशनान्त्रे व्यशातयत्। ततो निश्वक्रमुर्देवा बेपमाना नताःसा तम् ॥ ५८ ॥ पुनश्च संद्धे दीप्तान् देवानां निशितान् शरान्। सधूमान् सस्फुलिङ्गांश्र बिद्युत्तोयदसन्निभान्।। ५९॥ तं दृष्टा तु सुराः सर्वे प्रणिपत्य महेश्वरम्। रुद्रस्य यज्ञभागश्च बिशिष्टं तेऽन्वकल्पयन् ॥ ६०॥ भयेन त्रिदशा राजन् शरणं च प्रपेदिरे। तेन चैवातिकोपेन स यज्ञः संधितस्तदा ॥ ६१ ॥ भग्नाथापि सुरा आसन् भीताथाद्यापि तं पति। असुराणां पुराण्यासँ स्त्रीणि बीर्यवतां दिवि ॥ ६२ ॥

तमसासंबृता न प्राकाशन्त न प्राज्ञायन्त ॥ ५५ ॥ चक्रऋषय इति सम्बन्धः ॥ ५६ ॥

वृषाणं पूषणम् ॥ ५७॥

नतालीनाःसन्तो निश्च ऋगुर्यज्ञदेशादपक्रान्ताः देवानां लीनानामपित्रधायेति शेषः तं शरान् मुश्चन्तमितिशेषः ॥ ५८ ॥

अतिकोपेन अतिकान्तकोपेन शान्तेर्नत्यर्थः ततः प्रभृति पूर्व भगाः सन्तोऽद्यापिभीताः

सन्तीत्यर्थः ॥ ६१ ॥

॥ भाषा॥
लगे पृथ्वी के नीचे जो दिशागज हैं वे मूर्छित हो गये सब लोक घन अन्धकार से आच्छादित हो
गए सूर्य चन्द्रमा तारा आदि की प्रभाएं नष्ट हो गई और ऋषि लोग भयभीत हो कर जगत् के
कल्याणार्थ शान्तिपाठ करने लगे ॥ ५१॥ ५२॥ ५३॥ ५४॥ ५५॥ ५६॥

शंकरजी बड़े अट्टहास के साथ पूषानामक देवता (जोिक अपना यक्कमाग मोजन करते थे) पर दोड़े और उनके दाँतों को तोड़ दिया उसके अनन्तर अन्य देवता लोग कम्पित हो यक्क-शाला से निकलकर, धूम आर बिस्फुलिक्न उगलते हुए, बिजुली से संयुक्त मेघ के समान, बाणों को धनु में संधान करते हुए शिवजी के चरणों पर शरण २ पुकारते गिर पड़े तथा यक्न में सबसे अधिक और उत्तम शिवभाग दिया प्रधात कृपाकर शिवजी ने यक्न की पूर्ति किया और तभी से आज तक सब देवता शिवजी से भयभीत रहते हैं॥ ५७॥ ५८॥ ५८॥ ६०॥ ६१॥

आकाश में दैत्यबीरों के तीन पुर थे। कमलाक्ष दैत्य का सुवर्णमय, तास्काक्ष का रजतमय और बिद्युन्माली का लोहमय, पुर था। जिन पुरों को सब अख शख और प्रत्येक उपायों

आयसं राजतं चैव सौवर्ण परमं महत्। सौबर्ण कमलाक्षस्य तारकाक्षस्य राजतम् ॥ ६३ ॥ तृतीयन्तु पुरं तेषां विद्युन्मालिन आयसम्। न शक्तस्तानि मघवान्भे चुं सर्वायुधैरिप ॥ ६४ ॥ अथ सर्वे सुरा रुद्रं जग्मः शरणमर्दिताः। ते तमुचुर्महात्मानं सर्वे देवाः सवासवाः ॥ ६५ ॥ ब्रह्मदत्तवराह्येते घोरास्त्रिपुरवासिनः। पीडयन्त्यधिकं लोकं यसात्ते बरदर्पिताः ॥ ६६ ॥ त्वदृते देवदेवेश नान्यः शक्तः कथंचन । इन्तुं दैत्यान्महादेव जिह ताँस्त्वं सुरद्विषः ॥ ६७ ॥ रुद्र रोद्रा भविष्यन्ति पशवः सर्वकर्मसु । निपातियण्यसे चैतानसुरान् अवनेश्वर ॥ ६८ ॥ स तथोक्तस्तथेत्युत्का देवानां हितकाम्यया। गन्धमादनबिन्ध्यौचं कृत्वा बंशध्वजौ हरः ॥६९॥ पूर्ध्वीं ससारगबनां रथं कृत्वा च शंकरः। अक्षं कृत्वा तु नागेन्द्रं शेषं नाम त्रिलोचनः ॥ ७० ॥ चक्रे कृत्वा तुं चन्द्राकीं देवदेवः पिनाकधृक् । अणीकृत्यैलपुत्रं च पुष्पदन्तं च त्रयम्बकः ॥७१॥

बंशध्वजौ अल्पौ ध्वजौ पार्श्वद्वयस्थौ महाध्वजस्तु मेरुरिति वक्ष्यते ॥ ६९ ॥ अणी युगान्तबन्धौ द्वौ नागौ यूपं युगं अवनाहं त्रिबेणुयुगबन्धनरज्जुम् ॥ ७१ ॥

से इन्द्र भी तोष्ठ नहीं सकते थे तथा छन दैसों ने स्वर्गपुरी में बड़ा उपद्रव मचा रक्खा था। जल कोई उपाय नहीं चळा तब इन्द्रादि देवता, श्री रुद्रजी के शरण में गए और उनसे निवेदन किया कि हे देवेश देव महादेव ! ब्रह्मा से बर पा कर ये भयंकर त्रिपुरवासी दैस, छोगों को बहुत पीड़ा दे रहे हैं क्योंकि इनको बर का आभमान है और इनके बध करने का सामर्थ्य, आप से अन्य किसी में कदापि नहीं है तस्मात् यह प्रार्थना है कि आप इनका बध करें क्योंकि भाप त्रेछोक्य के स्वामी हैं तथा जीव जितने हैं सब पशु कहछाते हैं और आप उनके पित अर्थात् पशुपित हैं यदि आप, ऐसे २ दुष्ट पशुओं का नाश न करेंगे तो अन्य पशुओं का पाछन कैसे होगा। इस निवेदन को स्वीकार कर श्री शंकरजी ने समुद्र और बन से सहित पृथ्वी को रथ बनाया गन्धमाइन और बिन्ध्य, इन दो पर्वतों को छोटा ध्वजा बनाया, शेषनाम को अक्ष, चन्द्रमा सूर्य को चक्र, ऐछपुत्र और पुष्पदन्त नागों को शुगवन्धन, मछय पर्वत को स्तम्भ, और तक्षकनाम को उसका बन्धन, चार वेदों को धन्ध, उपवेद कथीत् आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धवेवेद, और अर्थवेद को खलीन (कड़ियाळी) तथा गायत्री और सावित्री को रिम (रास) बनाया। तात्पर्य यह है कि बेद आदि के स्वामी देवताओं ने अन्य आदि क्रमें को धारण किया।। ६२ ।। ६२ ।। ६४ ।। ६५ ।। ६६ ।। ६७ ।। ६८ ।। ६८ ।। ६८ ।। ६८ ।। ६८ ।। ६८ ।। ६८ ।। ६८ ।। ६८ ।। ६८ ।। ६८ ।। ६८ ।। ६८ ।। ६८ ।। ६८ ।। ६८ ।। ६८ ।। ६८ ।। ६८ ।।

युपं कृत्वा तु मलयमवनाहश्च तक्षकम्। योत्काङ्गामि च सत्वानि कृत्वा शर्षः प्रतापवान् ॥ ७२ ॥ बेदान्कृत्वाऽथ चतुरश्चतुरोऽश्वान्महेश्वरः । उपवेदान् खलीनांश्र कृत्वा लोकत्रयेश्वरः ॥ ७३ ॥ गायत्रीं प्रग्रहं कृत्वा सावित्रीं च महेश्वरः। कृत्वोङ्कारं प्रतोदं च ब्रह्माणं चैव सार्थिम् ॥७४॥ गाण्डीवं मन्दरं कृत्वा गुणं कृत्वा च बासुकिम्। विष्णुं शरोत्तमं कृत्वा शल्यमम्नं तथैव च।।७५॥ बायुं कृत्वाऽथ बाजाभ्यां पुञ्जे बैवस्वतं यमम् । बिद्युत्कृत्वाऽथ निश्राणं मेरुं कृत्वाऽथ बै ध्वजम् ॥७८॥ आरुह्य स रथं दिव्यं सर्बदेवमयं शिवः। त्रिपुरस्य बधार्थाय स्थाणुः पहरतां बरः ॥ ७७ ॥ असुराणामन्तकरः श्रीमानतुल्विकमः। स्तूयमानः सुरः पार्थ ऋषिभिश्व तपोधनैः ॥ ७८ ॥ स्थानं महेश्वरं कृत्वा दिव्यमप्रतिमं प्रभुः। अतिष्ठत् स्थाणुभूतः स सइस्रं परिवत्सरान् ॥७९॥ यदा त्रीणि समेतानि अन्तिरिक्षे पुराणि च। त्रिपर्बणा त्रिशस्येन तदा तानि बिभेदसः ॥८०॥ पुराणि नच तं शेकुर्दानवाः प्रतिबीक्षितुम्। शरं कालाग्निसंयुक्तं बिष्णुसोमसमायुतम् ॥८१॥

योत्क्राणि अङ्गानि चाकपादीनि सत्वानि सरीस्रपपर्वतादीनिच ॥ ७२ ॥ उपवेदान् आयुर्वेदधनुर्वेदगान्धववेदपश्चिपाम्नायान् खकीनान् 'कड़ीयास्त्री ' इतिप्रसिद्धान् गायत्रीसावित्रयौ प्रग्रहं रक्षीन् ॥ ७३ ॥

षाजाभ्यां पक्षाभ्यां पक्षयोरित्यर्थः बिद्यत्बिद्यतं निश्राणं निशितम् ॥ ७६ ॥ स्थीयतेऽसिनितियोगाद्ब्यूहम् स्थाणुरचलः ॥ ७९॥

समेतानि समसूत्रगतानि त्रिपर्वणा त्रीणि बिष्णुबायुबैवस्वताख्यानि शरपक्षपुस्वरूपाणि

अंकार (प्रणव)को प्रतोद, (कोड़ा) ब्रह्मदेव को सारथी, मन्दराचल को धृतु, बासुकिनाग को गुण, (प्रत्यश्वा) बिष्णु को बाण, अग्निदेव को शस्य, (बाण की नोक) बायुदेव को बाण का पक्ष, (पंख) यमराज को बाण का मूलभाग, और सुमेरु पर्वत को रथ का महाध्वज बनाया ।।७५।।७६।।

और सब योद्धाओं में श्रेष्ठ, असुरों के न!शकारी और अद्वितीयपराक्रमवाले श्रीशिष्ठ जी जब पूर्वोक्त सबदेवतारूपी रथपर आरूढ हुए उस समय देवताओं ऋषियों ने वेदमन्त्रों से उनकी स्तुति की ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

और अपने अद्वेत महेश्वरशक्ति को ब्यूह बनाकर एक सहस्र वर्ष पर्यन्त उसी रथपर स्थित रहे, जब उक्त तीनों आकाशगामी दैत्यपुर एक सूत्रपात में आए तब भी शिवजी ने बिच्णुदेव, बायुदेव, यमदेव, रूपी और गाईपत्य, दक्षिणाग्नि तथा आहवनीय नामक अग्निरूप तीनशस्यवाले,

पुराणि दग्धवन्तं तं देवी याता प्रवीक्षितुम् । बालमङ्कगतं कृत्वा स्वयं पश्चिशिखं पुनः ॥ ८२ ॥ उमा जिज्ञासमाना वै कोऽयमित्यब्रवीत्सुरान् । असुयतश्च शकस्य बज्जेण प्रहरिष्यतः ॥ ८३ ॥

पर्वाणि यस्य तेन त्रिश्चल्येन गाईपत्यदक्षिणाग्न्याहवनीयरूपागित्रयश्ल्येन ॥८०॥

पुराणीत्यादिसार्दः पूर्व दक्षयज्ञविध्वंसनग्रुक्तम् तस्य तात्पर्यमीश्वरेऽनर्पितो यज्ञोबिध्वंसते ततश्च यज्ञकर्ता ऋत्विजञ्च नश्यन्तीत्युक्तम् तेनेश्वरप्रीत्यर्थं कर्माणि कार्याणीतिदर्शितम्। ततिस्वपुरवधवक्तस्तस्यतात्पर्यं स्थूलस्मकारणानि त्रीणि शरीराणि पुराणि कमाद्वहुपीत्यल्यस्त्वकरत्वाभ्यां मोहमयत्वेन च सौवर्णराजतायसानि । कामाद्योऽसुराःशमाद्यादेवाः तेषां प्रीतिकरोक्द्रआत्मा, शरीरंपृथिव्याख्यम् रथमास्थाय तस्य चालके चन्द्रसूर्याख्ये मनश्चक्षुषी चक्रे । बेदाश्च गम्यस्थानप्रापकत्वेनाश्वाः,शरोबिष्णवधिष्ठिता सक्ष्मा बुद्धिःतदैकाष्ट्ये-ण शरीरत्रयभेदे तुर्ये ब्रह्माण साक्षात्कृते सति कामादयो नश्यन्ति फलभूताश्च शमादयोवर्धन्ते तेषु बर्धमानेषु रुद्रोबालवद्रागशून्यो ब्रह्माविद्याऽपरनाम्न्या स्थाया वश्याभवतीत्येतदत्रपद्वन्वर्थते ॥ ८२ ॥

॥ भाषा ॥

पूर्वोक्त बाण को उन पुरों पर छोड़ा ॥ ७९ ॥ ८० ॥

और वह बाण तीनों पुरों का एकही बार जलाने लगा। दैस्रबीरलोगों में उस बाण के दर्शन करने की शक्ति भी न रह गई अन्त में सब दैस्रबीरों से सिहत तीनों पुर थोड़ेही समय-में भरम हो गए। और त्रिपुरदाह के अनन्तर उमादेवी [पार्बती] एक पांचिशिखाबाले बालक को गाद में ले कर श्री शिवजी को देखने गयीं।

भा. भा. दी. पूर्व में जो दक्षयज्ञाविध्वंस की कथा कही गई उसका आन्तारक ताल्यें यह है कि जो यज्ञ, ईश्वर को समर्पण नहीं होता उस यज्ञ और यज्ञकर्ता तथा ऋत्विजों का नाश हो जाता है इस कारण ईश्वर के प्रीत्यर्थ ही कम करना चाहिये। और इस त्रिपुरदहन की कथा का मुख्य ताल्प्य यह है कि स्थूछ, सूक्ष्म और कारण ये तीन शरीर ही तीन पुर हैं उन में बहु-सुखकारी होने से यह स्थूछशरार, सुवर्णमय और उसकी अपेक्षा अल्पसुखकारी होने से सूक्ष्म अर्थात छिङ्गशरीर, रजतमय तथा अज्ञानमय होने से कारण अर्थात अविद्यामय शरीर, छोहमय है। और काम कोध आदि देत्य हैं। शम दम आदि देवता हैं। उन देवताओं के रक्षक परमात्मा शिवजी हैं। वह श्री शिवजी, पृथ्वीनामक शरीरक्षी रथ पर आकृत हुए। उस रथ के चळाने वाळ चन्द्रनामक मन और सूर्यनामक नेत्र को शिवजी ने बनाया। बेदमण अश्व हैं क्योंकि वे, गन्तच्य स्थान पर जीव को प्राप्त करते हैं। बिख्णु से अधिष्ठतः सूक्ष्म बुद्धि बाण है। उस बाण की एकामता से परमेश्वर का साक्षात्कारकर्पी उन पुरों का दाह होता है। और काम आदि दैत्य नष्ट हो जाते हैं तथा शम, दम, आदि देवताओं की बुद्धि होती है। तथा रद्रात्मक जीव, बाळक के नाई रात्र हम कादि से निर्मुक्त हो कर ब्रह्मविद्या नामक उमा के वश्न में हो जाता है।। ८१।। ८२।।

उमादेवी ने अज्ञानी बनकर इन्द्र से यह पूछा कि मेरे गांद में यह कौन आ कर बैठ गया है ? और इस प्रश्न के अनन्तर उस बालक को मारन के लिए इन्द्र ने कोंध से बजा

वाहुं सवजं तं तस्य ऋदस्यास्तम्भयत्प्रभुः। महस्य भगवांस्तूर्णं सर्वेटोकेश्वरो विभुः ॥ ८४ ॥ ततः संस्तम्भित्युजःशकोदेवगणैवृतः। जगाम ससुरस्तूर्णे ब्रह्माणं प्रभुमब्ययम् ॥ ८५ ॥ ते तं प्रणम्य शिरसा पोचुःपाञ्जलयस्तदा। किमप्यङ्कगतं ब्रह्मन् पार्वत्या भूतमञ्जतम् ॥ ८६ ॥ वालरूपधरं दृष्टा नासाभिरभिवादितः। तस्माच्वां प्रष्टुमिच्छामो निर्जिता येन वै वयम् ॥ ८७॥ अयुध्यता हि बालेन लीलया सपुरन्द्राः। तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा ब्रह्माबिदाम्बरः ॥८८॥ ध्यात्वा स शम्भुं भगवान् बालं चामिततेजसम्। उवाच भगवान् ब्रह्मा शक्कादींश्व सुरोत्तमान्॥८९॥ चराचरस्य जगतः प्रभुः स भगवान् इरः। तसात् परतरं नान्यत् किंचिदस्ति महेश्वरात् ॥ ९०॥ यो दृष्टो ह्यमया सार्द्ध युष्माभिरमित्युतिः। स पार्वत्याः कृते देवः कृतवान् बाळरूपताम् ॥९१॥ ते मया सहिता यूयं प्रपद्यध्वं तमेव हि । स एव भगवान् देवः सर्बलोके वरः प्रभुः ॥ ९२ ॥ न संबुबुधिरे चैनं देवास्तं भुवनेश्वरम्। सप्रजापतयः सर्वे बालाकसद्यं प्रभुम् ॥ ९३ ॥ अथाभ्येत्य ततो ब्रह्मा दृष्ट्वा च स महेश्वरम् । अयंश्रेष्ठइति ज्ञात्वा बबन्दे तं पितामहुः ॥९४॥

ण माषा॥

पठाया तब उस सर्वें लेकेश्वर बालक भगवान ने अपनी इच्छामात्र से इन्द्र के, बज्रसहित उद्यता वाहु को साम्भित कर दिया अर्थात् न बज्र को छोड़ सके और न बाहु को नीचे कर सके, तदन नतर तुरितही देवतालोंग स्ताम्भितभुज इन्द्र को ले कर ब्रह्मलोंक गए और ब्रह्मदेव से हाथ जोड़कर भुजस्तम्भन के बृतान्त को निवेदन किया॥ ८३॥ ८४॥ ८५॥ ८६॥ ८७॥

तदनन्तर ब्रह्मदेव ने ध्यान के द्वारा उस बालक का तत्त्व निश्चय कर इन्द्रादि देवताओं से कहा कि जिस बालक को पार्बती के गोद में तुमने देखा वह, स्थावर जंगम सब जगत के प्रभु शिव भगवान हैं जिन से परे कुछ भी नहीं है। केवल पार्बती के लिए उन्हों ने बालक्ष्य धारण किया है, तुम ने उस बालक के तत्त्व को नहीं समझा, चलो उन्ही के समीप में चलता हूं। ऐसा कह इन्द्रादि देवताओं से सहित ब्रह्मदेव तुरितही उस बालक के समक्ष प्राप्त हो कर प्रणामपूर्वक बोले।

भा. भा. दी. इस कथा का यह तात्पर्य है कि कर्मठ, (यज्ञादिपरायण) छोग ब्रह्मज्ञ नियों से द्वेष कर जब उनकी योगमहिमा से पराजित होते हैं तब उन्हीं के शरण जाते हैं ॥ ८८॥॥ ८९॥ ९०॥ ९०॥ ९१॥ ९२॥ ९३॥ ९४॥

ब्रह्मोवा ॰ — त्वं यज्ञो भुवनस्यास्य त्वं गतिस्त्वं परायणम् । त्वं भवस्त्वं महादेव स्त्वं धाम परमं पदम् ॥९५॥ त्वया सर्वमिदं व्याप्तं जगत् स्थावरजंगमम् । भगवन् भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते ॥ ९६ ॥ प्रसादं कुरुशक्रस्य त्वया क्रोधार्दितस्य वै ।

ब्यास-ज॰ पद्मयोनेर्वचः श्रत्वा ततः प्रीतो महेश्वरः ।

प्रसादाभिम्रखो भूत्वा अट्टहासम्याकरोत् ॥ ९७ ॥

ततः प्रसाद्यामसुरुमां रुद्रं च ते सुराः ।

अभवच्च पुनर्वाहुर्यथापकृति चित्रणः ॥ ९८ ॥

तेषां प्रसन्तो भगवान् सपत्नीको बृषध्वजः ।

देवानां त्रिदशश्रेष्टो दक्षयज्ञविनाशनः ॥ ९९ ॥

स वै रुद्रः स च शिवः सोऽग्निःसर्वश्र सर्ववित् ।

सचेन्द्रश्रेव षायुश्र सोऽश्विनौ सच विद्युतः ॥१००॥

स भवःसच पर्जन्यो महादेवःसचानघः ।

स चन्द्रमाःसचेशानः स सूर्योवरुणश्र सः ॥ १०१ ॥

स कालः सोऽन्तको मृत्युः स यमोराज्यहानि च।

मासार्द्रमासा ऋतवःसन्ध्ये संवत्सराणि च १०२

अस्यतश्रक्षक्रस्येत्यादितात्पर्यम् ब्रह्मभूतं द्विषन्तः कर्मठाःतेनयोगमहिस्रा निर्जिताः सन्तस्तमेव शरणं गच्छन्तीति ॥ ९४ ॥

गतिःपालकः लयस्थानम् ॥ ९७ ॥

॥ भाषा॥

बहादेव हे भूतभव्येश! (प्राणियों के कल्याणदाता) लोकनाथ! (सब लोगों के स्वामी) जगत्पते! (स्थावर और जंगम रूपी जगत् के रक्षक) भगवन् आप ही यज्ञरूपी हैं और जगत् के पालक जगत् के उत्पत्ति और लय के स्थान, तथा सब से परे तत्त्व, तथा महादेव भी आपही हैं और स्थावर तथा जंगम सब पदार्थों में आप ज्याप्त हैं, आप से मेरी यह प्रार्थना है कि आप के कोध से दु: खित इस इन्द्र पर आप कृपा करें।। ९५ ।। ९६ ।।

ब्यास—ब्रह्मदेव की इस स्तुति को सुनकर श्री शिवजी ने प्रसन्न हो अट्टहास किया तदनन्तर इन्द्रादि देवताओं ने पार्वती और परमेश्वर की स्तुति और सेवा की तथा इन्द्र का वार्ड पूर्ववत् ठीक हो गया। इस रीति से श्री शिवजी देवताओं पर प्रसन्न हो गए।।९७।।९८।।९९।।

हे अर्जुन ! वही रुद्र हैं, वही शिव हैं, वही आग्न हैं, वही सर्वात्मक हैं, वही सर्वज्ञ हैं। और वहीं इन्द्र, बायु, अधिन, (देवबैद्य) बिद्युत्, मेघ, चन्द्रमा, सूर्य, बरुण, काल, (समय) यमराज, मृत्यु, रात्रि, दिन, पक्ष, मास, ऋतु, सन्ध्या, वर्ष आदिरूपी महादेव हैं॥ १००॥ ॥ १०१॥ १०२॥

धाता च स बिधाता च बिश्वात्मा विश्वकर्मकृत् । सर्वासां देवतानां च धारयत्यवपुर्वपुः ॥ १०३ ॥ सर्वेंदेंवै:स्तुतां देवः सैकधा बहुधा च सः। शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा ॥ १०४ ॥ द्वे तन् तस्य देवस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा बिदुः। घोग्चान्या शिवाचान्या ते तनू बहुधा पुनः ॥१०५॥॥ घोग तु या तनुस्तस्य सोऽग्निर्विष्णुःस भास्करः। सौम्या तु पुनरेवास्यआपोज्योतींषि चन्द्रमाः ॥१०६॥ बेदाङ्गाःसोपनिषदःप्रगणाध्यात्मनिश्रयाः। यदत्र परमं गुह्यं स बै देवो महेश्वर: ॥१०७॥ ईदृशश्च महादेवो भूयाँश्च भगवानजः। नहि सर्वे मया शक्या वक्तुं भगवतो गुणाः ॥ १०८ ॥ अपि वर्षसहस्रेण सततं पाण्डुनन्दन। सर्वैग्रंहै र्यहीतान् वै सर्वपापसमन्वितान् ॥ १०९ ॥ स मोचयति सुनीतः शरण्यः शरणांगतान्। आयुरारोग्यमैश्वर्य बित्तं कामांश्र पुष्कलान् ॥११०॥ स ददाति मनुष्येभ्यः स चैवाक्षिपते पुनः । सेन्द्रादिषु च देवेषु तस्य चैश्वर्यमुच्यते ॥ ११॥

भवज्रपत्तिकारणम् ईशःशिक्षकः नाथो नायकः पतिःपालकः ॥ ९९ ॥ सबैरुद्रइत्यादिनापुनरेव सार्वीत्म्यमुच्यते ॥ १०२ ॥

॥ भाषा ॥
यद्यपि वह किसी शरीर के वश नहीं हैं तथापि सब देवताओं के शरीरों को वही
धारण करते हैं और सब देवता, उनको एकरूप, शतरूप, सहस्ररूप, लक्षरूप, और अनन्तरूप
कल्पना कर स्तुति किया करते हैं ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

बेदज्ञ ब्राह्मणलोग इन्ही शिवजी की दो मूर्ति समझते हैं, एक घोरा (तेजिस्वनी) और दूसरी शिवा (अघोरा अर्थात् शान्ता) और यही दो मूर्तियां पुनः अनेक प्रकार की होती हैं अर्थात् अिप्र, विष्णु, सूर्य, ये घोरा मूर्ति हैं और जल, तारा, चन्द्रमा, ये सौम्या मूर्ति हैं।।१०५।।१०६।।

बेद उपनिषद् सिहत, बेदाङ्ग, पुराण, और दर्शनशास्त्र आदि का मुख्य आन्तरिक तात्पर्य उन्हीं महेश्वर देव में है। और वह नित्य महादेव भगवान जैसा मैने कहा वैसे और उस से भी अधिक हैं क्योंकि हे पाण्डुनन्दन! (अर्जुन) में यदि सहस्रों वर्षतक निरन्तर बर्णनहीं करता रहूं तब भी उनके सब गुणों को नहीं कह सकता। सूर्यादि सब प्रहों से पीडित तथा ब्रह्म- हत्यादि सब पातकों से संयुक्त, अपने शरणागतों को वहीं महेश्वर प्रसन्न हो कर सब दोषों से निर्मुक्त कर देते हैं।। १०७।। १०८।। १०९।। ११०।।

मनुष्यों को उत्तम २ आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, (शक्ति) और धन वे ही महेश्वर देते हैं। और समय पर उक्त आयु आदि का नाश भी करते हैं। और मनुष्यों के शुभ अशुभ भोग भी उन्ही स चैव ब्यापृतो लोके मनुष्याणां शुभाशुभे ।
ऐश्वर्याचैव कामानामीश्वरश्र स उच्यत ॥११२॥
महेश्वरश्र भूतानां महतामीश्वरश्र सः ।
बहुभिवेहुधा रूपैर्विश्वं ब्यामोति वे जगत् ॥११३॥
तस्य देवस्य यद्दत्र्वं समुद्रे तदितष्ठत ।
बहवामुखेतिबिख्यातं पिवत्ते।यमयंहविः ॥ ११४॥
एष चैव इम्शानेषु देवो वस्ति नित्यशः ।
यजन्त्यनं जनास्तत्रवीरस्थानइतीश्वरम् ॥ ११५॥

द्वेतन् इत्युक्तेतन् पुनर्व्याख्याति तस्य देवस्येति बहवामुखाख्या घोरा ततुः ॥११४॥
एषंचैवेति । अघाग व्यक्तानाख्या काशी, या ते रुद्रशिवा तन्रघोरापापकाशिनीति
लिङ्कादपापस्य ब्रह्मणः प्रकाशकत्वात् एतच्चान्यत्राप्यविम्रक्ताख्यां तामेव प्रकृत्याम्नातम्
अत्रिह जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म ब्याचष्टे येनासावमृती भृत्वा मोक्षी भवति
तस्मादिबम्रक्तमेव निषेवेताविम्रक्तं न बिम्रुश्चेदिति। तत्र व्यशाने काश्यां एनं रुद्रं जना उपासकायजन्ति आराधयन्ति एतदिप तत्रैवश्चतम् । 'य एषोऽनन्तोऽव्यक्त आत्मा सोऽविम्रक्तउपास्यः सोऽबिम्रक्ते प्रतिष्ठितः 'इति । बीरस्थाने बीराणां षह्वर्गजयिनां संन्यासिनां स्थाने

की आज्ञानुसार होते हैं तथा इन्द्रादि देवता भी उन्हीं की इच्छा से सुख और दुःख पाते हैं। सब प्रार्थनीय बिषयों के खामी होने से उनका नाम "ईश्वर" है।। १११।। ११२।।

अकाश आदि महाभूतों के भी वे ही ईश्वर हैं इसी से महेश्वर कहे जाते हैं। और अनेक रूपों से वे ही बिश्व में ब्याप्त हैं उन्हीं महेश्वर देव का मुखसदृश खरूप समुद्र में स्थित है जिसका नाम बड़बामुख (बड़बानल) प्रसिद्ध है जोकि जलरूपी हिव को सदा पान किया करता है।। ११३॥ ११४॥

'एष०' यही देव दमशानों में नित्य वास करते हैं जिसको उपासक छोग 'बीरस्थान' नाम से कह वहां इनकी उपासना करते हैं यह इस फ्लोक का अक्षरार्थ है। और इसका आन्तरिक ताल्यें तो, भा. भा. दी. में यो बर्णित है कि यहां 'दमशान' शब्द से अघोरा मूर्ति अर्थात् काशी का प्रहण है, क्योंकि "या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी" [शुक्रयजुः सं. अ. १६ मं. २] इस यजुर्मन्त्र में ऐसा ही कहा है अर्थात् अपाप (निर्दोष परब्रह्म) की काशिनी, (प्रकाश करनेवाली काशी) परमेश्वर की अघोरा, (शान्ता शिवा, (कल्याणरूपा) तनू, (मूर्ति) है। केवल यहीं नहीं किंतु जाबालोपनिषद् में भी "अबिमुक्त" नाम से काशीपुरी को कह कर उसके बिषय में यह बेदवाक्य है कि "अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्कममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म ब्याचष्टे येनासावमृती भूत्वा मोक्षी भवति तस्मादिबमुक्तमें विषवेताबिमुक्त न विमुच्चत्" (यहां अबिमुक्त अर्थात् काशी में मृत कीट, पतङ्ग और बृक्षांदि स्थावर पर्यन्त सब प्राणियों के प्राण निकलने के समय, उनको रुद्र अर्थात् परमेश्वर तारक ब्रह्मं अर्थात् प्रणव का उपदेश करते हैं जिस से कि वे प्राणी तत्त्वज्ञानी हो मुक्त हो जाते हैं इसी से अबिमुक्त अर्थात् काशी में वास कर काशी को न छोड़े)। इसी दमशान अर्थात् काशी में उपासक जन का दि हमी में वास कर काशी को न छोड़े)। इसी दमशान अर्थात् काशी में उपासक जन हम रुद्र (श्री शिवजी) की उपासना करते हैं, यह बात भी उक्त उपनिषद् के इस वाक्य से

अस्य दीप्तानि रूपाणि घोराणि च बहूनि च। लोके यान्यस्य पूज्यन्ते मनुष्याः प्रवदन्ति च ॥११६॥ नामधेयानि लोकेषु वहून्यस्य यथार्थवत्। निरुच्यन्ते महत्त्वाच्च विश्वत्वात् कर्मभिस्तथा॥११७॥

अबिमुक्ते। यथोक्तं यतीन्प्रकृत्यस्मृतिषु अष्टां मासान् विहारः स्याद्वार्षिकाँश्रत् तां वसेत्। अबिमुक्ते प्रविष्टानां विहारो नैव विद्यते ॥ इति। नचात्रक्ष्मशानशब्दार्थो लोकप्रसिद्धो ग्रहीतुंयुक्तः,
तस्याशुचित्वेन यागभूभित्वासंभवेन यजन्त्येनं जनास्तंत्रिति वाक्यश्रेषिवरोधात् नच बीरस्थानेइत्युक्तेरसुराणां निन्द्यमार्गजुषां तदिष यजनस्थानमितिवाच्यम् आनुशासनिके लमामहेश्वरसंवादे क्षमशानसदृशं पवित्रं स्थानं त्रेलोक्ये नास्तीति महेश्वरवचसैवस्थापितत्वात्
तस्मान्महाक्ष्मशानमितिलोकभिषद्धेः पवित्रं देवयजनस्थानं क्षमशानाल्यं बाराणस्येव। अत्रैव
संवर्जादीनामज्ञातवासो जावालादौ श्रूयमाणो दानधर्मेषु मैत्रेयभिक्षायामश्रमेधीये संवर्त्तमक्चीये चोपब्रृंहितइतिसर्वमनवद्यम् ॥११५॥ (क्षमशानेष्वितिबहुवचनं तु प्रशंसायाम् एकसिन्नपिगुरौ गुरवइतिवत्) अस्येति। चादघोराणि ॥११६॥

सिद्ध होती है कि "य एषोऽनन्तोऽब्यक्तआत्मा सोऽबिमुक्तउपास्यः सोऽबिमुक्तेप्रतिष्ठितः " (जो यह अनन्त और अब्यक्त आत्मा अर्थात् परमेश्वर हैं उनकी उपासना अबिमुक्त में करे क्योंकि वह अबिमुक्त में प्राति ष्ठित हैं अथीत् अबिमुक्त उनकी अघोरा मूर्ति है) और "बीरस्थान" शब्द से भी काशी ही का प्रहण है क्योंकि बीरों (काम, क्रोध, छोभ, मोह, मद, मात्सर्य रूपी षड्वर्ग के बिजय करनेवाले अर्थात् सन्यासी) का स्थान काशी ही है जैसा कि धर्मशास्त्रों के, सन्यासी के प्रकरण में कहा है। "अष्टी मासान् बिहारः स्याद्वार्षिकांश्चतुरावसेत्। अबिमुक्ते प्रविष्टानां बिहारो नैविबद्यतं " (कार्तिक से ज्येष्ठमास पर्यन्त सन्यासियों को अमण करना चाहिये और वर्षा के चार मासों में एक स्थान में वास करना चाहिये किंतु काशीवासी सन्यासियों को भ्रमण करने की आवश्यकता नहीं है)। यहां यह नहीं कह सकते कि 'श्मशान शब्द से छोकप्रसिद्ध श्मशान (मृतकदाह का स्थान) का प्रहण है, क्योंकि वह अपवित्र होता है इसकारण "यजन्येनंजनास्तन्न" (उसमें अर्थात् इमशान में उपासक लोग इन अर्थात् श्रीशिवजी की उपासना करते हैं) इस वाक्य से बिरोध पड़ जायगा, क्योंकि अपवित्र स्थान में उपासना कैसे हो सकती है। यह भी नहीं कह सकते कि "बीर" शब्द से असुर राक्ष्स आदि का प्रहण है और 'बीरस्थान' लोकप्रसिद्ध रमशान है इसी से वहां असुर आदि निन्दागण रुद्र का यजन करते हैं, क्योंकि महाभारत अनु-्शासनपर्व उमामहेश्वरसंवाद में स्वयं महेश्वर ही ने यह कहा है कि इमशान ऐसा पवित्र स्थान त्रैलोक्य में नहीं है इस से स्पष्ट निश्चित होता है कि इमशानशब्द से काशी ही का प्रहण है और काशी का "महारमशान" नाम भी प्रसिद्ध ही है इस से देवयजन के योग्य पवित्र स्थान रमशान, बराणसी ही है और य सब बातें, भारत ही में मेत्रयभिक्षा, संबर्तमहत्तीय, प्रकरणों में कही हैं ॥११५॥ इन श्रीशिवजी की शान्त और भयातक प्रभावयुक्त मूर्तियां लोक में पूजी जाती हैं और चर्चित हैं

पुक ही गरू के अभि पर 'गुरू आया,' नहीं कहा जाता किन्दु 'पुरू जी आये ' यही कहा जाता है।

बेदे चास्य समाम्नातं शतरुद्रियमुत्तमम् ।
नाम्नाचानन्तरुद्रेति द्युपस्थानं महात्मनः ॥ ११८ ॥
स कामनां प्रभुर्देवो ये दिव्या ये च मानुषाः ।
स बिग्धः स प्रभुर्देवो बिश्वं व्यामोति वै महत् ॥ ११९ ॥
रुयेष्ठं भूतं वदन्त्येनं ब्राह्मणा मुनयस्तथा ।
प्रथमोश्चेष देवानां मुखादस्यानलोऽभवत् ॥ १२० ॥
सर्वथा यत् पश्च पाति तैश्चयद्रमते पुनः ।
तेषामिषपातिर्यच तस्मात्पशुपतिःसमृतः ॥ १२१ ॥
नित्येन ब्रह्मचर्येण लिङ्गमस्य यदास्थितम् ।
महयत्येषलोकाँश्च महेश्वर इति समृतः ॥ १२२ ॥
ऋषयश्चैव देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तथा ।
लिङ्गमस्यार्चयन्तिस्म तच्चाप्युर्द्धं समास्थितम् ॥ १२३ ॥

निरुच्यन्ते 'ऐश्वर्याचैवकामानामीश्वरश्च संउच्यते । महेश्वरश्चमहतां भूतानामीश्व-रश्च स' इत्येवंजातीयकैः श्लोकैबर्याख्यायन्ते ॥ ११७॥

शतरुद्रियं नमस्तरुद्रमन्यवइति याज्ञषः प्रपाठकः उपस्थानं रुद्रोपस्थानमन्त्रभूतम्।।११८॥ कामानाम् दिच्यानां मानुषाणां च स प्रभुः दाता, विभुः ब्यापकः विश्वं ब्यामोति कनककुण्डलवत् नत्वाकाशवद्धिभ्रमात्रम् नापि प्रधानवत् यतः प्रभुरीश्वरःचेतन इतियावत् ११९॥ ज्येष्ठं प्रशस्ततमम् त्रिविधपरिच्छेदशून्यम् भूतं नित्यसिद्धम् एष एव प्रथमः प्रजापतिः॥

ममुख्यलोग उन मूर्तियों को उस २ नाम से कहते भी हैं। श्री शिवजी के बहुत से नाम, गुण और कम के अनुसार लोकों में कहे जाते हैं।। ११६॥ ११७॥

बेद में भी यजुसंहिता में "नमस्तेरुद्रमन्यवे" इत्यादि मन्त्रों का पूर्ण प्रपाठक [षोडश अध्याय] ही पढ़ा हुआ है जो सब श्रीशिवजी का प्रतिपादक अर्थात् रुद्रोपस्थान के मन्त्रों का समूह है जिसका कि शतरुद्रिय कहते हैं ॥ ११८॥

खर्गछोक वा मनुष्यछोक के सबन्ध में सब कामनाओं के पूर्ण करनेवाछे वे ही सर्बद्यापी शिवजी हैं। इन्हीं शिवजी को ब्राह्मण और मुनि छोग ज्येष्ठ अर्थात् देश, काछ और वस्तु से अपरिछित्र अर्थान् ज्यापक, तथा भूत (नित्यसिद्ध) कहते हैं और सब से प्रथम यही हैं और इन्हीं के मुख से अग्निदेव उत्पन्न हुए ॥ ११९ ॥ १२० ॥

पशु अर्थात् सब जीवों को शिवजी पाछते छाड़ते और दण्डन करते हैं इसी से पशुपति कहछाते हैं।। १२१

लिक्न भी शिव ही का नाम है क्योंकि सब जगत् को शिवजी आलिक्नन करत हैं अर्थात् सब जगत् की उत्पत्ति और रक्षा उन्हीं से होती हैं तथा जगत् का लय भी श्रीशिवजी ही में होता है। और उनका महश्वर भी नाम है क्योंकि वे जगत्से अपना महन (पूजन) कराते हैं तथा ईश्वर भी हैं।।१२२॥

श्री शिवजी वस्तुतः निराकार अर्थात् इस्त, पाद, आदि से रहित (परब्रह्म) हैं, इसी से इस्त पाद अदि से रहित छिक्करूपी प्रतिमा में भी उनकी पूजा होती है और इस प्रतिमा को भी छिक्क कहते हैं क्योंकि वह प्रतिमा सब कामों का छिक्कन अर्थात् प्राप्ति अपने भक्तीं की कराती है

पूज्यमाने ततस्तास्मन् मोदते स महेश्वरः ।
सुखी पीतश्च भवति पहृष्टश्चैव शंकरः ॥ १२४ ॥
यदस्य बहुधा रूपं भूतं भव्यं भवत् स्थितम् ।
स्थावरं जगमं चैव बहुरूपस्ततः स्मृतः ॥ १२५ ॥
एकाक्षो जाज्वलन्नास्ते सर्वतोऽक्षिमयोऽपि वा ।
कोधाद्यचाबिशल्लोकांस्तस्मात्सर्वइतिस्मृतः ॥ १२६ ॥
धूम्ररूपं च यत्तस्य धूर्जिटिस्तेन चोच्यते ।
बिश्वे देवाश्च यत्तस्मिन् विश्वरूप इतिस्मृतः ॥ १२७ ॥

पशून् जीवान् पाति पालयति पित्रति सादरं पश्यति पोषयति चेत्यर्थानभिषेत्यडत्यनतस्य पातेः पतिशब्दजत्पन्नः तेनपशुपतिशब्दस्याप्यर्थत्रयमित्यग्रेविशेयम् ॥ १२१ ॥

ब्रह्मचर्येण दिव्यत्वात् यथास्थितत्वाच लिङ्गामित्यप्यस्य नाम आलिङ्गयत्ययं प्रपश्चं सत्तास्फूर्तिप्रदानेन, लिङ्गत्येनं प्रपश्चः प्रलीयमान इतिहेतोरयं लिङ्गपदवाच्यः । दिव्यत्वाद-सङ्गत्वाद्यथास्थितत्वात्कृदस्थत्वाच प्रधानादन्यत्वामित्यर्थः महयन् पूजयन् सचासौईश्वरश्चेति-महेश्वरः ॥ १२२॥

लिङ्गयतिसर्वान्कामान्गमयति अतः सर्वोत्कृष्टत्वाद्र्दे उध्वत्वाच ऋष्यादीनामचर्य लिङ्गति भक्तसमर्पितं पत्रपुष्पादि गच्छति मामोतीत्यनेन हेतुनालिङ्गामित्युत्तरस्यार्थः॥१२३॥

भवत् बर्तमानम् ॥ १२५॥

एक मध्यस्य बन्हिमयं जाज्वछदत्यन्तं दीप्तमास्ते यत्र प्रविष्टं सर्ब तत्तादात्म्यं प्रामी-तीत्यनेनसरन्त्येनं भूतानीति वा सरत्ययं सर्वाणि भूतान्यनन्तछोचनत्वादिति वा सर्वः । जाज्वछिन्नत्यस्यविविवरणं क्रोधादिति । शर्ब इति ताछब्यादिपाठेऽपि शृणाति हिनस्तीति शर्व इति निवचनम् ॥ १२६ ॥

धुम्रा क्रोधवती जिटःस्वरूपमस्येतिबिग्रहे वर्णलोपाचूर्जिटिरित्याह धुम्रेति रूपशब्दो

देववाचीत्यभिमेत्याइ बिश्व इति ॥ १२७ ॥

॥ भाषा ॥

और देवता, ऋषि, गन्धवे, अप्सरा आदि उक्त लिङ्गरूपी प्रतिमा को पूजते हैं और उनके समर्पित पत्र पुष्प आदि का लिङ्गन (प्राप्ति) उस प्रतिमा पर होती है इस से भी उस प्रतिमा को लिङ्ग कहते हैं ॥ १२३॥

इसी कारण पूर्वोक्त लिझ की पूजा से वह महेश्वर [शंकर] प्रसम होते हैं।। १२४।। श्री शिवजी के भूत, भविष्य, बर्तमान, स्थावर, जंगम, अनन्तरूप हैं इसी से वह बहु-

रूप कहलाते हैं ॥ १२५ ॥ इन्ही शिवजी का अभिरूप नेत्र जाज्वल्यमान है जिस में सब जगत प्रविष्ट हो जाता है और शिवजी के अनन्त नेत्र हैं जिस कारण सब प्रकारों को वे प्रत्यक्ष करते हैं इन्हीं दो कारणों से श्री शिवजी को सब कहते हैं ॥ १२६ ॥

शिवजी का जिट [स्वरूप] धूम्र क्रोधवती है इस से वे धूर्जिट कहळाते हैं और विश्व-

नामक देवता शिवजी में हैं इस से श्री शिवजी विश्वरूप कहलाते हैं।। १२७।।

तिस्रो देव्यो यदाचैनं भजनते अनने श्वरम् ।

द्यौरापः पृथिवी चैव त्र्यम्बकस्तु ततः स्मृतः ॥ १२८ ॥

समेधयात यिन्नत्यं सर्वार्थान् सर्वकर्मसु ।

शिविमच्छन् मनुष्याणां तस्मादेष शिवःस्मृतः ॥ १२९ ॥

सहस्राक्षोऽयुताक्षो वा सर्वतोऽक्षिमयोऽपि वा ।

यच विश्वं महत् पाति महादेवस्ततःस्मृतः ॥ १३० ॥

दहत्यूर्द्धं स्थितो यच प्राणोत्पत्तिस्थितश्च यत् ।

स्थितिलङ्गश्च यिन्नत्यं तस्मात्स्थाणुरितिस्मृतः ॥ १३१ ॥

स्र्याचन्द्रमसोलेंके प्रकाशन्ते रुचश्च याः ।

ते केशसञ्ज्ञितास्त्र्यक्षे व्योमकेशइतिस्मृतः ॥ १३२ ॥

बह्माणिमन्द्रं वरुणं यमं धनदमेव च ।

निगृह्य हरते यस्मात्तसाद्धरुहित स्मृतः ॥ १३३ ॥

त्रेलोक्यं अम्वते पालयतीति त्र्यम्वकइत्याह तिस्नइति ॥ १२८ ॥
।समेधयतीति यसाद्धनादिवर्धनेन लोकानांशिवकरःतस्माच्छिवइत्यर्थः ॥ १२८॥
महान्ति प्रुरुषभेदेन बहुत्वाद्धि अत्वाद्धा व्यापकाख्यानिदेवशब्दितानीन्द्रियाण्यस्येति वा

महतो विश्वस्यदेवोराजा वा महादेवइत्यभिनेत्याह सहस्रोति ॥ १३०॥
स ईक्षांचक्रे स माणमस्रजत माणाच्छ्रदामित्यादिना श्रुतौ ईक्षणकर्ताईश्वरो महानुक्तः माणो जीवोपाधिः तेन जीवज्कः श्रदादिकंजीवस्यि क्षित्र श्रुतौ ईक्षणकर्ताईश्वरो महानुक्तः माणो जीवोपाधिः तेन जीवज्कः श्रदादिकंजीवस्यि क्षित्र श्रुतौ चरमं कार्य तत्रमहर्त्व शात्माशुपाध्यस्पृष्टेन रुपेण तत जपहितेनसाक्षिरूपेण तत्रजपाध्यभिमानिना कर्त्रादिरूपेण चित्रविति।।१३१॥
स्थिति क्षित्र अविक्रियस्वरूपतया तिष्ठतीतियोगात् स्थाणुरित्युच्यते इत्याह महदिति।।१३१॥

सूर्याचन्द्रमसोरित्यग्रेरप्युपळक्षणम् रुचोदीप्तयः त्र्यक्षे सूर्यचन्द्राग्निनेत्रे ब्योक्तिकेशार-

इमयोयस्येतिबिग्रहः ॥ १३२ ॥

॥ भाषा॥
तीन अम्बा अर्थात् माता की नाई पालन करनेवाली वस्तु अर्थात् आकाश, जल और
पृथ्वी, लोकेश्वर श्रीशिवजी की सेवा करती हैं इससे शिवजी ज्यम्बक कहलाते हैं ॥ १२८॥

धन आदि की वृद्धि से लोकों की वृद्धि करते हैं शिव (कल्याण) की इच्छा से, इस

पुरुषों के महत् (अनन्त) देव (इन्द्रियां) शिवही जीके हैं और महत् (बिश्व) के देव

सदा और सब में क्षित (ब्यापक) होने से स्थाणु कहळाते हैं।। १३१।।
सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, शिवजी के नेत्र हैं और सूर्य आदि के केश (तेज) ब्योम

(आकाश) में न्याप्त रहती हैं इससे शिवजी ज्योमकेश कहलाते हैं।। १३२।।

ब्रह्मा, इन्द्र, बरुण, यमराज और कुबेर को भी अन्तकाल में बलात् हरण करलेते हैं इससे शिवजी हर कहलात हैं।। १३३।।

भूत, भविष्य, वर्तमान, स्थावर, जंगम, सस्तप और नीरूप जो कुछ पदार्थ हैं सब

भूतं भव्यं भविष्यच यच सर्वमशेषतः ।
भवएव ततोयस्माद्भूतभव्यभवोद्भवः ॥ १३४ ॥
विषमस्थःशरीरेषु समश्र माणिनामिह ।
स वायुर्विषमस्थेषु माणोऽपानःशरीरिषु ॥ १३५ ॥
पूजयेद्भिग्रहं यस्तु लिङ्गञ्चापि महात्मनः ।
लिङ्गपूजयिता नित्यं महतीं श्रियमञ्जुते ॥ १३६ ॥
ऊरुभ्यामद्भमाग्नेयं सोमार्द्धं च शिवा तनुः ।
आत्मनोऽर्द्धं तथाच।श्निःसोमार्द्धंपुनरुच्यते ॥ १३७ ॥

शरीरेषुविषमैदेशविधैरूपैस्तिष्ठतीतिविषस्थः प्राणिनांदेहाभिमानिनां सर्वेषांसमः, प्रिय-त्वात् । नह्यात्मनिकदाचिद्प्यप्रियत्वंकस्यापिदृष्टं स एष शित्र एव बायुरूपीप्राणापानादि-भेदेन विषमस्थेषुपुण्यपापिषुशरीरिषुजीवेषुस्थितः सर्वसमइत्यर्थः ॥ १३५ ॥

बिग्रहं प्रतिमाम् ॥ १३६ ॥

ऊरुभ्यामित्यादिश्लोकत्रयेण पुनस्तनुद्वयं विभन्नते वरुभ्यामिति तत्राद्यश्लोकेऽग्निरिति भोक्ता सोम इतिच भोग्यमुच्यते अत्र मुखवाहूरुपाद्जाताश्चत्वारोवर्णाः कर्मफलभूतबृष्ट्या-दिद्वारेण समस्तपाणिकल्याणकरत्वाद्वद्वस्य शिवा तन्नुरित्युच्यते तत्र ऊरुशब्देन तद्वारभ्या-धस्तनः प्रदेश उच्यते तत्रार्द्धमाग्नेयम् परिशेषादर्द्धमोमः वैद्योभोक्ता शुद्रोभोज्यदृत्यर्थः । आत्मनोरुद्रस्य । तथाच ऊरुभ्यामुपर्यर्द्धं शिरोभागोत्राह्मणोऽग्निर्भोक्ता परिशेषादर्द्धवाहुभागः क्षत्रियः सोमोभोज्यं तथा पुनरप्येतदुच्यते अर्द्धमाग्नेयमर्द्धसोम इति तेन ब्रह्मक्षत्रे भोक्तारौं वैद्यश्द्रौ भोज्यौ तथाच भोत्का भोज्यौ रक्ष्यं भोज्यौन भोक्ता बर्द्धनीय इति । तथाच चान्तुर्वण्यं त्रैलोक्यस्थितिहेतुत्वादात्मनोरुद्रस्य शिवा तनुरित्यर्थः ॥ १३७॥

शिवजी से होते हैं इससे शिवजी को भव कहते हैं ॥ १३४ ॥

सब शरीरों में प्राण आदि दशबिध बायुरूप से शिवजी स्थित हैं तथा सब देहाभि-

सबके लिए उचित और आवश्यक है कि इन शिवजी के बिग्रह (करचरणादियुक्त प्रतिमा) और लिङ्ग (करचरणादिरहित प्रतिमा) की पूजा करें परंतु जो प्रतिदिन लिङ्गपूजा करता है वह मोक्षपर्यंत सब फलों का भागी होता है।। १३६॥

पूर्व में कही हुई शिवजी की शिवा और घोरा मूर्तियों का, "ऊरुभ्यां" इत्यादि तीन क्लोकों से पुन: विवरण किया जाता है कि श्रीशिवजी के मुख, बाहु, ऊरु, और चरण से उत्पन्न चारो बर्ण, शिवजी की शिवा मूर्ति है और अपने जिस शरीर से शिवजी ने बर्णों को उत्पन्न किया उस शरीर का ऊरुपर्यंत अर्द्धभाग अग्नि (भोक्ता) रूप है और अवशिष्ट भाग सोम (भोग्य) रूप है अर्थात् वैदय और श्रूद्ध, ब्राह्मण और क्षत्रिय के भोग्य (काम करने वाले) तथा ब्राह्मण और क्षत्रिय, वैदय और श्रूद्ध के भोक्ता (रक्षक) हैं निदान ऊपर का भाग भोका और नीचे का भाग भोग्य है। शिर (ब्राह्मण) का भोग्य बाहु, (क्षत्रिय) बाहु का भोग्य ऊरु, (वैदय) ऊरु का भोग्य, चरण (श्रूद्ध) है अर्थात् ब्राह्मण के भोग्य ३ क्षत्रिय के २ वैदय का १ वर्ण भोग्य है।।१३७॥

तेजसी महती दीप्ता देवेभ्योऽस्य शिवा ततुः।
भास्वती मानुषेज्वस्य तनुर्घोराऽग्निरुच्यते ॥ १३८ ॥
ब्रह्मचर्यं चरत्येष शिवायास्य तनुस्तथा ।
याऽस्यघोरतमा मूर्तिः सर्वानत्ति तयेश्वरः ॥ १३९ ॥
यन्निर्दहति यत्तीक्षणो यदुयो यत्प्रतापवान् ।
मांसशोणितमज्जादो यत्ततो रुद्र उच्यते ॥ १४० ॥
किपिःश्रेष्ठ इति प्रोक्तो धर्मश्र वृष उच्यते ॥ १४० ॥
स देवदेवो भगवान् कीर्त्यतेऽतो बृषाकिषः ॥ १४१ ॥
उन्मीलिताभ्यां नेत्राभ्यां बलादेवो महेश्वरः ।
ललाटे नेत्रमस्जत्तेन ज्यक्ष इतिस्मृतः ॥ १४२ ॥

तैजसीति 'न इ वै देवा अश्वन्ति न पिवन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ती' ति श्रुतेदेवानां भोग्या सोमरूपाऽस्यशिवातनुः स्वर्गेऽस्ति तथा श्रुवि मानुषेषु घोराभोत्क्रीजठराग्निरूपा सर्वा-नर्थनिदानभूताऽस्तीतिभावः ॥ १३८॥

ब्रह्मचर्यमिति । एषमानुषस्तयातन्वा ब्रह्मचर्यचरातियाऽस्यशिवातनुर्दैवी संपच्छमद-मादिरूपा । सर्वानर्थनिदानं घोरतराकामकोधादिरूपायाऽस्य शिवस्य मूर्तिस्तयाससर्वा-नात्ति कोधाद्याविष्टो हि पित्रादीनपिहिनस्तीतिमसिद्धम् ॥ ३९ ॥

एवमस्यैव कारियतृत्वादयमेवाराध्योऽस्मान्नेतव्यमित्याशयेनाह । यन्निर्दहतीति । निर्दहत्यग्निवत् तीक्ष्णःशस्त्रवत् उग्रोयमवत् प्रतापवान् कालवच भूत्वा सर्वान् रोदयति रुणद्धि वा सर्वग्रासित्वाद्धद्रइत्युच्यते अयमेवभयकुद्भयनाश्चनश्चेत्याराधनीयो नतुहेलनीय इतिभावः ॥ १४०॥

॥ भाषा ॥

"न ह बै देवा अश्रान्त न पिवन्त्येतदेवामृतं ह्या तृप्यान्त" (देवता छोग खाते पीते नहीं किंतु इसी सोमछता के रसरूपी अमृत को देख कर तृप्त होते हैं) इस श्रुति के अनुसार देवताओं के छिये शिवजी की सोमछतारूपी शिवा मूर्ति है और सनुद्धों में जठरामिरूपी घोरामूर्ति उनकी है क्योंकि पेट के अर्थ अनेक अनर्थ होते हैं।। १३८।।

भीर शम, दम, आदि शिवजी की शिवा मूर्ति है। मनुष्य शरीर से उन मूर्तियों के द्वारा शिवजी धर्मों को करते हैं तथा काम, क्रोध आदि शिवजी की घारा मूर्ति है जिस से वह सब को प्रास कर जाते हैं।। १३९।।

इक्त प्रकार से श्रीशिवजी सब कियाओं के करानेवाले और सब के आराध्य जैसे हैं वैसे ही सब का निप्रह भी करते हैं अर्थात् अपिवत् दाहक, शखवत् तीक्ष्ण, यमराजवत उप्रक्रितापी) हो कर दुष्टों को रोदन कराते हैं और अन्त समय में सब को रोधन (प्रास) कर जाते हैं इस कारण कर्न कहलाते हैं। तात्पर्य यह है कि भय के नाशक और कारक दोनों श्रीशिवजी ही हैं इसी से जगत के आराध्य हैं।। १४०।।

धर्म को नृष, और श्रेष्ठ को किप, कहते हैं इसी से शिवजी का नृषाकिप नाम है ॥१४१॥ श्री पार्वतीजी ने पीछे से आकर कीड़ार्थ, हाथों से शिवजी की आंखों की जब मुँद छिया

एष देवो महादेवो योऽसौ पार्थ तवाग्रतः। संग्रामेशात्रवानिघ्नं स्त्वया दृष्टः पिनाकधृक् ॥ १४३ ॥ सिन्धुराजबधार्थाय प्रतिज्ञाय त्वयाऽनघ । कृष्णेन दर्शितः स्वमे यस्तु शैलेन्द्रमूर्द्धनि ॥ १४४ ॥ एष बै भगवान् देवः संग्रामे याति तेऽग्रतः। येन दत्तानि तेऽस्त्राणि यैस्त्वया दानवा हताः ॥ १४५ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं बेदैश्च सम्मितम् । देवदेबस्य ते पार्थ ब्याख्यातं शतरुद्रियम् ॥ १४६ ॥ सर्वार्थसाधनं पुण्यं सर्विकालिक्षनाशनम्। सर्वपापनशमनं सर्वदुःखभयापहम् ॥ १४७॥ चतुर्बिधमिदं स्रोत्रं यः शृणोति नरः सदा। बिजित्य शत्रून् सर्बान् स रुद्रलोके महीयते ॥ १४८॥ चरितं महात्मनो दिव्यं सांग्रामिकमिदं शुभम्। पठन् बै शतरुद्रीयं शृण्वंश्व सततोत्थितः ॥ १४९ ॥ भक्तो बिश्वेश्वरं देवं मानुषेषु तु यः सदा । बरान् कामान् स लभते पसने ज्यम्बके नरः ॥ १५० ॥ गच्छ युध्यस्व कौन्तेय न तवास्ति पराजयः। यस्य मन्त्री च गोप्ता च पार्श्वतस्ते जनार्दनः ॥ १५१ ॥

चतुर्विधम् शुद्धशंवलसूत्रविराड्भेदेन भगवद्रूपस्य चातुर्विध्यात्स्तीत्रमप्यस्य चतु-विधम् ॥ १४८ ॥ इति ।

॥ भाषा ॥ तब शिवजी ने अपने छछाट में तृतीय नेत्र की सृष्ठि किया इसी से त्र्यक्ष कहलाते हैं ॥ १४२ ॥

हे पार्थ ! यही देव, महादेव, तुम्हारे आगे चलते हैं जिनको तुमने अपने [अर्जुन के] शत्रुओं को मारते देखा है। और जब तुमने सिन्धुराज (जयद्रथ) के बधार्थ प्रतिज्ञा किया था उस समय कृष्ण ने स्वप्रावस्था में, शैलराज (कैलास) पर जिनको तुम्हें दिखलाया था वेही ये शिव भगवाम हैं जोकि संप्राम में तुम्हारे अगाड़ी चलते हैं और जिनके दिये शक्तों से प्रथम में तुमने दैलों और दानवों को मारा था।। १४३॥ १४४॥ १४५॥

हे पार्थ ! बैदिक शतरुद्रिय जोकि देवदेव श्रीशिवजी की स्तुति धन्य, यशस्य, आयुष्य और पुण्य है उसके तास्पर्य का ब्याख्यान, मैन तुमको सुना दिया। और उक्त ब्याख्यानरूपी यह स्तोत्र, पाठ और श्रवण के द्वारा सब पापों और दुःखभयों का नाशक है जो मनुष्य प्रतिदिन इस स्तोत्र का श्रवण करता है वह सब शत्रुओं को बिजय करता है और अन्त समय शिवलोक पाता है क्योंकि इस स्तोत्र में परमेश्वर के चारो प्रकार अर्थात् शुद्ध, मायाशवित, सुन्न और बिराद सक्रपों का बर्णन है।। १४६।। १४८।।

मनुष्यों में भी जो कोई श्रीबिश्वेश्वरदेव का मक्त हो कर इस स्तीत्र की प्रतिदिन पढ़ता है वह श्री परमेश्वर के प्रसाद से अपने सब प्रार्थित कामों को पाता है।। १४९॥ १५०॥

संजय उ० एवमुक्त्वाऽर्जुनं सङ्ख्ये पराशरसुतस्तदा । जगाम भरतश्रेष्ठ यथागतमरिन्दम ॥ १५२ ॥

एवंच सकलेबेदिकमन्त्र मङ्कलनाऽऽचार्योण भगवता व्यासन संहितायां सङ्कलनासमकालमेव निवेशितस्यात्र शतकद्वियाध्याये शतकद्वियत्वेन वेदघटकत्वेन च कीर्तितस्यतावता महिता प्रवन्धेन तात्पर्यतो व्याख्यातस्य याज्ञषप्रपाठकत्वेन भावदीपे नीलकण्ठोक्तस्य च कद्वाध्यायस्य तात्पर्यानभिज्ञवेदबाह्यस्वकपोलककात्विपताभिद्वेषावेशमुद्धिरन्तीभिः संभावनाभिःकथिव प्रक्षिप्तत्वशङ्कालेशोऽपि कस्यचिदपक्षपातस्य परीक्षकस्योत्तिष्ठतामित्यत्र किमिव वाच्यमिति । सेदस्त्वेतावानेव वेदबाह्यस्य, यदयमेतावानिप वेदभागोऽल्पीयान्परिशिष्टः कथं न छप्तइति । कथमन्यथा वेदबाह्यस्याल्पीयस्यप्यस्मिन्वेदभागे निर्मूलोऽयमनेकशङ्काकलङ्कानिद्वराग्रहमयो महोद्योग इति महीयसी साधीयसी च मनःशुद्धिः ।

अथ या या अस्य बेदबाह्यस्योक्तयः सामान्यतोऽनूद्य तथैव परीक्षितास्ता बिशेषतो-

ऽनूद्य परीक्ष्यन्ते ।

अत्र सर्वा एवोक्तस्य बाह्यस्योत्मेक्षाःप्रायःपाश्चविध्यं नातिक्रामन्ति ता यथा--

॥ भाषा॥

हे कौन्तेय ! (अर्जुन) जाव छड़ो तुम्हारी पराजय नहीं है क्योंकि कृष्ण भगवान, मन्त्री और रक्षक हो कर तुम्हारे समीप रहते हैं ॥१५१॥

संजय — हे भरत श्रेष्ट, अरिन्दम ! (धृतराष्ट्र) उस समय पराशरऋषि के पुत्र (कृ-डणद्वैपायन व्यास) युद्ध में अर्जुन से इतना कह कर, जैसे आए थे वैसे चले गए।। १५२।।

सब बैदिक मन्त्रसंहिताओं के संग्रह करनेवाल भगवान कृष्णद्वपायन ब्यास ने उक्त इस महाभारतभाग में जिस शतकिंद्रय अध्याय को अपने कण्ठरव से स्रोंक ११८ में बैदिक कहा और
इतने बड़े प्रबन्ध से जिसका ब्याख्यान किया और यजुसंहिता में वह शतकिंद्रय अध्याय अब तक
बर्तमान है तथा पूर्वोक्त महाभारतटीका में शतकिंद्रय को याजुष प्रपाठक कहने से यह निश्चित है
कि नीलकण्ठ पण्डित के समय में भी यजुसंहिता में कद्राध्याय था ही जैसा कि अब है तब ऐसी
दशा में पक्षपात शून्य हो कर यदि देखा जाय तो "यजुसंहिता में ब्यास ने कद्राध्याय को नहीं
रक्खा था किंतु पीछे से किसी ने बनाकर मिला दिया है" इस, उक्त साहेब के वाक्य पर लेशमात्र भी विश्वास कैसे हो सकता है क्योंकि उक्त साहेब, बेदसम्प्रदाय से अत्यन्त बाह्य और बेद
के गूढ़ तात्पर्यों के अज्ञ थे और यही निश्चय होता है कि किसी लौकिक कारण से ऐसी २ निर्मूल
शिक्का उठाते थे। और साहेब ने जी यह कहा है कि "बेद आदि के लोप होने का हमको बड़ा खेद हैं'
इस पर तो बिश्वास किया जाता परंतु यदि उक्त साहेब, किसी कारण से बचे बचाए थोड़े से बेद
भाग पर भी ऐसा २ निर्मूल आक्षेप न करते।

यहां तक जो साहेब का प्रंथ समाछोचित हो चुका है उसकी बिशेषरूप से समाछोचना यह है कि उक्त अपने प्रंथ में वेबर साहेब ने बेद के बिषय में अपनी जो २ संभावना (अटक ब्रां अनुमिति) प्रकट किया है वे संभावनाएं प्राय: पांच रीतियों से बहिर्भूत नहीं हैं इस कारण प्रथम उन पांच रीतियों को दिखछा कर उनके उदाहरणार्थ उक्त साहेब के प्रंथ का तात्पर्य क्रम से छिखा जाता है और उसी के साथ ही साथ उसकी समाछोचना भी की जाती है। पूर्वोक्त पांच

- (१) वेदभागनामवेदोक्तनामच्युत्पत्तिमात्रमृष्ठिका इति प्रथमा विधा ।
- (२) काश्चिच पुराणोपन्यस्तानां कुरुपाश्चालादिनाम्नां वेदोपात्ततादशनायसमा-नानुपूर्वीकत्वमूलिका इति द्वितीया।
- (३) काश्चित्त बैदिकीनामाख्यायिकानां वास्ताविकबृतान्तकथनत्वभ्रममृछिका इति तृतीया।
- (४) काश्चिच एकस्या एव संहिताया ब्राह्मणस्य वा भागानां कचिन्न्यूनत्वं क-चिदाधिक्यमितिबैषम्योपलम्भोत्थापिता इति चतुर्थी।
- (५) काश्चिच कस्याचिदर्थस्य बेदे किचिचचीमात्रेणोछासिता इति पश्चमी। तत्राद्याया विधाया यजुरादौ शुक्कादिशब्दा उदाहरणम् ब्याघ्रोपाख्यानमेव च प्रत्युदा-हरणम्। तथाहि। कश्चिच्छाब्दिकम्मन्यः पान्थः 'पुरःपदव्यां ब्याघः प्रतिवसति तन्मापुरोगा'

॥ भाषा ॥

रीतियां ये हैं कि

- रीति -(१) बेदभाग के नामों के तथा बेदोक्त नामों के अक्षरार्थों की ज्याकरणमात्र के अनुसार लगा करें किसी बिषय की कल्पना करना।
- रीति—(२) पुराणोक्त और बेदोक्त कुरु, पांचाल, आदि नामों के अन्योन्य में एकसा होने मात्र से किसी बिषय की कल्पना करना।
- रीति—(३) बेदोक्त आख्यायिकाओं में यथार्थ समाचार होने के भ्रम से किसी विषय की कल्पना करना।
- रीति—(४) बेद के एक ही संहिताभाग बा ब्राह्मणभाग के न्यूनाधिक होने के ज्ञान से किसी विषय की कल्पना करना।
- रीति—(५) बेद में किसी बिषय की चर्चामात्र होने से किसी नवीन समाचार की कल्पना करना।

प्रथम रीति का उदाहरण, उक्त साहेब का प्रथ यह है कि-

"शुक्र यर्जुर्वेद के विषय में अब हम चले हैं। प्रथम शुक्रयजुः इस नाम के विषय में ऐसा कहना चाहिय कि यह नाम यों रक्खा गया कि इसमें यज्ञों का बर्णन निश्चित रीति, और प्रामाणिक व्याख्यान से अलग किया है और इसमें हमें उन विषयों का जो कृष्णयजुर्वेद में संदिग्ध रीति से मिले जुले बर्णित हैं उत्तम और क्रमपूर्वक विभाग मिलता है। इस रीति से, टीकाकार दिवेदगङ्ग ने (शुक्रानि यर्जूषि) इस वाक्य का अर्थ एक ही संदर्भ में किया है जो शुक्रयजुर्वेदीय बृहदारण्यक के अन्तिम परिशिष्ट में अब तक उक्त वाक्य का यही अर्थ दिखलाता है" इत्यादि (पृ०१६२)

समाछोचना

(१) तैत्तिरीय, खाण्डिकीय, कृष्णयजु और शुक्रयजु आदि नामों में केवल प्रकृति और और प्रस्थय के अनुसार अर्थ लगा कर उसके वल से बेदों और उन नामों को पौरुषेय और आधुनिक

इति तत्रत्येः प्रतिषिद्धोऽपि व्याजिष्ठतीति व्याघ इति शिङ्किष्यति नत्वतः परं किंचित्कारे व्यतीति निश्चित्य निर्विशक्कं कियद्दर्जनो निर्जने गहने बुश्चिक्षितेन कालकरपेन शार्द्लन समुत्ति निश्चित्य निर्विशक्कं कियद्दर्जनो निर्जने गहने बुश्चिक्षितेन कालकरपेन शार्द्लन समुत्ति किम्मान्य च खरतरैनिखाङ्करेरदनेश्च सुहुर्मुहुर्विदार्यमाणो स्नियमाणः सन्,रे रे शुष्कशा-विद्याः शृणुत शृणुत हिंसार्थकोऽपि जिद्यतिरस्ति तद्यं ब्रह्महत्याशानिविनिपानो घागन्धोपादान्वस्त्य सुश्चित्वस्त्य पाणिनेरेवसूर्द्धनीत्यार्चतरमत्युचैश्चुक्षेश्च इति । एतेन तैत्तिरीयखाण्डिकीयकृष्णयजुःशुक्चयजुरादिशव्दानां योगव्युत्पत्तिमात्रमाश्चित्य वेदानां तत्संज्ञानां चाधुनिकत्वाद्युत्प्रक्षा उक्तवेदवाह्येन कृताः पत्युक्ताः । यथाहि स्त्रीकिकीनामाजानिकीनाङ्गोव्याघादिसंज्ञानां न योगव्युत्पत्तिराश्चीयते तथा वेदभागसंज्ञानामपि । अनादौ हि वेदे तद्धागसंज्ञा अप्यनाद्य एव, तथा च तद्गुरोधमात्रमिकिञ्चित्कर्पेव । वैदिकनामनिर्वचनकतानानां निरुक्तादीनामपि, तत्साधुत्वज्ञानात्प्रयोगे पुण्यं भवति, विशेष्यव्यावर्तकत्वित्यानात्त्र । स्त्रीष्ठानानां च संज्ञाश्चदानां लक्षितताद्दशक्तियादिद्धारा विशेष्यव्यावर्तकत्वित्यान

॥ भाष॥ कहना अत्यन्त अनुभवाबिरुद्ध है क्योंकि जैसे गौ, ब्याघ्र आदि छौकिक नामों का अर्थ, केवल प्रकृति और प्रत्यय के अनुसार ब्यवहार में कदापि नहीं लाया जाता वैसे ही बेद के नामों के बिषय में समझना चाहिये। प्रसिद्ध है कि "गम्" धातु का चलना ही अर्थ है जिस से 'गौ' शब्द बनता है परंतु बैठे, सोये, और मरे गी को भी गौ कहते हैं और ' घा" धातु का सूंघना अर्थ है जिस सं ब्याघ्र शब्द बनता है ऐसे ही बेदभागों के नामों का भी केवल प्रकृति प्रत्यय के अनुसार अर्थ नहीं लगाना चाहिये। और निरुक्त आदि में जो बैदिक नामों में प्रकृति प्रत्यय के अनुसार अर्थ कहा हुआ है उसका यह तात्पर्य नहीं है कि उन शब्दों का लोकप्रसिद्ध अर्थ से कोई अन्य अर्थ है किंतु 'प्रकृति और प्रत्यय के ज्ञानपूर्वकही बैदिक शब्द के पाठ से पुण्य और यज्ञसिद्धि होता है " " संज्ञाशब्दों का भी कहीं प्रसिद्ध अर्थ को छोड़कर अन्य अर्थ किया जाता है उसमें कारण यह है कि उस अर्थ का दूसरे शब्द के अर्थ में सम्बन्ध करना आवश्यक रहता है " इत्यादि अनेक तात्पर्य हैं। और बेद के अनादि होने से बेदभागों का तात्तरीय आदि नाम भी अनादि ही हैं तथा पुराणों में जो उन नामों से कथाएं लिखी हैं वे भी आख्यायिकामात्र हैं इस कारण उक्त नामों के द्वारा उन बेदमागों की प्रशंसामात्र में उक्त कथाओं का मुख्य तात्पर्य है न कि अपने अर्थ में। इस बिषय में एक आख्यायिका भी कहने याग्य है कि "एक बज्जबैयाकरण पथिक से राह में श्रामीण मनुष्यों ने कहा कि इस राह से न जाइए अगाडी एक बाघ रहता है। बैयाकरण ने यह बिचार किया कि "बाघ" शब्द ब्याघ शब्द का अपभ्रंश है और "ब्याघ्र" 'घा' घातु से सिद्ध होने के कारण सूंघनेवाले को कहता है इस सिद्धान्त से ज्याघ्र यदि आवेगा तो मुझे सूंघ कर चला जायगा इससे अधिक कुछ नहीं कर सकता। ऐसा बिचार कर पुन: उसी राह से चला जब निर्जन बन में पहुंचा तब काल के तुल्य कराल उस भूखे ब्याघ्र ने उस बैयाकरण पर आक्रमण कर दांतों से काट २ कर उसे खांन लगा और उस बैयाकरण ने चिल्ला कर कहा कि अरे रे ! शुक्क-बैयाकरणों ! सुनियो २ ' घा ' घातु का प्राण लेना भी अर्थ है, इस कारण यह ब्रह्महत्या का पाप उस विश्ववैरी पाणिनि (ब्याकरण के कर्ता) ही के शिर पर है जिसने कि " घागनधोपादाने" (१) (बा घातु का स्वना अर्थ है) अपने घातुपाठ में कहा है" इति।

१ बज़बयाकरण ही होने से उसकी यह ज्ञान नहीं या कि पाणिनीय घातुपाठ में अर्थ नहीं पठित है किंडे

दितात्पर्यकत्वमेव नतु सर्वत्रेव रूढिमवधीर्य योगशक्तिरेवादरणीयेत्यपि तेषां तात्पर्यम् । तथामित लोकव्यवहारविरोधमसङ्गात् । यदा चाधुनिकीष्विप तत्तद्भाषाघटिकासु सञ्ज्ञासु विना यत्नविशेषमन्वर्थता नाश्रीयते तदा किम्रु वक्तव्यमाजानिकीषु तासु विनैव यत्नविशेषमाश्रीयतुं सा न शक्योति ।

यथा तेनैव

अथ ब्राह्मणप्रन्थप्रसङ्ग इत्युपक्रमे बैदिक्याः सभ्यताया ज्ञानोन्नतिपरिवर्तनस्य च कालात्प्रभृति ब्राह्मणलोकानां दार्ज्ञानिकसामाजिकशक्तिबिशेषाविभीवसमयपर्यन्तस्य स-मयस्य षध्ये ब्राह्मणबेदभागानां रचनाऽभूत्। किंच तान्येव ब्राह्मणानि तदा रचितानि प्रोक्तसभ्यताऽऽदिपारिवर्तने कारणान्यभूवन्, तत्रापि कतिपयानि ब्राह्मणान्युक्तसमयस्यारम्भे कतिपयानि च समाप्तिसमये रचितानि। तत्तदृषीणां विभिन्नतत्तन्मतानुसारेण या याः किं-वदन्त्यस्तेषां कुलेषु तच्छिष्येषु च पितृपितामहादिपरम्पराऽनुसारात्मचरिता आसँस्ताएव ॥ भाषा ॥

(२) यदि यह भी स्वीकार कर लिया जाय कि तैत्तिरीय आदि नामों का प्रकृति प्रत्यय के अनुसार ही अर्थ है तो भी बेद, आधुनिक बा पौरुषय नहीं हो सकता क्योंकि तित्तिरि आदि अधि, जिन बेदभागों का अध्यापन करते थे अथवा तित्तिरि आदि के छात्र जिनको पढ़ते थे उन बेदभागों के तैत्तिरीय आदि नाम हैं और तित्तिरि आदि शब्दों का कोई व्यक्तिविशेष अर्थ नहीं है यह पूर्व में कहा जा चुका है।

प्रथम, तृतीय और चतुर्थ रीति का उदाहरण, साहेब का प्रथ यह है कि— "पृ० १५ अब हम बैदिक निबन्धों के द्वितीयभाग अर्थात् ब्राह्मणग्रंथों का प्रसंग चलाते हैं। पृ० १६। इनके निर्माण समय, बैदिक सभ्यता और ज्ञानोन्नित के परिवर्तन काल से ले कर जब ब्राह्मण लोगों की दार्शनिक और सामाजिक नीति के बर्ताव निकले इसी अन्तराल में हुए हैं, नहीं बरूक वे उस परिवर्तन के होने में सहाय हुए हैं, उनमें से कई एक तो उसके आरम्भ समय से संबन्ध रखते और दूसरे उसके समाप्ति समय से। ब्राह्मण प्रन्थों की नेवें प्रत्येक ऋषियों के भिन्न २ मतानुरूप, जो कहावते, उनके कुळ और शिष्यगणों में सुरक्षित और न्यूनतापूर्तिसहित चळी आती थीं उनसे पड़ी। ये कहावतें जितनी अधिक भिन्न २ होती गई वैसे ही अधिक आवश्यकता इनकी एकवाक्यता करने की हुई। इसी तात्पर्य से, ज्यों २ समय बीतता चला त्यों २ इन विषयों की विचित्रतावाले और जिनमें हर एक बिषय के भिन्न २ मत अपने निर्माताओं के नामसहित सम्पूर्ण इक है किये हों ऐसे संप्रह भिन्न २ देशों में इस प्रकार की रचना में परम निपुण मनुष्यों ने बनाए। परन्तु इस बात का निश्चय नहीं है कि ये संप्रह उस समय यथाबिधि लिखे गये थे अथवा मुखद्वारा ही एकसे दूसरे को बतलाएं जाते थे पिछले अनुमान का संभव अधिक होता है क्योंकि एक ही बंध कें हमलोग ऐसे दो पाठ कहीं २ पाते कि जिनके आश्य का बिस्तर सर्वथा भिन्न है। परन्तु इस विषयपर कोई बात निश्चित करके नहीं कही जा सकती, क्योंकि उन शखों में सम्भव है कि मुख्य प्रनथहीं में कुछ तालिक भेद हुए हों, अथवा वे बात नई बनाकर डालदी गई हों। और भी यह स्वाभाविक देख पड़ता है कि इन प्रथकारों में परस्पर बिवाद भी मतमेद से हुआ हों। इसी हेतु इमको कभी २ यह देख पड़ता है कि प्रथकर्ताओं ने अपने विरुद्धमतावलम्बी लोगों के मत के ब्राह्मणभागानां मूळतां प्राप्ताः । ताश्च किंवदन्तः कालक्रमेण यथा यथा भेदान् प्राप्तास्तथा तथा तासामिवरोधाय प्रतिविषयं स्वस्वाचार्यनामोल्लेखपुरस्सरं तानि सङ्कल्प्य ब्राह्मणान्तराराण्यपि परमिनपुणैर्ब्वाह्मणेर्यन्थरूपेण रचियत्वा तेषु तेषु देशेषु प्रचारितानि । ते च संग्रहग्रन्थास्तदानीं लिखिता नवेति न निर्णेतुं शक्यते, एकस्मिनेव ग्रन्थे विषये च भिन्नभिन्नतात्पर्यकपाठभेददर्शनाचु न लिखिता इति संभाव्यते किंच ब्राह्मणभागेषु गृहीतनाम्नां ग्रन्थकृतां तत्रैव मतभेदस्याप्युपन्यासात्तेषां मिथोविवादोऽभूदित्यपि संभाव्यते अत्वष्वैकेन केनचिद्राह्मणग्रन्थेन वाधिता अपरे छुन्ना इति स्वेदः । किंच शुक्रयजुर्वेदस्य ब्राह्मणे पूर्वे षष्टिरेवाध्याया आसन् इदीनीं तु शतमध्याया उपलभ्यन्ते इत्युक्तम् ।

इह प्रथमं प्रथमा, ततो दितीयिक श्रेत्यादिना तृतीया, ततोऽपि किंचेत्यादिना चतुर्थी, विधा स्वीकृता बाह्येन । तत्र प्रथमा तावद्वाह्मणताण्ड्यादिपदश्चितमूळा । सा च बोपप्यते,

प्रित बड़ी शत्रुता प्रकट की हैं। इनमें से कई एक प्रंथों में जो औरों की अपेक्षा अधिकतर गौरव पाया, चाहे इसका हेतु उन प्रथों की अभ्यन्तरीय योग्यता हो, अथवा उनके प्रन्थकर्ती धर्माचरण में अधिक प्रवृत रहे हों, उसका परिणास ऐसा हुआ कि केवल वेही बचे रहे और खेद की बात है जा उनके प्रतिपक्ष सत्तवाले प्रंथ बहुधा लुप्त हो गए। सम्भव है कि हिन्दुस्तान में कहीं २ कुछ खण्ड उनके मिल सकें, परन्तु हर एक बिषय के हिन्दुस्तानी निवन्धों की मांति, इसमें भी हम लोगों को बड़े खेद का बिषय यह है कि, जो प्रंथ अन्त में बिजयी हुए वेही प्राय: अपने से प्राचीन प्रंथों के बदले समझे गये और उन अपने प्राक्तनों को जड़मूल से नष्ट कर बैठे।

पृ० १९ । ग्रुक्त्यजुर्वेद का ब्राह्मण तो, इसके विरुद्ध अपनी संहिता का एक प्रामाणिक ब्याख्यान अर्थात् टीका समझा जा सकता है, यह संहिता की आनुपूर्वी का अनुसरण ऐसा लगातार करता है कि यदि एक वा दो ऋचाओं को यह छोड़ दे, तो हम लोग इस निगमन करने में निर्दोष ठहरते हैं कि उस समय में ये ऋचाएं संहिता में नहीं डाली गई थीं। इस ब्राह्मण में एक परिशिष्ट प्रथ भी संहिता के उन अध्यायों के निमित्त मिलाया गया है कि जो इसके आदि में संप्रह समय से पश्चात् इसमें मिलाए गए हैं, यहां तक कि साठ ६० अध्याय जो मालूम होता है कि पहिले थे उनके बदले अब इस ब्राह्मण में १०० अध्याय मिलते हैं।

साहेब के प्रनथ के इस उद्धृत भाग में आदि से "नई बनाकर डालदी गई हो" यहां तक उक्त प्रथम रीति है। और वहां से "नष्ठ कर बैठे" यहां तक उत्तीय रीति है। तथा वहां से अन्त तक चतुर्थ रीति है।

यथाक्रम समालोचना ।

(१) ब्राह्मण और लाण्ड्य आदि शब्दों के अर्थानुसार जो २ संभावनाएं साहेब की हैं एक भी ढांक नहीं हैं क्योंकि पूर्व ही बेददुर्गसज्जन में भली भांति यह सिद्ध हो चुका है कि जिन बेदभागों को कठ आदि ने अध्यापन किया उन बेदभागों का उस अध्यापन ही के कारण काठक आदि नाम पड़े न कि कठ आदि के रिवत होने से, ऐसे ही ब्राह्मण आदि संज्ञा भी अनादि और ताण्ड्य आदि संज्ञा अध्यापन ही के कारण प्रसिद्ध हैं न कि रचना के कारण। तथा इस बिषय में युक्ति और प्रमाण बहुत से पूर्व हीं दिखला दिये गये हैं उनको वहीं देखना चाहिये।

ब्राह्मणादिसञ्ज्ञाया अनादित्वस्य ताण्ड्यादिसञ्ज्ञायाश्च काठकादिवद्ध्यापनमिहमनिवन्धनताया वेददुर्गसज्जने पूर्वमव बहुन्नः प्रतिपादितत्वात्। रचनानिवन्धनत्वयव तासां कुतो न स्या-दिति चेत्, तिई पवचनम् छकत्वं रचनाम् छकत्वं वा ताद्यानां सञ्ज्ञानामिति विचारे पवचनस्य वैदिकेन वाह्यन चाभ्युपेतत्वाच्देवमू छं भवितुमहीत नतु रचना, वैदिकेवंदे तदनभ्युपममात्। किंच वाह्योक्तं वेदे विशिष्य रचनाऽजुमानमनुपदमव निराकृतम् । सामान्यतो वेदे पौरुषेय त्वानुमानं तु वेदापौरुषेयत्वसाधनावसरे वेददुर्गसज्जन एवानेकधा निराकृतमतो रचना, वेदे स्वयमेव निर्मू छा सती नतरां ब्राह्मणादिसञ्ज्ञानां मूछतामनुभवितुं प्रभवित । यदाच रचनै-वासिद्धा तदा तत्समयविशेषसंभावना दूरपछायितेवित ब्राह्मणभागानां क्रमिकौ द्रासप्रचा-रितश्यावेव ज्ञानाद्युश्चतिपरिवर्तनिदानत्वेन व्यवस्थितावित्येव युक्तम् । अपिच कल्पादौ-छित्वितपुस्तकानामछाभे किमाश्चर्यं का वा क्षतिः । तदानीन्तनानां हिरण्यगर्भादीनां महान सुभावानामन्तःकरणेषु शब्दात्मनो वेदस्य स्मरणात्मनैव स्थैर्यस्य सर्ववैदिकसंमत्तवात् ।

प्रव—यदि यह कहा जाय कि रचना ही के कारण ब्राह्मण, ताण्ड्य आदि बामः पड़े तो इसमें क्या बाधक है ?

उ०—(१) यह बाधक है, जब कि अध्यापन और रचना दोनों ब्राह्मण आदि नामों के मूल हो सकते हैं तब यह बिचार करना चाहिय कि दोनों में से कौन मूल है १ और इस बिचार में निष्पक्षपात निर्णय यही हो सकता है कि जब वादी (साहेब) और प्रतिवादी (बैदिक पुरुष) दोनों को यह स्वीकृत है कि ब्राह्मणबिशेष ताण्ड्य आदि, बेदमागों के अध्यापक थे तब ऐसी दशा में अध्यापन ही ताण्ड्य, आदि नामों का मूल कारण हो सकता है क्योंकि अध्यापन दोनों वादियों के प्रति, सिद्ध अर्थात् निर्विवाद है। और रचना तो कदापि ब्राह्मण ताण्ड्य आदि नामों का मूलकारण नहीं हो सकती क्योंकि बेद की रचना बैदिकों को स्वीकृत नहीं है जिस की उपपत्ति पूर्व हीं बेददुर्गसज्जन में कही जा चुकी है और बेद की रचना जब दोनों वादियों को सिद्ध नहीं है तब मध्यस्थ पुरुष कैसे रचना को ब्राह्मण ताण्ड्य आदि नामों का मूल कह सकता है इससे मध्यस्थ पुरुष ऐसी दशा में बैदिक पुरुष ही को बिजय देगा।

उ०—(२) बेद में विशेषरूप से रचना का अनुमान जो वेवर साहेब ने पूर्व में किया उसका खण्डन भी विशेषरूप से वहीं कर दिया गया। और सामान्यरूप से बेद के पुरुषरचित होने का अनुमान तो पूर्व हीं बेददुर्गसज्जन में अनेक प्रकारों से खण्डित ही हो चुका है तब ऐसी दशा में जब बेद के विषय में रचना आप ही निर्मूछ है तब वह कैसे ब्राह्मण ताण्ड्य आदि नामों का मुलकारण हो सकती है, और ऐसी दशा में ऐसे नामों के अनुसार उक्त साहेब की, बेदरचना के विषय में समयविशेष की संभावना तो बहुत ही दूर भाग जाती है तथा इसी कारण से यह सिद्धान्त है कि बेद के ब्राह्मणभागों का अतिशय प्रचार और हास होना ही, ज्ञान धर्म आदि के उन्नति और अवनति रूपी परिवर्तन का अकेला कारण है न कि रचना।

स॰—(२) आदिसृष्टि के समय लिखित पुस्तकों के न होने से मैं नहीं समझता कि आश्चर्य क्या है ? और हानि भी क्या है ? क्यों कि उस समय शब्दरूपी बेद, ब्रह्मदेव आदि अनेक महानुभावों के हृद्यों में जब स्मरणरूप से अटल स्थित था तब उसके बिगड्ने की शङ्का ही क्या

अनादिपरम्परया महर्षीणां तच्छिष्याणां च हृद्येषु बेदस्यावस्थितिर्वाह्योक्ता त्वनादितामेव बेदस्योपपादयन्ती भूषणमेव बेदस्य न जातु दूषणम्। अन्यच नाई मतभेदविरोधनिरासाय कान्यपि ब्राह्मणानि केनापि रचितानि, रचितत्वस्य ताभ्यो निराकृततया किंवदन्तीनां बेदा-त्मिकानामापाततः प्रतिभासमानस्य भेदस्य गूढतात्पर्यानुसारेण पारमार्थिकविषयाभेदस्य चानादित्वात् । अपरं च, पाठभेदो हि न ग्रन्थस्य दोषः किंत्वध्येतृणामेव । एवं तृतीयाऽपि विधा कपूरितैव । लौकिकीनामिव वैदिकीनामप्याख्यायिकानां स्ववाच्यार्थे तात्पर्याभाव-स्यासकृदाबेदितपूर्वतया ततो मिथोबिरोधाद्यर्थकल्पनाया आकौशलकम्लकत्वात्। किंच ब्राह्मणग्रन्थानां वस्तुतस्तात्पर्यविरोधाभावेन बाध्यवाधकभावस्यैवाभावात्तस्य ब्राह्मणग्रन्थ-लोपप्रयोजकतोपवर्णनमपि न समीचीनम्। लोपस्तु प्रकृते हासापरयर्थायो "जन्मसंस्कार-विद्यादे" रित्यादिपूर्वोपन्यस्तन्यायाचार्यकारिकोक्तेभ्यो जन्मादिहासेभ्य एवेति कालपरि-पाकवल्रनिमीलिते विषये को नाम खेदः। एवम् अन्तिमिकंचेत्याद्युदिश्वता तुरीयाऽपि वि-॥ भाषा ॥

हो सकती है और छेख का क्या ठिकाना है क्योंकि बेदप्रनथ, छिखित होते २ बहुत से छुप्त ही हो गए जो कि पुन: किसी समय पर उक्त महानुभावों के हृदयों से ही प्रकट होंगे।

सः - (३) यह कथन साहेब का कि महार्षियों और उनके शिष्यों के हृद्यों में बेद की स्थिति थी, बेद की अनादिता ही सिद्ध करता है इस कारण भूषण ही है न कि कोई दूषण।

स०-(४) यह कथन भी साहेब का कि मतभेदकृत बिरोध को शान्त करने के लिए किसी ने ब्राह्मणभाग प्रथों की रचना की, ठीक नहीं है क्योंकि रचना का पूर्व में शतशः खण्डन हो चुका है। जिन बेदोक्त कहावतों से साहेब को ऋषियों के बिरोध और मतभेद का भ्रम हुआ है वे कहावतें आख्यायिकामात्र हैं जैसा कि पूर्व में अनेक बार कहा जा चुका है और यह भी अनेक बार कहा गया है कि "बैदिक आख्यायिकाओं का, बृतान्तरूपी अपने राज्यार्थ में छीकिक आख्यायिकाओं की नाई मुख्य तात्पर्य नहीं होता " इसी से उक्त कहावतों का अपने मुख्य तात्पर्यों में सहानुभूतिही है न कि भेद वा बिरोध।

स०—(५) पाठभेद, पढ़नेवाळों ही के प्रमाददोष से होता है चस दोष को बेद पर

आरोप करना निर्मूछ ही है।

स०—(६) अनन्तरोक्त युक्ति ही से साहेब की तृतीय रीति भी स्पष्ट ही खिखत हो गई क्योंकि जब बैदिक आख्यायिकाओं का अपने अक्षरार्थ में मुख्य तात्पर्य ही नहीं है तब उसके अनुसार ऋषियों के बिरोध आदि की कल्पना करना, बैदिक दर्शनों के परिचय न होनें के कारण ही से है।

स० —(७) जब ब्राह्मणप्रथों के इतिहासमागी का, पूर्वोद्धत मीमांसादर्शन के अनुसार अयने २ शब्दार्थों में मुख्य तात्पर्य ही नहीं है किंतु प्रशंसाही में मुख्य तात्पर्य है तब उनके अन्योन्य में विरोध का संभव ही नहीं हो सकता और ऐसी दशा में साहेब का यह कथन, कि बिरोध के कारण, एक २ ब्राह्मणप्रंथ के प्रचार से अन्यान्य ब्राह्मणप्रंथों का लोप हो गया, अनुचित ही है। लीप तो प्रचार के न्यून होने को कहते हैं न कि नाश को क्यों कि बेद तो नित्य है उसका नाश नहीं हो सकता। और उक्त छोप का कारण भी समय का परिवर्तन ही है जैसा कि बेददुर्गस्जना CC-0. Ankur Joshi Collection Gujarat. An eGangotri Initiative

घा, ग्रुधामबोधा बोध्या। तथाहि। ये तावचत्वारिश्वदध्याया इदानीन्तना अतिरिच्यन्ते ते पूर्वस्मिन्कियति समय हामयनुभूय सम्मित मचारमाप्ता इत्येतावर्तव सामज्ञस्य संभवित तेषां
नवनिर्मितत्वमेवेत्याग्रहे न किमिप प्रमाणम्। पूर्वे तेषामदर्शनस्य सम्भदायहासनान्यथासिद्धत्वात्। रचनाकालस्य रचियत्थ विशिष्य निर्णयाभाषदशायां तथास्वीकारस्यैवौचित्यावर्जितत्वाच। किंच हासोऽपि न युगपत्सर्वदेशपुरुषव्यापी महामलयादन्यदा भिवतुमहिति। तथाच केषुचिद्देशेषु पुरुषेषु च हिता अपि ते चत्वारिश्वदध्याया देशान्तरीयपुरुपानतरीयस्वमचारसङ्क्रमणेन हासस्थानेषु देशेषु पुरुषेषु च भूयोऽप्युद्दीपितमचाराःसंतीत्येव कुतो न कल्प्यते। योरपादिषु देशेषु पूर्वमसताऽपि वेदमचारेण साम्मतमनुभूयमानेन
निद्शिनीभूय तादशकल्पनायामानुकूल्यपरिशीलनादित्यलं प्रलवितेन।

यदिप तेनेव

'ऋग्वेद' इत्युपक्रमे शाकलीतिसंहिताऽभिधानानुरोधादेव शाकल्यस्य सम्बन्धः संहितायां परिस्फुरति । यास्कोऽपि शाकल्यमृक्संहितायाःपदपाठस्य निर्मातारमाहस्स । शु-

के अन्त में प्रतिपादन हो चुका है तो ऐसी दशा में कालकृत बेदलोप से प्रश्नाताप (खेद) करना बिबेकी का काम नहीं है।

स०—(८) ऐसे ही चतुर्थ रीति भी ठीक नहीं है क्योंकि उक्त ब्राह्मण के जिन चालीस अध्यायों को साहेब नवीन कहते हैं उनके बिषय में यह कहा जा सकता है कि बहुत पूर्व समय में उन अध्यायों का अध्ययन अध्यापनरूपी प्रचार था, और मध्य में कुछ काल तक उक्त प्रचार छप्त हो गया था पुन: प्रचार हो गया इस हास और प्रचार में कारण भी कालवश पुरुषशक्ति आदि की उन्नति और अवनित ही है जैसा कि बेददुर्गसज्जनमें बिस्तर से निर्णय हो चुका है, तो ऐसी दशा में "ये चालीस अध्याय नवीन रचना कर मिला दिये गए हैं" यह साहेब का आप्रह निर्मूल और अनुचित ही है।

स०—(९) जब खं साहेब ही के वाक्य से यह सिद्ध है कि उक्त अध्यायों की रचना का समय और कर्ता का निर्णय नहीं हो सकता कि इन अध्यायों को कब और किसने बनाया, और रचना का खण्डन भी पूर्व में दढ़तर प्रमाणों से हो चुका है तब ऐसी दशा में उक्त अध्यायों का कदाचित् प्रचार और कदाचित् छोप ही की कल्पना करना उचित है निक नवीन रचित कहना।

स्र (१०) प्रचार का हासरूपी लाप भी बेद का, महाप्रलय को छोड़ कर कदापि सब देश और सब पुरुषों में नहीं हो सकता और ऐसी दशा में यही करूपना करना क्यों डिचत नहीं है शि जैसे योरूप देश में बेद का प्रचार जहां तक पता चलता है पूर्व में कदापि कुछ भी नहीं था परंतु अब दूटी फूटी रीति से कुछ २ होने लगा ऐसे ही उक्त ४० चालीस अध्याय, किसी २ देश और समयों में न पढ़े पढ़ाये जाते रहे और पश्चात् उनके पढ़ने पढ़ाने का प्रचार हो गया हो।

"पृ० ४३ पहिले, ऋग्वेद के विषय में, ऋग्वेदसंहिता के द्विधाभाग देख पड़ते हैं एक तो, केवल उस प्रंथ की उपरी बातों के अनुसार हुआ है और स्पष्ट बूझ पड़ता है कि बहुत नवीन है। दूसरा अभ्यन्तर विषयों पर निवद्ध है और उस से आति प्राचीन है। पृ० ४६ से ४८ तक, शाकलों के नाम से ही स्पष्ट ज्ञात होता है कि इनका सम्बन्ध शाकल्य ऋषि से है जिसकी चर्चा क्रयजुर्वेदस्य ज्ञतपथब्राह्मणे तु, विद्ग्योपनामकः शाकल्यो याज्ञवल्क्यस्य समये विदेहराजस्य जनकस्य सभायां स इवाध्यापकस्तत्मित्स्यर्जी च अध्व। याज्ञवल्क्यश्च तं पराजित्य श्र शाप, तेन च तस्य शिरो निपपात, तस्यास्थीनि च चौरा अचुचुरिक्षिति कथाऽस्ति । एवं तस्यैव ब्राह्मणस्य द्वितीयभागे वार्किलनोऽप्यध्यापका चक्ताः । शाङ्खायनारण्यकेऽपि 'अज्ञीतिसाः इसं वार्किलनो बृहतीरहरहरिभसम्यादयन्ती' त्युक्तम् । ऐतरेयारण्यके तु 'वार्किलनो वे अर्किलन' इत्युक्तम् । पुराणेषु तु शुनकानां संवन्धित्वेन शाकला चक्ताः । शौनकेन च ऋग्येदगुप्तये ऋषिच्छन्दोदेवताऽज्ञवाकस्त्रकानुक्रमणी, बृहदेवता, ऋग्वेदपातिशाख्यम्, ऐतरेयकसंवन्धि स्मार्तस्त्रं, कल्पसूत्रं, च रचितानि । स्विशिष्योणश्वलायनेन रचितङ्कल्पसूत्रं दृष्ट्या तु तेन स्वीयङ्कल्पसूत्रं लोपमण्यापितमित्यपि केचन वदन्ति । तत्रैकेनैव शौनकेनैतानि सर्वाणि रचितानीति न संभाव्यते किंतु शाकलसंहिताया द्वितीयमण्डलमेव शौनकेनैतानि सर्वाणि रचितानीति न संभाव्यते । एवमपि च वदन्ति, यत् अयं स एव शौनको यस्य यज्ञमहोत्सवे वेशम्पायनस्य पुत्रः सौतिर्महाभारतकथां आवयामास । वेशम्पायनोऽपि पूर्वमेव किस्मिश्चिदवसरे भारतीयामच कथां हरिवंशसिहतां जनमेनयं आवयामासेति । अतश्च शुनकवंशः प्राचीनग्वेदिषिवंशानां संवन्धी सच नूतनेऽपि समये महर्षिसभायामभ्यिहित आसीत्, आश्वलायनग्रोः शौनकावैतिमानं सवन्धी सच नूतनेऽपि समये महर्षिसभायामभ्यिहित आसीत्, आश्वलायनग्रोः शौनकावैतिमानं प्रति यज्ञकर्तुः शौनकस्याभेदश्चत्यर्थाळभ्यते । तथा श्रक्र-

ब्राह्मणप्रंथों और सूत्रों में प्राय: आती है। यास्क ने इन को ऋक्संहिता के पद्पाठ का निर्माता कहा है ग्रुक्टयजुर्वेद के ब्राह्मणप्रथ अर्थात् शतपथं में कहे हुए ब्रुतान्तों के अनुसार एक शाकल्य जिसका उपनाम विदग्ध था याज्ञवल्क्य ऋषि के समकाल बिदेह के राजा जनक की सभा में एक अध्यापक की भांति रहते थे और याज्ञबल्क्य के प्रसिद्ध शत्रु और प्रतिस्पर्द्धी थे। याज्ञबल्क्य ने उनको पराजित करके शाप दिया उनका शिर गिर पड़ा और उनकी हिंडुयों को चोरों ने चुरा िखा। बार्किल भी (जिसको लोगों ने बाष्किल का अपभ्रंश बना दिया है) उन अध्यापकों में से एक का नाम है कि जिनकी चर्चा शतपथ ब्राह्मण के द्वितीय भाग में की है। पुराणों में शाकलों का नाम शुनकों के सबन्ध में आता है। और बिशेष करके शौनक को लोग एक प्रथसमूह का निर्माता कहते हैं कि जिसको उन्हों ने (ऋग्बेदगुप्तये) ऋग्बेद की रक्षा के लिए रचा जैसे कि, ऋषियों, छन्दों, देवताओं, अनुवाकों, और सूक्तों की एक अनुक्रमणी एक बिधान ऋचाओं और उनके अंगों का, पूर्वीक्त बृहद्देवतानामक यंथ, ऋग्बेद का प्रातिशाख्य, एक स्मार्तसूत्र, और एक कल्पसूत्र भी रचा, जिसका संवन्ध मुख्य करके ऐतरेयक से था। और जिसको उन्हों ने अपने शिष्य आश्वलायन का रचित कोई और कल्पसूत्र देखकर छप्त कर दिया। पहिले तो यह संभव नहीं है कि ये सारे ग्रंथ एकही व्यक्ति शौनक के रचे हुए हों। तथापि वे, कुछ न कुछ निश्चय है, कि उनके संप्रदाय से संवन्ध रखते हैं। परंतु इससे अधिक यह भी पता लगता है कि दूसरा मण्डल संहिताही का उन्हों ने रचा है, और यह भी लोग कहते हैं कि वह वही शौनक थे कि जिसके यज्ञमहोत्सव में, बैशम्पायन के पुत्र सौति ने महाभारत की कथा कही बैशम्पायन ने पृहिले किसी अवसर में इस कथा को हरिवंश के सहित जनमेजय (दूसरे) को सुनाया था इन दोनों बर्णनों में से पहिला तो यह सिद्ध करता है कि शुनकों का वंश ऋग्वेद के प्राचीन ऋषिवंशों

यजुर्वेदब्राह्मणे द्वौ शौनकालुपलभ्येते तत्र प्रथम इन्द्रोतनामा यो महाभारते जनमेजययक्के पौरोहित्येनोक्तः द्वितीयस्तु स्वैडायन उदीच्य इत्युक्तम् ।

अत्रोच्यते । पदपाठो न संहिता किंतु तत्पाठिक्रयाया रीतिविशेष एव इति शाकल्यस्य पदपाठप्रवर्तियतुः प्रवचनिमित्तप्य संहितायां सम्बन्धो नतु सङ्कलनानिमित्तकः । किंतु वेदाभ्यासातिश्वाद्याद्यायां कथाऽप्याख्यायिकैवेति तस्या न वाच्यार्थे मुख्यं तात्पर्यन् किंतु वेदाभ्यासातिश्वाद्याद्यायाः श्वामापि मान्यो भवति, वेदाभ्यास्यायताद्वशातिश्याभाववतस्तु पुरुषांस्तच्छत्त्रं स्तादिष्टःशिरःपातपयन्तोऽप्यनर्थ आक्रामिति, तद्द्रेष्यास्थ्रां च नाग्निसंस्कारः किंतु चार्रेहरणिमत्यन्तिष्टिरपि तद्द्रेषिदेहेर्दु र्रुभा भवतीतीद्दशं वेदस्य महात्म्यम् । स्पर्दा च ब्राह्मणैः सह न कार्या यतस्तस्याविश्वरः पातपर्यन्तं फलम् किंतु शान्तिरेव सदाऽनुसरणीया । राज्ञा चापशान्तोऽपि ब्राह्मणो वेदाभ्यासीचेत्सेवनीय पवेत्यादिकं तात्पर्यमिति तत्रत्याः शाकल्यजनकयाज्ञवल्यादिश्वद्या न कस्याश्चिद्वयक्तिविशिष्य

॥ भाषा ॥

से संबन्ध रखता था, तथा यह भी सूचन करता है कि नवीन काल में यहां तक चला आया कि बिद्धान् ब्राह्मणों की सभा में एक अत्युत्तम पदवी को प्राप्त हुआ। और दूसरा बृतान्त यह बोधन करता है कि इस बात के मानने में कोई साक्षात् प्रतिबधक नहीं देख पड़ता कि आश्वलायन का अध्यापक शौनक और नैमिषारण्य में यज्ञ करनेहारा शौनक ये दोनों एक ही हैं। पुन: शुक्त्यज्ञ के ब्राह्मणप्रंथों में. हमे दो भिन्न २ शौनक बार्णत देख पड़ते हैं, एक तो इन्द्रोत, जिसने महाभारत की कथानुसार पहिले जनमेजय के यज्ञ में पुरोहित का काम किया था, दूसरा खैडायन, औदीच्य अर्थात् उत्तरदेश का निवासी। (इस प्रनथ में पूर्बोक्त तृतीय रीति है)।

समालोचना

(१) पदपाठ का, संहिता नाम नहीं है। संहिता, संग्रह का नाम है और पदपाठ तो पढ़ने की रीति अर्थात् पदच्छेद को कहते हैं इससे यह सिद्ध है कि संहिता शाकल्य की की हुई नहीं है किंतु ब्यास ही की की हुई है। शाकल्य ने तो पदपाठ का संप्रदाय चलाया इतने मात्र से काठक आदि नामों के नाई इस संहिता का नाम शाकली है।

(२) साहेब ने जो शतपथ ब्राह्मण की कथा लिख दी है वह आख्यायिकामात्र है अन्य आख्यायिकाओं की नाई उसका भी अपने अक्षरार्थ में मुख्यतात्पर्य नहीं है किंतु यह तात्पर्य है कि बेद के अधिक अभ्यास से वचन में ऐसी शक्ति उत्पन्न होती है कि जिस से बेदाभ्यासी पुरुष जिसको जो कह दे उसको वहीं हो जाय जैसे शत्रु का शिर गिरजाना इत्यादि और बेदाभ्यासी पुरुष राजाओं का भी माननीय होता है तथा बेदाभ्यासी के शत्रुपुरुषों पर शिरगिरजाना आदि अनेक अन्ध, आक्रमण करते हैं यहां तक कि मरने पर उनकी हिष्टुयों को अभिसंस्कार भी दुर्छभ को जाता है और उन हिष्टुयों को चोर चुरा ले जाते हैं, ऐसा बेदाभ्यास का महात्म्य है। ब्राह्मणों हो जाता है और उन हिष्टुयों को चोर चुरा ले जाते हैं, ऐसा बेदाभ्यास का महात्म्य है। ब्राह्मणों के साथ सबको शान्ति से रहना चाहिये, स्पर्धा (तुल्यता का अभिमान) नहीं करना चाहिये क्योंकि के साथ सबको शान्ति से रहना चाहिये, स्पर्धा (तुल्यता का अभिमान) नहीं करना चाहिये क्योंकि करना जाते के साथ सबको शान्ति से रहना चाहिये, स्पर्धा (तुल्यता का अभिमान) कहीं करना चाहिये क्योंकि करना सत्कार ही करना चाहिये। यही सब उक्त शतपथ कथा के तात्पर्य हैं। तब भी राजाओं को उसका सत्कार ही करना चाहिये। यही सब उक्त शतपथ कथा के तात्पर्य हैं।

वाचका इति कुतस्तरां ततो व्यक्तिविशेषस्य कालविशेषस्य वा निर्दारणं संभवतीति ताहश कथोछेलश्रमो ब्यर्थ एव बेदबाह्यस्य । इयंच पूर्वोक्ता तृतीया विधा । किंच बेदे कस्यापि भाब्दस्य न काचिदनित्या ब्यक्तिरथीं, बेदस्य नित्यत्वात् किंतु जातिरेव नित्या पदार्थ इति पूर्वमेवौत्पत्तिकसूत्रमुपन्यस्योपपादितम्। सिद्धान्तितं च पूर्वमीमांसादशेने १ अध्याये ३ पादे 'आकृतिस्तुक्रियार्थत्वात्'॥ ३३॥ इति सूत्रेण जातीनामेव पदार्थत्वं नतु व्यक्तीनामिति भगवता जैमिनिना । अस्य च सूत्रस्य, क्रियार्थत्वात् क्रियाप्रयोजनत्वात् आकृतिः जातिः पदवाच्येतियोजना । अयं भावः। ब्यक्तिशक्तिवादिनाऽप्यवश्यं जातिर्भासत इति वाच्यम्। अन्यथा 'इयेनचितंचिन्वीते ' ति बैदिकवाक्यार्थानुपपत्तेः। तथाहि। धात्वर्थे इयेनः किं करण-त्बेनान्वेति उत कर्मत्वेन। नाद्यः कर्मण्यग्न्याख्यायामिति हि पाणिनिस्त्रम्। कर्मवाचके इये-नादिरूपे उपपदे धात्वर्थेऽपि कर्मणि अग्न्याख्यस्थण्डिलसंज्ञायां कर्तव्यायां चिनोतेर्घातोः किए स्यादिति तदर्थः । इत्थं चोक्तसूत्रानुसारेण इयेनशब्दस्य इयेनसदृशे छक्षणां स्वीकृत्य इयेनसहशं चीयमानं स्थिण्डिलं चयनिकयया भावयेदिति वाक्यार्थः संपद्यते । करणत्वेनान्वयेतु कर्मवाचकोपपदाभावेन निरुक्तसूत्रविरोधः अतोऽवश्यं कर्मत्वेनान्वये सदशळक्षणया कर्मत्वं इयेनपदार्थस्य संपादनीयम्। चयनिक्रयायाः फलं इयेनसाह्यम्। ताह्यगुणस्यैव 'इयेनचितं चिन्वीत स्वर्गकाम' इत्यत्र स्वर्गसाधनत्वंपतीयते। एवं सति केवळव्यक्तिशक्तिवादिना यावद्-व्यक्तिसाद्द्रयिष्यते उत यत्किचिर्द्याक्तसाद्द्रयम्। नाद्यः सर्वव्यक्तिसाद्द्रयस्यैकत्रासंभवात न द्वितीयः। यद्यक्तिसाद्दर्यं बेदतात्पर्यविषयीभूतं तन्नाशेऽनुष्ठानळोपापत्तेः। तात्पर्यविषयी-

॥ भाषा ॥
और उक्त कथा में शाकल्य, जनक और याज्ञवल्कय आदि शब्द भी किसी विशेष व्यक्ति के
वाचक नहीं हैं किंतु जैसे माछतीमाधव आदि में माछती आदि शब्द नाममात्र कल्पित हैं वैसे ही
ये भी हैं, यह बात बेददुर्गसज्जन के अर्थवाद प्रकरण में भछी भांति दिखळाई गई है। तो ऐसी दशा
में जब इस आख्यायिका से किसी व्यक्तिबिशेष और समयबिशेष का पता कदापि नहीं चळ
सकता तब साहेब का अपने प्रनथ में इस कथा के छिखने का परिश्रम सर्वथा व्यर्थ ही है।

(३) बेददुर्गसज्जन में 'औत्पिक्तिक' सूत्रपर भट्टपाद आदि बड़े २ मीमांसकों के मतसे यह सिद्ध कर दिया गया है कि गौ आदि शब्दों का गोल आदि जाति ही अर्थ है जो कि नित्य है न कि मांसिपण्ड आदिरूपी व्यक्ति गौ आदि शब्दों का अर्थ है और बेद नित्य है इस से बेदशब्दों का तात्पर्य भी ब्यक्तियों में नहीं है। तथा पूर्वभीमांसिदर्शन अध्याय १ पाद ३ 'आकृतिस्तुक्तियार्थ-लात्'॥ ३३ ॥ इस सूत्र से भगवान जैमिति महार्ष ने स्वयम् यह सिद्धान्त किया है कि आकृति (जाति) ही पदों का अर्थ है न कि ब्यक्ति । इस सूत्र का तात्पर्य यह है कि यदि ब्यक्ति, पदों का अर्थ माना जाय तो 'श्येनचितंचिन्वीत' (बाज नामक पक्षी के सहश आकार का स्थिण्डल अर्थात आग्निस्थापन की बेदी बनावें) इस बेदवाक्य का अर्थ ही नहीं बन सकता क्योंकि यहां 'श्येन' शब्द का श्येनतुल्य (बाजनामक पक्षी के सहश) अर्थ है तो यहां यदि सब श्येनब्यक्तियों के सहश का प्रहण है तो सब ब्यक्तियों का साहश्य, प्रमाण, आकार और रूप आदि से, एक अग्निबेदी में हो ही नहीं सकता और यदि एक श्येनव्यक्ति के सहश का प्रहण है तो उस श्येनव्यक्ति के नाश से श्वाह ही बिगद जायगा इसकारण यदि यह कहा जाय कि श्येनत्वज्ञति जितनी ब्यक्तियों में रहतीं

भूतवस्तुनोऽभावात्। इत्यगत्या वयेनत्वाश्रयसद्दशमितिवाच्यम्। तथा च वयेनत्ववोधस्याववय-कत्या तद्र्थे तत्रापि शक्तिस्तवाववयकी । तथा सित तत्रेव शक्त्या सर्वकार्यनिविद्दे व्यक्तिशक्तिर्निर्धिकेति । उपपादितं चैतत्सर्वमस्मिन्नेवाकृत्यधिकरणे विस्तरण भाष्यवार्ति-कयोः । तथाचैतादशकथानामाख्यायिकात्वानङ्गीकारेऽपि तद्धटकानां शाकल्यादिशब्दानां न कथंचिद्रपि ब्यक्तिविशेषतात्पर्यकत्वमुन्नेतुं शक्यत इति तदनुसारेण ब्यक्तिविशेषस्य समयविशेषस्य वृत्तान्तविशेषस्य वा निर्दिधारियषा, वेदबाह्यस्याङ्गानैकमृष्ठिकेव ।

एवं बार्कलिनामपि कथाऽऽख्यायिकैव, अशीतिसाहस्रमितिमहासंख्याश्रवणात् बृकलिनामपत्यमितिप्रतीयमानाया ब्युत्पत्तेः 'बार्कलिनो वे अर्कलिन' इतिवाक्येन तिरस्कारदर्शनाच । बाष्कलास्त्वाधुनिका अन्य एवति वाष्कलशब्दस्य बार्कलिशब्दापभ्रंशत्वशंकाऽपि केषां चिदपास्ता ।

किंच पुराणेष्वित्यादिकं न संभाव्यत इति इत्यन्तं नास्माकं मितकूलम् । शुनकेति हि गोत्रस्यनाम तास्मिन्नन्वबाये च परःसहस्रा महर्षयोऽभूवन् ग्रन्थाश्रगोत्रनास्नव विरच-य्यप्रचारिता इति कस्को ग्रन्थः केन केन रचित इति कथङ्कारं निर्णेतुं शक्यते । ग्रन्थयोः

॥ भाषा॥

है उन में से किसी एक व्यक्ति के सदश का प्रहण है तो जब इयेनलजाति के प्रहण बिना, काम नहीं चलता तब इयेनलजाति ही इयेनपद का अर्थ है, इयेनव्यक्तियों को द्येनपद का अर्थ स्वीकार करना व्यर्थ ही है। और इसी इयेनपद के दृष्टान्त से यह निश्चय करना चाहिये कि सब पदों का जाति ही अर्थ होता है न कि व्यक्ति। मट्टपाद ने भी इस सूत्र पर कहा है 'बिशेष्यं नाभिधा गच्छेत् श्लीणशक्तिर्विशेषणं' (जब पद बिशेषण अर्थात् जाति का बोध करा कर चरितार्थ होने से जाति का वाचक हो गया तब उसके व्यक्तिवाचक होने में कोई प्रमाण नहीं है व्यक्ति का बोध तो जाति ही के बोध से आप हो जाता है)। तो ऐसी दशा में उक्त शतपथकथा को यदि आख्या-ियकारूप न माना जाय तब भी कठादि शब्द के नाई उक्त कथा के शाकल्यादि शब्दों का भी शाकल्यत्वादि जातिवाली वंशपरम्पराएं अर्थ हैं न कि कोई पुरुषविशेष, तथा यह बात भी विशेष रूप से इसी प्रकरण में दिखलाई जायगी कि बेद में मूतकाल का वाचक कोई शब्द नहीं होता तो ऐसी दशा में उक्त कथा के अनुसार पुरुषविशेष, समयविशेष, और समाचारविशेष के निर्णय की आशा उक्त साहेब की, बनध्या से पुत्र की आशा के तुल्य हैं।

(४) बार्फ िनों की कथा भी आख्यायिका ही है और उसमें बुक िन् शब्द का यदि बुक िन् का बंश अर्थ हो सकता है तब भी वह किसी एक पुरुषिशेष का नाम नहीं है। और बाद्य को बहुत ही नवीन तथा बार्क िनों से अन्य ही है इसी से बाद्य शब्द, बार्क ि शब्द का अपभ्रंश नहीं है तथा संस्कृत शब्दों में एक दूसरे का अपभ्रंश नहीं होता किंतु भाषा के शब्द संस्कृत शब्दों के अपभ्रंश कहलाते हैं।

(५) "पुराणों में शाकलों का नाम" यहां से 'सम्बन्ध रखते हैं' यहां तक, कोई वात बैदिक संप्रदाय के प्रतिकूल नहीं है क्योंकि 'शुनक' नाम, एक गोत्र का है जिसमें समय र पर सहस्रों ऋषि उत्पन्न हुए जिनमें से कितपय ऋषियों ने गोत्र अर्थात् शौनक नाम से अनेक प्रन्थों की रचना किया तो ऐसी दशा में यह निर्णय नहीं हो सकता कि किस शौनक ने किस प्रथ को

कयोशित्कचिदेकविषयकत्वेनापि नैककर्तृकता शक्यते निश्चेतुम्, एकवंश्यभिन्नभिन्नपुरुषक-र्तृकत्वेऽपि बैषयिकस्य संवादस्य संभवेन तस्यानैकान्तिकत्वात्।

किंच शाकल्येन संहिताया द्वितीयं मण्डलं राचितामित्यत्र तु ममाणं नोपन्यस्तं बाह्येन।

नचात्र प्रमाणगन्धोऽपि संभवतीत्यपि बोध्यम्।

किंच एवमिवेत्यादिकः कथां आवयामासत्यन्तोऽनुवादोऽपि न युक्तः, लोमहर्षण-स्य स्तस्य पुत्रो हि सौतिः वैशम्पायनस्तु ब्राह्मण इतितयोः पितापुत्रभावस्यासंभवात्। कचिद्प्यनुक्तत्वाच । बृहद्देवतादिग्रन्थकर्तुः शौनकस्य नैमिषारण्ये यज्ञकर्त्रा शौनकेन सहा-भेदे मानाभावाच ।

किंच आश्वलायनगुरोरित्यादि लभ्यतइत्यन्तमपि न सत्, प्रमाणाभावादेव। नहि गोत्र-साम्यमात्रादभेदो निश्चेतं शक्यः, परःसहस्राणां तद्रोत्रजानां तथासत्यभेदमसङ्गस्य दुर्बारत्वात्

किंच पुराणानां चरित्रभागे त्रयीरीतिः। ब्राह्मणभागानेव दृष्ट्वा तत्समानार्थानि कानि चिदुपाल्यानानि निबद्धानीत्येका। स्वयमेव बा कंचिद्धृत्तान्तं ब्राह्मणभागादन्यतः प्रत्यक्षादेः प्र-माय तदाख्यानानि निबद्धानीति द्वितीया। स्वाभ्यूईकम्लकान्यप्युपाख्यानानि मालतीमाध-॥ भाषा॥

बनाया और दो प्रन्थों के कुछ विषयों की एकता होने से भी यह निश्चय नहीं हो सकता कि ये दोनों एक ही के बनाए हैं क्योंकि जो बिषय जैसा है उस बिषय को बिद्धान् छोग प्रायः वैसा ही छिखते हैं और ऐसी दशा में भिन्न २ पुरुषों के बनाए प्रन्थों में भी परस्पर किसी बिषय में एकता होना कोई असंभव की बात नहीं है "सबै सयाने एकै बुद्धि"।

(६) उक्त साहेब ने यह कह तो दिया कि "शाकली संहिता का द्वितीय मण्डल शाकस्य का रचित है " परंतु इस बिषय में प्रमाण कुछ भी नहीं दिया और प्रमाण इस विषय में

कुछ हई नहीं है तो देते क्या ?

(७) "यह भी छोग कहते हैं" यहां से 'सुनाया था' यहां तक जो साहेब ने छोकोक्ति का अनुवाद किया है वह भी तीन कारणों से अयुक्त ही है। एक यह कि यह छोकोक्ति किसी प्रामाणिक प्रनथ में नहीं कही है। दूसरे, इसमें भी कोई प्रमाण नहीं है कि जिस शोनक ने बृहद्देवता आदि प्रनथ की रचना की उसी शौनक ने नैमिषारण्य में यज्ञ भी किया। तीसरे, सौति, लोमहर्षणनामक सूत के पुत्र थे और बैशम्पायन ब्राह्मण थे तो ऐसी दशा में इन दोनों का अन्योन्य में पिता पुत्र होना भारतवर्ष के ब्यवहारानुसार असम्भव ही है।

(८) "आश्वलायन का गुरू" यहां से 'निवासी' यहां तक भी जो कहा है वह किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं है क्योंकि जब एक गोत्र के सहस्रों मनुष्य होते हैं तब गोत्रमात्र के एक

होने से दो पुरुषों की एकता नहीं कही जा सकती।

(९) पुराणों में जो महापुरुषों के चरित्र के भाग होते हैं उनमें तीन रीतियां होती हैं। एक यह कि ब्राह्मणभागों को देख कर केवल उन्हीं के अनुसार उपाख्यान लिख दिये गये हैं। दूसरी यह कि पुराणकर्ता ने साक्षात् अपने देखे हुए अथवा देखनेवाले प्रामाणिक पुरुषों से सुने हुए समाचारों को उपाख्यानरूप से छिख दिया। तीसरी यह कि पुराणकर्ता ने छोकशिक्षा के अर्थ अपने विचार के अनुसार माछतीमाधव आदि की नाई किसी समाचार की कल्पनामात्र कर वादिवद्रचियत्वा निवेशितानीति तृतीया।तत्राद्यरीतियुक्तेषु भागेषूपात्तानि नामानि चित्राणि च यदि बेदोक्तिर्नामिश्विरित्रेश्व मिलन्ति तदा किमाश्वर्यम्। तदंशे पुराणभागस्य वदानुता-दकत्वात्, बेदाक्षरश्रवणानिधिकारिणां बेदार्थज्ञानाय तज्जन्यशिक्षायै पुण्याय च पुराणप्र-णयनात्। एतादृशभागानां चाख्यायिक्षामात्रतया स्ववाच्यार्थे तात्पर्याभावाद्वेदाख्यायि-काभागेश्य इव स्तुतिनिन्दे विद्वाय कस्याश्वित्व्वीपुंसव्यक्तेस्तच्चितिविशेषस्य तयोःकाल-विशेषस्य वा ततोलाभे दुराशा अज्ञाननिवन्यना एव। एवमन्तिमरीतियुक्तेष्वपि पुरञ्जनो-पाख्यानादिभागेषु बोध्यम्। मध्यरीतियुक्तेषु च पौराणिकचित्रभागेषुदाहृतानि व्यक्ति-विशेषस्पृंशि नामानि चिरतानि च यद्यपि ब्राह्मणभागीयैस्तैर्भिलन्ति तथापि पुराणोक्ताएव व्यक्तयो ब्राह्मणभागेषुपनिषद्धा इति न शक्यते वक्तुम्, पुराणव्यक्तेराधुनिकत्वात्, बेदस्य चापौरुषेयतायाः पूर्वमेवोपपादितत्वात्। नापिनामादिसाम्यमात्रमनुस्त्य ब्राह्मणोक्ताएव व्यक्तय उक्तपुराणभागे निर्देष्टा इत्यपि सुवचम्, पूर्वोक्तरीत्या बेदशब्दानां केवल्रजात्य-भिष्ठायकत्तया व्यक्तिविशेषे तात्पर्याभावेनोक्तपुराणभागनस्य पुराणभागानतः,वत्पांक्षयत्वया व्यक्तिविशेषे तात्पर्याभावेनोक्तपुराणभागनस्य पुराणभागानतः,वत्पांक्षयत्वाः समानानु-

आख्यायिकामात्र के रूप से उपाख्यान छिख दिया। इनमें से प्रथम प्रकार के उपाख्यानों में कहे हुए नाम और समाचार, यदि बेदोक्त नाम और समाचार से मिलते हैं तो इसमें क्या आश्चर्य है ? क्योंकि उन अंशों में वे पुराणभाग तो बंद के अनुवादक ही हैं और पुराणों की रचना ही इसिछए है कि बेदाक्षरश्रवण के अनिधकारी शूद्र आदि को भी जिस में बेदार्थ का ज्ञान और शिक्षा तथा उसके अनुसार कर्म करने से पुण्य भी हो। और स्थाख्यायिकारूपी होने ही से ऐसे उपाख्यानों का लौकिक आख्यायिकाओं की नाई अपने अक्षरार्थ में तात्पर्य नहीं होता, किंतु किसी बिषय की निन्दा अथवा स्तुति ही में तात्पर्य होता है। तब ऐसी दशा में ऐसे उपाख्यानों से किसी स्नी वा पुरुष रूपी ब्यक्तिबिशेष अथवा किसी सत्य समाचार बा समयिबशेष के लाभ की आशा करना अज्ञान ही का फल है। तथा तृतीय प्रकार के उपाख्यानों की भी यही दशा है और इसके उदाहरण, भागवतादि पुराणों में पुरंजनोपाख्यान आदि हैं। और द्वितीय प्रकार के उपाख्यानों में कहे हुए पुरुष बा स्त्री बिशेष के सबन्धी नाम बा समाचार, यद्यपि ब्राह्मणभाग में कहे हुए नामों और समाचारों से भिलते हैं तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि पुराणोक्त नाम और समाचार, पश्चात् ब्राह्मणभागों में लिख दिये गए हैं, क्योंकि बर्तमान पुराणब्यक्तियां अति नवीन हैं और बेद की अनादिता पूर्व में प्रतिपादित हो चुकी है। और यह भी नहीं कह सकते कि बेदोक्त ही नाम और समाचार पुराणों में लिख दिये गए हैं, क्योंकि अनन्तर ही उक्त प्रमाण से यह सिद्ध हो चुका है कि बैदिक शब्दों का तात्पर्य, जाति ही में होता है न कि ब्यक्तियों में, और बर्तमान पुराणमाग तो पुराण के अन्य भाग के नाई पौरुषेय ही है इसी से उसके शब्दों का तात्पर्य, ब्यक्तिबिशेष ही में है न कि जाति में, तो ऐसी दशा में भिन्न २ तात्पर्य होने के कारण बैदिक नाम और समाचारों का उक्त उपाख्यान और समाचारों के साथ मेल ही नहीं हो सकता। और जब प्रामीणों की भी यह कहावत है कि "नावँ गावँ का कौन ठिकाना" और बिश्व के सृष्टि प्रलय का प्रवाह अनादि ही है तब संयोग वश अन्यान्य समय वाले पुरुषों के नामों और समाचारों का एकाकार होना कुछ भी असंभव नहीं है

पूर्वीकत्वस्य बंशचरित्रसंवादस्य च काकतालीयत्वान्न तावन्मात्रेण किंचिन्निर्णेतुं शक्यते। एवंचितादशे बिषये पूर्वीक्ताया द्वितीयाया बाह्योत्प्रक्षाबिधायाः संचरणं बेदपुराणतात्पर्यत-च्वास्पर्शैकसारमसारमेव।

यदिप तेनैव उक्ते प्रक्रमे-

बेदमन्त्राणां निर्माणकालमन्त्रिष्यतो मम बलादिदं वक्तुमापतित यत् अतिप्राचीना इमे मन्त्रा इति उक्तं चवमेव बहुशः पाक्, प्रमाणानि चेह, मन्त्रेषु बर्णिताः पौराणिकेतिहासा भूगोलप्रभृतीनि चातिस्पष्टानीति । एवम् ऋङ्पन्त्रेभ्य एव ऋचामुत्पत्तेर्बुद्धेश्च देशकालौ-लभ्येते इत्युत्का तत्र भारतवर्षीया अनेकजातीयाः सिन्धुनदीतं वसन्तिस्म एवमेवच तेषामाचारो मिथोविरोधश्वासीदित्यादिका कथोक्ता।

तत्रोच्यते-

मन्त्राणामितप्राचीनत्वमनादित्वपर्यवसायित्वाद्वेदिकानामनुक्रूळमेव । एवमित्यादिकं तु न मुक्तम्, अपौरुषेयत्वसाधनेन पूर्वोक्तेनचीमुत्पत्तेरवासिद्धतया तद्देशकाळयोगिगनकु- सुमामोदायमानत्वात् कथायाश्राख्यायिकामात्रताया असकृदावेदितपूर्वत्वन तस्याश्रचीमा- त्रत्वेनोक्तायाः पश्चम्या विधाया वस्तुविशेषिनणीयकत्वसंभानाया वेदतात्पर्याक्षानोङजृम्भा-मात्रत्वादित्यळमनल्यजल्पनैः।

प्वमस्मिन्बाह्यग्रन्थे यावान्भागो बेदाविषयकस्तस्य सामान्यतो विश्वषतश्च परीक्षाकृता। परीक्षाप्रकारश्च तादृशसर्वभागव्यापी पदर्शितः तद्भागस्यावान्तराणां च कतिपयानां भागा-

वो ऐसी दशा में बिना किसी अन्य प्रबल प्रमाण के, केवल नाम और चरित्र मात्र की तुल्यता से ब्यतीत पुरुषों, समाचारों और उनके समयिवशेषों की एकता का निश्चय करना बहुत ही भूल है। और साहेब ने जो कुछ इस बिषय में कहा है उसमें यह कारण है कि वह बेद और पुराणों के वास्त विक तात्पर्यों से बंचित थे अर्थात् साहेब ने बेद, पुराण, इतिहासों को सूखी २ कहानी समझा था।

पृ० ४८। बेदमन्त्रों के निर्माणकाल का अन्वेषण करने में हम अवश्य कहना पड़ता है कि ये अतिप्राचीन काल के हैं जैसा कि कई बार हम कह आए हैं। यह बात उनमें लिखे हुए पौराणिक इतिहास और भूगोलबर्णन प्रभृति से ही स्पष्ट प्रतीत होती है।

पू० ५२। तीसरी बात यह है कि ऋग्बेद की ऋचाओं से हमको बहुत सी ऐसी बातें प्रकट होती हैं कि जिन से हम उन ऋचाओं की उत्पत्ति और बृद्धि का समय, स्थान और अवस्था जान सकते हैं। उनमें से जो बहुत प्राचीन ऋचा हैं उनसे प्रकट होता है कि हिन्दुस्तान के छोग सिन्धु नदी के किनारे पर बसते थे और बहुत सी छोटी २ जातियों में बिभक्त थे और आपस में बैर रखते थे इत्यादि।

समा०—(१) मन्त्रों का अति प्राचीन होना, बैदिकों के अनुकूछ ही है बहक यह नई बात है कि साहेब भी मन्त्रों को अति प्राचीन कहते हैं। बेद जब अपौरुषेय और अनादि है तब मन्त्र क्या उससे पृथक् है ?

स॰—(२) पूर्व में जब वेद की अनादिता, प्रमाणों से सिद्ध हो चुकी तब ऋचाओं की उत्पत्ति कहां से आ सकती है और कथाओं के विषय में भी अनेक बार यह कहा जा चुका नामनुवादोऽप्युदाहरणतया परीक्षालक्ष्यभूतः सम्पादितः। अनन्दितास्तु वेदविषयक-स्यास्य भागस्याचान्तरभागा अन्दिततद्वान्तरभागानां सधर्माणस्तत्परोक्षाऽतिक्रमाक्षम-त्वाह्नथाग्रन्थवाहुल्यप्रमंगभयाच्चे नान्त्रदिताः । सर्वचैतत्, विशिष्यान्य समालोचनामन्तरे-णाक्तवेददुर्ग सज्जनानभिज्ञानां सामान्यलोकानामसन्तोषभयाजुष्यतुदुर्जनइतिन्यायेनव-सम्पादितम्-

वस्तुतो बेददुर्गस्य बाह्यैतद्भन्थभाषितैः। तमोभिरिव सूर्यस्य न स्पर्शोऽप्यस्तिसंभवी ॥ ? ॥ इति प्रथमे द्वीपान्तरीयबेदबाह्यग्रन्थे बेदबिषयक्भागस्य परीक्षासरणिः। यदप्यन्येन

हिरण्यगर्भः समन्तिताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकआसीत्। स दाधार प्रथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा बिधेम ॥ (यजुःअ० १३ मं० ४)

॥ भाषा॥

कि वे आख्यायिकामात्र हैं तब उनके अनुसार देशबिशेष बा कालाविशेष अथवा पुरुषीबशेष का निश्चय करना, बेदतात्पर्य के अज्ञान ही का फल है और साहेब की संभावना की जो पांचवीं रीति पूर्व में कही गई उसका यही उदाहरण भी है। और इस साहेब के प्रन्थ में पूर्वोक्त पांच प्रकार की बातें फेर फार कर अनेक बार आती हैं जिनकी समाछोचना की गई है।

वेवर साहेब के इस प्रन्थ का जितना भाग, बेद्संबन्धी है उतने का सामान्य और बिशेषरूप से यहां तक परीक्षा पूर्ण हो चुकी तथा परीक्षा के प्रकार भी ऐसे दिखलाए गए कि जो उक्त भाग में सर्वब्यापी हैं तथा उक्त भाग के कतिपय भागों का अनुवाद भी परीक्षा के उदाहरण-रूप से दिखला दिया गया और जिन कतिपय भागों का अनुवाद नहीं किया गया है वे भी अनुवाद किये हुए भागों के तुल्य ही हैं इस कारण उनकी समाछोचना भी यही है जोकि की गई और यह जो कुछ विस्तार किया गया सब पूर्वोक्त बेददुर्गसज्जननामक प्रकरण से बंचित, सामान्य पुरुषों के सन्तोष ही के छिए किया गया जिसमें वे यह न कहैं कि "साहेब के प्रनथ को पूर्णरूप से देखे बिना ही यह समालाचना की गई क्योंकि यदि ऐसा न होता तो इसमें साहेब के यन्थ का अनुवाद क्यों नहीं किया गया " परन्तु सल बात यह है कि जैसे अन्धकारों से सूर्य-मण्डल का स्पर्श होना असंभव है वैसे ही ऐसे २ ब्याख्यानों और आक्षेपों से बंदरूपी दुर्ग का स्पर्श होना भी असंभव ही है। और थोड़ेही विचार से यह निश्चित हो सकता है कि जिस बेद की महिमा बेददुर्गसज्जन के अन्त में बार्णित हो चुकी है और जिस बेद के तात्पर्य को बड़ २ देवदर्शन महाशय, सब काम छोड़ जन्मभर अध्ययन अध्यापन और बिचार करने से भी पूर्णरूप से निश्चय करने में महा क्षेत्रा उठाते हैं उस बेद के तात्पर्य को उक्त साहेब (जांकि बैदिक दर्शनों के उत्तम २ प्रनथों का दर्शन भी नहीं पाए थे) अपने अटकल मात्र से कैसे निश्चय किए होंगे, और तात्पर्य समझे बिना उसके विषय में प्रनथ छिखना वा ब्याख्यान देना केवछ साहसमात्र नहीं है तो क्या है ?

यहां तक आल्ब्रेट् वेवर साहेब के प्रनथ की समालोचना समाप्त हुई। अब डाक्तर मैक्सम्यूलर साहेब ने जो संस्कृतसाहित्यनामक प्रनथ में बेद्सम्बन्धी इत्येतन्मन्त्रब्याख्यानावसरे अयं मन्त्रोऽर्बाचीनोऽस्ति छन्दस इति, मन्त्रेणानेन मन्त्र-भागस्य नवीनत्वं तु द्योतितं भवति इति, नत्वस्य प्राचीनत्वे किमापि प्रमाणस्रुपस्त्रभामहे इति, चोक्तम्।

अत्रोच्यते। कोऽस्याभिप्रायः, किं हिरण्यस्य सृष्टिसमयाङ्क्यस्तरसमयानन्तरमुत्पनन-स्येहहिरण्यसब्देनोपादानादस्य नवीनत्वमिति, किंबा अग्रे समवतेतेति भूतकालनिर्देशाद-

स्य तथात्वामिति । तत्र नाद्यः । मन्त्राथानवबोधात् ।

तथाच महीधरः

का०।१७।४।३। उत्तानं प्राञ्चं हिरण्यपुरुषं तस्मिन् हिरण्यगर्भे इति । तस्मिन् रुक्षे प्राञ्चमुत्तानंहिरण्यं, हिरण्यपुरुषाकारमृग्द्रयेनोपदधाति । हिरण्यगर्भदृष्टा प्रजापतिदेवत्य त्रिष्ट्य । हिरण्यपुरुषक्षे ब्रह्माण्डं गर्भक्ष्पेणावस्थितः प्रजापतिःहिरण्यगर्भः भूतस्य प्राणिजातस्य अग्रे समवर्तत प्राणिजातोत्पत्तः पुरा स्वयं शरीरधारी वभूव। सच जातः उत्पन्नात्रः एक एवोत्पत्स्यमानस्य सर्वस्य जगतः पतिरीश्वरआसीत्। स एव पृथिवीमन्तिरक्षंद्यां द्युलोकम् ज अपिच इमां भूभिं लोकत्रयं दाधार धारयति तुजादीनांदीर्घोऽभ्यासस्यत्यभ्यासदीर्घः 'पृथिवी भूः स्वयंभूरि' त्यन्तिरक्षनामसु पठितत्वात्पृथिवीशव्देनान्तिरिक्षं लोको-ऽत्रोच्यते । कस्मै काय प्रजापतये देवाय हिवेषा विधेम हिवर्दध्मः विभक्तिव्यत्ययः॥४॥इति

॥ भाषा॥

बिचार किया है उसकी समाछोचना की जाती है।

"हिरण्यगर्भः समक्तिताप्रे" (हिरण्यगर्भ अर्थात् ब्रह्मदेव, प्रथम प्रकट हुए) यह मन्त्र ही इस अंश में प्रमाण है कि बेदका मन्त्रभाग अन्य बेदभाग की अपेक्षा नवीन है तथा मन्त्रभाग के प्राचीन होने में कुछ भी प्रमाण हम नहीं पाते।

समालोचना

इस कथन के दो ही अभिशाय हो सकते हैं। एक यह कि आदि सृष्टि के बहुत पीछे हिरण्य (सुवर्ण) उत्पन्न हुआ जिसकी चर्चा इस मन्त्र में है अर्थात 'हिरण्यगर्भ' शब्दही से इस मन्त्र की नवीनता प्रकट होती है। दूसरा यह कि "अप्रे समबर्तत" इससे भूतकाल का निर्देश होता है जिस से यह स्पष्टही निश्चित होता है कि हिरण्यगर्भ के प्रादुर्भाव के समय में यह मन्त्र नहीं था क्योंकि जो समाचार पूर्व में होता है पीछे से वह वाक्यों में भूतकाल के वाचक शब्दों से कहा जाता है।

इनमें से प्रथम अभिप्राय यदि उक्त साहेब का है तो उस पर यही कहना उचित है कि साहेब को मन्त्रार्थही नहीं समझ पड़ा और साहेब पूर्वोक्त, बैदिकदर्शन की रीति से भी बंचित थे क्योंकि ऊपर संस्कृत भाग में लिख हुए महीधरभाष्य से इस मन्त्र का यह अर्थ स्पष्ट है कि हिरण्य अर्थात् सुवर्णपुरुषरूपी, ब्रह्माण्ड के भीतर गर्भ के नाई स्थित प्रजापित अर्थात् ब्रह्मा की हिरण्यगर्भ कहते हैं। और मनु ने भी प्रथम ही अध्याय में कहा है कि 'तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांध समप्रभम्। तस्मिन् जझे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकिपितामहः'।। ९॥ (सूर्यवत् प्रकाशमान गोलाकार वर्ष सुवर्ण का अण्ड प्रकट हुआ जिसमें सब लोगों के पितामह ब्रह्मा स्वयं प्रकट हुए) और यह अर्थ इतना प्रसिद्ध है कि जिस कारण इस अण्ड को आज तक लोग ब्रह्माण्ड ही कहते हैं, ऐसी दशा में

बेदे च शब्दानां जातौ तात्पर्यमित्यस्यानुपद्मेत्रोक्ततया हिरण्यत्वजातेनित्याया इहोपादानात्कथं हिरण्यगर्भशब्दान्मन्त्रभागस्य नवीनत्वलाभसंभवः। नापि बितीयो युक्तः। तथाहि । पूर्वोपन्यस्तमन्त्राधिकरणसिद्धान्तनिष्कर्षोद्धाहितप्रमाणतर्कगर्भाभिकक्तिभिस्तावन्मन्त्रस्वरूपाणां विधिभिक्षप्रह इति निर्णीतपूर्वमत्र स्मरणीयम्, न विस्मरणीयं च ततोऽपि प्रागुक्तं वेदापौक्षेयत्वोपपादनम् । मन्त्राश्च नात्मानमात्मनेव प्रयुक्तते यन्नेषु किंतु पुरुषाअधि-कारिणः। अपौक्षयांश्च मन्त्रान्, विनियुक्तामानां पूर्वनिषुणव्याख्यात 'स्वाध्यायोऽध्येत-व्य' इति महावाक्यपमुखानां वेदिकाविधवाक्यानाम् 'अधिकारिणः पुरुषा यज्ञसमये तान-र्थास्तत्तन्मन्त्रप्रयोगपूर्वकं स्मरन्तिव ' त्येवाभिप्रायः। लहादिपयोगाधिकरणकालश्च वर्तमानकालो यो लहर्थोऽन्यलकारार्थघटकश्च ।

तथाच ब्युत्पत्तिवादे

बर्तमानकास्त्रश्च तत्तच्छब्दाधिकरणकालस्तत्तच्छब्दार्थः अतो नैककालपयुक्तलढादि-तोऽपरलढादिपयोगाधिकरणकालिकत्वस्य कृत्यादावन्वयः स्वप्रयोगाधिकरणकालत्वेन स्ववाच्यत्वे स्वत्वाननुगमाच्छक्त्यानन्त्यं सामान्यतो ब्युत्पत्तेर्दुर्घटतयाऽपूर्वव्यक्तिवोधानुप-पत्तिश्च सर्वनामविचारदर्शितरीत्या समाधास्यते । तथाहि । विशिष्य तत्तत्कालत्वाविच्छ-न्नवोधस्यानुभवसिद्धतया सर्वनामशक्तौ बुद्धिस्थत्वादिवच्छब्दप्रयोगाधिकरणत्वम्रपलक्षणावि-

जब ब्रह्मा से भी प्रथम, हिरण्यरूपी ब्रह्माण्ड हुआ तब आदिसृष्टि से बहुत पीछे उस हिरण्य के उत्पन्न होने का संभव भी कैसे हो सकता है ? तथा जब यह अभी पूर्व में सिद्ध हो चुका है कि वैदिकशब्दों का तात्पर्य, अनित्यब्यिक्यों में नहीं होता किंतु जाति ही में होता है तब ,यहां हिरण्य-शब्द का सुबर्णत्वरूपी जाति ही में तात्पर्य है और वह जाति नित्य ही है इस कारण भी हिरण्य-शब्द के अनुसार इस मन्त्र की नवीनता कदापि नहीं सिद्ध हो सकती।

द्वितीय अभिप्राय की समालोचना से प्रथम हम यह कहते हैं कि पाठकगण, पूर्वहीं वेददुर्गसज्जन में जिन प्रमाणों से यह सिद्ध किया गया है कि ब्राह्मणभागीय विधिवाक्यों की आज्ञानुसार यज्ञों में मन्त्रों के शब्दों का पाठ होता है तथा बेद अनादि अर्थात् अपीरुषेय है उन प्रमाणों को अपने स्मरण पर चढ़ा कर इस अग्रिम समालोचना को देखें और पढ़ें।

समाली०—(१) मन्त्र, स्वयं नहीं अपने को पढ़ते किंतु अधिकारी पुरुष यहाँ में मन्त्रों को पढ़ते हैं और मन्त्र अपौरुषेय ही हैं तथा उक्त बिधिवाक्यों का अभिप्राय भी यही है कि यह के समय में, अधिकृतपुरुष अमुक मन्त्र के पाठद्वारा अमुक किया को स्मरण करें। इस में अबल प्रमाण 'स्वाध्यायोऽध्येतन्यः' (बेद अवश्य पढ़ें) यह महावाक्य ही है जिसका अतिस्पष्ट- व्याख्यान, बेददुर्गसज्जन के अर्थवादप्रकरण में पूर्वहीं हो चुका है। तथा भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल के वाचक संस्कृतशब्दों का भी व्याकरण के अनुसार अर्थ ऐसे लगाया जाता है कि जिस शब्द का जिस समय उच्चारण होता है वह शब्द यदि उस समय का बोध करावे तो उस समय को बर्तमानकाल कहते हैं जैसे 'गच्छिति" (जाता है) "संगच्छते" (मिलता है) इत्यादि वाक्य में 'ति' आदि शब्द उसी काल का बोधन करते हैं कि जिस काल में 'ति' आदि शब्दों का उच्चारण होता है अरेर उसी काल के बोधक में 'ति' आदि शब्दों का उच्चारण होता है वही काल वर्तमान कहलाता है और उसी काल के बोधक में 'ति' आदि शब्दों का

धया ब्यावर्तकं वाच्यम् । मच तत्तत्कालस्यैवंसत्यवाच्यत्वे तद्भानानुपर्पत्तिरसमाधेयैवेति वाच्यम् । शब्दमयोगाधिकरणकालबृतिकालत्वब्याप्यधर्मत्वेन तत्कालत्वानामेवोपलक्षणीय-त्वादिति ।

एतम् छुङादिप्रयोगाधिकरणकालबृत्तिध्वंसप्रतियोगी कालो छुङ्लङ्लिङाद्यर्थः। लुडादिप्रयोगाधिकरणकालबृत्तिप्रागभावप्रतियोगी कालश्च लुडाधर्थः। एवं स्थिते यदा पहरिण्यगर्भे इत्यादयो मन्त्राः प्रयुज्यन्ते त एव कालास्तद्धटकसम् वर्ततेत्यादिघटकलङाद्यर्थकुक्षौ प्रविद्यान्ति । हिरण्यगर्भसत्ता च 'हिरण्यगर्भ' इत्यादेर्मन्त्रस्य प्रोक्तप्रयोगाधिकरणकालात्पूर्वकालिको भवत्येव, तत्तत्प्रयोगकालबृत्तित्वेऽपि तत्प्रयोगकालपूर्वकालिको भवत्येव, तत्तत्प्रयोगकालबृत्तित्वेऽपि तत्प्रयोगकालपूर्वकालबृत्तित्वानपायात् । एवंच तस्मिंस्तस्मिन्नतन्मन्त्रप्रयोगकाले हिरण्यगर्भसत्तानिष्ठं तत्तत्प्रयोगकालपूर्वकालिकत्वं ते ते प्रयोक्तारः स्मरन्त्वित्वे हिरण्यगर्भ इत्यादिमन्त्रविनियोजकिविधीनामभित्रायः पर्यवस्यति । नाहि इदं पौक्षेपं वाक्यं येन प्रथमप्रयोगकालापेक्षया-ऽपि हिरण्यगर्भस्य पूर्वकालिकत्वमेतस्मान्मन्त्राछुङ्यं शक्यते । प्रयोगे प्राथम्यमेव च पौक्षे-

॥ भाषा॥ हैं जो 'लट्' कहलाते हैं। और उक्तही बर्तमानकाल से पूर्वकाल को भूत कहते हैं। इस काल के बोधक 'त्' 'ति' आदि अनेक शब्द होते हैं जिनमें ये तीन भेद हैं कि जो 'त्' आदि शब्द अपने उचारणकाल से पूर्व उतनेही काल को कहते हैं कि जितना काल उस दिन में ब्यतीत हो चुका कि जिस दिनमें उनका उचारण हुआ, उन 'त्' आदि शब्दों को ब्याकरण में 'लुङ्' कहते हैं जैसे अगमत् (आज गया) और उस गमनिक्रया को अद्यतनभूत कहते हैं तथा उस दिन से पूर्वकाल के बोधक 'त्' आदि को 'लङ्' कहते हैं जैसे अगच्छत् (आज से पहिले गया) और उस गमनाक्रिया को अनद्य-तनभूत कहते हैं। और यदि 'त्' आदि के उचारणदिन से पूर्वकाल में हुई क्रिया को 'त्' आदि के उचारणकर्ता पुरुष ने प्रत्यक्ष से नहीं देखा है तो उस पुरुष के कहे हुए 'त् ' आदि शब्दों को लिद् कहते हैं। जैसे जगाम् + अ जगाम (मैंने जाते नहीं देखा परंतु आज से पहिले वह गया) । संजग्म् + ए-संजग्मे (आज से पहिले वह उस से मिला किंतु मैंने मिलते नहीं देखा) तथा उस किया को भूत अनदातन और परोक्ष कहते हैं। और उन शब्दों के स्थान में 'अ' 'ए' आदि शब्दों का उच्चारण करते हैं। तथा पूर्वोक्त बर्तमानकाल से उत्तरकाल को भविष्यत् कहते हैं वह भी दो प्रकार का है। एक वह है कि जो उस बर्तमानकाल के दिन में अन्तर्गत है और इस भविष्यत् काल के बोधक " ज्यति" आदि हैं जिनको 'लट्' कहते हैं जैसे 'गमिष्यति' (आज जायगा) और उस दिन से उत्तरकाल, (अनद्यतनभविष्यत्) दूसरा प्रकार है जिसके बोधक 'ता' आदि शब्द हैं जिनको ' छुद्' कहते हैं जैसे 'गन्ता' (आज से उत्तरकाल में जायगा) यह स्थूल प्रणाली ज्याकरणों की है। इस पर ध्यान दे कर अब सुनना चाहिये कि "हिरण्यगर्भःसमबत्तत" इस उक्त मन्त्र का जिस दिन उच्चारण किया जायगा उससे पूर्वकाल का बोध इस 'त' शब्द से होगा और उसके अनुसार इस मन्त्र का यही अर्थ होगा कि जब २ इस मन्त्र का उचारण होता है उस २ दिन से पूर्वकाल में हिरण्यगर्भ का प्रादुर्भाव हुआ। यदि मन्त्रवाक्य किसी के रचित होते तो इनके प्रथम उच्चारण के काल की अपेक्षा पूर्वकाल में हिरण्यगर्भ के प्रादुर्भाव का बोध इस मन्त्र से होता क्योंकि प्रथमहीं उच्चारण की रचना कहते हैं और तब मन्त्रभाग के नवीनत्व का छाभ इस मन्त्र से हो सकता, किंतु जब

यत्वं तच्च बेदमयोगेषु नास्त्येत प्रमाणाभावादिति प्रपश्चितमेव बेदापौरुषेयत्वनिरूपणावसरे।
किंच बेदस्येश्वररिचतत्वपक्षेऽपि नैतत्कुचोद्यावसरः । पूर्वोक्तरीत्या स्वस्वकर्तकैतन्मन्त्रकर्मकतत्तत्प्रयोगकाले ते ते प्रयोक्तारस्तत्तत्कालपूर्वकालिकत्वं हिरण्यगर्भगतं स्मरिन्दिवत्येवेश्वरतात्पर्याभ्युपगमेन हिरण्यगर्भस्य बेदरचनातोऽर्वाचीनत्वेऽप्युक्ततात्पर्यावाधात् । ईद्दाश्च भगवत्तात्पर्ये मानं च 'स्वाध्यायोऽध्येतच्यः' इत्यादिविधिवाक्यजातमेव, निह बेदरचनाकाले
भविष्यन्निप हिरण्यगर्भस्तत्तत्पुरुषकर्त्वकैतन्मन्त्रप्रयोगान्नपूर्वकालिकः, नवा बेदरचनामपेश्व्य
भविष्यति हिरण्यगर्भे भविष्यन्तीमिप तत्तत्पुरुषकर्त्वकैतन्मन्त्रप्रयोगपूर्वकालिकः, नवा बेदरचनामपेश्व
भविष्यति हिरण्यगर्भे भविष्यन्तीमिप तत्तत्पुरुषकर्त्वकैतन्मन्त्रप्रयोगपूर्वकालिकतां नित्यसर्वज्ञो
भगवान् बेदरचनासमये न साक्षादकृत येन तथा नाभिभयात् । नापि यज्ञेषु स्वयमेवोच्चारायितुं स्वयमेव वा गुरुग्रस्वादध्येतुं भगवान् मन्त्रान् रचितवान् येन मन्त्रकमिकभगवदाद्योच्चारणकालापेक्षया हिरण्यगर्भपादुर्भावस्य पूर्वकालिकत्वं भगवतो विविद्यतं स्यात् किंतु पुरुषरुचारणं कारियतुमेव मन्त्रान् भगवानुचारितवान्, यज्ञेषु शिक्षकवत् । एवंच तद्वदेव न

बेद अपौरुषेय अर्थात् रिचत नहीं है जैसा कि पूर्वहीं बेददुर्गसज्जन के बेदापौरुषेयत्वप्रकरण में भंडी भांति सिद्ध हो चुका है तब यही अटल निश्चय उचित है कि मन्त्रों का उच्चारण चाहे अनन्त-बार किया जाय तब भी बेदवाक्यों का कोई उच्चारण, ऐसा प्रथम नहीं हो सकता कि जिस की अपेक्षा उनका कोई उच्चारण प्रथम न हो तो ऐसी दशा में प्रथम उच्चारण के दिन से पिहले हिर-ण्यगर्भ के प्रादुर्भाव का बोध, इस मन्त्र से कदापि नहीं हो सकता और यह अभिप्राय साहेब का, संस्कृतब्याकरण के तात्पर्य से बिचत होने का परिणाम है।

(२) यदि बेद को ईश्वररिचत माना जाय तब भी उक्त साहेब के इस आक्षेप का कोई अवकाश नहीं है, क्योंकि इस मन्त्र में ईश्वर का तात्पर्य, उक्त रीति से यह है कि "जब २ जो १ पुरुष इस मन्त्र का उच्चारण करै तब २ वह २ पुरुष, उस २ उच्चारणिद्न की अपेक्षा पूर्व-काल में हुए हिरण्यगर्भ के प्रादुर्भाव को इस मन्त्र के पाठद्वारा सारण करे"। अब यहां यह विचार के योग्य है कि इस ईश्वरतात्पर्य के अनुसार इस मन्त्र से, मन्त्रभाग की नवीनतारूपी साहेब की इष्टवस्तु सिद्ध हो सकती है अथवा नहीं ?। और इस बिचार में यही कहना उचित है कि यदि ईश्वरकृत बेदरचना के काल में हिरण्यगर्भ न थे, तो भी क्या जब अन्य पुरुषों ने इस मन्त्र का उच्चारण किया वा इस समय करते हैं वा करेंगे उस २ उच्चारण के दिन से भी पूर्वसमय में हिरण्यगर्भ का प्रादुर्भाव नहीं हो चुका था ? और क्या नित्यसर्वज्ञ परमेश्वर को, बेदरचना के समय यह ज्ञान नहीं था कि हिरण्यगर्भ का प्रादुर्भाव होगा और उसके पीछे छोग इस मन्त्र का उचारण करेंगे कि जिस से परमेश्वर के पूर्वोक्त तात्पर्य में कुछ भी बाधा पड़े। और क्या परमेश्वर ने यहों में अपने पढ़ने के छिए बा गुरुमुख से अपने अध्ययन के छिए मन्त्रों को बनाया ? कि जिस से परमेश्वर के इस अभियाय की भी कल्पना हो सके कि "मेरी (परमेश्वर की) इस मन्त्र-रचना के पूर्व, हिरण्यगर्भ का प्रादुर्भाव हुआ था" कदापि नहीं किंतु जैसे यज्ञों में शिक्षकपुरुष, यजमान बा ऋितजों से मन्त्र पढ़वाने के अर्थ, जब स्वयं मन्त्र का उचारण करते हैं तब उनका यही तात्पर्य रहता है कि "यजमान आदि, इन "हिरण्यगर्भः समबर्तत" इत्यादि मन्त्रों को पढ़ें और इस अपनं (यजमान आदि के) मन्त्रोच्चारणकालरूपी बर्तमानकाल की अपेक्षा पूर्वकाल में हुए हिरण्य-

स्वकर्तकमन्त्रोचारणपूर्वकालिकत्वं भगवतो विविधितमतो न लोकिकानां लुङ।दीनाभिष बैदिकानां तेषां कचिदपि भगवदुचारणकालापेक्षपूर्वत्वरूपं भूतत्वमर्थः अपितु स्विद्धितीया-द्युचारणकालापेक्षयेविति न बेदे कचिदपि लुङ।दीनामुक्तभूतकालार्थकत्वम्। एवमुक्तपक्षे हिरण्यगर्भश्चब्दस्य परमेश्वरपरंत्वमुप्रवर्ण्य यत्केनचिद्दाह्योक्तकुच।द्यानिरसनं कृतं तद्दि बेदवाह्यदुरिनिरसत्वमात्रात्समीचीनमेव। किंच तत्तदर्थानां विवक्षेत्र लकाराणां साधुत्वे तन्त्रं नतु स्वरूपसत्ताऽपि अतप्व भूतानद्यतनपरोक्षेष्वप्यथेषु 'अभून्तृपोविबुधसस्वः'

गर्भ को स्मरण करें "। तथा इस से भी प्रसिद्ध उदाहरण यह है कि जब गुरू शिष्य से कहता है कि तू यह कह कि "श्री रामचन्द्रजी ने रावण को मारा था" तो इसका यही तात्पर्य होगा कि "शिष्य इस वाक्य का कह कर यह सारण करै वा करावें। के उस (शिष्य) के इस बाक्य के उचारणकाल से पूर्वकाल में श्रीरामचन्द्रजी ने रावण को मारा"। ऐसे ही परमश्वर का भी इन मन्त्रों में वही तात्पर्य है जो कि अनन्तर में दिखलाया गया। और उस तात्पर्य के अनुसार यही सिद्ध होता है कि परमेश्वर ने बेद में पूर्वोक्त 'लुङ्' आदि शब्दों से, अपने (परमेश्वर के) अधा-रण की अपेक्षा पूर्वकाल को कहीं नहीं कहा है किंतु शिक्षणीय अन्यपुरुषों के उच्चारण ही की अपेक्षा पूर्वकाल को 'लुङ्' आदि शब्दों से कहा है। निदान बेद में 'लुङ्' आदि कोई शब्द भी एता नहीं है कि जो अपने प्रथम उच्चारणकाल की अपेक्षा पूर्वकाल को कहता है किंतु बेद के लुए आहि शब्द हमारे ही किये हुए, बेदवाक्य के उचारण की अपेक्षा पूर्वकाल को कहते हैं। यही विवाप लौकिकवाक्यों के 'लुङ्' आदि की अपेक्षा बैदिकवाक्यों के 'लुङ्' आदि में है क्योंकि विशा वाक्य से अन्यहीं, लौकिकवाक्यों के 'लुङ्' आदि अपने प्रथम उच्चारण की अपेक्षा पूर्वकाल की बोध कराते हैं। और उचित भी यही है क्यों के परमेश्वर किसी के शिक्षणीय नहीं हैं और जीव सब उनके शिक्षणीय हैं इससे परमेश्वर ने जीवों के उचारण की अपेक्षा पूर्वकाल में हुए दिरण्याभी की उत्पत्ति आदि अनेक समाचारों के बोध को जीवों में उत्पन्न करने के लिये बेदों की रचना बी निदान इस मन्त्र के अनुसार साहेब का यह ।सिद्ध करना कि हिरण्यगर्भ वा बेद के अन्यसा। अपेक्षा मन्त्रभाग नवीन है, सर्वथा अप्रामाणिक ही है।

(३) पूर्वोक्त 'लट्' 'लुङ्' आदि के अर्थ की, ब्याकरणोक्त स्थूल प्रणाली के अनुसार की जाती. साहेब के अभिप्राय की समालोचना अनन्तर में की गई। अब सूक्ष्म प्रणाली के अनुसार की जाती है कि जिन कालों में लट् आदि विधान किये गए उनका वास्तविक होना लट् आदि के प्रयोग में कारण नहीं है किंतु चाह उन २ कालों में गमन आदि किया हुई हों वा अन्य कालों में हुई हों परन्तु वक्ता पुरुष का जब ऐसा तात्पर्य हो कि ''अमुक काल में अमुक किया होती है आ हुई आ परन्तु वक्ता पुरुष का जब ऐसा तात्पर्य हो कि ''अमुक काल में अमुक किया होती है आ हुई और यही ठीक भी है जैसे कि ''अमुत् नृपः'' (दश्राथ नामक राजा हुए) इस, भट्टिकाल्य के प्रथम वाक्य में 'त्' अर्थात् लुङ् का प्रयोग है और पूर्वोक्त स्थूलरीति से यह उचित नहीं ज्ञात होता क्यां के जिस दिन भट्टि नामक किन ने इस 'त्' का उच्चारण किया उस दिन उस उच्चारण से पूर्व काल में राजा दश्राय की उत्पत्ति नहीं हुई थी किन्तु उससे अनेक युगों के पूर्व में हुई थी और मृद्धि ने उनको है।ते नहीं देखा इस कारण उस वाक्य में 'लिट्' का प्रयोग 'बमूब' (आज से

इत्यादावनचतनपरोक्षत्वयोः, 'अध्यास्त सर्वर्तुसुलामयोध्याम् ' इत्यादौ परोक्षत्वस्य, चावि-वक्षयेव भिट्टिकुंडंलडं च प्रायुङ्क्त, अन्यथा तयोरपवादं लिटमेव प्रयुक्तीत 'जन्वाल लोक-स्थितये स राजा ' इत्यादिवत् । अतएव 'ब्यातेने किरणावलीम्रदयनः ' इत्यादावसतामेव भूतानचतनपरोक्षत्वानां विवक्षया न्यायाचार्यो लिटमेव प्रयुक्ते । बर्णितश्च तदाश्चयः "क्यं तर्हि ब्यातेने किरणावलीम्रदयन इति स्विक्षयायाः स्वप्रत्यक्षत्वादिति चेत् , असंगतमेव । ब्यासंगादिना स्वब्यापारस्य परोक्षत्वोपपादनेऽपि बहुतरमनः प्रणिधानसाध्यशास्त्रार्थिनिर्ण-यजनकशब्दरचनात्मके ग्रंथेऽनद्यतनत्वातीतत्वयोविस्ताराक्रियायामसत्वेन लिडसम्भवादि "-

॥ भाषा ॥

पूर्व राजा दशरथ उत्पन्न हुए और उनको होते मैंने नहीं देखा) डाचित ज्ञात होता है परन्तु भट्टि-किव का तात्पर्य इतना ही था कि राजा दशरथ मेरे इस उच्चारण से पहिले हुए, इसी से उन्हों ने 'लुङ्' ही का प्रयोग किया न कि 'लिट्' का। तथा "अध्यास्त सर्वर्तुसुखामयोध्याम्" (वह राजा दशरथ सब ऋतु में सुख देने वाली अयोध्या में थे) इस वाक्य में भट्टि ने 'त' अर्थात् लुङ् का प्रयोग किया है न कि 'लिट्' का, क्योंकि उनका यही तात्पर्य था कि "आज से पहिले किसी काल में राजा दशरथ अयोध्या में थे " और यह तात्पर्य नहीं था कि "अयोध्या में उनको रहते मैने नहीं देखा था " क्योंकि यदि ऐसा तात्पर्य होता तो जैसे "जब्बाल लोकस्थितये स राजा " (वह राजा दशरथ छोकस्थिति के अर्थ, बड़े प्रतापी हुए) यहां भट्टि ने 'अ' अर्थात् 'छिट्' ही का प्रयोग किया क्यों कि उनका यह तात्पर्य था कि "आज से पूर्व किसी काल में राजा दशरथ बड़े प्रतापी हुए परन्तु मैंने उनके प्रताप को साक्षात् नहीं देखा" वैसे यहां भी 'छिद्' ही का प्रयोग करते । अब इस बिषय में एक अनूठा दृष्टान्त दिखलाया जाता है जिस से यह स्पष्ट बोध हां जायगा कि "किसी किया के सचमुच भूत बा अनद्यतन बा परोक्ष होने मात्र से 'छुङ्' आदि का प्रयाग नहीं किया जाता किन्तु चाहै वह किया भूत वा अनद्यतन वा परोक्ष हो अथवा न हो किन्तु जब वक्ता को उस क्रिया के भूत बा अनदातन बा परोक्ष होने के बोध कराने की इच्छा हो तब ही 'छुङ्' आदि का प्रयोग उचित होता है"। बैशेषिकशास्त्र के 'किरणावली' नामक ग्रंथ में उदयनाचार्य ने (जिनको कि न्यायाचार्य भी कहते हैं) यह कहा है कि 'ब्यातेने किरणावली मुदयनः' जिस का अक्षरार्थ यह है कि " उदयन ने आज से पहिले किरणावली नामक प्रंथ का विस्तार किया और उस विस्तार को उन्हों ने स्वयं नहीं देखा" इस वाक्य में आचार्यजी ने 'ए' अर्थात् 'छिद्' का प्रयोग किया है जो थोड़े बिचार वाले पुरुषों की दृष्टि से अनुचित ही है क्योंकि किरणावली पंथ के आरम्भ में यह वाक्य है जिस से यह स्पष्ट है कि जिस काल में उन्हों ने इस वाक्य का प्रयोग किया उस काल में यह किरणावली का बिस्तार कर रहे थे जिस से कि वह रचनारूपी किया बर्तमानकाल की हुई न कि भूतकाल की, तथा वह किया अद्यतन ही अर्थात् उसी दिन की हुई न कि अनदातन, तथा जब किरणाबली का आचार्यही ने बिस्तार किया तब वह रचनारूपी किया उनको प्रत्यक्ष ही थी न कि परोक्ष, क्योंकि अपनी क्रिया सबही को प्रत्यक्ष रहती है । यद्यपि जब अपना ध्यान अन्य बिषय में बंटा है उस समय अपनी क्रिया भी अपने को परोक्ष (प्रत्यक्ष नहीं) हो सकती है तथापि प्रनथ का बिस्तार करना बड़े सावधानी का काम है इस से यह कदापि नहीं कह सकते कि किरणावली प्रन्थ की रचना, उस रचना के कॉल ही में आचार्यजी को परोक्ष

तीत्यत्र 'लिटोऽसंभवादि' तिभूषणसारमतीकम्रपादाय बृहद्रपणे हिरविल्लभेन "अत्रेदं चिन्त्यम् न वास्तवं परोक्षत्वादि, लिडादिनियामकम् 'अध्यास्त सर्वतुमुखामयोध्या' मित्यत्र लङोऽसाधुत्वापत्तेः किंतु वैविक्षकं तत् तथाच वक्ष्यति स्वयमेव सारकृत् 'अनद्यतन् भूतत्वेन विविक्षिते लङ् तत्रैव पारोक्ष्यविवक्षायां लिट्' इति । प्रकृते चानायासानिष्पत्रत्व शीघ्रानिष्पत्रत्वपतितिप्रलिकयोर्भूतानद्यतनस्वविवक्षयोः एवं सूक्ष्मकालेन करिष्यामि यत्र काले मयाऽपि साक्षात्कर्तुमश्चयमिति प्रतीतिपलकपपारोक्ष्यविवक्षायाश्च लिड्पपात्तिसंभवादिति इति ।

॥ भाषा॥

थी, क्योंकि उन्का ध्यान उस समय उस रचनाही में था न कि अन्य बिषय में। अब ध्यान देना चाहिये कि जब कोई क्रिया भूत, अनस्तत और परोक्ष, इन तीनों प्रकार की होती है तब उस किया के बिषय में 'छिट्' का प्रयोग होता है जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है और किरणावली के रचनारूपी क्रिया में तीन में से जब एक भी प्रकार नहीं है तब 'छिट्' का प्रयोग करना आचार्य जी का सर्वथा अनुचित है। इसी से "बैयाकरणभूषणसार" नामक प्रथ में पण्डित कौण्डमट्ट ने पूर्वोक्त दोषों को दिखला कर यह कहा है कि 'च्यातेने' यह 'लिद्' का प्रयोग उदयनाचार्य का असंगत ही है क्योंकि यहां 'छिद्' का संभव नहीं है। परन्तु इस भूषणसार के "बृहद्दर्पणं" नामक टीका में पण्डित हरिबद्धभ ने कौण्डभट्ट के वाक्य का खण्डन कर आचार्यजी के 'छिट्' प्रयोग का आशय प्रशस्त और सची रीति से यों वर्णन किया है कि "वास्तव में क्रिया का परोक्ष आदि होना 'लिद्' आदि के प्रयोग में कारण नहीं है किन्तु परोक्ष आदि होने की विवक्षा (कहने की इच्छा) ही 'छिद्' आदि के प्रयोग में कारण है जैसा कि "अध्यास्त सर्वेतुसुखामयोध्याम्" इस भट्टिकाव्य में 'छङ्' के प्रयोग में है और स्वयं पण्डित कौण्डमट्ट ने भी इसी "भूषणसार" नामक प्रथ में आगे चल कर कहा है "अनद्यतनभूतत्वेन विवक्षिते लङ् तंत्रैव पारोक्ष्यविवक्षायां लिट्" (क्रिया के भूत और अनद्यतन होने की विवक्षा अर्थात् कहने की इच्छा, जब हो तब 'छङ्' का प्रयोग होता है और जब परोक्ष होने की भी विवक्षा हो तब 'लिट्' होता है) और प्रकृत में आचार्यजी को 'किरणावली' की रचना के विषय में, भूत, अनद्यतन और परोक्ष, तीनों की विवक्षा है इस से यहां 'छिट्' ही का प्रयोग उचित है जैसा कि आचार्य ने किया है क्योंकि उनका यह अभिप्राय है कि "हे पाठकगण ! यह नहीं समझना चाहिये कि 'किरणावली' की रचना में मुझै इस समय अधिक परिश्रम करना पड़ता है, क्योंकि मैंने बहुत समय के बिचारों से जिन विषयों को पूर्णरूप से निश्चित कर रक्खा है उन्हीं विषयों को इस ग्रंथ में लिखता हूं इस से इस रचना को आप लोग यही समझिये कि यह आज की नहीं है अर्थात् अनदातन है, तथा मैं ऐसे शीघ्रकाल से इस रचना को करता हूं कि जिस से आप यह समझैं कि मानों यह रचना आज नहीं की जाती किन्तु पूर्वहीं से करी कराई अर्थात् भूतकाल की है तथा इतने अल्पकाल में मैं इस यन्थरचना को समाप्त करूंगा कि जिस से मुझै भी यह प्रत्यक्ष नहीं होगा कि मैं इस रचना की करता हूं "। इस रीति से जब भूत, अनदातन और परोक्ष, तीनों की विवक्षा आचार्य को थी तब तो 'छिट्' ही का प्रयोग उचित था जैसा कि उन्हों ने किया है। अब इस दृष्टान्त और पूर्विक सीति से 'छुङ्' 'छङ्' 'छिद्' तीनों के प्रयोग का विषय स्पष्ट हो गया। और भविष्यत् काछ के

एवमनद्यतनत्वाविवक्षायामनद्यतनेऽपि भविष्यति न छुङ् भवति यथा 'चातुर्वण्यं-श्च छोकेऽस्मिन् स्वे स्वे धर्मे नियोक्ष्यति' 'रामोराज्यग्रुपासित्वा स्वर्गछोकं प्रयास्यति' इत्यादों। तथेव छुड्प्यविवाक्षतेऽपि बर्तमानत्वे भवति यथा 'बारिदस्तृप्तिमामोती' त्यादों। नह्यनेन स्मार्तवाक्यनेतद्वाक्योच्चारणकाछिक्येव तृप्तिर्विवाक्षितेति वक्तुं शक्यते अस्य बारिदानतृप्ति-प्राप्त्योः कार्यकारणभावमात्रे तात्पर्यात् । अत्र प्रवाग्रहायाणकादावाप प्रयुक्तेषु 'शरिद पुष्पिनत सप्तच्छदा' इत्यादिवाक्येषु छुद् साधुर्भवति। तथाचाभूतेऽपि हिरण्यगर्भस्य संबर्तने-

॥ भाषा॥

बोधक ' छुट्' का भी प्रयोग भविष्यत् .काल की क्रिया के अनद्यतन होने मात्र से नहीं होता किन्तु जब वक्ता को, उस किया को अनद्यतन कहने की इच्छा होती है तभी होता है इसी से बाल्मीकीयरामायण के ''रामोराज्यमुपासिला स्वर्गलोकं प्रयास्यति " (श्रीरामचन्द्रजी बहुत दिन तक राज्य करके खर्गछोक को जायंगे) इत्यादि वाक्यों में 'छुट्' का प्रयोग "प्रयाता" नहीं किया है क्योंकि उन खलों में इतनाही कहने की इच्छा है कि ''राज्य करने के उत्तरकाल में जायंगे" इसी से भविष्यत्सामान्य में 'लट्' ही का प्रयोग किया है। ऐसे ही 'लट्' का भी बर्तमानकाल ही अर्थ नहीं है किन्तु कालसामान्य भी अर्थ है जैसे "बारिद्स्तृप्तिमाप्नोति" (जल का द्वान करने वाला तृप्ति पाता है) इल्लादि स्मृतिवाक्यों में 'लद्' (नोति आदि) का वर्तमानकाल अर्थ नहीं है क्योंकि जिस समय 'छद्' का उच्चारण होता रहता है उस समय को वर्तमानकाल कहते हैं इस कारण जिस समय 'नोति' आदि का प्रथम उचारण नहीं होता रहैगा उस समय का जलदान निष्फल हो जायगा, किन्तु ऐसे वाक्यों में 'लट्' का कालसामान्यही अर्थ है अथवा काल अर्थ ही नहीं है किन्तु तृप्ति और जलदान आदि कार्य कारण होने में ही तात्पर्य है अर्थात् इतना ही अर्थ है कि जलदान, तृप्ति का कारण है। इस विषय में एक और दृष्टान्त है कि जब माध्रमास में कोई प्रश्न करता है कि 'सिठवन कब फूछते हैं ?' तो उसी समय उसका यह उत्तर दिया जाता है कि 'शरिद पुष्प्यन्ति सप्तच्छदाः' (शरद् ऋतु में सप्तच्छद् 'सिठवन' फूछते हैं) यहां 'छट्' (यन्ति) का प्रयोग तो माघ में हुआ और सिठवन शरद में फूलता है तो वर्तमानकाल में, फूलना-रूपी किया कहां होती है ? जिस से कि 'छट्' का प्रयोग किया जाता है। इस से अनन्यगति हो कर ऐसे २ वाक्यों में सबको यही स्वीकार करना पंड़ैग कि 'लट्' का कालसामान्य अर्थ है अथवा काल अर्थ है ही नहीं। इस बिषय में सामान्य बैयाकरणों को यह भ्रम होता है कि पाणिनि-महार्षे का सूत्र तो 'बर्तमाने छट्' (बर्तमानकाल में 'छट्' बोलना चाहिये) है। तो बिना बर्त-मानकाळ के 'छद्' का प्रयोग करना ब्याकरण से बिरुद्ध है, परन्तु वे यह नहीं समझते कि उक्त-सूत्र का यह अर्थ है कि भूत और भविष्यत् काल के कहने की इच्छा जब वक्ता को नहीं होती तब 'लट्' का प्रयोग होना चाहिए अर्थात् दो दशाओं में 'लट्' का प्रयोग डाचत है एक यह कि नब बर्तमानकाल के कहने की इच्छा हो, दूसरी दशा यह कि जब किसी काल के कहने की इच्छा न हो। और उक्तसुत्र में 'बर्तमान' शब्द से सूत्रकार का तात्पर्य इन दोनों दशाओं में है क्योंकि यदि ऐसा न माना जाय तो इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं हो सकता कि 'बारिदस्तृप्तिमाप्नीति' और 'शरि पुष्यिन्त सप्तच्छदाः' इत्यादि अत्यन्तप्रसिद्ध वाक्यों में 'छट्' के प्रयोग के छिए पाणिनि-महार्षि ने कौन सुत्र बनाया है ? 'छुङ्' आदि के प्रयोग के बिषय में संस्कृतब्याकरण की

ऽस्तित्वे पृथिन्यादिधारणे च सत्यत्वस्य प्रतिपिपादि यिषयेवास्मिन्मन्त्रे लङादिपयोगः।
मन्त्रान्तरेषु ब्राह्मणभागेषु च लुङ्लङ्लिटांप्रयोगा एवमेव संधायां साभवन्तीति तेभ्यो बेदसादित्वलाभदुष्पत्यात्रा वेदवाह्यस्य शिलाशकलतो वालकलाभलोलुभतामेव तस्योपलम्भयतीति।

अपिच नास्त्येव बेदे स एकोऽपि शब्दों य उक्तलक्षणं भूतत्वमभिद्धीतं तथाहि वेदे केऽपि लुङ्बङ्किटो न लौकिकलुङादिसमानार्थाः किंतु कालसामान्यार्था एव। तथाच —

अष्टके ३ अध्याये ४ पादे पाणिनीयं सूत्रम्।

छन्दसिलुङ्लङ्खिटः ॥ ६ ॥ इति

अस्यार्थः । छङ्लङ्लिटो यत्र काले बिहितारछन्दास ततोऽन्यत्र स्युः कालसामान्ये साधवःस्युरिति यावत् 'जदाहरणानि' छङ् 'देवोदेवेभिरागमत्' 'राङ्कलाङ्गप्ठको करत्' 'इदन्तेभ्योऽकरन्नमः' लङ् 'आग्नमद्य होतारमञ्जूणीतायं यनमानः' लिट् 'अद्य ममार' अद्य म्नियतइत्यर्थः । यद्यप्यत्र सूत्रे काश्विकायां जयादित्येन 'धातुसम्बन्धे' इत्यनुवर्तितम् अनुस्तंत्र्व तदेव कौमुद्यां दीक्षितेनापि । अञ्चितु नैतत्सूत्रमुल्लिखितम् तथाप्यत्र 'धातुसम्बन्धे' इति नैवानुवर्तते । दृदत्तरमानाभावात् । लिङ्थेलेडित्यादावितोऽप्युत्तरत्र तदननुवृत्तिद्रिनाच । किंच अत्र तदनुवृत्यभ्युपगमे पूर्वोक्तेषु ताभ्यामेवोक्तेषुदाहरणेषु धात्वर्यानां भियः सम्बन्धगन्धस्याप्यभावात्ताभ्यां तदुदाहरणीकरणस्यैव ब्याघातः प्रसज्येत । तथाचात्रैव सूत्रे-

निर्दोष और गम्भीर प्रणाली यही है। अब इसके अनुसार ध्यान देना चाहिये कि "हिरण्यगर्भः समबर्तताम्रे" इस मन्त्र में हिरण्यगर्भ के प्रादुर्भाव आदि में सत्यताबोध करानेही के लिए 'लुङ्' आदि का प्रयोग है जैसा कि "ब्यातेने किरणावलीमुद्रयनः" इस पूर्वोक्त वाक्य में 'लिट्' का प्रयोग है, न कि भूतकाल के बोध कराने के लिए। और ऐसा ही 'लुङ्' 'लङ्' 'लिट्' के प्रयोग का तात्पर्य, अन्यान्य मन्त्रों में और ब्राह्मणभाग के वाक्यों में है अर्थात् बेद में एक शब्द भी ऐसा नहीं है कि जो अपने (उस शब्द के) उच्चारण की अपेक्षा भूतकाल के बोध कराने में तात्पर्य रखता हो, उक्त साहेब को तो, इस से पूर्व में कही हुई संस्कृतलांकिकव्याकरण की स्थूलप्रणाली की अपेक्षा बैदिक 'लुङ्' आदि के अर्थों में पूर्वोक्त बिशेष प्रकार का भी बोध यदि होता तो 'हिर्ण्यगर्भः समबर्तताम्रे' का नाम भी नहीं लेते। और ऐसी उनकी बुद्धि से यह सूक्ष्म ब्याकरण-प्रणाली तो बहुत ही दूर थी निदान बेदवाक्यों से बेद की नवीनता को सिद्ध करने का साहस बालू से तेल निकालने के साहस से कुछ भी न्यून नहीं है।

(४) अब तक बैदिक 'लुङ्' आदि शब्दों के अर्थों को लौकिक 'लुङ्' आदि शब्दों के अर्थ से तुल्य मान कर लौकिकब्याकरण की प्रणालियों से समालोचना की गई और अब बिशेष किप से बैदिकब्याकरण के अनुसार समालोचना की जाती है।

अध्याय ३ पाद ४ में "छन्दास छुङ् छङ् छिटः" ॥ ६ ॥ यह पाणिनिमहार्ष का सूत्र है इसका यह अर्थ है कि छौकिकवाक्यों में जिस २ काछ में 'छुङ्' 'छङ्' 'छिद्' का विधान, पूर्व में किया गया, वे काछ बेद में 'छुङ्' 'छङ्' 'छिट्' के अर्थ नहीं होते, अर्थात् बेद में 'छुङ्' 'छङ्' 'छङ्' 'छिट्' का काछसामान्य अर्थ है अथवा काछ अर्थही नहीं है इति । इस पाणिनि सूत्र से स्पष्ट ही निश्चित होता है कि बेद अनादि है इसी से उसमें 'छुङ्' आदि का भूतकाछ अर्थ

' उदाहरणेषु धातुसम्बन्धो सृग्य ' इति पदमञ्जर्यो हरदत्तामिश्रेण, सुत्रोधिन्यां जयकृष्णेन, चोक्तम् । अपिच अत्र स्त्रे धातुसम्बन्ध इत्यस्यानुवृत्तौ सुत्रमेवेदमनर्थकं स्यात् 'धातुस-इबन्धे प्रत्यया ' इत्यनेनैव गतार्थत्वात् । निह लुङादीनां प्रत्ययत्वं नास्ति यावता न तेनै-तत्स्त्रलक्ष्याणामन्यथासिद्धिः स्यात् । नापि विकल्पार्थमिदं स्त्रं स्यात् समुचयेऽन्यतरस्यामिति सूत्रस्थान्यतरस्यामित्यस्य स्वारितत्वे मानाभावात् । यथाविध्यनुपयोग इत्यादौ 'तदनुबृ-तिबिच्छेदाच । मण्डूक। तुबृत्ती धानाभावाच । नाष्यस्य सूत्रस्य नियमार्थतया सार्थक्यं सम्-र्थियतुं शक्यते । नियमो हि किं, छन्द्सि धातुसम्बन्धे छुङाद्य एवेत्याकारकः ? उत छन्द-स्येव धातुसम्बन्धे लुङादय इतिरूपः ? किंबा छन्दासि धातुसम्बन्ध एव लुङादय इत्यात्म-कः १ स्यात् । चतुर्थमकारासंभवात् । तत्र नाद्यः 'तद्भित्तत्पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुरभव 🖰 सूर्यश्रेति ' इति बृहदारण्यकश्रुतौ पश्यित्निति छटोऽसाधुत्वपसंगात्। न द्वितीयः। 'अन्चानो भविष्यति' 'उपेयिवांसि कर्तारः पुरीम्' इत्यादिशयोगेषु लिटो लोके साधुत्वानुप-पत्तेः। अथैतन्नियमविरोधादेवैवमादिषु लोके लिटोऽसाधुत्वमेव, अस्माकं लक्षणैकचक्षुष्क-त्वादिति चेत्, स्यादप्येवम् यादे प्रकृतसूत्रे दृढतरेण केनचित्प्रमाणेन धातुसम्बन्धपदस्य सम्बन्धोऽवधार्येत, नचासाववधार्यते नबा तद्वधारणमन्तरेण नियमोऽसावात्मानं लब्धुं क्षमते। अस्यां च दुरवस्थायां ब्याकरणस्य प्रयुक्ताम्वाख्यानत्वाद्वेदिकाः प्रयोगा इव नियमान्त-रमिमे प्रयोगा एव स्वविरोधेन स्वयं शिथिलमूलमिमं नियममुन्मूलयन्तः प्रकृतसूत्रे धातु-सम्बन्धपदस्यासम्बन्धमेव निर्णाययन्ति । नापि तृतीयः।तथासत्युक्तोदाहर्णे व्वेव लुङादीनां साधुताया दुरुपपादत्वापातात्। तथाच कैरपि वैदिकेंर्छङादिभिनोंक्तरूपभूतत्वाभिधानमपौ-रुषेयत्वाद्धेदानामित्येतस्मिन्नेवार्थे प्रकृतसूत्रमारभमाणस्य भगवतः पाणिनेस्तात्पर्यम् । अतएव च भूतार्थे सूत्रान्तरैः स्वयंबिहितानेवैताँ स्त्रीन् लकारानत्र सूत्रे बिशिष्य निर्दिदेशासौ भगवान्। एक भूतार्थकत्वस्यैव पौरुषेयत्वापादकतायाः कथंचित्संभवात् । त्यायसाम्याचच्छान्दसानां निष्ठादिमत्ययानामपीदृश्येव गतिरवगन्तव्या । नश्चपीरुषेये बेदेऽमीषामुक्तपूर्वे भूतार्थकत्वम-चकलपते । यदा च बेदे छुङादीनामियं दशा तदा बैदिकानामग्रपूर्वपुराऽऽदिशब्दानामन्यादशी ॥ भाषा ॥

नहीं होता। और पाणिनिमहर्षि को भी बेद की अनादिता ही इष्ट है इसी से भूतकाल ही के बोधक 'छङ्' आदि तीन प्रकार के शब्दों की उन्हों ने अपने इस सूत्र में बिशेषरूप से निर्देश किया है क्यों कि बेद में यदि इनका मूतकाल अर्थ होता तो यह सन्देह होता कि कोई काल ऐसा भी था जो कि बेद की अपेक्षा भूतकाल था अर्थात् उस समय बेद न था, और तब बेदों की अनादिता न होती। और उक्त 'लुङ्' आदि शब्दों के नाई बेद् में अप्र, पूर्व, पुरा, आदि शब्दों का भी यह अर्थ नहीं होता कि 'बद के पूर्ष शिकन्तु बेदोक्तसमाचारों में अन्योन्य की अपेक्षा पूर्वकाल ही का बोध, बेद में अम आदि शब्दों से होता है। अब इस के अनुसार 'हिरण्यगर्भः समबर्ततामें का यह अर्थ है कि 'अमे ' (प्रत्येक आदिसृष्टि के पूर्वसमय में) हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) समवर्तत (हुआ करता है) यह एक एसी प्रसिद्ध बार्ता है कि जिसके कारण, चार्बीक आदि नास्तिकों के दर्शनों में भी बेद पर, बेद के शब्दों के अनुसार नवीनता का आक्षेप नहीं है क्योंकि यदि नास्तिकों को उक्त पाणिनिसूत्र नहीं ज्ञात होता तो बेद के 'छुङ्' आदि शब्दों का भूतकाल अर्थ कर बेद पर नवीनता

दशा कथमवक्तुः त्रिपथमप्यवतरेत् । नच ति कित्यपेष्वर्थवादेषु भूतार्थवादत्वब्यपदेशस्य ब्याकोप इति वाच्यम्। 'भूतार्थवादस्वद्धानात्' इति बार्तिकश्लोकावयवब्याख्यानावसरे गुण-वादानुवादिभिन्नार्थवादत्वमेव भूतार्थवादत्विमिति बेददुर्गसज्जने प्रतिपादनात् । अपिच प्रातिश्वाख्ये कात्यायनः।

" लौकिकानामर्थपूर्वकत्वादि " ति ।

अयमर्थः। लौकिकानां ''गामभ्याजशुक्ठांदण्डेने'' त्यादिवाक्यानां प्रयोगोऽर्थपूर्वकः।
मयोक्तारो हि तं तं प्रतिपिपादियिषितपर्थमुण्लभमाना अनुसन्द्धतो वा प्रयुक्षते लौकिकानि वाक्यानि। नित्यानां तु वाक्यानां नार्थपूर्वकः प्रयोगो घटते। बैदिकवाक्यार्थानां सृष्टि-प्रलयादीनामनित्यत्वादिति। ततश्च वस्तुसद्भावनैरपेक्ष्येण लोकबृत्तमवगमयद्भ्यो बेदवाक्येभ्यः कथमपि नोक्तभूतकाललाभः संभवति। यस्तु 'छन्दिस लिद् ॥३॥२॥१०५॥ इति भूतसामान्ये लिद्विधीयते 'अहं द्यावापृथिबी आतताने' ति तस्यापि नोक्तपूर्वे भूतत्वमर्थः, अस्यैव कात्यायनवाक्यस्यानुरोधात् किंतु पूर्वकालमात्रम् तत्र पूर्वत्वं च भाविवस्त्वन्तरस्रकृति विकार्याद्योगितिबोध्यम्। तथाच लौकिकलुङ्गत्ययादिसामान्येन बैदिकेभ्योऽपि लुङ्गिदिभ्यः कालविशेषानवधार्य प्रायस्तत्र तत्र स्वस्त्रपृत्थेषु वेदापौरुषेयत्वादीननेकान् द्रदी-

॥ भाषा॥

के आक्षेप करने से कब वे बिन्धित होते ? । उक्त साहेब का ध्यान तो उक्त पाणिनिसूत्र पर नहीं गया इसी से उन्हों ने बेद पर ऐसा आक्षेप किया ।

प्रश्न-यदि बेद में किसी शब्द का भूतकाल अर्थ नहीं होता तो कतिपय बेदवाक्यों को

मीमांसकलोग भूतार्थवाद (भूतकाल के बिषयों को कहना) क्यों कहते हैं भी

ह0 — मीमांसकों के यहां 'भूतार्थवाद' शब्द का यह अर्थ नहीं है कि भूतकाल के अर्थों को कहना, किंतु वे यह कहते हैं कि अर्थवाद तीन प्रकार का होता है [१] गुणवाद [२] अन् नुवाद [३] भूतार्थवाद, इसका यही तात्पर्य है कि गुणवाद और अनुवाद स अन्य जितने वैदिक अर्थवाद हैं सब की संज्ञा 'भूत' है अर्थात् 'डित्थ' आदि संज्ञाओं के नाई भूतशब्द भी उन अर्थवादों का नाम मात्र है और भूतनामक होने से वे अर्थवाद भूतार्थवाद कहलाते हैं। इस विषय का पूर्वहीं 'बेददुर्गसज्जन' में निरूपण हो नुका है।

(५) प्रातिशाख्य में कात्यायनमहार्ष ने कहा है कि "छौकिकानामर्थपूर्वक होता है अर्थात् वाक्य के प्रयोग करने वाले पुरुष उस वाक्य से जिसका बोध कराना चाहते हैं उस अर्थ को समझ कर उसके अनुसन्धान से वाक्य की रचना करते हैं और वैदिकवाक्यों का प्रयोग तो अर्थपूर्वक नहीं हो सकता क्योंकि बंद नित्य है और उसके अर्थ, सृष्टि प्रलय आदि अनित्य हैं) तब ऐसी दशा में बेदवाक्यों से भूतकाल के लाम का संभव त्रिकाल में भी नहीं हो सकता।

पूर्वोक्तसूत्र और प्रातिशाख्य के परिचय से बिष्वत आज करह के अनेक बेदवाहा-महाशय अनेक भाषाओं में प्रन्थों को बना बना कर उन में बेदवाहुयों ही से "अमुक समय में ऐसा हुआ, अमुक समय में वैसा हुआ" इत्यादि रीति से भूतकाल के इतिहासों को निकाल र बेद को हिस्ट्री (इतिहास) समझ कर भूतकाल के अनेक विषयों का निश्चय कर बैठते हैं और उसी वसो बैदिकदर्शन विद्धान्तानाक्षिपतां बैदिकब्याकरणतात्पर्यपरिचयवित्रितानां सर्वेषामेष बेदवाह्यानामयं महामोहएव यस्ति च्छिक्षाभाषाद्यभ्यासवासितमानसान् कितपयान् भारतबर्वायानापि तत्तदाक्षेपरूक्षाक्षरमुखिकरोति, क्षाम्यन्त्युपेक्षन्तएव वा तानाक्षेपानक्षमा-इवाद्यत्वे बेदचक्षुषोऽपि विचक्षणा नतु प्रत्याचक्षते, तत् किमिप बिछक्षणमेवेदममूळमकस्य-मिप कराळकल्पमान्तराळिकं किलकालोद्धारगौरवम् । तस्मात् अत्र मन्त्रे कमळयोनिपरस्य दिरण्यगर्भपदस्याग्रपदस्य छङादीनां चोपादानेऽपि नास्य सादित्विमत्येतसान्त्रवीनत्वला-भोक्तीरिक्तेव । प्राचीनत्वे प्रमाणानामनुपलम्भस्तु बेदवाह्यस्य न क्षित्रमावोद्धक्षमते । नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पर्यतीतिन्यायात ।

यदपि तेनैव।

बेदानां द्वौ भागौ एक इछन्दः द्वितीयोमन्त्रः, तत्र सामान्यार्थाभिधायक मङ्गानिनो मुखादिवाक सामिः स्टतं बुद्धिपूर्वरचना बिहीन मिव यद्वाक्यं तच्छन्दः। तदुत्पत्तेः समयस्तु एक निश्च च्छतानि वर्षाण्यधिकादधिकानि व्यतीतानि । एवं मन्त्रोत्पत्तेर प्येकोन त्रिश्च च्छतानि वर्षाण । अत्रच 'अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरी ड्योन्तने रुत' इत्यादीनि ममाणानीत्युक्तम् । तद्दिष गळगईनमात्रम् । छन्दः पदस्य वेदपर्यायताया मन्त्रपदस्य च पूर्वोपन्य स्तमन्त्र छक्षण स्रात्तन

के अनुसार बेद को नवीन मान २ कर बेद की अपीक्षयता आदि अनेक, रहतर दार्शनिकसिद्धान्तों पर अपनी अज्ञता से आक्षेप किया करते हैं, वह उनका महामोह ही है, क्योंकि अनन्तरोक्त अनेक रहतर प्रकार से यह सिद्ध कर दिया गया है कि बेदवाक्यों से भूतकाल का लाभ
कदापि नहीं हो सकता। और उन्हीं बेदवाह्यों की शिक्षा, भाषा, बेश, आदि के अत्यन्त अभ्यास से
भारतबर्ष के भी अनेक मनुष्य बेदबाह्यप्राय हो कर उक्त आक्षेपों से क्खी और तीखो वाणियों
से प्राय: अपने मुखों को अपवित्र किया करते हैं और इस समय के बड़े २ बैदिक बिद्धान् भी
असमर्थ से हो कर किसी कारण से उन वाणियों को सहन करते वा उनकी उपेक्षा ही करते हैं कि
"कौन उन अज्ञों के मुह लगने जाय"। सो यह कुरिसतदशा, केवल कलिकाल महाराज ही के
प्रताप का परिणाम है। और उक्त साहेब ने जो यह कहा है कि 'मन्त्रों की प्राचीनता में हम कोई
प्रमाण नहीं देखते' सो ठीक ही है क्योंकि उनके वाक्यों ही से यह निश्चित होता है कि उन्हों ने
बैदिकदर्शनों का दर्शन कदापि नहीं पाया था।

ऐसे ही पूर्वोक्तग्रंथ में उक्त साहेब ने यह भी कहा है कि "बेदों में दो भाग हैं एक छन्द और दूसरा मन्त्र, इन में से छन्दभाग ऐसा है जो सामान्य अर्थ के साथ सम्बन्ध रखता और दूसरे की प्रेरणा से प्रकाशित हुआ ज्ञात होता है कि जिसकी उत्पत्ति, बनाने वाले की प्रेरणा से नहीं हो सकती अपेर उसमें कथन इस प्रकार का है जैसे अज्ञानी के मुख से अकस्मात् शब्द निकला हो, उसकी उत्पत्ति से (३१००) इकतीस सो वर्ष व्यतीत हुए हैं और मन्त्रभाग की उत्पत्ति से (२९००) उनतीस सो वर्ष व्यतीत हुए हैं उस में (अग्नि: पूर्वेभि:) इस मन्त्र का भी प्रमाण दिया है"।

सो यह उनका कथन भी ठीक नहीं है क्योंकि छन्द और मन्त्र का विभाग जो उन्हों ने किया है उसमें कोई प्रमाण नहीं है अर्थात् यह उनकी मनमानी करूपना मात्र है तथा वैदिक शब्दवाचकताया अनादिबैदिकलौकिकब्यवहारपरम्परासिद्धाया दुरपहत्रतया वाह्येनोक्तस्य 'छन्दोमन्त्रपदार्थविभागस्य तन्मानसोल्लाममात्रमूलकस्य तद्धिरोधनानभ्याशिमत्यर्थत्वात्।

एवम् एकत्रिंशच्छतानि वर्षाणीत्यादिके तदुक्तेऽर्थे प्रमाणगन्धोऽपि नास्ति, 'अप्निः पूर्वेभि' रित्यादौ पूर्विदिपदस्य संख्याशब्दत्वाभावात्, पूर्वनूतनपदयोश्च परस्परार्थावाधिक-पूर्वत्वनूतनत्वमात्रप्रतिपादकतया ताभ्यामग्न्यपेक्षया पूर्वत्वादेरलाभात् । अथ कदा तिहै वेदोत्पित्तिचेत्, 'बन्ध्यायुत्रः कृष्णः कपिलो वे' तिवत् कथमयं वेदोत्पित्तिसाधनासमर्थस्य वेदोत्पित्तिविषये समयविशेषपक्षः ?

यत्तु तस्मादप्यन्येन

पूर्वकालिकानि भारतवर्षीयाणां प्रात्यहिकाग्न्यादियाचनादिरूपगृह्यब्यवहाराङ्गानि बाक्यान्येव कतिपयकालानन्तरं बेदत्वेन प्रसिद्धानीत्यादि प्रलिपतम् ।

॥ भाषा॥

और छौिक अनादिब्यवहारों से विरुद्ध है क्योंकि 'छन्द' शब्द का 'बेद' शब्द से समानार्थक होना, और 'मन्त्र' शब्द का पूर्वोक्त मन्त्रलक्षण वाले वाक्यों का वाक्क होना अनादिकाल से अतिप्रसिद्ध है। तथा छन्दभाग और मन्त्रभाग के उत्पत्तियों के मध्यकाल को जो उन्हों ने दिखल्या है उसके विषय में तो किसी प्रमाण का गन्ध भी नहीं है क्योंकि "अग्निः पूर्वेभिः" इतादि मन्त्रों में पूर्व आदि शब्दों का संख्या अर्थ नहीं है कि जिस कारण उनके अनुसार वर्षों की संख्या का लाभ हो और उक्त मन्त्र में जो, ऋषियों को पूर्व और नूतन कहा है वह पूर्व और नूतन अर्थात् प्राचीन और नवीन होना उन ऋषियों का, उनमें अन्योन्य की अपेक्षा से है अर्थात् कोई ऋषि किसी अर्थि की अपेक्षा प्राचीन और वह उसकी अपेक्षा नवीन है, तो ऐसी दशा में मन्त्रों की नवीनता कदापि इस मन्त्र से नहीं निकल सकती।

प्रश्न—यदि साहेब का कहा हुआ समय ठीक नहीं है तो बतलाना चाहिये कि बेद की बत्पात्ति कब हुई ?।

उत्तर—बन्ध्या का पुत्र किस रङ्ग का है अर्थात् काला है वा गोरा ? इस प्रश्न का भी यदि उत्तर देने योग्य हो तो उक्त प्रश्न का भी उत्तरं दिया जा सकता है।

प्रश्न—बन्ध्या का तो पुत्र ही नहीं होता इसी से उसके रूप का प्रश्न ही नहीं हो सकता तो ऐसी दशा में उसके उत्तर का क्या सम्भव है ?

उत्तर—बेद की उत्पत्ति ही नहीं होती इसी से उसके समय का प्रश्न ही नहीं हो सकता तो ऐसी दशा में इसके उत्तर का भी संभव नहीं हो सकता और उक्त प्रश्न का करने वाला, बन्ध्यापुत्र के रूप के प्रश्नकर्ता से न्यून नहीं है।

प्रश्र-बेद की उत्पात्त क्यों नहीं होती ?।

इत्तर—इसका पूर्णरीति से बिचार बेददुर्गसज्जन के बेदापौरुषेयस्तप्रकरण में हो चुकी है। बीवर साहेब के प्रंथ की अपेक्षा डाक्टर 'मैक्सम्यूलर' के प्रंथ में जो बिशेषभाग बेदसंबन्धी था इसकी समालोचना यहां तक पूर्ण हो चुकी। और जो नवीन 'मार्सडेन' साहेब आदि ने अपने पुस्तकों में "पूर्वकाल में अप्रि आदि के याचन आदि लेकिक व्यवहार के लिये भारतवासी लोग ह

तत्तु बाछ्छीछायितमेव संस्कृताऽपि वाणी न कदापि भारतवर्षांयाणां मातृभाषाऽ-भूदित्यस्यार्थस्य भाषान्तरमयीनां बेदैकदेशप्रतिकृतीनां बेदत्वस्य निराकरणावसरे बेददुर्ग-सज्जनएव सप्रमाणस्रुपवर्णितत्वात् ।

अत्र श्लोकौ।

पूर्ववाह्यानिबन्धन बेदवाह्यानिबन्धयोः । अनयोरगतार्थो यः स एवांशः परीक्षितः ॥ १ ॥ अनयोरपरोंऽशस्तु पूर्वग्रन्थपरीक्षया । चरितार्थपरीक्षत्वादपरीक्ष्यउपेक्षितः ॥ २॥

एतेन बेदवाह्यभ्य एव तद्ग्रन्थानेव च शैशवात्प्रभृति श्रुतीकृत्य तेषामेव च सिद्धा-न्तान् मनसि साभिनिबेशमाबेश्य बृत्तीरिप तेभ्य एव प्रतिलभ्य रात्रिन्दिवश्च तेषामेव सहवासमनुभूय तेषामेव च शीलाचारभाषावस्त्रपरिधानिबहारप्रभृतिनिखिल्ण्यवहार-शैलीरनुक्षणं परिशिल्याद्भः केश्चिद्धारतवर्षीयैरिचता बेदवाह्योक्तिमात्रप्रमाणप्राणा ग्रन्थप्र-तिरूपका अपि दूरोत्सारिता इत्यलमितपल्लवितेन। एताश्च द्वीपान्तरीयाणां बेदवाह्यानां तदनुयायिनां कतिपयानां भारतवर्षीयाणां च सर्वी एवोक्तयः—

नचात्रातीव कर्तव्यं दोषदृष्टिपरं मनः । दोषो ह्यविद्यमानोऽपि तिच्चित्तानां प्रकाशते ॥ १ ॥

इति भट्टपादीयपद्यपश्चार्द्धस्यैवोदाहरणानि ।

भूयोऽपि चेत् कस्कश्चित् मदुक्तीरपि कास्काश्चित् प्रति किं किंचित्कपोलकल्पना-

जिन वाक्यों को बोलते थे कुछ काल के अनन्तर वे हीं वाक्य बेद के नाम से प्रसिद्ध हो गये हैं "
इत्यादि अनेक प्रकार के प्रलागों को लिख मारा है उसमें समालोचना की आवश्यकता कुछ नहीं है
क्योंकि वे प्रलाप स्वयं बाललीला ही हैं। और 'बेददुर्गसज्जन' प्रकरण में कुरान इंजील आदि की
बेदताखण्डन के अवसर पर स्पष्टगुक्तियों से यह सिद्ध कर दिया गया है कि संस्कृतवाणी भी
भारतवासियों की मातृभाषा कभी नहीं थी, तो ऐसी दशा में बेदवाणी को भारतवासियों की
मातृभाषा कहना बालबुद्धि ही पुरुष का काम है। ऐसे ही प्रंथ नहीं, बरुक इन प्रन्थों की पृछों
के समाम प्रायः अनेक प्रंथ जो अंग्रजी पढ़नेवाले भारतवासियों के हैं और उनमें बेदसंबन्धी
विचार अनेक स्थानों पर ऐसे हैं कि जिनका प्राणभूत मूलप्रमाण अंग्रेजों के लेख से अन्य दूसरा
नहीं है वे बिचार भी इस अंग्रेजों के प्रन्थसमालोचना ही से अतिदूर पलायित हो गये, इससे उनकी
पृथक् समालोचना करने का कोई प्रयोजन नहीं है। अंग्रेज और अंग्रेजी पढ़नेवाले भारतवासियों
के इस प्रसंगस्त्री उदाहरण को देख कर कुमारिल्यम्हपाद के उस वाक्य का स्मरण आना अल्यन्तसंभव है कि जिस में उन्हों ने यह कहा है कि 'नचात्राल' "मेरे इस मीमांसाबार्तिक नामक
प्रत्थ पर अधिक दोषदृष्टि नहीं करनी चाहिये क्योंकि जिस में जो दोष नहीं भी रहते वे भी उसमें
अधिक दोषदृष्टि करनेवाले के चित्त पर आक्रमण कर बैठते हैं " और इस वाक्य के स्मरण से
यही कहना उचित ज्ञात होता है कि मेरी लिखी हुई उक्त युक्तियों पर भी यदि भविष्यत्काल में

मात्रेण प्रतीपं वक्ष्यित लेखिष्यति वा तदाऽपि न तावता काचिद्प्यस्य ग्रन्थस्य हानिः संभाविनी नद्युत्रकानामन्धतमसावलोकनमात्रात्सावित्रप्रकाञ्चेन लोकचक्षुपाग्रुपकारो जातु कियन्तमपि हासमासादयति। उल्लेकाश्च न तं प्रकाशम्बलोकन्ते कदाचिदित्ययमप्यशे नैसर्गिकत्वादिचिकित्स्य एव।

तद्प्युक्तम् भट्टवादैः—
निर्दोषत्वैकवाक्यत्वं क बा लोकस्य दृश्यते ।
सापबादा यतःकेचिन्मोक्षस्वगीविष प्रति ॥१॥ इति ।
इति बेदिबिषयबेदवाह्यग्रंथपरीक्षासरिणः ।

अथात्राह स्म यस् स्वामी दयानन्दसरस्वती बेदं प्रकृत्व तत् तत्राप्युचितं किंचिदुच्यते ॥ तथाहि ।

यतु बेद्भाष्याभासभूमिकायाम् (बेदसञ्ज्ञाबिचारः) इत्युपक्रमे

अय कोऽयं बेदो नाम १ मन्त्रभागसंहितत्याह। किंच 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयामि' तिकात्यायनोक्तेब्रीह्मणभागस्यापि बेदसब्झा कुतो न स्वीक्रियतहित। मैवंवाच्यम्। म ब्राह्मणानां बेदसब्झा भवितुमहित। कुतः। पुराणोतिहाससब्झकत्वाद्धेदब्याख्यानाहाषिभि-रक्तत्वादनीश्वरोक्तत्वात् कात्यायनभिन्नेक्किषिभिर्वेदसब्झायामस्वीकृबत्वानमनुष्यबुद्धिरचित-

॥ भाषा॥
कोई बेदवाद्य पुरुष कुछ विरुद्ध भी छिखेगा तो उससे मेरी इन युक्तियों पर कुछ हानि नहीं पहुंच
सकती अर्थात तब भी मेरी ये युक्तियां अवश्य ही छोकोपकार करेंगी क्योंकि यद्यपि प्रकाश में
भी उल्ल्युपक्षीगण घन और घोर अन्धकार देखते हैं तथापि उस प्रकाश से, अन्य नेत्रों के उपकार
में कुछ भी हानि नहीं पहुंचती। और यह भी है कि उल्लुओं का वह अन्धकारदर्शनरूपी भ्रम
भी उनके प्राणों के साथही छूटता है। इसी से कुमारिछभट्टपाद ने यह भी कहा है कि 'निदेंषिंव''
(ऐसा कोई बिषय नहीं है कि जिसको सब छोग एक मुख से निदेंषि कहें क्योंकि कुछ छोग ऐसे भी
हैं कि जो खर्ग और मोक्ष पर भी अपवाद छगाते हैं)। यहां तक द्वीपान्तरीय बेदवाह्यों के अन्थों
की समाछोचना का प्रकार संक्षेपरूप से दिखछा दिया गया।

अब, भारतवर्षवासी स्वामीद्यानन्दसरस्वती ने बेद के विषय में जो कहा है उस की समाछोचना की जाती है।

जन्होंने अपने ऋग्बेदादिभाष्यभूभिकानामक प्रनथ के "अथ बेद्संज्ञाबिचारः" इस प्रकरण में ८० पृष्ठ से आरम्भ कर ८८ पृष्ठ 'इति बेद्संज्ञाबिचारः' यहां तक यह छिखा है कि

प्र- बंद किनका नाम है ?

उ०-मन्त्रसंहिताओं का,।

प्र०-- जो कात्यायनऋषि ने कहा है कि मन्त्र और ब्राह्मण प्रन्थों का नाम बेद है किर ब्राह्मणभाग को भी बेदों में प्रहण आप छोग क्यों नहीं करते हैं ?

एक कात्यायन को छोड़ के किसी अन्य ऋषि ने उन के बेद होने में साक्षी नहीं दी है और वे देह

त्वाचेति । यथा ब्राह्मणग्रनथेषु मनुष्याणां नामळेखपूर्वका कोकिका इतिहासाः सन्ति नचैवं मन्त्रभागे । किंच भोः । त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषम् तन्नो अस्तु ज्यायुषम् ॥ १ ॥ यजु० अ० ३ मं० ६२ इस्यादीनि वचनान्यृषीणां नामाङ्कितानि यजुर्वे-दादिष्यपि दृश्यन्ते । अनेनेतिहासादिषिषये मन्त्रब्राह्मणयोस्तुल्यतापि दृश्यते पुनर्ब्वाह्मणा-त्रांबेदसञ्ज्ञा कुतो न मन्यते । मैवं भ्रामि । नैवात्र जमदग्निकश्यपौ देहधारिणौ मनुष्यस्य नाम्ना स्तः। अत्र प्रमाणम् । चक्षुर्वे जमदाग्निर्ऋषिर्घदेनेन जगत्पश्यत्यथो मनुते तसाचक्षुर्जमद-ग्निर्ऋषिः। श॰ कां॰ ८ अ० १। कश्यपो वै कूर्मः प्राणो वै कूर्मः श॰ कां॰ ७ अ० ५ अनेन प्राणस्य कूर्मः कश्यपश्च सञ्ज्ञाऽस्ति। शरीरस्य नाभौ तस्य कूर्णकारावस्थितेः। अनेन मन्त्रेणेश्वर एव प्रार्थ्यते। तद्यथा। हे जगदीश्वर भवत्कृपया नोऽस्माकं जमदग्निसञ्ज्ञकस्य चक्षुषः कश्यपारूयस्य प्राणस्य च त्र्यायुषं त्रिगुणमर्थात् त्रीणि शतानि बर्षाणि यावत्तावदायुरस्तु । चक्षुरित्युपलक्षणिनिद्रयाणां प्राणो मनआदीनां च (यहेवेषु त्यायुषम्) अत्र प्रमाणम्। बिद्वा एसो हि देवाः। श्र० कां० ३ अ० ७। अनेन बिदुषां देवसञ्ज्ञाऽस्ति । देवेषु विद्वतसु यद्धि-द्याप्रभावयुक्तं त्रिगुणमायुर्भवति (तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्) तत्सेन्द्रियाणां समनस्कानां नो-ऽस्माकं पूर्वोक्तं सुखयुक्तं त्रिगुणमायुरस्तु भवेत् । येन सुखयुक्ता बयं तावदायुर्भुञ्जीमाहि । अनेनान्यद्प्युपदिश्यते । ब्रह्मचर्यादिसुनियमैमैनुष्यैरेतत्त्रिग्रुणमायुः कर्त्तुशक्यमस्तीति गम्यते । अहोऽर्थाभिधायकैर्जमदग्न्यादिाभेः शब्दैरर्थमात्रं बेदेषु प्रकाश्यम् अतो नात्र मन्त्र-भागे इतिहासलेशोऽप्यस्ति।त्यवगन्तव्यम्। अतो यच सायनाचार्यादिभिर्वेदमकाशादिषु यत्र-

धारी पुरुषों के बनाये हैं इन हेतुओं से ब्राह्मणप्रन्थों की बेदसंज्ञा नहीं हो सकती और मन्त्रसंहि-ताओं का बेद नाम इस छिय है कि ईश्वररिचत और सब बिद्याओं का मूल हैं।

प्र०—-जैसे ऐतरेय आदि ब्राह्मणप्रन्थों में याज्ञवल्क्य, मैत्रेयी, गार्गी और जनक आदि के इतिहास लिखे हैं वैसे ही (ज्यायुषं जमदरने:) इत्यादि बेदों में भी पाये जाते हैं इस से मन्त्र और ब्राह्मण ये दोनों बराबर हाते हैं फिर ब्राह्मणयन्थों को बेदों में क्यों नहीं मानते हो ?

कि नहीं हैं इस का प्रमाण शतपथना हाण में लिखा है कि चक्षु का नाम जमदिन और प्राण का नाम करवप है इस का प्रमाण शतपथना हाण में लिखा है कि चक्षु का नाम जमदिन और प्राण का नाम करवप है इस कारण यहां प्राण से अन्त:करण और आंख से सब इन्द्रियों का प्रहण करना चाहिये अर्थात् जिन से जगत् के सब जीव बाहर और भीतर देखते हैं (ज्यायुषं ज०) सो इस मन्त्र से ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये कि हे जगदीश्वर आप के अनुमह से हमारे प्राण आदि अन्त:करण, और ऑह्म आदि सब इन्द्रियों की (३००) ती सी बर्ष तक उमर बनी रहै (यहे-वेषु) सो जसी बिद्धानों के बीच में बिद्यादिशुभगुण और आनन्दयुक्त उमर होती है (तन्नो अस्तु) ऐसी ही हम लोगों की भी हो तथा (ज्यायुषं जमदग्ने:) इत्यादि उपदेश से यह भी जाना जाता है कि मनुष्य बह्मचर्यादि उत्तमानियमों से त्रिगुण चतुर्गुण आयु कर सकता है (४००) चार सौ वर्ष तक भी सुख्यपूर्वक जी सकता है इस से यह सिद्ध हुआ कि बेदों में सत्य अर्थ के वाचक शब्दों से सत्यिवद्याओं का प्रकाश किया है लीकिकइतिहासों का नहीं इस से जो सायनाचार्यादि लोगों ने अपनी २ बनाई टीक्नओं में बेदों में जहां तहां इबिहासंबर्णन किये हैं वे सब मिण्या हैं।

कुत्रेतिहासवर्णनंकृतं तद्भ्रममूलमस्तीति मन्तव्यम् । तथा ब्राह्मणग्रन्थानामेव पुराणोतिहा-सादिनामास्ति न ब्रह्मवैवर्तश्रीमद्रागवतादीनां चेति निश्चीयते । किं च भोः ब्रह्मयज्ञ-विधाने यत्र कचिद् ब्राह्मणसूत्रग्रन्थेषु । यद् ब्राह्मणानीतिहासानपुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरित्यादीनी वचनानि दृश्यन्ते । एषां मूलमथर्बवेदेऽप्यस्ति स बृहतीं दिशमनुब्य-चलत्। तमितिहासश्रपुराणं च गाथाश्र नाराशंसीश्रानुब्यचलत्। इतिहासस्य च बै स पुरा-णस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं बेद् ॥ १॥ अथर्ब० कां १५ मपा० ३०। अनु० १ मं० ४। अतो ब्राह्मणग्रन्थेभ्यो भिन्ना भागवतादयो ग्रन्था इतिहा-सादिसञ्ज्ञया कुतो न गृह्यन्ते । मैवं वाचि । एतंः प्रमाणैब्रीह्मणग्रन्थानामेव ग्रहणं जायते नतु श्रीमद्भागवतादीनामिति। कुतः ब्राह्मणग्रन्थे व्वितिहासादीनामन्तर्भावात्। तत्र देवासुराः संयत्ता आसन्नित्यादय इतिहासा ग्राह्याः। सदेवसोस्येदमग्रआसिदेकमेवाद्वितीयम्। छान्दो-ज्योपनिष् प्रपा ६। आत्मा वा इदमेकएवाग्रआसीन्नान्यत् किंचन मिषत्। इत्यैतरेयारण्य-कोपनि० अ० १ खं० १।। आपोइ वा इदमग्नेसिलिलमेवास । श० कां० ११ अ० १। इदं बा अमे नैव किंचिदासीत्। इत्यादीनि जगतः पूर्वावस्थाकथनपूर्वकाणि वचनानि ब्राह्मणा-न्तर्गतान्येव पुराणानि ग्राह्याणि । कल्पा 'मन्त्रार्थसामध्येनकाशकाः । तद्यथा । इपेत्वोर्जे-त्वेतिबृष्ट्यै तदाह । यदाहेहेषेत्वेत्यूर्जेत्वेति यो बृष्टाद्र्यसो जायते तस्मै तदाह । सविता बै देवानां प्रसविता सवितृपस्ताः २० कां १ अ० ७ इत्यादयो ग्राह्याः। गाथा याज्ञवल्यय-जनकसंवादो यथा शतपथब्राह्मणे गार्गीमेत्रेय्यादीनां परस्परं प्रश्लोत्तरकथनयुक्ताः सन्तीति नार। शंस्यश्र । अत्राहुर्यास्काचार्याः । नराशंसोय इइतिकथक्यो नरा अस्मिन्नासीनाः शं-सन्त्यग्निरितिशाकपूणिर्नरैः पशस्यो भवति । नि० अ०८ खं०६॥ नृणां यत्र प्रशंसा

और इस हेतु से ब्राह्मणप्रन्थों का ही इतिहासादि नाम जानना चाहिये, श्रीमद्गाग-वतादि का नहीं।

प्र०—जहां २ ब्राह्मण और सूत्रप्रन्थों में (यद् ब्राह्मण०) इतिहास, पुराण, कर्प, गाथा, नाराशंसी, इत्यादि वचन देखने में आते हैं तथा अथर्बबेद में भी इतिहास पुराणादि नामों का छेख है इस हेतु से ब्राह्मणप्रन्थों से भिन्न ब्रह्मबेबर्त, श्रीमद्भागवत महाभरतादि का प्रहण इति-हास पुराणादि नामों से क्यों नहीं करते हाँ ?

उ०—इतके प्रहण में काई भी प्रमाण नहीं है क्योंकि उन में मतों के परस्परिवरोध और छड़ाई आदि की असंभव मिध्याकथा अपने २ मत के अनुसार छोगों ने छिख रक्षी हैं इस से इतिहास और पुराणादि नामों से इनका प्रहण करना किसी मनुष्य को उचित नहीं, जो ब्राह्मणप्रनथों में । देवासुरा: संयत्ता आसन्) अर्थात् देव बिद्धान् और असुर मूर्ख ये दोनों युद्ध करने को तत्पर हुए थे इत्यादि कथाओं का नाम इतिहास है (सदेवसो०) अर्थात् जिस में जगत की उत्पत्ति आदि का वर्णन है इस ब्राह्मणभाग का नाम पुराण है (इषेत्वोजेंत्विति बृष्ट्यें) जी बेद मन्त्रों के अर्थ अर्थात् जिन में द्रव्यों के सामध्ये का कथन किया है उन का नाम कर्प है इसी प्रक्रार जैसे शतपथनाह्मण में याज्ञवल्क्य, जनक, गार्गी, मैत्रयी आदि की कथाओं का नाम गार्थी है और जिनमें नर अर्थात् मनुष्यछोगों ने ईश्वरधर्मआदि पदार्थविद्याओं और मनुष्यों की प्रक्रंसी

मुभिर्यत्र प्रशस्यते ता ब्राह्मणनिरुक्ताचन्तर्गताः कथा नाराशंस्यो ग्राह्मा नातोऽन्या इति । किंच तेषु तेषु वचनेष्वपीदमेव विज्ञायते यद् यस्माह्राह्मणानीतिसञ्ज्ञीपदमितिहासादिस्तेषां सञ्ज्ञीत । तद्यथा । ब्राह्मणान्येवेतिहासान् जानीयात् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीश्चेति ॥

अन्यद्प्यत्र प्रमाणमस्ति न्यायदर्शनभाष्ये । वाक्यविभागस्यचार्थग्रहणात् । १ अ० २ आ० २ स्० ६ । अस्योपिर बात्स्यायनभाष्यम् । प्रमाणम् शब्दो यथा छोके विभागश्च ब्राह्मणवाक्यानां त्रिबिधः। अयमभिप्रायः। ब्राह्मणग्रन्थशब्दा लौकिका एव न वैदिका इति। तेषां त्रिबिधो बिभागो लक्ष्यते । स्र० बिध्यर्थवादानुवादवचनबिनियोगात् ॥२॥ अ० २ आ० २ स्० ६१॥ अस्योपरि० बा० भा०। त्रिधा खळु ब्राह्मणवाक्यानि विनियुक्तानि बिधिवचनान्यर्थवादवचनान्यनुवादवचनानीति तत्र सू० बिधिविधायकः ॥३॥ अ०२ आ॰ २ स्रू० ६२ अस्योपिर० बा० भा०। यद्वाक्यं विधायकं चोदकं स विधिः। विधिस्तु नियोगोऽनुज्ञा वा यथा अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामइत्यादि। ब्राह्मणवाक्यानामितिशेषः। सू० स्तुतिर्निन्दापरकृतिः पुराकल्पइत्यर्थवादः ॥४॥ अ०२ आ२ स्व०६३॥ अस्योपिर बाँ० आ॰। बिधेः फलवादलक्षणा या पशंसा सा स्तुतिः। सम्पत्ययार्थे स्तूयमानं श्रहधीतेति प्रवर्तिका च फल्रश्रवणात्प्रवर्त्तते 'सर्वजिता वै देवाः सर्वमजयनसर्वस्याप्त्यै सर्वस्य जित्यै सर्वस्यैतेनामोति सर्वे जयती ' त्येवमादि । अनिष्टफल्लवादो निन्दा वर्जनार्थ निन्दितं न स-माचरेदिति । 'स एष बा प्रथमो यज्ञो यज्ञामां यज्ज्योतिष्टोमो य एतेनानिष्टाडन्येन यजते गर्ते पतत्ययमेतज्जीर्यते बा ' इत्येवम।दि । अन्यकर्तृकस्य ब्याहतस्य विधेर्वादः परकृतिः । 'हुत्वा वपामेवाग्रेऽभिघारयन्ति । अग्नेः पृषदाज्यं तदुह चरकाध्वर्यवः पृषदाज्यमेवाग्रेऽभिघार-यन्ति । अग्नेः प्राणाः पृषदाज्यं स्तोममित्येवमभिद्धती' त्येवमादि । ऐतिह्यसमाचरितो विधिः पुराकलपइति । 'तस्पाद्वा एतेन ब्राह्मणा वहिः पत्रमानं सामस्तोममस्तौषन् योनेर्यज्ञंपतनवा-

की है उन को नाराशंसी कहते हैं (ब्रह्मणानीतिहासान्) इस वचन में ब्राह्मणानि संज्ञी और इति-हासादि संज्ञा हैं अर्थात् ब्राह्मणप्रन्थों का नाम इतिहास, पुराण, करप, गाथा और नाराशंसी है सो ब्राह्मण और निरुक्तादियनथों में जो २ जैसी २ कथा छिखी हैं उन्हीं का इतिहासादि से प्रहण करना चाहिये अन्य का नहीं। ब्राह्मणयन्थों की इतिहासादिसंज्ञा होने में और भी प्रमाण है जैसे छोक में तीन प्रकार के वचन होते हैं वैसे ब्राह्मणप्रन्थों में भी हैं उन में से एक बिधिवाक्य है जैसे (देवदत्तोत्रामंगच्छेत्सुखार्थम्) सुख के छिये देवदत्त प्राम को जाय इसी प्रकार ब्राह्मणप्रन्थों में भी है (अग्निहोत्रं जुहुयात्खर्गकामः) जिस को सुख की इच्छा हो वह अग्निहोत्रादि यज्ञों को करै, दूसरा अर्थवाद है जो कि चार प्रकार का होता है एक स्तुति अर्थात् पदार्थी के गुणों का प्रकाश करना जिस से मनुष्यों की श्रद्धा उत्तमकाम करने और गुणों के प्रहण में ही हो। दूसरी निन्दा अर्थात् बुरे काम करने में दोषों का दिखलाना जिस से उन को कोई न करै। तीसरा (पर्किति) जैसे इस चोर ने बुरा काम कीया इस सं उस को दण्ड मिला और साहूकार ने अच्छा काम किया इस से उसकी प्रतिष्ठा और उन्नति हुई। चौथा (पुराकल्प) अर्थात् जो बात पाईले हो चुकी हो जैसे जनक की सभा में याज्ञबल्क्य, गार्गी, शाकल्य आदि ने इकट्ठे होके आपस में प्रभोत्तररीति से संवाद किया था इत्यादि इतिहासों को पुराकल्प कहते हैं। इसका तीसरा भाग

महा ' इत्येवमादि । कथं प्रकृतिपुराकल्पौ अर्थवादा इति । स्तुतिनिन्दावाक्येनाभिसम्ब-

स्० बिधिबिहितस्यानुवचनमनुवादः ॥५॥ अ० २ आ० २ स्० ६४ ॥ अस्योपि बा० भा०। बिध्यनुवचनं चानुवादो बिहितानुवचनं च पूर्वः शब्दानुवादोऽपरोऽर्थानुवादः । स्० न चतुष्टमैतिह्यार्थोपित्तिसंभवाभावप्रमाण्यात् ॥६॥ अ० २ आ० २ स्०१॥ अस्योपित् बा० भा०। न चत्वार्थेव प्रमाणा।नि किन्ति ऐतिह्यमर्थोपित्तः संभवोऽभावइत्येतान्यपि प्रमाणानि । इति होचुरित्यनिर्दिष्टप्रवक्तृकं प्रवादपारम्पर्यमैतिह्यस् । अनेन प्रमाणेनापीतिन् हासादिनामित्रब्रीह्यणान्येव गृह्यन्ते नान्यदिति । अन्यच । ब्राह्मणानि बेदब्याख्यानान्येव सन्ति नैव बेदाख्यानीति । कृतः । इपेत्वोर्जत्विति श० कां० १ अ० ७ ॥ इत्यादीनि मन्त्र-प्रतीकानि प्रत्वा ब्राह्मणेषु बेदानां व्याख्यानकरणात् ॥ अन्यच महाभाष्येऽपि । केषां शब्दानाम् । छांकिकानां बदिकानां च । तत्र छांकिकास्तावत् । गौरश्वः पुरुषो हस्तो शकुनिमृगोन् ब्राह्मण इति । बेदिकाः खल्विप शन्नोदेवीरिभष्टये । इषेत्वोर्जत्वा । अग्निमीछे पुरोहितम् । अग्नआयाहिबीतय इति । यदि ब्राह्मणग्रन्थानामिप बेदसञ्ज्ञामीष्टासूत्ति तेषामप्युदाहरणम् दात् ॥ अतप्व महाभाष्यकारेण मन्त्रभागस्यैव बेदसञ्ज्ञां मत्वा प्रथमभन्त्रमतीकानि बैदिकेषु शब्देषुदाहृतानि । किन्तु यानि गौरश्वइत्यादीनि छौकिकोदाहरणानि दत्तानि तानि ब्राह्मणादियन्थेष्वेव घटन्ते । कृतः । तेष्वीद्यश्चरुद्यद्याद्यात्वात्त्ते । द्वितीया ब्राह्मणे ॥१॥ अ० २ पा० ३ स्० ६० । चतुर्थ्यथे बहुरुंछ्वत्वद्याद्यात्वात्त्व । पा० ३ स्० ६२ । पुराण-

शनावा ॥ अनुवाद है अर्थात् जिस का पूर्व विधान करके उसी का स्मरण और कथन करना सो भी दो प्रकार का है एक शब्द का और दूसरा अर्थ का जैसे वह विद्या को पढ़े यह शब्दानुवाद है विद्या पढ़ने

सं ही ज्ञान होता है इस को अर्थवाद कहते हैं।

इससे इस में समझ लेना चाहिये कि जिस शब्द और अर्थ का दूसरी बार उचारण और विचार हो उसको अनुवाद कहते हैं सो ब्राह्मणपुस्तकों में यथावत लिखा है इस हेतु से भी ब्राह्मणपुस्तकों का नाम इतिहास आदि जानना चाहिये क्योंकि इन में से इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी ये पांचा प्रकार की कथा सब ठीक २ लिखी हैं और भागवतादि को इतिहास नहीं जानना चाहिये क्योंकि इन में मिध्याकथा बहुत सी लिखी हैं ब्राह्मणप्रनथों की बेदों में गणना नहीं हो सकती क्योंकि (इषेलोर्जेलेति०) इस प्रकार से उन में मन्त्रों की प्रतीक घर २ के बेदों का ब्याख्यान किया है और मन्त्रभागसंहिताओं में ब्राह्मणप्रनथों की एक भी प्रतीक कहीं नहीं देखने में आती इस से जो ईश्वरोक्त मूलमन्त्र अर्थात् चार संहिताएं हैं वे ही बेद हैं ब्राह्मणप्रनथ नहीं।

प्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु ॥३॥ अ० ४ पा० ३ सू० १०५ । इत्यष्टाध्याय्यां सूत्राणि । अत्रापिपाणिन्याचाँ वेंदब्ब्राह्मणयो भेंदेनैव मितपादितम्। तद्यथा। पुराणाः माचीनैर्व्वह्माद्यृषिभिः मोक्ता
ब्राह्मणकल्पग्रन्था बेदव्याख्यानाः सन्ति । अतएवैतेषां पुराणोतिहाससञ्ज्ञा कृतास्ति । यद्यत्र
छन्दोब्राह्मणयोर्वेदसञ्ज्ञाऽभीष्टाभवेत्ताहैं चतुर्थ्यथें बहुलं छन्दसीत्यत्र छन्दे। यहणं व्यर्थ स्यात् ।
कृतः । द्वितीयात्राह्मणोति ब्राह्मणशब्दस्य मकृतत्वात् । अतोविज्ञायते न ब्राह्मणग्रन्थानां
बेदसञ्ज्ञास्तीति । अतः किं सिद्धम् । ब्रह्मोति ब्राह्मणानां नामास्ति । अत्र प्रमाणम् । ब्रह्म वै
ब्राह्मणः क्षत्र ७राजन्यः । श्र० कां० १३ अ० १ ॥ समानार्थावेतौ ब्रह्मन् शब्दो ब्राह्मणग्रव्या । इति व्याकरणमहाभाष्ये अ० १ पा० १ आ० १ । चतुर्वेदविद्धिर्वद्धिभिन्नोह्मणशब्दश्च । इति व्याकरणमहाभाष्ये अ० १ पा० १ आ० १ । चतुर्वेदविद्धिर्वद्धिभिन्नोह्मणशब्दश्च । इति व्याकरणमहाभाष्ये अ० १ पा० १ आ० १ । चतुर्वेदविद्धिर्वद्धिभिन्नोह्मणशब्दश्च । इति व्याकरणमहाभाष्ये अ० १ पा० १ आ० १ । चतुर्वेदविद्धिर्वद्धिभिन्नोह्मणशब्दश्च । इति व्याकरणमहाभाष्ये अ० १ पा० १ आ० १ । चतुर्वेदविद्धिर्वद्धिभिन्नोह्मणशब्दश्च । इति व्याकरणमहाभाष्ये अ० १ पा० १ आ० १ । चतुर्वेदविद्धिर्वद्धिभिन्नोह्मणशब्दश्च । इति व्याकरणमहाभाषिति विद्वापति । इत्यादि बहुर्भिः प्रमाणैर्मन्त्राणामेव
बदसञ्ज्ञा न ब्राह्मणग्रन्थानामिति।सिद्धम् ॥ किंच भोः। ब्राह्मणग्रन्थानामपि बेदवत्यामाण्यं
कत्त्वयमाहोस्विन्नेति। अत्र ब्रुसः। नेतेषां वेदवत् प्रापाण्यं कर्त्तुं योग्यमस्ति।कुतः।ईश्वरोक्ताभाबात्तदनुक्रलत्यव प्रमाणाहित्वाचेति । परन्तु सन्ति तानि परतः प्रमाणयोग्यान्येवेति इत्युक्तम्।

॥ भाषा ॥

३। अ. ४ पा. ३ सू. १०५ ये अष्टाध्यायी के सूत्र हैं। यहां भी पाणितिमहार्ष ने ब्राह्मण को बेद से अन्य कहा है क्यों के ३ सूत्र में ब्राह्मणकरुपमन्थों को ब्रह्मा आदि पुराने ऋषियों का प्रोक्त कहा है और ये प्रन्थ बेद के व्याख्यान हैं तथा इसी से इन्हीं प्रन्थों का पुराण इतिहास नाम है। और यदि छन्द और ब्राह्मण की 'बेद' सक्ज्ञा उक्त महार्षि को इष्ट होती तो द्वितीयसूत्र में छन्दस्र का प्रहण व्यर्थ हो जाता क्यों कि तब तो १ के 'ब्राह्मण' प्रहण की अनुवृद्धि (आगे सम्बन्ध) ही से काम चछ जाता। और कात्यायन के नाम से जो दोनों की बेदसंज्ञां होने में वचन है सो सहचार उपाधिछक्षण से किया हो तो भी नहीं बन सकता क्यों के जैसे किसी ने किसी से कहा कि उस छकड़ी को भोजन करा दो और दूसरे ने इतने ही कहने से तुरन्त जान छिया कि छकड़ी जड़ पदार्थ होने से भोजन नहीं कर सकता किन्तु जिस मनुष्य के हाथ में छकड़ी है उस को भोजन कराना चाहिये इस प्रकार से कहा हो तब भी मानने के योग्य नहीं हो सकता क्यों इस में अन्य ऋषियों की एक भी साक्षी नहीं है इस से यह सिद्ध हुआ कि ब्रह्म नाम ब्राह्मण का है सो ब्रह्मों के जानने वाछे महार्ष छोग थे उन्हीं के बनाये हुए ऐतरेय शतपथआदि बेदों के व्याख्यान हैं इसी कारण उन के किये प्रन्थों का नाम ब्राह्मण हुआ। इस से निक्ष्य हुआ कि ब्रह्म से विस्ता है ब्रह्मिका है ब्रह्म का नाम ब्रह्मण हुआ। इस से निक्ष्य हुआ कि स्थाख्या है इसी कारण उन के किये प्रन्थों का नाम ब्रह्मण हुआ। इस से निक्ष्य हुआ कि सन्त्रभाग की ही बेदसंज्ञा है ब्रह्माणप्रन्थों की नहीं।

प्र०-हम यह पूछते हैं कि ब्राह्मणप्रनथों का भी बेदों के समान प्रमाण करना उचित

उ०-- ब्राह्मणप्रनथों का प्रमाण बेदों के तुल्य नहीं हो सकता क्योंकि वे ईश्वरोक्त नहीं हैं परन्तु बेदों के अनुकूछ होने से प्रमाण के योग्य तो हैं। इति बेदसंज्ञाबिचार: ॥

तदपरे न क्षमन्ते ।

तथाच 'महामोहबिद्रावणे सं० १९४०' सूमिकासहितः प्रथमः प्रवोधः। भूमिका ।

अथैकदा पानित्रतमायां सुलभसुभगगाङ्गप्रवाहायां बाराणस्यां विज्ञेरज्ञेः सर्वेरिष धर्मध्वजिशोमिणः पुण्यजनप्रबर इति समधिगतः पङ्कबहुलाल्पजलात्पल्वलात्सद्यः समुत्थितः
सर्वोङ्गीणपङ्कलेपेन स्तन्धरोमेव स्थूलकायो धर्ममुस्तकम्लमुलसुल्लुनानः काश्यादिपुण्यतीर्थभ्रवो
दारयन्त्रिव कश्चिद्धिश्चवेषो देवनिन्दाघोरशब्दघुरघुरायितमुखः कलङ्कयन्त्रिव स्ववेषं प्रावयिश्व
वाज्ञानाम्भासे जगदशेषं सञ्जनयन्त्रिव सर्तां चेतसः क्षेशं बश्चयन्त्रिव स्वदेशं वस्तुतः स्वात्मानमेव बश्चयन् कलुषयश्च समुपागमत् ॥
अथैतस्य धार्ष्ट्यम् ।

यद्यं सिकत्थमकथयत्, काशिकैर्विद्वन्निदाहवयशोऽनुभवितुमिच्छामीति। तदिदं दैवान्महामान्यस्य वदान्यस्यास्मदीयस्वस्य भारतराजकुल्रुतस्य काशिकाप्रभोः श्री-मदीश्वरीप्रसादनारायणवीरपुङ्गवस्यावधीरितकर्णकीर्त्तः कर्णयोरातिध्यमुपागमत्, अयं च विदुष्मतीमेनां मदीयवाराणसीमध्यासीनो विद्वन्निदाहवं प्रार्त्तिथयिषुर्यदि कोपि नास्तिको-वाऽऽस्तिको वा पाण्डितः पण्डितम्मन्यो वा स्वाभ्यर्थितार्थविमुखो वदान्यान्तरं याचेत तदा स्यान्मे यशोगाशिनाश इत्याकलयन् सहसैव पार्थितार्थमपूर्यत्, आज्ञहावच विदुषस्तेऽपि कौतुकिनोऽकुतोभयाः सर्वतन्त्रकोतस्कुतनिवर्त्तका अभयप्रदानाय लोकानां प्रसेदुक्तर-वितरणायोदरम्भरेर्मुण्डिनः प्रशानाम् ॥ अथ पङ्गिशत्युत्तरैकोनविश्वतिशतत्ववक्रमाब्दे कार्तिके मङ्गलश्कुत्रयोदस्यां लब्धपदोऽयं वादाभासो घटिकाद्वयादृध्वं जायमानो वादिमोनभाः, वावसानोऽपि वालेनेव विदुषां मशकेनेव मत्तदन्तिनामशस्त्रेणेव शस्त्रिणामनभिन्नेनाभिन्नानां नीतिनिषुष्पस्य पुण्यतमपकृते मेहाराजस्य राजजनस्यापि च नातीव मनोमुद्मजीजनत्॥ अथ विद्वत्पतापानलस्विद्यदस्त्रिलगात्रेऽनधीतशास्त्रेऽविश्वष्टसाहसमात्रे सताङ्गर्हणापात्रे वेदद्वम्

॥ भाषा॥ समालोचना।

१ स्वामी के इस मत को भारतबर्ष के शिष्टजन क्षमा नहीं करते। इस के बिषय में पं० मोहनलाल बेदान्ताचार्य की बनाई हुई भूमिका और उन्हीं के बनाए हुए 'महामोहबिद्रावण' नामक प्रनथ (जो कि सं० १९४० काशी में बना था) के प्रथमप्रकरण का तात्पर्य कहा जाता है। यद्यपि उक्त भूमिका और प्रकरण ऊपर संस्कृत में है और उनमें स्थान २ पर कटुशब्द हैं तथापि उन शब्दों को त्याग कर तात्पर्यमात्र यहां कहा जाता है।

भूमिका का तात्पर्य यह है कि एक समय श्री काशी में एक (द्यानन्द्सरखती नामक) साधु आए और उन्हों ने महाराज काशीनरेश से काशी के बिद्धानों के साथ वाद करने की इच्छा प्रकट की इसको सुम कर तात्काछिक महाराज काशीनरेश ने मिती कातिक सुदि त्रयोदशी मङ्गळ बार सं० १९२६ को काशी के पण्डितों की सभा का अधिबेशन किया और दो घड़ी से कुछ अधिक तक कुछ बात चीत रही जिसको 'वाद' शब्द से तो कह नहीं सकते क्योंकि उक्त साधु, शांखिनपुण न होने से बाद की रीति नहीं जानते थे परन्तु उस बात चीत को बिवादशब्द से

च्छेदामृदुद।त्रे निर्वचनभानमुपेषुषि क्षुद्रे वादिनि मुण्डिनि सर्वशास्त्रवैदेशिकं तमुपेक्षमाणे-विवव बिद्रत्सु सन्ध्यानुष्ठानसमयं समवगमयतीवास्तमयित भगवति भास्वति प्रार्थितार्थसा-र्थचिन्तामणिर्नृपमणिर्जनकइव कर्मानुष्ठानपरायणः सभाम्पौरजनतालशब्दबहुलं विससर्ज।

अथ बालिक शनिगंतस्य दलितस्य मिंतस्यापि रावणस्य बहिनिर्गत्य विजयोद्धोषवत् मुण्डिन्यिष देशाहेशान्तरं विचरित स्वीयं विजयं ख्यापयित भारतवर्षे स्वसद्दशाँश्रलमतीन-लभमाने अमेरिकादिद्रदेशानिवासिभिः सह लब्धसाप्तपदीने तेः सहैव पुनेरकदा काश्यां कश्चिदाराममध्यासीने मुण्डिनि जगित ख्यातयश्चसं (कर्नल्ञाल्यद्) नामानं द्रष्टुमिच्छन् राजा शिवमसादश्चतुरिशरोग्वायितस्तिस्निन्नेवागमे मुण्डिनासङ्गतोग्रामंगच्छँस्तृणाँस्पृशतीतिन्यायेन वेदबाह्मणशब्दार्थमश्रब्याजेन तदीयां मितं मतं च परीक्षाश्चके । अयं च चिरान्यस्तोत्तरशैलीं स्वीकुर्वाणआरेभे मतारियतुम् । राजा शिवमसादोऽपि स्वीयां मवचनमप्रश्चातुरीमुरीकुर्वाणः कटाक्षयन्निवावोचत् । मादशानां मन्दमतीनामववोधो लेखादते न साध्य इति मुण्ड्यिप लेखं स्वीचकार ॥

अथ कितप्यानि नानोत्तरपत्राणि स्वरूपतस्तत्कपटकौटिल्यनिन्दामात्सर्याभिमानभू-यभवनान्यवाप्य बिनयपुरस्सरं नाम्नाऽपि निवेदनं नामामुद्रयद्भन्यं राजा शिवप्रसादः। प्रेष यचैतत् नाम्नाऽऽर्यसामाजिकानां मुण्डिनश्च निकटे, अयं मुण्डी च लोकचतुरः स्यान्मे क्षिति वृत्तेरकुटिलपथवर्तिषु मत्सामाजिकेषु, इति परिचिन्त्य सहसैव भ्रमोच्लेदनं वस्तुतोभ्रमोत्पादनं नाम पुस्तकैममुद्रयत्। यत्र काक्यां लौकिका धानिकास्तथा प्रतिवक्तुं क्षमन्ते तत्र का नाम कथा विदुषामिति सुद्रमवधार्यं नाहमितः परं केनचित् काशीस्थिबिदुषा विचारे प्रवर्त्तिष्ये इति सञ्चान्यं लिल्लेख, युक्तमाचचारचैतदन्यथा किसाश्चिद्विदुषि रोषमुपागते का नाम शरणप्रत्याशा,

कह सकते हैं। और वह बिवाद, वे साधु जी जब प्रत्युत्तर न दे सके तब समाप्त हो गया। तदनन्तर बाली के कांख से मिंदत हुए रावण के तुल्य देशान्तरों में जा २ कर साधु ने मिध्या ही अपने विजय की प्रसिद्धि किया, पुन: कुछ काल के अनन्तर इतस्ततः भ्रमण करते हुए एक अमेरिकानिवासी 'कर्नल्आल्कट्' के साथ काशी में आ कर एक बाटिका में ठहरे, तदनन्तर राजा शिवप्रसाद, कर्नल्आल्कट् से मिलने गये और उन साधु के बुद्धि और मत की परीक्षा के लिये उन्हों ने 'बेद' और 'ब्राह्मण' शब्द का अर्थ पूंछा और साधु ने भी अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर दिया परन्तु राजा शिवप्रसाद ने यह कहा कि लेख के बिना, मेरे ऐसे अल्पबुद्धि मनुष्य ऐसी २ बातों को नहीं समझ सकते, इस पर साधु ने लेख लिखना स्वीकार किया और राजा शिवप्रसाद के साथ साधु के प्रभपत्र और उत्तरपत्र आने जाने लगे उन पत्रों को एकत्रित कर राजा शिवप्रसाद ने 'निबेदन' नामक प्रन्थ को मुद्रित करा कर उन लोगों के समीप भेजा जो कि आर्थसमाजी के नाम से उनदिनों नवीन प्रकट हुए थे और उन साधु के समीप भी भेजा। साधु ने भी उसके अनन्तर भ्रमोच्छेदन नामक एक प्रन्थ बना कर मुद्रित कराया और लेखद्वारा शपथ-पूर्वक यह प्रतिज्ञा की कि अब से काशी के बिद्धानों के साथ में कदापि बिचार (शास्त्रार्थ) नहीं करूंगा, क्योंकि जहां के अशास्त्रज्ञ राजा शिवप्रसाद आदि भी इतनी बिचारक्षक्ति रखते हैं वहां के पिण्डतों के साथ बिचार करने की शिक्त साधु ने अपने में नहीं समझा। जो कुछ हो इससे मुझै

भवत किम्प्येतत् मतारयत्वेष पाश्चनदाननभिज्ञान् यवनविद्यामात्राभ्यासिनः कायस्थानपरान्वा तथाविधान्, परमस्य वेदमतारणं खेदयत्यस्मदीयं चेत इत्येतस्य कतिपयमधानिविद्यन्त निर्माकरणायायमुद्यमोऽस्मदीयो माभून्नाम गईणाविषयः, यदहं काशीनिवास्यिप क्षुद्रे वादिनि सन्द्धानोऽपि छोकानां महामोहनिराकरणायेव मब्नुत्तो नतु वादिनि
तुच्छे मिहमानं तदीयमतारणामु वा गरिमाणमालक्ष्य, निह पश्चास्यो मशके मिहणे शशकेऽवगत्त्यवछतारतम्यम्मवर्त्तते परन्तु तस्य सा निजा बृत्तिर्यद्मावनवगत्विपक्षवछतारतम्यएव
न संसहते विपक्षमात्रम्, धर्मछोपभीक्षणां सतां चेष सहजोनिसर्गो यदिमेऽनिभछिषितवादिगरिमाणोऽपि छोके कुपथमनुसरित सहसा तन्तिबृत्तिमुश्चन्तिति, स्फुटमिह निदर्शनं काशीस्थिविदुषां विधवोद्दाहशङ्कासमाधिः, यदि नामैकपात्रं दुराचारं पवर्त्तियतुमिच्छन्न क्षन्तव्यो
ऽभून्युम्बापत्तनस्थो विष्णुशास्त्री, तदाऽऽन्हिकपारभ्य ज्ञानतत्साधनोपायपर्यन्तं दूषयन्कथमुपेक्षणीयः स्यादित्यस्थाने वादानहेंऽतएव विदुषामुपेक्षाहेंऽप्यपेक्षाबुद्धिमान् क्षन्तव्या गाः
स्थामित्यभ्यथेये काशीस्थमेक्षावतो भगवन्तश्चाज्ञानां बुद्धिशोधनद्वाराऽमुष्य ब्यापारस्य साफ-

हंयविधाविति कश्चित् ॥ संवत् १९४० आषादकृष्ण गुरौ

बेदान्ताचार्यः श्रीमोहनलाल नामा।

अथ मह।मोहविद्रावणे-

प्रथमः प्रबोधः।

* ऋग्वेदादिमतारणभूमिकायाः ८० पृष्टे I

अथ कोऽयं वेदो नाम १ मन्त्रभाग (१) संहितेत्याह । किंच (मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदना-मधेय) मिति कात्यायनोक्ते ब्राह्मणभागस्यापि वेदसञ्ज्ञा कुतो न स्वीक्रियत इति । मैवं वाच्यम्। न ब्राह्मणानां वेदसञ्ज्ञा भवितुमहिति । कुतः । पुराणेतिहाससञ्ज्ञकत्वात् १ वेदब्या-ख्यानात् २ ऋषिभिरुक्तत्वात् ३ अनीश्वरोक्तत्वात् ४ कात्यायनभिन्ने ऋषिभिर्वेदसञ्ज्ञा-

क्या प्रयोजन है ? और इससे भी मुझको कुछ शोक नहीं है कि जो यवनभाषा के अभ्यासी पश्जाबी और कायस्थ तथा अन्य पुरुष कुछ २ इस साधु की बन्चना में फंस जाते हैं, खेद तो मेरे चित्त में यही है कि जो यह साधु, बेद को भी अपनी प्रतारणा में फंसाया चाहता है इस लिये में इस 'महामोहबिद्रावण' नामक प्रन्थ को बनाता हूं।

बेदान्ताचार्य पं० मोहनलाल । अब प्रथम प्रबोध के तात्पर्य का अनुवाद किया जाता है। पूर्वे क ऋग्बेदादिभू मिका के ८० पृष्ठ में उक्त साधु ने ब्राह्मणभाग की बेदसंज्ञा न होने में इन ६ हेतुओं की गणना की है कि

१ बाह्मणभाग की पुराण और इतिहास संज्ञा है।

२ इस में बेदार्थ का ज्याख्यान है।

३ यह ऋषियों का रचित है।

४ यह ईश्वर से अन्य का रचित है।

* इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत् । विभेम्यल्पश्चताद्वेदां मामयं प्रहारिष्यतीति प्राचामभिधानान्मानसं कुभावन नाम्नर्ग्वेदभाष्यभूमिकामारचयन् प्रतारणामिव करोतीति ऋग्वेदादिप्रतारणभूमिकामभिदध्महे । यामस्वीकृतत्वात् ५ मनुष्यबुद्धिराचितत्वाच ६ इति कश्चित् कपटिभिक्षुः स्वीयग्र्वेदादिम-

तदत्यन्तं स्थवीयः।

ब्राह्मणानां वेदसञ्ज्ञकत्वाभावे हेतुत्वेनोपन्यस्तस्य पुराणेतिहाससञ्ज्ञकत्वस्य ब्राह्मणानां वेदसञ्ज्ञकत्वाभावेऽहेतुत्वात्। नह्येकस्य वस्तुनो नानानामधेयकत्वमदृष्ट्वरम्। एकैव हि-कम्बुग्रीवादिमती व्यक्तिर्घटः कल्काो द्रव्यमित्येवं व्यवहियते इत्यस्ति प्रामाणिकानामनुभव-इतीतिहासादिसञ्ज्ञकत्वेन वेदसञ्ज्ञकत्वाभावसाधनमाज्ञामोदकायितम्। यदिच पुराणेतिहाससञ्ज्ञकत्वस्य च पारस्परिकविरोधमुत्पेक्ष्य ब्राह्मणानां वेदसञ्ज्ञकत्वाभावे पुराणोतिहाससञ्ज्ञकत्वं हेतूकरो।ते, तदा व्याचष्टां कानयोः सञ्ज्ञयोविरोधो निर्राक्षितो भवता १ यदिचेतिहाससञ्ज्ञकत्वं भवति वेदसञ्ज्ञकत्वविरोधीति ब्रूषे, तिई पाद्मभारतादीनाम्युराणेतिहाससञ्ज्ञकत्वं भवति वेदसञ्ज्ञकत्वविरोधीति ब्रूषे, तिई पाद्मभारतादीनाम्युराणेतिहाससञ्ज्ञकत्वममन्वानो भवान् कथमिदमुद्धावयितुं पारयेत् । अथाचक्षीत० पुराणेतिहाससञ्ज्ञकानामैतरेयादिब्राह्मणानां न वेदसञ्ज्ञकत्विपित्रं तत्रैवोपल्ल्ब्धो विरोध इति। तद्प्यपेत्रलम् । ब्राह्मणानां वेदसञ्ज्ञकत्वाभावं सिषाधियपुर्भवान् कथमिव तेषामसिद्धं पुराणेतिहाससञ्ज्ञकत्वं हेतुत्वेनोपन्यस्येत् । यदिच पुरातनार्थमतिपादकत्वादैतिहासिकार्थमति-पादकत्वाद्येतिहासिकार्थमति-पादकत्वाद्येतिहासिकार्थमति-पादकत्वाद्येतिहासिकार्थमति-पादकत्वाद्येत् ब्राह्मणानां पुराणेतिहाससङ्गकत्विपत्वेवं ब्र्यात् तदा एताहरापुराणे-पादकत्वाद्येतिहासकार्यम्यस्यत् । यदिच पुरातनार्थमतिपादकत्वादैतिहासिकार्थमति-पादकत्वाद्येत्वः व्यात् तदा एताहरापुराणे-

५ कात्यायन से अन्य ऋषियों ने इसकी बेदसंज्ञा नहीं मानी है।

६ इस की रचना मनुष्यबुद्धि के अनुसार है।

खं - प्रथम हेतु का, (१) इन में प्रथम हेतु ठीक नहीं है क्यों कि एक ही ज्यक्ति की घट कलश आदि अनेक संज्ञाओं के ज्यवहार से यह निश्चित होता है कि एक ज्यक्ति की अनेक संज्ञा हो सकती है ऐसे ही ब्राह्मणभाग की पुराण और इतिहास संज्ञा स्वीकार करने पर भी बेदसंज्ञा होने में कोई बिरोध नहीं है। इस रीति से यह हेतु अकिंचित्कर है।

समा०—भारत आदि इतिहासों में और पाद्म आदि पुराणों में 'बेद' शब्द के ब्यवहार न होने से इतिहास और पुराण संज्ञा के साथ बेदसंज्ञा का बिरोध स्पष्ट ही है तो जब ब्राह्मणभाग की इतिहास आदि संज्ञा है तब बेदसंज्ञा उसकी नहीं हो सकती।

खं०—जब वे यह कहते हैं कि इतिहाससंज्ञा भारत आदि की नहीं है और पुराण-संज्ञा भी पाद्म आदि की नहीं है तब वे भारत आदि में बेदसंज्ञा का बिरोध नहीं दिखला सकते।

समा०--प्रतिवादी तो भारत आदि में इतिहास आदि संज्ञाओं को स्वीकार करने पर भी उन में बेदसंज्ञा को स्वीकार नहीं करता इस कारण उस के साथ वाद में उक्त बिरोध का दिखळाना अनुचित नहीं है क्योंकि उसके मतानुसार यह बिरोध ठीक ही है।

खं॰ — वादकथा की यह रीति है कि उसमें हेतु वही दिया जा सकता है कि जो वादी और प्रतिवादी (दोनों) को स्वीकृत हो और यदि ऐसा न हो तो उस हेतु को असिद्ध अर्थात् दुष्ट कहते हैं और प्रकृत में ब्राह्मणभाग के विषय में सनातनधर्मी छोग पुराण और इतिहास

⁽१) एषा पदाशुद्धिः कपूयचरणस्य ।

तिहाससञ्ज्ञकत्वं न बेदसञ्ज्ञकत्वासमानाधिकःणामिति नैतस्य ब्राह्मणानां बेदसञ्ज्ञा-बिरहसाधकत्वमभवः, तत्र तस्यौदासीन्यात्, न हि पुरातनार्थपतिपादकत्वमात्रं बेदसञ्ज्ञा-मपाक त्तुं महित, बेदानां त्रैकालिकार्थप्रतिपादकत्वस्य (१) सर्वास्तिकतन्त्रसिद्धत्वात् । किंच त्रैकालिकमर्थमभिद्धतो बेदाः पुरातनार्थपपि प्रतिपादयन्तीति तेषु निरुक्तयौगिकपुराणे-तिहासत्वसत्वेन निरुक्तोऽयं हेतुर्वेदानामपि अवेदत्वं साधयेत्, तस्मादयं पुराणेतिहासस-ञ्ज्ञकत्वादितिहेत्वाभामः । किंच ब्राह्मणब्यितिरिक्तपुराणेतिहासग्रन्थसद्भावं बात्स्यायनो-महिष गौतमीयेषु सूत्रेषु भाष्यमाभाषमाणोऽभ्युपागमत् । तथाहि ।

४ अध्याये १ आहिके । ६२ 'समारोपणादात्मन्यप्रतिषेधः' इति सूत्रे-

प्राजापत्यामिष्टिं मिरूप्य तस्यां सार्ववेदसं हुत्वाऽऽत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रबजादिति श्रूयते । तेन विजानीमः प्रजाबित्तलोकेषणायाश्च ब्युत्थाय भिक्षाचर्य चरन्तीति,
एषणाभ्यश्च ब्युत्थितस्य पात्रचयान्तानि कर्माणि नोपपद्यन्ते इति नाविशेषणकर्त्तः प्रयोजकत्वं भवतीति, चातुराश्रम्यविधानाचेतिहासपुराणधर्मशास्त्रप्रवेकाश्रम्यानुपपत्तिः । तदः
प्रमाणामिति चेन्न प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्यप्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते 'ते वा खप्रमाणामिति चेन्न प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्यप्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते 'ते वा खह्वते अथवाङ्गिरसण्तादितिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यवदन् इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां

॥ भाषा॥
संज्ञा को नहीं स्वीकार करते इस रीति से जब पुराण और इतिहास संज्ञारूपी हेतु ही असिद्ध है

तब बेदसंज्ञा के साथ उस के बिरोध का दिखलाना ब्यर्थ ही है।

समा०--प्राचीनअर्थ को और ऐतिहासिकअर्थ को ब्राह्मणभाग प्रतिपादन करता है यह दोनों वादिओं को स्वीकृत है और इसी से उस की पुराणसंज्ञा और इतिहाससंज्ञा है इस रीति से उक्त हेतु निर्दोष ही है।

खं०—यह सब आस्तिकदर्शनों का सिद्धान्त है कि बेद, सब काल के अर्थ का प्रति-पादन करता है तो ऐसी दशा में बेद भी प्राचीन और ऐतिहासिक अर्थ का प्रतिपादक है तथा पुराण और इतिहास संज्ञा भी बेद की हो सकती है और उक्त संज्ञाओं से बेदसंज्ञा का बिरोध भी अब नहीं हुआ और यदि बेदसंज्ञा से पुराणादि संज्ञाओं का बिरोध माना जाय तो "हिरण्यगर्भः सम-बक्तताग्रे" इत्यादि संहितामन्त्र भी बेद न कहलावेंगे क्योंकि ये भी प्राचीन अर्थ के प्रतिपादक होने से पुराणसंज्ञक हो जायंगे। तो ऐसी दशा में ब्राह्मणभागें। की पुराणादिसंज्ञा होने से बेदसंज्ञा का अभाव कदापि नहीं सिद्ध हो सकता है।

खं० (२)—यह बात कि "ब्राह्मणभाग से अन्य कोई प्रनथ ऐसा नहीं है कि पुराण बा इतिहास संज्ञा उस की हो" महार्षिसिद्धान्तों से बिरुद्ध है क्योंकि न्यायदर्शन, अ० ४ आहि० १ "समारोपणादात्मन्यप्रतिषेधः" ६२। सूत्र के भाष्य में बात्स्यायनमहर्षि ने यह स्पष्ट ही कहा है कि "ब्रह्मचर्य आदि चार आश्रमों के बिषय में इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्र प्रमाण हैं। यह कोई नहीं कह सकता कि ये प्रमाण नहीं हैं क्योंकि "ते बा खल्वेत अथबीङ्गिरसएतदितिहासपुराणस्य

⁽१) हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पितरेक आसीत्। सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवार्यं हिवापा विधेम ॥१ ऋ० अ० ८ अ० ७ व० ३ मं० १ इत्यादि संहितामन्त्रेषु पुरातनार्थप्रतिपात्तः स्फुटमेव भवित ॥१॥

बेद इति ' तस्मादयुक्तमेतदप्रामाण्यमिति, अप्रामाण्ये च धर्मशास्त्रस्य प्राण्युतां व्यवहारक्रोपाछोकोच्छेदप्रसङ्गः द्रष्टप्रवक्त्रसामान्याचाप्रामाण्यानुप्रपत्तिः, यएव पन्त्रवाह्मणस्य द्रष्टारः
प्रवक्तारश्च ते खिल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति विषयव्यवस्थानाच यथाविषयं प्रामाव्यम् । अन्यो पन्त्रव्वाह्मणस्य विषयोऽन्यश्चेतिहासपुराणधर्मशास्त्राणामिति यज्ञो पन्त्रव्वाह्मवस्य ठोकवृत्तिमितिहासपुराणस्य, छोकव्यवहारव्यवस्थापनं धर्मशास्त्रस्य विषयः । तत्रैकेन
न सर्व व्यवस्थाप्यते इति यथाविषयमेतानि प्रमाणानि इन्द्रियादिवदिति इत्यभिदधे वात्रियायनः । स्पष्टमिदमेतेन यद् ब्राह्मणभागव्यतिरिक्तः कश्चित् पुराणातिहाससञ्ज्ञको छोकवृत्तक्ष्यासाधारणविषयपतिपादको वाक्यकछापो यज्ञक्षप्रतिनियतासाधारणविषयपतिपादक्षान्तन्त्रब्राह्मणभागात्पृथगवस्थितो यस्य प्रामाण्यवीकं मन्त्रब्राह्मणद्रष्ट्रप्रवक्तृद्रष्ट्टप्रवक्तृकत्व
(१) रूपं साधारणमिति । यदि ब्राह्मणानामितिहासपुराणपदार्थतां ऋषिरन्वमंस्यत तदाकथित पुराणानां प्रामाण्यं व्यवतिष्ठापयिषुर्महार्षस्तद्रप्रमाणमित्याशङ्कपानः "प्रमाणेन
सञ्ज ब्राह्मणनेतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते" इति पूर्वोक्तं विपुलं व्यधास्यत् प्रायसिष्यच । ब्राह्मणानां पुराणपदार्थत्वे तथाभिधानमसङ्गतं स्यात् । निह स्वपेव स्वप्रामाण्यसाधकमिति कश्चिद्यनुन्मचज्दभेक्षेतापि । तस्माद् " ब्राह्मणानि न वेदाः पुराणोतिहाससञ्ज्ञकत्वात्" इत्यनादिपापवासनाद्विताशेषश्चिकस्य प्रतारकस्याभिधानं पूरिकूष्माण्डायितम्।

॥ भाषा ॥

प्रामाण्यमभ्यवद्न इतिहासपुराणं मञ्चमं बेदानां बेद इति" (वे ये अथर्बाङ्गिरस छोग इतिहास और पुराण का प्रामाण्य यों कहते हैं कि इतिहास और पुराण, चार बेदों का पांचवां बेद है) इस ब्राह्मण-रूपी प्रमाण से इतिहास और पुराण का प्रामाण्य सिद्ध होता है मन्त्र और ब्राह्मण का विषय अन्य है और इतिहास पुराण, धर्मशास्त्र का विषय अन्य है। अर्थात् यज्ञ, मन्त्र और ब्राह्मण का और प्राचीनबृत्तान्त, इतिहास और पुराण का, तथा लोकब्यवहार का ब्यवस्था, धर्मशास्त्र का, बिषय है। और अपने २ बिषय में ये सब पृथक् २ स्वतन्त्र प्रमाण हैं एक से दूसरे के विषय का काम नहीं चल सकता जैसे नेत्र आदि से शब्द आदि का प्रहण नहीं हो सकता तथा जो ऋषिलोग मनत्र और ब्राह्मण के देखने, पढ़ने, पढ़ाने वाले हैं वे ही इतिहास और पुराण के भी। इस से भी इतिहास और पुराण का प्रामाण्य दृढ है"। यदि ब्राह्मणभाग की इतिहास और पुराण संज्ञा होती तो भाष्य-कार यह कदापि न कहते कि "इतिहास, पुराण, का प्रामाण्य, ब्राह्मणरूपी प्रमाण से सिद्ध है" और यह भी नहीं कहते कि "यझ, मन्त्र और ब्राह्मण का तथा प्राचीनसमाचार, इतिहास और पुराण का विषय है" तथा यह भी न कहते कि 'मन्त्र ब्राह्मण का विषय अन्य और इतिहास पुराण का बिषय अन्य है ' और यह भी कैसे कहते ? कि ''मन्त्र, ब्राह्मण, अपने बिषय में पृथक् प्रमाण हैं और इतिहास, पुराण अपने बिषय में पृथक् प्रमाण हैं " तथा यह भी कैसे कहते ? कि "इतिहास पुराण इस से प्रमाण हैं कि मन्त्र और ब्राह्मण के देख़ने पढ़ने और पढ़ाने वाले जो ऋषि हैं वे ही इतिहास और पुराण के भी हैं "। इसमें उक्त साधु को कुछ कहने का भी अवसर नहीं है क्योंकि उन्हों ने अपने इसी प्रत्थभाग में (जिसका कि अभी उपन्यास हो चुका है) इसी न्यायदर्शनभाष्य के अनेक वाक्यों का प्रमाण दिया है । निदान-उक्त रीति से प्रथमहेतु निर्मूछ और महार्षिसिद्धान्त

⁽१) मन्त्रबंह्मणानां द्रष्ट्रप्रवक्तारो द्रष्ट्रप्रवक्तारो यस्येति बहुवीहिः ।

"बेदंब्याख्यांनांदि" त्यपरो महाप्रकापो भिक्षोः।

अत्र, ब्राह्मणानि न वेदाः, वेद्वयाख्यानरूपत्वादिति न्यायाकारः । अयं च हेतुर-नैकान्तिकः । वेद्व्याख्यानं नाम वेदपद्व्यपदेश्यवाक्यकलापस्य पदान्तरेणार्थकथनम् । तक्षेदं "प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वारूपाणि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुम स्तन्नो अस्तु ब्बय ए स्याम पतयो रयीणा" मिति याजुषो मन्त्रः अ० २३ मं० ६५ ॥

" प्रजापते नत्वदेतान्यन्यो विश्वाजातानि परिता वभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो

अस्तु ब्वय 🖰 स्याम पतयो रयीणा " मित्यृचः।

"नवी नवी भवति जायमानी हाङ्केतुरुषसा मेष्यग्रम् । भागन्देवेभ्यो विद्धास्या-यम्प्रचन्द्रस्तित्रते दीर्घमायु" रित्याथर्षणः ।

" नवो नवो भवति जायमानो हाङ्केतुरुषसामत्यग्रम्। भागन्देवेभ्यो विदधात्या-

यान्प्रचन्द्रभास्तिरते दीर्घमायु "रित्यूचः।

एव्याद्ययोर्मन्त्रयोर्बिश्वारूपाणीतिपद्घाटितादाद्यमन्त्राद्धिश्वाजातानीतिपदघटितस्य दितीयमन्त्रस्य, चरमयोश्च भवति जायमान इति उपसामत्यप्रमिति विद्धात्यायन्तित्व विलक्षणपदघटितादाद्यमन्त्राचतुर्थस्य मन्त्रस्य, भवासि जायमान इति उपसामेष्यप्रमिति विद्धास्यायमिति च विलक्षणपदघटितत्वेन भिन्नतया वेदपदानाम्पदान्तरेणार्थकथनरूपस्य वेदब्याख्यानत्वस्य दुरपह्मवतया तदन्तर्भावेणैवानैकान्तिकम् । अत्र च । "वेदब्याख्यान-

॥ भाषा ॥

से विरुद्ध है। खं द्वितीयहेतु का--(१) ऐसे ही द्वितीयहेतु भी दुष्ट ही है क्योंकि उस हेतु के अनुमानप्रयोग का यह आंकार है कि ब्राह्मणभाग, बेद नहीं है क्योंकि यह बेदार्थ का व्याख्यान करता है। और जब मन्त्र भी अन्य मन्त्र के अर्थ का ब्याख्यान करता है और मन्त्र को उक्त साधु बेद मानते हैं तो ब्राह्मणभाग ने क्या अपराध किया जिस के कारण वह बेद नहीं है। प्रसिद्ध है कि एकपद के अर्थ का अन्यपद से कथन ही को ब्याख्यान कहते हैं ऐसा ब्याख्यान मन्त्रों में भी है जैसे "प्रजापते न लंदेतान्यन्यो बिश्वारूपाणि परिता बभूब। यत्कामास्तेजुहुमस्तन्नो अख ब्बय ए स्थाम पतयो रयीणाम् ॥ ६५ ॥ अ० २३ ॥ " "प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वाजातानि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु ब्बय ए स्याम पतयो रयींणाम् " ऋक् अष्ट० ८ अ० ७ व० ५। ये दोनों मन्त्र यद्यपि परस्पर में भिन्न हैं क्योंकि प्रथम मन्त्र में 'बिश्वारूपाणि' और द्वितीय में "विश्वाजातानि" यह शब्दभेद है तथापि इतने मात्र भेद होने से अर्थ का भेद नहीं हो सकता इस से इनका अर्थ एक ही है और इन में से एक मन्त्र दूसरे मन्त्र के अर्थ को प्रीत-पादन करता है इस रीति से मन्त्र भी मन्त्र का ब्याख्यानरूपी होता है। और "नवा नवी भनित जायमानोऽहां केतुरुषसामेत्यमम्। भागं देवेभ्यो विद्धात्यायनप्रचनद्रमास्तिरते दीर्घमायुः "॥ १९॥ ऋक् अष्ट० ८ अ० ३ व० २३ ॥ "नवो नवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यप्रम् । भागं हैवै भ्यो विद्धांस्थायम्प्रचन्द्रस्तिरते दीर्घमायु" रिति । अथर्ब० । ये दोनों मन्त्र भी यद्यपि भिन्न हैं क्योंकि प्रथममन्त्र में "भवति जायमानः, उपसामत्यप्रम्, बिद्धात्यायन्, चन्द्रमास्तिरते, और द्वितीयमन्त्र में " भविस जायमानः, उपसामेष्यप्रम् विद्धास्यायम्, चन्द्रस्तिरते " यह शब्दभेद है तथापितीनई

ह्मपत्वात् " इति हेतुस्सो (१) पाधिकोऽपि । तथाहि । यत्र यत्र वेदत्वाभावो महाभारतादौ तत्र तत्र स्मर्थमाणकर्त्वकत्वामिति साध्यव्यापकत्वम् । वेदव्याख्यानक्रपत्वन्तु पूर्वोक्तेष्वमीषु मन्त्रेष्वपि तत्र च न स्मर्थमाणकर्त्वकत्वामिति साधनाव्यापकत्वम् । तस्मात्स्मर्थमाणकर्त्तकत्वं भवत्युपाधिः । नचास्तूपाधिरिति शङ्कचम् । स्मर्थमाणकर्त्तकत्वक्रपोपाध्यभावेन पक्षत्वेनाभिमतेषु ब्राह्मणेषु वेदत्वक्रपस्य साध्याभावस्यानुमानेन "ब्राह्मणानि न वेदा" इत्यनुमितेः प्रतिरोधात् । इत्युपरम्यते न्यायप्रयोगानभिज्ञस्य पद्वाक्यपरिपाट्यनभिज्ञस्याधिकखण्डनात् ।

"ऋषिभिरुक्तत्वादि" ति कपटिभक्षोस्तृतीयो महामोद्दः।

अत्र ब्राह्मणानि न बेदा ऋषिभिष्कत्तत्वादिति न्यायाकारः । अत्रायमसाधको हेतुः ऋष्युक्तत्वस्य ऋगादिसाधारणत्वात् । ऋचोऽप्यपाठिषुरेवर्षयः न तावता तेषां वेदत्वब्याह-तिः । यदि ऋष्युक्तत्वपदेन ऋषिप्रणीतत्वमभिप्रैषि तदा ब्राह्मणान्यपि न ऋषिप्रणीतानी-ति 'ऋषिप्रणीतत्वात् इतिस्वरूपासिद्धो हेतुः । यदि च भारद्वाजाङ्गिरोबशिष्ठपुल्लह्याञ्चब- स्वयजनकादिसंवाददर्शनाद्दषिप्रणीतत्वभ्रान्तिस्ते ब्राह्मणप्रन्थेषु, तदाऽनवगतबेदवर्त्मा-॥ भाषा॥

मात्र से अर्थभेद नहीं हो सकता क्योंकि दोनों का एक ही अर्थ है और एक मन्त्र दूसरे मन्त्र का ज्याख्यानरूपी है। तो यदि बेद का ज्याख्यानरूपी होने से ब्राह्मणभाग बेद नहीं है तो ये मन्त्र भी बेद न कहलावैंगे क्योंकि ये भी बेद के ज्याख्यानरूपी ही हैं।

खं०--(२) बेदसंज्ञा का वास्तविककारण, वाक्य का अपै। रुषेय होना ही है अर्थात् अपौरुषेय ही वाक्य बेद कहलाता है। निदान-जिस प्रन्थ का कोई कर्ता नहीं होता वहीं बेद है। और कर्ता का होना ही उसके वाक्य के बेद न होने का कारण है इसी से ऋग्बेदादि, वेद कहलाते हैं और भारत आदि बेद नहीं कहलाते, यही पूर्वमीमांसादर्शन का अटलसिद्धान्त है। तो ऐसी दशा में जब मन्त्रभाग के नाई ब्राह्मणभाग भी अपौरुषेय है तब वह अवश्य बेद है और ब्याख्यान-रूप न होना जब बेद होने में कारण नहीं है क्यों। के यदि ऐसा स्त्रीकार किया जाय तो दर्शनसूत्र आदि सबी मूलप्रनथ बेद हो जायंगे तब ऐसी दशा में ब्याख्यानरूपी होना बेद होने का बाधक कदापि नहीं हो सकता और ऐसी दशा में ब्याख्यानरूपी होने मात्र से ब्राह्मणभाग के बेद होने का बृहस्पित भी बारण नहीं कर सकते और उक्त साधु की तो चर्चा ही क्या है।

खं० तृतीय हेतु का— (१) तृतीय हेतु भी कद्छी स्तम्भ के ऐसा निःसार ही है क्यों कि उसके न्यायवाक्य का यह आकार है कि "ब्राह्मणभाग, बेद नहीं है क्यों कि वह ऋषियों का उक्त है" इस हेतु में 'उक्त' शब्द का यदि उच्चारित अर्थ है तो मन्त्र भी बेद न कहछा वैंगे क्यों कि वे भी ऋषियों के उच्चारित हैं और यदि उक्त शब्द का रचित अर्थ है तब तो यह हेतु हो ही नहीं सकता क्यों के हेतु वही होता है जो वादी और प्रतिवादी को स्वीकृत हो और ब्राह्मणभाग का ऋषियों से रचित होना सनातनधर्मी को स्वीकृत नहीं है क्यों कि सनातनधर्मी ब्राह्मणभाग को

भी मन्त्रभाग के नाई अनादि ही मानते हैं।

प्रश्न—जब कि ब्राह्मणभाग में भारद्वाज, अंगिरा, बशिष्ठ, पुलह, याज्ञबल्क्य, जनक आदि का संवाद कहा हुआ है तब वह कैसे नहीं ऋषियों का रचित है ?

⁽१) प्रकारान्तरेण व्यभिचारित्वप्रदर्शनम् ।

ऽनिभल्लितवेदसम्प्रदायोऽकृतगुरुकुळ्वासोऽनासादितब्रह्मसम्पत्तिर्भवानित्येवासाकं निश्चयः,यतो वेदानामिदमेव वेदत्वं यद् इमेऽतीतानागतवर्तमानसिकृष्ट्रविप्तकृष्ट्रपर्ववस्तुसाधारण्येन सर्व विदन्ति वेदयन्ति च सर्वपुरुषान् । अतप्त " लोकिकानामर्थपूर्वकत्वा" दित्याह स्म
कात्यायनः प्रातिशाख्ये, लोकिकानां "गामभ्याजग्रुक्तां दण्डेने " त्यादिवाक्यानां पयोगोऽर्थपूर्वकः, प्रयोक्तारो हि तंतम्प्रतिपिपाद्यिषितमर्थम्रपल्यभमाना अनुसन्दधतो वा प्रयुक्तते
लोकिकानि वाक्यानि, वैदिकानां नित्यानां वाक्यानां नार्थपूर्वकः प्रयोगो घटते, वैदिकवाक्यार्थानां स्रष्टिपलयादीनामनित्यत्वात् । ततश्च वस्तुसद्धावनैरपेक्ष्येण लोकन्नत्तम्वगमयन्तो
वदा यदि याज्ञवल्यवजनकादिसंवादमभिदध्युस्ततस्ते का क्षतिः, इत्रथा तु "सूर्याचन्द्रमसौ
धाता यथापूर्वमकल्पयत्" इत्यादिसंहिताभागस्याप्यवेदत्वापात्तिः । यथा हि जनकादिसंवादस्य ब्राह्मणेषु दर्शनाज्जनकादिकालानन्तरकालनृत्युत्पत्तिकत्वं ब्राह्मणेषुरुपेक्षसे तथा
सूर्याचन्द्रमसाविति श्रुतेरि सूर्याचन्द्रमसोः सृष्ट्यभिधायकत्वेन तदुत्पत्तिकालानन्तरकालोत्यत्तिकत्वेनानित्यत्वं स्यादिति बृद्धिमच्छतस्ते मूलहानिरिति महदनिष्टमेतस्पसक्येत ।
तस्मात्स्यर्थाचन्द्रमसोः सृष्ट्यभिधायकोऽपि वेदो न तदुत्पत्तिकालानन्तरकालोत्पत्तिको वेदवाक्यानामर्थपूर्वकत्वविरहादित्यनायत्याऽभिद्धानो भवान्कस्मादकस्मादेव ब्राह्मणेषु सन्नह्यति ततश्च भारद्वाज्ञाङ्गरोनामदर्श्वनमात्रं नावेदत्वसाधकामिति श्रम् ।

॥ भाषा ॥

उ०-इस प्रश्न ही से ज्ञात होता है कि प्रश्नकर्ता को बेद की प्रणाली का ज्ञान ही नहीं है और न बेदसम्प्रदाय से कोई संबन्ध है, क्यों के बेदों का बेदपना यही है कि वे तीनों काल के सब वस्तुओं का बेदन (ज्ञान) कराते हैं इसी से प्रातिशाख्य में कात्यायनमहार्ष ने कहा है कि " लौकिकानामर्थपूर्वकत्वात्" (लौकिक वाक्यों का उचारण अर्थपूर्वक होता है अर्थात् वाक्य के प्रयोग करने वाले पुरुष, उस वाक्य से जिसका बोध कराना चाहते हैं उस अर्थ को समझ कर उसके अनुसन्धान से वाक्य की रचना करते हैं और बैदिक वाक्यों का प्रयोग तो अर्थपूर्वक नहीं हो सकता क्योंकि बेद नित्य है और उसके अर्थ, सृष्टि प्रलय आदि अनित्य हैं) इस से यही सिद्धान्त है कि किसी वस्तु के रहने की अपेक्षा न कर केवल आख्यायिका की रीति से सब समाचारों को बेद ज्ञापन करता है ऐसी दशा में यदि उक्त संवाद भी बेद में कहे हुए हैं तो इस से बेद की अनादिता में कुछ भी हानि नहीं हो सकती। और यदि उक्त सिद्धान्त का खीकार न किया जाय तो मन्त्रभाग भी कदापि बेद नहीं हो सकता क्योंकि जैसे जनकादि के संवाद से यह कल्पना उक्त साधु की है कि जनकादिकाल के अनन्तर ब्राह्मणभाग राचित हुआ इस से ब्राह्मणभाग बेद नहीं है, वैसे ही यह कल्पना भी हो सकती है कि जब "सूर्याचनद्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्" (जैसे परमेश्वर ने प्रलयकाल से पूर्व में सुर्यचन्द्रमा को बनाया था वैसे ही प्रलय से उत्तरकाल में भी बनाया) इस मन्त्र से यह कल्पना हो सकती है कि सूर्यचन्द्रमा की सृष्टि के उत्तरकाल में मन्त्रभाग बना इसी से मन्त्रभाग अनित्य और पौरुषेय है बेद नहीं है। और यदि मेरे कहे वैदिकसिद्धान्त के अनुसार उक्त करपना का खण्डन कर मन्त्रभाग का बेदल सिद्ध किया जाय तो उसी के अनुसार ब्राह्मणभाग की बेदता भी निर्वित्र सिद्ध होती है इस से यह तृतीयहें उ ्र उन्मत्तप्रलाप ही है।

"अनीश्वरोक्तत्वादि" ति चतुर्थी महामूर्छी।

अत्रानीश्वरोक्तत्वमीश्वरभिन्नोक्तत्वम् तच ऋष्युक्तत्वसाधारणमिति पूर्वोक्तहेतो-रनतिश्वयात्पुनरुक्तत्वरूपनिग्रहस्थानापन्नो भवान् इत्युपरम्यतेऽस्पाभिः शम्। "कात्यायनभिन्नेश्विषिभिर्वेदसञ्ज्ञायामस्त्रीकृतत्वात्"।

इति तु देवानांत्रियस्य साइसोक्तिः। "पन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेय" पित्यापस्तम्बेन यज्ञपरिभाषास्त्रतेषु ब्राह्मणानां बेदत्वस्य सुरपष्टसुक्तत्वात्। किंच सर्ववैदिकिशिरोधार्ये पूर्वमीमांसादर्शने द्वितीयेऽध्याये प्रथमपादे द्वातिंशतमे सूत्रे मन्त्रं लिळक्षायिषुराचार्यः प्राह स्म "तच्चोदकेषु मन्त्राख्या" 'शेषे ब्राह्मणशब्द ' इति च। अत्र हि 'शेषे ब्राह्मणशब्द ' इति द्वितायस्त्रोक्त्या शेषे मन्त्रभागादवाशिष्टे बेदैकदेशे ब्राह्मणशब्द इत्यर्थाद्धेदस्य मन्त्रब्राह्मणात्मक-प्रभेदद्वयवत्विसिद्धः। यद्याचार्यो बेदैकभागत्वन्नावागिमिष्यत्रभ्यस्तौ ब्यधास्यत 'शेषे ब्राह्मणशब्द ' इति, निह महाभारतस्य रामायणं शेष इत्यतुन्मत्त आचक्षीत तद्वश्चयं शेष-शब्दपिहस्त्राऽऽचार्यस्य ब्राह्मणे बेदभागत्वमभिमतिमत्यवगम्यते। अत्र व ब्राह्मणनिर्वचना-धिकरणे, "अथ किं छक्षणं ब्राह्मणम् मन्त्राश्च ब्राह्मणश्च बेदः तत्र मन्त्रछक्षण चक्ते परिशेषसिद्धं ब्राह्मणम् । मन्त्रछक्षणवचनेनेव सिद्धं यस्यतछक्षणं न संभवति तद्वाह्मणस् इति परिशेषसिद्धं ब्राह्मणस्," इति ब्याचल्युराचार्याः शवरस्वामिनः। अत्रप्वभगान् जैमिनिर्निरुक्तसूत्रद्वयेन मन्त्रब्राह्मणात्मकं कृत्स्रं बेदं छक्षयित्वा तदेकेदशभूताः

॥ भाषा॥
खं० चतुर्थ हेतु का--(१) चतुर्थ हेतु में तो पुनरुक्तिदोष स्पष्ट ही है क्योंकि यह,
तृतीय ही हेतु से गतार्थ है और उसका खण्डन ही इसका खण्डन है।

समा०—चतुर्थ हेतु का यदि यह तात्पर्य है कि "ब्राह्मणभाग ईश्वर का रिचत नहीं है इसी से बेद नहीं कहला सकता" तब तो यह हेतु तृतीय हेतु से गतार्थ नहीं हुआ और ऐसी दशा में इस में पुनरुक्तिदाष कैसे पड़ सकता है।

खं - उक्त रीति से यद्यपि पुनरुक्तिदोष नहीं है तथापि यह हेतु सनातनधर्मियों को खीक्रत नहीं है क्योंकि वे किसी बेदमाग को ईश्वररिचत नहीं मानते और नैयायिक आदि यद्यपि बेद को ईश्वररिचत मानते हैं तथापि वे मन्त्रों के नाई ब्राह्मणभाग को भी ईश्वररिचत ही मानते हैं इस कारण ब्राह्मणभाग का ईश्वररिचत न होना उनको भी खीक्रत नहीं है इस रीति से यह हेतु जब वादी और प्रतिवादी को खीक्रत नहीं है तब दुष्ट अर्थात् असिद्ध है।

खं पांचवें हेतु का—(१) पांचवां हेतु भी अज्ञता का परिणाम ही है क्योंकि यज्ञ के परिभाषाप्रकरण में आपस्तम्बमहार्षि का भी यही सूत्र है "मन्त्रव्राह्मणयोर्बेदनामधेयम्" (मन्त्र और व्राह्मण की बेद संज्ञा है)।

खं०—(२) सब बैदिकों के शिरोधार्य पूर्वमीमांसादर्शन अध्या० २ पा० १ में जैमिनिमहर्षि के ये दो सुत्र हैं, "तच्चोदकेषु मन्त्राख्या" ॥ ३२ ॥ "शेषे ब्राह्मणशब्दः" ॥ ३३ ॥ इन का
यह अर्थ है कि 'यज्ञक्रिया के स्मरण कराने वाले बेदमाग को मन्त्र' और उससे अवशिष्ट बेदमाग
को ब्राह्मण कहते हैं । यदि ब्राह्मणभाग, बेद का भाग न होता तो जैमिनिमहर्षि उसको मन्त्रभाग
की अपेक्षा शेष (अवशिष्ट) न कहते क्यों कि रामायण को कोई महाभारत की अपेक्षा शेष नहीं
कहता इससे यह स्पष्ट है कि ब्राह्मण का बेदमाग होना जैमिनिमहर्षि के संमत है ।

ऋचः "तेषामृग्यत्रार्थवर्शन पाद्वयवस्था" इति स्त्रेण पश्चित्रिश्चमेन ऋचः "गीतिषु सामाख्या " इति षद्त्रिश्चमेन सामानि 'शेषे यजुःशव्द ' इति सप्तात्रिश्चमेन यजुषि लक्षयामास, तत्रश्च यजुषेऽप्येकदेशं "निगदो वा चतुर्थ स्याद्धमिविशेषात्" इत्यष्टात्रिश्चमेन यजुर्विशेषं निगदमलक्षयत्, यद्ययमाचार्यो ब्राह्मणानां वेदपदार्थतां नाभिमन्येत ततः "तचोदकेषु मन्त्रान्वया" इत्येतन्मन्त्रलक्षणानन्तरमेव ऋगादीं लक्षयति चायम्मन्त्रानन्तरं "शेषे ब्राह्मण्या" इत्येतन्मन्त्रलक्षणानन्तरमेव ऋगादीं लक्षयति चायम्मन्त्रानन्तरं "शेषे ब्राह्मण्याव्यः" इति ब्राह्मणमेव, ततोऽस्यावश्यमेव ब्राह्मणानां वेदपदार्थत्वमभिमति प्रेक्षावता णश्चद् " इति ब्राह्मणमेव, ततोऽस्यावश्यमेव ब्राह्मणानां वेदपदार्थत्वमभिमति प्रेक्षावता जिमिनेनिय ब्राह्मणानां वेदत्वमुच्यते । परन्तु जिमिनेयिमायो वक्तव्यः। न केवलम्महर्षिणा जैमिनिनेव ब्राह्मणानां वेदत्वमुच्यते । परन्तु जिमिनेयिमायो वक्तव्यः। न केवलम्महर्षिणा जैमिनिनेव ब्राह्मणानां वेदत्वमुच्यते । परन्तु अमिनेयिमायोः "स्वर्गकामो यजेत" "न कलञ्जं भक्षये" दित्यादिविधिनिषेधवलकलपनीयतया आवश्यकं तत्र विधिनिषेधवाक्ययोः प्रामाण्यम्, तत्प्रामाण्यं च वक्तुर्यथार्थवाक्यार्थज्ञान्तर्लक्षणगुणपूर्वकमेव वक्तव्यम् । तार्किकैः स्वतःप्रामाण्यस्यानक्षीकारात् ।

अतः प्रथमं प्रामाण्यपयोजकगुणसाधनमुषक्रममाणः कणादाचाय्यः प्राह स्म षष्ठाध्यायादावेव "बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे *" इति, अस्यायमर्थः। षाक्यकृतिर्वोक्यरचना बुद्धिः
पूर्वी नाम वक्तृयथार्थवाक्यार्थज्ञानपूर्वी, वाक्यरचनात्वात् काञ्च्यां त्रिभुवनतिलको भूपतिरित्यस्मदीयवाक्यरचनावत् । ततश्चेह वक्तृयथार्थवाक्यार्थज्ञानपूर्वकत्वरूपसाध्यासिद्धिः
स्वान्यथानुपपत्या वक्तुर्यथार्थज्ञानमनुमापयति । नचास्मदादिज्ञानपूर्वकत्वेनान्यथासिद्धिः
शब्दक्या, "स्वर्गकामो यजेत" इत्यादाविष्ठसाधनतायाः कार्यतायाश्चास्मदादिबुद्ध्यगाचरत्वेन स्वतन्त्रपुरुषप्रवर्तकत्वस्य सिद्धः। स चार्यस्वतन्त्रो बेदपुरुष इति संहितासु भ्रमप्रमा-

दादिदोषग्रन्यस्वतन्त्रपुरुषप्रणीतत्वासिद्धिः॥

सं०—(३) जैमिनिमहर्षि ने अनन्तरोक्त दोनों सूत्रों से मन्त्रज्ञाह्मणरूपी पूर्णवेद का लक्षण कह कर उक्त बेद के ऋक्, साम और यजु भाग के लक्षणों को इन तीन सूत्रों से कहा है "तेषामृग् यत्रार्थवश्चेन पाद्व्यवस्था" ३५॥ (ऋक् उसको कहते हैं जिस में चरण होते हैं) "गीतिषु सामाख्या" ३६॥ (गान को साम कहते हैं) "शेषे यजुःशब्दः ३७॥ (उक्त दोनों से अन्य बेदभाग को यजु कहते हैं) यदि मन्त्रभाग ही बेद होता अर्थात् ब्राह्मणभाग बेद न होता तो "तच्चोदकेषु मन्त्राख्या" इस मन्त्रलक्षण के अनन्तर अर्थात् ब्राह्मणभाग के लक्षण से पूर्व ही ऋक् आदि का लक्षण कहते परन्तु ऐसा न कह कर मन्त्रलक्षण के अनन्तर "शेषे ब्राह्मणशान्दः" इस सूत्र से महर्षि ने जो ब्राह्मण का लक्षण कहा इस से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि ब्राह्मणभाग का भी बेद होना महर्षि को अनुमत है इसी से उन्हों ने मन्त्ररूपी एक बेदमाग के लक्ष्मण से अव्यवहित ही ब्राह्मणरूपी द्वितीय बेदभाग का लक्षण कहा।

खं०—(४) बैशेषिकदर्शन, अध्या० ६ के आदि ही में कणादमहार्ष के सूत्र हैं "बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे "१॥ (छोकिकवाक्यों के नाई बेदबाक्यों की रचना भी किसी स्वतन्त्र पुरुष की की हुई है। और उस रचना को असादादि कोई पुरुष नहीं कर सकता क्योंकि हम छोग जब बेदवाक्यों के बिना यह नहीं जान सकते कि याग, स्वर्ग का कारण है तब कैसे "स्वर्गकामी यजेत" इसादि वाक्यों की रचना कर सकते हैं इस से यह सिद्ध होता है कि कोई निर्दोष सर्वह्म

^{*} बेदत्वं च शब्दतदुपजीवित्रमाणातिरिक्तप्रमाणजन्यप्रमित्याबिषयार्थऋत्वे सति शब्द्वाक्यार्थज्ञानाजन्यप्रमाणशब्दत्वम् ।

इदानीं प्रकारान्तरेण बेदवाक्यानां बुद्धिपूर्वकत्वमाच्छे। "ब्राह्मणे सञ्ज्ञाकर्मासिद्धि-क्ष्म् " ब्राह्मणे बेदभागे सञ्ज्ञाकर्म नामकरणं तद्ब्युत्पादकस्य बुद्धिमाक्षिपति यथा छोके त्रमैत्रादिनामकरणम् अस्ति च नामकरणं ब्राह्मणे "बद्धिदा यजेत" "बलभिदा यजेत" अभिजिता यजेत " "विश्वजिता यजेत" इति, अत्र हि उद्भिदादिनामानि स्वतन्त्रस्य हस्यचित् ब्यवहर्तुर्बुद्धिमाक्षिपन्ति । अलोकिकानामर्थानामस्मदादिबुद्ध्यगोचरतयाऽस्मदादि-वाधादपरमनुमापयन्ति। स चायमपरोऽनुमित्सितो बेदपुरुषो भगवानीश्वर इति "बुद्धिपूर्वो ददातिः " इति तृतीयं काणादं सूत्रम्। अस्यार्थः। 'स्वर्गकामो गां दद्या 'दित्यादौ यद्दान-प्रतिपादनं तदिदं बोधियतुद्गिधिमें केष्ट्रसाधनताज्ञानजन्यम्। तचेष्ट्रसाधनताज्ञानं निष्कम्पप्रचृ-त्तिजनकं नार्वाण्डशामस्मदादीनामपरोक्षात्मकमिति तादशज्ञानाश्रयस्तत्रापि सिध्यति "तथा प्रतिग्रह " इति चतुर्थपारमर्पसूत्रस्याप्येवमेवार्थोऽवगन्तच्यः। नचेह बुद्धिपूर्वा वाक्यकृति-बेंद्रे " इति प्रथमे बेदपदेन, द्वितीयसूत्रे च ब्राह्मणपदेन निर्देशात्कथमनयोब्रीह्मणस्य बेद-पदार्थत्वसाधकत्विमिति शङ्क्यम्। अत्र हि षष्ठेऽध्याये संसारमूलकारणभूतौ धर्माधर्मी परीक्षिष्यमाणौ तौ च बेदैकबेघौ । बेदघाक्यानां च कणादमते आप्तोक्तत्वेन प्रामाण्यम्, आप्तश्च यथार्थमकृतवाक्यार्थज्ञानाश्रयोऽतः मकृतवाक्यार्थविषयक्ययार्थज्ञानात्मकं वेदमा-माण्योपोद्धलकमेव प्रकृते सिषाधायिषितम्। तच मन्त्रब्राह्मणात्मककृत्स्रवेदसाधारणमिति मथमसूत्रेण तत्साधियत्वा द्वितीयेन सूत्रेण सञ्ज्ञाबहुले ब्राह्मणभागे सञ्ज्ञाकर्मणापि तत्साधित-

भौर खतन्त्र पुरुष, बेद का कर्ता है)। "ब्राह्मण संज्ञाकर्मसिद्धिर्छिक्कम्" २॥ (जैस लोक में पिता आदि, अपने पुत्र का चैत्र मैत्र आदि नाम रखते हैं वैसे ही ब्राह्मणनामक बेदमाग में "डिट्किदा-यजेत" "बलिभदा यजेत" "अभिजिता यजेत" "बिश्वजिता यजेत" इत्यादि वाक्यों से उन २ यागों का डिक्कित् बलिभत्, आदि अनेक नाम रक्खे हुए हैं। और नामकरण करना स्वतन्त्रपुरुष का काम है। तथा हम लोग अलीकिक अर्थ को नहीं जान सकते कि जिस से उद्भित् आदि नाम रख सकें इस से यह सिद्ध होता है कि उद्भित् आदि नाम का रखने वाला परमेश्वर ही बेद का कर्ता हैं) इन दोनों सूत्रों से यह स्पष्ट है कि ब्राह्मणभाग का बेद होना कणादमहर्षि के संमत है।

प्र० — जब कि उक्त प्रथमसूत्र में "बेद शब्द " कहा है और दितीयसूत्र में 'ब्राह्मण' शब्द कहा है तब इन सूत्रों से यह कैसे निकलता है कि ब्राह्मणभाग बेद है क्योंकि भिन्न २ सूत्र में रहने से यह स्पष्ट ही है कि ब्राह्मणशब्द के अर्थ का बेदशब्द के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

प०—इस षष्ठाध्याय में संसार के मूलकारण धर्म और अधर्म की परीक्षा आग चल कर की गई है और धर्म, अधर्म, बेद ही से ज्ञात होने के योग्य है तथा कणादमत में बेदों का स्वत:प्रामाण्य नहीं है किन्तु आप्तोक्त होने से प्रामाण्य है और आप्त उसको कहते हैं कि जिसको वाक्यार्थ का यथार्थज्ञान होता है अर्थात् यथार्थज्ञान से जिस वाक्य की रचना होती है वही वाक्य प्रमाण होता है इस रीति से इस अध्याय में प्रथम २ बेद के प्रामाण्यसाधनार्थ कणादमुनि ने उक्त सूत्रों से प्रमाश्वर के यथार्थज्ञान ही को सिद्ध किया है और उस यथार्थज्ञान की सिद्धि, मन्त्रज्ञाह्मण-रूपी पूर्णबेद की रचना से होती है इसी से प्रथमसूत्र में महर्षि से 'बेद शब्द, सामान्य से कहा। और बेद के जाह्मणाना में प्राय: नाम आते हैं इसी से नाम रखने के अनुसार भी उक्त यथार्थ-

मिति बेदैकदेशे ब्राह्मणे सञ्ज्ञाकरणात्मकबेदप्रामाण्यप्रयोजकवक्तृयथार्थवाक्यार्थज्ञानात्मकगुणपूर्वकत्वप्रदिद्शियपया प्रवर्तमानेन सूत्रकृता स्फुटं ब्राह्मणे बेदत्ववोधनात् । न हि भारते पुरुषार्थचतुष्टयं न्यरूपीत्यभिधाय मोक्षधमें मोक्षो निरूपित इत्यभिधाने मोक्षधमें महाभारतप्रकरणतां जहातीति, वक्ता च तस्य तदङ्गतां नाभिप्रतीति कश्चिद्वक्तुमुचच्छेदिष् प्रेक्षावान्, नह्यास्तिकैर्वेदमपहायापरस्य दृष्टानुमितश्चत्यम् व्रक्षकश्चर्यस्य धर्माधर्मयोः प्रामाण्यमङ्गीकियते यस्य प्रामाण्यप्रत्याशया ब्राह्मणानां सञ्ज्ञाकरणात्मकाल्ज्ञेन वक्तृयथार्थवान्यार्थज्ञानात्मकगुणसाधनायायमुच्यो महर्षेवक्तच्यः स्यात् । तस्मात्कात्यायनभिन्नैर्क्षिप्तिवेदसञ्ज्ञायामस्वीकृतत्वादितिपलपन्सतांशोचनीयो राज्ञांदण्डनीयो लोकानांचोप्तिवेदसञ्ज्ञायामस्वीकृतत्वादितिपलपन्सतांशोचनीयो राज्ञांदण्डनीयो लोकानांचोप्तिसनीय एव । किंच "कात्यायनाभिन्नैर्क्कषिभिर्वेदसञ्ज्ञायामनुक्तत्वा" दिति वदताऽऽत्रत्येनानाभिज्ञत्वं प्रतारकत्वं चोत्प्रस्थते तदिदमनृषरवरस्य रौरवसाधनमृष्यौ । नह्यनृषिः कश्चित्पामरोऽप्रदर्श्य दृदविपक्षसाधकं प्रमाणं यङ्कमप्येकमृषिं किम्पुनरेतावतो जैमिन्यादीन्महर्षान्द्रपत्ति । किञ्चायं ग्रहिलो "ब्राह्मणं न बेद" इत्येतादशं प्रामाणिकस्य कस्यापि ॥ भाषा॥

ज्ञान के सिद्ध करने के लिये द्वितीयसूत्र में बिशेष से 'ज्ञाह्मण' शब्द कहा, इस रीति से दोनों सूत्रों से ज्ञाह्मणभाग का बेद होना ही निकलता है जैसे "भारत में चारा पुरुषार्थ का निरूपण है और मोक्षधर्म में मोक्ष का निरूपण है" तो क्या इस वाक्य से यह निकल आवैगा कि मोक्षधर्म- प्रकरण महाभारत का नहीं है ? वैसे ही प्रथम बेदसामान्य की रचना से और अनन्तर बेद के ज्ञाह्मणप्रकरणस्थ नामों के रखने से महार्ष ने ईश्वरज्ञान को सिद्ध किया है तो इस से कैसे यह निकल सकता है कि ज्ञाह्मणभाग बेद का प्रकरण नहीं है ? और सब को अलग कर यह सूधा बिचार करना चाहिये कि जब सबी आस्तिकों को यही संमत है कि धर्म, अधर्म, के बिषय में बेद से अतिरिक्त कोई शब्द, स्वतन्त्रप्रमाण नहीं है तो ऐसी दशा में यह संभावना भी नहीं हो सकती कि धर्माधर्म की परीक्षा के प्रकरण में बेद से अन्य शब्द का नाम भी प्रमाण देने के आश्रय से वैशेषिकदर्शन के आचार्य कणादमहार्ष ने लिया हो और ज्ञाह्मणभाग के नामों का उन्हों ने स्पष्ट ही प्रमाण दिया है इस से सर्वथा निश्चित है कि ज्ञाह्मणभाग का बेद होना महार्ष के संमत है।

खं०—(५) "कालायन से अन्य ऋषियों ने ब्राह्मणभाग की बेदसंज्ञा स्वीकार नहीं की है" इस कहने से यह स्पष्ट ही निकलता है कि कालायनऋषि ने लोकबन्द्रना के अर्थ ऐसी झूठी बात लिख दिया और जब कोई पुरुष दृढ प्रमाण बिना दिखलाये किसी नवीन बिषय की उद्घोषणा करता है बन्द्रक नहीं कहलाता है जैसे उक्त साधु ने बिना प्रमाण के यह उद्घोष किया है कि "ब्राह्मण बेद नहीं है" और इस से यह भी ज्ञात होता है कि उक्त साधु, अपने तुल्य दूसरे को समदर्शी न समझने वाला बड़े २ गपोड़ों का छोड़ने वाला डींगों से भरा पुरा है यह उसी समद्शिता का प्रभाव है जो कि अपने ऐसा परबन्द्रक, कालायनमहार्ष को भी समझता है।

खं०—(६) ऋषियों को कीन कहै यदि किसी अन्य एक प्रामाणिक मनुष्य का भी "ब्राह्मणं न बेदः" (ब्राह्मण बेद नहीं है) ऐसे वाक्य को दिखळाता तब भी इस हेतु को किसी प्रिति से कह सकता था परन्तु वैसा भी नहीं किया इस से यही सिद्ध होता है कि "काट्यायन महार्ष का "मन्त्रब्राह्मणयोर्बेदनामधेयम्" यही सिद्धान्त सब ऋषियों को स्त्रीकृत है" इस रीति से

किम्पुनर्ऋषेवीक्यं दर्शयत् तदाऽसौ क्षमेतापि 'कात्यायनभिन्नैर्ऋषिभिर्वेदसञ्ज्ञायामनुक्तत्वा' किम्पु इत्यलमज्ञानिषिशाचाविष्टस्य वाचानिग्रहेण।
"मनुष्यबुद्धिरचितत्वात्" इति कपटकाषायस्य चरमचेष्टितम्"।

अत्र ब्राह्मणानि न बेदाः मनुष्यबुद्धिरचितत्वादिति न्यायः प्रयोक्तव्यः। स चायमना-कलितन्यायमयोगस्य प्रयोगः। यदा हि मनुष्यबुद्धिरचितत्वं ब्राह्मणेषु सिद्धमभविष्यत्तदे-द्विदमसाधायिष्यत्, मनुष्यरचितत्वमेव ग्लायदात्मनः मतिष्ठायै स्थानं लब्धुमपारयद्शिश्र-यद्भवन्मुखिवरमिति बिदुषां विचारवर्त्मनि अस्थास्त्रोरमुष्य क नाम साधकत्वमत्याशा। किंच परमार्षिगौतमा बेदपामाण्यानरूपणावसरे स्थूणानिखननन्यायेन बेदपामाण्यं द्रहयितुमे-वाशशक्के । "तदम।माण्यमनृतब्याघातपुनकक्तदेषिभ्य" इति तस्य वेदस्यामाण्यम् अनृत-ब्याघातपुनरुक्तदे। षेभ्यः । तत्रानृतम् । 'पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या यजेत' अनुष्ठितायामपि चेष्टौ न युज्यन्ते पुरुषाः पुत्रेरिति दृष्टार्थस्य वाक्यस्यापामाण्ये 'ऽमिहोत्रंजुहुयात्स्वर्गकाम ' इत्यह-ष्टार्थस्य वाक्यस्य शामाण्ये कथमाश्वासः। अत्र सूत्रस्थतत्पदेन पराम्रष्टुमिष्टस्य बेदस्या-प्राप्ताण्यमाशङ्कमानः "अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम" इति ब्राह्मणस्याप्रामाण्यं दर्शयामास गौतमः। यदि नाम ब्राह्मणं न बेदस्ति बेदाप्रामाण्यसाधनावसरे ब्राह्मणस्याऽप्रामाण्यपदर्शनं कर्णस्पर्शे कटिचालनायितं स्यात्। नहि प्रेक्षावान् "मैत्रवाक्यं न बिश्वसिही" ति कञ्चन बोधयंश्रेव्यवा-क्यस्य मिथ्यार्थत्वं साधयेत् तदवश्यं ब्राह्मणं बेद इति परमर्षिरनुवन्यते इति। नच सूत्रस्थ-तत्पदेन परमार्षिनीभिनैति निर्देष्डुम् "अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम " इति ब्राह्मणवाक्यम् अपितु यत्कि इन्यदेव संहितावाक्यमिति सर्व सिकताक्र्यायितामिति व च्यम् । इयाच-क्षाणेन बात्स्यायनर्षिणा स्वभाष्येऽस्मद्भिहितार्थस्य स्फुटमभिहितत्वात् । तथाहि "पुत्रका-मेष्टिहवनाभ्यासेषु तस्येतिशब्दिबशेषमेवाङ्गीकुरुते भगवानृषिः। शब्दस्य प्रमाणत्वं न संभ-वति, कस्माद्नृतदोषात्। पुत्रकामेष्टौ पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या यजेतेति "नेष्टौ संस्थितायां पुत्रजन्म दृश्यते, दृष्टार्थस्य वाक्यस्यानृत्त्वाददृष्टार्थमपि वाक्यम् "अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकाम"

यदि केवल कात्यायनमहार्षि ने ही ऐसा कहा होता तब भी उक्त साधु के चळचुप्रबेश का कोई संभव न था क्योंकि उसके बिरुद्ध कोई प्रामाणिकवाक्य नहीं मिल सकता और जब कि कात्यायन-वाक्य के समानाकार ही आपस्तम्बमहार्ष का वाक्य तथा जैमिनि और कणाद महार्ष के वाक्य भी (जो कि पूर्व में दिखलाये गये) ब्राह्मणभाग की बेदता के प्रतिपादन में जागरूक हैं तब उक्त साधु के ऐसे उलटे पलटे बकने का मैं नहीं समझता कि क्या फल है।

खं छठ हेतु का-(१) छठां हेतु भी दुष्ट ही है क्योंकि बाह्मणभाग के बिषय में मनुष्यरिचत होना प्रतिवादी अर्थात् सनातनधर्मी को स्वीकृत नहीं है और पूर्व में कहा जा चुका है

कि हेतु वहीं होता है जो वादी और प्रतिवादी को स्वीकृत हो।

खं०—, २) न्यायद्श्न में "तद्रामाण्यमनृतब्याघातपुनरुक्तद्वेषेभ्यः" इस सूत्र से (जिसका ब्याख्यान बेददुर्गसज्जन-पृष्ठ (१६९) में हो चुका है) गौतममहार्ष ने और उसके भाष्य-कार बात्स्यायनमहार्षि ने भी बेद के अप्रामाण्य की शङ्का के अवसर पर "पुत्रकाम: पुत्रेष्ट्या यजेत" "अमिहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः" " उदितेहोतव्यमनुदितेहोतव्यम्" "त्रिःप्रथमामन्वाह त्रिक्त्तमाम्"

इत्याचन्त्रमिति ज्ञायते, बिहितब्याघातपुनरुक्तदोषाच हवने " उदिते होतव्यमनुदिते होतव्य-समयाध्यापिते होतव्यामितिबिधाय बिहितं व्याहान्ति "इयावीऽस्याहुतिमभ्यवहरति य उदिते जुहोति शवलोऽस्याहुतिमभ्यवहराति योऽनुदिते जुहोति श्यावशवलौ बाऽस्याहुतिमभ्यवह-रता या समयाध्यापित जुहोति" ब्याघाताचान्यतरन्मिथ्येति पुनरुक्तदोषाच अभ्याभे देश्यमाने 'त्रिः प्रथमायन्वाह त्रिरुत्तमाम्' इति पुनरुक्तदोषो भवति, पुनरुक्तं च प्रमत्तवाक्यः मिति तसादममाणं शब्दो ' ऽनृतब्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः ' इति । अत्र हि बात्स्यायनो दृष्टार्थवाक्यसाम्येनादृष्टार्थे ''अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम'' इति वाक्येऽनृतत्वमतिदिशति इदं च ब्राह्मणवाक्यमिति पुष्कलं ब्राह्मणं बेद इति । अथाद्यापि 'अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम' इति वांक्यंस्य प्रमाणाभावे न द्राहिमानमवेक्षे इत्याग्रहस्ते तदा परित्यज ब्राह्मणेषु द्वेषमपबार-यासदाबेशम्। अवेहि च गौतमीये द्वितीयेऽध्याये षष्टितमेन "वाक्यविभागस्य चार्थग्रहणा-त् "इत्युपक्रम्य "विध्यथवादानुवादवचनविनियोगात्" इत्येकषष्टितमेन ब्राह्मणवाक्यानि विभेजे भगवान् गौतमः । अत्राह स्म बात्स्यायनः "त्रिधा खलु ब्राह्मणवाक्यानि भिन्नानि 'विनियुक्तानि' विधिवचनानि अर्थनादवचनान्यनुवादवचनानीति । तत्र विधिर्नियामकः यद्वान्यं विधायकं चोदकं स विधिः विधिस्तु नियोगोऽनुज्ञा वा यथा "अग्निहोत्रं जुह्या-त्स्वर्गकाम "इति, ततश्च बात्स्यायनेन ब्राह्मणवाक्यविभागावसरे 'अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्ग-काम' इत्येतस्य पदर्शनादिह बात्स्यायनब्याख्यानप्रणालिकया महिषेगीतमो 'ऽप्रिहोत्रं जुहुय तस्वर्गकाम' इत्यादि ब्राह्मणं सुत्रस्थतत्पदेन जिघृक्षन् ब्राह्मणं तदेकदेशमागमभिमेने। तदेवं सर्विषंत्रमते ब्राह्मणानां वेदभावे प्रकृतेचाजानिके तथैव ब्यवहारे कृतमनल्पजल्पनेन। "ब्राह्मणग्रन्थेषु मनुष्याणां नामलेखपूर्वका लैकिका इतिहासाः सन्ति नचैवं मन्त्रभागे"॥

इति स एवं प्रतारकः। अत्र किं ब्राह्मणप्रन्थेषु लौकिकेतिहासदर्शनं तेषां प्रतारक-त्वावगमकमुतापारुषेयत्वभक्तप्रयोजकमाहोस्विद।दिमत्त्वप्रयोजकम् १ नाद्यः। लोकिकेतिहास-दर्शनस्य प्रन्थे प्रतारकिनिर्मतत्वब्यभिचरितत्व त् निह लोके सर्वोऽपीतिहासः प्रतारकैव्यर-चीत्यज्ञत्मत्तवत्प्रेक्षेतापि। न द्वितीयः। यथा हि सृष्ट्युत्यत्त्यादिक्रमो बेद्ेऽसकृद्भिहितो बेदानां

इयादि ब्राह्मणभाग ही के अनेकवाक्यों को उदाहरण दिया है (जैसा कि बेददुर्गसज्जन में पूर्विक्त पृष्ठ में कहा जा चुका है) इस से यह सिद्ध है कि ब्राह्मणभाग का बेद होना उक्त दोनों महार्षियों को समत है। और जब कि यहां तक उक्त प्रकारों से यह दृढ सिद्ध हो चुका कि ब्राह्मणभाग का बेद होना सब ऋषियों को समत है तब इसमें सन्देह ही नहीं रहा कि मन्त्रभाग के नाई ब्राह्मणभाग की बेदसंज्ञा अनादि अर्थात् स्वाभाविक है।

भा० भू०--जैसे ब्राह्मणप्रन्थों में मनुष्यों के नामलेखपूर्वक लोकिकइतिहास हैं मन्त्र

भाग में "वैसे नहीं हैं"।

खं०— क्या छौकिकइतिहास होने से यह सिद्ध होता है कि ब्राह्मणप्रन्थ किसी बश्चक क बनाये हैं ? (१) अथवा यह सिद्ध होता है कि पुरुषराचित हैं, (२) कि बा यही निश्चित होता है कि आधुनिक हैं ? (३) इन पक्षों में प्रथम पक्ष ठीक नहीं है क्योंकि यह कोई नियम नहीं है कि जितने छौकिकइतिहास हैं सबी बश्च कों ही के रचित होते हैं। द्वितीय पक्ष भी ठीक नहीं है क्योंकि जैस पूर्व में यह कहा जा चुका है कि बेद में अनेक स्थानों पर सृष्टि प्रलय आदि समाचारों

^{*} भावाभावनीधक ॥क्ययोरन्यत एस्य मिथ्यात्वमाव स्थकिमिति भावः ।

वौरुषेयत्वं नापादयति तथा छोकिकेतिहासोक्तिरि, बेदानां सर्वविद्यास्थानतया छोकिकानां पुंसां सौकर्याय तत्र भगवता पुर्वेश्वरेण याज्ञवल्कयोशनोङ्गिरः प्रभृतिनामोपन्यासपुर-स्सरं ब्रह्मविद्यादि बिद्यानामुपदेशात्, यथा स्रष्टेरनन्तरं न स्रष्टिप्रतिपादको बेदो ब्यराचि किन्तु सृष्टिरेवानादिप्रवाहसिद्धानां बेदानां समनन्तरिपति सृष्टि बर्णयतोऽपि बेदस्य न सृष्टिकालानन्तरकालोत्पत्तिकत्वं तथा ब्राह्मणेष्वितिहासवर्णनेऽपि नैतिहासिकार्थोत्पत्ति-कालानन्तरकालोत्पत्तिकत्वमुपनिषदां ब्राह्मणानां च। न तृतीयः। आदिपतामृषीणां नाममात्र-दर्शनस्य ब्राह्मणेषु सादित्वशङ्काया अपयोजकत्वस्यासकृदाबेदितत्वात्।।

तथा ब्राह्मण्यन्थानामेव पुराणितिहासादिनामास्ति, न ब्रह्मवैवर्त्तश्रीमद्भागवना-दीनांचिति निश्चीयते । किंच भोः ब्रह्मयज्ञविधाने यत्र कचिद्राह्मणसूत्रप्रन्थेषु यद्राह्मणानी । तिहासान पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसी रित्यादिवचनानि दृश्यन्ते एषां मूलमथ्वेवेदे ऽप्यस्ति । स बृहतीं दिशामजुब्यचलत् तिमितिहासश्च पुराणश्च गाथाश्च नाराशंसीश्चाजुब्य-चलन् । इतिहासस्य च वे सपुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च पियं धःम भवति य एवं वेद ॥ १ ॥ अथर्वकां ० १५ प्रपा० ३० अनुवा० १ ॥ अतो ब्राह्मणप्रन्थेभ्यो भिन्ना भागवतादयो ग्रन्था इतिहासादिसञ्ज्ञया कुतो न गृह्मन्ते । मैवं वाचि । एतैः प्रमाणेर्ब्राह्मण-प्रन्थानामेव ग्रहणं जायते न श्रीमद्भागवतादीनाभिति कृतः, ब्राह्मणप्रन्थेष्वितिहासादीना-मन्तर्भावात् ॥

इत्यन्तग्रन्थेन कपटकाषायो यत्प्राह, तदिदन्तस्य शास्त्रानवबोधानिबन्धनविहम्बना-मात्रम् । बात्स्यायनभाष्यस्य प्रामाण्यमङ्गीकुर्वाणोऽसौ कथं ब्राह्मणग्रन्थानामितिहासपुराण-

के कथन से बेद का पुरुषरचित होना सिद्ध नहीं हो सकता वैसे ही छौकिकइतिहासों के कथन से भी, क्यों के बेद सब बिद्याओं का स्थान है इसी से सुगमता के अर्थ छौकिकआख्यायिकाओं की नाई याझबल्क्य उद्याना अङ्गिरा आदि कल्पितनामों ही के द्वारा ब्रह्मविद्या आदि विद्याओं का उपदेश बेद में है पूर्वीक्त रीति के अनुसार, जैसे बेद में सृष्टि के बर्णन होने पर भी इस दाका का अवसर नहीं होता कि सृष्टि के अनन्तर बेद, रचित हुआ, किंतु यही सिद्ध होता है कि अपने प्रवाह से अनादिसिद्ध बेदों ही के अनन्तर सृष्टियां हुई करती हैं, वैसे ही ब्राह्मणभाग में इतिहास के बर्णन होने पर भी इस आक्षेप का अवसर नहीं हो सकता कि ऐतिहासिकपदार्थों की उत्पत्ति के अनन्तर, ब्राह्मणभाग रचित हुआ, किन्तु यही निश्चित है कि एतिहासिकपदार्थों की उत्पत्ति ही अनादि ब्राह्मणभाग के अनन्तरकाल में होती है। ऐसे ही तृतीय प्रश्न भी कुछ नहीं है क्योंकि अनित्यऋषियों के नामोझेखमात्र से बेद के रचित होने की शंका का निवारण, पूर्वहीं अनेक बार हो चुका।

भा० भू०—"और इस हेतु से ब्राह्मणप्रन्थों का ही इतिहासादि नाम जानना चाहिये श्रीमद्भागवतादि का नहीं" यहां से "उन्हीं का इतिहासादि से प्रहण करना चाहिये अन्य का

नहीं "यहां तक--(१) जो पूर्वोक्त भाष्यभूमिका में कहा है उस से तो स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि उक्त साधु को शास्त्रों का परिचय ही नहीं है क्यों कि जब वह बास्यायनभाष्य को प्रमाण मानता है

इत्याचनुतमिति ज्ञायते, बिहितव्याघातपुन्रक्तदोषाच हवने " उदिते होतव्यमनुदिते होतव्य-समयाध्यापिते होतन्यामितिबिधाय बिहितं ज्याहान्ति "इयावीऽस्याहुतिमभ्यवहरति य जिते जुहोति शवलोऽस्याहुतिमभ्यवहराति योऽनुदिते जुहोति श्यावशवली बाऽस्याहुतिमभ्यवह-रतो या समयाध्युषिते जुहोति" ब्याघाताचान्यतरन्मिथ्येति पुनरुक्तदोषाच अभ्याभे देश्यमाने 'त्रिः प्रथमामन्याह त्रिरुत्तमाम्' इति पुनरुक्तदोषो भवति, पुनरुक्तं च प्रमत्तवाक्यः मिति तसादममाणं शब्दो 'ऽनृतब्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः' इति । अत्र हि बात्स्यायनो हष्टार्थवाक्यसाम्येनादृष्टार्थे ''अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम'' इति वाक्येऽनृतत्वमतिदिशति इदं च ब्राह्मणवाक्यमिति पुष्कले ब्राह्मणं बेद इति । अथाद्यापि 'अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम' इति वाक्यंस्य प्रमाणाभावे न द्रढिमानमवेक्षे इत्याग्रहस्ते तदा परित्यन ब्राह्मणेषु द्वेषमपबार-यासदावेशम्। अवेहि च गौतमीये द्वितीयेऽध्याये षष्टितमेन ''वाक्यविभागस्य चार्थग्रहणा-त् " इत्युपक्रम्य ''विध्यर्थवादानुवादवचनविनियोगात् ' इत्येकषष्टितमेन ब्राह्मणवाक्यानि क्मिजे भगवान् गौतमः । अत्राह स्म बात्स्यायनः "त्रिधा खलु ब्राह्मणवाक्यानि भिन्नानि 'विनियुक्तानि' विधिवचनानि अर्थनादवचनान्यनुवादवचनानीति । तत्र विधिर्नियामकः यद्वाक्यं विधायकं चोदकं स विधिः विधिस्तु नियोगोऽनुज्ञा बा यथा "अग्निहोत्रं जुह्या-त्स्वर्गकाम " इति, ततश्च बात्स्यायनेन ब्राह्मणवाक्यविभागावसरे 'आग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्ग-काम' इत्येतस्य पदर्शनादिह बात्स्यायनब्याख्यानप्रणालिकया महर्षिगैतिमो 'ऽग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम ' इत्यादि ब्राह्मणं सूत्रस्थतत्पदेन जिघुक्षन् ब्राह्मणं तदेकदेशभागमभिमेने। तदेवं सर्विषंसमते ब्राह्मणानां वेदभावे प्रकृतेचाजानिके तथैव ब्यवहारे कृतमनल्पजल्पनेन। "ब्राह्मणग्रन्थेषु मनुष्याणां नामलेखपूर्वका लैकिका इतिहासाः सन्ति नचैवं मन्त्रभागे "॥

इति स एवं प्रतारकः। अत्र किं ब्राह्मणप्रन्थेषु लौकिकेतिहासदर्शनं तेषां प्रतारकः त्वावगमकम्रतापीरुषेयत्वभङ्गपयोजकमाहोस्विद।दिमत्त्वपयोजकम् १ नाद्यः। लोकिकेतिहास-द्रशनस्य ग्रन्थे प्रतारकनिर्मितत्वब्यभिचरितत्व त् नहि लोके सर्बोऽपीतिहासः प्रतारकैब्यर-चीत्यनुत्मत्तन्त्रेक्षेतापि।न द्वितीयः।यथा हि सृष्ट्यत्यत्त्यादिक्रमो बेदेऽसकृद्भिहितो बेदानां

इयादि ब्राह्मणभाग ही के अनेकवाक्यों को उदाहरण दिया है (जैसा कि बेददुर्गसज्जन में पूर्वीक पृष्ठ में कहा जा चुका है) इस से यह सिद्ध है कि ब्राह्मणभाग का बेद होना उक्त दोनों महाध्यों को संमत है। और जब कि यहां तक उक्त प्रकारों से यह दृढ सिद्ध हो चुका कि ब्राह्मणभाग का बेद होना सब ऋषियों को संमत है तब इसमें सन्देह ही नहीं रहा कि मन्त्रभाग के नाई ब्राह्मण-भाग की वेदसंज्ञा अनादि अर्थात् खाभाविक है।

भा० भू०-- जैसे ब्राह्मणप्रनथों में मनुष्यों के नामलेखपूर्वक लौकिकइतिहास हैं मन्त्र

भाग में "वैसे नहीं हैं"।

खं - क्या छौकिकइतिहास होने से यह सिद्ध होता है कि ब्राह्मणप्रन्थ किसी बश्चक क बनाये हैं ? (१) अथवा यह सिद्ध होता है कि पुरुषराचित हैं, (२) कि बा यही निश्चित होता है कि आधुनिक हैं ? (३) इन पक्षों में प्रथम पक्ष ठीक नहीं है क्योंकि यह कोई नियम नहीं है क जितने लोकिकइतिहास हैं सबी बन्च कों ही के रचित होते हैं। द्वितीय पक्ष भी ठीक नहीं है क्यों क जैस पूर्व में यह कहा जा चुका है कि बेद में अनेक खानों पर सृष्टि प्रलय आदि समाचारी

^{*} भावाभावनीधक ॥क्ययोरन्यतः स्य मिथ्यात्वमावश्यकामिति भावः ।

वौर्षयत्वं नापादयाति तथा छोकिकेतिहासोक्तिरापि, बेदानां सर्वविद्यास्थानतया छोकि-कानां पुंसां सौकर्याय तत्र भगवता प्रवेश्वरेण याज्ञवल्क्योशनोङ्गिरः प्रभृतिनामोपन्यासपुर-स्सरं ब्रह्मविद्यादिविद्यानाम् पदेशन्त्, यथा स्रष्टेरनन्तरं न सृष्टिप्रतिपादको बेदो ब्यराचि किन्तु सृष्टिरेवानादिप्रवाहसिद्धानां बेदानां समनन्तरमिति सृष्टिं बर्णयतोऽपि बेदस्य न सृष्टिकास्नानन्तरकालोत्पत्तिकत्वं तथा ब्राह्मणेष्वितिहासवर्णनेऽपि नैतिहासिकार्थोत्पत्ति-कालानन्तरकालोत्पत्तिकत्वमुपनिषदां ब्राह्मणानां च। न तृतीयः। आदिपतामृषीणां नाममात्र-दर्शनस्य ब्राह्मणेषु सादित्वशङ्काया अपयोजकत्वस्यासकृदाबेदितत्वात्।।

तथा ब्राह्मणप्रन्थानामेव पुराणितिहासादिनामास्ति, न ब्रह्मवैवर्त्तश्रीमद्भागवना-दीनांचिति निश्चीयते । किंच भोः ब्रह्मयइविधाने यत्र कचिद्राह्मणसूत्रप्रन्थेषु यद्राह्मणानी-तिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसी रित्यादिवचनानि दश्यन्ते एषां मूलपथ्वेवेदे ऽप्यस्ति । स बृहतीं दिशामनुब्यचलत् तिमितिहासश्च पुराणश्च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुब्य-चलन् । इतिहासस्य च वे सपुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च पियं धःम भवति य एवं वेद ॥ १॥ अथर्वकां ० १५ प्रपा० ३० अनुवा० १॥ अतो ब्राह्मणप्रन्थेभ्यो भिन्ना भागवतादयो ग्रन्था इतिहासादिसञ्ज्ञया कृतो न गृह्मन्ते । मैवं वाचि । एतैः प्रमाणेर्व्याह्मण-ग्रन्थानामेव ग्रहणं जायते न श्रीमद्भागवतादीनामिति कृतः, ब्राह्मणप्रन्थेष्वितिहासादीना-मन्तर्भावात् ॥

इत्यन्तग्रन्थेन कपटकाषायो यत्राह, तदिदन्तस्य शास्त्रानवबोधानिबन्धनविडम्बना-मात्रम् । बात्स्यायनभाष्यस्य प्रामाण्यमङ्गीकुर्वाणोऽसौ कथं ब्राह्मणग्रन्थानामितिहासपुराण-

के कथन से बेद का पुरुषरचित होना सिद्ध नहीं हो सकता वैसे ही लौकिकइतिहासों के कथन से भी, क्यों के बेद सब बिद्याओं का स्थान है इसी से सुगमता के अर्थ लौकिकआख्यायिकाओं की नाई याझबल्क्य उद्याना अङ्गिरा आदि कल्पितनामों ही के द्वारा ब्रह्मबिद्या आदि बिद्याओं का उपदेश बेद में है पूर्वोक्त रीति के अनुसार, जैसे बेद में सृष्टि के बर्णन होने पर भी इस दाका का अवसर नहीं होता कि सृष्टि के अनन्तर बेद, रचित हुआ, किंतु यही सिद्ध होता है कि अपने प्रवाह से अनादिसिद्ध बेदों ही के अनन्तर सृष्टियां हुई करती हैं, वैसे ही ब्राह्मणभाग में इतिहास के बर्णन होने पर भी इस आक्षेप का अवसर नहीं हो सकता कि ऐतिहासिकपदार्थों की उत्पत्ति के अनन्तर, ब्राह्मणभाग रचित हुआ, किन्तु यही निश्चित है कि एतिहासिकपदार्थों की उत्पत्ति ही अनादि ब्राह्मणभाग के अनन्तरकाल में होती है। ऐसे ही तृतीय प्रश्न भी कुछ नहीं है क्योंकि अनित्यऋषियों के नामोझेखमात्र से बेद के रचित होने की शंका का निवारण, पूर्वहीं अनेक वार हो चुका।

भा० भू०—"और इस हेतु से ब्राह्मणप्रन्थों का ही इतिहासादि नाम जानना चाहिये श्रीमद्भागवतादि का नहीं" यहां से "उन्हीं का इतिहासादि से प्रहण करना चाहिये अन्य का नहीं" यहां तक—

(१) जो पूर्वोक्त भाष्यभूमिका में कहा है उस से तो स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि उक्त साधु को शास्त्रों का परिचय ही नहीं है। क्यों कि जब वह बास्यायनभाष्य को प्रमाण मानता है

पदार्थताम्रुपगच्छेत्। तत्र हि 'प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणानां प्रामाण्यमभ्यनु-ज्ञायते । इति पाइ स्म बात्स्यायनः । यदि ब्राह्मणान्येवेतिहासाः पुराणंच तदा ब्राह्मणेन ब्राह्मणपामाण्यव्यवस्थापनमयुक्तं स्यात् । अपिच ब्राह्मणेष्वितिहासपुराणानामन्तर्भावे ' एविमे सर्वेवेदाविनिर्मितास्सकल्पास्सरहस्यास्सब्राह्मणास्सोपनिषत्कास्सोतिहासास्सान्वा-ख्यानास्सपुराणाः सस्वरास्ससंस्कारास्सनिरुक्तास्सानुशासनास्सानुमार्जनास्तवाकोवाक्या स्तेषां यज्ञमभिपद्यमानानां छिद्यते नामधेयं यज्ञ इत्येवमाचक्षते ॥ इति गोपथन्न।ह्मण-पूर्वभागे द्वितीयप्रपाठकस्थं ब्राह्मणं स्फुटमनमाणं स्यादिति तद्वाह्मणातिरिक्तामितिहासं पुराणं च प्रमापयति । एवं च 'पुराणामितिहासस्य बिशेष (१)णम्' इत्यप्यस्य कथनं प्रामादिकम्' तथासति पार्थक्यंन 'सेतिहासास्सपुर।णा' इति कथनासङ्गतेः। नहीतिहासपुराणयार-पार्थक्ये तथा कथनसंभव इति बिदुषामपरोक्षम् । किंच पुराणमित्येतस्येतिहासबिशेषणत्वे इतिहासः पुराणमिति लिङ्गब्यत्ययोऽपि न स्यात्।असति विशेषः नुशासने तस्यान्याय्यत्वात्। यत्तु तत्र देवासुराः संयत्ता आसन्नित्यादय इतिहासा प्राह्याः । सदेवसोम्येदमग्रभा-सीदेकमेवाद्वितीयम् । छान्दोग्योपनि० प्रपा० ६ आत्मा बा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्य-त्किंचि।न्मिषत् । इत्यैतरेयारण्यकोपनि० अ०१ खं०१ आपो ह वा इदमग्रे सिळलमेवास श॰ कां॰ ११ अ० १। इदं बाऽग्रे नैव किश्चिदासीत्। इत्यादीनि जगतः पूर्वावस्थाक-थनपूर्वकाणि वचनानि ब्राह्मणान्तर्गतान्येव पुराणानि ग्राह्याणि।।इति आहान।भेज्ञचश्रकः, तदिदमस्याप्यानिष्टसाधकम् तथासति "हिरण्यगर्भः समवर्ततात्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् सदाधार पृथिवीं द्यामुतेषां कसी देवाय हविषा विधेम "।। १।। ऋ० ७ अ० ७ व० ३ मं० ३ ॥ अहंमनुरभवंसूर्यश्चाहंकक्षीवाँ ऋषिरास्मि विप्रः। अहं कुत्समार्जुनेयं न्यूख्नेऽहं

और उस में बात्स्थायनमहर्षि ने यह स्पष्ट कहा है कि "इतिहास पुराणों का प्रमाण होना ब्राह्मण रूपी प्रमाण से सिद्ध है" और यह भाष्य उक्त साधु के कहे हुए प्रथमहेतु के खण्डन में भी दिखला दिया गया है तब यह कहने का अवसर कहां है कि "ब्राह्मणभाग ही की इतिहासादि संज्ञा है" क्योंकि तब तो ब्राह्मण ही से ब्राह्मण का प्रमाण होना कैसे सिद्ध हो सकता है ? इस लिये उक्त भाष्य असंगत ही हो जायगा।

- (२) गोपथ ब्रा० पहिलाभाग प्रपा० २ 'एविमिमे०' [ऐसे ही कल्प, रहस्य, ब्राह्मण, उपनिषद, इतिहास, अन्वाख्यान, पुराण, स्वर, संस्कार, निरुक्त, अनुशासन, अनुमार्जन, और वाको वाक्य (प्रश्लोत्तर) से सिहत सब बेद यज्ञ के उपयोग में जब आते हैं तब इन का, नाम छूट जाता है और यज्ञ ही के नाम से कहे जाते हैं] इस वाक्य में ब्राह्मण से पृथक इतिहास और पुराण कहें हुए हैं। यदि ब्राह्मण ही की इतिहासादि संज्ञा मानी जाय तो इस बेदवाक्य के बिरोध से गला कदापि नहीं छूट सकता।
- (३) यदि ऐतिहासिक अर्थ के प्रतिपादक होने से ब्राह्मणभाग की पुराण संज्ञा मानी जाय तो संहिताभाग भी पुराण कहला जायगा क्योंकि (हिरण्यगर्भस्समवर्त्तताप्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्०। अ१। ऋ०। ७। अ०। ७। व०। ३। मं। ३। (हिरण्यगर्भ पहिले होता

⁽१) किंच शुक्लयजुर्वेदीयशतपथबाह्मणे अश्वमेधप्रकरणे अष्टमेऽहिन इतिहासपाठः, नवमे च पुराणपाठस्तावः दिभिहितः, सोऽप्यसौ न सङ्गच्छेत यदीतिहासस्य पुरश्णमिति विशेषण स्थात्।

कृतिहशना पश्यता मा। अ०१ अ०३ अ०६ व०१६ । इत्यादिसंहिताभागस्याप्यैतिहासि-कार्थप्रतिपादकत्या पुराणत्वापत्तेः । निरुक्तसंहितामन्त्रे सृष्टिपूर्वकालीनार्थप्रतिपादनेन निरुक्तभवद्भिमेतेतिहासपदार्थताया अवर्जनीयत्वात् । किंच यदसां स्वचक्षुषी निमील्य जगदन्धं प्रपश्यति तदिप तस्य शशकस्वभाव ॥ मनुहरति । यदसौ वृते ।

"यसाद्वाह्मणानीति सञ्ज्ञी (१) पदिमितिहासादिस्तेषां सञ्ज्ञेति।तद्यथा। ब्राह्मणान्येवेति-हासान् जानीयात् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीश्रेति"।

तदिदमस्य हास्यास्पदमाभिधानांबिदुषां, किमप्येकं प्रमाणं प्रतिज्ञातार्थेऽनुपन्यस्य हठा-देव ब्राह्मणान्येवेतिह।साम् जानीयादिति वदन्कथं देवानांप्रियो हमनीयवचो न स्यात्। तथाच पतञ्जलिः प्रथमाहिके प्राह स्म "सप्तद्रीपा वसुमती त्रयो लोकाश्रत्वारो वेदास्मा-क्रास्सरहस्या बहुधा भिन्ना एकश्रतमध्वर्युशाखाः सहस्रवत्मी सामवेद एकविश्वतिधा बाह्यचं नवधाऽथर्वणो वेदो वाकोवाक्यमितिहासः पुराणं बैद्यकामित्येतावान् शब्दस्य प्रयोगिवषयः इति-अत्र पातञ्जले वाक्ये बैद्यकसाहचर्यादितिहासपुराणयोरिप स्मृतिह्नपयारेव ग्रहणस्य स्पष्टमवधारणादित्यलमनल्पजल्पनेन (२)।

यत्तु — अन्यद्प्यत्रप्रमाणमस्ति न्यायदर्शनभाष्ये "वाक्यबिभागस्य चार्थग्रहणात्" अ०२ आ०२ स्व०६० अस्योपरि बात्स्यायनभाष्यम् "प्रमाणं शब्दो यथा लोके

है और होते ही वह सबका एक खामी होता है) "अहं मनुरभवं सूर्य्यवाहं कक्षीवाँ ऋषिरिम विप्रः० अ० १। अ० ३। अ० ६। व० १६।" (में प्रथम, मनु होता हूं और सूर्य होता हूं तथा इस समय ब्राह्मण ऋषि हूं कक्षीवान मेरा नाम है) इलादि मन्त्रों में आदि सृष्टिसमय के इतिहास का बर्णन है।

(४) ब्याकरणमहाभाष्य १ आन्हिक में पत्छिलमहर्षि ने कहा है "सात द्वीपवाली पृथिवी, तीन लोक तथा अङ्ग और रहस्य से सहित चार बेद जिनके कि अनेक भेद हैं अर्थात् यजु- बेंद की १०१ सामबेद की १००० ऋग्बेद की २१ अथर्ब बेद की ९ शाखाएं हैं तथा वाकोवाक्य, (प्रश्लोत्तर) इतिहास, पुराण, और बैद्यक, शब्दों के प्रयोग करने का बिषय है" इस वाक्य में वाको-वाक्य और बैद्यक के साथ होने से यह स्पष्ट ही है कि इतिहास और पुराण स्मृतिह्म ही है न कि बेदह्म ।

भा० भू० ''ब्राह्मणप्रन्थों की इतिहास संज्ञा होने में और भी प्रमाण है" यहां से "मिध्या क्या बहुत सी लिखी हैं" यहां तक —

^{*} शशकस्यायं स्वभावो यत्स्वमारणायायान्तमश्वारूढं यङ्कमप्यवलोक्य तद्प्रतो धावनधावन् श्रान्तः पथ्यवस्थाय स्वनयने निमील्य जगदन्धं प्रपश्यति ।

⁽१) संज्ञि, इति वक्तव्ये दीवींकरणमब्युत्पन्नतामेव द्रढयंति।

⁽२) बात्स्यायनभाष्ये चतुर्थेऽध्यायं "समारापणादात्मन्यप्रतिषेधः " इतिसूत्रे प्रमाणेन खळ ब्राह्मणेनितिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते तेबा खल्वेतेऽथर्बाङ्गिरसएतदितिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यवदन् इतिहासपुराणं पञ्चमं
विदानां बेद इत्यादिना सप्रपञ्चं स्वच्छं ब्राह्मणब्यितिरिक्ततया पुराणेतिहासयोः प्रामाण्यं ब्यवस्थापितम् । अत्र बहु
किमस्मान्तं पुरान्तं वादी कथानर्हः । कथानियमानाभिज्ञत्वादल्पबुद्धित्वाच्च । इति कदाचित द्विरुक्तदुरुक्तादिकिमस्मान्तं सुधीभिः क्षन्तव्यम् ।

विभागश्च ब्राह्मणवाक्यानां त्रिविधः। अयमभिप्रायः। ब्राह्मणग्रन्थशब्दा लौकिका एव न वैदिकाः॥ इति।

इदमस्याभिधानं दुष्कृतितामस्यावगमयति तद्यथा "प्रमाणं शब्दो यथा लोके बिभा-गश्च ब्राह्मणवाक्यानां त्रिबिध" इति बात्स्यायनग्रन्थस्य यदसौ "अयमभिपायः ब्राह्मण-ग्रन्थशब्दा छोकिका एव न बैदिका " इत्यर्थमाचष्टे तदत्यन्तमसाधु, तादशार्थस्य बुबोधियः षायां बात्स्यायनः "प्रमाणशब्दो लोके विभागश्च ब्राह्मणवाक्यानां त्रिविध" इत्यकथि ष्यत् नतु "प्रमाणं शब्दो यथा लोके" इति साद्द्रयार्थयथापदघटितं, ब्रूते च तथेति लोके यथा शब्दः प्रमाणं तथा बेदेपीत्यध्याहार्यम् । बेदे ब्राह्मणरूपे ब्राह्मणसञ्ज्ञकानां वाक्यानां विभागसिविध इत्यर्थस्य तात्पर्यविषयत्वात्, सादृश्यस्य स्वनिरूपक्षतियोग्यनु योग्युभयसापेक्षतायाः सर्वानुभवसिद्धतया यथापदोषादानस्वारस्येनैव ताद्दशार्थस्य सुलभ-त्वात् । अतएवाग्रे अत्रेव प्रकरणे "बिधिबिहितस्यानुवचनमनुवाद " इति चतुःषष्टितमे सूत्रे न्यायदर्शने अ० २ आ० १ 'एवमन्यदप्युत्मेक्षणीय' मित्यन्तेन भाष्येण बैदिकवाक्यानि ब्राह्मणापरनामधेयान्युद।हरणभावेन प्रदर्भ 'लोकेऽपि च विधिरर्थवादो ऽजुवाद इति च त्रिविधं वाक्यम् । ओदनं पचेदिति विधिवाक्यम् । अर्थवादवाक्यमायुर्वचीवलं सुखं मित-भानं चाने प्रतिष्ठितम्। अनुवादः। पचतु पचतु भवानित्यभ्यासः।क्षिपं पच्यतापिति बा अह-पच्यतामित्यध्येषणार्थम् । पच्यतामेवेति वा ऽवधारणार्थम् । यथा छौकिके वाक्ये विभागे-नार्थग्रहणात् प्रमाणत्वमेवं बेदवाक्यानामपि बिभागेनार्थग्रहणात् प्रमाणत्वं भवितुमईतीति' बात्स्यायनेन इहैव प्रकरणेऽस्मदुक्तार्थस्य वादिनो ऽत्यन्तप्रतिक्लस्य स्फुटमभिधानात्। तस्मात् द्वितीयाध्याये प्रथमाहिके 'वाक्यविभागस्य चार्थग्रहणा' दिति षष्टितमसूत्रमारभ्य चतुःषष्टितमसूत्रपर्यन्तसुपक्रमोपसंहाराभ्यासादिना ब्राह्मणानां बेदभावे सुन्यक्ते स्वीयदोषेण ब्राह्मणेषु शङ्कमानः कथन शङ्कनीयः। यतु 'न चत्वार्ध्येव प्रमाणानि किन्ति ऐतिहामः र्थापत्तिः सम्भवोऽभाव इत्येतान्यपि प्रमाणानि इतिहोचुरित्यनिर्दिष्टपवक्तृकं प्रवादपारम्पः र्यमैतिह्यम्' इति बात्स्यायनीयम्पन्यस्य-

अनेन प्रमाणेनापीतिहासादिनामभित्रीह्मान्येव गृह्यन्ते नान्यत्"। इत्यर्थकथनं, तत्तु शुक्कमस्थि लिहानस्य स्वीयतालुबिनिर्घर्षणजासक्पानिर्तस्य शुनोबृत्तपनुहरतीति न किश्चिदिह वक्तुमुचितम्॥

॥ भाषा ॥ जो बात्स्यायनभाष्य का तात्पर्य छे कर गीत गाया है उस के विषय में कुछ कह्ना तहीं है क्योंकि उस में किसी प्रमाण का उपन्यास ही नहीं है।

भा० भू० " ब्राह्मणप्रन्थों की बेदों में गणना नहीं हो सकती " यहां से " ब्राह्मणप्रन्थें माठ भूठ " ब्राह्मणप्रन्थों की बेदों में गणना नहीं हो सकती " यहां से " ब्राह्मणप्रन्थें महीं" यहां तक जो कहा गया है वह भी अज्ञान ही का प्रभाव है-

(१)-क्योंकि यहां अनुमान का यही भाकार होगा कि बेदवाक्यों की पकड़ कर हैं। का ब्याख्यानक्रपी होने से ब्राह्मणभाग बेद नहीं है, और इसका खण्डन दितीयहेतु के खण्डत में पूर्व हीं हो चुका है। यदिष । अन्यच ब्राह्मणानि तु बेदब्याख्यानान्येव सन्ति नैव वेदाख्यानीति । कुतः । (इषेत्वोर्ज्जेत्वेति ' शतप्ये काण्डे १ अध्या० ७ इत्यादीनि मन्त्रमतीकानि * धृत्वा ब्राह्मणेषु वेदानां ब्याख्यानकरणात् ।।

इत्याह कश्चिदिन्द्रियारामः, तद्य्यनवबोधिबजृम्भितम् । अत्र हि ब्राह्मणानि न बेदाः बेदवाक्यधारणपूर्वकवेदव्याख्यानस्वर्वत्वत् इत्यादिन्यायाकारः। अत्र हि स्मर्ध्यमाणकर्तृकत्वं रागवरपुरुषकर्तृकत्वं चोपाधिरित्येतद्गुमानं पूर्वोक्तरीत्या ऽपाकरणीयमिति न किश्चिदेतत् । किश्च व्याख्यातव्यव्याख्यान के योनैकपदवाच्यत्वमिति व्याप्तिनं सम्भवति 'पश्वादिभिश्चिबिशेषात् ' इति भाष्यस्य स्वेनैव शङ्कराचार्येण भाष्यपदव्यपदेश्यविपुलव्याख्यानकरणात् । भाष्ये हि स्वपदानि सर्वत्र स्वपदैरेवव्याख्यायन्ते, अतप्व 'अथ शब्दानुशासन' मिति पातझलेपि, अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थं इत्यादिव्याख्यानम् । नाष्यनेककर्तृकत्वं व्याख्याक्वयाख्याख्याचयोरिति व्याप्तिर्यनेश्वरपणीतत्वाभाव आशङ्कयेत । ब्राह्मणेषु, पूर्वोक्तस्थलयो (१) रेवानेककर्तृकत्वस्य व्याख्यानव्याख्येयभावव्यभिचारित्वदर्श्वनात् । नच भाष्यादिग्रन्थे ग्रन्यान्तरस्थबुद्ध्यादिपदानां व्याख्यानं नाष्टाध्याय्यादिपदवाच्यमेविमहापि संहितास्थपद-व्याख्यानरूप्वेत्रिश्चिद्याच्यास्यपदव्यवद्यास्यास्यपद्वयाख्यानरूप्वेतितशङ्कचम् । ब्राह्मणेषु संहितापदव्यवद्यादिपदानां व्याख्यानप्यविष्टत्यास्य त्वाच्या विष्टाचित्रस्य व्याख्याद्यास्यपदव्यवद्यास्यास्यपद्वयाद्यास्यव्यवद्यास्यास्याक्यपद्वयाद्याद्यास्यास्यपद्वयवद्यास्यास्यपद्वयवद्यास्यास्यपद्वयवद्याद्यस्य स्यास्यपद्वयवद्यास्यस्य वाच्याद्याद्याद्यस्य स्यास्याद्यस्य स्यास्यपद्वयाद्याद्यस्य वाच्याद्यस्य वाच्याद्यस्य स्यास्यपद्वयवद्यस्य स्यास्यपद्वयाद्यस्य । नच तावता वेदास्रायपद्वयवद्यद्यस्य

(२)—यह कोई नियम नहीं है कि एक पद का अर्थ एक ही पद से किया जाय क्यों कि भाष्यों में भाष्यकार छोग अपने कहे हुए एक पद बा वाक्य को बड़े बिस्तर के साथ अनेक वाक्यों से ब्याख्यान करते हैं और भाष्यों का छक्षण भी यही है कि "जिस प्रन्थ में प्रन्थकार अपने पदों का स्वयं ब्याख्यान करता है वहीं प्रन्थ भाष्य कहछाता है" इस रीति के अनुसार शारीरिकमाष्य के खपोद्धातप्रन्थ में स्वामी शङ्कराचार्य ने 'पश्चादिभिश्चाबिशेषात्' इस अपने भाष्यवाक्य का बहुत बिस्तर से ब्याख्यान किया है और ब्याकरणमहाभाष्य के १ आन्हिक में 'अथ शब्दानुशासनम्' इस अपने भाष्यवाक्य को पत्यक्जिलमहार्ष ने अपने अनेक वाक्यों से ब्याख्यान किया ऐसे हीं बिषय में अन्यान्य भाष्यों के भी अनेक उदाहरण हैं। और वे जैसे छोटे और उनके बृहद्-ब्याख्यान, दोनों भाष्य ही हैं वैसे ही मन्त्रभाग और उसका ब्याख्यान, ये दोनों बेद हैं, निदानमन्त्र को पकड़ कर ब्याख्यानरूपी होने के कारण, ब्राह्मणभाग के बेद होने में कोई बिरोध नहीं है। तथा इसी से यह भी नियम नहीं है कि जिस वाक्य का ब्याख्यान किया जाता है वह वाक्य अन्यकृत और उसका ब्याख्यान किया जाता है वह वाक्य अन्यकृत और उसका ब्याख्यान किया जाता है वह वाक्य अन्यकृत और उसका ब्याख्यान हिया जाता है।

^{*} प्रताकानिति वक्तव्ये नपुंसकोक्तिर्वक्तुवैंदुष्यनापुंसक्यं सूचयति ।

[ी] प्रकृते व्याख्यातव्यानां मन्त्राणां व्याख्यानभूतानां ब्राह्मणानां न बेदपदवाचकत्विमिखेव ते तात्पर्ध्यं भवेत् तत्तु युक्तया निराकृतं । शास्त्राणामिपचाऽत्रार्थे परं प्रातिकृत्यम् । अथाह मनुः षष्ठेऽध्याये रुठो० ३९ । एताश्चान्याश्च सेवेत् दिक्षा बिप्रो वने वसन् । अबिबिधाश्चीयनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः "। अत्रीपिनषदां श्रुतिपदेन। ऽभिधानादुर्पानषदां च ब्राह्मणान्तर्गतत्या तद्भिन्नाऽभिन्नस्य तद्भिन्नत्विमातिन्यायेन भवितव्य ब्राह्मणरीप बेदैरेव ।

⁽१) पत्रजलिशङ्कराचार्याभ्यां निजपदानां स्वयमेव ब्याख्यातस्वीत्।

व्याहातिप्रसङ्गः, ब्राह्मणानि संहितापदाब्यवहार्याण्यपि बेदाम्त्रायपद्व्यवहार्याणीलस्य वास्मानिरप्यङ्गीकारात्। नच "इषेत्वोर्ज्ञेत्वे " त्यादिप्रतीकम्रपादाय ब्राह्मणेषु व्याख्यान दर्शनात् स्फुटन्तेषान्तदनन्तकालिकत्विमिति कथं ब्राह्मणानां बेदभाव इति वाच्यम्। क्रिमिकेषु संहितामन्त्रेष्विपि पृवीत्तरभावस्यावर्जनीयतया बेदत्वव्यवस्थितौ पृवीत्तरभावस्याक्रिनीयतया बेदत्वव्यवस्थितौ पृवीत्तरभावस्याक्रिनीयत्वा वेदत्वव्यवस्थितौ पृवीत्तरभावस्याक्रिनीयत्वा । अथ यथा ब्राह्मणेषु संहितामन्त्रोल्लेखः, न तथा संहितास्विति संहितास्व वश्यं बैचित्र्यमङ्गीकरणीयमिति मा शिक्कष्ठाः । व्याख्यातव्यव्याख्यानभावरूपवैचित्र्यस्य संहिताब्राह्मणयोर्मयाप्यङ्गीकरणीयत्वात् । नहि अष्टाध्यायीस्थपद्वयाख्यानस्य महाभाष्ये दर्शनवद्याख्यायां महाभाष्यस्थपदादर्शनाद्याद्यायी व्याकरणतां जह्यादिति शक्कोदिति मेशावतः, ततथ संहिताब्राह्मणयोः समानेऽपि बेदभावे, संहितास्थपदानां ब्राह्मणेषु व्याख्यानेऽपि ब्राह्मणस्थपदानां संहितायां व्याख्याया अदर्शनं संहितानां वेदभावे

प्र०— जैसे पाणिनिसूत्र आदि रूपी अष्टाध्यायी आदि के भाष्यादिरूपी ब्याख्यान अष्टाध्यायी आदि पदों से नहीं कहे जाते वैसे ही संहिता के पदों के ब्याख्यानरूपी ब्राह्मणभाग ही संहितापद से नहीं कहे जायेंगे इस आक्षेप का क्या समाधान है ?

उ०-यह तो सनातनधर्मी को इष्ट ही है।

प्र०—यदि 'इषेत्वा' आदि के प्रतीकों को रख कर ब्राह्मणभाग में व्याख्यान देखा जाता है तब इतना तो स्पष्ट ही है कि मन्त्रभाग मूल और ब्राह्मणभाग उसकी टीका है तथा इसी के साथ यह भी अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि संहिता के उत्तरकाल ही में ब्राह्मणभाग की उत्पत्ति हुई और ऐसी दशा में ऐसे आधुनिक ब्राह्मणभाग को कैसे कोई बेद कह सकता है ?

उ०--वाह क्या बिढ़ याँ प्रश्न है क्यों कि इससे एक अन्य प्रश्न भी उत्थित होता है कि संहिताओं में प्रथममन्त्र के उत्तर सब अन्यान्य मन्त्रों के पाठ देखन से यह निश्चित होता है कि प्रथममन्त्र के उत्तरकाल ही में अन्य सब मन्त्रों की उत्पत्ति हुई तो ऐसी दशा में ऐसे २ आधुनिक मन्त्रों (प्रथममन्त्र से अन्य) को कैसे कोई बंद कह सकता है १ और इस प्रश्न का यदि यह उत्तर दिया जाय कि 'आगे पोछे पाठ मात्र से पूर्वकाल और उत्तरकाल में उत्पत्ति नहीं निकल सकती' तो इसी उत्तर से पूर्वोक्त बिढ़यां प्रश्न भी शांत ही हो जाता है।

प्र० — जैसे ब्राह्मणभाग में संहिता के मन्त्रों का उद्घेख है वैसे ही संहिताओं में व्याख्यात करने के छिये मन्त्रों का उद्घेख नहीं है इससे ब्राह्मणभाग की अपेक्षा संहिताओं में बिचित्रता क्यों न मानी जाय।

उ०-यह कौन कहता है कि उक्तिबिचत्रता स्वीकार न की जाय ? क्यों कि इस बिचित्रता को सनातनधर्मी भी स्वीकार करेगा कि संहिता, ब्याख्येय और ब्राह्मणभाग ब्याख्यान है। पर्त्य इस बिचित्रता से उक्तभूमिकाधारी को कुछ भी लाभ नहीं हो सकता क्यों कि अष्टाध्यायी के पर्ते का ब्याख्यान जैसे महाभाष्य में है वसे अष्टाध्यायी में महाभाष्य के पद नहीं हैं, इतने मात्र से किसी बुद्धिमान का यह ध्यान नहीं हो सकता कि अष्टाध्यायी, ब्याकरण ही नहीं है, निदान—जैसे संहिती और ब्राह्मण के बेद होने से तुल्य होने पर, संहिता के पदों का ब्राह्मणों में ब्याख्यान देखने के साथ संहिता में ब्राह्मण के पदों का ब्याख्यान देखने के साथ संहिता में ब्राह्मण के पदों का ब्याख्यान न देखना, संहिता के बेद होने में उदासीन है अर्थात कारण

ग्रथोदासीन भेवं संहितास्थपदानां ब्राह्मणेषु ब्याख्यानदर्शनमप्युदासीनमेवेति न ब्याख्यातव्य इयाख्यानभावो बेद्बाह्मणयोरन्यतरस्याप्यबेदत्वमापादयतीति त्रैवर्णिकसर्वस्वेऽस्मद्गुरवो निराकृतैकोत्तरशतावैदिकमताः सत्यसरस्वतीब्यपदेशयोग्याः श्री ७ रामिश्रशास्त्रिणः ॥

इतरथा तु ब्राह्मणानां संहिताब्याख्यानरूपतया यथा तेषामवेदत्वं तथा मयाऽपि संहितानां ब्राह्मणब्याख्यानरूपत्वब्यभिचारितया तामामेवाबेदत्वं साधियष्यते नहि व्या-ख्यानरूपत्वमेवाबेदत्वसाधकं, नतु ब्याख्यातव्यत्वमितिबिनिगन्तुंशक्यम् । ब्याख्यातव्य-ब्याख्यानभावस्य लौकिकग्रन्थसाधारणत्वात्। नच ब्राह्मणानि न बेदा बेदब्याख्यान-त्वान्माधवीयग्र्वेद्ब्याख्यानवदिति शङ्क्यम्। ब्राह्मणानि बेदा अपौरुषेयवाक्यत्वात् सह-स्रशीर्षेतिवाक्यवादित्यादिहेतुशतद्वारा तस्य सत्प्रतिपक्षित्वात् । तस्मात्पूर्वोक्तरीत्या सर्विष-संमते संहिताब्राह्मणयोर्बेदभावे ब्राह्मणानि न बेदा स्तझाल्यानरूपत्वादिति पूतिकूष्मा-ण्डायितं हेतुमुपन्यस्य विवदमानो विमतिः केनोपमेय इति न जानीमः ॥

यतु अन्यच महाभाष्ये, केषां शब्दानां लौकिकानां वैदिकानां च तत्र लौकिका-

नहीं है, वैसे ही ब्राह्मणभाग में संहिता के पदों का ब्याख्यान देखना भी संहिता के बेद होने में कारण नहीं हो सकता। निचोड़ यह है कि ब्याख्येयरूपी होना बा ब्याख्यानरूपी होना मन्त्र और ब्राह्मण में से किसी के बेद होने में बिरांधी नहीं है। और यदि ऐसा न माना जाय तो अन्य पुरुष भी नि:सन्देह यह कह सकता है कि ब्याख्येयरूपी होने से मन्त्रभाग ही नहीं बेद है और ब्याख्यानरूपी होने से ब्राह्मणभाग ही बेद है, क्योंकि यह किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं हो चुका है कि बेद वहीं कहलाता है जो कि ब्याख्येयरूपी ही हो अथवा ब्याख्यानरूपी ही जो हो वही बेद कहलाता है।

प्र०-यह अनुमान क्यों न किया जाय कि जो प्रन्थ बेद्ब्याख्यानरूपी होता है वह बेद नहीं है जैसे ऋक् मंहिता का भाष्य, और ब्राह्मणभाग भी बेद्ब्याख्यानरूपी है इसीसे वह बेद नहीं है ?

उ०--यह भी अनुमान क्यों न किया जाय ? कि जो अपीरुषेय वाक्य है वह बेद है जैसे 'सहस्रशीर्षापुरुषः' इस दि वाक्य, और ब्राह्मण अपौरुषय वाक्य हैं इस से वे बेद हैं।

प्रo .— जब दोनों अनुमान अन्योन्य में बिरुद्ध हैं तब कैस निर्णय हो सकता है ?

उ० - हम अभी यह नहीं सिद्ध करते हैं कि ब्राह्मणभाग बेद हैं किन्तु ब्राह्मणभाग के बेद न होने में भूमिकाधारी के ओर से जो प्रमाण दिया गया है उनका खण्डनमात्र हम करते हैं सो हमारा उद्देश्य इतने ही से सिद्ध होता है कि हमारे अनुमान के साथ बिरोध होने से भूमिका-धारी का अनुमान सन्देहपंक में निमम्न हो कर नष्ट हो गया। और यदि इसी समय उक्त अनुमानों में कोई यह निश्चय किया चाहै कि कौन ठीक है ? तो वह भी हो सकता है क्योंकि ब्याख्यानरूपी होने से बेद न होना अनेक युक्तियों से अनन्तर ही खण्डित हो चुका है और अपौरुषयवाक्य का बेद होना दोनों वादियों को स्वीकार ही है तथा ब्राह्मणभाग का अपीरुषय होना भी पूर्व में सिद्ध हीं हो चुका है तो ऐसी दशा में यह निर्णय बहुत ही सुलभ है कि हमारा ही अनुमान निर्देश है और सूमिकाधारी का अनुमान सिंड्यल कोहड़ के नाई दुर्गन्धी है।

भा०भू०—" ब्राह्मणझन्थों में बंद सङ्ज्ञा नहीं होने में ज्याकरणमहाभाष्य का भी

स्तानत् "गौरणः पुरुषो हस्ती शकुनिर्मृगो ब्राह्मण" इति, वैदिकाः खल्वपि "शको दे वीरभिष्टये। इषे त्वोर्ज्जे त्वा। अग्निमीले पुरोहितम्। अग्न आयाहि बीतय ' इति। यहि ब्राह्मणग्रन्थानामपि बेद्सङ्ज्ञाऽभीष्टाभूत्तर्हि तेषामप्युदाहरणमदात्। अतएव महाभाष्यकारेण मन्त्रभागस्यैव बेदसञ्ज्ञां मत्वा पथममन्त्रपतीकानि बैदिकेषु शब्देषूदाहृतानि ॥

इत्याह मुण्डी, तत्तु तस्य व्यामोहमात्रम् । नहि भाष्यकारेण वैदिकोदाहरणत्या ब्राह्मणवाक्यानि न धृतानीत्येतावता तेषामबेदत्वसिद्धिः। इतरथा संहितास्थानामपीतरे-षामनिर्दिष्टवाक्यानां वेदत्वानुपपत्तेः । नच संहितास्वादिममन्त्रधारण।त्तद्घटितानां तासां साकरयेन बेदत्वसिद्धिक्रीह्मणेषु तु कस्यापि वाक्यस्यानुपन्यासात्कथपिव तेषां बेदत्वसि-दिरिति शङ्कयम् । सर्वस्यापि ब्राह्मणस्य तत्तत्संहितोत्तरभागात्यकतया संहितामन्त्रधार-णेन, बिशिष्टायाः सबाह्मणीपनिषत्कायाः संहितायाः प्रदर्शनस्य सिद्धत्वात् । नच तथासित ब्राह्मणेषु संहितामन्त्रादिब्यवहार्यत्वप्रसङ्गः, बेदपदब्यवहार्यत्वस्य तदुभयसाधारण्येषि मामाणिकानां संहितादिपद्ब्यवहार्यत्वस्य भागविशेषे एव प्रसिद्धेः। शक्तेः प्रामाणिकब्य-वहारैकसमधिगम्यत्वात् नह्यष्टाध्यायी ज्याकरणमिति स्त्रीमत्ययाः ''तद्धिता '' इति ज्यप-

॥ भाषा ॥

प्रमाण हैबेद सञ्ज्ञा नहीं हो सकती"

खं --- यदि भाष्यकार ने वैदिकशब्दों के उदाहरण में ब्राह्मणवाक्य नहीं दिखलाया तो इतने से यह नहीं सिद्ध हो सकता कि ब्राह्मणभाग बेद नहीं है क्योंकि यदि ऐसा माना जाय तो भाष्यकार के उदाहरण दिये हुए चार मन्त्रों से अन्य, सब मन्त्र बेद नहीं कहलावैंगे।

स --अब संहिताओं के प्रथम २ मन्त्रों की भाष्यकार ने उदाहरण में दिया है तो अवश्य उस से यह सिद्ध होता है कि पूर्ण संहिताभाग बेद है और ब्राह्मणभाग का तो एक वाक्य भी उदाहरण में भाष्यकार ने नहीं दिया इस से यह सिद्ध होता है कि ब्राह्मणभाग बेद नहीं है।

खं - (१) बेद के प्रत्येक शाखा में प्रथम, संहिताभाग और द्वितीय, ब्राह्मणभाग है (जैसा कि वेददुर्गसज्जन के वेदविभागप्रकरण से इस प्रन्थ अर्थात् सनातनधर्मोद्धार में पूर्व ही प्रतिपादन हो चुका है) तो ऐसी दशा में अब एक शाखा के प्रथममन्त्र को भाष्यकार ने प्रतीक के नाई उदाहरण में दिया है तो यह स्पष्ट है कि यह पूर्ण शाखा (संहिता और ब्राह्मणभाग) बैदिक शब्दों के उदाहरण में आ गई इस कारण उस उदाहरण से भी यही सिद्ध होता है कि ब्राह्मणभाग, बेद है और भूमिकाधारी अपने अज्ञान ही से उछटे उस उदाहरण से यह निकाछता है कि ब्राह्मण-भाग बेद नहीं है।

प्र० - यदि संहिता और ब्राह्मण दोनों मिल कर एक शाखा पूर्ण होती है तो ब्राह्मणभाग

भी संहिताशब्द से क्यों नहीं कहा जाता ?

उ०--प्रसिद्ध है। के एक प्रनथ में जब अनेक प्रकरण रहते हैं तब उन प्रकरणों के नाम भी पृथक् २ होते ही हैं जैसे अष्टाध्यायीरूप एक ब्याकरणप्रनथ में स्त्रीप्रत्यय, कारक और तर्दित आदि भिन्न २ नाम वाले अनेक प्रकरण हैं और उन में, एक प्रन्थ में स्थित होने के कारण वह शङ्का कोई नहीं कर सकता कि स्नीप्रत्यय कयों नहीं तिद्धित कहे जाते, ? क्योंकि प्रकरणों का किसी वस्तु का नाम, प्रामाणिकपुरुषों के ब्यवहार ही के अधीन होता है ऐसे ही 'संहिता' नाम, मन्त्रभाग दिश्यन्ते, तदिता बा "स्तीमत्यया" इति यंच स माह पुण्यपुरुषः।

किन्तु यानि गौरश्व इत्यादीनि छौकिकोदाहरणानि दत्तानि तानि ब्राह्मणादिग्र-च्येब्वेव घटन्ते कुतः तेष्वीदशशब्दपाठब्यवहारदर्शनात्।।

इति, सोऽस्य महामोहः । शुक्रयजुःसंहितायां चतुर्विश्वित्तमेऽध्याये " उक्ताः सश्चरा हति, सोऽस्य महामोहः । शुक्रयजुःसंहितायां चतुर्विश्वित्तमेऽध्याये " उक्ताः सश्चरा हताः शुनासीरीयाः " इत्यादिसंहित।स्विष पश्चनां पित्तणाश्च नामोत्कीर्तनस्यासकृदर्शनात् । तद्यथा। सर्प - मृग व्याघ - सिंह - मृषक - कशं - मकुल - न्यङ्क - पृषत - कुलुङ्गर्थ - रुरु - पृष्तत - गारमृग - मिहप - गवयोष्ट - प्रुषि - भृङ्क - मेष - मर्कट - मृत्रय - राजरोहिदृष्य - कृति - किट - नीलङ्क - मयूर - हलिक्षण - दृषदंश - रक्त - सर्पाज - शकुन्ति शृगाल - पिद्ध - कृत्रकृट - चक्रवाक - सेधादृक - हित्त - कक्तर - शिशुपार - मकर - मत्रय - मण्ड्क - मेकी - कृत्रीपय - नक्त - पृदाकलज - प्रव - कृर्म - गोधा - कश्चर्श - मान्थालाजगर - शका - वार्धी - णस - स्मर - खद्ग - कृष्णश्चा - कर्णगर्दभ - तरश्च - श्चर्कर - कुक्लासादीनाम्परः शताना- म्पश्चातीयानाम्, मशक - करण्डाद्यीक - किपञ्चल - कलिङ्क - तित्तिरि - हंस - वलाका - मृत्रु - चक्रवाक - कुक्कुटोल्क - चाष - मयूर - करोत - लावक - कौलीक - गोषादी - कृलाका - पार्व्य - पारावत - सीचापू - जत्वहोरात्रदात्यु - कालकण्ठ - सुपर्णवित्तिका - किप्रवेच - वक्त - धुक्षा - कलविङ्क - पुष्करसादी - वलाका - शार्क - स्वय - श्वराण्डक

शायीती - वाहस – दार्विदा – दार्वीघाट – सुषिलीका – जहका – कोकिला - कुण्हुणाची गोल-

तिका-पिष्पकादीनां परःशतानाम्पक्षिणाश्चं संहितास्वाम्नानात्। तदयम्प्रतारकः स्वतन्त्र इति॥

ही का है क्योंकि वैसा ही इयवहार प्रामाणिकपुरुषों का चला आता है।

खं - (२) भाष्यकार ने जो छोकिक शब्दों के उदाहरण में गौ, अश्व, शकुनि, (पक्षी) मृग आदि शब्दों को दिया उस से जो भूमिकाधारी ने यह सिद्ध किया है कि 'ऐसे २ पशु और पक्षी के वाचक शब्द बाह्मणभाग ही में हाते हैं इस से यह सिद्ध होता है कि बाह्मणभाग छोकिक ही है न कि बैदिक,' यह भी मिध्या ही है क्यों कि संहिता में भी पशुओं और पक्षियों के बहुत से नाम आते हैं जैसे शुक्र्यजुसंहिता अध्याय २४ आदि में, सर्प, मृग, ब्याघ, सिंह, मूषक, कश, नकुल, न्यङ्कु, पृषत, कुलुङ्गव्यं, रुरु, परश्वत्, गौरमृग, महिष, गवय, उद्र, प्लुषि, भूङ्ग, भेष, मर्कट, मनुष्य, राजरोहिद्यष्य, क्रिमि, कीट, नीलङ्कु, मयूर, हलिक्ष्ण, वृषदंश, रक्त, सर्पान, शकुनित, शृंगाळ, पिंद्व, कुक्कुट, चक्रवाक, सेधावृक, हस्ति, ककर, शिशुमार, मकर, मस्य मण्डूक, भेकी, कुळीपय, नक, प्रदाकलज, प्रव, कूर्म, गोधा, कशर्क्ष, मान्थालाजगर, शका, वार्धीणस, समर, लक्ष, कृष्णिया, कर्णगर्दभ, तरश्च, शूकर, आदि पशुओं के सैकड़ों नाम, तथा मशक, करण्डाटवीक, किपिंजल, कलिक्क, तित्तिरि, हंस, बलाका, कुन्च, मद्गु, चक्रवाक, कुक्कुट, उल्लक, चाप मयूर, कपीत, लावक, कौलिक, गोषादी, कुलाका, पारुव्ण, पारावत, सीचापू, जलहोरात्रदात्यूह, कालकण्ठ, युपर्णवित्तिका, क्षिप्रदयेन, वक, धुंक्षा, कलविद्ध, पुंकरसादी, वलाका, शार्क्क, सृजय, शयाण्डक, शायाती, वाहस, दार्विदा, दार्वाघाट, कुषिछीका, जहका, कोकिला, कुण्डूणाची, गोलितका, पिप्पका, जीदि पश्चियों के सैकड़ों नाम आते हैं। तो ऐसी दशा में संहिताभाग भी भूमिकाधारी के कथना-उसार छौकिक ही है न कि बैदिक, और अब बैदिकमांग भूमिकाधारीमहाशय के पेट ही में कोई

यब "दितीयाबाह्मणे "१। अ० २ पा० है सू० ६० " चतुर्ध्यर्थे बहुलं छन्दासि" २। अ०२ पा० ३ सू० ६२। "पुराणमोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु" ३। अ०४ पा० ३ स० १०५ इत्यष्टाध्यायीस्त्राणि । अत्रापि पाणिन्याचार्यैर्वेदबाह्मणयोर्भेदेनैव प्रतिपादितम् तद्यथा। पुराणै:प्राचीनैबिह्याद्युषिभिः प्रोक्ता ब्राह्मणकल्पप्रन्था बेद्ब्याख्यानाः सन्ति । अत-एवैतेषां पुराणेतिहाससञ्ज्ञा कृताऽस्ति । यद्यत्र छन्दोब्राह्मणयोर्वेदसञ्ज्ञाऽभीष्टा भवेत्तिहै चतुर्थ्यथे बहुलं छन्दसीति छन्दोग्रहणं ब्यर्थे स्यात् । द्वितीयात्राह्मणेति † ब्राह्मणग्रन्थस्य पकुतत्वात्। अतो बिज्ञायते न ब्राह्मणूत्रन्थानां बेदसञ्ज्ञाऽस्तीति ॥ इति, तदिद्यनाकित-ब्याकरणतत्त्वस्य तस्यात्यन्तमतत्त्वार्थाभिधानम् । तथाहि । "द्वितीया ब्राह्मणे ' ।२।३।६०। ब्राह्मणिबषये प्रयोगे ब्यबहृपाणिसमानार्थस्य दीव्यतेः कम्मीणि द्वितीया बिभक्तिभवति। ' गामस्य तद्दः सभायां दीव्येयुः" अत्र शतस्य दीव्यतीत्यादिवत् ''दिवस्तदर्थस्य" २।३।५८। इति सूत्रेण गोरस्येति षष्ठीप्राप्तौ गामस्येति द्विनीया बिधीयते । अत्र ब्राह्मणरू-पचेदैकदेशे एव दितीयेष्टा, नतु मन्त्रब्राह्मणात्मके श्रुतिच्छन्दआस्नायनिगमबेदपद्ब्यपदेश्ये सर्वत्रीत युक्तमुत्तरसूत्रे "चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि" २।३।६२। इति मन्त्रवाह्मणरूपे छन्दो-मात्रे विषये चतुर्ध्यर्थे षष्ठीविधानम् । "पुरुषमृगश्चन्द्रमसः" "पुरुषमृगश्चनद्रमसे" अत्र हि छन्दसीत्यभिधानेनाचार्यः सञ्जिष्टक्षति मन्त्रबाह्मणरूपं सकलमेव बेदमिति तदभिषयन्ने बोदाजहार "या खर्बेण पिवति तस्यै खर्बी जायते । तिस्रो रात्रीरिति । तस्या इति प्राप्ते। यां मछवद्वाससं सम्भवन्ति यस्ततो जायते सोऽभिश्वस्तो, यामरण्ये तस्यै स्तेनो, यां पराचीं तस्यै हीतमुख्यपगरभो, या स्नाति तस्या अप्सुमारुको, याऽभ्यंक्ते तस्यै दुश्चम्मी, या प्रिखते तस्यै खल्लातरपमारी, यांऽङ्क्ते तस्यै काणो, या दतोधावते तस्यै श्याबद्दन् , या नखानि निक्रन्तते तस्यै कुनखी, या कुणित्त तस्यै झीवो, या रञ्जुं स्वजित तस्या उद्धनधुको, या पर्णेन पिवति तस्या उन्मादुको जायते अहल्यायै जारमनाय्यै तन्तुः " इति बहुना ब्राह्मणं भाष्य-कारः। इति फल्डेवीशष्ट्यसत्त्वेन ब्राह्मणस्य छन्दोरूपत्वे ब्याकरणभाष्यकृतां संवादसद्रा-वाच पकुतसूत्रे छन्दोग्रहणबैयर्थ्यमभिद्धानः कथं न '' खच्छन्द '' इति विक्नेशभिक्नेयः।

होगा यही निश्चय उनके कथनानुसार होता है।

भा०भू० — "द्वितीया ब्राह्मणे"...काम चल जाता।
खं० — इस कथन से तो यही निश्चित है कि भूमिकाकार जी ब्याकरण का भी तत्त्व
नहीं जानते अन्य शास्त्रों की तो चर्चा ही क्या है। क्योंकि—

(१)—'ब्राह्मण' शब्द का संपूर्ण बेद नहीं अर्थ है किन्तु बेद का ब्राह्मणभागमात्र, इसी से "गामस्य तदहः सभायाम्" इसादि ब्राह्मणवाक्य ही में 'द्वितीया ब्राह्मणे' इस सूत्र के अर्जु सार द्वितीया बिभक्ति होती है न कि किसी मन्त्र में भी। और 'छन्दस्' शब्द का तो मन्त्रब्राह्मण हपी संपूर्ण बेद अर्थ है इसी से मन्त्र और ब्राह्मण दोनों बेदभागों में 'चतुर्थ्य बहुछं छन्दासे' के अनुसार कहीं पष्ठी और कहीं चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है जैसा कि भाष्यकार ने उदाहरण दिया है। अब देखना चाहिये कि यदि 'छन्दिस' निक्राल कर ब्राह्मणे का संबन्ध किया जाता तो अस्त्र मन्त्रों में न छगता। इस रीति से तृतीय सूत्र मन्त्र में भी छगे इसी छिये उस में 'छन्दम'

[•] च्युत्पत्तिरेषाऽस्य ॥ 🕇 " नाह्मणेति " इत्यपशब्दस्तु तस्यैव मुखे शोभताम् ॥

अन्यथा तु "मन्त्रे श्वतवहोक्थशस्पुरोडाशोण्वन्" ।३।२।७१। "अव यजः" ।३।२।७२। "बिजुपेच्छन्दिसि" ।३।२।७३। इत्यं क्रिमिकस्त्रपाठे चरमे छन्दसीत्युक्त्या मन्त्रभागेऽपि छन्दः पद्व्यपदेश्यत्वं न सिद्ध्यत् । यथ।हि । "ब्राह्मणे" इत्यभिधाय 'छन्दसी' त्यभिहिन्त्रवतः पाणिनेर्ब्राणं न छन्दः पद्व्यपदेश्यत्वेनाभिमतमित्युत्पेक्षसे तथैनेहापि पूर्वसूत्रे 'मन्त्रे' इत्यभिधाय 'विजुपेच्छन्दासि' इति कथयतः पाणिनेर्मन्त्रोपि छन्दः पद्व्यपदेश्यत्वेनानिभात इति वक्तव्यं स्यादिति महदानिष्टं ब्राह्मणविद्विषस्त्वापि । किञ्च "अम्रक्षथत्वरित्युभयथा छन्दसि " ।८।२।७०। इति पाणिनिश्चन्दः पद्मुपादाय 'भ्रवश्च महाव्याहृतेः '।८।२।७१। इति स्त्रेण वैक्षिपकं रुभावमनुशास्ति पुनरुत्तरसूत्रे, इति महाव्याहृतेरपि च्छन्दो-भावच्युतिरावश्यकी स्यात् । निह 'ब्राह्मणे इत्युपादाय 'छन्दसी' त्युक्तिरेव ब्राह्मणानामच्छन्दोभावसाथिका, नतु 'छन्दसी' त्यभिधाय व्याहृतिर्बिशिष्टय व्याहरणं व्याहृतेन्छन्दोभावमणाशकं न स्यादिति पाणिपिधानं, तस्मादाचार्यः प्रयोगसाधुभावाप्रसङ्गाति-प्रसङ्गिविवारिययया कचित् सामान्यं 'छन्दसी' त्युपादाय विशेषं 'महाव्याहृतेः' इति विक्ति । कचित्तु, विशेषं 'ब्राह्मणे ' 'मन्त्रे' इति बोपादाय सामान्यं 'छन्दसी' ति तस्मात्।

यद्यत्र छन्दोब्राह्मणयोर्बेदसञ्ज्ञाऽभीष्टाभवेत्तिः चतुर्थ्यथें बहुलं छन्दसीति छन्दोग्र-इणं व्यर्थे स्यात् कुतः । द्वितीया बाह्मणेति ब्राह्मणग्रन्थस्य प्रकृतत्वात् । अतो विज्ञायते न ब्राह्मणानां बेदसञ्ज्ञाऽस्ति ।

इतिबदन् सतामसम्भाषणीयोऽयं कपटकाषाय इति पुष्कलम् । अत्रापरे बाह्मणद्विषो ऽप्रुष्यसंसर्गिणोऽनधीतशास्त्रा प्राहिला अनिभन्ना विवदन्ते । तथाहि । यदि ब्राह्मणानि छन्दांसि, तदा पाणिनिः कथं बूते ''छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि'' ४।२।६६। यदि

॥ भाषा॥

शब्द का प्रहण है तो कैसे वह ब्यर्थ होता।

(१)—और जिस रीति से भूमिकाधारी ने 'चतुर्ध्यें 'इस सूत्र में 'छन्दस् ' शब्द से यह बतलाया है कि ब्राह्मणभाग नहीं बेद है इस रीति से तो स्पष्ट ही यह सिद्ध होता है कि मन्त्रसंहिता भी बेद नहीं है क्यों कि वह यदि बेद हो तो (१) "मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशोण्विन्" अ०३ पा० २ सू० ७१। (२) 'अवे यजः' ३-२-७२। (३) 'विजुपेछन्दसि' ३-२-७३। यहां रितीय सूत्र में 'छन्दस्' शब्द का प्रहण ब्यर्थ ही हो जायगा क्यों कि प्रथमसूत्र के मन्त्रशब्द की अनुवृत्ति से काम चल जायगा।

(१)—"अञ्चरूषरविरियुभयथा छन्द्सि" ८-२-७०। इस सूत्र में 'छन्दस्' शब्द कह कर "भुवश्च महाब्याहृते:" ८-२-७१। में पाणिति के 'महाब्याहृति' शब्द कह ने से 'महाब्याहृति' भी बेदत्व से प्रच्युत हो जाता क्यों कि छन्द्सि के संबन्ध से काम चल जाता। तस्मात् सामान्यशब्द के संबन्ध से जैसे विशेषशब्द का ग्रहण नहीं ब्यर्थ होता वैसे ही विशेषशब्द के संबन्ध से सामान्यशब्द का प्रहण भी नहीं ब्यर्थ होता। तब कैसे ब्राह्मणशब्द के संबन्ध से 'छन्द्स्' शब्द व्यर्थ होता। तब कैसे ब्राह्मणशब्द के संबन्ध से 'छन्द्स्' शब्द व्यर्थ हो सकता है।

प्राणिनिस्त्र से ब्राह्मणशब्द का प्रहण क्यों है ? क्या बेदवाची 'छन्द्स्' शब्द से ब्राह्मण का

हि ब्राह्मणानि छन्दांसि तदा पर्याप्तं छन्दांसीत्येव, यावता ब्राह्मणान्यपि छन्दांस्येवेति । सत्यम् । ब्राह्मणानां मन्त्रेः सह छन्दोभावस्य समानत्वे पृथम्ब्राह्मणग्रहणमपार्थकमिति माप्तं तथापि ब्राह्मणग्रहणमिह 'अधिकमधिकार्थम्' इति न्यायेन ब्राह्मणविशेषपरिग्रहार्थम्, तेनेह न, याज्ञवल्क्येन भोक्तानि ब्राह्मणानि याज्ञवल्क्यानि सौळमानि । ब्याकरणभाष्यकारोऽपि पकृतसूत्रे ब्राह्मणग्रहणप्रयोजनिमदमस्चयत् 'याज्ञवल्क्यादिभ्यः मतिषेघो वक्तव्यः' इति वदन् ॥ अयमेवचार्थः 'पुराणमोक्तेषु ब्राह्मणकलेषु '।४।३।१०५। इति सूत्रे पुराणमोक्तित्ववद्याचार्यम् ब्राह्मणकलेषु '।४।३।१०५। इति सूत्रे पुराणमोक्तित्वविशेषणेन ब्राह्मणानि विशिषतः पाणिनेरभिमतः । इत्रया ब्राह्मणविशेषस्यापिन् जिष्टिस्तत्वे पुराणपोक्तिवत्याचार्यमबृत्तिरनार्थका स्यादिति नापरोक्षं किमपि भाष्ये श्रमज्ञषां विद्वामिति बहुलेखादुदास्महे । यचाऽसौ ब्रूते धर्मध्वजी ।

अन्यच कात्यायनेनापि ब्रह्मणा बेदेन सहचितित्वात् सहचारोपाधिं मत्वा ब्राह्मणानां बेदसञ्ज्ञा सम्मतेति विज्ञायते । एवमपि न सम्यगस्ति । कृतः । एवं तेनाऽनुक्तत्वादतो-ऽन्यैर्ऋषिभिरगृहीतत्वात् । अनेनापि न ब्राह्मणानां बेदसञ्ज्ञा भवितुपईतीति । इत्यादि

बहुभिः प्रमाणैर्मन्त्राणामेव वेदसञ्ज्ञा न ब्राह्मणग्रन्थानाविति सिद्धम् ॥

इति, तदमुष्य गगननिष्ठीवनायितम् । केन बैदिकेनाभिहितं यत् कात्यायनोऽभिधत्तं "सहचारोपाधिना ब्राह्मणानां बेदसञ्ज्ञा सम्मता" इति, यचायमनाळोचितशास्त्रोऽकृतः गुरुकुळवासो बूते "अन्यैऋषिभिरगृहीतत्वात्" इति, तदप्यस्य हास्यास्पदम् । ब्राह्मणानां बेदभावस्य पूर्वोक्तरीत्या सर्विसम्मतत्वात् । यचैष कपटकाषायो बूते । किञ्च भोः । ब्राह्मणग्रन्थानामपि बेदवत्शापाण्यं कर्तव्यमाहोस्तिक्रोति । अत्रब्र्मः । नैतेषां बेदवत्शामाण्यं ॥ भाषा ॥

प्रहण नहीं हो सकता ?।

उ०— 'अधिकमधिकार्थम्' इस न्याय से यहां 'ब्राह्मण' राज्द का प्रहण इस लिये हैं कि जिस में सब ब्राह्मणों का प्रहण इस सूत्र में न हों किन्तु पुराने ऋषियों के प्रवचन अध्यापन किये हुए ब्राह्मणों ही का प्रहण हो इसी से नवीन ऋषियों के प्रवचन किये ब्राह्मणों के विषय में यह सूत्र नहीं लगता अर्थात् जैसे ''पुराणपोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु" ४-३-१०५। में ब्राह्मण का पुराण-प्रोक्ते (पुराने ऋषियों का प्रवचन किया हुआ) विशेषण है वैसा ही यहां ब्राह्मणशब्द का प्रहण है और ''याज्ञवलक्यादिभ्यः प्रतिषेधस्तुल्यकाललात्" इस भाष्य से भी यही सूचित होता है।

भा०भू०- "कालायन के नाम से जो दोनों का बेद संज्ञा होने का वचन है...

इस से यह निश्चय हुआ कि मन्त्रभाग की है। बेद संज्ञा है ब्राह्मण प्रन्थों की नहीं"

खं?—(१) कात्यायन के नाम से, इस कहने से ज्ञात होता है कि 'मन्त्रज़ाह्मणयोर्बेद-नामधियम्' यह कात्यायन का वाक्य ही नहीं है, सो यह भी बेचनामात्र है क्यों कि जब भूमिकी धारी से इस वाक्य के बिरोध का परिहार नहीं हो सका तब अनन्यगति हो कर अब यही कहने होता।

(२)—यह कथन भी कि 'कात्यायन ने ऐसा कहा भी हो तो यह मानने के थीं कि नहीं है क्यों कि किसी अन्य ऋषि ने ऐसा नहीं कहा मिध्या ही है क्यों कि पूर्व में यह सिंद्ध की दिया गया है कि ब्राह्मणभाग का बेद होना सब ऋषियों को सम्मत है।

भा • भू • — " हम यह पूछते हैं प्रमाण के योग्य तो हैं "

कर्तुं योग्यमस्ति। कुतः । ईश्वरोक्ता (१) भावात् तदनुक्छतयैव प्रमाणाईत्वाचेति । परन्तु सन्ति तानि प्रतः प्रमाणयोग्यान्येव ॥

इति, सोऽस्य सर्वशास्त्रविपरीतस्तावदुपसंहारः । ब्राह्मणप्रामाण्यस्य मन्त्राविशेषणसकृत्सािकतित्वात् । अतएव पुराणप्रामाण्यन्यस्थापनप्रसङ्गेन "प्रमाणेन खल्छ ब्राह्मणेनतिहासपुराणानां प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते" इत्याहस्म बात्स्यायनः । ब्राह्मणानां स्वतःप्रामाण्यविरहे कथमिव परकीयप्रामाण्यवोधकतासम्भद्रस्तेषाम् । निह प्रमाणभूमिमनिधरोहन्ति ब्राह्मणान्यस्रम्पदानि इतिहासपुराणीयप्रामाण्यम्यस्थापनायेशते । तस्मास्त्रुतिवेदग्रन्दाम्नायनिगमपदानि मन्त्रभागमारभ्योपनिषदन्तानां वेदानां वोधकानीति शास्त्रविदां
परामर्शः । अतएव 'श्रुतिस्तु वेदो विशेषो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः इत्यास्तिकजनजीवातुर्भग्वान् मनुर्मेने । अतएव (२) तु वेदान्तचतुरध्याय्यां भगवान् व्यासोऽभिधितस्रस्पनिषदः
समादचेऽसस्य च्युतिपदशब्दपदानि 'श्रुतेस्तु शब्दमूकत्वात्' अ० २ पा० १ स्० २७ ॥
'पदाच्च तच्छुतेः' अ० २ पा० ६ स्० ४१ ॥ 'भेदश्रुतेः' अ० ३ पा० १ स० १८ ॥
'स्वकश्च हि श्रुते राचक्षते तिद्धदः' अ० ३ पा० २ स० ६। 'तदभावो नादीषु तच्छुतः'
अ० ३ पा० २ स० ७॥ 'गुणसाधारण्यश्चतेश्च' अ० ३ पा० ३ स० ६४ ॥ 'वैद्युतनैव

खं - (१) यह अन्तिम उपसंहार (निचोड़) भी सब शास्त्रों से विपरीत ही है क्यों कि पूर्व में अनेक बार यह सिद्ध कर दिया गया है कि बेद के मन्त्र और ब्राह्मण दोनों भाग तुस्य

ही प्रमाण हैं।

(२)—जब कि पूर्व में 'प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणानाम्प्रामाण्यमभ्यनु ब्रायते' (ब्राह्मणरूपी प्रमाण से इतिहासों और पुराणों का प्रामाण्य सिद्ध होता है) यह बात्स्यायनमहार्षि का वाक्य अनेक बार दिखलाया गया है तब ब्राह्मणभाग को मनुस्मृति आदि के ऐसा परतः प्रमाण कहना भी मिध्या ही है क्यों कि जो वाक्य स्वतः प्रमाण नहीं है उस से अन्य का प्रामाण्य कैसे सिद्ध हो सकता है ?।

तस्मात् यह सिद्ध हो गया कि श्रुति, बेद, शब्द, आम्राय, समाम्राय, निगम, ये सब पद मन्त्रभाग से छे कर उपनिषद् पर्यन्त ब्राह्मणभागरूपी बेदों के नाम हैं और यही दार्शनिकों का सिद्धान्त है। और मनु ने भी 'श्रुतिस्तु बेदो बिक्नेयः' अ०२ श्रो०१० ('श्रुति' इस पद का बेद अर्थ जानना चाहिये) ऐसा कहा है तथा ज्यास भगवान ने भी बेदान्तदर्शन में उपनिषद्रूपी, ब्राह्मणभाग के अन्तिम भाग को अनेक बार, बेदवाची 'श्रुति' और 'शब्द' पद से महण किया है जैसा कि उनके ये सूत्र हैं जो कि नीचे छिसे जाते हैं—

- (१) श्रुतेस्तु शब्दमूळलात् (अ०२ पा०१ सू०,२७)
- (२) पदात्तु तच्छूतेः (अ०२ पा०३ सू०४१)
- (३) भेदश्रुतेः (अ०३ पा० ४ सू० १८)
- (४) सूचकश्च हि श्रुतेराचक्षते ताद्विदः (अ०३ पा० २ सू० ४)
- (५) तद्भावो नाडीषु तच्छूतेः (अ०३ पा०२ सू०७)
- (६) गुणसाधारण्यश्रुतेश्च (अ०३ पा०३ सु०६४)

⁽१) इत्युक्तिरमुख्यसाधीयसः साधुत्वं दर्शयति । (२) सूत्रेष्ठ्यनिषद्वाक्यामां साजिपृक्षितत्वादेव ।

ततस्तच्छुतेः' अ० ४ पा० ३ स० ६ ॥ इत्यादिस्त्रेषु ॥ अतएव च भगवान् कणादो दशाध्याय्या अन्ते "तद्धचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् " इत्युपसंजहाराम्नायपदेन बेदमामाण्यम् । अत्र हि आम्नायपदं संहितामारभ्योपनिषदन्तिनिस्तिलवेदबोधकस् । समानतन्त्रे गोतमीये "मन्त्रायुर्वेदवच तत्प्रामाण्यम।प्रप्रामाण्यात् " इति सूत्रे तत्पदोपाद्देयसोपनिषदक्व वाक्यकलापस्येव प्रामाण्यावधारणात् । तत्रत्यतच्छब्दस्य मन्त्रब्राह्मणात्मकवेदबोधकता च प्रामावधारितेव । मन्वादिस्मृतयोऽप्यस्मिन्नर्थेऽनुकूलाः । तथाहि । षष्ठेऽध्याये मनुः "एता-श्रान्याश्च सेवेत दीक्षा विपो बने वसन् । विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः " २९॥ अत्र "औपनिषदीः श्रुतीः" इत्युक्त्या उपनिषदां श्रुतिशब्दवाच्यत्वं, श्रुतिशब्दस्य च बदाम्नायपदपय्यायत्वम् । यथाह मनुरेव "श्रुतिस्तु वेदो विश्वेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः" । इति, ततश्च यद्यपनिषदः श्रुतय इत्यमिमेने ब्यवजहार च मनुस्ति ब्राह्मणानां वेदभाव आवश्यकः, यतो ब्राह्मणानामेव तु शेषभूता उपनिषदः । अतएव तु ता वेदान्त इत्यभिधीयन्ते । अतएव "दशलक्षणकं धर्मयन्तिष्ठन् समाहितः । वेदान्तं विधिवच्छत्वा संन्यसेदन्त्रणो दिनः" म० अ० ६ श्लो० ९४ ॥ इत्यादिमानवशास्त्रं वेदान्तपदेनोपनिषदां परिग्रहः। ॥ भाषा ॥

- (७) बैद्युतेनैव ततस्तच्छूतेः (अ०४ पा०३ सू०६) इत्यादि।
- (८) ऐसे ही बैशेषिकदर्शन अ० १० के अन्त में 'तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्' (ईश्वरोक्त होने से आम्नाय प्रमाण है) इस सूत्र में कणादमहार्ष ने आम्नायपद से, संहिता से उपनिषद् पर्यन्त समस्त बेद का प्रहण किया है।
- (९) और गौतममहर्षि ने भी अध्याय २ आहिक १ में 'मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच तत्प्रा-माण्यमाप्तप्रामाण्यात्'।। ६१।। (ईश्वरोक्त होने से वह अर्थात् ब्राह्मणभाग प्रमाण होता है और जैसे आयुर्वेद अर्थात् वैद्यक, प्रत्यक्षफल होने से प्रमाण है वैसे ही यज्ञों के प्रत्यक्षफल होने से भी वेद प्रमाण है) इस सूत्र से मन्त्र और ब्राह्मणरूपी समस्त वेद को प्रमाण कहा है।

न्यायदर्शन और बैशेषिकदर्शन समानमन्त्र कहलाते हैं अर्थात् इन दर्शनों के बहुत से सिद्धान्त प्रायः तुल्य ही हैं इस से दोनों दर्शनों के उक्त दोनों सूत्रों का भी संहिता और ब्राह्मण-रूपी समस्त ही बेद, बिषय है।

(१०) तथा ६ अध्याय में मनु ने भी कहा है "एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा बिप्रो बने वसन्। विविधाश्चीपनिषदी रात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥ २९ ॥ (बानप्रश्च को चाहिये कि पूर्वोक्त नियमों का अभ्यास करें तथा अनेक प्रकार उपनिषदों की श्रुतियों को अपने तत्त्वज्ञान के लिये शब्दों के उच्चारण और अर्थ के विचार से अभ्यास किया करें) यहां उपनिषदों को श्रुति शब्द से मनु ने प्रहण किया है और अ० २ श्रुति० १० में मनु ही ने 'श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः' ('श्रुति' इस पद का बेद अर्थ जानना चाहिये) कहा है। तो जब उपनिषदों को मनु ने वेदवाची 'श्रुति' शब्द से कहा तो उपनिषदों का बेद होना मनु ने ख्यं कह दिया और उपनिषद् श्राह्मणभाग ही के अन्तिम भाग हैं इस रीति से मनु ने ब्राह्मणभाग की बेद कहा है।

(११) मनु अध्या० ६ ऋो० ९४ 'दशलक्षणकं धर्म मनुतिष्ठन् समाहितः। बेदान्ते

नर्वकाम् ईशावास्योपनिषद्मपद्दायापराः सर्वा अप्युपनिषदो ब्राह्मणान्तर्गता आष्यीं न वेदरूपाः । किन्तु ऋषिभिः प्राणायिषत् । ईशावास्योषानिषत्तु शुक्रयजुःसंहितान्तर्गता बद्धायाऽध्यायेषु चत्वारिंशत्तमस्वरूपेति तामेवैकां बेदरूपां मन्ये । तत्तात्पर्य्येणव तु मनो-क्षितिषत्सु श्रुतिबेदादिषद्ब्यवहार इति वाच्यम्। तथा सति " विविधाश्रीपनिषदीरात्मसं-सिद्धये श्रुतीः " इति मानवे बहुवचनासङ्गतेः । तदुपनिषदन्तर्गतश्रुतिबहुत्वतात्पर्धेण क्यञ्चिद् बहुवचनसमर्थनसम्भवेऽपि 'बिबिधा' इति ति क्रिशेषणं कथमपि नानुक्लियितुम-ईति, तथा सति "अनेकाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः" इत्येवोक्तं स्यादिति । एतेन एकामीश्वावास्योपनिषद्मपहायापरा उपनिषदो न बैदिक्यः किन्तु आर्थ इति पुण्यजन-स्यामुख्य कपटकाषायस्य वचः परं इसनीयमेत्र विदुषाम् । किञ्च । तथा सति ब्याससूत्रेषु सर्वत्र विषयवाक्यभूता उपनिषद एवेति तत्तात्पर्योण व्यासस्य 'श्रुतेः' 'शब्दात्' इत्य-सक्रचथाऽभिधानमसङ्गतं स्यादिति पूर्वमवोचामैव । 'यथा ऋषीणां नामोछेखपूर्वका इति-इासा ब्राह्मणेषु बर्तम्ते नैवं संहितासु तसाद्वाह्मणानि न बेदाः' इत्येतद्रमनिराकरणं तु प्रकीर्णके प्रपञ्चियिष्यते इति सर्वे चतुरस्रमवदातं च ॥

व्यासोऽथ जैमिनिनीम कणादो गोतमस्तथा। बात्स्यायन्स्तथापस्त-म्बश्च कात्यायनो मुनिः॥ पतञ्जिकिः पाणिनिश्रेत्येवमाद्या महर्षयः। पाहुः सा ब्राह्मणग्रन्थान् वेदं मन्त्रानिव स्फुटम् ॥ इति महामोहबिद्रावणे प्रथमः प्रबोधः।

बिधिवच्छूला सन्यसेदनृणो द्विजः ' (द्विज को चाहिये कि गृहस्थाश्रम ही में भृति, क्षमा, दम, आदि १० पूर्वीक धर्मी का अनुष्ठान करता हुआ नियमपूर्वक गुरुमुख से बेदान्त अर्थात् उपनिषद्रूपी, बेद के अन्तिमभाग को उनके शब्दों के उच्चारण और अर्थ के बिचार से समझ कर तथा अपना वीनों ऋण छुड़ा कर सन्यासाश्रम का प्रहण करें। में जब ब्राह्मणभाग के उपनिषद्रूपी अन्तिम भाग, बेदान्त 'बेद का अन्तिमभाग' कहा है तब ब्राह्मणभाग के बेद होने में कुछ भी सन्देह नहीं है जैसे चरण के अङ्कुिखों को शरीर का अन्तिमभाग कहने से चरण के, शरीरभाग होने का निश्चय होता है। और केवल मनु जी ही ने नहीं उपनिषदों को बेदान्तशब्द से कहा है किन्तु अनादिकाछ से सामान्यपुरुषों का भी उपनिषदों के बिषय में 'बेदान्त' पद के ब्यवहार का भवाह खाभाविक चला आता है।

२०-एक ईशावास्य उपनिषद् तो बेद है क्योंकि वह शुक्रयजुसंहिता में ४० वां अ० है और ब्राह्मणभाग की उपनिषदें तो ऋषियों की बनाई हैं। ऐसी दशा में यह निश्चय क्यों नहीं हो सकता कि केवल ईशावास्प्र उपनिषद् ही के ध्यान से अनन्तरोक्त हो श्लोकों में मनु ने 'श्लुति' और 'बेद' पद का ब्यवहार किया है ?

उ॰ - यदि ऐसा होता तो मनुजी 'बिबिधाः' (अनेक प्रकार की) 'औपनिषदीः' (उपनिषदों की) 'श्रुताः' (श्रुतियों को) ऐसा न कहते क्योंकि एक ईशावास्यं ही उपनिषद् के विषय में 'विविधा: ' और बहुवचन कदापि नहीं घटित हो सकता। महामोहि बिद्रावण का प्रथम- अत्रोच्यते । ब्राह्मणभागस्य बेदत्वे मन्त्रास्तावत्ममाणम् ते यथान (१) स उत्तमां दिशमनुब्यचलत् ॥ ७ ॥ (अथर्ब० कां० १५ अनु० १ स्०६) ॥ भाषा ॥

प्रबोध समाप्त हुआ।

अब इस के विषय में यह विवेक है कि पूर्वोक्त, भाष्यभूमिकानामक प्रनथ के प्रकरण में स्वामी ने ब्राह्मणभाग के बेद होने में जो २ युक्तिक्ष्मी हेतु और शब्दरूपी प्रमाण दिखलाया उन में से हेतु सब इस प्रवोध में अढल दूषणों से ऐसा खाण्डत और निर्मूल किये गये कि वे कदापि पुन: नहीं अंकुरित हो सकते और शब्दरूप प्रत्येक प्रमाण का भी स्वामी के उक्त मिध्या अर्थों का खण्डन कर ऐसे अर्थ दिखलाये गये कि जिनके पुन: पलटने का सम्भव नहीं है तथा ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण भी अठारह १८ दिये गये जिन का अर्थ पूर्व में वाणित हो चुका है और अब उनका स्वरूपमात्र एकत्रित कर दिया जाता है।

- (१) कात्यायन 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'
- (२) आपस्तम्ब 'मन्त्रब्राह्मणयार्वेदनामधेयम्'
- (३) जैमिनि 'शेषे ब्राह्मणशब्दः'
- (४) कणाद 'बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे '
- (५) क० ब्राह्मणे सञ्ज्ञाकर्मसिद्धिर्छिङ्गम्"
- (६) गोतम 'तदप्रामाण्यमनृतब्याघातपुन्रक्तदोषेभ्यः'
- (७) बात्स्यायन० न्यायभाष्य 'प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते'।
- (८) ब्यास-बे॰ दं० ' श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्' (अ०२ पा०१ सू० २७)
- (९)००० 'पदात्तुं तच्छूते:' (अ०२ पा०३ सू० ४१)
- (१०) ० ० ० 'भेदश्रुत:' [अ० ३ पा० ४ सू० १८] इति

अब ध्यान देना चाहिये कि ब्राह्मणभाग के बेदल में संक्षेप से एक सहस्र पंद्रह [१०१५] प्रमाण हैं उनका ब्योरा यह है कि उक्त प्रबोधोक्त प्र० [१८] आगे परिगणित प्र० [१४७] अप्रिम [७] वें और [१४] वें अङ्कों से सूचित प्र० [८५०] हैं।

- (११) ००० 'सूचकश्च हि श्रुतेराचक्षते च तांद्वदः' [अ०३ पा०२ सू०४]
- (१२) ००० 'तदभावो नाडीषु तच्छूते: ' [अ०३ पा०२ सू०७]
- (१३) ० ० ० 'गुणसाधारण्यश्रुतेश्च ' [अ० ३ पा० ३ सू० ६४]
- (१४) ००० 'बैद्युतेनैव ततस्तळूते: ' [अ०४ पा० ३ सू० ६]
- (१५) कणाद ० ० 'तद्वचनाद।स्रायस्य प्रामाण्यम् ' [अ० १० अन्तिम सू०]
- (१६) गोतम ०० भन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात् [अ०२ आ०१ सू०६१]
- (१७) मनु 'एताआन्याश्च सेवेत दीक्षा विश्रो बने वसन्।

बिबिधा ख्रौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुती: '॥ [अ०६ स्रो० २९]

(१८) ० 'द्शलक्षणकं धर्म मनुतिष्ठन् समाहितः।

बेदान्तं बिधिवच्छूत्वा संन्यसेदनृणो द्विजः ?।। [अ० ६ ऋ० ९४] अब ब्राह्मणभाग के बेद होने में और थोड़े से प्रमाण दिख्लाये जाते हैं कि

(१) "स उत्तमां ा वह परमेश्वर इत्तम दिशा की बिसे चलते हैं [७]

तमृचश्र सामानि च यज्ंषि च ब्रह्म चानुन्यऽचलन् ॥ ८॥

(२) ऋचां च वै ससाम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद।।९॥ अत्र हि ब्रह्मपदेन वेदवाचिना ब्राह्मणभागः स्पष्टमेवोच्यते । मन्त्राणामृगादिशब्दैः पृथोवोपादानात् । किंच । ब्रह्मित ब्राह्मणभागस्य श्रौती सञ्ज्ञा ब्राह्मणशब्दवत्। तथाच मनुः "ब्रह्मच्छन्दस्कृतंचैव" इति (अ० ३ श्लो० १००) ब्रह्म ब्राह्मणिति कुल्लूकः । (३) तस्म। द्यज्ञात्सर्वहुतऋचः सामानि जिन्नरे ।

छन्दा ि सि जिज्ञिरे तस्माद्यज्ञस्तस्माद्यायत । १। इति (यज् ० अ० ३ मं० ७) अयमि मन्त्रः स्वामिनं प्रति ब्राह्मणभागस्य बेदत्वे प्रमाणम् । तेन हि छ्न्दः पद्स्यात्रत्यस्य गायच्यादिपरत्वं नाभ्युपगम्यते । अतएव बेदभाष्याभासभूमिकायां ९ पृष्ठे "अथ बेदोत्पत्ति बिषयः" इति प्रकरणे इममेव मन्त्रभुपन्यस्य "बेदानां गायच्यादिछन्दोऽनिवतत्वात्पुनश्छन्दांसीति पदं चतुर्थस्याथर्ववेदस्यात्पात्तं ज्ञापयतीत्यवधेयम् " इति स्वयन्येव तेनोक्तम् । एतचानुपदमेवोद्धरिष्यते । एवं च छन्दः पदमत्रत्यं ब्राह्मणभागपर्मेवेति भवन्त्रेवायं मन्त्रः प्रकृतेऽर्थे प्रमाणम् ।

यतु भाष्याभासभूमिकायाम् ९ पृष्ठे बेदोत्पत्तिबिषय इत्युपक्रम्य-तस्माद्यज्ञात्सर्बहुतऋचः सामानि जिह्नरे।

छन्दा 😲 सि जित्तरे तसाद्यज्ञस्तसादजायत १॥ (यज् अ. ३१ मं. ७)

"तमृचिश्चव " उनके पीछे ऋक्, साम, यजु, और ब्रह्म भी चढते हैं।

(२) "ऋचाञ्च०" जो अनन्तरोक्त बिषय को जानता है वह ऋचाओं, सामों, यजुओं और ब्रह्म का भी प्रियस्थान होता है। इन दो मन्त्रों में बेदबाचक ब्रह्मशब्द से ब्राह्मणभाग ही स्पष्ट कहा हुआ है और 'ब्रह्म' शब्द ही से ब्राह्मणशब्द बनता भी है और यह 'ब्रह्म' शब्द मन्त्रों को नहीं कहता क्योंकि ऋचा आदि मंत्र इन मन्त्रों से पृथक् ही कहे हुए हैं। और 'ब्रह्मन्' शब्द, ब्राह्मणभाग का 'ब्राह्मण' शब्द के तुल्य बेदोक्त नाम है जैसा कि मनु ने भी कहा है "ब्रह्मच्छन्द-स्त्रुतं चैव" [अ० ४ श्लो० १००] और कुल्ल्यूकभट्ट दीकाकार ने भी 'ब्रह्मन्' शब्द का यहां ब्राह्मणभाग अर्थ किया है। और प्र० खं० में भी यही सिद्ध हो चुका है।

(३) "तस्माद्यज्ञाव" (सर्वपृजित प्रमेश्वर से ऋड्मन्त्र और साममन्त्र प्रकट हुए तथा छन्दस् अर्थात् ब्राह्मणभाग उन प्रमेश्वर से प्रकट हुए तथा यजुर्मन्त्र उन प्रमेश्वर से प्रकट हुए) इस 'छन्दस्' पद का ब्राह्मणभाग अर्थ है क्योंकि बेदभाष्यभूमिका ९ पृष्ठ में स्वामी ने कहा है कि " ऋक् आदि मन्त्र छन्दों के बिना नहीं होते और जब मन्त्रों की सृष्टि इस मन्त्र में पृथक् कही हुई है तब उसी से गायत्रयादि छन्दों की सृष्टि गतार्थ हो जाती है" तो जब वे 'छन्दस्' शब्द का गायत्रयादि अर्थ नहीं मानते तब उसका ब्राह्मणभाग ही अर्थ है जो कि अन्यकृत ऋग्व-दादिभाष्यभूमिका पृ० ९ 'अथ बेदोत्पत्तिविषय:' इस प्रकरण में यह छिखा है कि भाषार्थ के साथ छिला जाता है कि " तस्माद्यज्ञात्सविषय: सामानिजिहारे, छन्दा ए सि जिहारे तस्माद्यज्ञात्समाद-जायन" [यजु अब ३१ मं० ७]

प्रथम ईश्वर का नमस्कार और प्रार्थना करके प्रधात बेदों की उत्पात्त का विषय छिला जाता है कि बेद किसने उत्पन्न किये हैं (तस्मात् यज्ञात्सव) सत् जिसका कभी नाश नहीं होता यसाहचो अपातक्षन् यज्ञर्यस्मादपाकषन्। सामानिः यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसोम्रुखम्।। स्कंभंतं ब्रुहि कतमः स्विदेवःसः २॥ (अ. कां. १० प्र.२३ अनु ४ मं. २०)। भाष्यम्।

(तस्माद्यज्ञात्सर्व) तस्माद्यज्ञात्सि चिदानन्दादि छक्षणात्पूर्णात्पूरुषात् सर्वहृतात् सर्वपूष्णात् सर्वोपास्यात् सर्वशक्तिमतः परब्रह्मणः (ऋचः) ऋग्वेदः (यजः) यजुर्वेदः (सामानि) सामवेदः (छन्दा असि) अथर्ववेदः (जिज्ञरे) चत्वारोवेदास्तेनेवमकाशिता इति वेद्यम् । सर्वहृतः वेदानामपि विशेषणं अवितुम्हिति वेदः सर्वहृतः । यतः सर्वमुन्वदेहीतुमादातुं ग्रहीतुं कोम्पः सन्त्यतः । जिङ्गरे अजायन्तेति कियाद्वयं वेदानामनेक विद्यावत्वद्योतनार्थम् । तथा तस्मादिति पदद्वयमीश्वरादेव वेदा जाता इत्यवधारणार्थम् । वेदानां गायज्यादिछन्दोऽन्वितत्वात्पुन्दछन्दांसीतिपदं चतुर्थस्याधर्ववेदस्योत्पत्ति व्यवध्यम् । यज्ञो वै विष्णः । श्व० कां० १ अ० १ ब्रा० १ कं० १ ३ । इदं विष्णुविचक्रमे त्रेषा निद्ये पदम् य० अ० ५ मं० १५ । इति सर्वजगत्कर्तत्वं विष्णः परमेश्वर एव घटत् नान्यत्र वेवेष्टि ज्यामोति चराचरं जयत् स विष्णः परमेश्वरः ॥१॥ (यस्माहचो०) यस्मान्त्यत्र वेवेष्टि ज्यामोति चराचरं जयत् स विष्णः परमेश्वरः ॥१॥ (यस्माहचो०) यस्मान्त्यत्र वेवेष्टि ज्यामोति चराचरं जयत् स विष्णः परमेश्वरः ॥१॥ (यस्माद् परब्रह्मणः (यज्ञः) यज्ञवेदः अपाकषन् प्रादुर्भूतोऽस्ति । तथैव यस्मात्मामानि सामवेदः (आङ्गिरसः) अथर्ववेदश्चोत्पन्नी स्तः । एवमेव यस्येश्वरस्याङ्गिरसोऽथर्ववेदो ग्रुखं ग्रुखवनन्गुख्योऽस्ति । साम्वि छोमानीव सन्ति । यजुर्यस्य हृदयमुचः प्राणश्चे तिरूपकालङ्कारः । यस्माचत्वारो वेदान्ति छोमानीव सन्ति । यजुर्यस्य हृदयमुचः प्राणश्चे तिरूपकालङ्कारः । यस्माचत्वारो वेदान्ति छोमानीव सन्ति । सर्वोद्वारा वेदान्ति । सर्वोद्वारा विद्यान्ति । सर्वोद्वारा । सर्वोद्वारा विद्यान्ति । सर्वोद्वारा । स्वाद्वारा विद्यान्ति । सर्वाद्वारा विद्यान्ति । सर्वाद्वारा विद्यान्ति । सर्वाद्वारानीव सर्वारानीव सर्वारानीव सर्वारानीव सर्वारानीव स्वारानीव सर्वारानीव सर्वारानीव

चित् जो सदा ज्ञानखरूप है जिसको अज्ञान का लेश भी कभी नहीं होता आनन्द जो सदा सुख-स्वरूप और सब को सुख देने वाला है इत्यादि लक्षणों से युक्त पुरुष जो सब जगह में परिपूर्ण हो रहा है जो सब मनुष्यों के उपासना के योग्य इष्टदेव और सब सामध्य से युक्त हैं उसी परब्रह्म से [ऋचः] ऋग्वेद [यजुः] यजुर्देद [सामानि] सामवेद और [छन्दांसि] इस शब्द से अथर्व भी चारो बेद उत्पन्न हुए हैं इस लिये सब मनुज्यों की अचित है कि बेदों को प्रहण करें और बेदोक्त रीति से ही चर्छे [जिक्किरे] और [अजायत] इन दोनों क्रियाओं के आधिक होने से बेद अनेक विद्याओं से युक्त है ऐसा जाना जाता है वैसे ही [तस्मात्] इन दोनों पदों के अधिक होने से यह निश्चय जानना चाहिये कि ईश्वर से ही बेद उत्पन्न हुए हैं किसी मनुष्य से नहीं बेदों में सब मन्त्र गायत्र्यादि छन्दों से युक्त ही हैं फिर [छन्दांसि] इस पद के कहने से चौथा जो अथर्बबंद है उस की उत्पत्ति का प्रकाश होता है। शतपथ आदि ब्राह्मण और बेदमन्त्रों के प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि यज्ञशब्द से बिष्णु का और बिष्णुशब्द से सर्वब्यापक जो परमेश्वर है उसी का अहण होता है क्योंकि सब जगत् की उत्पत्ति करनी परमेश्वर में ही घटती है अन्यत्र नहीं ॥ १ । [यसाहचो अपा०] जो सर्वशक्तिमान् परमेश्वर उसी से [ऋचः] ऋग्वेद [यजुः] यजुर्वेद [सामानि] सामवेद [आंगिरस:] अथर्ववेद ये चारो उत्पन्न हुए हैं इसी प्रकार रूपकालंकार से बदों की उत्पन्त का प्रकाश ईश्वर करता है कि अथविवेद सरे मुख के सम (तुल्य), सामवेद लोमों के समान, यजुर्वेद इंद्रय के समान और ऋग्बेद प्राण के नाई है (बूहि कतसः स्विदेव सः) कि चारो बेद जिस स

हरणकाः स कत्तपः स्विद्देवोऽस्ति तं त्वं बृहीति प्रशः । अस्योत्तरम् (स्कंभं तं)तं स्कंभं सर्वजगद्धारकम्परमेश्वरं त्वं जानीहीति तस्मात्स्कंभात्मक्वीधारात्परमेश्वरात् पृथक् कश्चिद्वान्योदेवो वेदकर्ता ववाऽस्तीति मन्तव्यम्॥२॥ एवं वा अरे अस्य महतो भृतस्य निःश्वसितवेत्यहरवेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथविक्ति हे मैत्रेयि महत्त आकाशाद्दि बृहतः प्रमेश्वरस्येव अस्यायमभित्रायः । याज्ञवल्क्योऽभिवद्दिति हे मैत्रेयि महत्त आकाशाद्दि बृहतः प्रमेश्वरस्येव स्वाशाहरवेदादि चतुष्ट्यं (निःश्वसितं) निःश्वासवत्महजत्यानिःस्तमस्तीति वेद्यम् । यथाः श्वरिगच्छासोनिःस्त्यं पुनस्तदेव प्रविश्वरित तथैवेश्वराद्धेदानां पादुर्भावतिरोभावो भवत इतिः विश्वय इत्युक्तम् ।

तदेतत् स्विषम् छितो भुजङ्गः स्वेमव दश्वतीतिन्यायोदाहरणमेव। निह ऋच्इत्यादेर्ऋचेद-इत्यादिरथों बैदिकजनमाननीयः किंतु ऋगाद्याख्या मन्त्रा इत्येव। कथमन्यथाऽत्रेव ममाण-तया तदुपन्यस्ते 'एवं बा अरे अस्ये' त्यादौ ऋगादिपदसमभिच्याहृत्तवेदपदाभ्यासस्य सार्थकता समर्थ्यत्, तथासति प्रकृतमन्त्र इव लाघवेनात्र ब्राह्मणेऽपि ऋगादिपदमात्रस्ये-

॥ भाषा ॥

इत्पन्न हुए हैं सो कौन सा देव है उसको तुम मुझ से कहो इस प्रश्न का यह उत्तर है कि (स्कंभ तं० जो सब जगत् का धारणकर्ता परमेश्वर है उसका नाम स्कंभ है उसी को तुम बेहों का कर्ता जानों और यह भी जानो कि उसको छोड़ कर सनुष्यों के उपासना करने के योग्य दूसरा कोई इष्टदेव नहीं है क्योंकि ऐसा असागा कौन मनुष्य है जो बेहों के कर्का सर्वश्रक्तिमान् परमेश्वर को छोड़, दूसरे को परमेश्वर मान कर उपासना करें ॥ २॥ (एवं वा अरे अस्य) याझबल्क्य महा बिद्वान् जो महिं हुए हैं वह अपनी पण्डिता मैत्रेयी की को उपदेश करते हैं कि हे मैत्रीय जो आकाशादि से भी बड़ा सर्वश्यापक परमेश्वर है उससे ही ऋक् यजुः साम और अर्थव ये चारो बेद उत्पन्न हुए हैं जैसे मनुष्य के शारीर से श्वासा बाहर को आ कर फिर सीतर को जाती है इसी प्रकार सृष्टि के आदि में ईश्वर बेदों को उत्पन्न करके संसार में प्रकाश करता है और प्रख्य में संसार में बेद नहीं रहते परन्तु उसके झान के भीतर वे सदा बने रहते हैं बीजांक्रवत् जैसे बीज में अङ्कुर प्रथम हैं। रहते परन्तु उसके झान के भीतर वे सदा बने रहते हैं बीजांक्रवत् जैसे बीज में अङ्कुर प्रथम हैं। रहता है वही बुक्षरूप हो कर फिर सी बीज के भीतर रहता है इसी प्रकार से बेद भी ईश्वर के झान में सब दिन बने रहते हैं उनका नाश कभी नहीं होता क्योंकि वह ईश्वर की बिद्या है इस से उन को नित्य ही जानना।

प्र-- उक्त दो सन्त्रों और उक्त ब्राह्मणवाक्य के इस ब्याख्यान से जब यह सिद्ध है कि असादि नामक मन्त्रभाग ही बेद हैं तब 'तस्माद्यज्ञात्०' इस मन्त्र से ब्राह्मणभाग का बेद होना (जो पूर्व हीं कहा गया) कैसे सिद्ध हो सकता है ?।

च०--स्तासी के इस ज्याख्यान हीं पर यह प्रश्न निर्मर है इस लिये उक्त ज्याख्यान हीं पर विचार करना आवर्यक है और उस में भी यही निश्चित होता है कि बेहों के ईश्वरोक्त होने में सामी ने 'तस्मादाज्ञात्०' इस मन्त्र को स्वयम् प्रमाण दिया परन्तु इसी मन्त्र से उन के मत जाइएणभाग बेद नहीं है) का स्पष्ट ही खण्डन होता है इस लिये जैसे अपने बिष से मुर्छित हो कर सर्प अपने हीं को काटै वैसे ही इस अवसर पर अपने उद्धृत 'तस्मादाज्ञात्०' इस मन्त्र से खासी खयं अपने सत् की हानि को प्राप्त होते हैं जिसका बिबरण यह है कि—'तस्मादाज्ञात्०'

षोपादातुम्रचितत्वेन सक्नुद्दिष बेदपदोपादानस्य निष्फलतया बेदपदाभ्याससार्थकत्वसंभावः नाया अपि दूरतरिनरस्तत्वात्। नच ऋगादीनां बेदपद्द्यपदेश्यत्वबोधनायैव बेदपदाभ्यास इति बाच्यम्, बिकल्पासहत्वात्। तथाहि। ऋग्बेदहत्यादि समस्तं स्यात् ब्यस्तं वा। नायः। तथासित ऋगादिकमुद्दिश्य बेदत्वविधानस्य बक्तमशक्यत्वात्। पथ्यमाविभक्तिमक्रतित्वेन श्रोतृबिदितस्यैव हि नाम्नः स्वार्थे विधेयताया अभेदसम्बन्धावच्छिन्नायाः समपेकतां क्रोडीः करोति शाब्दी मर्यादा नत्वन्यादृशस्य। अतएव 'बषद्कर्तुः प्रथमभक्षः इति श्रुतौ भक्ष-मुद्दिश्य लघुनोऽपि प्राथस्यमात्रस्य विधातुमशक्यत्वात्प्राथस्यविशिष्टस्य भक्षस्य गुरोरिष

॥ भाषा ॥

इस सन्त्र में ऋक् साम आदि शब्दों का ऋग्वेद सामवेद आदि अर्थ कदापि नहीं हो सकता क्योंकि यदि ऐसा हो, तो 'एवं वा अरेऽस्थ०' इस, स्वामी के प्रमाण दिये हुए ब्राह्मणवाक्य में ऋग्वेदः, यजु, वेदः, सामवेदः यह तीन बार वेदशब्द का उच्चारण इस कारण, ब्यर्थ ही हो जायगा कि जैसे उक्त मन्त्र में 'वेद' शब्द के विना भी ऋक् आदि शब्द से ऋग्वेद आदि का वोध स्वामी ने स्वीकार किया है वैसे ही इस ब्राह्मणवाक्य में वेदशब्द के विना भी ऋक् आदि शब्द से जब ऋग्वेद आदि का वोध हो सकता है तब एक बार भी वेदशब्द के उच्चारण का कोई प्रयोजन नहीं हो सकता और अनेक बार वेदशब्द के उच्चारण की तो कथा ही क्या है।

समाधात=- "ऋक् आदि सन्त्रों का बेद नास है " ऐसे बोध के लिये अनेक बार बेद-शब्द का उचारण है क्योंकि ऋक् साम आदि शब्दों के साथ यदि बेदशब्द बार २ न कहा जाता तो यह कैसे ज्ञात होता कि ऋक् साम आदि मन्त्र बेद कहलात हैं ?

खं (१)- उक्त ब्राह्मणवाक्य में 'ऋग्वेदः' आदि, समास (दो शब्दों के मेल से बना हुआ एक शब्द) है, अथवा ऋक् और बेद पृथक् २ दो शब्द हैं १ यदि प्रथम पक्ष है तो "ऋक् मन्त्र, बेद है " ऐसा अर्थ ही नहीं हो सकता क्योंकि जैसे "राजा, पण्डित है" इस वाक्य से राजा के पण्डित होने का बोध, उस पुरुष को कराया जाता है जो कि राजा को जानता है, न कि उस पुरुष के बोधार्थ, जो कि राजा को नहीं जानता, अथवा राजा और उसके पण्डित होने को भी जानता है। और ऐसे ही बिष्य में, झातबिष्य की उद्देश और अज्ञातबिषय को बिधेय कहते हैं। तथा ऐसे बिषय में यह अनुभवसिद्ध नियम है कि उद्देश्यशब्द और विधेयशब्द अलग २ रहते हैं जैसे कि "राजा-पण्डित है" इस वाक्य में राजा (उद्द्यशब्द) अलग और पण्डित (विधेयशब्द) अलग ही है अर्थात् ऐसे विषयमें राजन् शब्द, और पण्डितशब्द, समस्त हो कर एक नहीं होते क्योंकि यदि एक हो जायं तो राजा उद्देश और पण्डित विधेय नहीं हो सकता। तात्पर्य यह है कि यदि दोनों को एक पद बना कर (राजपण्डित) का (पण्डितराज) कहा जाय तो उस से यह बोध नहीं होता कि ''श्रोता पुरुष, जिस को राजा जानता है वह पण्डित है" निदान-जब 'ऋ' रबेदः अरादि एक शब्द हैं तब उतने मात्र का यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि ऋगादि मन्त्र, बेद हैं। इसी से पूर्वसीमांसा अध्या० ३ पा० ५ 'बषट्काराच सक्षयेत्" ॥ ३२॥ से जीमिनिमहर्षि ते यह सिद्धान्त किया है कि "वषट्कर्तुः प्रथमभक्षः" (प्रथम भोजन करना वषट् करने वाले ऋतिक् की काम है) इस श्रुति में 'प्रथमभक्षः' शब्द से सक्षणरूपी उद्देश में प्रथमतामात्र के विधान करने में यद्यपि छाघव है तथापि बैसा अर्थ तब ही हो सकता है कि जब "प्रथम: सक्षः" है

विधानन तस्य वषट्कारानिमित्तकत्वं 'वषट्काराध भक्षयेत्' (पू० भी० अ० ३ पा० ५ सू० ३२) इति स्रत्रेण सिद्धान्तितं भगवता जैमिनिना। एवं वेदशब्दस्य तन्त्रे विरुद्धत्रिक-दूबस्य, आबुत्तौतु वाक्यभेदस्य, पसङ्को दुर्बारइत्यादिकं नेहोपन्यस्यते। विस्तरभयात्। एवं रसविद्याऽऽचार्येरापि विधेयाविमश्चित्यस्य काव्यदोषस्य आविमृष्टविधेयांशः समासपिहिते विधावितिलक्षणमभिहितम्। न द्वितीयः। 'ऋक्यजुःसाम च वेदा ' इत्येतावतैव सामञ्चस्ये वेदपदाभ्यासवैयर्ध्यतादवस्थ्यात्। किंच। तथासत्यथर्धाङ्गरसपदसमभिव्याहारे वेदपदान्तुपादानेनाथर्बाङ्गरसे वेदपदार्थत्वाभावप्रसङ्को बज्जलेपायते। एतेन छन्दांशित्यनेनाथर्ववेदोपग्नह इति निरस्तम्। उक्तरीत्या तत्र वेदत्वस्यैव वक्तुमशक्यत्वात्। छन्दःशब्दस्य वद्सामान्यवाचकत्वया विशेषरूपेणार्थववेदवाचकत्वाभावेन हलवहनयोग्यगवादिबोधतात्पर्यन् मगुक्तगवादिपदानामिव तस्य विशेषधमीविशिष्टतात्पर्यकत्वे लाक्षणिकत्वप्रसङ्काच । नच 'तसाद्यज्ञा' दितिमन्त्रेऽथर्ववेदस्य विशेषतोऽनुपादानप्रसङ्गात्प्रसजन्त्या न्यूनतायाः परिहाराय

॥ भाषा ॥

अलग २ दो शब्द हों और इस श्रुति में तो उसके विपरीत अर्थात् समास कर "प्रथमभक्षः" यह एक ही शब्द है। तस्मात् वषद्कर्ता ही यहां उद्देश्य है, और प्रथमभक्षण हीं का विधान है। इस लिये प्रथमभक्षण करने में वषद्कार ही कारण है। तथा साहित्यविद्या के आचारों ने भी 'विधेयाविमर्श' नामक काव्यदोष का 'अविमृष्टविधेयांशः समासिपहित विधी' यह लक्षण कहा है जिसका यह अर्थ है कि जहां विधेय बना कर किसी अर्थ के बोध कराने के लिये उस अर्थ के वाचक शब्द का, अन्य अर्थात् उद्देश्यशब्द के साथ समास कर दिया जाय वहां 'विधेयाविमर्श' नामक दोष होता है जैसे पूर्व में उदाहरण कह चुके हैं।

द्वितीयपक्ष भी ठीक नहीं है क्योंकि उसमें दो दोष पड़ते हैं। एक यह कि ऋक् आदि और बेद शब्द, यदि अलग २ पद होते तो "ऋक् यजुः साम च बेदाः" (ऋक्मन्त्र यजुर्मन्त्र, साममन्त्र बेद हैं) इतने मात्र से यह बोध हो सकता था कि "ऋगादिमन्त्र बेद हैं" तो ऐसी दशा में पुनः २ बेदशब्द का प्रहण ब्यर्थ ही हो जायगा। और दूसरा दोष यह है कि उक्त ब्राह्मणवाक्य में 'ऋक्' आदि शब्द के साथ 'बेद' शब्द के होने से यदि ऋक आदि बेद हैं तो अथर्बमन्त्र, बेद न कहलावेंगे क्योंकि 'अथर्बाङ्गिरसः' के साथ बेदशब्द नहीं है।

खं०—(२) अनन्तरोक्त द्वितीयदोष से खामी का यह व्याख्यान भी परास्त हो गद्या कि 'तस्मात्यज्ञात्॰ इस मन्त्र में 'छन्दः' शब्द से अथर्ववेद का प्रहण है 'क्यों कि जब अथर्वा- कि 'तस्मात्यज्ञात्॰ इस मन्त्र में 'छन्दः' शब्द से अथर्वमन्त्र, बेद ही नहीं हैं तब उक्त मन्त्र में छन्दःशब्द से जनका कैसे प्रहण हो सकता है ? तथा उक्त मन्त्र में छन्दःशब्द से केवल अथर्ववेद का प्रहण इस कारण से भी नहीं हो सकता कि छन्दःशब्द, बेदशब्द का समानार्थक है इस से वह बेद- सामान्य हीं का बोध करा सकता है न कि केवल बेदिवशेष का।

समा०—'तस्माद्यज्ञात्०' इस मन्त्र में किसी शब्द से यदि अथर्ववेद का प्रहण न किया जाय तो इस मन्त्र में न्यूनतादोष का कारण ही नहीं हो सकता क्योंकि अथर्ववेद की अत्यिति कहां से निकलेगी ? तस्मात् उसी न्यूनतादोष के परिहारार्थ यह कल्पना की जाती है कि

बेदपर्यायस्यापि छन्दःपदस्य बेदबिशेषपरत्वमाश्रयणीयामिति वाच्यम् । एवं सति 'छम्दा थिस जिज्ञिरे तसा' दिति तृतीयेनैव पादेन निखिलम्यूनतापरिहारसंभवेऽविश्व पादत्रयवैयध्यापत्तेः । नचर्यज्ञषादीनां विशिष्योत्पत्तिबुवोधयिषयेव ऋगादिभिविशेषपदै-निर्देश इति वाच्यम्। एवं सति 'अथबीङ्गिरसोम्खम्' इति तदुपन्यस्तिद्वितीयमन्त्रहवात्राप्यथर्बी-किरसपदेनैवाथवेबेदस्याप्युपादातुमौचित्येन 'छन्दांसी 'ति सामान्यशब्दानिर्देशासङ्गतेर्दुस् द्धरत्वात्। नच 'अथर्बाङ्किरसोम्रखमि' त्यनुरोधादेवात्र मन्त्रे छन्दःशब्दस्य बिशेषपर्य-वसानमुनीयते तद्भिमायेणैव च मया द्वितीयो मन्त्र इहोपन्यस्त इति बाच्यम् । तथा सित् द्वितीयमन्त्रातुरोधादेव ऋगादीनामपि प्रथममन्त्रे बिशिष्य लाभस्य सुवचतया 'छन्दांसि जिहिरे तसादि । ति सामान्यवाक्येनैव सामञ्जस्ये पादत्रयसार्थक्यस्य दुःसमर्थत्वापातात्। ॥ भाषा ॥

छन्दः शब्द, यद्यपि बेदसामान्य का वाचक है तथापि उक्त मन्त्र में ऋक् साम यजु का पृथक् प्रहण होने पर छन्दःशब्द के उचारण से यह निश्चित होता है कि यहां छन्दःशब्द का अथर्बबेद ही में तात्पर्य है, क्योंकि तीन बेदों के प्रहण होने पर वही अवशिष्ट रह जाता है।

खं०--यदि उक्त न्यूनतादोष के बारणार्थ ही उक्त मन्त्र में छन्द:शब्द का उचारण है तब तो वह ज्यर्थ ही है और वहीं नहीं ज्यर्थ है किन्तु उक्त मन्त्र के तीनों चरण ज्यर्थ हैं क्योंकि "छन्दांसि जिन्नरे तस्मात्०" (उन परमेश्वर से बेद प्रकट होते हैं) इतने मात्र से चारो बेदों के प्रादु-भीव का लाभ इस रीति से हो सकता था कि छन्द:शब्द का बेदसामान्य अर्थ है, जिस से कि एक न्यूनतादोष का गन्ध भी नहीं रह जाता।

समा०-- उक्त मन्त्र के तीन चरण इस लिये हैं कि जिस में ऋक् साम आदि शब्द से ऋग्वेद आदि की पृथक् २ उत्पत्ति का बिशेषरूप से बोध हो, जो कि 'छन्दांसि जिहारे तस्मात्' इतने मात्र से नहीं हो सकता। तथा "यसाहचो अपातक्षन्०" इस उक्त द्वितीयमन्त्र में अथर्बी-क्तिरस शब्द के नाई प्रथममन्त्र में छन्दःशब्द भी अथर्बबेद ही के प्रहणार्थ है, न कि ब्यर्थ।

खं -- यदि द्वितीयमनत्र के दृष्टान्त ही से छन्दः शब्द का अथर्बवेद में तात्पर्य कहा जाता है तब तो प्रथममन्त्र में छन्दःशब्द का कथन हीं असङ्गत हो जाता है क्यों कि द्वितीय-मन्त्र में जैसे अथर्ववेद मात्र का वाचक 'अथर्वाङ्गिरसः' शब्द है वैसे ही प्रथममन्त्र में भी अथर्बमन्त्र ही का वाचक शब्द रखना उचित था न कि छन्द:शब्द का, जिस से यह भी भ्रम ही सकता है कि ऋक् आदि, छन्द (बद) नहीं हैं किन्तु उनसे अन्य ही कोई छन्द हैं क्यों कि यहां ऋक् आदि से पृथक् छन्दःशब्द कहा है।

समा०--द्वितीयमनत्र में "अथबीङ्गिरसी मुखम्" कहा है उसी के प्रमाण से खामी यह कह सकते हैं कि प्रथममन्त्र में बेदसामान्य के वाचक छन्द:शब्द का अथर्बबेदरूपी बिशेष में तात्पर्य है और इसी अभिप्राय से उक्त भूमिका (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका) में स्वामी ने दीनी मन्त्रों को साथ ही उद्धृत भी किया है।

खं --- यदि द्वितीयमनत्र ही के प्रमाण से प्रथममनत्र में सामान्यवाचक शब्द की विशेष में तात्पर्य कहा जाय तो तीन चरणों का बैयर्थ्यरूपी पूर्वोक्तदोष ही पलट कर ऐसा कीप करेगा जिसकी चिकित्सा ही नहीं हो सकती क्योंकि तब मुक्तकण्ठ हो कर यह कह सकते हैं कि प्रथममन्त्र में तृतीयपाद (छन्दांसि जिहारे तस्मात्०) मात्र ही रहना चाहिये और द्वितीय

CC-0. Ankur Joshi Collection Gujarat. An eGangotri Initiative

त्वानयोर्भन्त्रयोभिन्नाभिन्नस्थलस्थतया प्रथममन्त्रे विशिष्य ऋगादिनिर्देशाभावे द्वितीय-मन्त्राद्शिनां प्रथममन्त्रस्थत्तीयपादश्रवणमात्राद् विशिष्य ऋगादीनामुत्पत्तेर्वोधो न स्या-दिति तद्धमेव पादत्रयोपाद।नमिति बाच्यम्। तथासत्येवमेव द्वितीयमन्त्रादर्शिनां विशिष्या-वर्षबेदस्योत्पत्तरपि बोधो न स्यादिति तदर्थ द्वितीयमन्त्रइवात्राप्यथर्वाङ्गिरसशब्दस्यैवो-वादेयतया बेदपर्यायछन्दः पदोषादानासङ्गतितादवस्थ्यात् । नच स्वतन्त्रेच्छेन भगवता ऽथर्बा-क्षिर्सपदोपादानौचित्येऽपि छन्दःपद्दमेवेहोपात्तिमिति कस्तत्रपर्यनुयोगावसर इति वाच्यम् । तथासत्यसन्दिग्धवेदविशेषवोधनक्षमाभ्यां सामयजुःपदाभ्याम्ययतः सन्दंशेऽथबाक्षिरसं विश्वेषतोषुवोधियषोरुचिततममप्यथबाङ्गिरसपदं द्वितीयमन्त्रे स्वोपात्तमि मकुतमन्त्रेऽनुपादाय

मन्त्र के चार चरणों के अनुसार छन्द:शब्द का चारो वेदों में विशेषरूप से तात्पर्य है अर्थात् । छन्दांसि जिहारे 'इस में छन्द:शब्द का ऋचाएं अर्थ हैं क्योंकि द्वितीयमन्त्र (ऋचो अपातक्षन्) में ऋचः कहा है। ऐसे ही उक्त छन्दःशब्द का यजु भी बिशेषरूप से अर्थ है, क्योंकि द्वितीयमन्त्र (यजुर्यस्मादपाकषन्) में यजुः कहा है। ऐसे ही छन्दः शब्द का साम भी विशेषरूप से अर्थ है क्योंकि द्वितीयमन्त्र (सामानि यस्य लोमानि) में साम भी कहा है तथा छन्द:शब्द का अथर्बनेद भी बिशेषरूप से अर्थ है जैसा स्वामी कहते हैं। इस कम से स्वामी की कही हुई रीति के अनुसार 'छन्दांसि जिल्लारे तस्मात्' इस वृतीयचरणमान्न से चारो बेदों के प्रथक् बोध होने के कारण उक्त प्रथममन्त्र के तीनों चरण ध्यर्थ हो गये।

समा -- जो लोग अथर्बवेद (जिस में द्वितीयमन्त्र है) नहीं पढ़े हैं उनको विशेषरूप से ऋग्बेद आदि की उत्पत्ति समझाने के लिये प्रथममन्त्र में तीन चरण हैं क्यों कि द्वितीयमन्त्र, अथर्बवेद का है और जब वे उस मन्त्र को जानते नहीं तब कैसे उस मन्त्र के अनुसार उनको 'इन्दोंसि जिज्ञिरे तस्मात् ।' इतने मात्र से उक्त बोध हो सकता है ? इस रीति से प्रथममन्त्र के तीन चरण ब्यर्थ नहीं हैं।

खं - यि ऐसा है तब भी जैसे द्वितीयमन्त्र में 'अथवीक्षिरस' शब्द है वैसे ही प्रथममन्त्र में भी वही शब्द कह कर विशेषहर से अथर्षवेद का प्रहण करना उचित था न कि बेद्सामान्य का वाचक छन्दःशब्द का कहना।

समा०--यद्यपि प्रथममन्त्र में अनन्तरोक्त रीति से छन्दःशब्द ही का कहना उचित था तथापि परमेश्वर स्वतन्त्र हैं इस से उन्हों ने यदि अथबीक्गिरस शब्द को न कह कर छन्द:शब्द हैं की कहा तो इस पर किसी को आक्षेप करने का क्या अवसर है ?।

खं -- इस समाधान में तीन दोष पढ़ते हैं। एक यह कि प्रथममन्त्र के, दितीय और चतुर्थ चरण में बेदिबिशेष का वाचक सामशब्द और यजुःशब्द जैसे परमेश्वर ने कहा है वैसे ही हत दोनों के मध्य अर्थात् तृतीय चरण में यदि अथर्बवेद का प्रहण करना उनको इष्ट था तो साम और यजुः शब्द के नाई बेद्बिशेष का वाचक 'अथर्बाङ्गिरस' शब्द ही का कथन उचित था जैसा कि अथवीक्षिरसः ' इस द्वितीयमन्त्र में उन्हों ने स्वयं कहा भी है तो ऐसी दशा में अथवीक्षिरस शब्द को छोड़ कर छन्द:शब्द कहने से यही स्पष्ट निश्चित होता है कि प्रथममन्त्र के तृतीयचरण से अथर्बबेद का महण परमेश्वर को कदापि इष्ट नहीं है क्योंकि यदि वह इष्ट होता तो अथबीक्निरस

छन्दः पद्युपाददानस्य भगवतएवाकौ शलकल्पनामसङ्गात् । किंच । तेनैवोपन्यस्ते 'यस्मा-हच' इति द्वितीयमन्त्रे तज्जातीयेष्वन्येषु च बैदिकेषु बेदिकोषिनर्देशस्थलेषु बहुशो-ऽनुभूतचरी बेदत्रयनिर्देशपृष्ठचरस्याथबाङ्गिरसानिर्देशस्य सकलबैदिकलोकपरिशीलिता बैदिकी शैली, प्रकृते छन्दः पदस्याथका द्विरसमात्रपरतां प्रलपता विकलहृदयेने वो छिद्वितेव-स्यात्। यदि न्यूनतापरिहारस्यावश्यकत्वादिह छन्दःपदेनाथर्बाक्षिरसपरिग्रहः तदा मीमांसा-दर्शने अ० २ पा० १ 'तचोदकेषु मन्त्राख्या' इति ॥ ३२ ॥ सूत्रे भाष्यवार्तिकन्यायसुधा-श्वासदीपिकान्यायमालादावधिकरणविषयवाक्यत्वेनोदाहृतम्।

अहे बुधिय मन्त्रं मे गोपाय यमृषयस्त्रीविदा विदुः।

ऋचः सामानि यर्ज्षि सा हि श्रीरमृता सताम्।। (तै० ब्रा० १।२।२६)

इत्येतं मन्त्रमाक्रामन्ती न्यूनता केन नामोपायेन परिहरणीयेत्यवश्यवचनीयमाप्यते। नचेह बेदपर्यायोऽपि कश्चिच्छब्दोऽस्ति योऽथर्बाक्षिरसोपप्रहकुचोद्यचर्चामप्युदश्चयत् । यदि तु मुङ्मन्त्रसमुदाय एव तुलापुरुषशान्त्यादि रूपा बैतानिकामेककर्माविशेषावच्छेदेनैकनिबन्धता मापन्नोऽथर्बाक्तिरसपदेनापदिश्यते न जातु तदन्यः कश्चित् । अतएव 'त्रयो बेदा अमृज्यन्ते। त्यादिः भौती, 'त्रयं ब्रह्म सनातन' मित्यादिः स्माती, 'त्रयी ' तिच साधारणी प्रसिद्धिः ॥ भाषा॥

शब्द ही को कहते न कि छन्दस् शब्द को।

और दूसरा दोष यह है कि बेद, धर्मशास्त्र, आदि में जहां २ चार बेदों की गणना है वहां सर्वत्र अथर्ववेद की गणना अन्त ही में की जाती है इस रीति में कहीं ब्यभिचार नहीं है नेसा कि स्वामी हीं के उद्भृत 'यस्माहचो अपातक्षन्०' इस मनत्र तथा उन्हीं के उद्भृत 'एवं बा अरे ' इस ब्राह्मणवाक्य में अथर्बबेद की गणना अन्त ही में है। अब यह स्पष्ट हो गया कि खामी का यह कथन (प्रथममन्त्र में छन्द:शब्द से अथवंबेद का प्रहण है) अत्यन्तांबरुद्ध है क्योंिक प्रथममन्त्र में छन्दःशब्द अन्त में नहीं है किन्तु मध्य है। में है तब कैसे उस से अथर्बबेद के प्रहण करने का संभव भी हो सकता है ?

और तीसरा दोष यह है कि यदि खामी के उक्त, न्यूनता के परिहारार्थ, छन्दस् शब्द से अथर्बवेद का प्रहण खीकार किया जाय तो यह अवश्य खीकार करना पहेगा कि जिस वैदिक खाल में ऋक् साम यजु तीन हीं शब्द हैं अर्थात् छन्दस् अथवा अथवी क्रिएस आदि शब्द नहीं है वहां न्यूनतादोष के बारण का कोई उपाय नहीं है 'अहे बुश्निय मन्त्रं मे गोपाय यमृषयस्त्रीबिदा बिदुः। ऋचः सामानि यर्जूषि सा हि श्रीरमृता सताम्' (तै० ब्रा० १।२।२६) (हे अहिंसक, जगत् के आदि में उत्पन्न आवसध्य अग्नि! तू जिस को तीनों बेदों के ज्ञाता छोग ऋक् साम यजु जा^{तत} हैं मेरे उस मन्त्र की रक्षा कर क्यों कि वही सत्पुरुषों की नित्य लक्ष्मी है। इस मन्त्र में अथर्वनि की गणना न करने से न्यूनतादेश दुर्बार ही हो जायगा क्योंकि यहां तो छन्दस् आदि शब्द भी नहीं है कि जिस से अथर्ववेद के प्रहण का व्यर्थ बकवाद भी उठाया जा सकै।

समाव-अथर्बबेद के मन्त्र ऋग्बेद ही के हैं इसी से अथर्बबेद तीन हीं में अन्तर्भूत है अर्थात् पृथक् नहीं है इस में प्रमाण 'त्रयो बेदा' असृज्यन्त' (तीन बेद प्रकट हुए) यह नि भीर 'त्रयं त्रहा सनातनम् 'यह मनुस्मृति है। और बेदों को 'त्रयी ' कहते हैं इस हे भी तीत हैं विकसित । अतएव च 'सा ऋग्यत्रार्थव श्रेन पादव्यवस्था। गीतिषु सामाख्या। शेषे यजुः श्रव्दः ' इति भगवान् जिमनी ऋक्सामयज्ञं ज्येव निरूचे, नत्वथर्वाङ्गिरसमिप । अतएव चोक्ते ' एवं वा अरे ' इत्यादो शतपयवाक्येऽाप नाथर्वाङ्गिरससमि । अतएव चोक्ते ' स्वाच ' अहे बुध्रिये 'ति मन्त्रे न्यूनतैव नास्तीति क तत्पि हाराय पर्यनुयोगस्यावकाश इत्युच्यते । तह्येस्मिन्मन्त्र इव 'तस्माद्यशादि' ति मन्त्रेऽिष तुल्यन्यायत्त्रानास्त्येव छन्दः पदानुपादानेऽिष काचन न्यूनतेति कस्य दोषस्य परिहाराय भूमिकाभृता छन्दः शब्दस्याय्वाङ्गिरसोपग्राहकता दुरुद्गाद्यत इत्यप्युच्यताम् । तस्मात्त्रथममन्त्रे छन्दः शब्दस्य न कथ्यध्याङ्गिरसोपग्राहकता दुरुद्गाद्यत इत्यप्युच्यताम् । तस्मात्त्रथममन्त्रे छन्दः शब्दस्य न कथ्यव्यर्वाङ्गिरसोपग्राहकता दुरुद्गाद्यत इत्यप्युच्यताम् । तस्मात्त्रथममन्त्रे छन्दः शब्दस्य न कथ्यर्वाङ्गिरसोपग्राहकता दुरुद्गाद्यत् इत्यभिद्धता भूमिकाभारिणा छन्दः शब्दस्य गायत्र्यादिपरतायाः स्वयमेव पत्याख्यातत्वात् । एवं च भूमिकाभृताऽवश्यभेव वर्णनीयम् । अयमत्र मन्त्रे छन्दः शब्दस्यार्थ इति, शरणीकरणीयं वाऽनन्यशरणेन तदेव यदस्माभिरुपवर्णितम् । कि तदिति चेत् । श्रूयताम् । 'ऋगादिशब्दा मन्त्राणामेव वाचकाः । ऋग्वेदादिशब्दास्तु ऋगादितत्तसम्वन्धिवाह्मणोभयसमुदायवाचकाः । अतएव ' अहे बुध्रिय मन्त्रं मे गोपाये । त्यादौ पूर्वोक्तमन्त्रे बेदशब्दो न श्रूयते, श्रूयते च धुनः धुनः ' एवं वा अरे ऽस्य महतो

बेद सिद्ध होता है। तथा इसी अभिप्राय से पूर्वमीमांसा अध्या० २ पा० १ में ऋक्, साम, यजु, इन तीन हीं का लक्षण कहा है अथर्व का नहीं, और उक्त ही अभिप्राय से 'एवं बा अरे' इस एक शतपथवाक्य में अथर्वाङ्गिरस के समीप में बेद शब्द नहीं कहा गया है। इस रीति से जब तीन हीं बेद हैं तब 'अहे बुश्निय' इस मन्त्र में अथर्वबेद न कहने पर भी न्यूनतादोष नहीं हो सकता।

खं० — यदि ऐसा है तो 'तस्माद्यज्ञात्' इस प्रथममन्त्र में यदि छन्दस् शब्द न कहा जाय तब भी 'अहे बुश्निय' इस मन्त्र के नाई न्यूनतादोष नहीं है इस छिये ऐसी दशा में स्वामी का यह अभिप्राय 'न्यूनतादोष के बारणार्थ छन्दस् शब्द से अथर्बवेद का प्रहण है' सर्वथा असङ्गत ही है।

तसात् प्रथममन्त्र में छन्द्स्शब्द का अथर्बबेद अर्थ कदापि नहीं हो सकता और गायत्री उण्णिक् आदि अर्थ का निराकरण तो खामी ने हीं उक्त अपनी भूमिका में किया है। इस रीति से प्रथममन्त्र में 'छन्द्स्' शब्द का अथर्बबेद और गायत्री आदि से अन्य अर्थ, खामी को अवश्य कहना पड़ा जिस को वे ब्राह्मणभाग को बेद माने बिना त्रिकाल में भी नहीं कह सकते।

प्र०-यदि उक्त दोनों अर्थ छन्दस्राब्द के नहीं हैं तो अन्य कौन अर्थ है ?

प्रश्ने से वेद ' शब्द न होने से और 'एवं बा अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् प्रश्ने वेद सामवेद: ' इस उक्त शत्या कर कि या है कि अरे नहीं है तो क्या अर्थ है ! इस प्रश्न को त्याग कर उक्त प्रश्न ही अनु वित है । और यदि अर्थ नहीं है तो क्या अर्थ है ! इस प्रश्न को त्याग कर उक्त प्रश्न ही अनु वित है । और यदि अवित क्रम से दोनों प्रश्न किये जायं तो उचित क्रम से उनके ये उत्तर हैं कि पूर्व हों बेददुर्गसज्जन के मन्त्रप्रकरण में यह कहा गया है कि "अहे दुन्निय मन्त्र में गोपाय" इस पूर्व कि मन्त्र में 'बेद' शब्द न होने से और 'एवं बा अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् प्रश्नेदो यजुर्वेदः स्नामवेदः' इस उक्त शतपथवाक्य में पुनः २ वेद शब्द कहने से यह स्पष्ट ही

भूतस्य निःश्वसितमतग्रहण्वेदः' इत्यादि ग्रतपथवाक्ये' इत्युक्तपस्याभिवेददुर्गसज्जने । वक्ष्यन्तेचात्रापि प्रकरणेऽपदान्तरमेव तत्रोपपत्तयः । एवंच 'तस्माद्यज्ञादि' ति मन्त्रे तदन्यस्थलेषु च ऋगादिशव्दानामृग्वेदादिशव्देन विवरणम्, ऋगादिमन्त्रसंहितासु 'ऋग्वेद' इत्यादिव्यवहारः, ऋगादिसंहितानां विवृतिग्रन्थेषु 'ऋग्वेदादिभाष्य' मित्यादिको व्यपदेशः, तद्भिकासु 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिके' त्यादिकं साभिमानं नामोक्षेखनं, च सर्वमेवोक्तः भूमिकाभुवः पण्डितरूपस्य तदनुयायिनां च ऋगादिऋग्वेदादिपदार्थाविवेकैकम्लक्ष्यवेति चितार्थोऽत्र 'अन्यस्येवान्धलग्रस्य विनिपातः पदे पदे ' इति न्यायः । तस्मात्—

बेदर्गेदादिशब्दार्थानप्यविद्वान् हि भाष्यकृत्। करालः कलिकालो यद्वलमेतदनर्गलम् ॥ १॥

एवं च 'तस्माद्यज्ञादि' ति मन्त्रे ऋच इत्यादेर्ऋगाद्याख्या मन्त्रा इत्येवार्थः । छन्दःशब्देन च ऋगादिमन्त्रसंहिताभ्योऽतिरिच्यमान ऋग्वेदादिभागएव गृह्यते । स एव च ब्राह्मणामित्युच्यते । तस्य ऋगादिसकलमन्त्रविनियोजकतामभिव्यङ्क्तुमेवचर्कसामयजुषां मध्ये
तद्वाचकस्य छन्दः पदस्योपन्यासोऽप्युचिततमः । छन्दः प्रदस्य च वेदपर्यायस्य मन्त्रब्राह्मण-

सिद्ध है कि ऋक्, साम और यजु: शब्द केवल मन्त्रों ही के वाचक हैं और ऋग्वेद आदि शब्द तो ऋक् आदि मनत्र और उनके सम्बन्धी ब्राह्मण इन दोनों के समृहों के वाचक हैं। इस से जहां केवल मन्त्रों को कहना होता है वहां केवल ऋक् आदि शब्दों ही का प्रयोग होता है जैसे 'अहे बुध्रिय' इलादि मन्त्रों में, और जहां मन्त्र और ब्राह्मण के समुदाय को कहना होता है वहां केवल ऋक् आदि शब्द का प्रयोग नहीं होता किन्तु ऋग्बेद आदि शब्दो हीं का प्रयोग होता है जैसे 'एवं बा अरे०' इत्यादि पूर्वोक्त ब्राह्मणवाक्य में, क्योंकि यदि ऐसा न स्वीकार किया जाय तो इस में कीन कारण कहा जा सकता है कि जो कहीं केवल ऋक् आदि शब्द ही का और अन्यन्न उसके साथ बेद शब्द का प्रयोग है। तथा इस प्रकरण में भी आगे चल कर और भी उपपत्तियां इस विषय में दिखलायी जायंगी । इस रीति से उक्त प्रथममन्त्र में 'ऋचः' सामानि 'और 'यजुः' शब्दों का मरगादिमनत्र मात्रही अर्थ है न कि ऋग्वेद आदि। इस से यह स्पष्ट हो गया कि इस मनत्र में स्वामी का 'ऋक्' आदि शब्दों का ऋग्वेद आदि अर्थ कहना और मन्त्रसंहिताओं का 'ऋग्वेद' आदि कहना तथा उन संहिताओं के भाष्यों को 'ऋग्बेद्भाष्य' आदि कहना तथा अपनी र्ची भूमिका को 'ऋग्बेदादिभाष्यभूमिकां' कहना, केवल 'ऋक्' और 'ऋग्बेद' तथा 'साम' और 'सामबेद' तथा 'यजु' और 'यजुर्वेद' शब्दों के अथीं के अज्ञान ही का फल है। और उनके अनुयायीगण जो ऋक् ही को ऋग्वेद तथा साम ही को सामबेद, और यजु ही को यजु र्बेद कहते हैं, इस में उनका कुछ दोष नहीं है क्योंकि वे अन्धपरम्परान्याय से अपने गुरू के पीछे पछ रहे हैं। और किछकाछ ही का यह कराछ अनगंछ प्रभाव है कि जो, (खामी) बेद आविर आदि शब्दों का अर्थ तक नहीं जानते थे वह भी ऋक्संहिता का भाष्यकार हो गये। यही प्रथम प्रश्न का उत्तर है और द्वितीय का उत्तर यह है कि उक्त प्रथममन्त्र (तसाद्यज्ञात्) में छन्दस्राहर से भी ब्राह्मणभागो हीं का प्रहण है और ऋक्, साम, के अनन्तर तथा यजु से पूर्व अर्थात् मध्य में छन्दस्शब्द का होना भी बहुत ही अचित है। क्योंकि मन्त्रों को यज्ञकर्मों में छगाना नाह्मणभाग

समुदायवाचकत्वेऽपि 'ऋची यजूंषि सामानि च्छन्दांस्याथर्वणानि च (हरिवं० प० १ अ०१ श्लो०३८॥) इत्यत्र 'जुष्टार्पिते च च्छन्दासि' 'नित्यं मन्त्रे' (पा० अष्टा० अध्या० ६ वा० १ सू० २०९-२१०) इत्यत्र च च्छन्दः शब्दवत् प्रकृते " अहे बुश्चिय मन्त्रं " इत्यादि-मन्त्र इव ऋगादिपदैरत्र मन्त्राणां पृथगभिधानाचतुर्विषि बेदेषु ब्राह्मणभागसत्वाच ब्राह्मण-भागपरत्वमित्ययमकामैरपि कामनीयः परमकमनीयो मन्त्रार्थस्वरसः श्लिष्यते । तस्माद-स्मिन्मन्त्रे छन्दः पदं ब्राह्मणभागस्य बेदत्वे परमरमणीयं प्रमाणमिति शान्तं पापं प्रतिहत-ममङ्गलम् । इदश्च सर्वः स्वाम्युक्तमसत्यमपि छन्दःपदस्य गायत्र्यादिपरत्वाभावमभ्युपेत्य प्रतिपादितम् । वस्तुतस्तु छन्दःपदिष गायव्यादिपरमेव । यजुःसंहिताभाष्यकारेस्तथैव ब्याख्यानात्। "बेदानां गायव्यादिछन्दोऽन्वितत्वात् पुनश्छन्दांसीतिपदं चतुर्थस्याथविवेद-स्योत्पात्तं ज्ञाययतीत्यवधेयम्" इति स्वामिवाक्ये हेतुभागोऽपि हेय एव । छन्दोहीनानामपि मन्त्राक्षराणां शक्योचारणत्वात् । अन्यत्र मन्त्रेभ्यः पृथक् गायव्यादिसृष्टिश्रवणाच्च ।

तथा च ऋङ्मन्त्रः

अग्नेर्गायव्यभवत्सयुग्वोष्णिह यासविता सं वभूव।

अनुष्दुभासोमं उक्यैर्मह स्वान्बृहस्यते बृहतीवाचं मावत् ॥ ४-॥ इति । (ऋ० अ० ७ व० १८ मं० १० अ० ११ सू० १३०)

तस्माचज्ञादितिमन्त्रे जनेः प्रयोगेण बेदपीरुषेयत्वशङ्का तु बेददुर्गसज्जने बेदापौरुषे-यत्वप्रकरणे 'उच्चारणे स्टाजिः श्रौतः' इत्यादीनां श्रोकानां ब्याख्यानेन निपुणतरमेव निराकृतेति तत्रीव द्रष्ट्रव्यमधस्तात्।

किंच 'स यथाऽद्रैंधाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निः असितमेतचहरवेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लो-काः सूत्राण्य नुब्या रूयानानि ब्या रूयानानी ष्ट् हुतमाशितं पायितमयं च लोकः परश्र लोकः सर्वाणि च भूतान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानि" (श० कां० १४अ० ६ ब्रा०६ कं॰ ११)

इति शतपथवाक्ये बेदपदाभ्यासो ब्राह्मणभागस्य बेदत्वे दृढतरं मानम् । ऋग्वेदादि-

ही का काम है। और इस रीति से ब्राह्मणभाग, मन्त्रभागों से प्रधान और उनके उपकारी हैं। इसी उपकार के सूचन करने के लिये 'ऋक्' 'साम' और 'यजु' शब्दों के मध्य में कहे हुए 'छन्दस्' शब्द से ब्राह्मणभाग का प्रहण है तथा ब्राह्मणभाग, सब बेदों का भाग है अर्थात् प्रत्यक वेदों में बाह्मणभाग है इसी से वेदसामान्य के वाचक 'छन्दस्' शब्द ही से उसका प्रहण किया गया है। इस सूधी रीति से 'तस्माद्यज्ञात्०' इस मन्त्र का स्वारिक अर्थ जो कहा गया उसके अनुसार यह मन्त्र, ब्राह्मणभाग के बेद होने में अतिरमणीय प्रमाण है, इस कारण इस मन्त्र के रें के के भूमिकारूपी पाप शान्त हो गया और उक्त भूमिका में जो 'तसाद्यज्ञात्' मन्त्र से बेदों की उत्पत्ति दिखलाई गई है उसका खण्डन तो बेददुर्गम्बज्ञन के बेदापौरुषेयलप्रकरण में पूर्व हीं हो चुका है। 'एवं बा अरेऽस्य महतो भूतस्य '(श॰ कां० १४ अ० ६ ब्रा० ६ कं० ११) इस वाक्य में 'बेद' का पुन: २ उचारण, ब्राह्मणभाग के बेद होने में दृढतर प्रमाण है क्योंकि यदि इस नाक्य में ऋग्वेद आदि शब्द का ऋगादिमन्त्रमात्र ही अर्थ हो, तो प्रथम प्रमाण में शब्दानामृगादिमन्त्रमात्रपरत्वे हि 'अहं बुधिये' त्यादाविच 'तस्माद्यक्षा' दित्यादाविच च बेदपदं नेहोपादीयेत । बेदपदशक्तिजिग्राहायिषायापि 'ऋग्यजुःसाम च बेदा' हत्येवं सकृदेवोपादीयेतत्यनन्तराङ्कोक्तरीत्या बेदपदश्यासो निष्ययोजन एव स्यात् । यत्त्वनन्तराङ्के उन्दितायां भूमिकायामिदमेव शतपथवाक्याभितिहासपुराणप्रामाण्यासिहष्णुतया 'ऽथवीङ्गिः रस' इत्येतदन्तमेवोपन्यस्तम् । तदप्यक्षानेनेव । तथाहि । इदं वाक्यं बेदिकं नबा । नाद्यः । श्राह्मणभागो न बेद इति भूमिकाभृत्पतिज्ञाया एव भङ्गप्रमङ्गात् । नाद्धि द्वितायः । विकल्पा-सहत्वात् । तद्ध्यपौरुषेयं बा स्यात् । तत्र नाद्यः । तेनानभ्युपगमात्, अभ्युपगमे पूर्वः दोषाक्रमणात् । न द्वितायः । तद्धि प्रमाणमप्रमाणं बा स्यात् । नाद्यः । पूर्वापादितस्य तेना-चुल्तस्य च वेदपदाभ्यासबैयध्वस्य प्रतापेनास्य वाक्यस्योन्मत्तवाक्यायमानतुल्यत्तया प्रामाण्यासभवात् । न द्वितीयः । तथासित तदप्रामाण्यमभ्युपत्य प्रमाणतया तदुपन्यासस्योन्मत्त-कर्तव्यत्वापातात् । इत्यंचोक्ताया बेदपदाभ्यासबैयध्यापत्तः कथग्रद्धारइति चेत् । इत्यम् । माषा ॥

कही हुई रीति के अनुसार इस वाक्य में 'बेद' पद का पुन: २ उच्चारण ब्यर्थ ही हो जायगा। और प्रथमप्रमाण के ज्याख्यान में उद्भृत भूमिकाभाग में स्वामी ने जो इसी शतपथ-बाक्य के अथवीं क्रिएस: पर्यन्त ही भाग का उपन्यास किया है इस से उन का अज्ञान और लोक-बञ्चन दोनों स्पष्ट ही प्रकट होते हैं। जिन में से अज्ञान इस रीति से प्रकट होता है कि यह शतपथ-बाक्य उन के प्रमाण देने योग्य नहीं था क्योंकि उस पर यह आक्षेप दुर्बार होता है कि इस शतपथ-वाक्य को आप [स्वामी] बैदिक मानते हैं बा नहीं ? यदि बैदिक मानते हैं तो आप का मत (ब्राह्म-णभाग बंद नहीं है) मिथ्या ही है क्योंकि यह भी ब्राह्मणवाक्य ही है जिस को आप बैदिक मान रहे हैं। और यदि इस बाक्य को आप बैदिक नहीं मानते तो अपौरुषेय मानते हैं वा पौरुषेय ? यदि अपौरुषेय मानते हैं तो इस को बेद क्यों नहीं मानते क्योंकि अपौरुषयबाक्य ही का नाम बेद है। और यदि इस बाक्य को पौरुषेय मानते हैं तो यह किहिये कि यह वाक्य प्रमाण है बा अग्रमाण ? यदि प्रमाण है तो उन्मत्तवाक्य की नाई इस वाक्य में बेद पद का अनेक बार उच्चारण ब्यर्थ क्यों किया गया ? क्योंकि अनन्तरोक्त प्रमाण के ब्याख्यान में आप से बेदपद के पुनः २ उचारण का प्रयोजन पूछा गया उस को आप अब तक ठीक नहीं कहते और जो प्रयोजन आप ने कहा भी उस का खण्डन वहीं हो चुका इस रीति से जब आप बेदशब्द के पुन: २ उच्चारण का प्रयोजन, नहीं कह सकते तब इस बाक्य को आप कैसे प्रमाण कह सकते हैं ? और यदि यह वाक्य नहीं प्रमाण है तो अप्रमाण जानबूझ कर ऐसे वाक्य को आपने प्रमाण क्यों दिया ? इति ।

और लोकबन्धन यों प्रकट होता है कि खामी ने अपनी भूमिका में इस वाक्य की पूर्ण इस कारण नहीं लिखा कि पूर्ण लिखने से इतिहास और पुराण का प्रामाण्य इसी वाक्य से सिद्ध हो जायगा जो कि उन्ह के संमत नहीं है परन्तु इस पर भी वही दशा हुई कि जैसे बिन्लू के उस सागा हुआ पुरुष कालसर्प के मुख में गिरै वैसे अपने (खामी के) ही उद्धृत इस अर्द्ध वाक्य से ब्राह्मणभाग की बेदता सिद्ध होन के कारण उन्हकों बड़ी हानि उठानी पड़ी क्यों कि उक्त वाक्य में 'बेद' शब्द के पुनः २ उच्चारण का वास्तिवकप्रयोजन जब कहा जायगा तब उसी से ब्राह्मणभाग का बेद होना अवश्य सिद्ध हो जायगा जिसकी रीति कही जाती है कि—

मीमांसादर्शने अ० ३ पा० ३ 'बेदो बा मायदर्शनात्' इति २ सूत्रे 'अग्नेर्ऋग्वेदो बायोर्यजु-बिद्यादित्यात्सामबेद ' इत्यर्थवादविषयके, बार्तिके।

बेदश्च ब्यापकत्वादहेतुलक्षणयुक्तः सन् न शक्रोत्येवावयवं लक्षयितुम् । ऋगादयस्तु नियम्यत्वात्समुदायं लक्षयन्ति इति ।

न्यायसुधायां च।

प्रायदर्भनोक्तेभ्रयोदर्शनवाचित्वेन प्राप्तयुक्त्यर्थत्वमङ्गीकृत्य बेदोब्यापकत्वेन हेतुल-भणब्याप्यत्वश्रून्यत्वात् न ऋगादीन् लक्षयितुं शक्तः । स एव ऋगादिभिव्याप्यत्वेन हेतुलक्षणयुक्तैःशक्यो लक्षयितुमित्यन्वयात्स्वयस्त्रब्याख्यां सूचियतुमाह क्षेत्रेक्षि बेदब्य-भिचारात्, ऋगादीनासृगाद्यक्तिमात्रेणगीदिक्षपबेदावयवप्रतीतिसिद्धस्तलक्षणार्थत्वे बेदोक्ति-रनिधंका । तस्मा 'द्रग्बहुलोबेद' इत्येवमादिमध्यमपदलोपिसमासत्वेनैवर्ग्वेदाद्यक्तिव्याख्या-येत्यप्यनेन ग्रन्थेन सूचितम् इति ।

पदिशा अर्गेवदादिपदस्य (१) अर्ग्बहुलोबेदऋग्बेदइत्यादिः (२) ऋगवयव-कोबेद ऋग्बेदइत्यादिः (३) ऋग्बिनियोजकोबेद ऋग्बेदइत्यादिः (४) ऋग्द्रव्यकोबेद ऋग्बे-दइत्यादिबी अर्थो वाच्यः । इमे चार्था मध्यमपदलोपिना बहुब्रीहिगर्भेणैव तत्प्रुरुषेण लब्धं शक्यन्ते । मन्त्रमात्रवाचका ऋगादिशब्दाश्च प्रथमान्ताः केवलाः 'तस्माद्यज्ञा' दित्यादाविव

॥ भाषा ॥

प्र०-इस वाक्य में ऋग्बेंद आदि का क्या अर्थ है ?।

ड०-मी० द० अध्या० ३ पा० ३ 'बेदो वा प्रायदर्शनात्'॥ २ सूत्र के बार्तिक की न्यायसुधा में कहे हुये 'तस्मात् ऋग्बेदाद्युक्ति बेद इत्येवमादिमध्यमपदलोपिसमासत्वेन ऋग्बेदाद्युक्ति वर्षाख्ययो' इस वाक्य के अनुसार ऋग्बेद आदि प्रत्येक शब्दों के चार २ प्रकार के अर्थ हो सकते हैं जिनमें से मैं एक 'ऋग्बेद' शब्द के अर्थों को उदाहरणरूप से दिखलाता हूं।

- (१) जिस बद में बहुत सी ऋचाएं हों वह ऋग्वेद है।
- (२) ऋचाएं, जिस बेद के भाग हैं वह ऋग्बेद है।
- (३) जिस बेद में, यज्ञ के समय, ऋचाओं के पढ़ने की आज्ञा है वह ऋग्वेद है।
- (४) जिस बेद के बिधिवाक्यों के अनुसार जब गेहूं आदि द्रव्यों के साथ ऋचाएं (मन्त्ररूपी द्रव्य) यज्ञों के काम आता है वह ऋग्बेद है।

ऐसे ही 'यजुर्वेद' और 'सामबंद' शब्द के भी अर्थ चार प्रकार के होते हैं। भेद हतना ही है कि ऋचा क स्थान पर 'यजुर्वेद' के अर्थ में 'यजु' और 'सामबंद' के अर्थ में 'साम' कहा जायगा। और ऋक्, यजु, साम, शब्दमात्र से तो इन अर्थों का लाम कदापि नहीं हो सकता क्योंकि वे शब्द केवल मन्त्र मात्र के वाचक हैं जैसा कि चतुर्थ प्रमाण के ब्याख्यान में कहा जा चुका है। तथा 'ऋक्' शब्द के साथ जिस 'बेद' शब्द का समास (मेल) हुआ है उसका सम्बन्ध यजुशब्द में नहीं हो सकता क्योंकि यदि ऐसा हो तो 'ऋक्' शब्द के साथ 'बेद' शब्द का समास ही नहीं हो सकैगा इस लिये यजु और साम शब्द के साथ एक २ 'बेद' शब्द का समास ही नहीं हो सकैगा इस लिये यजु और साम शब्द के साथ एक २ 'बेद' शब्द का पुथक् २ उच्चारण किया गया। इस रीति से पूर्वोक्त चार प्रकार के अर्थों के लाभ ही के लिये इस वाक्य में 'बेद' शब्द का पुन: २ उच्चारण है। और उक्त चार अर्थों से यही निफलता है कि

प्रकृतेऽपि नेमानर्थान् कोडीकर्तुमीशते । ऋक्पदेनोक्तरीत्या समस्तमेकं वेदपदं च न यजु-बहुलोबेदइत्यादिकमर्थे बोधयितुमलम् । तथासित सामध्यीभावेन समासस्यैव दौर्लभ्य-प्रसङ्गात् । तथाचैकेन बेदपदेन निर्वाहासंभवात्स्पष्टप्रयोजनोऽसौ बेदपदाभ्यासः ।

अथ यज्ञोपयोगिनां यवगोधूमादीनामिव महामाहिमशाळिनां मन्त्राणां कथमसी चतुर्थेऽथें द्रव्यपदेन व्यपदेश इति चेत्। तिहीं। 'ब्रीहिभिर्यजेत यवैर्वे 'त्यादों ब्रीह्यादिवत्क-रणत्वेनगादिकप्रुपगृद्धन्तः ऐन्द्या गाहिपत्यप्रपतिष्ठतं 'इत्यादयो विधिवादा एव प्रथममेत-मर्थमभियुज्यन्ताम् , तदनु च मीमांसादर्शने अ०३ पा०३ 'धर्मोपदेशाच न हि द्रव्येण सन्दम्बन्धः'।। ४।। इति सूत्रयन् भगवान् जैमिनिः, 'नास्य सामद्रव्येण सह सम्बन्धो वेदिन्तव्य इति वाक्येनैतत्सूत्रं व्याचक्षाणो भाष्यकारः शवरस्वामी च। तदनु चापरेऽपि शब्दस्य द्रव्यत्वमभ्युपगच्छन्तो दार्शनिकाः। एवश्र्वोक्तेषु चतुष्विपयेषेषु ऋगादितदन्यसमुदायेषु निविश्वमानस्य मन्त्रातिरिक्तस्य ब्राह्मणभागस्य समुदायिनो वेदत्वमृग्वेदादिन्श्वदैः सुश्लिष्टमेवोद्दङ्कितमिति।

॥ भाषा॥

जो शब्दसमुदाय, ऋग्वेद आदि शब्दों से कहे जाते हैं उन में दो २ भाग अवश्य हैं एक २ भाग तो ऋगादिमन्त्ररूपी हैं और दूसरे २ भाग उस से आतिरिक्त हैं जिन में ऋक् आदि मन्त्रों को यज्ञकर्मों में लगाने के लिये आज्ञारूपी विधिवाक्य बहुत से हैं। और उन्हीं बेदभागों को ब्राईणभाग कहते हैं। इस रीति से इस वाक्य में 'बेद' शब्द का पुनः २ उच्चारण, ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण है।

प्र० — पूर्वीक्त चतुर्थ अर्थ में जव चावल आदि के नाई जो मन्त्रों को द्रव्य कहा गया है यह कैसा अनर्थ है ? क्योंकि कहां खर, ऋषि, छन्द, आदि से भूषित, महाशक्तिशाली मन्त्र

और कहां जब चावल ?

उ०—इस प्रश्न का प्रथम 'ब्रीहिभियंजेत यवैर्बा' (चावल से यज्ञ करे बा जव से)
'ऐन्द्र्या गार्हपत्यप्रपितष्ठते' (ऐन्द्री ऋचा से गार्हपत्य अग्नि की स्तुति करें) 'इषेलेति पलाशशासांछिनत्ति' (इषेला, मन्त्र से पलाशशासा को काटें) इत्यादि बिधिवाक्यों से पूछना चाहिये कि वे
क्यों चावल और जव के समान मन्त्रों को यज्ञकर्म में लगाने की आज्ञा देते हैं ? तदवन्तर पूर्वमीमांसाचार्य जैमिनिमहार्ष से पूछना चाहिये कि मी० द० अध्या० ३ पा० ३ 'धर्मोपदेशाच्च न हिं
द्रव्येण सम्बन्धः' सू० ।। ३४ ॥ में उन्हों ने साममन्त्रों को क्यों द्रव्य कहा ? तथा भाष्यकार
शत्ररखामी से भी पूछना चाहिये कि उक्त सूत्र के भाष्य में 'नास्य सामद्रव्येण सह सम्बन्धों बेदितब्यः' (उच्चल गुण का साममन्त्रक्षी द्रव्य के साथ सम्बन्ध नहीं समझना चाहिये) इस
वाक्य में उन्हों ने साममन्त्रों को क्यों द्रव्य कहा ? और तदनन्तर जो २ दार्शनिकगण शब्द को
द्रव्य मानते हैं उन से भी पूछना चाहिये कि क्या ऋगादिमन्त्रक्षी शब्द भी द्रव्य हैं ? तात्पर्य यह
है कि मन्त्र की महिमा वही है कि जो बेद से निकल सकती है और बेद ही, जब चावल और जब
के समान यञ्चकर्म में मन्त्रद्रव्यों का बिनियोग करता है तब प्रश्नकर्ता महाशय को जो अनर्थ की
श्राका होती है उसका कारण यही है कि पूर्व हीं बेददुर्गसज्जन के मन्त्रोपयोगप्रकरण में मीमांसा
दर्शन का सिद्धान्त जो कहा गथा है उसका दर्शन स्वप्न में भी प्रश्नकर्ता ने नहीं पाया है।

प्रमा० (५) एवम्-प्रजापतिका इदमेक आसीत् स तपोऽतप्यत, तसात् तपस्तपानात् त्रयो देवा असुज्यन्त अग्निर्वायुरादित्यः, ते तपोऽतप्यन्त तेभ्यस्तेपानेभ्यः त्रयो वेदा असु-हयन्त अग्नेर्ऋग्वेदो बायोर्यजुर्वेद आदित्यात् सामवेदः (श० कां० ११ अ० ५)

इति शतपथवाक्यमपि ब्राह्मणभागस्य बेदत्वमुद्गिरज्जागर्तितराम् । अत्रोपपत्तिः

म्रजिप्रयोगपयुक्तवेदपौरुषेयत्वशंकाानिराकरणं च पूर्ववत्।

प्रमा १ (६) एवम् यत्र यत्रैव मन्त्रे ब्राह्मणवाक्ये च ऋग्बेदाादिशब्दा बेदशब्दस्तत्पर्या-याः श्रुतिस्वाध्यायादिशब्दा बा श्रूयन्ते तत्सकलमेव ब्राह्मणभागस्य बेदतायां प्रमाणम् ।

यथा 'सहोवाचर्वेदं भगवोऽध्येति यजुर्वेदं सामवेदम्' (छान्दोग्योपनि० प्र०७) स्वाध्यायान्माप्रमदः(तैतिरीयोपनि०अनु०११) स्वाध्यायोऽध्येतव्यः (शत०ब्रा०११।५।६।७)

इत्यादीत्यवधारणीयम् 'यतः, यथा मन्त्रशब्द ऋगादीनां, ब्राह्मणशब्दश्च शतपथा-दीनामेव, ऋगादिशब्दाश्च तत्तन्मन्त्रविशेषाणामेव, वाचका नत्वत्र वैपरीत्यम् तथैव ऋग्वेदा-दिशब्दा ऋगादिमन्त्रशतपथादितत्तद्वाह्मणिबशेषसम्रदायस्यैव, बेदादिशब्दाश्च समस्तमन्त्र-समस्तब्राह्मणसमुद्रायस्यैव, वाचका नचेहापि विपर्ययसंभवः। यथा च कचिहगादिशब्दानां

प्रमा०-(५) 'प्रजापतिर्घा इदमेक०' यह शतपथवाक्य भी ब्राह्मणभाग के बेद होने को सिद्ध करता है क्यों कि इस में भी ऋग्बेद आदि शब्द स्थित हैं जो कि एक्त रीति से मन्त्र और ब्राह्मण के समुदाय ही को कहते हैं। इस वाक्य का अर्थ यह है कि आदिसृष्टिसमय में प्रजापित तप करते हैं उस समय अग्नि, बायु, सूर्य, ये तीन देवता उनसे उत्पन्न होते हैं और वे भी तप करते हैं उस समय अग्नि से ऋग्बेद, बायु से यजुर्वेद, और सूर्य से सामबेद प्रकट होतां है।

प्रमा०—(६) जिस २ मन्त्रवाक्य अथवा ब्राह्मणवाक्य में ऋग्वेद आदि शब्द बा बेद शब्द अथवा बेदवाचक श्रुति, छन्द, आम्नाय, निगम और 'शब्द' आदि पद मिलते हैं वे सब ही वाक्य ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण हैं जैसा कि ऊपर संस्कृतभाग में उदाहरण के लिये दो तीन वाक्य छिखे हैं।

क्यों कि ऋग्बेद आदि शब्दों के विषय में पूर्वमीमां सादर्शन का यह अटल सिद्धान्त है कि जैसे यह नियम है कि 'मन्त्र' शब्द ऋगादि ही का और 'ब्राह्मण' शब्द शतपथ आदि ही का तथा 'ऋगादि' शब्द उन २ मन्त्रों हीं के नाम हैं न कि अन्य किसी शब्द के वैसे ही ऋग्बेद आदि शब्द, ऋगादि मन्त्र और उनके संबन्धी शतपथ आदि ब्राह्मण के समुदाय है। के तथा 'बेद' आदि शब्द भी समस्त मन्त्र और समस्त ब्राह्मण के समुदाय ही के वाचक हैं न कि दूसरे किसी शब्द के। और (जैसे) यदि किसी अवसर पर कहीं ऋगादिशब्दों का मन्त्र और ब्राह्मण के समुदाय में प्रयोग है तो वह कदापि मुख्य नहीं है किंतु छत्रधारी और छत्रराहित मनुष्यों के समुदाय में 'छित्रिणो यान्ति ' (छाता वाले जाते हैं) इस 'छित्रि' शब्द के प्रयोग के नाई केवल मन्त्रवाचक क्राादिशब्द का भी लक्षणा ही से वह प्रयोग है अर्थात् ऋगादिशब्द का मुख्य अर्थ मन्त्र ही है और उसका संबन्ध, मन्त्र, ब्राह्मण, दोनों के समुदाय से है इतने मात्र से उस समुदाय को ऋक् भादि शब्द से कहा जाता है क्योंिक मुख्य अर्थ के संबन्ध ही का नाम लक्षणा है जैसे उक्त उदा-हरण में 'छत्रि' शब्द का 'छत्रधारी' मुख्य अर्थ है और उसका संबन्ध अर्थात् छक्षणा उस समुदाय मन्त्रब्राह्मणसमुदाये प्रयोगो न मुख्यः किंतु छक्षणयेव निर्वाह्यः तथैव ऋग्वेदादिशब्दाना-मृगादिमन्त्रवात्रे तद्वाह्मणमात्रे वा वेदादिशब्दानां च मन्त्रमात्रे ब्राह्मणमात्रे वा काचित्कः अयोगो यद्यानुभविकस्तदा स छक्षणकप्राण एव नतु शक्ति मूल इति विवेकः।

तथाच मीमांसादरीने हे अध्याये हे पादे १ अधिकरणं दर्शितम् शास्त्रदीपिका-

याम् पार्थसाराथामिश्रैः।

पूर्वयोःपादयोः श्रुतिछिङ्गाबिनियोगौ चिन्तितौ इदानीं वाक्यविनियोगिश्विन्तिते 'त्रजापित्रकामयत प्रजाः स्रजेयेति सत्तपोऽतप्यत तस्मान्तेपानात्त्रयोदेवा अस्ज्यन्ताग्नि-बांयुरादित्यः ते तपोऽतप्यन्त तेभ्यस्तेपानेभ्यस्रयोबेदा अस्ज्यन्ताग्नेर्द्रुग्वेदोवायोर्यजुर्वेद आदित्यात्सामबेद 'इत्युपक्रम्य श्रूयते ज्योतिष्टोमे 'तस्मादु चैर्क्रचाक्रियते जपाश्चयज्ञवा ज्वैः साम्नेति, तत्र संश्चयः किम्रचेद्रत्वाद्यक्रगादिजातानां धर्माः मन्त्राणामित्यर्थः ऋचामन्त्रणोन् चौरिति, किंवा बेदधर्माः ऋगवदेनोचिरिति । उपक्रमे बेदश्वणादुपसंद्रारेच ऋगादिश्वणान्तंश्चयः । बेदशब्दो हि मन्त्रबाह्मणसमुद्रायात्मनो ग्रन्थविन्तेषस्य वक्ता, नैकस्य मन्त्रवाक्यस्य बाह्मणवाक्यस्य वा वाचकः प्रयोगाभावात् । नश्चकं से त्रीणि वाक्यान्यधीत्य 'बेदानधीत्य-बेदौ वा बेदं बाऽिय यथाक्रम' मित्येतच्छास्त्रार्थमनुष्ठितं मन्यन्ते । तस्मात् सम्रदायो बेदः, वा स्वावा॥

से है कि जिस में छत्रधारी और छत्रशून्य दोनों प्रकार के मनुष्य हैं (वैसे) ही ऋगादि मन्त्र और छनके ब्राह्मण, इनके समुदाय को कहने बाले ऋग्वेदादि शब्दों का केवल ऋगादि मन्त्रों अथवा केवल उनके ब्राह्मणों के विषय में तथा 'वेद' 'स्वाध्याय' आदि शब्दों का मन्त्रमात्र अथवा ब्राह्मणमात्र के विषय में यदि कहीं प्रयोग होता है तो वह भी मुख्य नहीं है किन्तु शरीर के एक देश (अवयव अर्थात् अङ्कुली अर्थदे) में 'शरीर' शब्द के प्रयोग के नाई लक्षणामूलक ही है।

अब उक्त सिद्धान्त के प्रदर्शनार्थ पूर्वमीमांसा अध्या० ३ पा० ३ अधि० १ दिखलाया जाता है जो कि शास्त्रदीपिका में पं० पार्थसारिथिमिश्र ने विषय, संज्ञय, पूर्वपक्ष, सिद्धान्त, के विभाग

से बर्णन । किया है कि--

विष०—(शतपथ कां० १३ अध्या० ५) 'प्रजापितरकामयत प्रजाःसृजियेति' (इसका अर्थ ५ वें प्रमाण में कहा गया है) ऐसा उपक्रम (आरम्भ) कर ख्योतिष्टोमयज्ञ के प्रकरण में 'तस्मादुचैर्ऋचाक्रियते, उपांशुयजुषा, उच्चै:साम्ना' (उक्त कारण के अनुसार ऋक् से ऊंचा करें यज्ञ से मन्द करें, साम से ऊंचा करें) यह श्रुति उपसंहार (अन्त) में है।

संशय--उक्त उपसंदारश्रुति में कहे हुए उंचाई आदि, क्या ऋगादिनामक मन्त्रों के धर्म हैं अर्थात् उक्त श्रुति का यह अर्थ है कि ऋगादिनामक मन्त्र को ऊंचा करे इत्यादि ? अर्थवा

उंचाई आदि बेद के धर्म हैं अर्थात् ऋग्बेद से ऊंचा करै इत्यादि ?।

संशय का कारण यह है कि उपक्रमश्रुति (प्रजापितरकामयत०) में 'बेद' शब्द सुनी जाता है और उपसंहारश्रुति (तसादुचैः) में 'ऋक्' आदि शब्द ही सुने जाते हैं क्योंकि 'बेद' शब्द किसी एक मन्त्रवाक्य वा ब्राह्मणवाक्य का इस कारण वाचक नहीं है कि उतने मात्र में बेद शब्द का प्रयोग ही नहीं होता इसी से दो चार वाक्यों को पढ़ कर यह कोई नहीं समझता कि 'बेदानधीत्य बेदों वा बेदं बाऽपि यथाक्रमम्' (यथाक्रम चार वा दो वा एक बेद को पढ़ कर) इस

नतु बेदयतीति ब्युत्पस्या एकैकमेव वाक्यं वेद इति मूर्खप्रलिपतमेतदनुसर्तव्यम् । ऋगादिशब्दास्तु मन्त्रवचनाः स्थापितास्तेनोपक्रमोपसंहारयोविपतिपत्तेः एकवाक्यत्वाचोभयोरेकिकिबयत्वे ऽवश्यंभाविनि किम्रुपसंहारस्थिविध्युदेशवशादुपक्रमस्थार्थवादगतोबेदशब्दोवेदैकदशमन्त्रपरोभवतु किं बोपक्रमगतार्थवादवशादुपसंहारस्थमृगादिपदमृगादिपायवेदपरं भवत्वितिसंश्रयः । तन्त । गुणत्वादनुवादत्वादर्थवादस्य लक्षणा । मुख्यस्यापिप्रधानत्वादशाप्तिषयत्वतः ॥ १॥ विध्युदेशोजघन्योऽपिस्वार्थहानिं न गच्छित । मुख्याऽपि दीक्षणीया न लभतेः
हि स्वधमताम् ॥ २॥ जघन्यस्यापि सोमस्य प्रधानत्वातस्वधमता । वक्ष्यते तद्वद्रत्रापि विध्युदेशस्य सा भवेत् ॥ ३॥ प्रधानत्वादपाप्तविषयत्वाच विध्युदेशे यथाश्रुतादन्यथात्वमप्रमाणकम् । अर्थवादस्तु प्रमाणान्तरपाप्तार्थत्वात्तद्वयेन लक्षणयाऽपि नीयमानो न दुष्यतीति
जाताधिकारा उच्चैस्त्वादय इति प्राप्ते कृषाः । लब्धात्मनः प्रधानस्य बलीयस्त्वं गुणाद्ववेत् ।
विध्युदेशस्त्वलब्धात्मा लब्धात्मानं न बाधते ॥१॥ धर्मः पश्रुना सोमेन यजेते । तिःवचनातु-

1k भाषा 1l

मनुवाक्य के अर्थ को मैंने चिरतार्थ किया। इस से यही निश्चित होता है कि मन्त्र और ब्राह्मण के समुदायरूपी प्रन्थिवरोष ही का नाम 'बेद' है। और 'बेदयतीति बेदः (जो ज्ञान करानै वहीं बेद है) इस ब्युत्पत्ति से प्रत्येक वाक्य का नाम बेद हैं 'इस मूर्बप्रछाप के पीछे नहीं चलना चाहिये वथा पूर्व में यह निश्चित हो चुका है कि 'ऋगादि' शब्द, मन्त्र ही के वाचक हैं तथा उपक्रम छप्य पूर्व में यह निश्चित हो चुका है कि 'ऋगादि' शब्द, मन्त्र ही के वाचक हैं तथा उपक्रम छप्य समय नहीं ज्ञात होता क्यों कि उपक्रमश्रुति में 'बेद' शब्द है जिसका भौर ही अर्थ है और उपस्मित नहीं ज्ञात होता क्यों कि उपक्रमश्रुति में 'बेद' शब्द की क्या विधिवाक्यरूपी उपसंहारश्रुति के अनुसार अर्थवादरूपी उपक्रमश्रुति के 'बेद' शब्द की उक्त समुदायरूपी मुख्यार्थ से उतार कर बेद के भागविदेशक्ष्मी मन्त्रों पर लगाना चाहिये शिअथवा अर्थवादरूपी उपक्रमश्रुति के अनुसार अपसंहारश्रुति के 'ऋगादि' पदों को मन्त्ररूपी मुख्यार्थ से चढ़ा कर उक्त समुदायरूपी बेद में लगाना उपसंहारश्रुति के 'ऋगादि' पदों को मन्त्ररूपी मुख्यार्थ से चढ़ा कर उक्त समुदायरूपी बेद में लगाना चाहिये शिक्ष संहार का सेल सहार होना उचित ही है क्योंकि उक्त दो शितियों को छोड़ कर अन्य प्रकार से उपना चाहिये शिवह संहार का मेल नहीं हो सकता।

पूर्वपक्ष उपसंहार (उच्चैर्स्चा०) श्रुति, यद्यपि पीछ है तथापि विधिरूप होने से वह अधान है और उसके अर्थ का बोध दूसरे प्रमाण से नहीं होता इससे अत्यावश्यक भी है तथा अधान है और उसके अर्थ का बोध दूसरे प्रमाण से नहीं होता इससे अत्यावश्यक भी है तथा अधान प्रमान है जैसा कि बेरपुर्ग सजन के उपवाद प्रकरण में पूर्व हीं कहा जा चुका है तथा अत्यावश्यक भी नहीं है क्यों कि उसके अर्थ का अर्थवाद प्रकरण में पूर्व हीं कहा जा चुका है तथा अत्यावश्यक भी नहीं है क्यों के उसके अर्थ का अर्थवाद प्रकरण में पूर्व हीं कहा जा चुका है तथा अत्यावश्यक भी नहीं है क्यों के उसके अर्थ का बोध, उक्त उपसंहार श्रुति से हाता है इससे वह अनुसादक ही है न कि विधायक। तो ऐसी दशा में जैसे राजा के अनुसोध से मृत्य निच उत्परा जाता है वैसे उक्त उपसंहार श्रुति के अनुसार उपक्रम में जैसे राजा के अनुसोध से मृत्य निच उत्पर्श (मन्त्र और ब्राह्मण का समुदाय) से उतार दिये जायंगे के 'ऋग्वेद' आदि शब्द, अपने मुख्यार्थ ही पर स्थित और राजा के नाई उपसंहार श्रुति के 'ऋक्,' आदि शब्द अपने मन्त्र हाणी मुख्यार्थ ही पर स्थित और राजा के नाई उपसंहार श्रुति के 'ऋक,' आदि शब्द अपने मन्त्र हाणी । जैसे 'सोमेन-रहेंगे न कि वहां से हटा कर मन्त्र झाणसमुदाय में उनकी उक्षणा की जायगी। जैसे 'सोमेन-रहेंगे न कि वहां से हटा कर मन्त्र झाणसमुदाय में उनकी उक्षणा की तथापि उसकी प्रक्रिया ध्यों यजते '(सोमयाग करें) यह विधिवाक्य यद्यपि पीछे कहा हुआ है तथापि उसकी प्रक्रिया ध्यों

सोमस्य कालो लब्धात्मा युक्तं यहीक्षणीयाकालं बाधते, विध्युदेशस्त्वह मन्त्राविषय-त्वेनालब्धात्मा कथमिवार्थवादं बाधेत । तथाहि । बेदशब्दः प्रक्रमगतोऽसंजातप्रतिपक्षत्वाः द्यथाश्चतार्थपर एव तावदवधार्यते । तस्मिश्चाबधारिते सत्युपसंहारगतमृगादिपदमुपसंजातः प्रतिपक्षिबिज्ञानत्वाद्यथाश्चतार्थसत्तदेकवाक्यतामप्रतिपद्यमानं तदनुगुणबेदपरतयैवात्मानं लभते नान्यथा येन बाधकं स्यात्, उपक्रमएव हि बेदानां किंचिद्धिधास्यत् इत्यवगतं किंतु तिद्विधयीमत्येतावदनवगतमपेक्षितं च । अतो बिध्युद्देशगतोऽपि ऋगादिशब्दो ऽवगतिषय-त्वादनुवाद इति लक्षणं सहते, तसाद्धेदधर्माः, ऋग्बेदेन यत्त्रियते बिधीयते तदुचैिति तदिहोपक्रमोपसंहारैकवाक्यतया बेद्धर्मत्वमबधारितामिति वाक्यबिनियोगः, एकदेशिनां त्वेकैकभेव वाक्यं बेदशब्दवाच्यामित्यभ्युपगमादुपसंहार्वशेन मन्त्रवाक्यपरोऽपि बेदशब्दो ब्याख्यायमानः श्रुत्यर्थाम च्यवते इति सिद्धान्तो दुर्छभः स्यात् । अत्र यदुच्यते विधेयतया न बिधायकवद्भेदकत्वमिति तद्युक्तम्,यद्यपि हि बिनियोगिपक्षं मन्त्रवाक्यं न बिधायक ॥ भाषा॥

की त्यों अपने काल पर स्थित रहती है और दक्षिणीयानामक यज्ञ यद्यपि पहिले कहा हुआ है तथापि वह अपने काल से हटा दिया जाता है निदान ऊंचाई आदि धर्म, ऋगादि मन्त्रों ही के हैं न कि अन्य क्रियांओं के।

सिद्धा०-- उपक्रमश्रुति का 'बेद्' शब्द जिस समय प्रथम श्रवण में आता है उस समय कोई उसका बिरोधी नहीं रहता इस कारण वह, मन्त्रब्राह्मणसमुदायरूपी अपने मुख्य अर्थ ही का निर्विघ्न बोध कराता है और जब यह निश्चय हो चुका कि उक्त बेदशब्द, मन्त्रब्राह्मणसमुदाय ही का बोधक है तब पश्चात् उपसंहारश्रुति के ऋगादिशब्दों का श्रवण होता है। उस समय वे केवल मन्त्ररूपी अपने मुख्यार्थ का बोध, दो कारणों से नहीं करा सकते एक यह कि केवल मन्त्र रूपी अर्थ का विरोधी मन्त्रब्राह्मणसमुदायरूपी अर्थ है जिसका बोध, उपक्रमश्रुति के बेदशब्द से पूर्व हीं हो चुका है। दूसरा यह कि उपक्रेम और उपसंहार का मेल न होने से उक्त वाक्य एक न रहैगा किन्तु दूट कर दो दुकड़ा हो जायगा । इस से केवल मन्त्ररूपी अर्थ में उक्त उपसंहारश्रुति के स्गादिशब्द का जन्म ही नहीं हो सकता। तात्पर्य यह है कि उपक्रम हीं में मन्त्रब्राह्मणवाची बेदशंब्द से, प्रथम हीं यह निश्चय हो जाता है कि मन्त्रबाह्मणरूपी बेदों के बिषय में ऊपर चल कर किसी धर्म का बिधान किया जायगा। केवल इतना ही अविशष्ट अपेक्षित रहता है कि किस धर्म का विधान किया जायमा ? जिसका बोध 'उच्चै: ' आदि शब्दों से होता है। इसी से केवल उंचाई आदि धर्म ही अपेक्षित है न कि ऋगादिशब्द का मन्त्ररूपी मुख्यार्थ भी, तथा ऋगादिशब्द के मन्त्ररूपी मुख्यार्थ का बोध भी उपक्रम के 'बेद' शब्द ही से पूर्व में हो चुका है इस छिये यद्यि ऋगादिशब्द बिधिवाक्य में हैं तथापि वे बिधायक (आज्ञा) नहीं हैं किन्तु अनुवादक ही हैं जिस से कि वे, मन्त्ररूपी मुख्यार्थ से हटा कर लक्षणा के द्वारा मन्त्रजीह्मणरूपी अर्थ पर खींच दिये जायंग और ऐसा करने में उपक्रम और उपसंहार के मेल से उक्त बेदवाक्य भी न दूरिंगा क्योंकि ऋगादि शब्द से भी मन्त्रब्राह्मणसमुदाय ही का बोध होगा जैसा कि उपक्रम के बेदशब्द से हुआ है और उक्त रीति से सोमयज्ञ का काल भी दीक्षणीयायज्ञ के काल को न हटाता यदि यह बेदवाक्य न होता कि 'यहब्दा पशुना सोमेन यजत' (पशुयज्ञ करके सोमयाग करें) क्योंकि इस वाक्य से

वद्नपेक्षं बेदकं तथापि ताबद्धेदयित ताबच बेदशब्दप्रवृत्तौ निमित्तप् इत्यिविशेषः,यथा शुक्रमान्येति। यत्स्वभावशुक्धप्रदकं यच पाकापेक्षं पार्थिवं तत्रोभयत्राप्यविशेषेण शुक्कशब्दः प्रवर्तते तथा बेदशब्दोऽपि। निह विधिवाक्यमपि निरपेक्षं बेदयित पदार्थब्युत्पत्तिन्यायिवचारादि-सापेक्षत्वात् तस्मात् साधारणो बेदशब्दः कांस्यभोजिवदुपसंहारवशान्मन्त्रपरः स्यादित्यिधि-करणिवरोधः स्यादित्यास्तां तावत् इति।

तथाच सूत्राणि।

श्रुतेर्जाताधिकारः स्यात् ॥ १॥

बृ॰ ज्योतिष्टोमे श्र्यते, उचैः ऋचा क्रियते उचै स्माम्ना उपांश्रयज्ञषेति । उचै स्त्वादि-धर्माः ऋगादिजातिमधिकृत्य प्रवृत्ताः किंवा ऋग्वेदादीन् अधिकृत्य प्रवृत्ता इति संशये पूर्वप-क्षमाह।श्रुतेरिति । जाते ऋक्त्वादिजातौ अधिकारःस्यात्, उचैस्त्वादिधर्माः ऋक्त्वादि-त्यवच्छिन्ना इत्यर्थः। ऋचेति श्रुतेः। ऋगादिशब्दानाम् ऋक्त्वादिजातौ शक्तत्वादितिभावः। १। बेदो वा प्रायदर्शनात् ॥ २॥

्वृ० सिद्धान्तमाह । बेद इति । बेदः उक्ति विध्युद्देशः मन्त्रब्राह्मणसमुद्दायरूपबेद्धर्मः क्रिंग्वेदन यद्धिहितं तत्सर्बमुचैरित्यर्थः । प्राये वाक्योपक्रमे बेदशब्ददर्शनात् । प्रजापितरका-मयत प्रजाः स्रजेयेति स तपोऽतप्यत तस्मालपस्तेपानात्त्रयो देवा अस्डयन्ताग्निर्बायुरादित्यस्ते तपोऽतप्यन्त तेभ्यस्तेपानेभ्यः त्रयोबेदाअस्डयन्ताग्नेर्क्रुग्वेदः बायोर्यज्ञवेदः आदित्यात्साम-वेद इति उपक्रम्य तस्मादुच्चैर्क्रचा क्रियत इत्युपसंहारादसंज्ञाताविरोधित्वेन प्रबछत्वेन उपक्रमानुसारेण उपसंहारनयनमिति भावः ॥ २ ॥

॥ भाषा॥

सोमयाग का काल निश्चित हो चुका है तो ठीक ही है कि उसके अनुसार दीक्षणीया का काल हटा दिया जाता है। तस्मात् मन्त्रब्राह्मणसमुदायरूपी बेद ही के धर्म उंचाई आदि हैं न कि केवल क्यादिमन्त्रों के। और उपसंहारश्चिति का अर्थ भी यही होगा कि ऋग्वेद आदि के ब्राह्मणरूपी विधिवाक्यों से जिन २ कर्मों का बिधान है वे सब उक्त उपसंहारश्चिति के अनुसार ऊंचे बा नीचे किये जायंगे न कि केवल मन्त्रमात्र।

अब इस अधिकरण के सूत्र दिखलाये जाते हैं कि-

"श्रुतेर्जाताधिकार: स्थात्" ॥ १॥ ज्योतिष्ठोम में सुने हुए "उच्चैर्ऋचाक्रियते०" इत्यादि वाक्य में उक्त उंचाई आदि धर्म ऋगादिमन्त्रों से सम्बन्ध रखते हैं ? अथवा मन्त्रब्राह्मणसमुदाय-रूपी ऋग्बेद आदि से ? ऐसे सन्देह के अनन्तर इस सूत्र से यह पूर्वपक्ष किया जाता है कि ऋगादिमन्त्रों ही में उंचाई आदि धर्म का अधिकार है क्यों कि केवल मन्त्र ही, ऋक् आदि शब्दों का मुख्य अर्थ है ॥ १ ॥

"वेदोबा प्रायदर्शनात्" ॥ २ ॥ सिद्धान्त यह है कि उंचाई आदि, मन्त्रब्राह्मणसमुद्रायलिपो बेद ही के धर्म हैं अर्थात् उक्त श्रुति का यह अर्थ है कि ऋग्बेद आदि के ब्राह्मणभाग से जिन
कर्मों का बिधान है वे सब उंचे किय जायं क्योंकि उक्त उपक्रमश्रुति में 'बेद' यह कहा हुआ है
जिसका मन्त्रब्राह्मणसमुद्राय मुख्यार्थ है और इस उपक्रमक्ष्पी मुख्यप्रमाण के अनुसार उपसंहार
के ऋगादिशब्दों का मन्त्रक्षी मुख्यार्थ, नहीं अर्थ है किंतु मन्त्रब्राह्मणसमुद्राय ही छक्ष्य अर्थ है ॥२॥

लिङ्गाच्च ॥ ३॥

बृ० ऋक्पदेन बेदबोधोऽपि अन्यत्र दृश्यत इत्याह। लिङ्गादिति। ऋग्भिःपातर् दिवि-देव ईयते यजुर्वेदेन तिष्ठति मध्ये अहः। सामबेदेनास्त्रमये महीयते बेदैरग्रून्यस्त्रिभिरेति सूर्य-इत्यत्र प्रथमचरणे ऋग्भिरित्यत्र ऋग्बेदे ऋग्ब्यवहार इत्यत्र चतुर्थचरणे बेदैरिति बहुवचनं लिङ्गम् अन्यथा बेदाभ्यामित्येव वदेत्।। ३।। त्रयीविद्याख्या च तिद्वदि।। ५।।

बृ॰ हेत्वन्तरमाइ। त्रयीति। त्रयी विद्या यस्य स त्रयीविद्यः। त्रयीति ऋक्सामयजुः प्रमिद्धः तथापि त्रयीत्यनेन न ऋक्सामयजुषो यृह्यन्ते किंतु त्रयीपदस्य वेदत्रये छक्षणा कल्पयित्वा तद्विदि त्रयीविद्य इत्याख्या भवति तथा प्रकृतेऽपि उपसंहास्वाक्ये छक्षणया प्रकृते विद्या प्रकृतेऽपि उपसंहास्वाक्ये छक्षणया प्रकृते विद्या विद्या प्रकृते विद्या प्रकृते विद्या प्रकृते विद्या प्रकृते विद्या प्रकृ

धर्मोपदेशाच्च निह द्रव्येण संबन्धः ॥ ४ ॥

बु० इतश्र बेदधर्महत्याह । धर्मविति । उच्चैःसाम्नेति साम्नः पृथक् धर्मीपदेशात् । 'ऋ चयध्यृढं साम गायती 'ति ऋच्येव गेयत्वात् उच्चैस्त्वसिद्धेः पुनिवधानं व्यर्थं स्यादिति भावः । ॥ भाषा ॥

लिक्काच ॥ ३ ॥ 'ऋक्' शब्द का लक्षणा के द्वारा मन्त्रनाहाणक्ष्पी बेदक्ष्प अर्थ अन्यत्र भी होता है जैसे "ऋगिः प्रातिदिविव " (सूर्यदेव तीन बेदों से शून्य हो कर कदापि नहीं चलते क्योंकि प्रातःकाल ऋक् से, मध्याह में यजुर्वेद से और सायंकाल में सामन्नद से उनकी स्तृति की कर्योंकि प्रातःकाल ऋक् से, मध्याह में यजुर्वेद से और सायंकाल में सामन्नद से उनकी स्तृति की जाती है) इस मन्त्र में 'ऋगिः' यहां पर 'ऋक्' शब्द के साथ बेदशब्द नहीं है तथापि 'ऋक्' शब्द का मन्त्रनाहाणक्ष्पी बेद ही अर्थ है क्योंकि इसी मन्त्र में कहा है कि 'तीन बेदों से 'और इस में ऋक् शब्द का यदि केवल मन्त्र ही अर्थ हो तो यजुर्वेद, सामन्त्र में बेद की तीन संख्या पूर्ण की जाती है। वैसे ही प्रकृत उपसंहारश्रुति में भी ऋक् आदि शब्दों का लक्षणा के द्वारा पूर्ण की जाती है। वैसे ही प्रकृत उपसंहारश्रुति में भी ऋक् आदि शब्दों का लक्षणा के द्वारा मन्त्रनाहाणसमुदाय ही अर्थ है। ऋयीविद्याख्या च ताद्विदि ॥ ५॥ जैसे यद्यपि 'ऋयी' ऋक्, साम और यजु मन्त्र ही को कहते हैं तथापि 'ऋयोविद्यः' वही पुरुष कहा जाता है कि जो सर्वेद, यजुर्वेद, सामबेदक्षी मन्त्रनाह्मणसमुदाय को जानता है और वह पुरुष कहा जाता है कि जो कर्ष कहा जाता के ऋक्आदि मन्त्रनाह्मणसमुदाय को जानता है और वह पुरुष कहा परि 'ऋयीविद्य' वहीं कहा जाता जो कि ऋक्आदि मन्त्रनाह्मणसमुदाय को जानता है और वह पुरुष कहा परि 'ऋयीविद्य' शब्द में ऋयी शब्द को ऋक्, साम, यजु, मन्त्रक्षी मुख्यार्थ से हटा कर मन्त्रनाह्मणसमुदाय क्षी तीनों बेद, लक्षणा के द्वारा उस (ऋयीशब्द) का अर्थ किया जाता है ऐसे ही उक्त उपसंहर्त क्षी तीनों बेद, लक्षणा के द्वारा उस (ऋयीशब्द) का अर्थ किया जाता है ऐसे ही उक्त उपसंहर्त क्षी तीनों बेद, लक्षणा के द्वारा उस (ऋयीशब्द) का अर्थ किया जाता है ऐसे ही उक्त उपसंहर्त क्षी तीनों बेद आर्थ होता है।। ५॥

'धर्मोपदेशाच नहिं द्रव्येण संबन्धः'।। ४॥ उक्त उपसंहारश्रुति से ऋक् में उंचाई की विधान पृथक् है कि 'उचैर्ऋचा' और साम में उंचाई का विधान अलग है कि 'उचैरसामा' तथा 'ऋच्यध्यृहं साम गायति' (ऋक् मन्त्रों में उपर से साम गावै) इस श्रुति के अनुसार यह सिं 'ऋच्यध्यृहं साम गायति' (ऋक् मन्त्रों में उपर से साम गावै) इस श्रुति के अनुसार यह सिं है कि साममन्त्र अक्षरक्षी नहीं होते किन्तु गानमात्रक्षी होते हैं और गान भी उनका ऋक्षात्रों है कि पर होता है। अब ध्यान देना चाहिये कि उक्त उपसंहारश्रुति से यदि ऋगादिमन्त्रों ही हैं उचेता का विधान होता तो साममन्त्र में उच्चता का विधान उपशे ही हो जाता क्योंकि ऋक् की उच्चता का विधान होता तो साममन्त्र में उच्चता का विधान उपशे ही हो जाता क्योंकि ऋक् की उच्चता से साम की उच्चता आप से आप इस कारण हो जाती कि गानक्षी साममन्त्र ऋवाओं है

उक्तार्थमेवाह । नहीति । द्रव्येण साम्ना सम्बन्धो वक्तव्यो नहि ॥ ३ ॥ इति

प्रमान (७) एवम् ब्राह्मणभागस्य बेदत्वे 'श्रुतेर्जाताधिकारः स्या 'दित्युक्तं पूर्वपक्षसूत्र-प्रमानम् अन्यथा हि मन्वादिसमृतिवाचकत्वस्येव ब्राह्मणभागवाचकत्वस्यापि उच्चैर्क्षचेत्या-दिवाक्यस्थऋगादिपदेषु प्राप्त्यभावेन श्रुतिशब्दवाच्यऋगादिपदोत्तरत्तीयाशक्त्या जाता-धिकारत्वब्यवस्थापनस्य ब्याबर्त्यशून्यतया सूत्रस्यैव वैयर्थ्यमसंगात्।

प्रमा० (८) एवम् 'बेदोबामे 'ति सिद्धान्तसूत्रमित तत्र मानम्, मन्त्रमात्रस्य वेदत्वे हिवदम्रपत्रम्य ऋगादिशब्दमयोगदर्शनाद्भेद एव ऋगादिपदार्थइति पक्षान्तरं न शक्यते वक्तुम्, उपक्रमस्थऋग्वेदादिशब्दस्यापि भूमिकाधारिमते मन्त्रमात्रवाचकत्या जाताधिकारवेदाधि कारयोरैक्यापच्या 'बेदोवे 'ति पक्षान्तरसूचकस्य वा शब्दस्योन्मत्तमछापत्वापत्ते:। तन्मते हि ऋगादिऋग्वेदादिशब्दानां पर्यायत्वमेष, अस्मिश्च सूत्रे बेत्यनेन पूर्वसूत्रोक्तमन्त्रजाता-तिरिक्तो मन्त्रबाह्मणसम्रदाय एव विषयभूतिविधिवाक्यस्य ऋगादिपद्वोध्यत्वेन सिद्धान्त्यते। एवंच 'अहे बुध्निय मन्त्र' मित्याद्युक्तश्चितिपर्याछोचनया मन्त्रमात्रशक्तानामृगादिपदानां बोध्यत्वं मन्त्रबाह्मणसम्रदाये, बिना छक्षणां न संभवतीति पक्रते विध्युद्देशे स्थिताना-मृगादिशब्दानां तत्र छक्षणा स्वीक्रियते वेदशब्दस्य तु सौत्रस्य मन्त्रबाह्मणसम्रदायवाचकतां

पर गाये जाते हैं न कि पृथक् और जब सामश्रब्द का साममन्त्र और ताण्ड्यादिब्राह्मण का समुदाय अर्थ माना जाय तब तो उच्चे:साम्ना यह विधान ब्यर्थ नहीं होता क्यों कि इस का यह अर्थ होता है कि ताण्ड्यादिरूपी ब्राह्मणभाग से जिन कर्मी का विधान है उनको ऊंचा करे। इस रीति से जब सामश्रब्द का मन्त्रब्राह्मणसमुदायरूपी अर्थ अनन्यगति हो कर करना ही पड़ता है तब ऐसे ही उक्त उपसंहारश्रुति में ऋक् यजुः शब्द का भी छक्षणा के द्वारा मन्त्रब्राह्मणसमुदाय ही अर्थ करना उचित है जिस से उक्त उपसंहारश्रुति में तीनों (ऋक् यजुः साम) शब्दों का अर्थ तुस्यरूप हो जाय। इसी अभिप्राय से उक्त सूत्र में जैमिनिमहर्षि ने मुक्तकण्ठ हो कर यह कहा है कि द्रव्यरूपी साममन्त्र में उच्चतारूप धर्म का विधान हो ही नहीं सकता॥ ४॥ इति।

प्रमा०—(७) ब्राह्मणभाग के बेद होते में 'श्रुतेर्जाताधिकार: स्थात्' यह अनन्तरोक्त-सूत्र भी प्रमाण है क्योंकि यदि मन्त्रभाग ही बेद होता तो यह सूत्र ब्यर्थ ही हो जाता। प्रसिद्ध हो चुका है कि 'ऋगादि' शब्द से ब्राह्मणभाग का प्रहण न हो, इसी के लिये यह सूत्र है और ब्राह्मणभाग का प्रहण तभी प्राप्त हो सकता है जब कि ब्राह्मणभाग बेद है। और जिस प्रन्थ में बेद ब्राह्मणभाग का प्रहण तभी प्राप्त हो सकता है जब कि ब्राह्मणभाग बेद है। और जिस प्रन्थ में बेद होने का संभव नहीं है उसके प्रहण के बारणार्थ तो यह सूत्र नहीं हो सकता क्योंकि प्राप्ति होने हीं पर बारण किया जाता है।

प्रमा०—(८) 'बेदोबा प्रायदर्शनात्' यह उक्त सिद्धान्तसूत्र भी ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण है क्यों कि इस सूत्र में बा शब्द से, मन्त्रब्राह्मणसमुदायरूपी बेद ही 'उच्चैर्ऋचा०' इस उपसंहारश्रुति के ऋगादिशब्द का अर्थ है। यह पक्षान्तर सिद्धान्तरूप से स्थापित किया गया है और उस में कारण यह दिखलाया गया है कि उपक्रमश्रुति में (ऋग्बेदः) यह बेदशब्द है जो कि मन्त्रब्राह्मणसमुदाय को कहता है। और स्थामी के मंत में तो ऋक् आदि शब्द के नाई बेदशब्द का भी केवल मन्त्र ही अर्थ है इस लिये दो पक्ष हुआ ही नहीं, इस कारण 'बेदोबा०' इस शब्द विना बाशब्दबोध्यपक्षान्तरोत्थानमेव न संभवतीति बेदशब्दस्य मन्त्रज्ञाह्मणसम्रुदाय एव वाच्य इति पूर्वोक्तं निरवद्यमेव।

प्रमा० (९) एवम् ब्राह्मणभागस्य वेदत्वे 'लिङ्गाचे 'ति सूत्रमपि मानम् । किङ्गाच उक्तविधिस्थक्तगादिपदानां मन्त्रबाह्मणसमुदायात्मको वेद एव बोध्यो नत्वन्यत्रेव ऋगाः दिमन्त्रमात्रमिति हि तस्यार्थः । मन्त्रमात्रस्य वेदत्वे तु तत्र ऋगादिपदबोध्यतायाः शक्त्येव लब्धतया लक्षणाप्रमाणभूतलिङ्गोपन्यासानर्थक्यप्रसङ्गः ।

प्रमा० (१०) किंचोक्त बिषये 'त्रयी बिद्ये 'ति सूत्रमि मानम् चो हेतौ यतो मन्त्रब्राह्मणसमुदाय बिद्ये पुरुष त्रयी बिद्य इति ब्यवहारो न ऋगादिमन्त्रसमुदायत्रयमात्र बिदि
अतो बेद एव प्रकृते लक्षणया ऋगादिपदबोध्यो नत्वन्यत्रे वात्रापि शक्त्या मन्त्रमात्रमृगादिपदानामर्थ इति हि तद्र्यः । नहि ब्राह्मणभागस्य बेदत्वं बिना तद्घटितसमुदाये त्रयीपदब्यवहार्यत्वमुपपद्यते नच पौरुषेयापौरुषेयवाक्यसमुदाये केचन त्रयीपदं प्रयुद्धाना उपलभ्यन्ते।

प्रमा० (११) अपिच 'उच्चैर्क्स्चे' त्यादिवाक्यस्यैतद्धिकरणिबषयत्वमपि ब्राह्मण-भागस्य बेदत्वे मानम् । मीमांसादर्शने हि बेदवाक्यार्थस्यैव बिचारः क्रियते नतु स्मृत्यादि-पौरुषेयवाक्यार्थस्य । अतएव 'मीमांसाबेदवाक्यबिचारः' इति वदन्ति । शतपथब्राह्मण-स्थमेवचो 'चैर्क्स्चे' त्यादिवाक्यं यदिह बिषयत्वेनोपादीयते । बेदत्वाभावे चास्य वाक्यस्य पौरुषेयत्वापच्योक्ताधिकरणाबिषयत्वमेव नोपपद्येत ।

ममा० (१२) एवमुक्ताधिकरणघटकः संशयस्तदुपपादकसंशयश्च ब्राह्मणभागस्य बेदत्वे मानम् सिंह किम्रुचेस्त्वादय ऋगादिजातानां मन्त्राणां धर्मा ऋचा मन्त्रेणोच्चेरिति

से जो पक्षान्तर कहा गया है वह उनमत्तप्रछाप के तुल्य हो जायगा। और जब इस सिद्धान्त के धनुसार मन्त्रब्राह्मणसमुदायरूपी बेद ही छक्षणा के द्वारा उक्त उपसंहारश्रुति के ऋगादिशब्दों का अर्थ है तब ब्राह्मणभाग के बेद होने में अणुमात्र भी संदेह नहीं हो सकता।

प्रमा०——(९) ब्राह्मणभाग के बेद होने में 'लिङ्गाच' यह उक्त सूत्र भी प्रमाण है क्योंकि यदि केवल मन्त्र ही बेद होता तब तो वह ऋगादिशब्दों का मुख्यार्थ ही था उसमें लक्षणा करने का कोई प्रयोजन ही नहीं था इस से लक्षणा में प्रमाण देना महार्षि का ब्यर्थ ही हो जाता।

प्रमा०—(१०) 'त्रयीबिद्याख्या च तद्विदि 'यह उक्त सूत्र भी ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण है क्योंकि यदि ब्राह्मणभाग बेद न होता तो मन्त्रब्राह्मणसमुदाय में त्रयीशब्द का ब्यवहार जो इस सूत्र से दिखलाया गया है वह कदापि नहीं बनता। प्रसिद्ध है कि पौरुषेय और अपौरुषेय वाक्य के समुदाय में 'त्रयी' पद का कोई ब्यवहार नहीं करता।

प्रमा०—(११) यदि ब्राह्मणभाग बेद नहीं है तो षष्ठ प्रमाण में उद्धृत अधिकरण ही निर्विषय हो जायगा क्योंकि बेदवाक्यों हीं के बिचार का नाम मीमांसादर्शन है और उद्देश्चिय यह उक्त वाक्य शतपथबाह्मण ही का है जो कि स्वामी के मत से बेद ही नहीं है किन्तु पौर्विय है तो पौर्वियवाक्य कैसे उक्त अधिकरण का बिषय हो सकता है।

प्रमा०—(१२) यदि ब्राह्मणभाग बेद नहीं है तो पूर्वोक्त अधिकरण का मूलभूत संश्व और उस संशय की उपपत्ति ये दोनों कदापि नहीं हो सकते क्योंकि संश्य यह किया गया है कि किंवा मन्त्रवाह्मणसम्रदायात्मकवेदधर्मा अरुग्वेदेनोच्चैरितीत्याकारकः। नच ब्राह्मणभागस्य वेदत्वाभावे उसौ संभवति, द्वितीयकोटरेवानुत्थानमसङ्गात्। किंच एवं द्वास्य संशयस्योपपतिः वेदशब्दो हि मन्त्रवाह्मणसमुदायात्मनो ग्रन्थविशेषस्य वाचको नैकस्य मन्त्रवाक्यस्य ब्राह्मणस्य वा, तत्र प्रयोगाभावात् नह्यकं द्वे त्रीणि वाक्यान्यधीत्य 'वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रम' मित्येतच्छास्त्रार्थमनुष्ठितं मन्यन्ते, तस्मान्मन्त्रब्राह्मणसमुदायात्मको ग्रन्थविशेष एव वेदः ऋगादिशब्दास्तु मन्त्रवाचकत्वेन स्थापिता एव। एवंचोपक्रमोपसंद्वारयोन्त्रकाक्यत्वानुरोधादेकविषयत्वेऽवश्यंभाविनि किम्रुपसंद्वारस्थाविध्युदेशवशादुपक्रमस्थार्थवादगतो वेदश्वदेश छक्षणया वेदैकदेशमन्त्रपरो भवतु किंवा उपक्रमगतार्थवादवशादुपसंद्वारस्थमृगादिपदमेव छक्षणया मन्त्रब्राह्मणसमुदायात्मकवेदपरं भवतु इति भवति संशय इति। अत्रापि च संशये द्वितीयकोटिनोत्तिष्ठेत यदि मन्त्रभागस्येव ब्राह्मणभागस्यापि वेदन्त्वं न स्यादिति स्पष्टमेव।

प्रमा० (१३) किंच उच्चैस्त्वादयोधर्मा न मन्त्राधिकाराः किंतु मन्त्रब्राह्मणसमुदा-यात्मकवेदाधिकारा इति सिद्धान्तोऽपि ब्राह्मणभागस्य वेदत्वे प्रमाणम् पूर्वं 'वेदोने' ति सूत्रे 'वा' शब्दः प्रमाणतया दर्शितः 'अत्र तु' सिद्धान्त इति विशेषः।

ममा॰ (१४) एवमस्य बिचारस्य फलमपि मकुत्बिषये मानम् । तदि ऋग्बेदादि-॥ भाषा ॥

' इच्चता आदि धर्म, मन्त्रों में विधान किये जाते हैं अथवा मन्त्रज्ञाद्मणसमुदायरूपी बेद में ' ज्ञाद्मण- भाग यदि बंद नहीं है तो बेद और मन्त्र एक ही हुआ और ऐसी दशा में संशय के द्वितीयपक्ष का उत्थान ही नहीं हो सकता। तथा अनन्तरोक्त संशय उठाने के लिये उक्त अधिकरण में यह अन्य संशय दिखलाया गया है कि ''उपसंहार में कहे हुए, मन्त्र मात्र के वाचक 'ऋगादि' शब्दों के अनुसार, उपक्रम के 'बेद' शब्द से केवल मन्त्रों ही का प्रहण है अर्थात् उपक्रम के 'बेद' शब्द का केवल मन्त्र ही अर्थ है, अथवा उपक्रम में कहे हुए, मन्त्रज्ञाद्मणसमुदाय के वाचक 'बेद' शब्द का केवल मन्त्र ही अर्थ है, अथवा उपक्रम में कहे हुए, मन्त्रज्ञाद्मणसमुदाय के वाचक 'बेद' शब्द के अनुसार उपसंहार के ऋगादिशब्दों से मन्त्रज्ञाद्मणसमुदायरूपी बेद का प्रहण है अर्थात् उपसंहार के ऋगादिशब्दों का केवल मन्त्र ही अर्थ नहीं है किन्तु मन्त्रज्ञाद्मणसमुदायरूपी बेद अर्थ है ?"। यदि ज्ञाद्मणभाग बेद नहीं है तो इस संशय का द्वितीयपक्ष ही नहीं उठ सकृता क्योंक इस संशय का सारांश यह है कि 'उच्चेर्ऋचा०" इस उपसंहारश्रुति में 'ऋक्' आदि शब्द का केवल मन्त्र ही अर्थ है (जैसा कि अन्यत्र होता है) अथवा बेद (मन्त्रज्ञाद्मणसमुदाय) अर्थ है श्यदि मन्त्र और बेद एक ही वस्तु होता अर्थात् मन्त्र ही बेद होता और जाद्मणभाग नहीं, तो यह संशय कैसे हो सकता।

प्रमा०—(१३) अनन्तरोक्त अधिकरण का सिद्धान्त (उद्यता आदि धर्मों का विधान केवल मन्त्रों ही सिन्तु मन्त्रव्राह्मणसमुदायरूपी बेद से ब्रिहित कर्में में है) भी ब्राह्मण- केवल मन्त्रों ही सिन्तु मन्त्रव्राह्मणसमुदायरूपी बेद से ब्रिहित कर्में में है) भी ब्राह्मण- भाग के बेद होने में प्रमाण है और इस सिद्धान्त की उपपत्ति पूर्व ही दिखलाई गई है । भेद राजना ही है कि पूर्व में 'बदो वा प्रायदर्शनात' इस सूत्र में केवल 'बा' शब्द प्रमाण दिखलाया गया है और यहां उक्त सिद्धान्त ही प्रमाण कहा जाता है ।

प्रमा० — (१४) पश्चम प्रमाण में उक्त अधिकररूपी विचार, का फल भी ब्राह्मणभाग

घटकब्राह्मणीयविधिवाक्यैर्यद्यद्विधीयते यज्ञाङ्गभूतं कर्म तत्सर्वमेव यथायथमुच्चैरुपांशु वा कार्य नतु पन्त्रपाठमात्रामिति निर्णय एव । एवंच ऋग्वेदादयो मन्त्रातिरिक्तेन येन भागेन घटितास्तद्भागाबिहितानि कर्माण्युच्चैरुपांशु वा कार्याणीत्युक्तिनिणयनिष्कर्षः । सच मन्त्रातिरिक्तो बेदभागो ब्राह्मणमेवति ।

ममा० (१५) एवम्-मानवे २ अध्याये-जादितेऽनुदिते चैव समयाध्याषिते तथा। सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥ १५॥

इत्यपि ब्राह्मणभागस्य बेदत्वे मानम् । अत्र हि 'उदिते होतव्यम्' इत्यादीनां विधीनामुद्देश्यांशं कालं तदीयनैवोदितादिपदेन, विधेयांशं च वर्तत इतिपदेनान् इतीयमित्यनेन
च ताहश्विधिवाक्यानामाकारं विशिष्योछिष्य 'वैदिकी श्रुति' रित्यनेन स्पष्टमेव तेषां बेदत्वमाचष्टे मनुः, विधिवाक्यानि चेमानि ब्राह्मणभागस्थान्येवेति ब्राह्मणभागस्य बेदत्वाभावे
चद्रदेकेष्वेषु विधिवाक्येषु स्पष्टमुपलभ्यमानो 'वैदिकी श्रुति' रिति स्वतःप्रामाण्यमूलकमादरगरिमाणमुद्धिरन्मानवो वेदत्वव्यवहारो न कथमप्युपपाद्यितं शक्यते । नच 'अग्निष्योति'
रित्यादिमन्त्रलिङ्गानुमितविधिवाक्यविषयकत्वमेवास्य व्यवहारस्येति वाच्यम् । मिसदस्यवानुमेयत्वेनामसिद्धसाध्यकानुमानासंभवात् । 'इतीयिम' ति प्रत्यक्षपरामर्शानुपपत्तिप्रसङ्गाच ।

के बेद होने में प्रमाण है। क्यों कि उक्त बिचार का यह निर्णय ही फल है कि "ऋग्वेदादिरूपी मन्त्रब्राह्मणसमुद्राय में मन्त्र से भिन्न बिधिवाक्रयरूपी भाग से जिन २ कमों का बिधान होता है व सब कर्म ऊंचे किये जाते हैं" और मन्त्र से अतिरिक्त बेदभाग वहीं है जिसका ब्राह्मण नाम है।

प्रमा०—(१५) मनु० अध्या० २ ऋो० १५ 'जित्तेऽनुदितेचैव०' भी ब्राह्मणभाग के बेद होने में स्पष्ट प्रमाण है जिसका यह अर्थ है कि 'यह अ० बेद की श्रुति है कि अपने २ आरिम्भक संकल्प-वाक्य के अनुसार एदित । सूर्यमण्डल के रेखामात्र भाग के उदय होने का समय) और अनुदित (रात्रि का अन्तिम सोलहें भाग में जब तक नक्षत्र स्पष्ट देख पहें) तथा समयाध्युषित (नक्षत्रों के लुप्त होने के अनन्तर और सूर्योदय से प्रथम) में अर्थात् इन सब कालों में अग्निहोत्र होता है। इस् ऋोक से मनु ने 'उदिते होतन्यम्' 'अनुदिते होतन्यम्०' 'समयाध्युषिते होतन्यम्" इन तीनों, अग्निहोत्र के बिधिवाक्यों के 'उदिते' 'अनुदिते' 'समयाध्युषिते' इन एक २ शब्दों को कह कर इन वाक्यों के बिषय में यह कहा है कि ये वाक्य बेद की श्रुति हैं। और ये वाक्य ब्राह्मणभाग ही में हैं न कि मन्त्रभाग में निदान यदि ब्राह्मणभाग बेद न होता तो उन श्रुतियों को मनु बेद की श्रुति कैसे कहते।

प्रश्न—"अग्निज्यों तिज्यों ति

शतर अनुमान उसी पदार्थ का होता है जो कि कहीं प्रसिद्ध हो इसी से मनुहा शृह्म आदि का अनुमान अन्यत्र नहीं होता तो जब स्वामी के मत'में मन्त्र से अन्य कोई बेदभाग नवीक्तमन्त्रविषयकत्वमस्य ब्यवहारस्य संभवति तथा सति तेषु मन्त्रेषु लिङादिविधिशब्दा-भावेन 'बतते यज्ञ ' इति विध्यर्थघटकमबृत्यनुवादिना वाक्यस्यासङ्गतेदुः समाधानत्वात् । प्रमा० (१६) तथा तत्रैव—

यः कश्चित्कस्याचिद्धमों मनुना परिकीर्तितः। स सर्वोऽभिहितो बेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥ ७॥

इत्यपि वाक्यं पकृतेऽथें मानम् । निंह वणाश्रमधर्माणां कर्तव्यतया विधायकं वाक्यं मन्त्रसंहितासु श्रूयते । श्रूयते च ब्राह्मणभागेषु । नापि पन्त्रस्थानां विरळाविरळपदानां कयाः ॥ भाषा॥

प्रसिद्ध ही नहीं है तक उसका अनुमान ही नहीं हो सकता।

प्रश्न-उक्त मन्त्र से इतना अनुमान तो अवश्य ही हो सकता है कि अग्निहोत्र का कोई बिधिवाक्य है और वह बिधिवाक्य याद बेद नहीं है तो क्या हानि है ?

हत्तर (१)-हानि यही है कि मनुवाक्य से बिरोध पड़ जायगा क्योंकि मनु ने उसको बेद की श्रुति कहा है।

उत्तर (२)-मनु ने जब 'उदिते' आदि शब्दों को प्रत्यक्षरूप से कह कर जैसे कोई अंगुली से दिखला कर कहता है वैसा कहा है कि ''यह बेद की श्रुति है'' तब ''उदिते होतव्यम्'' इत्यादि बाक्यों को छोड़ कर किसी अन्यवाक्य के अनुमान की चर्चा भी इस अवसर पर नहीं हो सकती।

प्रश्न-यह क्यों नहीं कहा जाय कि " अग्निज्योंति: " इत्यादि मन्त्रों हीं की मनु ने बेद

उत्तर (१) जब उक्त मन्त्रों के किसी शब्द को अनु ने अपने उक्तवाक्य में नहीं कहा है तम यह प्रश्न ही निर्मूछ है।

उत्तर (२)-बेददुर्ग सज्जन के मन्त्रोपयोगप्रकरण में पूर्व हीं मछी भांति यह सिद्ध कर दिया गया है कि मन्त्र, किसी कर्म का बिधान नहीं करते और मनु ने इस वाक्य में "वर्तते यहाः" कहा है जिसका यह ताल्पर्य है कि तीनों काल में अग्निहोत्र का पृथक विधान है तो ऐसी दशा में यही निश्चय उचित है कि मनु ने बिधिवाक्यों अर्थात् " उदिते होतन्यम्" इत्यादि प्रत्यक्ष ब्राह्मण-वाक्यों हीं को बेद की श्रुति कहा है न कि "अग्निज्योंतिः" इत्यादि मन्त्रवाक्यों को, क्योंकि लिक् छोट् छादि प्रत्ययों के न रहने से अग्निज्योंतिः आदि मन्त्र, विधिक्षण नहीं हैं।

प्रमा० (१६)-मनु अध्या० २ ऋो० ७-"यः कश्चित्कस्यचिद्धमीं०" भी ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण है जिस का यह अर्थ है कि "मनु ने अपने धर्मशास्त्र में किसी वर्ण बा आश्रम बा सामान्य का जो कुछ धर्म कहा है वह सब, बेद में कहा है क्यों कि बेद सब के ज्ञानों से भरा है"॥ प्रसिद्ध है कि मन्त्रसंहिताओं में कहीं भी धर्म का बिधान करने बाला कोई वाक्या नहीं है जैसा कि बेददुर्ग कुना के मन्त्रोपयोगप्रकरण में पूर्व ही सिद्ध हो चुका है किंतु धर्म के विधायक "स्वर्गकामों यजेत" आदि सभी विधिवाक्य ब्राह्मणभाग ही में है इस से यह निश्चित होता है कि

इस वाक्य में बेद्राब्द से ब्राह्मणभाग ही कहा गया है। प्र०-मन्त्रों में भी जब किसी २ पद के अर्थ छगाने से उन धर्मों की सूचना हो सकती जो कि मनुस्मृति में कहे हुए हैं तब यह क्यों नहीं कहा जा सकता कि इस ब्राक्य में 'बदे' शब्द

[सण्हं ३

कया चित्कुस्ष्ट्या तादृशयिक्विच्द्रम्बोधकत्वारोपमात्रेण स्मृतिरियम्पपादियतुं शक्यते,
तथासत्यिप ब्राह्मणभागस्यावेदत्वे 'यः कश्चित्कस्य चित्' 'स सर्वः' इत्येताभ्यामेतद्वाक्यावयवाभ्यां विरोधस्य बज्जलेपत्वात् । निद्द प्रबृतिबारिविकलमन्त्रमस्कृपिकायमानाभिः
कितिपयतादृशदुर्शकपोलकलपनाकुसृष्टिभिरसंख्यप्रभदकल्लोलमाला ऽ ऽ कुलस्तलविकलोऽसी
धर्मकल्लोलिनीबल्लभः कवलियतुं कल्प्येतत्यवकलपनीयमप्यविकलहृद्येन । किंच नह्यत्र'सृचितं'
त्युच्यते किं त्व 'भिहित' इति, अभिधानश्च तादृशधर्माणां विधयतया स्फुटतरं प्रतिपादनमेव तच्च मन्त्रेषु स्वाभिकमपि न संभवति, जागर्तिवरां च ब्राह्मणभागेषु । तस्मात् 'वेदेऽ
भिद्दित' इत्युक्त्या ब्राह्मणभागस्य वेदत्वं कण्डत एवोक्तिमिहेति ध्ययम् ।

प्रमा० (१७) एवम् तत्रैव ३ अध्याये

वस्ननदन्ति तु पितृन् रुद्रांश्चेव पितामहान्।

प्रापतामहांस्तथाऽऽदित्या-नित्येषा बेदिकी श्रुतिः ॥ २८४ ॥ इति

अत्र 'होषे' ति पत्यक्षनिर्देशादादितः पादत्रयमपि श्रुतिस्वरूपानुकरणमिति 'वस्निमृन्वदन्ति स्द्रान्पितामहानादित्यान्यपितामहान्' इति वाक्यम् 'एषा' इत्यन्य सनातनीश्रुतिरित्युच्यते नचेयं सनातनीश्रुतिर्मन्त्रभागे कचिदस्ति अपितु ब्राह्मणभागे तथाच कथमसी
न वेदः ? कथं चाधुनातनइति शक्यते वक्तुम् ।

॥ भाषा ॥

का केवल मन्त्रभाग ही में तात्पर्य है।

च० १-यदि ऐसा स्वीकार किया जाय तब भी, यदि ब्राह्मणभाग बेद नहीं है तो इस वाक्य की उपपत्ति नहीं हो सकती क्योंकि मन्त्रों में किसी २ पद का अनेक छुशपूर्वक खींच खांच कर अर्थ करने से यदि किसी धर्म का सूचन हो भी गया तो मनुस्मृति में कहे हुए सब धर्मों का कथन तो मन्त्रभाग में कदापि नहीं हो सकता क्योंकि मन्त्रसंहिताक्रपी कतिपय छोटी २ बाव-छियों में, मनु के कहे हुए धर्मसमुदायक्रपी महासमुद्र का अंद्र जाना किसी चेतन के सम्भावना में भी नहीं आ सकता।

(२) इस वाक्य में यह कहा हुआ है कि 'मनु ने जो कुछ फिसी का धर्म कहा है वह सब बेद में कहा है" इस से स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि मनु का कहा हुआ कोई ऐसा धर्म नहीं है कि जो बेद में न कहा हो तथा यह भी निश्चित है कि सूचना मात्र को, कहना नहीं कहत किंद्र करने के लिये धर्मों का स्पष्टरूप से बिधान करने हीं को कहना कहते हैं जो कि मन्त्रों में कितपय-पदों के खींच खांच के अर्थ से कितपयधर्मों की सूचना मात्र करने पर भी नहीं हो सकता और ब्राह्मणभाग में तो सब धर्मों का स्पष्टरूप से बिधान है इस लिये इस बाक्य में बेद्शब्द का ब्राह्मणभाग है। अर्थ है मन्त्रभाग कदापि अर्थ नहीं हो सकता।

प्रमा० (१७) 'वसून्०' अ० यह सनातनी श्रुति (बेद) है कि 'वसून् वितृन् वद्नित हुन् पितामहान् आदित्यान् प्रापतामहान्' (बदवादी, वसुओं को पिता रुद्रों की पितामह सधी आदित्यों को प्रपितामह कहते हैं)।

यह श्रुति मन्त्रभाग में कहीं नहीं है किंतु ब्राह्मणभाग में है और मनु, इसकी सनातनी कुति (बेद) कहते हैं तब कैसे ब्राह्मणभाग बेद नहीं है ?

प्रमा० (१८) किंच तत्रेव ४ अध्याये— यथोदितेन विधिना नित्यं छन्दस्कृतं पठेत् । ब्रह्म च्छन्दस्कृतं चैव द्विजो युक्तो ह्यनापदि ॥ १००॥ इति

अत्र कुल्लूकः। यथोक्ताबिधिना नित्यम् छन्दस्कृतम् गायव्यादिच्छन्दोयुक्तं मन्त्र-मात्रं पठेत्, मन्त्राणामेव कर्मान्तरङ्गत्वात्, अनापदि सम्यक्षरणादौ सति ब्रह्म ब्राह्मणम् मन्त्र-

जातं च यथोक्ताबिधिना युक्तः सन् द्विजः पठेत् इति।

अत्र हि जल।दीनामिव मन्त्राणां सन्ध्योपासनादिनित्यकर्णक्रद्रव्यत्वात्तत्पाठोनित्यत्वेन विहितः, ब्राह्मणभागस्य नित्यान्यकर्माक्रमन्त्राणां च पाठस्त्वनापदि कर्तव्यत्वेन परन्तुः
पाकरणाद्युत्सर्गान्तिनयमकलापां ब्राह्मणभागस्य मन्त्रभागस्य च पाठयोराविशिष्ठत्वेनोक्तः।
एवं च नित्यकर्माक्षानामन्यकर्पाक्षानां च मन्त्राणां वेदत्वमभ्युपगच्छता ऽत्र श्लोके ताँस्ताँश्वान्तरा ब्रह्मशब्देन निर्दिष्टस्य ब्राह्मणभागस्य वेदताकेन मुखेन नास्तीति वक्तुं शक्ष्यते, नचेह
च्छन्दस्कृतिमित्यस्य ब्रह्मत्यनेनाभदान्वयः शक्यशङ्कोऽपि, चैवेति ममुच्चायकनिपातसमुदायोपादानिवरोधात् छन्दस्कृतिमित्यस्य द्विरपादानवयश्योत् चेति ध्येयम्।

प्रमा० (१९) अपिच-तन्नैव ७ अध्याये — राज्ञश्च दशुरुद्धार मित्येषा वैदिकी श्रुति: ॥ ६ ॥ इति

अत्र कुल्लूकः। उद्धारं योद्धारो राक्षे दद्युः, उद्धियतइत्युद्धारः। जितधनादुत्कृष्टधनं सुव-र्णगजतकुष्यादि राक्षे समपणीयम् करितुरगादिवाहनमपि राक्षे देयम् वाहनं च राक्ष उद्धारं षेति गोतमवचनात्। उद्धारदाने च श्रुतिः 'इन्द्रो बे बृत्रं हत्व।' इत्युपक्रम्य स महान् भूत्वा देवता

प्रमा० (१८) 'यथोदितेन०' अ० पूर्वोक्त नियमों से युक्त हो द्विज, प्रतिदिन (आप-काल में भी) गायत्री आदि छन्दों से युक्त केवल मन्त्रों का पाठ किया करें (क्योंकि मन्त्र ही सन्ध्योपासन।दि नित्यकर्मों के अन्तरङ्ग हैं। और ब्रह्म (ब्राह्मणभाग) नित्यकर्माङ्गमन्त्रों से अन्य-मन्त्रों को भी उन हीं नियमों के साथ प्रतिदिन पद परन्तु आपत्काल में नहीं।

जब कि यहाँ मनु ने नित्यकर्माङ्गमन्त्रों और ब्राह्मणभाग तथा अन्यमन्त्रों का तुस्य ही नियमों के साथ पाठ करने का विधान किया है और दोनों प्रकार के मन्त्रों के मध्य में ब्राह्मण-भाग का बेद्वाचक 'ब्रह्म' शब्द से निर्देश भी किया है तब जो पुरुष दोनों प्रकार के मन्त्रों को

बेद मानता है वह किस मुख से ब्राह्मणभाग के बेद होने को नमेट सकता है ?

प्रमा० (१९) 'राज्ञश्च०' अ० युद्ध में बिजय से जिन २ राजभटों को जो २ वस्तु मिलें प्रमा० (१९) 'राज्ञश्च०' अ० युद्ध में बिजय से जिन २ राजभटों को जो २ वस्तु मिलें उनमें से सर्बोत्तम वस्तु उद्धृत कर वे अपने खामी राजा को दें यह बेदिकी श्रुति है अर्थात् 'इन्द्रो-इनमें से सर्बोत्तम वस्तु उद्धृत कर वे अपने खामी राजा को दें यह बेदिकी श्रुति है अर्थात् उद्धृत करों अर्थात् मेरे छिये। यह बेद वेवताओं से कहते हैं कि इद्धार अर्थात् सर्बोत्तमवस्तु को उद्धृत करों अर्थात् मेरे छिये। यह बेद की श्रुति है।

यहाँ ममु में अर्थानुवाद के द्वारा अनन्तरोक्त श्रुति की सूचना दे कर यह स्पष्ट ही कहा है कि 'यह बेद की श्रुति है' और यह श्रुति मन्त्रभाग में कहीं नहीं है किंतु ब्राह्मणभाग ही की है तो ब्राह्मणभाग यदि बेद नहीं है तो मनु ने इस को कैसे बेद की श्रुति कहा ? इस में ब्राह्मण-

अब्रवीत् उदारंसमुदरतेति ।

प्रमा० (२०) एवम् तत्रव ९ अध्याये -

नौद्धाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीत्यते कचित्।

न बिब।हाबिधावुक्तं विधवावेदनं पुनः ॥ ६५ ॥ इति

अत्र हि मन्त्रेषु बैवाहिकेषु नियोगो न कचित् कीत्यते नवा विवाहिविधिवाक्येषु किचित् विधवायाः पुरुषान्तरेण सह पुनर्विवाह उक्त इति वदता मनुना मन्त्रविधिवाक्ययो-स्तुल्यस्कन्धतया प्रामाण्यमभ्युषगच्छता तयोर नुक्तत्वाद्विधवानियोगपुनर्विवाह्योरकार्यत्वपु-क्तम् मन्त्राणां च न विधायकत्वमिति वेददुर्गसज्जने मन्त्रप्रामाण्यानिरूपणे पूर्वमेवास्माभिनि-रूपितम्, 'ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेत्' (जाबाह्योपनिषत्) इत्यादयो विवाहविधयश्च ब्राह्मण-भागा एवेति कथं न ब्राह्मणभागस्य वेदत्वम्।

प्रमा० (२१) एवम् — मीमांसादर्शने १ अध्याये २ पादे — आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानां तस्मादिनत्यमुच्यते ॥ १ ॥

इतीदमर्थवादाधिकरणपूर्वपक्षस्यादिमं सूत्रमपि झाह्मणभागस्य बेदत्वे मानम्। अस्य-ह्ययमर्थः आम्नायस्य बेदस्य क्रियाऽर्थत्वात् प्रबृत्त्याद्यर्थत्वात् धर्मे पामाण्यं पूर्वमुक्तम् । अत-दर्थानाम् प्रवर्तकविध्याद्यघितानामर्थवादादीनाम् आन्धवयम् प्रवृत्त्याद्यजनकत्वम् ,यसात् तसात् तेषु अनित्यम् धर्मप्रमित्यजनकत्वम् उच्यते इति । अनेन हि सूत्रण प्रबृत्तिनिवृ-स्यर्थकयोविधिनिषेधवावययोर्वेदभागयोः क्रियार्थत्वेन धर्मे प्रामाण्यमभ्युपगम्य क्रियार्थत्वा-॥ भाषा॥

भाग का बेदं होना इस मनुवाक्य से स्पष्ट ही सिद्ध है।

प्रमाद (२०) 'नौद्वाहिकेषु व' अव न बिवाह के मन्त्रों में कहीं (विधवा में । नियोग की चर्चा है और न बिवाह के बिधिवाक्यों 'ब्रह्मचर्य समाध्य गृही भवेत,' अश्रीत ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्त करें बिवाह करें (जाबालोपनिषत्) इत्यादि में कहीं (अन्य पुरुष के साथ) बिधवा के पुनर्विवाह का विधान है।

यहाँ मनु ने मन्त्रों के तुल्य विधिवाक्यों का प्रामाण्य स्वीकार किया है और बेददुर्गसज्जन के मन्त्रप्रामाण्यप्रकरण में यह पूर्व ही यहाँ सिद्ध हो चुका है कि मन्त्रों में विधानशक्ति नहीं है तो ऐसी दशा में यदि विधिवाक्यवाले ब्राह्मणभाग बेद न होते तो मनु, मन्त्रभाग के तुल्य उन के प्रामाण्य को कदापि स्वीकार न करते इससे ब्राह्मणभाग का बेद होना नि:सन्देह ही है के

प्रमाव——(२१) पूब मीव दव अध्याव १ पाव २ "आम्रायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानां तस्मादिनत्यमुच्यते" सूव १ ॥ यह अर्थवादाधिकरण के पूर्वपक्ष का सूत्र भी ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण है जिसका अर्थ यह है कि बेद, पुरुषों की धर्म में प्रबृत्ति और अध्म से निवृत्ति के लिये है तथा अर्थवादभाग वा मन्त्रभाग से न प्रवृत्ति होती है न निवृत्ति, इस कारण यह कहा जाता है कि दोनों भाग धर्म वा अध्म में प्रमाण नहीं हैं। इस सूत्र में जैमिनमहर्षि त 'स्वर्गकामो यजेत" आदि विधिवाक्यों को प्रवृत्ति करने से और 'ब्राह्मणं न हन्यात्' इत्यादि निवेधवाक्यों को निवृत्ति करने से प्रमाण मान कर प्रवृत्ति वा निवृत्ति न करने के कारण मन्त्र स्वर्गद के प्रामाण्य पर आक्षेप किया है जिस से कि यह स्पष्ट है कि मन्त्रसंहिताओं में स्वर्गद के प्रामाण्य पर आक्षेप किया है जिस से कि यह स्पष्ट है कि मन्त्रसंहिताओं में

भावान्मन्त्रार्थवादादीनां धर्मे प्रत्यप्रामाण्यमापाद्यते। विधिनिषेधभागाश्च ब्राह्मणभागान्तर्गता एवेति तद्रृपस्याम्नायस्य प्रामाण्यमभ्युपगच्छता ताँश्च भागानाम्नायशब्देन ब्यपदिशता भगवता जीमिनिना ब्राह्मणभागस्याम्नायत्वापरपर्यायं वेदत्वं कण्ठरक्षणेवोक्तम् । नच क्रियापदेनात्र स्पन्दो गृह्यते तदर्थकत्वं च धातुष्वितत्वान्मन्त्रभागेऽप्यस्ति, अर्थपदं चेह बाच्यपरं नतु प्रयोजनपरम् तथाचात्राम्नायपदं मन्त्रभागमात्रपरमेवेति वाच्यम् । तथा साति क्रियापदं विना वाक्यत्वस्यैवासंभवेन क्रियार्थत्वस्य सर्ववाक्यसाधारणतया प्रामाण्यापयो क्रियार्थत्वेति क्रियार्थत्वेति वेद्यस्य स्थात् क्रियार्थत्वेति विद्यस्य स्थापक्षेवेताद्वां क्रियार्थत्वम् । तथाच शावराष्ट्रस्त हेद्यादिन्यायेन हि वाक्यत्वस्य ब्यापक्षेवेताद्वां क्रियार्थत्वम् । तथाच शावराष्ट्रस्तो मदुपन्यस्त एव सूत्रार्थो रमणीयः । क्रिय मन्त्रार्थवादादीनां धर्मे प्रामाण्यमिक्रियार्थत्वाद्वनेन सूत्रेणाक्षिप्यते तच्च तदैवोपपद्यते यदि मन्त्रार्थवादादीनां वेदत्वं स्यात् नत्वन्यथा, तथा सति छौकिकवाक्येष्विव मन्त्रादिषु धर्मे प्रामाण्यस्य प्रसक्तस्यभावान्त्विरस्यायार्थत्वस्यप्युभयोस्तुत्वस्यम्व वाच्यमिति दिक् ।

॥ भाषा ॥

विधिवाक्य मा निषेधवाक्य कोई नहीं है और विधिवाक्य तथा निषेधवाक्य को महार्ष ने इंस सूत्र में आफ्राय (बंद) कहा है तथा विधिवाक्य और निषधव क्य ब्राह्मणभाग ही में होते हैं इस से यह निर्विवाद सिद्ध है कि महार्ष ने कण्ठरव से इस सूत्र में ब्राह्मणभाग को आस्नाय (बंद) कहा है।

प्र०—इस सूत्र में 'क्रिया' शब्द से प्रवृत्ति और निवृत्ति का प्रहण नहीं है किन्तु ब्यापारमात्र का, तथा 'अर्थ' शब्द का भी, प्रयोजन अर्थ नहीं है किंतु वाच्य (अक्षरार्थ) अर्थ है। और ब्यापार के वाचक 'ददाति' आदि शब्द, मन्त्रों में रहते ही हैं इस से वहां आस्नाय शब्द का केवल मन्त्रभाग ही अर्थ क्यों न हो क्यों कि मन्त्र का क्रियारूप अर्थ है ?

उ०—(१) 'जाता है' इत्यादि क्रियाशब्द के बिना लौकिस्वाक्य'भी कोई (चाहै वह सत्य हो बा मिथ्या) नहीं होता इस रीति से क्रिया अर्थ होने मात्र के कारण कोई वाक्य, प्रमाण नहीं हो सकता और इस सूत्र में महार्ष ने क्रियार्थ हाने से आस्राय को धर्म में प्रमाण कहा है इस से प्रश्लेक्त अर्थ करने में यह महार्ष का कथन असङ्गत ही हो जायगा क्यों कि ब्यापार के अर्थ होने मात्र से कोई वाक्य प्रमाण नहीं होता।

ड०-(२) इस सूत्र के 'क्रियार्थ' शब्द का प्रश्लोक्त अर्थ लगाने में इसी सूत्र का 'अतदर्थानाम् यह शब्द असङ्गत हो जाता है क्यों कि तब प्रश्लकतों को इस शब्द का, अनन्यगति हो 'कर यही अर्थ करना पड़िंगा कि 'मन्त्रभाग और अर्थवादभाग का ब्यापार अर्थ नहीं है 'जो कि मिध्या ही है क्यों कि इन दोनों भागों में ब्यापार अर्थवाले 'दंदाति' आदि शब्द सहस्रों हैं।

याद अर्थवादभाग । जो कि ब्राह्मणभाग ही में होता है) बेद न होता तो धर्म में उसके भमाण होने का संभव ही नहीं होता इस कारण यह सूत्र ही ब्यर्थ हो जाता क्योंकि इस सूत्र से भन्त्र और अर्थवाद के प्रमाण होने का निषेध किया जाता है और जब अर्थवाद के प्रमाण होने

प्रमा० (२२) किंच-तंत्रव-

तदर्थशास्त्रात् ॥ ३१॥

इतिस्त्रम्प्युक्तेऽर्थे मानम् । इदं हि मन्त्राधिकरणस्यादिमं पूर्वपक्षस्त्रम् । अस्य व 'अनित्यसंयोगान्मन्त्रानर्थक्य' मित्येकोनचत्वारिंशतमस्त्रस्थे मन्त्रानर्थक्यामित्यत्रान्वयः । तथानायमर्थः 'उरुपथस्वे 'त्यादौ यः तदर्थः पुरोडाशपथनादिरूपोऽर्थः स याद्दाश्च शास्त्रे तादृश्चशास्त्रात् 'उरुपथस्वेति पुरोडाशं प्रथयती 'त्यादि विधिवाक्यात्तदर्थज्ञानसंभवात्, पेन्त्रा-णाम् उरुपथस्वेत्यादीनाम्, आनर्थक्यम् वाच्यार्थतात्पर्यराहित्यामिति । अत्र हि शास्त्रपदेन् ब्राह्मणवाक्यं गृह्यते शास्त्रपदं चेह वेदपरमव नत्तु पौरुषेयवाक्यपरं भवितुमर्हाते, पौरुषेयवाक्यन् बेदानर्थक्यसाधनस्यात्यन्तानौचित्यापातात् । नद्युरुपथस्वेत्यादिमन्त्रे पुरोडाशपथनादिसाध-नत्वं शब्दातिरिक्तन केनचित्प्रभाणेन शक्यमवगन्तुम्, नापि प्रमाणान्तराग्रहीतेऽर्थे पौरुषेय-वाक्यानां प्रामाण्यं कचिदपि दृष्टचरम् तत्प्रामाण्यस्य प्रमाणान्तरसंवादोपजीवितानियमात् ।

॥ भाषा ॥

का संभव ही नहीं है तब उसका निषेध ब्यर्थ ही है।

प्रमा०-(२२) पूर्वोक्त १ अध्याय २ पाद के मन्त्राधिकरण में 'तदर्थशास्त्रात्' शिवशा यह पूर्वपक्षसूत्र भी ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण है। इसका यह अक्षरार्थ है कि 'उक्कप्रथस्व' ुआदि मुन्त्रों को पढ़ कर पुरोडाश का प्रसरण आदि जो क्रियाएं की जाती हैं उनका विधान ब्राह्मण-क्वाक्यों से होता है इसी से मन्त्र, बिधायक नहीं हैं और न उनका अपने अर्थ में तात्प्र्य है। तथा तात्पर्ये इस सूत्र का यह है कि जैसे नीलीरोग (जिस से आंख में विकार स्पष्ट न हो और देख ते पड़ें) वाले अर्थात् प्रसन्नान्धपुरुष की आंखों को देख कर लोग यह समझते हैं कि यह देखता है परन्तु जब दूसरे मनुष्य की अंगुली पकड़ कर उसे चलते देखते हैं तब यह निश्चय करते हैं कि इस को देख नहीं पड़ता, वैसे ही 'उरुप्रथखं' (हे पुरोडाश ! अर्थात् होम का फूंट्य तू पूर्णरूप से पसर जा हु द्वादि कियार्थ मन्त्रों के खरूप देखने से ज्ञात होता है कि यह किसी किया में पुरुष को नियुक्त कर सकता है परन्तु जब 'उरुप्रथखेति पुराडाशं प्रथयति' ('उरुप्रथख' इस मन्त्र से पुरोडाश को पसार) इत्यादि ब्राह्मणवाक्यों से पुरोडाश के प्रसरण आदि कार्यों में उन मन्त्रों को नियुक्त किये जाते देखते हैं तब यह निश्चय होता है कि मन्त्रों में नियुक्त करने की शक्ति नहीं है क्योंकि जब क्रियाओं में वे आप ही ब्राह्मणवाक्यों से नियुक्त हो रहे हैं तब दूसरी को क्या नियुक्त कर सकते हैं और यदि वे अपने ही से अपने को नियुक्त करें तब तो उनको नियुक्त करने वाल ब्राह्मणवाक्य ही ब्यर्थ हो जायंगे। इसी से मन्त्रों का अपने अर्थ में तात्पर्य नहीं है किंतु वे ब्राह्मण वाक्यों से नियुक्त हो कर अपने पाठमात्र के द्वारा यज्ञ के उपकारी हैं इति । और इस सूत्र में शास्त्रशब्द से जब पूर्वोक्त ब्राह्मणवाक्यों का प्रहण है तब ब्राह्मणवाक्यों के बेद होने औं क्या सन्देह है क्योंकि ब्राह्मणवाक्य यदि बेद न होते अर्थात् पुरुषों के रचित होते (जैसा कि स्वामी का मति है) तो ब्राह्मणवाक्यों के बल से महार्ष कदापि यह नहीं कहते कि मन्त्रों का अपने अर्थ में तात्पर्य नहीं है।

तथा जब 'उरुपथ्ख' आदि मन्त्रों का, पुरोडाश के प्रसरण आदि कारों के प्रति साधक होना किसी छोकिकप्रमाण से कदापि नहीं ज्ञात हो सकता तब उसका ज्ञान कराने बार्छ। ब्राह्मणवाक्य बेद नहीं है तो क्या है ? क्योंकि पूर्व में यह सिद्ध हो चुका है कि बेद उसी सूझ एवंच 'उह्मथस्वेति पुगेंडाञ्च' मित्यादीनां ब्राह्मणवाक्यानामवेदत्वे पौरुषेयत्वापत्या तद्यें च प्रमाणान्तरसंवादस्य दुर्वचत्वाचेषु प्रामाण्यमेत्र न स्यात् । असति च
प्रामाण्ये कथमिच शास्त्रत्वमि तेषु स्यात् । कथं चानामाणिकेन वश्चकवाक्यकल्पेन ब्राह्मणवाक्येन वेदानां मन्त्राणामानर्थक्यमस्मा.भरिप शङ्कितुमि शक्येत किं पुनरुपन्यसितुं
महिष्णा । अथो 'रुपथस्व' त्यादिमन्त्ररूपवेदमूलकत्वाचिद्धिनियोजकानां पौरुपयाणामि
ब्राह्मणानां मन्वादिस्मृतिवत्प्रामाण्यमाश्रित्य मन्त्रवैयर्थ्यमापाद्यते महिष्णेति चेत्, अहो
साध्वीयं बुद्धिः यददृष्टश्चतचरं स्मृत्या श्वतिवैयर्थ्यमापाद्यते ब्राह्मणभागस्य पौरुपयत्वं
ब्रुत्ता, तन्नापि इदमितिचित्रं यत् मन्त्रस्वार्थपरत्वाभावापादकत्वेन महर्षेरिभनेतस्य ब्राह्मणवाक्यस्य तन्मन्त्रमूलकत्वमप्युच्यते । स्वार्थपरत्वद्वारेव हि वेदानां पौरुषेयवाक्यमूलता
सम्भवति । तथाच मन्त्रेषु स्वार्थपरत्वाभावबाह्मणवाक्यमूलत्वयोस्तमः प्रकाशयोरिव

॥ भाषां॥

वाक्यसमुदाय का नाम है कि जिसका अर्थ किसी छौकिकप्रमाण से ज्ञात न हो सके।

तथा यह भी एक बिशेष बात है। के उक्त ब्रह्मणवाक्य यदि वेद नहीं है अर्थात् पौरुषेय है तो वह प्रमाण ही नहीं हो सकता क्यों कि पौरुषेयवाक्य तभी प्रमाण हो सकते हैं कि जब उनका अर्थ छाकिकप्रमाणों से निश्चित होता है और उक्त ब्रह्मणवाक्य का अर्थ (उरुप्रथस्व आदि मन्त्रों में पुरोडाश के प्रसारण आदि कार्यों के प्रति साधक होना) जब किसी छोकिकप्रमाण से नहीं ज्ञात हो सकता तब पौरुषेय ब्राह्मणवाक्य अप्रमाण ही है और ऐसी दशा में महार्ष का यह कहना कि 'ब्राह्मणवाक्यों से कार्यों के बिधान होने के कारण मन्त्रों का अपने अर्थ में ताल्य नहीं है" अनुचित ही हो जार्यगा क्यों के अप्रमाणवाक्यों के बळ से प्रमाणवाक्यों के अर्थ का संकोच, कोई साधारणमनुख्य भी स्वीकार नहीं कर सकता जैसे छोक में भी बञ्चकपुरुष के वाक्य से, सत्यवाक्य का संकोच कोई नहीं स्वीकार करता इससे यह सिद्ध हो गया कि ब्रह्मणवाक्य प्रमाण भी है और वेद भी है क्योंकि यदि ऐसा न होता तो इस सूत्र में जैमिनिमहर्षि ब्रह्मणवाक्य प्रमाण भी है और वेद भी है क्योंकि यदि ऐसा न होता तो इस सूत्र में जैमिनिमहर्षि ब्रह्मणवाक्य हो है'।

प्रश्न—धर्म के विषय में पौरुषेयवाक्य तभी प्रमाण होता है जब कि वह बेदमूलक हो जैसे मनु आदि की स्मृति, ऐसे ही ब्राह्मणवाक्य यद्यपि पौरुषेय हैं तथापि कार्यों में मन्त्रों को नियुक्त करने से बेदमूलक हो कर प्रमाण हैं और ऐसी दशा में यदि महार्ष ने उनके बल सं, अपने अर्थ में मन्त्रों का तात्पर्य न होना कहा तो क्या अनुचित किया श आर महार्ष के इस कथन से सनातनधर्मी के प्रश्न में लाभ भी क्या हो सकता है ?।

उ०—वाह २ क्या अच्छी बुद्धि है वयों कि एक तो प्रश्नकर्ता, स्मृति के बल से मन्त्रक्ष बेर के अनर्थक होने को जैमिनिमह के सम्मत कहता है जो कि आज तक न किसी प्रामाणिक से सुना गया है और न किसी प्रन्थ में लिखा गया। और उस से भी अति आश्चर्य यह है कि जो यह कहता है कि 'ब्राह्मणभाग मन्त्रमुलक है' क्यों कि मन्त्र अपने अर्थ ही के द्वारा ब्राह्मणवाक्य का मूल हो सकता है तो जब मन्त्र का अपने अर्थ में तात्पर्य ही नहीं है तब वह कैसे ब्राह्मणवाक्य का मूल हो सकता है। और यदि मन्त्र, ब्राह्मणवाक्य का मूल है तो कैसे उसका अपने अर्थ में तात्पर्य नहीं है। इस रीति से यह सूत्र ही अनर्थक और अप्रामाणिक हो जायगा। और ब्राह्मणवाक्य का मूल है तो है। इस रीति से यह सूत्र ही अनर्थक और अप्रामाणिक हो जायगा। और ब्राह्मण

परस्परिवरोधातसूत्रमेतद्वाधितार्थमेव स्यात् । सति तु ब्राह्मणभागस्य वेदत्वे, तस्य विनि योजकतया स्वार्थबोधपरताया आवश्यकत्वेन यवब्रीह्याचपरविनियोज्यद्रव्यवन्मन्त्रद्रव्याणी स्वार्थपरत्वाभावेऽपि न बिनियोगानुपपत्तिरतो निष्पयोजनैव मन्त्रेषु स्वार्थपरत्वकल्पनेत्य-नर्थकामन्त्रा इति सहजत एवोपपद्यते सूत्रार्थः।

एतेन 'किंच भोः ब्राह्मणग्रन्थानामपि बेदचत्रामाण्यं कर्तव्यमाहोस्थिनेति। अत्र बूमाः। नैतिषां बेदवत्प्रामाण्यं कर्तुयोग्यमस्ति । कृतः । ईश्वरोक्ताभावात् तद् नुकूलतयैव प्रमाणाईत्वा-चिति । परंतु सन्ति तानि परतः प्रमाणयोग्यान्येवेती ' ति पूर्वान् दित्रभाष्याभासभूमिको-

क्तमपि प्रत्याख्यातम्।

निह 'ब्रीहिभियंजेत यवैर्वे' त्यादिषु बिनियोजकब्राह्मणवाक्येषु विनियोज्ययवबी-ह्यादिमुलकत्वं केनचित्प्रेक्षावता ब्यपदिश्यते येन बिनियोज्यभूतमन्त्रमूलकत्वमपि तेष शक्यते वक्तुम् । नापि पौरुषेयीभिरुपजीविनीभिर्वाग्भिरपौरुषेयीणाम्रपजीव्यानां श्रुतीनां स्वार्गपरत्वाभावमंबिकलकरणः कश्चिदपि शङ्कितं शक्रोति येन महर्षिरपि पौरुषेयेबीह्मणै स्तिथं। इंडपादितवानिति वन्तुमपि शक्यते तथाच ब्राह्मणभागस्य बेदस्वाभावे दुरुद्धर-एवतत्सूत्रविरोधः।

किंच स्वीकर्तव्यमित्यर्थे 'कर्तव्यमिति' स्वीकर्त्तमित्यर्थे च 'कर्तिमिति' 'ईश्वरोक्ता-भावात् । इत्यत्रेश्वरोक्तपदात् 'प्रमाणयोग्यानि । इत्यत्र प्रमाणपदाच भावपत्ययापयोग इति चत्वार वालानामिवातिस्थूलान्यकौशलानीत्यन्यत् ।

प्रमा० (२३) तथा-तेत्रैव-

बुद्धशास्त्रात् ॥ ३३ ॥ इत्यपि सूत्रमुक्तार्थे मानम्। अस्य हि, प्रयोगाद्धहिः 'अप्नीद्योन्बिहरेदि' ति प्रैषारै-॥ भाषा॥

भाग के बेद मानने से इस सूत्र का अर्थ सहज ही में ठीक हो जाता है क्योंकि ब्राह्मणभाग, जब बेद है तब मन्त्रों का अपने अर्थ में तात्पर्य न होने पर भी जब तण्डुल आदि के नोई यज्ञकमी में ब्राह्मणभाग, मन्त्रों की नियुक्त कर सकता है इस कारण मन्त्रों का उन के अर्थ में तात्पर्य की किल्पना का कोई प्रयोजन नहीं है इसी से मन्त्रों का अपने अर्थ में तात्पर्य नहीं है। इस ब्याख्यान से वह भी परास्त हो गया जो कि खामी ने पूर्व हीं उद्धृत भूमिका के अन्त में यह कहा है कि "ब्राह्मणप्रन्थों का प्रमाण बेदों के तुल्य नहीं हो सकता क्योंकि व इश्वरोक्त नहीं हैं" "परन्तु बेदों के अनुकूछ होने से प्रमाणयोग्य तो हैं" इति, क्योंकि यदि "ब्रीहिभियेजेत यवैबी" (चावछ से यात्र करे अथवा जर्व से) इत्यादि ब्राह्मणवाक्य, तण्डुल और जव बादि को यहा में नियुक्त करते हैं परन्तु इतने मात्र से वे तण्डुलमूलक वा यवमूलक नहीं हो सकते तब मन्त्र की नियुक्त करने से ब मन्त्रमूलक भी नहीं हो सकते और जब मन्त्रमूलक नहीं हैं तब कैसे प्रमाण होने के बोग्य हैं। तथा यदि ब्राह्मणबाक्य पौरुषेय होते तो जैमिनिमहर्षि, कैसे उन से अर्थबीय होने के कारण गर्ध कहते कि मन्त्रों का अपने अर्थ में तात्पर्य नहीं है। निदान ब्राह्मणभाग को बेद न होता स्वीकार करने में इस सूत्र का बिरोध अटल है।

प्रमार्थ—(२३) पूर्व मीर दव अध्याव १ पाव २। " बुद्धशास्त्रात्"।। ३३॥ बैह सूत्र

बाग्नीश्रेण अग्निबिहरणादि कर्म मदीयमिति बुद्धे सति 'अग्नीदग्नीन्विहर्' 'विहेस्तृणीहि' दूर्यादि शास्त्रात् मन्त्रात् ज्ञातस्य ज्ञानं निष्मयोजनमतो मन्त्रानर्थक्यमित्यर्थः। तात्पर्यतु मदुप-न्यस्तमन्त्राधिकरणपूर्वपक्षे दर्शनीयम्। एवंच ब्राह्मणवाक्यमवलम्ब्य प्रेषमन्त्रसार्थक्यमा-क्षिपता, 'तदर्थशास्त्रा' दिति पूर्वोक्तस्त्रे ब्राह्मणवत्रस्त्रे च मन्त्रं शास्त्रपदेनेव ब्यवहरता च महर्षिणा ब्राह्मणभागस्य वेदत्वं सिद्धवेदवाङ्गीकृतम्। नहि ब्राह्मणीयप्रेषवाक्यस्य प्रौरुषयत्वे मन्वादिस्मृतिबाक्यनेव तेन मान्त्रप्रववयर्थं शक्यते शङ्कितम्। विशेषत उपपत्तिस्तु पूर्वोङ्कवत् ।

प्रमा० (२४) तथैव-तत्रैव-

स्वाध्यायवद्वचनात्॥ ३७॥

इति सूत्रमप्युक्तार्थेमानम् । अस्य हि यथा 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' इत्यक्षरग्रहणविधिः।

भी ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण है और इसका अक्षरार्थ यह है कि "जब अग्निविहरण आदि कार्य पूर्व ही से बुद्ध अर्थात् ज्ञात हैं तब मन्त्ररूपी शास्त्र से उन को ज्ञात कराना ब्यर्थ ही है" और भावार्थ यह है कि " किसी यज्ञिकया को बिना समझे कोई नहीं कर सकता इस से यज्ञारम्भ के पूर्व हीं अग्नीध् आदि ऋत्विक् अपने २ अध्ययनकाल ही में "अग्नीदग्नीन्बिहर" (अग्नीध्नामक ऋत्विक् अग्नि का बिहरूण करें) इत्यादि बाह्यणवाक्यों ही से अपने २ कामों को समझे रहते हैं तक यज्ञ के प्रयोगकाल में ''अग्नीदग्नीन् बिहर'' (हे अग्नीध् तू अग्नि का बिहरण कर) इत्यादि मन्त्रों से छन को अपने २ काम में प्रेरण करना ज्यर्थ ही है क्यों कि वे तो प्रथम हीं से यह जानत हैं कि अमुक २ अवसर पर हमको अमुक २ काम करना चाहिये। इसी से इस प्रकारके मन्त्र उस २ अवसर पर अपने पाठमात्र ही से यज्ञ के उपकारी हैं न कि अर्थबोध कराने से। और यह भी नहीं कह सकते कि ऐसे मन्त्र उस २ अवसर पर उन २ कामों को स्मरण कराने के लिये हैं, क्योंकि ऋतिजों के अन्त:करण में ब्राह्मणवाक्यों के अध्ययनाभ्यास ही से ऐसे दृढतर संस्कार उत्पन्न होते हैं जो कि उन कामों को अवसर पर स्मरण करा देते हैं स्मरण के छिये मन्त्रों की कुछ क्षावदयकता नहीं रहती। तथा यह भी नहीं कह सकते कि उन्हीं संस्कारों को जगाने के छिये ऐसे मन्त्रों की आवश्यकता है, क्योंकि वह अवसर ही उन संस्कारों को झट जगा लिया करता है। इन उक्त युक्तियों से यह निश्चित होता है कि मन्त्रों का अपने अर्थ में तात्पर्य नहीं है इति। अब थ्यान देना चाहिये कि जैसे 'तदर्थशास्त्रात्' सूत्र में जैमिनिमहर्षि ने ब्राह्मणबाक्य की शास्त्रशब्द से कहा और उसी के बल से यह भी कहा कि मन्त्रों का अपने अर्थ में तात्पर्य नहीं है वैसे ही इस सूत्र में भी मन्त्रों को शास्त्रशब्द से कहा जिस से यह स्पष्ट निश्चित होता है कि मन्त्र और माहाण दोनों को तुल्यरूप से बेद होना महार्ष को संमत है और इस सूत्र में भी ब्राह्मणवाक्य ही के बल से महर्षि ने यह कहा कि मन्त्रों का अपने अर्थ में तात्पर्य नहीं है। यह कथन भी तब ही ठींक हो सकता है। के जब ब्राह्मणभाग बेद है और इस की विशेषरूप से उपपात्त पूर्व कही गई है।

प्रमा०—(२४) पू० मी० द० अध्या० १ पा०॥२॥ "खाध्यायवदवचनात्"॥३७॥ यह सूत्र भी ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण है इसका अक्षरार्थ यह है कि जैसे "खाध्यायोऽध्येतव्यः" (बेद अवदय पढ़ा जाय) इस बेदवाक्य से बेद के अक्षराभ्यास का विधान है वैसे इस

तथा अवचनात् अर्थस्मरणं मन्त्रेण कर्तव्यमितिविध्यभावात् मन्त्रानर्थक्यमित्यक्षरार्थः। अत्रश्च यदि 'अर्थस्मरणं मन्त्रेण कर्तव्य' मितिविधिः श्चयेत तदा तदनुरोधानमन्त्राणां स्वार्थपरत्वं स्यात् यथा 'स्वाध्यायोऽध्येतव्य' इत्यस्य विधेगनुरोधात्तेषावक्षरशोऽध्ययनम्। नच ताद्दशः कश्चिद्धिधः श्चयते तथाच किमनुरोधान्मन्त्राणां स्वार्थपरत्वं स्यादित्यनर्थका मन्त्रा इति स्पष्ट एव सूत्राश्चयः । एवंच मन्त्रस्वरूपपर्याञ्चाचनयाऽनुभूयमानमिप मन्त्राणां स्वार्थस्मारकत्वं यदनुप्रहाभावान्महर्षिणाऽपल्यते तस्य विधेमोद्दात्स्यं कियद्धर्णनीयम् सच विधियदि श्रूयेत तदा विध्यन्तरवद्धाद्धणभागान्तर्गत एव स्यात् । एवं , स्वाध्यायोऽध्ये तव्य । इत्ययं विधियदि न श्रूयेत तदा मन्त्राणामक्षरशोऽध्ययनस्यापि पुरुषार्थसाधनतां मानान्तरागम्यामवगमयितुं को नाम क्षमेत । तथाच सत्यप्पर्रोरुषयत्वे मन्त्राणां निष्योजन्तमायामबहुल्खाक्षरप्रहणमप्याधिकृत्य को नाम प्रेक्षावास्तर्य प्रवेतिति निर्थका एव ते भवेगुरित्यपि 'स्वाध्यायव' दित्यतःस्त्रावयवातस्पष्टमेव लभ्यते । एवंच स्वसार्थक्याय सतत्रमेव स्वविनियोजकन्न। स्वाप्यामाग्रस्ववेशिणां विनियोज्यस्यापि मन्त्रभागस्य यदि वेदत्वं तदा ब्रीहियवादीनित्र मन्त्रान् यज्ञेषु विनियुज्जानस्य ब्राह्मणभागस्य वेदत्वे को नाम संश्चरः, नह्यवेदेन ब्राह्मणेन सादिनाऽनादिवेदात्मका मन्त्रा विनियोक्तुं शक्यन्ते, जन्तमानमित्रं ॥ साह्या

वाक्य से यह विधान नहीं है कि "मन्त्र से अर्थ का स्मरण करे" इस से भी मन्त्रों का अपने अर्थ में तात्पर्य नहीं है इति, और भावार्थ यह है कि "अनादि शिष्टाचार के अनुसार बृद्ध बिद्वान् लोग अपने शिष्यों से केवल मन्त्रों ही का अभ्यास कराते हैं न कि उनके अर्थी का, और अभ्यास उसी का उचित होता है कि जिस का यज्ञों में उपयोग हो। इस से निश्चित होता है कि मन्त्रों का पाठ ही यज्ञकर्म का उपयोगी है न कि अर्थ। इसी से मन्त्रों का अपने अर्थ में तात्पर्य नहीं है इति। अब ध्यान देना चाहिये कि "मन्त्र से अर्थ का स्मरण करे" ऐसे ब्राह्मणवाक्य के न होने हीं से महार्ष ने यह कहा है कि मन्त्रों का अपने अर्थ में तात्पर्य नहीं है। जिसका यह आशय है कि यदि उक प्रकार का ब्राह्मणवाक्य होता तो मन्त्रों का अपने अर्थ में तात्पर्य अवश्य ही स्वीकार किया जाता तथा उक्त सूत्र से यह भी प्रकट ही है कि 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' यह शतपथ ब्राह्मणवाक्य यदि न होता तो इस में भी कोई प्रमाण नहीं मिलता कि मन्त्रों के अक्षराध्ययन का कुछ भी फल है तब मन्त्रभाग के अक्षराध्ययन में किसी पुरुष की प्रवृत्ति नहीं होती क्यों कि ऐसे निष्फल और अधिक परिश्रम वाले काम में कैसे किसी की प्रवृत्ति हो सकती है, इस रीति से संपूर्ण मन्त्रभाग ही ब्यर्थ हो जाता। तो जब अपने सफलता के लिये ब्राह्मणभाग के मुख को सदा देखने वाली मन्त्रभाग भी बेद है तब जब चावल आदि के नाई मन्त्रभाग को भृत्य के तुल्य यज्ञकमीं में नियुक्त करने वाले ब्राह्मणभाग के बेद होने में सन्देह ही क्या हो सकता है, क्योंकि याद ब्राह्मणभाग पुरुष-रचित होते तो उन में कदापि यह योग्यता नहीं होती कि वे मन्त्रों का यज्ञकमें। में नियुक्त करें। प्रसिद्ध ही है कि नियुक्त की अपेक्षा नियुक्त करने वाला खतन्त्र होता है।

प्रश्न-अनादि शिष्टाचार ही के अनुसार यज्ञकर्मों में मन्त्र, नियुक्त होते हैं ब्राह्मण भाग का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर-उक्त शिष्टाचार में यदि कोई मूल न होता तो वह शिष्टाचार ही अन्धपर्म्पी

हीनबिनियोजंकत्वस्य लोके द्र्भनात्।

प्रमा० (२५) एवम् - शेषे ब्राह्मणशब्दः (पू०मी० द० अ० २ पा० १ स्० ३३) इतिस्त्रमण्युक्तेऽर्थे मानम्। इदं हि स्त्रं तृतीयादिमकारान्व्यविक्रिन्देत् मन्त्रोब्राह्मण-पिति द्वैराइयमेव बेदस्येतिबोधनार्थमेवार्भ्यते। तथाच -

अत्रैव शावरम्।

अथ किंलक्षणम् ब्राह्मणम् ? मन्त्राश्च ब्राह्मणंच वेदाः तत्र मन्त्रलक्षणे उक्ते परिशेष-

के नाई अप्रामाणिक हो जाता और ऐसी दशा में वह कैसे मन्त्रों को नियुक्त कर सकता।

प्रश्न — अनादि शिष्टाचार ही से यह अनुमान कर सकते हैं कि उसका मूछ कोई बेद-भाग अवश्य था जो अब छुप्त हो गया तब कैसे वह शिष्टाचार अप्रामाणिक हो गया ?

उत्तर—उक्त दिशाचार से जिस बेदमाग का अनुमान होगा वह बेदमाग भी मन्त्रों को यहकर्म में नियुक्त करने वाला ही होगा क्योंकि जिस शिष्टाचार से उसका अनुमान होता है वह ऐसा ही है और मन्त्रों का यह स्वभाव स्पष्ट ही देखा जाता है कि वे मन्त्रों को कर्म में नियुक्त नहीं कर सकते बरुक आप ही नियुक्त होते हैं। और ऐसी दशा में अनन्यगति हा कर यह स्वीकार करना पढ़िगा कि शिष्टाचार से जिस बेदमाग का अनुमान किया जायगा वह मन्त्रभाग से अन्य ही था तब तो इतना ही कहना अविशिष्ट है कि उसी लुप्तबेदमाग का बाह्मणभाग नाम है। और अब बाह्मणभाग के बेद होने में कुछ बिवाद ही नहीं रहा किन्तु इतना ही बिचार करना अविशिष्ट रहा कि मन्त्रों को नियुक्त करने वाले बाह्मणभाग सभी लुप्त हो गये अथवा कुछ बँचे भी हैं ? ऐसी दशा में जो शतपथ आदि बाह्मणभाग (जिन में कि मन्त्रों को नियुक्त करने वाले सहस्रों वाक्य हैं) पूर्णक्त से इस समय प्रचलित हैं उनके देखने से यह निश्चय सहज ही में हो सकता है कि उतने ही बाह्मणभाग लुप्त हुए कि जिनका लुप्त होना बेददुर्गसज्जन के अन्त में पूर्वहीं कहा जा चुका है। और प्रश्नकर्ता की यह प्रशंसा है कि जो वह शतपथ आदि प्रसक्ष बाह्मणभागों को अपने निर्मूल और दुष्ट केवल आप्रह से बेद न मान कर लुप्तबाह्मणभागों के पीले अनुमान का घोड़ा दौड़ाता है।

प्रमा०—(२५) शेषे ब्राह्मणशब्द: (पू० मी० द० अ० २ पा० १ सू० ३३) यह सूत्र भी ब्राह्मणभाग के बेद होन में प्रमाण है। इसका अर्थ यह है कि मन्त्र से अन्य बेदभाग ब्राह्मण कहलाता है। इस सूत्र का यह निश्चय ही प्रयोजन है कि बेद का कोई भाग ऐसा नहीं है कि जो मन्त्र और ब्राह्मण से अन्य हो अर्थात् बेद के दो ही भाग हैं मन्त्र और ब्राह्मण, तीसरा भाग ही नहीं है। इसी से शावरभाष्य में इस सूत्र पर आक्षेप और उसका समाधान कहे हैं जो कि उद्भुत किय जाते हैं कि—

(आ०) इस सूत्र का कुछ फल नहीं ज्ञात होता क्योंकि जब बेद के दो ही भाग होते हैं मन्त्र और ब्राह्मण, और मन्त्र का लक्षण पूर्व हीं कहा जा चुका तब तो "वह लक्षण जिस बेद्भाग में न हो वह ब्राह्मण है" यह ब्राह्मण का लक्षण इस सूत्र के बिना ही निश्चित हो गया।

स० — यह आक्षेप तब ठीक होता कि जब इस सूत्र के बिना भी आप से आप सर्व-

शा.सिद्धत्वाद्वाह्मणल्कक्षणमवचनीयम् मन्त्रलक्षणेनैव सिद्धम् यस्यैतरलक्षणं नास्ति तह्वाह्मणम् हृति परिशेषसिद्धत्वाद्वाह्मणलक्षणमवचनीयमिति सूत्रमिर्म् मनारभ्यमिति मतिभाति। तत्र शेषशब्दमयोगाल्लक्षणानिभियानाच सूत्रब्याख्यानमेवेदमिति द्रष्ट्वयम् । किमर्थ पुनः सूत्रमारभ्यते १ नारभ्येत यदिमन्त्रब्राह्मणात्मकएव वेद इति सर्वेषां प्रसिद्धं भवेत् । येषां त्वप्रसिद्धं तेषां तृतीयादिप्रकारानिराकरणार्थं देराज्यमेव वेदस्येति मतिपादियतुमाह शेषे ब्राह्मणशब्द इति । इति च पूर्वोच्हते महामोहिबद्रावणप्रथमप्रवाधे तु मन्त्रलक्षणसूत्रमृगादिलक्षणसूत्राणि चान्तरेणतत्स्त्रत्रोपन्यासमात्रं प्रभाणतया दर्शितम् इहत्वे-तत्स्त्रत्रारम्भएव तथा दर्शत इति विशेषः ।

किंच मीमांसादर्शने ३ अध्याये ३ पादे-

धर्मोपदेशाच नहि द्रव्येण सम्बन्धः ॥ ४॥

इति सूत्रं ब्राह्मणभागस्य बेदत्वे मानस्। एतदर्थोऽपि पूर्वसुक्तः अत्र हि छ। घ्रवात् सान्ने त्येव वाच्ये द्रव्यषदमुपाददानेन महर्षिणा शब्दात्मकस्य मन्त्रस्य। तार्किकसंमतं गगनगुणत्वं निराकृत्य द्रव्यत्वमातिष्ठमानेन मन्त्राणां द्रव्यत्व। ध्रवत्रोव ब्राह्मिक्त्यकाङ्गद्रव्यमाधर्मः मभिद्धानेन यवादिवदेव विधिविनियोज्यत्वं तेषु स्वितमेव स्वितम्। एवंच यथा वंधं विनियोगं विना यवादीनां नालौकिकस्वर्गाद्यर्थसाधनता तथा मन्त्राणामपीत्ययमर्थः मह्जत एव लभ्यते। तथाच द्वितीयेऽध्याये प्रथमे पादे 'विधिमन्त्रयौरैकार्थ्यम्कशब्दात्' ३० इति सूत्रे व्यतिककारोज्ञतः —

यस्माद्गीह्यादिवन्मन्त्राः करणत्वेन कर्मणाम् । ब्राह्मणेन नियुज्यन्ते तस्मात्ते न विधायकाः ॥

तीसरा, किन्तु ऐसा नहीं है इस से जिस २ को उक्त निश्चय नहीं है उस २ को उक्त निश्चय कराने के लिये यह सूत्र है इति। (पूर्व ही उद्भुत महामोह बिद्रावण के प्रथमप्रवाध में ब्राह्मणभाग का बेद होता, मन्त्रलक्षणसूत्र और ऋगादिलक्षणसूत्र के बीच में इस सूत्र के उपन्यासमात्र से सिद्ध किया गया है। और यहां तो यह कहा जाता है कि यदि ब्राह्मणभाग बेद न होता तो यह सूत्र ही झूठा हो जाता)

पूर्व मी व द्र अध्या ३ पा ३ । 'धर्मोपद्शा निह द्र व्येण सम्बन्धः' ॥ ४ ॥ यह स्तूत्र भी ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण है और इसका अर्थ भी पञ्चम प्रमाण में दिखलाग गया है। इस सूत्र में साममन्त्रों को जैमिनिमहिष ने द्रव्य कहा है जिसका यह तात्पर्थ है कि ''नैयायिक छोग शब्द को आकाश का गुण कहते हैं परन्तु वास्त्रविक में शब्द गुण नहीं है कि उ द्रव्य ही है और मन्त्र भी द्रव्य ही हैं क्योंकि बे भी शब्द ही हैं इसी से जैसे जब चावल आदि द्रव्य बाह्मणभाग की आज्ञा से यज्ञकमों में लगाय जाते हैं वैसे ही मन्त्रक्पी द्रव्य भी। और कैसे बाह्मणभाग ही जब चावल आदि के अलोकिक स्वर्ग आदि पत्लों के प्रति यज्ञ के द्वाहा साधक होते में एक मात्र प्रमाण है वैसे ही मन्त्रों के भी यज्ञ के द्वाहा आलिक स्वर्गादि फलों के प्रति साधक होते में एक मात्र प्रमाण है वैसे ही मन्त्रों के भी यज्ञ के द्वाहा आलिक स्वर्गादि फलों के प्रति साधक होते में वाह्मणभाग ही प्रमाण है न कि अन्य, इति । और पूर्ण मीर दर्ण अध्या २ पार १ कि मन्त्रयारिकार्थ्यमैकशब्दात् ॥ ३० ॥ इस सूत्र के तन्त्रज्ञार्तिक में कुमारिलमह्पाद ने पूर्वावार्य मन्त्रयारिकार्थ्यमैकशब्दात् ॥ ३० ॥ इस सूत्र के तन्त्रज्ञार्तिक में कुमारिलमह्पाद ने पूर्वावार्य मन्त्रयारिकारिकारह्पाद ने पूर्वावार्य मन्त्रयारिकारहपाद ने के कि विसी कर्म के विश्वार का यह अर्थ है कि किसी कर्म के विश्वर का यह अर्थ है कि किसी कर्म के विश्वर का यह अर्थ है कि किसी कर्म के विश्वर का यह अर्थ है कि किसी कर्म के विश्वर का यह अर्थ है कि किसी कर्म के विश्वर का यह अर्थ है कि किसी कर्म के विश्वर का यह अर्थ है कि किसी कर्म के विश्वर का यह अर्थ है कि किसी कर्म के विश्वर का यह अर्थ है कि किसी कर्म के विश्वर का यह अर्थ है कि किसी कर्म के विश्वर का यह आप है कि किसी कर्म के विश्वर का यह अर्थ है कि किसी कर्म के विश्वर का यह अर्थ है कि किसी कर्म के विश्वर का यह अर्थ है कि किसी कर्म के विश्वर का यह अर्थ है कि किसी कर्म के विश्वर कर्म कर क्रिय का यह अर्थ है कि किसी कर्म के विश्वर कर क्रिय क्रिय कर क्रिय कर क्रिय क्रिय कर क्रिय क्रिय क्रिय क्रिय कर क्रिय क

इति श्लोकः। एवंच प्रमाणान्तरागम्यत्वेन वेदैकगम्या धर्ममूलतैव सत्यप्यपौरुषेयत्वे प्रन्त्राणां बिलीयत यदि ब्राह्मणभागस्तस्य बेदत्वं च न स्याताम् अतश्च स्वस्मिन्नलौकिक-स्वर्गादिफलसाधनताया बोधाय यवादिवदेव मन्त्रा आपि भिक्षव इव धनिनां ब्राह्मण-वाक्यानामेव मुखचेष्टामभीक्षणमुत्मेक्षन्त इतीयानेव महिमा मन्त्राणाम्। तथाच मन्त्रेषु वेदत्व-मन्त्रुपेत्य ब्राह्मणेषु तदपलपता स्वर्णकाषीपणं संगृह्म चिन्तामणिरेव सागरे प्रक्षिप्यते इति साधीयसी धीष्ठगन्धरता तस्य।

प्रमा० (२६) अपिच ब्राह्मणभागस्य वेदत्वे मीमांसाद्श्वनस्य चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः ॥ २॥

इतिसूत्रमपि प्रमाणम् । अस्य च, निर्धोर्ध्यमाणवलवदनिष्टापयोजकत्वे सति श्रेय!-साधनतया बेदपमापितो धर्म इतिलक्षणमितिनिष्कृष्टोऽर्थः । बिस्तरस्तु धर्मराजसज्जनारुये प्रथमप्रकरणे एतत्स्त्रब्याख्याने द्रष्ट्रच्यः। धर्मप्रमापकन्वं चान्वयब्यतिरैकानुरोधात्मोक्षा-द्विधिवाक्यानामेव, तानि च प्रायो ब्राह्मणभागस्थान्येवेति धर्मो ब्राह्मणभागेनैव प्रमाप्यः।

॥ भाषां॥

करने की शिक्ति, मन्त्रों में नहीं है क्यों कि चावल आदि द्रुग्यों के नाई मन्त्र सबं, आप भी ब्राह्मणभाग की भाजा से नियुक्त होते हैं। अब ध्यान देना चाहिय कि यदि ब्राह्मणभाग न होता अथवा होता भी परन्तु वास्ताविक में वह बेंद न होता तो अपीरुषेय होन पर भी मन्त्रभाग का धर्ममूल होना नष्ट ही हो जाता क्योंकि यज्ञकर्मों में मन्त्रों का उपयोगी होना ब्राह्मणभाग ही से सिद्ध होता है न कि किसी अन्य प्रमाण से। और ऐसी दशा में जैसे अपने को खर्गादि के प्रति साधक बनाने के लिये जब चावल आदि द्रुव्य, ब्राह्मणभाग का मुख देला करते हैं अथवा जैसे भिक्षुगण अपना पेट पालने के लिये धनी पुरुषों की मुखचेष्टाओं को एकाप्र हो कर निहारा करते हैं वैसे ही मन्त्रगण भी अपने को खर्गादिसाधक होने के लिये ब्राह्मणभाग ही के मुख को ताकते रहते हैं इसी से ब्राह्मणभाग ऐसे प्रधान बेदमाग के सामने कुछ भी महिमा मन्त्रों की नहीं है। तो ऐसी दशा में मन्त्रों को बंद मान कर जो पुरुष ब्राह्मणभाग की बेदता को नहीं स्वीकार करता है वह मानों स्वर्णमुद्ध को गांठ में बांध कर हाथ के चिन्तामणि (पारस) को अगाधसमुद्ध में फेंकता है इस से उस को खिक्किए ही समझना चाहिये।

प्रमाठ—(२६) ब्राह्मणभाग के बेद होने में पू० मी० द० अध्या०१ पा०१। "चोदनाछक्षणोऽथीं धर्म:" ॥ २ ॥ यह धर्मलक्षण का सूत्र भी प्रमाण है जिस का कि परमसंक्षिप्त अर्थ
यह है कि "जी, प्रवृत्ति कराने बाल बेदवाक्य ही से यथार्थनिश्चय करने योग्य है और उस से,
निश्चित प्रबल अनिष्ठ नहीं उत्पन्न होता वह धर्म है। इस का मावार्थ विस्तार के भय से यहां नहीं
लिखा जाता किन्तु धर्मराजसज्जननामक प्रथमप्रकरण ही में पूर्व ही कहा जा चुका है । इस
सूत्र में महार्ष ने स्पष्ट ही यह कहा है कि "धर्म का यथार्थनिश्चय बेद ही से होता है" इति । और
बेद के भी "स्वर्गकामा यजत" आदि विधिवाक्य (जो कि विधान करने के द्वारा यज्ञों में पुरुषों
की प्रवृत्ति कराते हैं) ही से धर्म का निश्चय होता है न कि मन्त्रों से, क्यों कि अभी पूर्व में निश्चित
हो चुका है कि मन्त्रों में विधान करने की शक्ति नहीं है तथा इस सूत्र में "चोदना" शब्द का अर्थ
भी बेदिक विधिवाक्य ही है क्यों कि चही यज्ञादिक माँ में पुरुषों की "चोदना" (प्रेरण) अर्थात्

एवंच ब्राह्मणभागस्य वेदत्वाभावे मन्त्रभागस्य धर्मप्रमापकत्वाभावेनास्मिनस्त्रे महर्षिणा कण्टोक्तं धर्मस्य वेदप्रमापितत्वं नोपपादायितुं शक्यत इति बृद्धकुमारीवरन्यायेनैतत्स्त्रे ब्राह्मणभागे वेदत्वं साधयति । अय धर्मः श्रेयःसाधनम् साधनत्वं च भावनाद्वारकम् भावना च सर्वेष्वेवाख्यातेषु गम्यते आख्यातं च सर्वेष्वेव वाक्येषु । आकाङ्कापूरणस्य तदायक्तत्व त् । तथाच विधि विनाप्याख्यातघितानां मन्त्रवाक्यानां स्वर्गोदियज्ञयोभियः साध्यसाधनभावस्य बोधकतायाः संभवाद्धमस्य वेदप्रमापितत्वं स्त्रोक्तं, ब्राह्मणभागस्य वेदत्वं विनाऽपि मन्त्रभागस्य वेदत्वनेवोपपादियतुं शक्यते । नच पुरुषप्रवृत्तये विधिवत् श्याश्रयणीय इति वाच्यम्। निह विधिरपि बलात्पुरुषं प्रवर्त्तयति किंतु यज्ञादः श्रेयःसाधनतां गमयत्येव, तस्याश्र ज्ञानात्पुरुषस्येच्छा, ततश्य प्रवृत्तिः, श्रेयःसाधनताज्ञानं च विधिनेव जन्यतप्रवाख्यातान्तरेणापि । तथाचान्ययोपपन्नमेवेतत्प्रमाणमितिचेन्न । यदा हि भावनाया भाव्यकरणेतिकर्तव्यताख्यांस्त्रीनप्यंशान्साकल्येन विशिष्य प्रतिपादयद्धिः पदैः पूर्णेषु ब्राह्मणभागेष्वपि विधिमन्तरेण धर्मप्रमापकता न कथमप्युपपादियतुं शक्यते तदा तादशभावनांऽश्वर्यापस्थापकपदाविकलेषु मन्त्रेषु विधि विना धर्मप्रमापकत्वस्य प्रत्याज्ञा, पण्डकातपुत्रोत्यतेः त्रयोपस्थापकपदाविकलेषु मन्त्रेषु विधि विना धर्मप्रमापकत्वस्य प्रत्याज्ञा, पण्डकातपुत्रोत्तरे तदर्थ-प्रत्याज्ञीत्वाद्धिः । स्वर्मकामो यज्ञेते व्यादावसति विधी सत्यपि चाख्यातान्तरे तदर्थ-प्रत्याज्ञीत्वाद्वात्तरे । स्वर्मकामो यज्ञेते व्यादावसति विधी सत्यपि चाख्यातान्तरे तदर्थन्त्रात्रीत्रेव । तथादि । 'स्वर्मकामो यज्ञेते व्यादावसति विधी सत्यपि चाख्यातान्तरे तदर्थन

प्रशृति कराता है। तथा विधिवाक्य, ब्राह्मणभाग ही में होता है। तब ऐसी दशा में यदि ब्राह्मणभाग बेद नहीं है तो विधिवाक्य भी बेद नहीं है जिससे कि धर्म का निश्चय होता है। और जब विधिवाक्य बेद नहीं है तब महार्ष ने बेद से धर्म का निश्चय होना कैसे कहा, क्यों कि धर्म का निश्चय बिधिवाक्य ही से होता है जो कि स्वामी के मत में बेद ही नहीं है।

प्र० स्वर्गादिरूप इष्ट के साधक यागादिकिया को धर्म कहते हैं और यागादि, तभी स्वर्गादि के साधक हो सकते हैं जब उन की भावना (अनुष्ठान) की जाय और भावना का सब आख्यातों (क्रियाशब्द अर्थात् तिङन्त पकाता है खाता है इत्यादि) से बोध होता है और आख्यात, सभी वाक्यों से होते हैं क्योंकि आख्यात के बिना सभी वाक्य अधूड़े रहते हैं जैसे "मुझ की' इत्यादि शब्द, "भिलता" इत्यादि आख्यात के बिना सभी वाक्य अधूड़े रहते हैं जैसे "मुझ की' इत्यादि शब्द। से गा के खीं भाजा) के बिना भी "याग से स्वर्ग होता है" इत्यादि आख्यात वाले वाक्यों से, याग के खीं साधक होने का बोध हो सकता है तब इस के बोधार्थ वाक्य में बिधि का कोई काम नहीं है और आख्वात तो मन्त्रों में होते ही हैं, तो क्या मन्त्र, यागों के स्वर्गसाधक होने का बोध नहीं करा सकते अथवा उन से धर्म का निश्चय नहीं हो सकता है इस रीति से जब मन्त्र भी बिधि के बिना धर्म की विश्वय करा सकते हैं तब इस सूत्र में "चोदना" शब्द से मन्त्रों ही का प्रहण है न कि ब्राह्मणभाग के बिद्द होने में कैसे प्रमाण हो सकती है यह तो कह नहीं सकते कि यागों में पुरुषों की प्रवृत्ति के लिथे "यजेत" (याग करें) ऐसे बिधि वाक्य की आवश्यकता है, क्योंकि यदि कोई पुरुष याग करना न चाहै तो बिधि उस को बलाकी से प्रवृत्त नहीं करता किन्तु दूसरे आख्यातों के नाई इतना ज्ञानमात्र करा देता है कि "यज्ञ, पुरुषीर स्वर्गादि का साधक है" और प्रवृत्ति तो पुरुष की इच्छा के अधीन है।

स्पा स्वरादि का तायक है जार अष्टात्त ता पुरुष का इच्छा के अधीन है।

उ०—"स्वर्गकामो यजेत" (स्वर्ग चाहने वाछा याग करें) इत्यादि वाक्यों में यदि विधि तहीं
तो इन वाक्यों का यह अर्थ होगा कि "स्वर्ग चाहने वाछा याग करता है" और तब "करता है"

भूताया भावनायाः साध्यताऽपरपर्याया भाव्यता, समानपदोपात्तत्वाद्धात्वर्थे यागमेवावं-लम्बेत नतु स्वर्गादिकम्, तस्य कामनाविशेषणतया स्वर्गादिपदोपात्तत्वेन चरमोपस्थितिक-तयाऽऽख्यातप्रकृत्युपस्थाप्यं यागमपहाय भावनया कथांचिदप्यन्वेतुमसंभाव्यमानत्वात्। यांगश्च न स्वरूपतः पुरुषार्थः किन्तु बहुवित्तब्ययायाससाध्यत्वाद् द्वेष्यकल्पः। पुरुषार्थ साधयन्तीष्वेव च भावनासु पुरुषाः शवर्तन्ते, स्वतोऽपवर्तमाना अपि तस्याः पुरुषार्थसा-धनतां बोधयित्वा भवर्तियतुं श्रवयन्ते च । तथाचापुरुषार्थसाध्यिकायां पुरुषप्रवृत्तिपर्यवसित क्षायामधभावनायामाख्यातान्तरघटितेन तादृशवाक्येनानेकशो बोधितायामपि नतरां तेन वाक्येन कथमपि पौरुषी प्रबृत्तिः शक्येतार्जायतुमिति व्यर्थमेव तद्वाक्यं स्यात्। सति तु विधौ तदुपस्थापितया समानप्रत्ययोपात्तत्वाद्धात्वर्थोदपि नेदिष्ठया प्रवर्तनारूपया शब्द-भावनया कर्मतासंबन्धेनान्वीयमानाऽऽख्यातसामान्यसुलभा प्रवृत्तिरूपाऽऽधीभावना, सिक्छष्टमपि धात्वर्थे यागमपुरुषार्थत्वादपहाय विश्कृष्टमपि कामनाविशेषणतयोपस्थितमपि च स्वर्गादिकं स्विषयकशब्दभावनाबलेन पुरुषार्थतया स्वानुक्ललादुपगृह्णती धात्वर्थ यागं साधनतयैव गृह्णाति । तथाच 'यागेन स्वर्ग भावयेदि' त्यादिवाक्यार्थसम्पत्तिद्वारा प्रवृत्ते-रुपपत्तये विधेरावश्यकत्वात्ततः श्रेयःसाधन्तारूपं धर्मत्वं यागादीनां छभ्यते इति रीत्या बिधीनां धर्मे प्रमाणत्वं सुतरामुपपद्यते ।

तथा च 'औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन ॰ 'मी ॰ द० अ०१ पा० १ सू० ५ इत्यत्र बार्त्तिके भट्टपादाः-

विधावनाश्रिते साध्यः पुरुषार्थी न लभ्यते। श्रुतस्वर्गादिबाधेन धात्वर्थः साध्यतां अजेत् ॥ १४ ॥ विधौ तु तमतिक्रम्य स्वर्गादेः साध्यतेष्यते । तत्साधनस्य धर्मत्वमेवं सति च स्रभ्यते ॥ १५ ॥ इति ।

इस शब्द के अर्थ, अर्थात् अनुष्ठानरूपी भावना का साध्य, (कार्य) याग ही होगा जो कि परिश्रम और द्रव्यव्ययरूपी होने से दुः लमय है, और केवल दुः लमयकार्य के अनुष्ठान में साधारणपुरुषों की भी निवृत्ति को छोड़ प्रवृत्ति नहीं होती तब इस बाक्य से यागादिक में पुरुषों की प्रवृत्ति कैसे होगी ? इस से ये वाक्य ब्यर्थ ही हो जायंगे। और वाक्यों में विधि रहने पर तो उक्त अर्थ के अनुसार विधि से प्रेरणां का बोध होता है तथा प्रेरणा से प्रयत्नरूपी भावना पुरुष में उत्पन्न होती है और अनुष्ठानरूपी भावना उक्तरीति से दु:समय होने के कारण याग को छोड़ कर सुखरूपी खगृदि को अपना साध्य बनाती है और छूटा हुआ याग, करण (साधन) हो कर भावना (अनु-ष्ठान) के पीछे लग पड़ता है तब बिधिवाक्य का यह अर्थ होता है कि याग से सुखरूपी स्वर्ग की खत्पन्न (सिद्ध) करै, अब "यह भावना (अनुष्ठान) खर्ग को सिद्ध करने वाली है" ऐसा ज्ञान होने पर पुरुषों की प्रवृत्ति अवश्य ही होती है इस रीति से याग की भावना (अनुष्ठान अर्थात् याग में पुरुषों की प्रवृत्ति) के लिये विधि की आवश्यकता है और विधि ही से याग में, सुख का साधक होना भी स्पष्ट निकलता है तथा धर्म होना और सुखसाधक होना एक ही बात है। इस रीति से विधिवाक्य ही धर्म में प्रमाण हो कसते हैं न कि मन्त्रवाक्य । और इन युक्तियों को, पूर् मीं द० अध्या १ पा० १ "औत्पत्तिक प्।। सूत्र पर श्लोकबात्तिक में भट्टपाद ने भी १४

(प्र०२७) एवम्-मी० द०— बिभिमन्त्रयोरैकार्थ्यमैकशब्द्यात् अ०२ पा०१। स्०।३०॥ अपि बा प्रयोगसामर्थ्यान्मन्त्रोऽभिधानवाची स्यात्॥३१॥

इति स्त्रद्वयमि क्राह्मणयागस्य वेदत्वे स्फुटतरं प्रमाणम् । तथाहि । अनयोः स्त्रयोः क्रमेणेमावथौं । दिवाँश्र याभिर्मजते ददाति चे त्यादिमन्त्रे श्रूयमाणं यजत इत्याद्याख्यातः पर्द विधायकं नन्नेति संन्ने ' विधिमन्त्रयोरैकार्थ्यम्' उभयोरपाख्यातजातीयत्वादिति पूर्व- पटक्रयोशाख्यातयोविधायकत्वम् ' ऐकशब्द्यात् ' उभयोरपाख्यातजातीयत्वादिति पूर्व- प्रक्ष इति । मन्त्रः मन्त्रस्थाख्यातपदम् अभिधानवाची अर्थप्रकाशनमात्रपरः प्रयोगे अनुष्ठाने प्रक्ष इति । मन्त्रः मन्त्रस्थाख्यातपदम् अभिधानवाची अर्थप्रकाशनमात्रपरः प्रयोगे अनुष्ठाने क्रियमाणे तात्रद्वर्श्वस्मरणमात्रसामर्थ्यात् न तु विधायकिमिति सिद्धान्त इति । अथ पूर्वस्त्रस्य सात्रसङ्केपः । मन्त्राणां विधायकत्वं नासंभवदुक्तिकम्, ब्राह्मणवाक्ये ' समिधो यजती क्रमाद्रो छान्दसेन ब्यत्ययानुशासनेन छिङादिभिन्नानामपि छकाराणां विधायकत्वदर्शनान्त्रस्ति । छत्तरसन्नस्त्रभावसङ्केपस्त

ब्राह्मणस्थाविधवावयानां कर्म किंचिद्रन्य केनियन्येन ब्राह्ममेनाविनिष्ठक्रमान-त्वात्कप्रीक्षधायक्रत्वं युज्यत एव । मन्त्राणान्तु तत्तत्कर्मान्य तत्तत्स्मारकत्या तत्तद्वाद्यण-वाक्येन विनियुज्यमानत्वात्कर्माविधायकत्वं विरुध्यत एव । किंच विधिशक्तिविद्दन्तारस्ता-वृद्ध यज्ञ्चेन्द्रसंबे।भ्रमक्षिभकत्युत्तमपुरुषयदिशन्दा मन्त्रेष्वेत्र जाग्रति न ब्राह्मणेषु दिङ्मात्रं च तद्दाहरणस्य यथा —

न ता सक्ति ज द्याति तस्करो नासामामित्रो ब्यथिर आद्धर्षति । देवाँश्च याभिर्यजते द्दाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ॥

और १५ वें ऋोक से कहा है और वे ऋोक ऊपर संस्कृतभाग में उद्धृत हैं।

(प्रमार्ग २७) मूर्व मीर्व दर अध्यार २ पार्व १ । " विधिमन्त्रसार कार्ध्य मैकराज्यात" दर । 'श्रिष्ठ वा प्रयोगसामध्यान्यन्त्रोऽभिधानवाची स्यात्" ३१ ॥ ये पूर्वपक्ष और सिद्धान्त के द्रोमों सूत्र भी ब्राह्मणभाग के केंद्र होने में प्रमाण हैं। प्रथमसूत्र का अक्षरार्ध यह है कि जैसे विधि व्यात्र करों का किथान करते हैं वैसे ही मन्त्रों में भी "द्राति" आदि कियाशब्द रहते हैं, अपेर इस क्रियाशब्द का 'देता है' इसादि अर्थ नहीं है किन्तु 'दे' इसादि अर्थ हैं। और इस का सहित्र वात्र वे कि जैसे " सामिधो यजित " (सिप्ध नामक यान करें) इसादि ब्राह्मण साक्ष्मों में " ति " आदि शब्द से भी सागा का विधान होता है वैसे ही मन्त्रों के " द्राति " आदि शब्द में 'ति " आदि शब्द से भी द्रातादि कर्मों का विधान होता है वैसे ही मन्त्रों के " द्राति " आदि शब्द में 'ति ' आदि शब्द से भी द्रातादि कर्मों का विधान हो सकता है। और द्वितीयसूत्र का अक्षरार्थ यह है कि मन्त्र, विधान नहीं करते हैं, और न प्रशंसा करते हैं, किन्तु याग करने के समय हो कि साओं का समरण मात्र करते हैं, जौर न प्रशंसा करते हैं, किन्तु याग करने के समय हो क्रियाओं का समरण मात्र कराते हैं जिन का कि विधान, ब्राह्मणभाग के वाक्षों से हुआ प्रहात है। इस का संक्षिप्त भावार्थ यह है कि मन्त्र, विधान नहीं कर सकते क्रियोंकि "यह दें कि मन्त्र, विधान नहीं कर सकते क्रियोंकि "यह दें कि मन्त्र, विधान नहीं कर सकते क्रियोंकि "यह दें कि मन्त्र, विधान नहीं कर सकते क्रियोंकि "यह दें कि मन्त्र, विधान नहीं कर सकते क्रियोंकि "यह दें कि मन्त्र, विधान कही कर सकते क्रियोंकि "यह दें कि सन्त्र कि सात्र करते हैं और स्थाद स्थाद है कि सन्त्र विधान करने की शाक्ष की मात्र करते हैं और स्थाद स्थाद स्थाद है की स्थाद स्थाद स्थाद स्थाद स्थाद स्थाद है की स्थाद स्थाद हो है की सन्त्र विधान करने की मात्र करते हैं और स्थाद स्याद स्थाद स

इति मन्त्रे (याभिगोंभिर्यजते याश्र ददाति ता गावी न नश्यन्ति नच तास्तस्करो हरित न तासां कंचिदवयवमित्रकृतो व्याधिरुपद्रवः पीडयित गोस्ताभी च ताभिः सह चिरकालं संयुक्तो भवती' ति गोस्तुत्यर्थके गोयागगोदानयोः सिद्धवद्भावाभिधायिना यच्छव्देन विधायकत्वमुपहन्यते। यथा वा—

अहे बुधिय मन्त्रं मे गोपाय०

इत्यादौ पूर्वोक्तमन्त्रे वक्तिभग्नतिकरणार्थया 'अहे' इति संबोधनाविभक्तचा सामान् न्यतो वक्तिभिहितार्थानुष्ठानम्बृत्तवक्तिभग्नत्वपुरुषप्रवर्त्तकत्वमस्य मन्त्रस्यावगमयन्त्या स्वतोङ प्रबृत्तपुरुषप्रवर्त्तनात्मिका विधिशक्तिनीश्यते । यथा बा—

बहिर्देवसदनं दामि शुक्रं त्वा शुक्राय धाम्ने धाम्ने देवेभ्यो यजुषे यजुषे गृह्णामि ॥

इति मन्त्रे अस्मदर्थकेनोत्तमपुरुषेणात्मनि पवर्त्तनानुपपत्त्या बिधिशक्तिकिध्यते। यथा बा— यदि सोममपहरेयुः०

इत्यादि मन्त्रे निमित्तत्ववाचिना प्राप्तिबोधोपधायिना यदिशब्देनाप्राप्तपापणात्मिका विधिशक्तिरपनीयते। एवंजातीयकानां च विधायकत्वविहन्तृणां मन्त्रेषूप्रक्रम्भान्मन्त्राणां न विधायकत्वम् किन्तु गुणकर्मविधायकत्वपधानकर्मविधायकत्वाभ्यामन्यदेव विधिवाक्य-विहिततत्तत्कर्मस्यारकतारूपमञ्जवादकत्वापरप्रयोयं 'मन्त्रेणैव स्वरणीयिमः' ति नियमादृष्टोप-

॥ भाषा ॥

" न ता नशन्त " (जिन गौंओं से याग करता है और जिन गौओं को देता है, वे गैएं नष्ट नहीं होतीं, न उन को चोर चुराता, न उन के अंगों में शत्रुकृत वा ब्याधिकृत पींडा होती हैं और उन गौओं का खामी उन के साथ चिरकाछ तक संयुक्त रहता है) यह मन्त्र विधायक नहीं है क्योंकि " यद् " (जिन) शब्द के रहने से ' गौ ' नामक याग और गोदान की सिद्ध होने की दशा ज्ञात होती है और विधान, सिद्ध का नहीं होता किन्तु असिद्ध ही का । तथा "अहे बुन्निय मन्त्रं में गोपाय॰ " हे अहिंसक, आदिसृष्टि में उत्पन्न चतुर्थ अग्नि ! तू मेरे मन्त्र की रक्षा कर) इत्यादि मन्त्र, बिधान नहीं करते क्योंकि 'हे 'इस संबोधन से यह निश्चित होता है कि आमि, मन्त्र बोलने वाले के अभिमुख स्थित हैं और उसके काम करने में प्रवृत्त हैं, तो ऐसी अवस्था में विधान नहीं हो सकता क्योंकि पूर्व से जो जिस काम में प्रवृत्त नहीं है उस की उस काम में प्रवृत्त करने की विधान कहते हैं। और उक्त यद् आदि शब्द, ब्राह्मणभाग के वाक्यों में प्रायः नहीं रहते इस कारण ब्राह्मणभाग के वाक्य, कमीं का विधान करते हैं इति ॥ और इस भावार्थ का पूर्णिनिरूपण तो बेददुर्गसज्जन के मन्त्रप्रकरण में पूर्व ही ही चुका है। अब यह ध्यान देने के योग्य हैं कि प्रथमसूत्र में बिधिवाक्य के दृष्टान्त से मन्त्रवाक्य में विधानशाक्ति होने का पूर्वपक्ष किया गया है और यह भी कहा गया है कि विधिवाक्य के क्रिया-शब्द तो विधान करते ही हैं परन्तु मन्त्रवाक्य के क्रियाशब्द भी विधान कर संकंते हैं और द्वितीय-सूत्र में तो विधिवाक्यों की अपेक्षा मन्त्रों में भेद दिखला कर महार्ष ने मन्त्रों की विधानशाकि का खण्डन कर मन्त्रों को लौकिकवाक्यों के नाई सार्क अर्थात् ब्राह्मणभाग से बिहित कमें का अनुवादक बतलाया और "अभिधानवाची " (सारक अर्थात् अनुवादक) इस शब्द से मन्त्रों

पादितसार्थकताकेषु मम्त्रेषु लौकिकवाक्यसाधारणमाभिधाकयत्वमात्रमिति सिद्धान्त इति। विस्तरस्तु बेददुर्गसज्जने मन्त्रोपयोगाधिकरणसिद्धान्ते वीक्षणीयः। एवं च बिधिमन्त्रयो रिति तुल्यवदेव द्वयोरुपादानात् यथा विधेर्विधायकत्वमविवादं तथा तदैकशब्द्यान्मन्त्राणाः मिप बिधायकत्विमिति द्योतियतुं बिधिशब्दस्य प्रथममुपाद्गत् 'ऐकशब्द्यादि स्वित्र 'अनयोरेकामाते' त्यादाविव समानार्थकस्यैकशब्दस्योपादानेन यथा विधिवाक्यगताना-माल्यातानां शब्दभावनार्थकत्वं मीमांसादर्शनसिद्धान्तासिद्धं तथा मन्त्रगतानामप्याख्यातानां शब्दभावनाऽर्थत्वम्रुचितिमिति ध्वननाच ब्राह्मणभागगतानां विधिवाक्यानां विधायकतयाः पूर्वोक्तरीत्या साक्षाद्धमेमूलत्वमन।दिमीमांसादर्शनासिद्धान्तिसद्धम् मन्त्राणां तु विधिसाधम्ग्री दिदानीमेव धर्ममूलतायाः साक्षात्त्वं सिषाधियिषितमिति स्पष्ट एव पूर्वस्त्राशयः। ज्तर-सूत्रे तु बिधिवाक्यान्मन्त्राणां बैषम्यं दर्शयित्वा 'अपि बे' ति पक्षान्तरं दर्शयता महर्षिणा बिधायकत्वं प्रत्याख्याय छौकिकवाक्यसाधारणीकरणेनाभिधायकत्वापरपर्यायमनुवादकत्व-मेव मन्त्राणां कण्ठरवेणैव सिद्धान्तितम् । तथाच लौकिकवाक्यसजातीये नियमादृष्ट्-कल्पनामात्रोपपादितसार्थकताकेऽनुवादकमात्रे ब्रीहियवादिवद्वाह्मणभागविनियोज्येऽक्षवेट-भूते मन्त्रभागेऽपि यदि बेदत्वं तदा विधायके साक्षादासादितधर्मसूलताके लौकिकवाक्ये-भ्योऽत्यन्तिबिलक्षणे मानान्तरानवलीढार्थाभिधायिनि मन्त्रविनियोजके भाव्यकर्णेतिकर्त-व्यतारूपभावनाद्वयांशपरिपूर्णे राजनीव प्रधाने ब्राह्मणभागे बेदुत्वमस्तीत्यत्रैतावदेव कथनीय मवशिष्यते यत् यदि बेदत्वं ब्राह्मणभागेऽपि नास्ति तहि खपुष्यमिव कचिद्पि तन्नास्तीति।

(प्रमा० २८) एवम् पू० मी० द०—
१ वेदाँ श्रेके सानिकर्षम्युरुषाख्याः अ०१ पा०१ स्र० २७
(प्रमा० २९)-२ अनित्यदर्शनाच । अ०१ पा०१ स्र० २८
(प्रमा० २०)-३ परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रम् । अ०१ पा०१ स्र० ३१

को छैकिकवाक्यों के समान कहा और इसी को सिद्धान्त कर दिया। तो ऐसी दशा में छैकिक वाक्यों के समान स्मारक, अर्थात ब्राह्मणभाग का, अनुवादक और अपने अक्षर के पाठमात्र से यहां का उपकारी तथा ब्राह्मणभाग की आज्ञा से जब चावल के नाई कमी में नियुक्त, और ब्राह्मणभाग का अङ्गभूत मन्त्रभाग भी जब बेद है तब यहां के विधान करने में समर्थ, और धर्म में साक्षात प्रमाण, तथा छौकिकवाक्यों की अपेक्षा (इस कारण से कि विधिवाक्यों का अर्थ छौकिक स्वतन्त्रप्रमाणों से नहीं ज्ञात हो सकता) अत्यन्त बिलक्षण, और पूर्वोक्त अर्थभावना, शब्दभावना के प्रत्येक अंश से संपूर्ण, तथा मन्त्रों को सेवक के समान यज्ञकर्मों में नियुक्त करने वाले, महाराज के सहश स्वतन्त्र ब्राह्मणभाग को इतना ही नहीं कहना चाहिये कि ये बेद हैं किन्तु योही कहना उचित है कि यदि वे बेद नहीं हैं तो 'बेद ' शब्द किसी पदार्थ का नाम ही नहीं है।

(प्रमा० २८)-पू. मी. द.—१ नेदॉं ख्रेंके सम्निकर्ष पुरुषाख्याः । अ०१ पा०१ सू०२७। (प्रमा०२९)—२ आनित्यदर्शनाच । अ०१ पा०१ सू०२८।

(प्रमा० ३०) — ३ परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रम् । अ० १ पा० १ सू० ३१।

(प्रमा० ३१)-४ अनित्यसंयोगात्। अ०१ पा० २ स्०६ (प्रमा० ३२)-५ अन्त्ययोर्घथोक्तम्। अ०१ पा० २ स्०१८ (प्रमा० ३३)--६ अनित्यसंयोगान्मन्त्रानर्धक्यम्। अ०१ पा० २ स्०३९ (प्रमा० ३४)--७ उक्तश्चानित्यसंयोगः। अ०१ पा० २ स्०५०

इति सप्तस्त्री ब्राह्मणभागस्य बेदत्वे मानम् । क्रमेण च स्त्राणामिमेऽर्थाः । एके नैयायिकादयः वेदान् सिन्नकर्पम् त्वरया आपातमात्रेण सिन्नकृष्य सामीप्येन आधुनिकत्वेन स्वीकृत्य आहुः पौरुषेयानाहुिरितियावत् । चो हेतौ यतः एषां वेदानां पुरुषाख्याः काठकम् कौथुममिति पुरुषघटिता आख्याः नामानीति ॥ १ ॥ आनित्यानाम् जननमरणवतां पुरुषाणां प्रावाहण्यादीनाम् दर्शनाच्च प्रतिपादनदर्शनादिष एके वेदान्सानिकर्षमाहु-रिति ॥ २ ॥ यद्यपि 'वर्षरः प्रावाहणि' रित्यस्ति परन्तु । श्रुतिः । प्रावाहण्यादिख्या सामान्यमात्रम् उपदेशसौकर्याय काळजातिविशेषाद्यविशेषितस्य लौकिकाख्यायिकास्थकिष्य-तदेवदत्तपद्यदत्तिविशेषाय्यव-विश्वस्य कस्यचिद्वित्यस्य वस्तुन इति ॥ ३ ॥ अनित्यानाम् प्रावाहण्यादीनां जन्मव्यकुष्पाणाम् संयोगात् प्रतिपादनात् अर्थवादानाम् अनित्यम् धर्मम्बृत्यजनकत्वम् उच्यत् इति पूर्वस्त्रसम्बन्धेनार्थः ॥ ४ ॥ अन्त्ययोः 'अभागिपतिषेषात्' 'अनित्यसंयोगा' दिति-स्त्रयोः यथोक्तम् स्वार्थम्पत्यपामाण्येऽपि 'नान्तिरिक्षे चिन्वीते' त्यर्थवादस्य 'क्ष्ममुप-द्याति' ति विध्यस्तावकतया, 'बर्बरः पावाहाणि' रित्यर्थवादे पावाहणिशब्दस्य जातिकाल-॥ भाषा॥

(प्रमा० ३१ '—४ अनित्यसंयोगात् । अ०१ पा० २ सू०६ । (प्रमा० ३२)—५ अन्त्ययोर्यथोक्तम् । अ०१ पा० २ सू०१८ ।

(प्रमा० ३३) — ६ अनित्यसंयोगान्मन्त्रानर्थक्यम् । अ० १ पा० २ सू० ३९ ।

(प्रमा० ३४)—७ उक्तश्चानित्यसंग्रोगः । अ०१ पा०२ सू०५०। ये सात सूत्र भी ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण हैं। क्रम से इन सूत्रों का यह अर्थ

है कि नैयायिक आदि, अपने थोड़ बिचार से बेद को पौरुषेय इस कारण कहते हैं कि काठक (बेद की शाखा का नाम) आदि में कठ आदि, पुरुषों के नाम हैं।। १।।

और इस कारण से भी वे (नैयायिक आदि) बेदों को पौरुषेय कहते हैं कि "बर्बर: शावाहणिरकामयत" (प्रवाहणि के पुत्र बर्बर ने इच्छा किया) इत्यादि बेदवाक्यों में बर्बर आदि

अनित्य (उत्पन्न और बिनष्ट होने वाले) पदार्थी का कथन है। २।

उक्त बेदवाक्य में 'प्रावाहाणि' 'बर्बर' आदि शब्द, कालिबरोष में उत्पन्न और जाति-विशेष वाले किसी पुरुषिबरोष के बोधक नहीं हैं किन्तु जैसे लौकिक आख्यायिकाओं (कादम्बरी आदि) में किल्पतनामों से ब्यवहार होता है वैसे ही उक्त बेदवाक्यों में भी उपदेश की सुगमता के लिये बर्बर आदि किल्पतनामों से ब्यवहार है ३ अर्थवाद, धर्म के बिषय में प्रमाण नहीं हो सकते क्योंकि "बर्बर: प्रावाहणि:0" आदि अर्थवादों में बर्बर आदि अनिस पदार्थ कहे हुए हैं जिस से कि अर्थवाद पौरुषेय सिद्ध होते हैं। ४।

"परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रम्" (इस उक्त तृतीयसूत्र) से बेद के पौरुषेय होने का जो

विशेषाद्यनवाच्छित्रकालिपतपुरुषसामान्यवेधिकतया च पूर्वमुक्तं समाधानं क्रमेण ज्ञेयमिति ॥ ५॥ किन्ते कुण्वन्ति कीकटेषु गावः नाशिरं दुहे न तपन्ति धर्मम् । आनो भर ममङ्गदस्य-वेदो नैचाशाखं मधवन् रन्धयानः' इति मन्त्रे कीकटदेशादिरूपानित्यवस्तुवचनपद-घटितत्वादर्थविवक्षायामनित्यत्वं बेदस्य स्यात् अतो 'मन्त्राणामानर्थक्यम्' न दृष्टार्थ-सारकत्वम् किन्त्वदृष्टार्थमेव तदुचारणिमिति ॥६॥ अनित्यसंयोगः अनित्यार्थकत्ववारणोपायः उक्तः 'परन्तु श्रुतिसामान्मात्रम्' इति सूत्रे कथितः स इहापि क्रेय इति । 'उक्तमन्त्रस्यार्थी तु पौरुषेयत्वतदभावयोरनुकूलौ बेददुर्गसज्जने पूर्वमुक्तौ ॥ ७॥तात्प्रयवर्णनिबस्तरस्तु पूर्वस्य सूत्रत्रयस्य बेदापौरुषेयत्वमकरणे, मध्यस्य सूत्रद्वयस्य अर्थवादाधिकरणे, चरमस्य सूत्रद्वयस्य च मन्त्राधिकरणे, बेददुर्गसज्जने विलोकनीयः । अत्रवेयं प्रकरणशुद्धिः पूर्वस्त्रत्रयेण मनत्रज्ञाह्मणसमुदायात्मकस्य वेदस्यानित्यार्थप्रतिपादकत्वात्प्रसक्तं पौरुषेयत्त्रं, बोधसौकर्यार्थः कंस्पितार्थप्रतिपादकतामुपपाद्य निराकृतम् । मध्यमेन च सूत्रद्वयेनार्थवादाधिकरणस्थेन ब्राह्मणभागमात्रान्तर्गतेष्वर्थवादेषु पूर्ववदेव मसक्तं पौरुषेयत्वं तथैव मत्याच्यातम्। चरमेण तु सूत्रद्धयेन मन्त्रेषु तथैव प्रसक्तं पौरुषेयत्वं पूर्ववदेव प्रत्यादिष्टम् । यदि तु मन्त्रभागस्यैव बेदत्वं स्यात् तदा मध्यमा द्विसूत्री पुनक्तिदोषात् चरमा च पुनः पुनक्तिदोषात्र मुच्येत, बेदत्वे तु ब्राह्मणभागस्य स्वीकियमाणे नोक्तपुनसक्तिदोषस्य शङ्कालेशोऽपि किम्पुनः, ॥ भाषां॥

समाधान किया गया वहीं समाधान यहां भी है। ५।

यदि मन्त्रों का अपने अर्थ में तात्पर्य होता तो "किंते कृण्वन्ति कीकटेषु गावः" इत्यादि मन्त्र, (जिस का पूर्ण अर्थ मन्त्रोपयोगप्रकरण में कहा जा चुका है) में मगधदेश आदि अनित्यपदार्थों के वाचक कीकट आदि शब्दों के रहने से बेद अनित्य हो जाता, इसी से मन्त्रों का अपने अर्थ में तात्पर्य नहीं है किन्तु उनका अक्षरपाठमात्र यज्ञ का उपयोगी है। ६।

बेदार्थ की अनिस्यता के बारण का उपाय "परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रम्" इस सूत्र से

पूर्व में जो कहा गया है वही यहां भी है।। ७।।

पुनः पुनरुक्तेः । किंच । ब्राह्मणमागस्य वेदत्वाभावे मध्यमा द्विस्त्री स्वपकरणाविरुद्धैव स्यात् अर्थवादााधिकरणएव तस्याः सत्वात् अर्थवादानां च प्राया ब्राह्मणभागान्तर्गतत्वात् । अपि च। प्रथमस्त्रे वेदपदेन चरमस्त्रे च मन्त्रपदेन निर्देश इति मन्त्रभागस्यैकस्यैवोभयत्र निर्दिदिक्षितत्वे निर्देशवैषम्यसार्थक्यं दुरुपपादमेव स्यात् ।

प्रवा०(३५) किंच अनन्तरोक्तायां सप्तसूच्यां केवलम् (सूत्रान्तरानपेक्षमिति यावत्) अन्त्ययोर्यथोक्तम् ॥ ५ ॥

इति प्रश्चमं सूत्रमपि विशिष्य ब्राह्मणभागस्य वेदत्वं प्रमापयित । अनेन हि सूत्रेण 'वर्ष्यः प्रावाहणिरकामयत' इत्यादिष्वर्थवादेषु पूर्वसूत्रेण प्रसञ्जितस्य पौरुषेयत्वस्य परिहारमानित्यसंयोगस्तेषु परिष्ट्रियते । ब्राह्मणभागस्य पौरुषेयत्व तु तदन्तर्गतानामुक्तार्थन्त्रामपि पौरुषेयतया तेष्विनत्यार्थपतिपादकत्वस्य परिहारे प्रयासो महर्षेव्यर्थो विरुद्ध एव न्यस्यात्। न्यन्य 'किन्ते कृण्वन्ति क्रीकटे ' विवत्यादिषु मन्त्रेष्वेव स परिहार इति वाच्यम् । अर्थन्त्राद्मम् क्रिन्ते कृण्वन्ति क्रीकटे ' विवत्यादिषु मन्त्रेष्वेव स परिहार इति वाच्यम् । अर्थन्त्राद्मम् क्रिन्ते कृण्वन्ति क्रीकटे ' विवत्यादिषु मन्त्रेष्वेव स परिहार इति वाच्यम् । अर्थन्त्राद्मम् क्रिन्ते कृण्वन्ति क्रीकटे ' विवत्यादिषु मन्त्रेष्वेव स परिहार इति वाच्यम् । अर्थन्त्राद्मम् क्राह्मणाविह्योभने तथा वन्तुमग्रक्यत्वात्, अनन्तरोक्तषष्ठसप्तमस्त्राभ्यां मन्त्रेषु पौरुषेयत्वशङ्कातत्परिहारयोविश्वाष्यप्रयमुक्तयोवैयर्थपसङ्गाच । एतेन 'यथा ब्राह्मणग्रन्थेषु मनुष्याणां ।। भाषा ॥

बेद त होते के कारण अपने प्रकरण (पूर्वसूत्र और उत्तरसूत्र) से विरुद्ध ही हो जाते क्यों कि अर्थवाद ही के अधिकरण में ये दोनों सूत्र हैं। और यदि ब्राह्मणभाग बेद न होता तो कोई कारण त था कि उक्त प्रथमसूत्र में उसी को 'बेद' शब्द से और छठें सूत्र में उसी को मन्त्रशब्द से जीमितिसहार्ष कहते। तो ऐसी दशा में इन दो (बेद और मन्त्र) शब्दों के निर्देश से भी यह सिद्ध होता है कि 'बेद ज्ञाम दूसरे का है और मन्त्र नाम दूसरे का है' अर्थात् मन्त्रब्राह्मणसमुदाय का नाम बेद है जैसा कि आपस्तम्ब आदि महर्षियों ने कहा है और उसी के एकभाग का जैसे 'मन्त्र' नाम है वैसे ही उसी के द्वितीयभाग का 'ब्राह्मण' नाम है। इस रीति से ये सातो सूत्र ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण हैं।

प्रमा० — (३५) ब्राह्मणभाग के बेद होने में पूर्व हीं उद्धृत 'अन्त्योर्थ केम् ' यह सूत्र, विशेषरूप से पृथक अन्य सूत्र की अपेक्षा किये बिना भी प्रमाण है क्यों के 'अनित्यसंयोगात'' इस एक्तमूत्र से, 'बर्बर:प्रावाहणि: ' इत्यादि, अर्थवादों में बर्बर आदि रूपी बेदार्थ में जो अनित्यता कि हुई है उसी के बारणार्थ यह सूत्र है। और ब्राह्मणभाग यदि बेद नहीं होता तो उस में अन्तरीत उक्त अर्थवाद भी बेद न होता किन्तु पौरुषेय ही होता, और उसकी पौरुषेयता अचित है। होती तब उसका बारण करना महार्ष का ब्यर्थ ही नहीं बरुक बिरुद्ध ही हो जाता।

प्रभ-" किन्ते कुण्वन्ति कीकटेषु " इस उक्त मन्त्र ही के विषय में इन मध्य के देनों सूत्रों की "छगा कर जब "अन्त्ययोग्रिथोक्तम् " इस सूत्र को सफल कर सकते हैं तब अर्थबाद के विषय में ये सूत्र क्यों लगाये जायं ?

उत्तर (१)—मन्त्र के बिषय में ये सूत्र कदापि नहीं छगाये जा सकते क्योंकि ऐसा करने में प्रकरण (इन सूत्रों से पूर्व और उत्तर सूत्र) का बिरोध हो जायगा, क्योंकि ये सूत्र अर्थवा-पाधिकरण ही के मध्य में हैं।

इतर (२)—यदि मन्त्र के बिषय में ये दोनों सूत्र छगांचे जायं तो अभी कहे हुए आन्तिम दोनों सूत्र ब्यर्थ ही हो जायंगे क्योंकि मन्त्र ही के बिषय में उन दो सूत्रों से पौरुषेयत्व की श्रष्टा नामलेखपूर्वका लौकिका इतिहासाः सन्ति नचैवं मन्त्रभागे । इति अथ वेदसञ्ज्ञाविचार इत्युपक्रमे भाष्याभासभूमिकोक्तिमिहापि पूर्वमनूदितं निरस्तम् । एतत्सूत्रविरोधेन ब्राह्मणः भागे जन्यपुरुषितिहासोऽस्तीति कथनस्यैतत्सूत्रार्थाज्ञानैकमूळकत्वात् ।

प्रमा० (३६) एवम्-(मी० द० अ० १ पा० २) (ऊहः । सू० ५२)

इति सूत्रमि ब्राह्मणभागस्य बेदत्वे प्रमाणम् । अस्य ह्ययमाश्रयः। यद्यपि बेदे कि वित् 'ऊहः कार्यः इति न श्रूयते तथापि उहिनषेधः श्रूयते 'न माता बर्द्धते न पिताः इति । अयं च 'मातामन्यतामनु पिताः' इति मन्त्रे मातरः पितर इत्यूहप्राप्तावेव सार्थको भवति। एवश्र्वोक्तब्राह्मणभागवाक्येन सूचितस्याप्यूहस्यानुरोधाद 'प्रये जुष्टं निर्वपामी' ति मन्त्रे श्रूयमाणमप्यग्निपदं निष्कास्य सौर्यचरौ तत्स्थाने सूर्यपदं पठ्यते । अतो मन्त्राणां स्वार्थे तात्पर्यमिति । विस्तरस्तु बेददुर्गसज्जने मन्त्रोपयोगपकरणे द्रष्टव्यः । एवश्च 'न माते' त्युक्तः ब्राह्मणभागवाक्यस्य बेदत्वाभावे कथमस्य पौरुषेयवाक्यस्यानुरोधमात्रान्मन्त्रस्थं पदं निष्कास्येत, कथं वा तस्य स्थाने छौिककं पदान्तरमुचार्येत ।

॥ भाषा॥

भौर समाधान किया गया है। अब यह भी ध्यान देने की बात है कि इसी 'अन्त्योर्यथोक्तम्' सूत्र से जब महार्ष ने पूर्णरूप से यह सिद्ध कर दिया कि 'अर्थवादों में किसी पुरुषिबेशष का नामोछेख, अथवा इतिहास नहीं है किन्तु छौकिकआख्यायिकाओं के नाई कल्पित ही नामों से ब्यवहार है' तब पूर्वोक्तभूमिका में स्वामी का 'ब्राह्मणप्रन्थों में नामोछेखपूर्वक छौकिकइतिहास हैं' यह कथन सर्वथा मिथ्या ही है और इस कथन से यह स्पष्ट है कि स्वामी ने इस सूत्र को देखा भी नहीं था, और कल्पितनाम तो 'किन्ते कुण्वन्ति कीकटेषु' इत्यादि मन्त्रों में मिछते ही हैं।

प्रमाठ—(३६) 'पू० मी० द० अध्या० १ पा० २ 'ऊहः' सू० ५२' यह सूत्र भी जाइगणभाग के बेदल में प्रमाण है क्योंकि मन्त्रों के किसी शब्द को निकाल कर उस के खान में दूसरे शब्द के पढ़ने को ऊह कहते हैं और इस सूत्र का यह आश्रय है कि बेद में यद्यि 'उहं कार्यः' (ऊह करना चाहिये) यह कहीं नहीं कहा है तथापि 'न माता बद्धेते न पिता' यह बेह में कहा है इस का यह अर्थ है कि 'माता पितामही प्रपितामही' और पिता पितामह प्रपितामह इन तीन २ को कहना हो तो भी 'माता मन्यता मनु पिता' इस मन्त्र में बहुबचन का उहं (मातरः पितरः) न करे, इस निषेध ही से यह सूचित होता है कि अन्य मन्त्रों में अर्थ और प्रकरण के अनुसार ऊह करना चाहिये क्योंकि यदि ऊह प्राप्त न होता तो यह निषेध ही बर्ध प्रकरण के अनुसार ऊह करना चाहिये क्योंकि यदि ऊह प्राप्त न होता तो यह निषेध ही बर्ध हो जाता और इसी सूचना के अनुसार सौर्य चह में जब 'अग्रये जुष्टं निर्वपामि०' यह मन्त्र पढ़ा जाता है तब उस में आग्न शब्द को निकाल कर उस के स्थान में सूर्यदेवता के योग्य सूर्य शब्द पढ़ा जाता है कि 'सूर्याय जुष्टं निर्वपामि' इस से यह सिद्ध है कि 'मन्त्रों का अपने अर्थ पढ़ा जाता है कि 'सूर्याय जुष्टं निर्वपामि' इस से यह सिद्ध है कि 'मन्त्रों का अपने अर्थ पढ़ा जाता है कि 'सूर्याय जुष्टं निर्वपामि' इस से यह सिद्ध है कि 'मन्त्रों का अपने अर्थ पढ़ा जाता है कि 'सूर्याय जुष्टं निर्वपामि' इस से यह सिद्ध है कि 'मन्त्रों का अपने अर्थ का व्यान देना चाहिये कि 'न माता बर्द्धते न पिता' यह ब्राह्मणभाग का वाक्य यदि बेद निर्वा परितये होता तो केवल इस की सूचनामात्र से मन्त्रों में साक्षात् पठित आगित आदि कर्ल क्यान पैत्रवेध होता तो केवल इस की सूचनामात्र से मन्त्रों में साक्षात् पठित आगित आदि क्र क्यान में लीकिक सूर्य आदि शब्द पदे जाते।

प्रमा० (३७) एवय्-पू० मी० द०-

"उक्तं समाझायैदमध्यें तस्मात्सर्वे तद्यें स्यात्" अ० १ पा० १ । सू० १ ॥ इतीदं नामधेयाधिकरणपूर्वपक्षसूत्रमणि ब्राह्मणभागस्य वेदत्वे प्रमाणम् । अस्य ह्ययम्यः । यस्मात् प्रथमपादे विधिवाक्यानां विधायकतया धर्मे प्रामाण्यमुक्तम्, द्वितीयपादे वार्धवादवाक्यानां विधिविहितकर्मस्तुत्यर्थत्वेन, मन्त्राणां तु विधिविहितानुष्टेयकर्मस्मारकत्वेन, प्रामाण्यमुक्तम्, इति रीत्या समाझायस्य वेदस्य ऐदमध्यम् धर्मे उपयोगः उक्तम् उपपादितम् तस्मात् सर्वस्यैव वेदस्य धर्मोपयोगप्रतिपादनात् सर्व वैदिकं पदम् ' अद्भद्दा यजेत पश्चकाम ' इत्यादौ अद्भिदादिपदमपीति यावत् तद्यम् प्रथमद्वितीयपादोक्तिविधिस्तुत्यनुष्टेयार्थस्मरणान्यतमार्थकमेव स्यात् भवति नत् द्विदादिपदं यागनामधेयामिति । एवं वात्र सूत्रे ब्राह्मणभागस्य द्वाविप विध्यर्थवादभागौ वेदपर्यायेण समाझायशब्देन स्पष्टमेवाचष्टे, सर्वपदेन च विधिवाक्यघटकान्युद्धिदादीनि पदानि ब्यवहरन् विधिवाक्यघटितस्य ब्राह्मणभागस्य वेदत्वमभिप्रति, तत्र भवान् महार्षिरीति किमपरमविश्वते वक्तुम् ।

प्रमा० (३८) एवम् ''वचनात्त्वयथार्थमैन्द्री स्यात्"।।३।। पू०मी०द०अ०३पा०२सू०३। इति स्त्रमप्युक्तार्थे मानम्। तथाहि। महाग्निचयने श्रूयते 'ऐन्ह्या गाईपत्यसुपतिष्ठते' इति।

ग्रमा०—(३७) पू० मी० द० अध्या० १ पा० ४ "उक्तं समाम्नायद्मध्ये तस्मात्सर्वे तद्थे स्यात्" ॥ १ ॥

यह नामध्याधिकरण का पूर्वपक्षसूत्र भी ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण है। इस का अक्षरार्थ यह है कि पूर्व (प्रथमाध्याय के आदि के दो चरण) में समाम्राय (बेद) का यक्षकार्थों में उपयोग और प्रमाण होना युक्तिपूर्वक कहा जा चुका इसी से यह सिद्ध हो चुका कि सबी बैदिकपद उन्हीं पूर्वोक्त अर्थों को कहते हैं इति। और भावार्थ यह है कि प्रथमपाद में 'स्वर्गकामो यजेत' आदि बिधिवाक्यों का पुरुषों की प्रवृत्ति कराने से धर्म में उपयोग और प्रामाण्य कहा गया, और द्वितीयपाद में, बिधिवाक्यों से बिहित कर्मों के स्मरण कराने से मन्त्रों का धर्म में उपयोग और प्रामाण्य सिद्ध किया गया है। इस रीति से जब सब बेद का अर्थ और धर्म में उपयोग पूर्णरीति से सिद्ध होचुका तब ''उद्भिद्दा यजेत पशुकामः'' (पशुओं की इच्छा करने वाद्या उद्भिद्द नामक याग करें) इत्यादि बिधिवाक्यों के 'उद्भिद्द ' आदि शब्द भी प्रथम और द्वि-तीय पाद में कहे हुए प्रवृत्ति (बिधान) स्तुति, और कर्मों का स्मरण, इन्हीं तीन अर्थों में से किसी अर्थ के बोधक हो सकते हैं न कि ये (उद्भिद्द आदि शब्द) यागविशेष के नाम हैं इति। अब ध्यान देना चाहिय कि ब्राह्मणभाग के बिधि और अर्थवाद रूपी दोनों भागों का इस सूत्र में महार्ष ने 'समाम्नाय ' शब्द से कण्ठतः कहा है जो कि' 'बेद ' शब्द का समानार्थक है' तथा ब्राह्मणभाग हो मिं अन्तर्गत 'उद्भिदा यजेत पशुकामः " इत्यादि वाक्यों के 'उद्भिद्द ' आदि शब्दों को पूर्ण सम्मत है। के विस में अन्तर्गत कहा है जिससे यह सिद्ध है कि ब्राह्मणभाग का बेद होना महार्ष को पूर्ण सम्मत है। के विस में अन्तर्गत कहा है जिससे यह सिद्ध है कि ब्राह्मणभाग का बेद होना महार्ष को पूर्ण सम्मत है।

प्रमा०—(३८) पू॰ मी०द० अध्या०३ पा० २ वचनात्त्वयथार्थमैन्द्री स्यात् सू॰ ३। यह सूत्र भी ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण है और इस अधिकरण का यह स्वरूप है कि 'बडे अप्रिचयनरूपी कर्म के प्रकरण में ब्राह्मणभाग का यह वाक्य है कि ''ऐन्द्रया गाईपत्य मुपतिष्ठते"

तत्र ऐन्द्यर्चा किमिन्द्रस्योपस्थानमृत गाईपत्यस्येति संशये इन्द्रोपस्थान एव पूर्वाधिकरणः न्यायेन मन्त्रस्य समर्थत्वादिन्द्रस्येवोपस्थानमिति बहिः पूर्वपक्षे प्रथमस्त्रतेण सिद्धान्तमाह । तदर्थश्च, वचनात् गाईपत्यमित्यन्द्येति च द्वितीयतृतीययोः श्रवणात् ऐन्द्री इन्द्रदेवतामकाशिका ऋक् अयथार्थम् इदं क्रियाविशेषणम् मुख्यबृत्त्या रूद्ध्या श्रक्रमकाञ्चकं यथा तथा न स्यात् किन्तु रूदियोगापहारिणीतिन्यायमुक्तद्वितीयादिवचनवस्थायित्वा इदि परमैश्वर्य इति योगमात्रम् लिकयेन्द्रपदस्यभण्या गाईपत्यपरेव, तद्धितश्चरेवेश्व देवतारूपो गाईपत्यपरेव विद्योगमात्रम् लिकयेन्द्रपदस्यभण्या गाईपत्यपरेव, तद्धितश्चरेवेन्द्र गौणीबृत्तिरस्तु मन्त्रा- न विद्योगमात्रम् विद्वति चन्न । विद्वितार्थत्वेनानुवादकं मन्त्रएव गौणबृत्तेः कल्पयितुम्रुचितत्वात्, अङ्गान्त्रादिति चन्न । विद्वितार्थत्वेनानुवादकं मन्त्रएव गौणबृत्तेः कल्पयितुम्रुचितत्वात्, अङ्गान्त्रायक्रतया विधायके प्रधानभूते ब्राह्मणे 'न विद्यो परः शब्दार्थ' इति न्यायेन गौण- वृत्तिकल्पनाया अत्यन्तमनुचितत्वाचेति तु भावः। एवं चैतत्सूत्रं ब्राह्मणभागस्य वेदत्वे

॥ भाषा ॥

(इन्द्रदेवताबाळी 'निवेशन: सङ्गमनो बसूनाम्०' इस ऋचा सं गाईपख अर्थात् अग्निविशेष को पुजे)। इस वाक्य के अर्थ में यह संशय है कि गाईपत्यशब्द से यहां इन्द्र का प्रहण है अथवा आग्निबिराष का ? और इस संशय के अनन्तर यह पूर्वपक्ष है कि गाईपत्यशब्द से इन्द्र ही का प्रहण उचित है क्योंकि इन्द्र ही की पूजा में ऐन्द्री (इन्द्र देवता वाली) ऋचा के अर्थ का ठीकर (सुधे २) समन्वय होता है। और इसी पूर्वपक्ष के खण्डनार्थ यह सिद्धान्तसूत्र है। इस का यह अर्थ है कि उक्त ब्राह्मणभाग के वाक्य में 'ऐन्द्रया' (ऐन्द्री अर्थात् इन्द्र देवता वाळी ऋषा आ अर्थात् से) और "गाईपत्यम्" (गाईपत्य, अम् अर्थात् को) इस आ (से) रूपी तृतीया विभक्ति, और अम् (को) रूपी द्वितीया विभक्ति से यह सिद्ध होता है कि पूजा में गाईपत्य ही प्रधान है और ऐन्द्री ऋचा पूजा का अङ्ग ही है, तो ऐसी दशा में गाईपत्यशब्द का अग्निविशेषरूपी मुख्य अर्थ ज़्यों का त्यों रहेगा क्योंकि वह प्रधान है और ऐन्द्री ऋचा का मुख्यार्थ, अग्निबिशेषरूपी प्रधान में न लगने के कारण छोड़ दिया जायगा जैसे "यह बालक सिंह है" इस वाक्य में सिंहशब्द का पशुविशेषरूपी मुख्यार्थ छोड़ दिया जाता है और जैसे इस सिंहशब्द का बालक में लगने योग्य शूरत्व आदि गौण अर्थ किया जाता है वैसे ही गाईपत्यशब्द का भी ऐसा कोई गौण अर्थ खीकार करना उचित है कि जो अग्निबिशेषरूपी प्रधान में लगने योग्य हो जैसे उक्त ऋचा में 'इन्द्र' शब्द का देवताबिशेषरूपी अर्थ को छोड़ कर परम ऐश्वर्य अर्थ किया जाता है जो कि अग्निबिशेष में भी हो सकता है। तस्मात् उक्त ब्राह्मणभाग के वाक्य में गाईपत्यशब्द से अग्निविशेष ही का प्रहण है। और यह तो कह नहीं सकते कि ऐन्द्री ऋचा में पठित इन्द्रशब्द के अनुसार, उक्त ब्राह्मण-वाक्य के गाईपत्यपद ही का आमि विशेषरूपी मुख्य अर्थ को छोड़ कर ऐसा गौण अर्थ क्यों त स्वीकार किया जाय जो कि इन्द्रशब्द के देवताबिशेषरूपी मुख्य अर्थ में लगने योग्य हो, क्योंकि ब्राह्मणभाग के बिधिवाक्य, इस कारण प्रधान माने जाते हैं कि उन के अर्थ का मन्त्र बा किसी अन्य छोकिकप्रमाण से कदापि बोध नहीं हो सकता इसी से "न विधी पर: शब्दार्थः" (विधिवाक्यों के मुख्यार्थ नहीं छोड़े जाते और न उन के अर्थ गौण होते हैं) यह सूत्र है और मन्त्रभाग तो वाह्मण भाग से बोधित ही अर्थ के बोध कराने के कारण ब्राह्मणभाग ही का अङ्ग अर्थात् अनुवार्ष हैं इसी से मन्त्र ही को मुख्यार्थ से उतार देना चाहिये, न कि प्रधान ब्राह्मणवाक्य की, क्योंकि

दुष्कम्पं मानम्। अत्र हि ब्राह्मणवाक्यविरोधे मन्त्रेण स्विब्रहासद्धोऽप्यथीं न वोधयितुं शक्यत इत्येतावत्पर्यन्तं दौर्वल्यं ब्राह्मणापेक्षया मन्त्रस्येति स्पष्टमेवोक्तम्। निह ब्राह्मणभागस्य पौरुषेयत्वे ऽपीरुषेयत्वेऽपि वा मन्त्रापेक्षया प्राधान्याभावे, तद्गताभिद्धितीयादिविभक्तिभिर्मन्त्रिल्ङं सिंह-तोक्षमिव फेरुनारीभिर्द्रष्टुमपि शक्यते किम्रुत वाधितुम्। तस्मात् मीमांमादर्शनस्य गन्धम-प्यनाद्याय मन्त्रभागे वेदत्वमङ्गीकृत्यापि महामोहेन ब्राह्मणभागे तदपङ्गुवानस्य भूमिका-भृतो वचनं वृश्चिकमन्त्रानभिज्ञस्य तक्षकाववरे कर्मवेशनमेव।

प्रमा० (३९) किश्च-पू॰ मी॰ द०-

"अनाम्नातेष्वमन्त्रत्वमाम्नातेषु हि विभागः स्यात्" अ० २ पा० १ स्० ३४ । इति स्त्रमपि ब्राह्मणभागस्य वेदत्वं प्रमापयति। इदं हि स्त्रं 'तचोदकेषु मन्त्राख्या" ३० "शेषे ब्राह्मणभाव्दः" ३१ इत्यव्यवहितपूर्वस्त्राभ्यां वेदं द्विधा विभज्य, जहप्रवरनाम-धेयेषु मन्त्रत्वमस्ति नवेति संशये, तेषामष्युक्तमन्त्रलक्षणाक्रान्तत्वाद्स्ति मन्त्रत्विति पूर्वपक्षे सिद्धान्तियतुमारभ्यते । अर्थश्चास्य-हि यतः विभागः मन्त्रो ब्राह्मणमितिविभागः आम्नातेषु कण्ठरवेण पठितेष्वेवातः जहे सूर्याय जुष्टमिति, प्रवरे काश्यपा वत्सा इति, सुब्रह्मण्यानिगदादिषु कृष्णशर्मा यजत इत्यादिषु नामसु अनाम्नातेषु अमन्त्रत्वम् इति । एवश्च ब्राह्मणेषु वेदत्वतद्व्याप्यधर्मयोरसत्त्वे प्रकृतस्त्रे विभागपदोक्तिरनुपपन्नैव स्यादिति स्पष्टमेव ।

राजा और शृश्य के बिरोध में, भृत्य ही अपने स्थान से हटा दिया जाता है न कि राना इति । अब ध्यान देना चाहिये कि ब्राह्मणभाग के साथ बिरोध की दशा में मन्त्र के शब्दों का मुख्यार्थ भी छूट जाता है ऐसी दुर्बळता, ब्राह्मणभाग की अपेक्षा मन्त्रभाग की है जिस को कि इस सूत्र ने स्पष्ट कह दिया और ब्राह्मणभाग यदि बेद नहीं अर्थात् पौरुषेय होता अथवा अपेक्षिय हो कर भी मन्त्र की अपेक्षा प्रवक्त न होता किन्तु समानवल अथवा दुर्बळ होता तो जैसे सियारिन, (गीद इन) सिह्बाळक को, भय से देख भी नहीं सकतीं वैसे ही उक्त ब्राह्मणभाग के वाक्य में रहने वाली 'आ' (से) 'अम्' (को) आदि उक्तिबभक्तियां मन्त्र को देख भी नहीं सकतीं और उन को सुख्यार्थ से उतारने की तो चर्चा ही क्या है। निदान मीमांसादर्शन को दूर से भी बिना सूंपे, स्वामी ने जो यह कहा है कि 'मन्त्रभाग तो बेद है और ब्राह्मणभाग नहीं' यह उन का कथन, बाकू के मन्त्र को भी न जान कर काळसप के बिल में हाथ डालना ही है।

प्रमा—(३९) पू० मी० द० अध्या० २ पा० १ " अनाम्नातेष्वमन्त्रस्वमाण्नातेषु हि विभागः स्यात्" सू० ३४॥

यह सुत्र भी ब्राह्मणभाग के बेद होते में प्रमाण है। यहां प्रकरणशुद्धि यह है कि इस सुत्र से अध्यवहितपूर्व ''तच्चोदकेषु मन्त्राख्या'' सू० ३० ''होके ब्राह्मणहाद्दः" सू० ३१ सूत्रों से सम्पूर्ण बेद को मन्त्र और ब्राह्मण इन दो भागों में किमक्त कर यह सहाय किया कि ऊह, (बेद में पाठित हाढद के स्थान पर दूसरे शब्द का पाठ, जैसे 'अग्नये' के स्थान में सूर्याय') का नवीन शब्द, मन्त्र है वा नहीं। तदनन्तर महार्ष ने यह पूर्वपक्ष किया कि ऊह भी मन्त्र है क्योंकि उस में भी मन्त्र होने का ब्यवहार होता है और यह ब्यवहार ही मन्त्र का ब्रक्षण है। तथा इसी प्रविपक्ष के खण्डनार्थ, यह सिद्धान्तसूत्र है इति। इस सूत्र का यह अर्थ है कि ऊह, मन्त्र नहीं है क्योंकि वह बेद में साक्षात्पाठत ही बेदभागों अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण, का बिभाग है इति।

प्रमा० (४०) अपिच-पूर्णमी० द०-'बेदसंयोगात' अ० ३ पा० ४। स्० २२।

इति सूत्रमपि प्रकृतार्थे प्रमाणम् । इदं हि सूत्रं ''तस्मात्सुवर्णं हिरण्यं भार्ये सुवर्ण एव भवतीति वाक्येऽनारभ्य श्रूयमाणं सुवर्णधारणं क्रत्वर्थे पुरुषार्थवेति संश्रये ऋत्वर्थत्वसाध-नायारभ्यते। अर्थश्चास्य-बेदे आध्वर्यविभित्तं समाख्यायुक्ते यजुर्वेदे संयोगात् 'तसात्सुवर्ण' मिलादिवाक्यस्य पाठात् अध्वर्षु सुवर्णधारणेन संस्कुर्यादिति, तथाचात्र 'तस्मात्सुवर्ण' मिला-दिब्राह्मणवाक्यस्य यजुर्वेदप्ठितत्वं हेत् कुर्वता महार्षणा कण्ठत एव वेदत्वं ब्राह्मणभागस्योक्तम्।

प्रमा० (४१) एवं--तत्रैव--

''दोषात्त्विष्टिर्शैकिके स्याच्छास्राद्धि वैदिके न दोषः स्यात्' ॥ स्० २८॥

इति सूत्रमपि प्रस्तुतेऽर्थे गमकम्।तथादि। 'यावतोऽश्वान् प्रतिगृह्णीयात्तावतो बारुणाँ-श्रतुष्कपालानिर्वपे "दिति श्रूयते । तत्र च प्रतिग्रहो दानमेवेति तदब्यवहितोत्तराधिकरणे साधितम् । बिहिता चेयामिष्टिलौंकिके दाने उत वैदिके इति विचारे चेदं सूत्रं पवर्तते। अस्यार्थश्र-इयमिष्टिः लौकिके स्वेच्छानिमित्तकदाने स्यात्। दोपात्। दाने दोषश्रवणात् 'स एवैनं बरुणपाशान्मुश्चती' ति । बरुणपाशात् जलोदररोगात् हि यतो वैदिके 'बारुणं' यवमयं चरुमश्वो दाक्षिणे 'ति शास्त्रात्माप्ते दाने न दोषः स्यात् दोषमसक्तिर्न स्यात् शास्त्रात् शास्त्रपतिपादितत्वादिति । अत्र चाश्वरूपदाक्षिणाया बैदिकत्वं बुवता ॥ भाषा॥

इस सूत्र में महार्ष ने ब्राह्मणभाग को 'आम्नात' शब्द से, साक्षात्पठित बेद कहा है। प्रमा०-(४०) पू० मी०द० अध्या० ३ पा० ४। "बेद्संयोगात्" सू०२२।

यह सूत्र भी ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण है क्यों कि " तस्मात्सुवर्ण हिरण्यं भार्य सुवर्ण एव भवति" (पूर्वोक्त कारण से चमकी छे सुवर्ण को धारण करे क्यों कि जो इस को धारण करता है वह चमकीला होता है) इस ब्राह्मणभाग के वाक्य में बिहित सुवर्णधारण से यज्ञ में उपकार होता है, इस बात को सिद्ध करने के लिये यह सूत्र है। और इस सूत्र का यह अर्थ है कि बेंद अर्थात् यजुर्वेद में उक्तवाक्य का संयोग अर्थात् पाठ है इस कारण अध्वर्यु (यजुर्वेदी ऋत्विक्) का सुवर्णधारणरूपी संस्कार, यज्ञ में उपयोगी है इति । यहां महर्षिं ने 'तस्मात् सुवर्णम्'' इस ब्राह्मणभाग के वाक्य को बेद में पठित कहा है, जिस से यह स्पष्ट ही है कि महार्षि ने ब्राह्मणभाग को अपने कण्डरव से बेद कहा है।

प्रमा०—(४१) अनन्तरोक्त अध्याय और पाद में ''दोषात्त्विष्टिलीं कि स्याच्छा आहि

बैदिके न दोषः स्यात्" सू०२८।

यह सूत्र भी ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण है। " यावतोऽश्वान प्रति गृह्धीयात्तावतो बाह्यणाँ श्चतुष्कपाळात्रिविपेत् " (जितने घोड़ों का दान करे उतने बाह्य वर्त क्कपालनामक यहाँ को करें) इस ब्राह्मणभाग के वाक्य से यह निश्चित होता है कि घोड़ों के दान से दाता को पुण्य तो होता है परन्तु जलोदरनामक रोग भी होता है जिस के बारणार्थ उत्तर यज्ञरूपी प्रायश्चित्त किया जाता है क्योंकि उक्त वाक्य ही के अनन्तर "स एवेनं बरुणपाशान्मु कि ्रित्रं (वे ही चतुष्कपालयज्ञ, अद्वदाता को जलोद्राच्याधि से वँचाता है) यह वाक्य है। यह विकास सकते के कि तम प्राप्तिक के बिचार यह है कि इस प्रायिश्वत्तयज्ञ का बिधान, कौकिक (अपनी इच्छा से) अद्वदान ही कि "बाहणं यवमयं चरुमश्वो दाक्षणे" ति ताद्धिधायकस्य ब्राह्मणवाक्यस्य बेद्रत्वं स्पष्टमेत्रोक्तम्।
प्रमा० (४२) किञ्च-पू० मी० द०—

" होता वा मन्त्रवर्णात्" अ०३ पा०५ ॥ स्र०३७॥ " वचनाच " स्र०॥ ३८॥

इत्यनयो "र्वचनाचे" ति सूत्रमि प्रकृतार्थे मानम्। तथाहि। एकस्मिन् पात्रे वहवो भक्षयन्ति तत्र कः क्रम इति संशये होमद्रव्यस्य अध्वर्धुसिन्धानादध्वर्धुरेव प्रथमं भक्षयतीति पूर्वपक्षे पूर्वसूत्रेणोक्ते सिद्धान्तियतुमिमं सूत्रे समार्च्थे। अर्थश्चेनयोः होतेव प्रथमं भक्षयति मन्त्रवर्णात् "होतुश्चित्पूर्वे हिवरद्यमासत" इति "होतेव नः प्रथमः पाहि" इति च मन्त्रिन्छात् 'वचनाच्च " "वषद्कर्तुः प्रथमभक्ष" इति ब्राह्मणाचेति। अत्र हि पूर्वोक्तरीत्या मन्त्राणामिवधायकत्वेन मन्त्रस्य होत्रभक्षप्राथम्यसाधकतायामपरितुष्यता विधायकत्या मन्त्रभ्यः प्रवलेन वषद्कर्तुरित्यादिब्राह्मणवाक्येन वषद्कर्तु-होतुः प्रथमभक्षः साधितः।

॥ भाषा॥
विषय में है अथवा "बारुणं यवमयं चरुमद्द्र्वो दक्षिणा" (यवमयचरुरूणी बारुणयज्ञ करे और उस में घोड़ा दक्षिणा दे) इस ब्राह्मणभाग के वाक्य से बिहित बैदिकअद्वद्दान के विषय में भी ? और इसी बिचार में सिद्धान्त के स्थापनार्थ यह उक्त सूत्र है। इस का यह अर्थ है कि छौकिक हैं। अद्वद्दान में जलोद्रव्याधिरूपी दोष है और उसी के बारणार्थ प्रायिश्वत्तरूपी यज्ञ का बिधान भी छौकिक ही अद्वद्दान के बिषय में है न कि बैदिक अद्वद्दान के विषय में, क्योंकि जब "बारुणं यवमयं चरुमद्द्र्यो दिश्वणा" इस बेदवाक्य से अद्वद्दान का विधान है तब उस में दोष की चर्चा हो नहीं हो सकती इति । अत्र ध्यान देना चाहिये कि जब महार्ष ने 'बारुणं यवमयम्०' इस उक्त ब्राह्मणवाक्य से बिहित अद्वद्दान को बैदिक कहा तब ब्राह्मणभाग के बेद होने में क्या सन्देह है ? प्रमा०—(४२) पू० मी० द० अध्या० ३ पा० ५ "होता बा मन्त्रवर्णात्" सू० ३८ ।

"वचनाच" सू० ३९ ।

इनसूत्रों में द्वितीय (वचनाच) सूत्र भी ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण है क्योंिक यज्ञ में कहां एक पात्र में अनेक ऋदिवक् भोजन करते हैं वहां यह संशय है कि कौन ऋदिवक् प्रथम भोजन कर और अध्वर्यु (यजुर्बेदी ऋदिवक्) ही को प्रथम भोजन करना चाहिये क्योंिक भोज्य (होम का द्रव्य) उसी के समीप में रहता है यह पूर्वपक्ष है। और इसी पूर्वपक्ष के खण्डनार्थ इन सूत्रों का क्रम स यह अर्थ है कि होता (ऋरबेद का ऋदिवक्) ही प्रथम में भोजन करता है क्योंिक ''होतुश्चेर्यूबें हिवरद्यमासत'' ''होतेव नः प्रथमः पाहि'' इत्यादि मन्त्रों में 'प्रथम'' शब्द से होता ही कहा हुआ है तथा ''बषद्कर्तुः प्रथमभक्षः'' इस ब्राह्मणभाग के वचन में बषदकर्ता (होता) ही का प्रथमभक्षण कहा है इति। अब ध्यान देना चाहिये कि पूर्व में कहे हुए सिद्धान्त के अनुसार मन्त्रों में विधान करने की शक्ति नहीं है इसी से ''होतेव नः'' आदि उक्त मन्त्र, होता के भोजन में प्रथम होने का विधान नहीं कर सकते इस कारण प्रथमसूत्र से असन्तुष्ट हो कर महर्षि ने द्वितीयसूत्र को कह कर '' बषदकर्तुः'' इस ब्राह्मणबाक्य में होता के प्रथमभक्षण के विधान से यह सिद्ध किया कि होता ही का भक्षण प्रथम होता है। इस से यह स्पष्ट निकल आया कि ब्राह्मणवाक्य, मन्त्रों की अपेक्षा इस कारण प्रबल होते हैं कि ब्राह्मणभाग, विधायक होते हैं। इस रीति के अनुसार ''होतेव नः'' मन्त्र से होता का प्रथमभक्षण नहीं सिद्ध हो सका, परन्तु इस रीति के अनुसार ''होतेव नः'' मन्त्र से होता का प्रथमभक्षण नहीं सिद्ध हो सका, परन्तु

न हीदं ब्राह्मणभागस्य बेदत्वाभावे संगच्छते नहि मन्त्रेण यन्न साधायितं शक्यते तद्विदिकेन केनिच्छाक्येन साध्यमिति संभावनाऽपि शक्तोत्यभ्यदेतुम् होमद्रव्येष्वध्वर्धसानिध्येन कमाल्यप्रमाणेन प्राप्तस्याध्वर्धभक्षप्राथम्यस्य निरासे होत्भक्षप्राथम्यस्य विधाने च शब्देकः समिधगम्ये पौरुषेयीणां वाचां क्रमप्रमाणिवरोधेन निरस्तानां सामध्यस्य संभावियतुष- प्रश्ववयत्वादिति ध्ययम्।

प्रमा० (३३) तथा-पू० मी० द०--''वेदोपदेशात्पूर्ववद्वेदान्यत्वे यथोपदेशं स्युः"॥ अ० ३ पा० ७ । सू० ५०॥ अत्र शावरम्।

अस्ति औद्वात्रे समाख्यातः श्येनः, आध्वर्यव बाजपेयः। तत्र सन्देहः कि श्येने छद्रातृभिरेव पदार्थाः कर्तव्याः, बाजपेये अध्वर्युभिः उत उभयत्रः नानित्विभिः १ इति। किं माप्तम् १ बेदोपदेशात् (समाख्यानात् इत्यर्थः) पूर्ववत् यथा, आध्वर्यवम् इति समाख्यात् पदार्थान् अध्वर्युः करोति, एवमव बेदान्यत्वे यथोपदेशं स्युः, यो येन समाख्याते बेदे उपदिष्टः, तस्य पदार्थाः तेनैव कर्तव्याः। साङ्गः स तत्र उपदिश्चयते। तस्मात्, श्येने छद्ग तृभिर्वाजपेये च अध्वर्युभिः पदार्थाः कर्तव्याः इति।

इदमपि सूत्रमुक्तार्थे प्रमाणम् । आध्वर्यवसमाख्यायुक्ते यजुर्वेदे विधीयमानस्य चमस-होमादेरध्वर्युकर्त्वकत्वं यथा पूर्वाधिकरणे सिद्धान्तितं तथैवौद्गात्रसमाख्यया युक्ते सामवेदे

"बषद्कर्तुः" इस ब्राह्मणवाक्य से उस को सिद्ध कर दिया। यदि ब्राह्मणभाग बेद नहीं अर्थात् पौरुषेय होता तो यह कदापि नहीं हो सकता कि वह ऐस विषय को सिद्ध करता कि जिस को मन्त्र भी नहीं सिद्ध कर सकता। तथा यदि ब्राह्मणभाग पौरुषेय होता तो वह 'होता' के प्रथमभक्षण का विधान भी नहीं कर सकता क्यों। के जब भोज्य ह्रव्य अध्वर्यु के समीप में है तब क्रमरूणि की किकप्रमाण से अध्वर्यु ही का प्रथमभोजन होना चाहिये और ऐसी दशा में इसी क्रमरूणी प्रमाण के विरोध से 'वषद्कर्तुः' यह ब्राह्मणवाक्य, पौरुषय होने के कारण अब्राह्मणणक ही हो जाता तब कैसे इस के अनुसार होता का प्रथमभक्षण सिद्ध होता। और जब ब्राह्मणभाग बेदः है तब तो "वषद्कर्तुः" यह ब्राह्मणवाक्य उक्त क्रमरूपी लोकिकप्रमाण को तिरस्कार कर होता के प्रथमभक्षण (जो मन्त्र से भी नहीं सिद्ध हो सका) का विधान करता है।

प्रमा०—(४३) पू० मी० द० अध्या० ३। पा० ७ ''बेदापदेशातपूर्वबद्धेदान्यत्वे यथोपहेशे

स्युः" सू० ५०।
सामबेद के औद्गात्र (उद्गाता अर्थात् सामबेदी ऋक्ष्विक् के कर्तव्यों का विधान
जिस में है) नामक काण्ड में 'इयेन' याग का विधान (करने की आज्ञां) है । और यजुर्वेद के आध्वयंव (अध्वर्यु अर्थात् यजुर्वेदी ऋक्षिक् के कर्तव्यों का जिस में विधान है) नामक काण्ड में 'बाजपेय' याग का विधान है । यहां यह संशय है कि क्या इयेनयाग के सब कर्म उद्गाता ऋक्षित्रों ही के, कर्तव्य हैं और बाजपेय के सब कर्म अध्वर्यु ऋक्षित्रजों ही के, अथवा सब प्रकार के ऋक्षिक् इन प्रत्येक यहों में काम करते हैं ? । यहां पूर्वपक्ष इसी सूत्र से किया जाता है और इस सूत्र का यह अर्थ है कि जैसे पूर्व अधिकरण का यह सिद्धान्त है कि बेद अर्थात् यज्ञुर्वेद के उपदेश अधिकरण का यह सिद्धान्त है कि बेद अर्थात् यज्ञुर्वेद के उपदेश अधिकरण ही करते हैं नाम) के अनुसार यज्ञुर्वेद में विधान किये हुए चमसहोम आदि कर्मी को अध्वर्युमण ही करते हैं

विधीयमानस्य द्रयेनस्याप्युद्गातृगणकर्तृकत्वं सामवेदे विधीयमानत्वादेव स्यादिति हि सूत्रार्थतिष्कर्षः । मन्त्राणां न विधायकत्वमिति तु निपुणतरं निणीतमेव । एवं च यजुर्वेदे सामवेदे
च कस्य भागस्य चमसहोमादिविधायकत्वं द्रयेनिधायकत्वं च महर्षिणोच्यत इति
गविषणायां मत्यन्तरविरहात् ब्राह्मणभागस्यैव तदुभयं स्वीकार्यभापति । तथाच यजुर्वेदब्राह्मणस्य प्रथमेन, सामवेदब्राह्मणस्य च द्वितीयेन, वेदशब्देनात्र सूत्रे महर्षिणा कण्ठत एव
बेदत्वसुच्यत इति स्पष्टमेव ।

वमा॰ (४४) किश्च-पू॰ मी॰द॰—

"संस्कारास्तु पुरुषसामध्ये यथावेदं कर्मवद् व्यवतिष्ठेरन्" ॥ अ०३ पा०८ स्०३॥ इति सूत्रमप्युक्तार्थे प्रमाणम् । इदं हि सूत्रम्—

क्योतिष्टोमे श्रूयते, केश्वरमश्रू वपते, दतो धावते, नरवानि निकृन्तते, स्नाति इति । तत्र सन्देहः, किय एवड्ञातीयका अध्वर्धणा कर्तव्याः, उत यजमानेन १ इति । किं प्राप्तम् । अध्वर्धणा कर्तव्याः, संस्कारा यथावेदं व्यवतिष्ठेरन् समाख्यानात् पुरुषेण कर्मवत्, यथा अन्य पदार्थाः यस्मिन् वेदे आम्नाताः तत्सामाख्यातेन पुरुषेण क्रियन्ते, एवम् एतेऽपि इति व्याख्यातम् । अत्र च यस्य केशवपनादिसंस्कारस्य विधायके यस्मिन् वेदे या आध्वर्यवादिसमा-ख्या,तद्गुसारेणैव तद्भेदविहितः स संस्कारः तेष्वेवाध्वर्धुपभृतिष्ठ नियम्येतेति स्पष्टमेव 'यथावेदं क्यातिष्ठेरन्' इत्यनेनाक्तम्। एवंच केशक्मभ्रू इत्यादेक्रीह्मणवाक्यस्य संस्कारिबधायकस्य,

बैसे ही अन्य बेद अर्थात् सामबेद में बिधान किये हुए देयनयाग में कहे हुए कर्म, उद्रात्गण ही के कर्तव्य हैं, क्यों कि बेद अर्थात् सामबेद का औद्रात्र नाम है इति । और पूर्व में यह सिद्ध हो चुका है कि मन्त्र, बिधान नहीं करते । अब यह बिचार किया जाता है कि यजुर्वेद में किस भाग को इस सूत्र में महार्ष ने चमसहोम आदि कर्मों का, और सामबेद में किस भाग को द्रयेनयाग का, बिधान करने वाला, कहा है। और ऐसा बिचार होने पर अनन्यगति हो कर सब को यही स्विकार करना पहुगा कि यजुर्वेद और सामबेद के ब्राह्मणभागों हीं को महर्षि ने बिधान करनेवाला कहा है। तथा यजुर्वेद के ब्राह्मणभाग को इस सूत्र में प्रथम बेद शब्द (बेदोपदेशात्) से और सामबेद के ब्राह्मणभाग को द्वितीय बेद शब्द (बेदान्यत्वे) से साक्षात् ही कहा है।

प्रमो०-(४४) पू० मी० द० अध्या० ३ पा० ८। "संस्कारास्तु पुरुषसामध्ये यथावेदं

कर्मवद् ब्यवतिष्ठरन्" ।।सू० ३।।

यह सूत्र भी ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण है। ब्राह्मणभाग में क्योतिष्टोमनामक
यह सूत्र भी ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण है। ब्राह्मणभाग में क्योतिष्टोमनामक
याग के प्रकरण में बिधिवाक्य हैं "केशरमश्रू वपते" (दाढ़ी समेत बालों का मुण्डन करावै)
'दतो धावते' (दातों को साफ करें) 'नखानि निकृत्तते' (नखों को कटावें) 'स्नाति'
(स्नान करें) । यहां यह सन्देह है कि उक्त प्रकार के मुण्डनगिद संस्कार, अध्वर्यु के कर्तव्य हैं अथवा यजमान के ? यहां उक्त सूत्र से पूर्वपक्ष किया जाता है जिसका यह अर्थ है कि जैसे यजुर्वेद में आध्वर्यवनाम के अनुसार, चमसहोम आदि कर्म अध्वर्यु ही के कर्तव्य हैं अर्थात् जिस बेद से जिस कर्म का विधान होता है उस कर्म को उसी बेद का ऋत्विक करता है वैसे ही उक्त मुण्डनादि संस्कार भी अध्वर्यु ही के कर्तव्य हैं क्योंकि ये वाक्य यजुर्वेद के हैं इति ।

बेद्शब्देनैव ब्यवहारः कृतो महर्षिणा, निह मन्त्राणां विधायकत्विमिति तूक्तमेव।
प्रमा० (४५) अपिच—तत्रैव—
''गुणत्वाच वेदेन न ब्यवस्था स्यात्''।। सू० १२॥
इति सूत्रमपि प्रस्तुतार्थे प्रमाणम्।

अत्र शावरं च--

अथ यदुक्तं, समाख्यानात् आर्त्वंजं तपः इति गुणत्त्रान्न समाख्यया गृह्यते यत्र पुरुषस्य गुणभावस्तत्र समाख्या नियामिका। एवं बा. इयेने श्रूयते, छोहितोष्णीषा छोहित्तवस्ता ऋत्विजः प्रचरन्ति इति, तथा बाजपेये श्रूयते, हिरण्यमाछिन ऋत्विजः प्रचरन्ति इति। तत्र सन्देहः, किं इयेने उद्घादिभिर्छोहितोष्णीषता कर्तव्या, बाजपेये च अध्वर्षभिर्हिरण्यमाछित्वम्। उत उभयमपि सर्वर्त्विजाम् १ इति। किं तावत् पाप्तम् १ समाख्यानात् इयेन उद्घादिभिर्वाजपेये अध्वर्यभिरिति। एवं प्राप्ते ब्रूमः। गुणत्वाच्च बेदेन न व्यवस्था स्यात्, गुणो छोहितोष्णीषता, हिरण्यमाछित्वंच, पुरुषः प्रधानम्, अते। छोहितमुष्णीषं हिरण्यमाछा च पुरुषिवेशेषणत्वेन श्रूयते न कर्तव्यतया, तस्मात् पुरुषपाधान्यम्। किपतः १। यद्येवं पुरुषाणां प्रधानभावे समाख्या न नियामिका इत्येतदुक्तम्।

आपिच गुणत्वश्रवणात् सर्वपुरुषाणाभेतिद्धधानम् इति गम्यते । प्रधानसिन्नधौ हि गुणः शिष्यमाणः प्रतिप्रधानम् उपिदृष्टो भवति, तत्र वचनेन प्राप्तम् कथं समारूयया विद्य-मानयाऽपि नियन्तुं शक्येत ? तस्मात् उभयत्र सर्वर्तिगिभः एवज्जातीयको धर्मः क्रियेतेति ।

॥ भाषा॥

इस सूत्र में 'केशरमश्रू' आदि ब्राह्मणभाग के वाक्यों को महार्ष ने 'बेद' शब्द (यथाबंदं) से साक्षात् ही कहा है।

प्रमा०—(४५) उक्त अध्याय पाद में "गुणलाच बेदेन न न्यवस्था स्यात्" ॥सू०१२॥ यह सूत्र भी ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण है। सामबेद से बिहित देयनयाग के प्रकरण में "छोहितोष्णीषा कोहितवसना ऋलिजः प्रचरनित" (छाछ पगड़ी और छाछ कपड़ा बाछे ऋतिक काम करें) यह वाक्य है तथा यजुर्वेद से बिहित बाजपेययाग के प्रकरण में "हिरण्यमाछिन ऋलिजः प्रचर्नित" (सुवर्णमाछा वाछे ऋलिक् काम करें) यह वाक्य है। यहां यह सन्देह है कि देयेनयाग में उद्गती अर्थात् सामदेदी ऋलिजों हीं को छाछ पगड़ी, तथा वाजपय में अध्वयुं अर्थात् यजुर्वेद के ऋलिक् ही को हिरण्यमाछा, थारण करना चाहिये अथवा सब ऋलिजों (उद्गाता और अध्वयुं) को देवन याग में छाछ पगड़ी और बाजपेययाग में सुवर्णमाछा धारण करना चाहिये ? यहां यह पूर्वपक्ष है कि सामबेद, के औद्वात, और यजुर्वेद के आध्वयंव नाम के अनुसार प्रथमपश्च ही ठीक है, अर्थात अपने २ वेद के अनुसार ही ऋलिजों के काम का नियम होना चौहिये। इसी पूर्वपक्ष के खण्डनार्थ यह उक्त सिद्धान्तसूत्र है जिसका यह अर्थ है कि ऋलिजों के काम का नियम, अपने २ वेद के अनुसार, वहां होता है जहां कि उन कामों (चमसहोम आदि) का प्रधानकृप से विधान है अर्थ अपने पुरुष असुक काम को करे इत्यादि। और उक्त दोनों वाक्यों में तो ऋलिक् ही प्रधान है कि छाछ पगड़ी बो हिरण्यमाछा का धारण, क्योंकि इन वाक्यों का यह आकार नहीं है कि ऋलिक् छोग छाछ पगड़ी बोर सुवर्णमाछा का धारण करें, तो ऐसी अवस्था में अपने २ वेद के अर्युसा छोग छाछ पगड़ी बोर सुवर्णमाछा का धारण करें, तो ऐसी अवस्था में अपने २ वेद के अर्युसा छोग छाछ पगड़ी बोर सुवर्णमाछा का धारण करें, तो ऐसी अवस्था में अपने २ वेद के अर्युसा

अत्र हि सूत्रे बेदानां ब्यवस्थापकत्वमारोप्य लोहितोष्णीषत्वादीनां गुणत्वेन तिन्नरस्यते, ब्यवस्था हि नियमः स च नान्तरेणविधायकताम् । विधायकता च न मन्त्राणामिति
लोहितोष्णीषा इत्यादि ब्राह्मणवाक्येष्वेव ब्यवस्थापकत्वमारोपितं महर्षिणा, यत्र च
ब्यवस्थापकत्वमारोपितं तदेव वेदशब्देनोक्तमिति किं तिरोहितम् ।

प्रमा० (४६) किंच महाभाष्ये परपशाहिक इमानि च भूयः शब्दानुशासनस्य प्रयोजनानीत्युपक्रम्य "तेऽसुरा हेल्यो हेल्य इति कुर्वन्तः परावभूजुः तस्माद्वाह्मणेन न म्लेच्छितवै नापभाषितवे म्लेच्छा हवा एष पदपशब्द" इति श्रुतिरुपन्यस्ता। नचासो किचिदपि- मन्त्रसंहितायामतो ब्राह्मणभागस्यवेति सिद्धं ब्राह्मणभागस्य बेदत्वम्। नचेयं श्रुतिरेव नेति वाच्यम्। तवैप्रत्ययद्वयश्रवणात्। तिस्मिन्नवाहिके "आचारे पुनर्ऋषिनियमं वेदयते तेऽसुरा हेल्यो हेल्य इति कुर्वन्तः परावभूजुरिति" इत्यग्रिमभाष्येण तेऽसुरा इत्युक्तवाक्ये बेदत्वापर- पर्यायस्य ऋषित्वस्य स्पष्टभेवोक्तेश्च। ऋषिर्वेद इति तत्र कय्यटः।

प्रमा० (४७) अपिच अनन्तरोद्धृतभाष्यभागादूर्ध्व तत्रैवाहिके "वेदशब्दा अप्येवं-वदन्तीत्युपक्रम्य योऽग्रिष्टोमेन यजते, य उ चैनमेवं वेद, योऽग्निं नाचिकेतं चिनुते, य उ चैनमेवं वेद," इति ब्राह्मणवाक्यचतुष्ट्यग्रुदाहरन् वेदत्वमेषु कण्ठत एव पठति भगवान् पतञ्जिलः। ॥ भाषा॥

ब्यवस्था (नियम) नहीं हो सकती, इस कारण द्वितीय ही पक्ष ठीक है इति । अब ध्यान देना चाहिये कि जो बेदभाग, विधान नहीं कर सकता, जैसे कि मन्त्र, उसके अनुसार ब्यवस्था (नियम्) नहीं हो सकती, क्योंकि ब्यवस्था, विधान ही के अधीन है। और महार्ष ने इस सूत्र में यह कहा है कि 'जहां कम का प्रधानरूप से विधान होता है वहीं बेद से ब्यवस्था होती है' यहां ब्यवस्था (विधान के द्वारा नियम) करने वाले ब्राह्मणभाग को महार्ष ने 'बेद' शब्द से साक्षात् ही कहा है।

प्रमाठ—(४६) ब्याकरणमहाभाष्य के पर्पशािह के में पतश्विष्ठमहार्ष ने ब्याकरण के प्रयोजनों के दिखळाने के अवसर पर 'तेऽसुरा हेळ्यो हेळय इति कुर्वन्तः परावभूवुः तसाद्धाहाणेन न म्लेच्छितवै नापभाषितवे म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः 'इस बेदवाक्य को उद्धृत किया है जिसका यह अर्थ है कि वे असुर 'हे अरयः' इस शुद्ध शब्द के स्थान में 'हळ्यः २' ऐसा अशुद्ध शब्द कहने से नष्ट हो जाते हैं इस से ब्राह्मण को चाहिये कि अशुद्ध शब्द न बोळे इति । यह वाक्य किसी मन्त्र-संहिता में नहीं है इस से निश्चित है कि ब्राह्मण ही का यह वाक्य है । यहां यह तो कह नहीं सकत कि यह वाक्य बेद का नहीं है, क्योंकि इस में 'म्लेच्छितवे' और 'अपभाषितवे' ये दो 'तवे' शब्द हैं जो कि 'कुत्यार्थें तवेकेन्केन्यस्वनः' (अ० ३ पा० ३ सू० १४) के अनुसार बेद ही में होते हैं लौकिकवाक्य में नहीं होते । दूसरे हसी भाष्य और प्रकरण में आगे चल कर 'ऋषि, (बेद) नियम बतलाता है' ऐसा कह कर पुनः हक्त ही बेदवाक्य उद्धृत है और माष्य की टीका (प्रदीप) में कय्यट ने 'ऋषि' शब्द का अर्थ बेद कहा है । ब्राह्मणभाग यदि बेद नहीं है तो यह बेदवाक्य कहां से आया क्योंकि मन्त्रसंहिताओं में तो यह वाक्य हुई नहीं है ।

प्रमा — (४७) अनन्तरोक्त के अनन्तर इसी. आहिक में 'बेद के शब्द भी ऐसा कहते हैं 'ऐसा कह पत्र जिल्महर्षि ने इन चार ४ वाक्यों को उदाहरणरूप से उद्धृत किया है कि (१) योऽप्रिष्टोमेन यजते (२) य द चैनमेवं बेद (३) योऽप्रिं नाचिकतं चिनुते (४) य उ चैनमेवं वेद। जब् प्रमा० (४८) किंच अ०६ पा० १। एकः पूर्वपरयोः । स्० ८४ इत्यत्र महाभाष्ये वेदे खल्वपीत्युपक्रम्य 'बसन्ते ब्राह्मणोऽग्निष्टोमादिभिः क्रतुभियंजेतेति । इज्यायाः किंचित्यः योजनमुक्तम् । किम् । स्वर्गे लोके अप्सरस एनं जायाभूत्वोपशेरते इति । तथा शब्दस्यापि क्राने प्रयोजनमुक्तम् । किम् । एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुपयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग्भवति । इत्यादिग्रन्थेन क्रियमाणो ब्राह्मणवाक्येषु बेदपदब्यवहारस्तेषां बेदत्वे मानम्।

प्रमा० (४९) एवम् छन्दास निष्ठवर्यत्यादि (अ० ३ पा० १ स० १२३) सूत्रे पहाः भाष्ये 'निष्ठवर्य चिन्वीत पशुकामः' इत्युदाहृतम्। इदं च ब्राह्मणवाक्यमेव, मन्त्रेष्वनुपलम्भात् असक्षतेश्व । सूत्रेऽपि बेदपर्यायञ्चन्दःशब्द उपात्तः एवं चोभे इमे सूत्रभाष्ये ब्राह्मणभागस्य बेदत्वं सत्यापयतः।

प्रमा॰ (५०) अपिच ''मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन्''। ३।२।७१। 'अवे यजः" ।३।२।७२। 'बिजुपे च्छन्दिसि'।३।२।७३। इत्यन्तिमस्त्रेते छन्दोग्रहणमपि ब्राह्मणभागस्य बेदत्वे हि मन्त्रचछन्दः शब्दयोःपर्यायताऽऽपत्तौ प्रथमस्त्रा-म्मन्त्रपदानुबृत्त्यैव सिद्धेऽन्तिमस्त्रेत्रे च्छन्दोग्रहणबैयथर्थं स्पष्टमेव । निह किचिदिप भगवान्

कि ये वाक्य मन्त्रसंहिताओं में नहीं हैं और बेद के हैं तो ब्राह्मणभाग का बेद होना सिद्ध ही है।

प्रमा०—(४८) पाणिनीयब्याकरण, अध्या० ६। पा० १। "एक: पूर्वपरयो:" सू०८४। इस सूत्र के महाभाष्य में पत्र अलिमहार्ष का वाक्य भी ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण है। क्यों कि उन्हों ने "बेदे खल्विप" (बेद में भी कहा है) ऐसा कह कर "बसन्त ब्राह्मणोऽप्रिष्टोमादिभि: कतु। भर्यजेत " (बसन्त ऋतु में ब्राह्मण, अप्रिष्टोमादि यज्ञों को करें) "स्वर्गे छोके अप्सरस एनं जायाभू लोपशेरते" (स्वर्गछोक में अप्सरा इस यज्ञ करने वाछे के समीप, बिवाहिता स्त्री की नाई शयन करती हैं) "एक: शब्द: सम्यग्ज्ञात: शास्त्रान्वित: सुप्रयुक्त: स्वर्गे छोके कामधुग्भवित" (ज्याकरण के अनुसार साधुल समझ कर किया हुआ एक शब्द का प्रयोग भी स्वर्गछोक में अनेक सुख देता है) इन, ब्राह्मणभाग के वाक्यों को उदाहरणरूप से कहा है।

प्रमा०—(४९) पाणि० ब्या० " छन्द्सि निष्टक्यं० " अध्या० ३ पा० १ सू० १२३ इस सूध के महाभाष्य में पत्रजालेमहार्ष ने "निष्टक्यं चिन्वीत पशुकामः" [पशुओं को चाहने वाला पुरुष, निष्टक्यनामक अग्नि का चयन करें] इस, ब्राह्मणभाग ही के वाक्य को उक्त सूत्र का उदाहरण दिया है और पाणिनिमहार्ष ने भी उक्त सूत्र में इस ब्राह्मणवाक्य को 'छन्दस्' [बेद] शब्द में कहा है इस रीति से यह सूत्र और भाष्य, दोनों ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण हैं।

प्रमा०—(५०) "मन्त्रे श्वेत" ॥३॥२॥७१॥ "अवे०" ॥३॥२॥७२ "विजु" ॥३॥२॥
७३॥ इन पाणिनिस्त्रों में अन्तिम अर्थात् "विजुपे छन्द्सि" इस सूत्र में 'छन्दस्' शब्द का
प्रहण भी ब्राह्मणभाग के बेदल में प्रमाण है क्यों कि स्वामी के मत में मन्त्र ही बेद है इस से
'मन्त्र' शब्द और 'बेद' शब्द का एक ही अर्थ है तो "मन्त्रे श्वेत०" सूत्र से 'मन्त्रे' शब्द की
अनुवृत्ति ही से काम चळ जा सकता है इस से "विजुपे च्छन्द्सि" सूत्र में 'छन्दस्' शब्द की
प्रहण ब्यर्थ ही हो जायगा। और ब्राह्मणभाग यदि बेद है तो 'मन्त्रे' की अनुवृत्ति होने पर भी
ब्राह्मणभाग के 'उपयद्' शब्द में 'विच्' प्रस्थय न होगा क्योंकि वह मन्त्र नहीं है उसी के किये

वाणिनिः पूर्वसूत्रात्पर्यायशब्दानुबृत्तौ सम्भवत्याम्रत्तरसूत्रे पर्यायशब्दान्तरमुपादत्ते ।

प्रमा० (५१) किंच 'जुष्टार्षिते च च्छन्दिस'।६।१।२०९। 'नित्यं मन्त्रे'।६।१।२१०। इति सूत्रद्वयमपि प्रकृतेऽर्थे प्रमाणम् । निह मन्त्राणामेव वेदत्वे मन्त्रात्मन्येकसिन्नेव विषये जुष्टार्षितशब्दयोराभ्यां विधीयमानस्याद्यदात्तत्वस्य नित्यत्ववैकल्पिकत्वे कथमप्यवकल्पेते, विरोधादितिस्पष्टमेव । ब्राह्मणभागस्यावेदत्वे मन्त्रच्छन्दः पदयोः पर्यायत्वापत्त्या पूर्वसूत्रस्य च्छन्दसीत्यनुब्रन्येव सिद्धे कथन्तरामव्यविद्वतोत्तरसूत्रपव लाधवश्लाधी भगवान् पाणिनिर्तिकस्मृतिशील इव मन्त्रइत्पर्थपुनकित्मृरीकुर्वीत ।

प्रमा० (५२) किश्च ब्राह्मणभागस्य बेदत्वाभावे सम्मति प्रचित्तमुद्रितानां पश्चषाणां परिमितग्रन्थानां मन्त्रसंहितानामव बेदत्वपर्याप्त्यधिकरणताऽङ्गीकारापत्तौ पूर्व बेददुर्गसज्जने बेदस्य ग्रन्थतो महत्त्वनिरूपणे उद्धृतचरणब्यूहपारिशिष्टवृत्तौ महिदासेनोद्धृतायाः—

" अनन्ता बै बेदाः"

इतिश्रुतेर्बिरोधो दुरुद्धरएव। नच तात्पर्याबिषयीभूतार्थमात्रानन्त्याभिप्रायेणासौ सूपपा-देति वाच्यम्। तथा सति बेदा इतिशब्दार्थकपदोपादानाविरोधात्। नहात्र बेदार्था इत्युच्यते किन्तु बेदा इत्येव। नचात्रानन्त्योक्तिः प्रशंसामात्रपर्यवसायिनी नतु वास्तविकीति द्याच्यम् ।

यहां 'छन्दस्' शब्द का प्रहण है जिस में ब्राह्मणभाग के 'उपयद्' शब्द की सिद्धि हो।

प्रमा०—(५१) "जुष्टार्षित च च्छन्दासि" ॥६॥१॥२०९॥ "निसं मन्त्रे" ॥६॥१॥२१०॥
ये दोनों पाणिनिसूत्र भी प्रमाण हैं क्योंकि यदि ब्राह्मणभाग बेद नहीं है तो एक ही विषय अर्थात्
मन्त्र ही में 'जुष्ट' और 'आर्पत' शब्द के अन्त के उदात्तत्व के निस्य और विकल्प होने
का सम्भव ही नहीं है तथा यदि 'मन्त्र' और 'छन्दस्' शब्द एकार्थक होते (जैसा कि स्वामी
का मत है) तो पूर्वसूत्र के 'छन्दस्' शब्द की अनुवृत्ति ही से काम चलने की दशा में भगवान्
पाणिनि सा लाघवप्रिय, कैसे उत्तरसूत्र में ब्यर्थ 'मन्त्र' शब्द के प्रहण से गौरव करता।

प्रमा०—(५२) यदि ब्राह्मणभाग बेद नहीं है अर्थात् इस समय प्रचित पांच छ मन्त्र-संहितामात्र ही बेद है तो पूर्व हीं बेददुर्गसज्जन के बेदमहत्वप्रकरण में उद्धृतचरणब्यूहपरिशिष्ट की बृत्ति में पं॰ महिदास की उद्धृत "अनन्ता बे बेदाः" [बेद अनन्त ही हैं] इस ब्राह्मणवाक्य का बिरोध दुर्बार ही है क्योंकि उक्त मन्त्रसंहिताएं सी दो सौ पत्रों में लिखी हुई हैं ये कैसे अनन्त हो सकती हैं और ब्राह्मणवाक्यों को भी खामी ने स्पृति के तुल्य प्रमाण ही कहा है।

प्रश्र—यद्यपि मन्त्रसंहितारूपी बेद थोड़े ही से हैं तथापि उनके तात्पर्य के अनन्त होने

से उक्तवाक्य में बेद अनन्त कहा गया है तब कैसे उसका बिरोध पड़ सकता है ?

उत्तर—उक्त वाक्य का, बेदार्थ का अनन्त होना अर्थ नहीं हो सकता क्योंकि उस में 'बेदार्था:' नहीं कहा है किन्तु 'बेदा:' कहा है।

प्रश्न-मन्त्रसंहितारूपी बंद, यद्यपि थोड़ ही हैं तथापि उतका अनन्त कहना प्रशंसामात्र है

जैसे कहा जाता है कि 'यह तड़ाग अथाह है' तब कैसे बिरोध पड़ सकता है ?

उत्तर—उक्त वाक्य, प्रशंसामात्र, कदापि नहीं है क्योंकि उस में "बै" [ही] शब्द है जिस से उसका यह अर्थ होता है कि 'बेद अनन्त ही हैं' अर्थात् परिमित नहीं हैं और इस 'बै?' एवं सित श्रौतेनावधारणार्थाभिधायिना वै शब्देन समर्पितस्य वस्तुस्थितिपर्यवसायिनोऽ नन्ता एव नतु परिमिता इति शब्दस्वरसिद्धस्यार्थस्य दुःसमर्थत्वापातात् । प्रमा० (५३) एवं ब्राह्मणभागस्य वेदत्वाभावेऽपदान्तरोक्तरीत्यैव—

सर्वस्य चाहं हृदि सिन्निबिष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च । बेदैश्व सर्वेरहमेव बेद्यो चेदान्तकृद्धेदबिदेव चाहम् ॥१५॥ अ० १५॥

इति भगवद्गीतावाक्य विरोधो दुःसमाधान एव । उक्तपिरिमितकतिपयमन्त्रसंहिता-मात्रस्य वेदत्वाभ्युपगमे हि वेदिविद्प्यहमेवेति सावधारणस्य जीवापेक्षस्विनिष्ठकर्षनिरूपणपरा-यणस्यास्य भगवद्गाव्यस्य वाधितार्थत्वं दुर्वारमेव । अधुनातनानां कितपयानां श्रुष्ठक-छोकानामपि वेदिविच्वात् । नचार्यवेदिनाभिन्नायेणवेयम् । किरितिवाच्यम् । सायनादीनां मन्त्र-भाष्यक्रतामपि वेदार्थविच्वन तथापि तदुपपादनासम्भवात् । इदं हि वाक्यं भूतादीन् काल-विशेषान् विशिष्यानिर्दिशत् त्रैकाल्येऽपि न कश्चिद्धदिविदित्यन्ययोगब्यवच्छेदमुखेन भगवती वेदिविच्वं द्रहयति । नच न्नायस्तात्पर्यगाम्भीर्यवराकेषु मन्त्रवाक्येषु विदितित्व-मधीतित्वं वा परिमेयमहिमसु जीवेष्वपि कञ्चनातिश्चयविशेषं नकाशियतु मिष्टे किम्रुत निरित्वश्चमादिमाने भगवति ।

प्रमा॰ (५४) अपिच मन्त्राणां न विधायकत्वमिति तावत्पूर्वमेव साधितम् । एवं निषेधकत्वमपि तेषां नास्ति, मञ्पदसहितस्य बिधिमत्ययस्यैव निषेधकताप्रयोजकताया

शब्द से यह स्पष्ट ही है कि वास्तविक बात इस वाक्य से कही गयी है न कि प्रशंसा। और इस वाक्य का तात्पर्य बेददुर्गसज्जन में बहुत बिशद्रूप से कहा जा चुका है।

प्रमा०— (५३)णदि ब्राह्मणभाग बेद नहीं है किन्तु ये पांच छ मन्त्रसंहिता ही बेद हैं तो " सर्वस्य चाहं हृदि सिन्निबिष्टा०" गीता० अध्या० १५ स्त्री० १५ से भी अटल बिरोध पढ़ेगा क्योंकि सब जीवों की अपेक्षा अपने (परमेश्वर) में उत्कर्ष दिखाने के लिये इस स्रोक में भगवान ने "बदबिदेव चाहम्" कहा है जिसका यह अर्थ है कि बेद का जानने वाला भी मैं ही हूँ न कि अन्य । अब ध्यान देना चाहिये कि इन संहिताओं के जानने वाले अनेक प्राकृत जीव भी थे, हैं और होंगे तब उनकी अपेक्षा भगवान में बेद जानने से क्या उत्कर्ष हुआ ?। और यह तो कह नहीं सकते कि बेद के अर्थज्ञान के तात्पर्य से भगवान ने अपने में उत्कर्ष कहा है, क्योंकि ऐसा अर्थ लगाने पर भी सायनाचार्य आदि मन्त्रभाष्ट्यकारजीवों की अपेक्षा भगवान में कोई उत्कर्ष नहीं आ सकता। और जब पूर्व में कहे हुए सिद्धान्त से यह सिद्ध है कि मन्त्रभाग, ब्राह्मणभाग की अनुवादकमात्र है तब अनुवादक में कोई ऐसा गम्भीर अर्थ नहीं हो सकता कि किस के ज्ञान से भगवान में जीवों की अपेक्षा उत्कर्ष हो।

प्रमा०— (५४) यदि ब्राह्मणभाग बेद नहीं होता तो यज्ञकर्मी के उपयोगी जितने मन्त्र, भ्राग हैं सबी ब्यर्थ हो जाते क्योंकि पूर्व हीं कहे हुए सिद्धान्त के अनुसार यह सिद्ध है कि ये मन्त्र, विधान वा निषेध नहीं कर सकते अर्थात् पुरुषों की प्रशास्त वा निश्चास्त नहीं कराते, तो ऐसी दशी अर्धवादप्रामाण्यनिरूपणावसरे 'बेददुर्गसज्जने' पूर्वमेव प्रपश्चितत्वात् । उपदेशकं च तदेव बाक्यं भवति यत्प्रवर्तकं निवर्तकं बेति तु सार्वलौकिकमेव । ब्राह्मणभागानां पौरुषेयत्वे च तेषां भ्रमप्रमादिवपिलप्सादिनैसार्गकपुरुषद्षितत्वादेव मन्त्रविनियोगे निष्कम्पयोः प्रवृत्तिनिञ्चन्योः सामर्थ्यं दुःसमर्थमेव । एवं च बिहितकर्मस्परणकरणतानाक्रमणीयानां कांतप्रयमन्त्राणां "मन्त्रश्चाकर्मकरणास्तद्वत् "मी० द० अ०३ पा०८ सू०८ ॥ इति याजन्मानत्वप्रतिपादकपारमर्षपरामर्शानुसारेण सार्थक्येऽपि बिहितकर्मसमन्तेरार्थमकाशकानां बहीयमां मन्त्रभागानां ब्राह्मणभागस्य बेदत्वाभावेऽनुपदेशकत्वप्रयुक्तं वैयर्थ्यं वज्रलेपायित-मेव स्यादिति ।

प्रमा० (५५) आप च मन्त्रसंहिताभागमात्रस्य बेदत्वे सृष्ट्यादो रचितायाः सकळ-प्रन्वादिस्मृतिप्रकृतिभृताया लक्षाध्याय्याः पितामहस्मृतेरचना नोपपद्यत इति तद्रचनाऽ-न्यथानुपपित्तरिप ब्राह्मणभागस्य बेदत्वे मानम्। नच सा स्मृतिरेवनासीदिति केनचिदिप वक्तं श्वयते, बेददुर्गसज्जनस्यान्ते प्रन्थतो बेदमहत्ववर्णनप्रकरणे तत्मत्तायाः प्रमाणानां पपश्चित-त्वात्। स्मृतया हि बदे विप्रकीर्णानामर्थानां सङ्क्षेपेण सङ्ग्रहार्थमेव प्रणीयन्ते, अन्यथा बेदेनैव तेषामर्थानां बोधियतुं शक्यत्वात्तासां रचनैव प्रयोजनाविहीना स्यादित्यादिकं प्रपञ्चितं स्मृतिप्रामाण्याधिकरणे मीमांसादर्शने। एवं च सम्प्राते प्रचरन्तीनां कतिप्यपत्रसङ्ग्रहातानां कतिप्यपत्रमङ्ग्रहीतराधुनिकजननिर्मितरापि भाष्यैविस्तरतो व्याख्यातानामामां मन्त्रसंहि-तानां सङ्क्षेपतोऽर्थसङ्ग्रहाय लक्षाध्यायी रचितेति कः सचेताः सम्भावयेत् । किञ्च । विधि-निषेषप्रधाना हि स्मृतयो भवन्ति, मन्त्रेषु च विधायकत्वादिकं नास्तीत्यनुपदमेव प्रपञ्चि-तम्। तथाच मन्त्रसंहिताभिः सह कस्याश्चिदपि स्मृतेर्थसङ्गाहकत्वलक्षणः सम्बन्धो न

में ये मन्त्र, उपदेशरूपी नहीं हो सकते क्योंकि प्रबृत्ति और निबृत्ति कराने वाले ही वाक्य को उपदेश कहते हैं। अब रहा यहां यज्ञों में इन मन्त्रों का उपयोग, सो भी अप्रामाणिक ही है क्योंकि 'अमुक मन्त्र से अमुक कर्म करें' ऐसा बिधान करने वाला ब्राह्मणभाग ही है जो कि खामी के मत में बेद ही नहीं है किन्तु पौरुषय है और जब पुरुषों में भ्रम प्रमाद आदि दोष खाभाविक हैं तब सन के रिचत ब्राह्मणभागों पर कदापि बिश्वास ही नहीं हो सकता कि उनका विधान किया हुआ, यज्ञ में मन्त्रों का उपयोग कदापि सत्य होगा।

प्रमा०—(५५) ये चार पांच संहितामात्र ही यदि बेद है तो आदिसृष्टि में ब्रह्मदेव की रिचत, लक्षाध्यायी नामक पितामहस्मृति [जो अब प्रायः लुप्त है और जिम के बिषय में पूर्व हीं बेददुर्गसज्जन के बेदमहत्त्वप्रकरण में बहुत से प्रमाण भी दिखलाये गये हैं] की रचना ही नहीं हो सकती क्योंकि मीमांसादर्शन, अध्या ०१ पा॰ ३ में स्मृतियों की रचना का यही फल कहा गया है कि "बेद बहुत बड़ा है उस में सहस्रों ध्यानों पर कहे हुए अर्थों का समझना बहुत कठिन है इस लिये उनका एकत्र थोड़े में संक्षप ही, स्मृतियों की रचना का फल है अर्थात स्मृतियों बेद की स्वीपत्रक्षपी हैं और यदि ऐसा न माना जाय तो बेद ही से सब अर्थ का बोध हो सकता इस से स्मृतियों सब व्यर्थ ही हो जातीं"। अब ध्यान देना चाहिये कि कौन ऐसा निर्वृद्धिपुरुष होगा कि जो यह स्वीकार करेगा कि वह लाख अध्यायों की पितामहस्मृति, सो दो सो पत्रों में लिखित इस

घटते किम्रुत लक्षाध्याय्याः । बेददुर्गसज्जनस्यान्ते बेदस्य यद् ग्रन्थतोऽर्थतश्च महत्त्वं सममाण् मस्माभिरुपबर्णितं तदनुरोधेन लक्षाध्यायीरचनेति तु तत्रैव प्रपाञ्चतम् ।

प्रमा० (५६) एवम् उक्तरीत्या बिधिनिषेधहीनस्य मन्त्रसंहिताभागस्यार्थसङ्गहो न जातु बिधिनिषेधप्रधानायां कस्याञ्चिदपि स्मृतौ सम्भवतीति मन्वादिस्मृतीनामपि पत्येकं रचनाऽन्यथाऽनुपपत्तिः प्रामाण्यान्यथाऽनुपपत्तिश्च ब्राह्मणभागस्य वेदत्वे प्रत्येकं प्रमाणम् ।

प्रमा० (५७) एवम् ब्राह्मंणभागस्य पारुषेयत्वे भूमिकाधारिसम्मतं वेदमूलकत्वेन तस्य प्रामाण्यमपि न स्यात । उक्तरीत्या विधिनिषेधद्दीनस्य मन्त्रभागस्य विधिनिषेधप्रधानं ब्राह्मणभागं प्रति पशोर्मनुष्यं प्रतीव मूलत्वस्य सम्भावियतुमप्यश्वयत्वात् । ब्राह्मणभागे मन्त्राणां विनियोगदर्शनमात्रेण मूलमूलिभावाङ्गीकारे तु यवब्रीह्यादिमूलकत्वमपि ब्राह्मणभागे मन्त्राणां भागस्य प्रसज्येत, यवब्रीह्यादीनामपि तत्र विनियोगदर्शनात्, नापि ब्राह्मणभागे मन्त्राणां व्याख्यानस्य क्रचित्कचिद्शनेन मूलमूलिभावः कल्पयितं शक्यते, यज्ञेषु विनियोगसौकर्यार्थनेव

॥ भाषा॥

चार पांच मन्त्रसंहिताओं का सूचीपत्र है, अथवा समुद्र, छोटे के जल का संक्षेप है। इस रीति से खक्षाध्यायी स्मृति की रचना भी ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण है।

प्रमाण-(५६) बिशेष ध्यान देने के योग्य यह बात है कि स्मृतियों का प्रधान अंश्व बिधान और निषेध ही है जिस से पुरुषों की प्रवृत्ति और निवृत्ति होती है और मन्त्रों में तो बिधान और निषेध की शिक्त ही नहीं है जैसा कि पूर्वोक्त सिद्धान्त है। तो ऐसी दशा में छोटी से छोटी, कोई स्मृति ऐसी नहीं हो सकती कि जो इन मन्त्रसंहिताओं की सूर्चापत्ररूपी हो, और छक्षाध्यायी की तो चर्चा भी बहुत दूर है। निदान यदि ब्राह्मणभाग बेद नहीं है तो मनु आदि की बनायी हुई कोई स्मृति, प्रमाण नहीं हो सकती क्योंकि वह, बेदार्थ का संक्षेपरूपी न होने से बेद- मूळक नहीं है। इस रीति से स्मृतियों का प्रमाण होना भी ब्राह्मणभाग के बेद होने में प्रमाण है।

 ब्रीह्यादीनामवधातिबेधानस्येव पन्त्राणां ब्याख्यानस्य तत्र दर्शनात् । किं च विधिनिषेधवोधकस्य प्रधानस्य ब्राह्मणभागस्येव वेदत्वं, तद्धिनियोज्यस्य तु पन्त्रभागस्य सत्यपि
शब्दद्रव्यत्वे ब्रीह्यादिवन्न वेदत्वम्, तदंशानां तत्तदृषिरचितत्वादिति वैपरीत्यमेव कृतो न
स्यात् । पन्त्रभागे वेदत्वस्य प्रसिद्धिनेतु ब्राह्मणभागे इति तु शपथैकनिर्णयम् । ब्राह्मणसम।ख्या तु वेदसमाख्यात्वादपौरुषेयतां क्रोडीकर्तु क्षमिति वेददुर्गसज्जनएव प्रपञ्चितम् ।

प्रमा० (५८) ब्राह्मणिमित ब्रह्मोति च सञ्ज्ञे अपि प्रकृतेऽर्थे प्रमाणम्। तथा हि। ब्राह्मणिमिति ब्रह्मोति च ब्राह्मणभागस्य श्रुत्युक्ते सञ्ज्ञे, 'एतद्वाह्मणान्येव पञ्च हर्वीषि यद्वाह्मणानीतराणि' इत्युक्तश्रुते:। 'तमृचश्र सामानि च यज्ंषि च ब्रह्म चानुक्यचळन्' (अथर्व
कां० १५ अ० १ स० ६) इति मन्त्रवर्णाच । अतएव 'ब्रह्म च्छन्दस्कृतं चैव' (अ० ४
श्रो० १००) इति मनुः। कुल्लूकश्र ब्रह्म ब्राह्मणिमिति ब्याख्यत्। बायसराक्षसादिवच
ब्राह्मणिमिति स्वार्थेऽण्। टिलोपस्तु न, सञ्ज्ञाभङ्गभयात्। तथा च ब्राह्मणभागस्य प्रामाण्यान्यथाऽनुपपित्तरेव तस्य वेदत्वे मानीमिति दिक्।

॥ भाषा॥

की आज्ञा दे कर उन को यज्ञ में योग्य बनाने के लिये उन के संस्कारार्थ उन का ब्याख्यान करता है क्योंकि मन्त्रों का यथार्थ अर्थज्ञानरूपी संस्कार, ब्राह्मणभाग में कहे हुए ब्याख्यान ही से होता है जिस से वे मन्त्र, ब्राह्मणभाग की आज्ञानुसार विधान किये हुए कमी का स्मरण करा कर यज्ञों में योग्य होते हैं। तात्पर्य यह है कि जैसे जब चावल आदि द्रव्य ब्राह्मणभाग के मूल नहीं हैं वैसे ही मन्त्ररूपी द्रव्य भी। और यह भी है कि यदि ऐसा कहा जाय कि विधिनिष्धरूपी आज्ञा का देने वाला ब्राह्मणभाग ही बेद है और उस का आज्ञानुसारी, विधिनिष्ध से रहित और जब चावल आदि के समान द्रव्यरूपी मन्त्रभाग ही बेद नहीं है क्योंकि जिस मन्त्र का जो ऋषि है वह मन्त्र उसी ऋषि का रचित है, तो इस का क्या उत्तर है । यदि यह कहा जाय कि मन्त्रभाग ही में 'बेद' शब्द का ब्यवहार है ब्राह्मणभाग में नहीं, तो यह मिथ्या ही है क्योंकि ब्राह्मणभाग में बेद शब्द का ब्यवहार पूर्व ही अनेक खानों पर दिखला दिया गया है। और ब्राह्मणभाग का 'ब्राह्मण' नाम होने से तो वह पुरुषरचित नहीं सिद्ध हो सकता, क्योंकि 'ब्रह्मन्' शब्द का बेद अर्थ है और 'ब्राह्मण' शब्द भी उसी का तुल्यार्थक है, यह विषय बेददुर्गसज्जन ही में निश्चित हो चुका है। जिस से स्वामी के बिपरीत ही यह निश्चय होता है कि जब बेदवाची 'ब्रह्मन्' और 'ब्राह्मण' शब्द ही ब्राह्मणभाग के नाम हैं तब ब्राह्मणभाग के बेद होने में लेशमात्र भी बिन्न नहीं है। तस्मात् विद्यानात ही साह्मणभाग होना ही उस के बेद होने में लेशमात्र भी बिन्न नहीं है। तस्मात् विद्यानात ही हा सक के बेद होने में लेशमात्र भी बिन्न नहीं है। तस्मात् विद्यानात ही समाण होना ही उस के बेद होने में प्रमाण है।

प्रमा०—(५८) 'ब्राह्मण' और 'ब्रह्मन्' ये दोनों नाम भी ब्राह्मणभाग के बेदता में प्रमाण हैं क्यों कि ब्राह्मण और ब्रह्मन् ये दोनों शब्द, मन्त्र से अन्य बेदभाग के बेदोक्त नाम हैं जैसा कि 'एतद्वाह्मणान्येव पश्च हवीं षि यद्वाह्मणानीतराणि' [चातुर्भास्ययज्ञ के प्रकरण में] तथा 'तम्बश्च सामानि च यजूँ षि ब्रह्म चानुब्यचलन्' [अथर्ब० का० १५ सू० ६ मं० ८] इत्यादि बेद-वाक्यों में इन दोनों शब्दों से ब्यवहार किया है। और मनु ने भी 'ब्रह्म च्छन्दस्कृतं चैव' [अ० ४ क्षा० १००] 'ब्रह्मन्' शब्द से मन्त्रीमन्न बेदभाग को कहा है। तथा मनुस्मृति के टीकाकार जिल्ल्यक्रभट्ट] ने भी 'ब्रह्मन्' शब्द का ब्राह्मणभाग अर्थ-किया है।

प्रमाण (५९) किं च ब्राह्मणभागस्य पौरुषेयत्वे प्रमाणाभावोऽपि तस्य बेदत्वे स्पष्टमेव प्रमाणम् । निह पूर्ववृत्तकथानां तत्र सद्भावस्तस्य पौरुषेयत्वे मानम्, तत्र वर्तपानानां छङादिप्रत्ययानां भूतकालार्थकत्वाभावस्य बेदवाह्ममतपरीक्षावसरे पूर्वभेव सप्रमाणम् प्रवर्णनेन तत्र पूर्ववृत्तगन्धमात्रस्याप्यभावात् । तत्रत्यानां कथानामाख्यायिकामात्रत्वस्य बेद्दुर्गमज्जने वेदापौरुषेयत्वभकरणेऽत्रापिच प्रतिपादितत्वेन तद्गतनाम्नां जातिकालविशेष्विक्षिष्ठपुरुषविशेषानुपस्थापकताया लौकिकाख्यायिकास्थन।मवदौचित्येन ततोऽापे पौरुषेयत्वलाभसम्भवाभावाच । ऐतरेयतैत्तिरीयताण्ड्यादिसमाख्यानामपि काठकादिवत्पवचनमात्रलाभसम्भवाभावाच । ऐतरेयतैत्तिरीयताण्ड्यादिसमाख्यानामपि काठकादिवत्पवचनमात्रलीमित्तकताया असक्रदाबेदितत्वाम्न ततोऽपि पौरुषेयत्वलाभः सम्भवति । भारतादाविवेदं ब्राह्मणमनेन रचितमिति कर्त्तृपतिपादकवाक्यस्य ब्राह्मणभागे कचिद्य्यनुपल्यभाच न तस्य पौरुषेयत्वम् । एवं च मन्त्रवद्यौरुषेयत्वे सिद्धे तद्वदेव बेदत्वमपि ब्राह्मणेषु को बारियत्मिष्टि।

प्रमा॰ (६०) एवम् भूमिकाविधायिना कृतो ब्राह्मणभागस्य वेदत्विनेषेधे प्रयत्नोऽपि तस्य वेदत्वे मानम्। तथा हि । प्राप्तस्य वेदत्वस्य तेन प्रतिषेधः क्रियते अपाप्तस्य वा। नान्त्यः। अप्राप्तस्य प्रतिषेधायोगात् कथमन्यथा मन्त्रादिग्रन्थेषु वेदत्वस्य निषेधाय नासौ

॥ भाषा ॥

प्रमा०--(५९) ब्राह्मणभाग के पौरुषेय होने में कोई प्रमाण नहीं है इस से भी ब्राह्मण-भाग का बेद होना सिद्ध है। यह तो कह नहीं सकते कि प्राचीन बृतान्तों की कथा ब्राह्मणभाग में है इस से वह पौरुषय है, क्यों कि बेदबाह्य मत [डाक्टर मक्सम्यूलर साहब का मत] की परीक्षा में पूर्व हीं यह सिद्ध हो चुका है कि बेद में लुङ् आदि प्रत्ययों का भूतकाल अर्थ नहीं होता, त्व कैसे बेद की अपेक्षा किसी बृतान्त का पूर्वकाल में होना किसी, बेद के शब्द से सिद्ध हो सकता है। तथा बेददुर्गसज्जन के बदापौरुषेयत्वत्रकरण में और इस प्रकरण के ३१ वें प्रमाण में भी भछी भांति यह ि द हो चुका है कि बेद में कही हुई कथायें, कादम्बरी चन्द्रकान्ता आदि की नाई उपदेश की सुगमता के लिये आख्यायिकामात्रक्षी हैं अर्थात् किसी वास्तिविक बृतान्त का प्रतिपादन नहीं करतीं और उन में कहे हुए नाम भी किसी वास्तविक पुरुषिक्शिष के नाम नहीं हैं किन्तु कल्पित ही हैं। और यह भी नहीं कह सकत कि तैत्तिरीय, एतरेय, और ताण्ड्य आदि नामीं के अनुसार, ब्राह्मणभाग का पौरुषेय होना सिद्ध है, क्योंकि बददुर्गसज्जन के बेदापौरुषंयलप्रकरण में पूर्व हीं यह सिद्ध हो चुका है कि बेदशाखाओं का काठक, कौथुम, आदि नाम केवल इस कारण से प्रसिद्ध हैं कि अनादिकाल से 'कठ' आदि नाम वाले ऋषिवंश ही प्रत्येक सृष्टि में उन शाखाओं को पढ़ाते आते हैं। और जैस महाभारत आदि में ऐसे वाक्य हैं कि 'ब्यास आदि न उन की रचना की 'वैसे ब्राह्मणभाग में विशेषरूप से रचना का बोधक (अमुक ऋषि ने अमुक ब्राह्मण भाग की रचना की) कोई वाक्य भी नहीं है। इस रीति से जब ब्राह्मणभाग पौरुषेय नहीं है तब उन के बेद होने का कौन बारण कर सकता है ?

प्रमा०—(६०) खामी का किया हुआ, ब्राह्मणभाग के बेद होने का निषेध ही ब्राह्मण भाग के बेद होने में प्रमाण है और उस के प्रमाण होने की रीति यह है कि "ब्राह्मणभाग बेद तहीं है" यह निषेध, क्या किसी रीति से प्राप्त, बंद होने का निषेध है अथवा अप्राप्त ही बेद होने का हम दूसरा पक्ष ठीक नहीं है क्योंकि अप्राप्त पदार्थ का निषेध ही ब्यर्थ है। नहीं तो खामी ते

प्रायतत । आद्ये तु कुतस्तत्प्राप्तिरिति वक्तन्यम् । ब्राह्मणभागे वेदत्वस्य न्यवहारएव तत्पावक् इति चेत्, ति सं सादिरनादि बी।नाद्यः। कदाप्रभृति तद्वचवहारारम्भ इति विशिष्य
निर्देष्टुमशक्यत्वात् । नान्त्यः । यथा हि गवादिपदानां सास्नादिमतीषु न्यक्तिषु वर्त्तमानो
इनादिन्यवहारस्तासु गोत्वं प्रमापयन् न कदाऽपि कथमपि केनापि प्रतिहन्तुं शक्यते तथैय
वेदपदस्यापि ब्राह्मणभागेऽनादिरसौ न्यवहारस्तत्र वेदत्वं प्रमापयन् कथंपतिहन्तुं शक्यते ।
कथं च सदैव वेदत्वेन न्यविह्यमाणे ब्राह्मणभागे लोकोत्तरप्रक्षेन भूमिकाविधायिना वेदत्वं
नास्तीति प्रमितम् । भूपिकास्थानां तदुक्तहेत्नां पूर्वोक्तप्रवोधोपन्यस्तर्द्षणेरेव कवलितत्वेन
तेभ्यस्तज्ज्ञानस्य भ्रमत्वेन प्रामाण्याभावात् । तथाच सदातन्या ब्राह्मणभागेषु वेदत्वप्रसिद्धेभूमिकाविधायिनो वेदत्वाभावोक्ते वी भ्रान्तिमूलकत्विमितिविचारे प्रवोधोक्तदृषणगणग्रस्तभूमिकोक्तहेत्वाभासकप्राणत्वाद्धेदत्वाभावोक्तरेव भ्रमम्लक्रत्वम् । वेदत्वप्रसिद्धे-

॥ भाषा॥

मतुस्मृति आदि प्रनथों के बेद होने का निषेध, बिशेषरूप से क्यों नहीं किया ? और क्यों ब्राह्मण-भाग ही के बद होने के निषेध में इतना परिश्रम किया ? और यदि दूसरा पक्ष है तो बतलाना पंडेगा कि ब्राह्मणभाग का बेद होना किस कारण से प्राप्त हं ?। अब यदि यह कहा जाय कि ब्राह्मणभाग में बेद होने के ज्यवहार ही से उस का बंद होना प्राप्त था, तो यह बतलाना पहुँगा कि वह ब्यवहार नवीन हे अथवा अनादि काल से चला आता ह ?। यदि नवीन है तो विशेषरूप से यह प्रमाण द्ना पढ़ैगा कि अमुक समय और देश में अमुक ने प्रथम २ ब्राह्मणभाग के बिषय में 'बद ' शब्द के ब्यवहार का आरम्भ किया। और इस बात को खामी कदापि नहीं बतला सकते। यदि यह कहा जाय कि आपस्तम्ब और कात्यायन महर्षि ने 'मन्त्रब्राह्मणयोर्बेदनामधेयम्' (मन्त्र ओर ब्राह्मण का बेद नाम है) इस वाक्य से प्रथम २ ब्राह्मणभाग में बेदशब्द के ब्यवहार का आरम्भ किया, तो यह भी ठीक नहीं है क्यों के उन्हों न यह नहीं कहा है कि 'बेद नाम हो' अर्थात् आज स बंद नाम रक्खा जाय किन्तु यह कहा है कि 'बंद नाम है' जिस का यह अर्थ है कि बेद नाम अनादि है। और स्वामी को अनन्यगति है। कर इस अर्थ को अवश्य मानना पड़गा क्यों कि यांद वह एसा न मानें ता मन्त्रभाग में भी बेदशब्द का ब्यवहार नवीन हो जायगा क्यों के उक्त वाक्य ही से मन्त्र का भी बेद नाम नवीन, इस कारण हो जायगा कि उसी वाक्य में मन्त्र का भी उक्त महार्षियों ने बेद नाम कहा है। और यदि ब्राह्मणभाग के बंद होने का ब्यवहार अनादि काल से हे तो जसे सास्ना (गौ के गले का लटकता हुआ अवयव) वाले पशुओं में 'गां' शब्द का ब्यवहार अनादि है और उसी ब्यवहार से उन पशुओं का गो आदि होना सिद्ध है वस ही ब्राह्मणभाग में बंद होने क अनादि ब्यवहार से उन का बेद होना भी अटल सिद्ध है जिस का कोई भी बारण नहीं कर सकता स्वामी की तो चर्चा ही क्या है। और अपनी पूर्वोक्त भूभिका में जाह्मणभाग के बेद न होने के बिषय में जो कुछ प्रमाण उन्हों ने दिखलाया है वह सब उक्त अनादि ज्यवहार के बिरुद्ध होने सं तथा पूर्वोक्त महामोहबिद्रावण में कहे हुए दूषणों से दुष्ट और मिध्या अथात् भ्रमरूप हा हे क्योंकि यदि पक्षपात से रहित हा कर बिचार किया जाय कि माह्मणभाग के बेद हाने का अनादि ब्यवहार सत्य है अथवा खामी का कहा हुआ चार दिनों का उस का निषेध ? तो इस बिचार में यही निर्णय उचित होगा कि पूर्वोक्त अनेक दोषों से दूषत्

स्त्वनादितयैव निरस्तानिखिलदोषाशङ्काकलङ्कत्वात्प्रमामूलकत्विमिति पक्षपातशून्यो निर्णयः।
अथ यत्र २ ब्राह्मणभागवाक्येषु शब्द, श्रुति, समाम्नायादयो
बेदपर्यायाः शब्दा भगवता जैमिनिना पूर्वमीमांसादर्शने अयुक्ता
स्तानि सूत्राणि शृङ्गग्राहिकया पस्तुतेऽर्थे प्रमाणतयोपन्यस्यन्ते।
सूत्राणामर्थाश्र विस्तरभयादिहाविबियमाणा अपि जिज्ञासुभिः
श्रावरादौ द्रष्ट्रच्याः।

तथाहि-

ममा॰ (६१) स्तुतिस्तु शब्दपूर्वत्वादचोदना च तस्य ॥ अ० १ पा० २ स्० ॥२७॥ ममा॰ (६२) विधिशब्दाश्च ॥ १ ॥ २ ॥ स्० ५३ ॥

ममा० (६३) चोदना वा शब्दार्थस्य प्रयोगभूतत्वात्तत्साक्षेधेर्गुणार्थेन पुनः श्रुतिः २।२स्०१६ ममा० (६४) फळश्रुतेस्तु कर्म स्यात्फळस्य कर्मयोगित्वात् ॥ २ ॥ २ ॥ स्०२५॥

॥ भाषा ॥

फक्त निषेध ही दुष्ट है और उक्त अनादि ब्यवहार तो अनादि होने ही से किसी दोष की शङ्का से कछिंद्रत नहीं हो सकता इस छिये वहीं सत्य है।

अब ब्राह्मणभाग के बेद होने में, पूर्वमीमांसाइर्शन के वे सूत्र प्रमाण दिख्छाये जाते हैं जिन में कि जैमिनिमहार्ष ने 'बेद' अथवा 'बेद' पद के समानार्थक श्रुति, समाम्राय आदि पदों से ब्राह्मणभाग के वाक्यों को कहा है। और उन सूत्रों के अर्थ का पूर्ण बिबरण शावरभाष्य आदि प्रन्थों में स्थित ही है जिस का यहां उपन्यास, बिस्तरभय से नहीं किया जाता किन्तु इतना ही दिख्छाया जाता है कि अमुक सूत्र में ब्राह्मणभाग के अमुक वाक्य को 'बेद' पद बा उस के समानार्थक अमुक पद से महार्ष ने कहा है।

प्रमा०—(६१) "स्तुतिस्तु शब्द०" इस सूत्र में "शूर्पेण जुहोति तेन हाम कियते" इस महाधाणवाक्य को 'बेद' पद के समानार्थक 'शब्द' पद से महार्ष ने कहा है। और 'शब्द' पद का 'बेद' पद के समानार्थक होना "श्रुतेस्तु शब्दमूलस्वात्" बदान्तदर्शन, अध्या०२ पाद १ सू० २७॥ "धर्मस्य शब्दमूलस्वादशब्दमनपेक्ष्यं स्थात्" पू० मी० द० अध्या० १ पाद ३ सू० १। इत्यादि अनेक स्थलों में प्रसिद्ध ही है।

प्रमां - (६२) '।बाधि०' इस सूत्र में "शत एहिमा इत्याह शतं त्वा हेमन्तानि विधिषी येति बाबेतदाह" इस ब्राह्मणवाक्य को 'शब्द पद से कहा है।

प्रमा०-(६३) "चोदना बा शब्दार्थस्य० "इस सूत्र में "आघारमाघारयति, " "आग्निहोत्रं जुहोति" इन ब्राह्मणवाक्यों को 'शब्द ' पद से कहा है।

प्रमा०-(६४) 'फलश्रुतेस्तु०' इस सूत्र में "द्रिन्द्रियकामस्य जुहुयात्" इस ब्राह्मण-वाक्य को 'श्रुति' शब्द से कहा है। व्रमा० (६५) श्वस्त्वेकेषां तत्र प्राक् श्रुतिर्गुणार्था ॥ ३॥६॥ सू० २०॥

प्रगा॰ (६६) नाम्रुतिविमतिषेधात् ॥ ३ ॥ ६ ॥ स्० २४ ॥

प्रमा० (६७) नियमार्था गुणश्रुतिः ॥ ३ ॥ ६ ॥ स० ४० ॥

प्रमा० (६८) नियमस्तु दक्षिणाभिः श्रुतिसंयोगात् ॥ ३ ॥ ७ ॥ सू० ३६ ॥

प्रमा० (६९) बिरोधे च श्रुतिबिरोधादब्यक्तः शेषः ॥ ३ ॥ ८ ॥ सू० ३२ ॥

प्रमा० (७०) अबिशेषातु शास्त्रस्य यथाश्रुति फलानि स्युः ॥ ४ ॥ १ ॥ सू० ४ ॥

प्रमा० (७१) स्वेन त्वर्थेन सम्बन्धो द्रव्याणां पृथगर्थत्वात्तसाद्यथाश्रुति स्युः।४।१।स्०८

प्रमा० (७२) नाशब्देन्तत्प्रमाणत्वात्पूर्ववत् ॥ ४ ॥ १ ॥ सू० १४ ॥

प्रमा० (७३) शब्दव त्रूपलभ्यते तदागमे हि तद् दृश्यते तस्य ज्ञानं यथाऽन्येषाम् ४।१।सू०१५

प्रमा० (७४) मुरूपशब्दाभिसँस्तवाच ॥ ४ ॥ १ ॥ सू० २४ ॥

प्रमाव (७५) स्वरुस्त्वनेकनिष्पत्तिः स्वकर्मशब्दत्वात् ॥ ४ ॥ २ ॥ सू० १ ॥

प्रमा० (७६) शक्लश्रुतेः ॥ ४ ॥ २ ॥ स्०४ ॥

॥ भाषा ॥

प्रमा०-(६५) श्वस्त्वेकषां० इस सूत्र में 'आग्नेयं पशुमालभतें' इस ब्राह्मणवाक्य कोः 'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमाव-(६६) 'ना श्रुति०' इस सूत्र में "मुष्टिनापिधायः वपोद्धरणमासीतावपाहोमात्" इस ब्राह्मणवाक्य को 'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमाद-(६७) 'नियमार्थाद' इस सूत्र में ''सोमाभावे पूतीकानभिषुणोति" इस ब्राह्मव को 'श्रुति' पद से कहा है।

प्रमा •— (६८) 'नियमस्तु॰' इस सूत्र में "अग्नीधे प्रथमं ददाति ततो ब्रह्मणे" इस ब्राह्मण • को 'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमा० — (६९) 'बिरोधेच श्रुति०' इस सूत्र में "बाईषा बेदिं स्तृणाति" इस ब्राह्मण० को 'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमा •— (७०) 'अविशेषातु०' इस सूत्र में ब्राह्मणमाग के अर्थवादभाग को श्रुवि शब्द से कहा है।

प्रमाय—(७१) 'स्वेन लर्थेन' इस सूत्र में "स्परेनोद्धन्ति" इतादि ब्राह्मणवाक्यों को 'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमा०-(७२) 'नाशब्दं०' यहां 'पशुमालभेत' इस ब्राह्म० को 'शब्द' पद से कहा है। प्रमा०-(७३) 'शब्दवत्तूप०' यहां भी उक्त ब्राह्म० ही को 'शब्द' पद से कहा है।

प्रमाद-(७४) 'मुख्यराब्द् ' यहां 'मिथुनं वै दाध च श्रृतं च यसंसृष्टं वस्तु स गर्भ एवं इस ब्राह्म को 'राब्द' पद से कहा है।

प्रमा०-(७५) 'स्वरुख्व०' यहां 'स्वरं करोति' इस ब्राह्म० को 'शब्द' पद से कहा है। प्रमा०-(७६) 'शव छ०' यहां ''यः प्रथमः शक्छः परापतेत स स्वरः'' इस ब्राह्म० को 'श्रुति' पद से कहा है। प्रमा० (७७) द्रव्यसंस्कारकर्मसु परार्थत्वात्फलश्रुतिरर्थवादः स्यात् ॥ ४ ॥३॥स्० १॥

प्रमा० (७८) चादनायां फलाश्रुतेः कर्ममात्रं बिधीयते नहाशब्दं प्रतीयते ॥४॥३॥सू० ।

प्रमा० (७९) अपि बा ऽऽम्नानसामध्यीचोदनाऽर्थेन गम्येतार्थानां हार्थवन्वन वचनानि॥ मतीयन्तेऽर्थतोऽसमर्थानामानन्तर्येऽप्यसम्बन्धस्तस्याच्छुत्येकदेशः सः ॥ ४॥ ३॥ स्० १०॥

प्रमा० (८०) प्रकरणशब्दसामान्याचोदनानामनङ्गत्वम् ॥ ४ ॥ ४ ॥ सू० १ ॥

प्रमा० (८१) दिधग्रहो नैमित्तिकः श्रुतिसंयोगात् ॥ ४ ॥ ४ ॥ सू० ८ ॥

भमा० (८२) नित्यश्च ज्येष्ठशब्दात् ॥ ४ ॥ ४ ॥ सू० १ ॥

प्रमा० (८३) पृथक्तवे त्वभिधानयोर्निवेशः, श्रुतितो ब्यपदेशाच, तत्पुनप्रुख्यलक्षणं यत्फलवत्वं तत्सिन्धाबसंयुक्तन्तदङ्गस्याद्भागित्वात्कारणस्याश्रुतश्चान्यसम्बन्धः।४।४।स्०३४।

प्रमा० (८४) श्रव्दिबिपतिषेधाच ॥ ५ ॥ १॥ स्रू० २६ ॥

ममा० (८५) न वा शब्दकृतत्वान्न्यायमात्रीमतरदर्थात्पात्रविवृद्धिः ॥ ५॥२॥सू०९॥

प्रमा० (८६) अन्ते तु बादरायणस्तेषां प्रधानशब्दत्वात् ॥ ५ ॥ २ ॥ सू० १९॥

प्रमा॰ (८७) पौर्णमासी बा श्रुतिसंयोगात् ॥ ५ ॥ ४ ॥ सू० ११ ॥

मगा॰ (८८) कर्तुर्वी श्रुतिसंयोगाद्विधिः कार्त्स्येन गम्यते ॥ ६ ॥ १ ॥ सू॰ ५ ॥ ॥ भाषा ॥

प्रमा०-(७७) 'द्रव्यसँस्का॰ ' यहां 'यस्य पर्णमयी जुहूर्भवात न स पापं ऋोकं शृणोति ' इत्यादि ब्राह्म० को 'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमा०-(७८) 'चोदनायां फलाश्रुते:०' यहां 'विश्वजिता यजेत' इस ब्राह्मण० को

'शब्द' पद से कहा है।

प्रमा०-(७९) 'अपि बा ऽऽम्रोन्' यहां उक्त ब्राह्मणवाक्य ही को 'श्रुति' शब्द से कहा है। प्रमा०-(८०) 'प्रकरणशब्द०' यहां 'अक्षेदीव्यति' इत्यादि ब्राह्मण० को 'शब्द' पर

से कहा है। प्रमा०—(८१) 'दिधप्रहो॰' इस सूत्र में 'यां वा अध्वर्युश्च यजमानश्च देवतामन्तरित-स्तस्या आबृइच्येते प्राजापत्यं दिधपहं गृह्वीयात्' इस ब्राह्म० को 'श्रुति' पद से कहा है।

प्रमा०-(८२) नित्यश्र ॰ 'यहां 'ज्यष्टो बा एष प्रहाणाम् ' इस ब्राह्म० को 'शब्द'

पद से कहा है।

प्रमा०-(८३) 'पृथक् ले ल०' यहां 'द्रीपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत' इस ब्राह्म० की 'श्रुति ' शब्द से कहा है।

प्रमा०-(८४) 'शब्द बि॰' यहां 'पुराडाशानछंकुरु' इस ब्राह्म॰ को 'शब्द' पद से कहा है। प्रमा०-(८५) 'न बा शब्दकृत' यहां 'अञ्जनादिपरिमाणान्तं यजमाना यूपं नोत्स्विति'

इस ब्राह्म० को 'शब्द' पद से कंहा है।

प्रमा०-(८६) 'अन्ते तु बाद् ०' यहां उत्पत्तिवाक्यरूपी ब्राह्म० को 'प्रधानशब्द' पद से कहा है। प्रमा०-(८७) 'पार्णमासी बा' यहां 'पौर्णमासं हिवरनुनिर्वपेत्' इस ब्राह्म की 'श्रुविं है।

प्रमा०-(८८) 'कर्तुर्बा श्रुति॰' यहां त्राह्मणभाग के सब बिधिवाक्यों को 'श्रुति' पर से कहीं पद से कहा है।

प्रमा० (८९) अशब्दमिति चेत् ॥ ६ ॥ ३ ॥ स्० २९ ॥

प्रमा० (९०) यथाश्रुतीति चेत् ॥ ६ ॥ ४ ॥ सू० २२ ॥

प्रमा॰ (९१) आदेशार्थेतरा श्रुतिः ॥ ६ ॥ ५ ॥ सू० २७ ॥

प्रमा० (९२) माघी बैकाष्ट्रकाश्रुते: ॥ ६ ॥ ५ ॥ सू० ३२ ॥

प्रमा॰ (९३) विभागश्रुतेः प्रायश्चित्तं यौगपद्येन विद्यते ॥ ६ ॥ ५ ॥ सू० ४९ ॥

प्रमा० (९४) बिधौ तु बेद मंयोगादुपदेशः स्यात् ॥ ६ ॥ ७ ॥ सू० २९ ॥

प्रमा॰ (९५) न श्रुतिबिपतिषेधात्॥ ६॥ ८॥ सू॰ १६॥

प्रमा० (५६) श्रुतित्रमाणत्वाच्छेषाणां मुख्यभेदे यथाऽधिकारं भावः स्यात् ॥७॥१॥स्०१॥

प्रमाण (९७) अर्थस्य शब्दभाव्यत्वात्प्रकरणनिवन्धनाच्छब्दादेवान्यत्र भावः स्यात्।। ७॥१॥ स्व ४२॥

प्रमा० (९८) नार्थाभावाच्छ्रतेरसम्बन्धः ॥ ७ ॥ २ ॥ स्०८ ॥

प्रमा० (९९) अपि वा सत्रकर्माण गुणार्थेषा श्रुतिः स्यात् ॥ ७ ॥ ३ ॥ सू० ५ ॥ प्रमा० (१००) द्रव्यादेशे तद्द्रव्यः श्रुतिसंयोगात्पुरोडाशस्त्वनादेशे तत्प्रकृतित्वात् ७,३सू० १६ ॥ भाषा ॥

प्रमा०-(८९) 'अशब्द०' यहां ब्राह्मणभाग के बिधिवाक्यों को 'शब्द' पद से कहा है। प्रमा०-(९०) 'यथाश्रु०' यहां 'यस्योभयं हिवरात्तिमाच्छेत् पश्चशरावमोदनं निर्वपेत्' इस ब्राह्म० को 'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमा॰—(९१) 'आदेशा॰' यहां 'सोमं बिभज्य' इस ब्राह्म॰ को 'श्रुति' पद से कहा है।
प्रमा॰—(९२) 'माघी॰' यहां 'तेषामेकाष्ट्रकायां क्रमः सम्पद्यते' इस ब्राह्म॰ को
'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमा०—(९३) 'बिभागश्रुते:' यहां 'यदि प्रतिहर्ताऽपिच्छन्द्यात् तसिन्नेव सर्ववेदसं दद्यात्' इस ब्राह्म० को 'श्रुति' शब्द से कक्षा है।

प्रमा०—(९४) 'बिधो तु बेद०' यहां 'इति स्माह बहुबार्षणमीसान्मे पचतेति' इस

ब्राह्मणवाक्य को 'बेद' शब्द से साक्षात् ही कहा है।

प्रमा०-(९५) 'न श्रुतिबि' यहां 'स्नालोद्वहेत' इस ब्राह्म को 'श्रुति' शब्द से कहा है। प्रमा०-(९६) 'श्रुतिप्रमा०' यहां 'दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत' इसादि ब्राह्म ०

को 'श्रुति ' शब्द से कहा है। प्रमा०-(९७) 'अर्थस्यशब्द • ं यहां ब्राह्मणभाग के, विधिवाक्यों और 'समानमितर-

प्रमा०-(९८) 'नाश्रीभावा०' यहां 'कवतीषु रथन्तरं गायति' इस ब्राह्मणबाक्य को

'श्रुति' पद से कहा है। प्रमा०-(९९) 'अपि बा सर्व०' यहां 'प्रायणीयं प्रथममहः' इस ब्राह्मणवाक्य, को

'श्रुति' शब्द से कहा है।
प्रमार्श्य—(१००) 'द्रव्यादेशे०' यहां 'तुषेश्च निष्कासेन चावभृथमवयन्ति' इस ब्राह्म०
को 'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रया॰ (१०१) परिसङ्खचार्थं श्रवणं गुणार्थमर्थवादो वा ॥ ७ ॥ ३ ॥ सू० २२ ॥

प्रमा० (१०२) तस्मिश्र श्रपणश्रुतेः ॥ ८ ॥ १ ॥ स्० ३९ ॥

प्रमा० (१०३) न लोकिकानामाचारग्रहणाच्छब्दवतां चान्यार्थविधानात्॥८॥४॥म्व०६॥

प्रमा० (१०४) शब्दसामध्याचि ॥ ८ ॥ ४ ॥ स्र०१९ ॥

ममा० (१०३) देशबद्ध मुपांशुत्वं तेपां स्या च्छ्रुतिनिर्देशात्तस्य च तत्र भावात् ॥९।२।स्०२०॥

ममा० (१०५) त्र्यृचे स्याच्छ्रतिनिर्देशात् ॥ ९ ॥ २ ॥ स्र० १४ ॥

ममा० (१०६) अभ्यासेनेतरा श्रुतिः ॥ ९ ॥ २ ॥ सू० २० ॥

प्रमा० (१०७) नोत्पत्तिशब्दत्वात् ॥ ९ ॥ ३ ॥ सू० १९ ॥

ममा० (१०८) कर्म च द्रव्यसंयोगार्थमर्थभावान्बिवर्तेत ताद्रश्ये श्रुतिसंयोगात्। १०।१।स्०९ प्रमा॰ (१०९) सद्यर्थः स्यादुभयोः श्रुतिभूतत्वाद्विपतिपत्तौ ताद्ध्योद्धिकारत्वमुक्तं त्रस्यार्थवादत्वम् ॥ १० ॥ १ ॥ स्०३१ ॥

प्रमा० (११०) तच्छुतौ चान्यहाविष्टात् ॥ १०॥ १॥ स्०४०॥

प्रमाव-(१०१) 'परिसङ्ख्यार्थं०' यहां 'तस्मात् द्वाभ्यां यन्ति' इस ब्राध्मणवाक्य को 'अवण' शब्द से कहा है।

प्रमारं-(१०२) 'तस्मिँश्रव' यहां 'आइयं अपयति' इस ब्राह्म को 'श्रुति' शब्द से कहा है। प्रमाव⊸(१०३) 'न लौकिका०' यहां 'सुवेण जुहोति' 'जुह्वानारिष्टान् जुहोति' इन ब्राह्मणवाक्यों को 'शर्' पद से कहा है।

प्रमा०-(१०४) 'शब्दसा०' यहां 'नारिष्टान् जुहोति' 'अग्निहोत्रेजुहोति' इन ब्राह्म० को 'शब्द ' पद से कहा है।

प्रमा०-(१०५) 'देशबद्धः ' यहां 'त्सरा बा एषा यज्ञस्य तस्माद्यत्किञ्चित्प्राचीनमग्नी-षीमीयात्तेनोपांशु प्रचरन्ति' इस ब्राह्म० को 'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमा०-(१०६) 'त्र्यृचेस्या०' यहां 'एकं साम त्र्यूचे क्रियते' इस ब्राह्मणवाक्य को 'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमा०- १०७) 'अभ्यासेने०' यहां 'तिस्टुषु गायंति' इस ब्राह्म० को 'श्रुति' शब्द से कहा है। प्रमा०-(१०८) 'नोत्पत्ति०' यहां 'रशनया यूयं परिष्ययति' इस ब्राह्मणवाक्य को 'शब्द' पद से कहा है।

प्रमा०-(१०९) 'कर्म च द्रव्यक्' यहां 'यूपमाच्छेत्स्यता परेणाहवनीयमा^उर्व चाराणिश्व आदाय यूपस्यान्तिकेऽप्रिं मथिला उरु बिष्णो बिक्रमस्वति यूपाहुतिं जुहोति ' इस ब्राह्मणवाक्य की 'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमा०-(११०) 'सद्यर्थः' यहां 'अभीषोमीयवपया प्रचर्यामीयं पुरोहाशमी निर्वपति ' इस ब्राह्म० को 'श्रुति ' शब्द से कहा है।

प्रमा॰—(१११) 'तच्छुतौ चा॰ 'यहां "प्राजापसं घृते चरं निर्वेपेच्छतकृष्ण स्मार्थं स बाह्य को 'श्राक्ति र करके के कामः " इस नाहा० को 'श्रुति ' शब्द से कहा है।

प्रमा० (१९९) स्याद्धोभयोः प्रत्यक्षशिष्टत्वात् ॥ १० ॥ २ ॥ स० ५७ ॥
अत्र हि सर्वस्वारकतोस्तत्परिसमाप्तेश्व "यः कामयेतानामयः स्वर्ग लोकिमियाम्
स सर्वस्वारेण यजेत मरणकामो होतेन यजेताभवपवमाने औदुम्ब्रीं दक्षिणेन देशेनाहतेन
सासा परिवेष्ट्य ब्राह्मणाः समापयत मे यज्ञमिति संप्रेष्याप्नौ संविश्वतीति" अस्य ब्राह्मण
बाक्यस्य पौक्षेयत्वे स्मृतितया ऋतुसमाप्त्योः परोक्षशिष्टत्वापत्तेः प्रत्यक्षशिष्टत्वोक्तिरयुक्तैव स्यात् ।

प्रमा० (१९२) षड्मिदीक्षयतीति तासां मन्त्रविकारः श्रुतिसंयोगात्।।१०।।३॥स्०२३॥

प्रमा॰ (११३) शङ्कते च निबृत्तेरुभयत्वं हि श्रूयते ॥ १० ॥ ३ ॥ सू० ३३ ॥

प्रमा० (१९४) असंयोगाद्धिधिश्रुतावेकजाताधिकारः स्यात्श्रुत्याकोपात्क्रतोः १०।३।स्०४३ प्रमा० (१९५) सर्वस्य बा क्रतुसंयोगादेकत्वं दक्षिणार्थस्य गुणानां कार्यैकत्वादर्थे

विकृतौ श्रुतिभूतं स्यात् तस्मात्समवायादि कर्मभिः ॥ १० ॥ ३ ॥ सू० ५७ ॥

प्रमा० (११६) एका तु श्रुतिभूतत्वात्सख्याया गवां छिङ्जविशेषेण ॥१०॥३॥सू०६२॥

म्मा० (११७) अपि वा श्रुतिभूतत्वात्सर्वासां तस्यभागो नियम्यते ॥१०॥३॥स्०७५॥

प्रमा० (११८) बिधिशब्दस्य मन्त्रत्वे भावः स्यात्तेन चोदना ॥ १०॥ ४॥ सू० २४॥

प्रमा० (११९) शेषाणां वा चोदनैकत्वात्तस्मात्सर्वत्र श्रूयते ॥ १०॥ ४॥ स्० २५ ॥

॥ भाषा ॥

प्रमा०— (११२) 'स्याद्वां०' यहां "यः कामयेतानामयः खर्गछोकिमियाम् स सर्वस्वारेण यजेत मरणकामो ह्येतेन यजेताभेवपवमाने औदुम्बरीं दक्षिणेन देशेनाहतेन वाससा परिवेष्ट्य ब्राह्मणाः समापयत मे यज्ञिमिति सम्प्रेष्याग्नौ संविशति" इस ब्राह्म० को प्रसक्ष [साक्षात्पठित बेद] शब्द से कहा है।

प्रमा०—(११३) 'षड्भिर्दी०' यहां 'षड्भिर्दीक्षयित' इस ब्राह्मणवाक्य को सूत्र ही में कह कर 'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमा०—(११४) 'शङ्कते च ' यहां 'यद्वैकृतीदेदाति दक्षिणा उभयीरिप दक्षिणास्तेन प्रता

भवन्ति ' इसे ब्राह्म० को 'श्रूयते ' शब्द से कहा है।

प्रमा०—(११५) 'असंयोगाद्विधि०' यहां 'गौश्राश्वश्वाश्वतरश्च गर्दभश्चाजाश्चावयश्च भीहयश्च यवाश्च तिलाश्च माषाश्च तस्य द्वादशशतं दक्षिणा' इस ब्राह्म० को 'श्रुति' शब्द सं कहा है।

प्रमा०—'११६) 'सर्वस्य बा कतु' यहां भी पूर्वोक्त ही ब्राह्म० को 'श्रुति' शब्द से कहा है। प्रमा०-(११७) एका तु० यहां 'एकां गां दक्षिणां दद्यात्तेभ्य एव' इस ब्राह्मण० को

'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमा०-(११८) 'अपि वा श्रुति०' यहां 'सप्तद्श रथाः सप्तद्श निष्काः सप्तद्श दास्यो दक्षिणाः' इस ब्राह्म० को 'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमा०-(११९) 'बिधिशब्दस्य०' यहां 'यदाप्रेयोऽष्टाकपालः' इस ब्राह्मणवाक्य को

प्रमा०-(१२०) ' शेषाणां बा० ' यहां अनन्तरोक्त ही ब्राह्म० को 'श्रूयते' शब्द से कहा है।

प्रमा० (१२०) पाकृतस्य गुणश्रुतौ सगुणे नाभिधानं स्यात् ॥ १०॥ ॥ स० २७॥ प्रमाण (१२१) आरम्भासमवायाद्वा चोदितेनाभिधानं स्यादर्थस्य श्रुतिसमवायित्वाः दवचने च गुणशासनमनर्थकं स्यात् ॥ १० ॥ ४ ॥ सू० २९ ॥

प्रमा॰ (१२२) उभयपानात्पृषदाज्ये द्धोऽप्युवलक्षणं निगमेषु पातन्यस्योपलक्षणः त्वात् ॥ १० ॥ ४ ॥ स्० ५१ ॥

प्रमा॰ (१२३) दध्नस्तु गुणभूतत्वादाज्यपा निगमाः स्युर्गुणत्वं श्रुतेराज्यप्रधानत्वात् ॥ १०॥ ४॥ स्०५६॥

अनयोहिं सूत्रयोर्निगमशब्दो मन्त्रेषु प्रयुक्तो महर्षिणा । ब्राह्मणभागे तु "इत्यि निगमो भवतीति ब्राह्मणम्" इति निरुक्ते ब्राह्मणभागेऽपि निगमशब्दः प्रयुक्तः। एवं व बेदपर्यायस्य निगमशब्दस्य मन्त्रब्राह्मणयोरविशेषेण प्रयोगाह्याह्मणभागस्य वेदत्वम्। एतन यत् सत्यार्थनकाशे सप्तमोल्लासे भूमिकाधारिणा प्रलिपनम् "मन्त्रसंहितापुस्तकस्यारम्भे-ऽध्यायसमाप्तौ च बेदशब्दः शश्विछिखित उपलभ्यते ब्राह्मणभागपुस्तके तु न कचित्। किंच निरुक्तं, इत्यपि निगमोभवतीति ब्राह्मणम् इति ब्राह्मणभागे निगमशब्दएव प्रयुक्तो न तु बदशब्दः तसाद्वाह्मणभागो न बेदं इति "तद्प्यतेन निरस्तम्। अनुपदोक्तरीत्या मन्त्र-ब्राह्मणयोराविशेषेण प्रयुज्यमानस्य निगमशब्दस्य बेदपूर्यायत्या बेदशब्दस्येव निगमशब्दस्यापि

प्रमा०-(१२१) 'प्राकृतस्य०' यहां 'अग्नये पावकायाष्ट्राकपालम्' इस ब्राह्मणवाक्य को 'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमा०-(१२२) 'आरम्भासम०' यहां ब्राह्मणभाग के विधिवाक्यों को 'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमा०-(१२३) 'उभयपाना०' यहां 'देवाँ आज्याँ आवह' इस मन्त्र 'निगम' शब्द से कहा है। प्रमा०-(१२४) 'दन्नस्तुगुण०' यहां भी उक्त मन्त्र ही को 'निगम' शब्द से कहा है। अब ध्यान देना चाहिय कि इन दोनों सूत्रों में 'देवाँ आज्यां आवह' इस मन्त्र को महर्षि ने दो बार निगम शब्द सं कहा है और निरुक्त में यास्कमहर्षि ने 'इस्पि निगमो भवति, इति ब्राह्मणम् ' [नि० अध्या० ५ खं० ३।४] इस वाक्य में ब्राह्मणभाग को निगम शब्द से कहा है। इस रीति से 'बेद' शब्द के समानार्थक 'निगम' शब्द सं मन्त्रभाग के नाई ब्राह्मणभाग भी जब कहा जाता है तब यह सिद्ध हो गया कि मन्त्रभाग ही के नाई ब्राह्मणभाग भी बेद हैं। और स्वामी ने सत्यार्थप्रकाश, उ०, ७ पृ० २१७ में जो यह लिखा है कि 'देखों संहितापुस्तक के आरम्भ भोर अध्याय की समाप्ति में 'बेद ' यह शब्द सनातन से लिखा आता है, और ब्राह्मणपुस्तक के धारम्भ व अध्याय की समाप्ति में 'बेद' शब्द कहीं नहीं छिखा। और निरुक्त में 'इसपि निगमी भवति, इति ब्राह्मणम् 'यहां ब्राह्मणभाग में 'निगम' शब्द ही का प्रयोग है न कि 'बेद' शब्द' का 'इति । वह भी परास्त हो गया क्योंकि जब उक्त रीति से मन्त्र और ब्राह्मण के वाचक 'तिगम' शब्द का ब्यवहार ब्राह्मणभाग में है तब उस क बंद होने में क्या सन्देह है ? और ऐसी दशी में यदि 'निगम' शब्द से ब्राह्मणभाग का बेद होना नहीं सिद्ध हो सकता तो मन्त्रभाग की भी बेद होना 'बेद ' शब्द से नहीं सिद्ध होगा क्योंकि जब 'बेद ' और 'निगम' दोनों शब्दों का

ब्राह्मणभागे बेद्दत्वसाधकताया दुरपलपत्वात् । अन्यथा तु बेद्बाब्द्स्यापि सा न
स्यात्, विनिगमनाविरहात् । किं च मन्त्रसंहितापुस्तके बेद्बाब्दो लिखित इत्यपि न किंश्चित्, बेद्बाब्दस्य मन्त्रघटकत्वाभावे लेखककृतस्य तल्लेखमात्रस्य प्रमाणतयाऽनुसरणे
अन्यस्येवान्धलग्रस्ये " त्यादिन्यायिषप्रत्वापातात् । यथाऽऽहुः "प्रायेण ग्रुद्धन्ति हि
ये लिखन्ति" इति । अपि च बेद्बाब्दो मन्त्रेष्वेव प्रयुज्यते न ब्राह्मणेष्वितिभूमिकाभृदाश्योऽप्युत्तीयमानस्तस्याज्ञतामेवोन्नाययति, ब्राह्मणभागे बेद्बाब्दप्रयोगस्याधस्तादिहैवासक्तदावदितत्वात्। अन्यच। निगमशब्दस्य ब्राह्मणेष्वेव पर्योगो न तु मन्त्रेष्विति तदाशयोऽपि
भीमांसाद्र्शनाद्रशनम्लको मिथ्यैव, अनयोरेव स्त्रयोमहर्षिणा मन्त्रेषु निगमशब्दस्य प्रयुकत्वादित्यलं ष्रायितगवेषणेन ।

प्रमा० (१२५) न बा सँस्कारशब्दत्वात् ॥ १० ॥ ४ ॥ सू० ५३ ॥

प्रमा॰ (१२६) एकात्रिके च्युचादिषु माध्यन्दिन-इछन्दसां श्रुतिभूतत्वात् ।१०।५। स ०७।

प्रमा० (१२७) अपि बा पारिसङ्ख्या स्यादनवदानीयशब्दत्वात्।। १०।। ७।। सू० ७।।

प्रमा० (१२८) विकृतौ प्राकृतस्य विधेप्रहणात्पुनःश्रुतिरनार्थंका स्यात् ।१०।७। स० २४।

प्रमा॰ (१२९) श्रुत्यानर्थक्यामिति चेत् ॥ १० ॥ ७ ॥ सू० ५६ ॥

प्रमा० (१३०) यावछ्तीति चेत् ॥ १० ॥ ७ ॥ सू० ६२ ॥

॥ भाषा॥

अर्थ एक ही है तब इस में कोई कारण नहीं है कि 'बंद' शब्द से, बंद होना सिद्ध हो और 'निगम' शब्द से नहीं। तथा ब्राह्मणभाग के बिषय में 'बंद' शब्द का ब्यवहार अनेक खानों पर जब दिखलाया जा चुका है तब ब्राह्मणभाग के पुस्तक में लेखक ने यदि 'बंद' शब्द को नहीं लिखा तो इतने मात्र से कुछ भी हानि नहीं हो सकती और यह भी है कि जब खामी ने मन्त्रों में 'बंद' शब्द नहीं दिखलाया तब पुस्तक में लेखक के बंद शब्द लिखने मात्र से क्या हो सकता है। और खामी का यह लिखना कि 'ब्राह्मणभाग को 'बंद' शब्द से, और मन्त्रभाग को 'निगम' शब्द से किसी ने नहीं कहा है 'स्पष्ट ही यह प्रकट करता है कि उन्हों ने पूर्वमीमां धादरीन का दर्शन कदापि नहीं पाया था क्योंकि पूर्व प्रमाणों में अनेक खानों पर ब्राह्मणभाग के बिषय में 'बंद ' शब्द का और इन दो सूत्रों में मन्त्रभाग के बिषय में 'निगम' शब्द का ब्यवहार दिखला दिया गया है।

प्रमा०-।१२५) 'नवा सँस्कार०' यहां 'पृषदाज्येन यजित इस ब्राह्मणवास्य को 'शब्द' पद से कहा है।

प्रमा०-(१२६) 'एकत्रिके०' यहां "त्रिक्कन्दा है माध्यन्दिनः पवमानः" इस झाहा० को 'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमा०-(१२७) 'अपि बा परिसङ्ख्या॰ ' यहां 'सुराप्रहाँख्यानवदानीयाम् वाजसृङ्भ्यः इस ब्राह्म॰ को 'हाब्द' पद सं कहा है।

प्रमा॰-(१२८) 'बिकृतौ॰' यहां 'आडयभागौ यजित यक्तस्यैव चक्षुषी नान्तरेति' इस नाहा॰ को 'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमा०-(१२९) 'श्रुत्या न' यहां 'यवमयो मध्य; इस ब्राह्म० को 'श्रुति' शब्द से कहा है। प्रमा०-(१३०) 'यावच्छू े' यहां 'औदुम्बरो यूपो भवति दस ब्राह्मणवाक्य को प्रमा॰ (१३१) न प्रकृतावशब्दत्वात् ॥ १० ॥ ७ ॥ स्नू० ६३ ॥

प्रमा० (१३२) यश्राश्रुतीति चेत् ॥ १०॥ ७॥ स्नु० ७२॥

पमा॰ (१३३) न, तुल्यहेतुत्वादुभयं शब्दलक्षणम् ॥ १० ॥ ८ ॥ सू० १ ॥

ममा० (१३४) न शब्दपूर्वत्वात् ॥ १० ॥ ८ ॥ स्व० १९ ॥

प्रमा॰ (१३५) अक्रत्युक्तानां वा धर्मःस्यात् क्रतोः प्रत्यक्षशिष्टत्वात् ॥१०॥८॥ स्०१३॥ अत्र प्रत्यक्षशिष्टत्वादित्यस्य विवरणं पूर्ववद्वोध्यम् ।

प्रमा॰ (१३६) तत्संस्कार्श्रुतेश्व ॥ १०॥८॥ सु॰ ३०॥

प्रमा० (१३७) उपांशुयाजमन्तरा यजतीति हविर्छिङ्गाश्रुतित्वाद्यथाकामी मिर्गायेत

प्रमा० (१३८) ऐकशब्द्यादिति चेत् ॥ १९ ॥ १ ॥ स्र० १४ ॥

म्मा० (१३९) विधेस्त्वेकश्रुतित्वादपर्यायविधाना। त्रित्यवच्छुतभूताभिसंयोगाएँ न युगषत्माप्ते यथाक्रमं विनीतवत्तस्मात्सर्वेषयोगे प्रबृत्तिः स्यात् ॥ १९ ॥ १ ॥ १० १६ ॥ प्रमा० (१४०) धर्ममात्रे त्वदर्शनाच्छब्दार्थेनापवर्गः स्यात् ॥ १९ ॥ १ ॥ १० १८ ॥ प्रमा० (१४९) तुल्यानां तुर्योगपद्यमकशब्दोपदेशात्स्याद्विशेषाप्रहणात्।१९।५। १० ५४॥ ॥ भाषा ॥

'श्रुति ? शब्द से कहा है।

प्रमा०-(१३१) 'न प्रकृता०' यहां ब्राह्मणभाग के बिधिवाक्यों को 'शब्द' पद से कहा है। प्रमा०-(१३२) 'यथाश्रु०' यहां 'चतुरवत्ती यजमानः पञ्च वत्तेव वपा कार्या' इस ब्राह्म० को 'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमा०-(१३३) 'न तुल्य०' यहां 'यजतिषु येयजमहं करोति नानुयाजेषु' इस महा

को 'शब्द' पद से कहा है।
प्रमा०-(१३४) 'न शब्द०' यहां 'रथन्तरमभिगायते गाईपत्य आधीयमाने' इस ब्राह्म०
को ''शब्द" पद से कहा है।

प्रमा०-(१३५ "अक्रतु०" यहां "अत्त्रेयाय हिरण्यं द्दाति" "दाक्षिणानि जुहाति" इसादि

ब्राह्मणवाक्यों को 'प्रत्यक्ष' (साक्षात् पठित बेद) कहा है।

प्रमा०-(१३६) "तत्सँस्कार०" यहां "यदुपस्तृणात्यभिषारयत्यमृताहुतिमेवैनां करोति" इस ब्राह्म० को 'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमा०-(१३७ 'उपांशुयाज०' यहां ''पौर्णमास्यामुपांशुयाजमन्तरा यजित" इस ब्राह्म

को 'श्रुति' शब्द से कहा है।
प्रमा०-, १३८) 'ऐकशब्दा.' यहां 'यजेत स्वर्गकामः' इत्यादि ब्राह्म० को 'शब्द' पद से कहा है।
प्रमा०-, १३९) 'बिधेस्लेक०' यहां पूर्वोक्त ब्राह्मणवाक्यों हीं को 'श्रुति' पद से कहा है।

प्रमा०-(१४०) 'धर्ममात्रे०' यहां भी पूर्वोक्त माद्याणवाक्यों हीं को 'शब्द' पद से कहा प्रमा०-(१४१) 'तुल्यानान्तु०' यहां ''द्शीपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत" दि निर्मा

को बेद्समानार्थक 'उपदेंश' पद से कहा है।

प्रमा० (१४२) विधेस्त्वितरार्थत्वात्मकृदिज्याश्रुतिब्यतिक्रमः स्यात्।।११।। स्रू० ६ २।। प्रमा० (१४२) एकदेशकालकर्तृत्वं सुख्यानामेकशब्दोपदेशात्।। ११।। २।। स्रू० १॥ प्रमा० (१४४) आस्नायवचनं तद्वत् ।। ११॥ २॥ स्० ४१॥

प्रमा० (१४५) पर्याम्रकृतानामुत्सर्गे प्राजापत्यानां कर्मोत्सर्गः श्रुतिसामान्पादारण्यवत् तसाह्रह्मसाम्यचोदनापृथक्तवं स्यात् ॥ ११ ॥ २ ॥ स्रं० ४९ ॥

प्रमा० (१४६ न अतिबिमतिषेधात् ॥ ११ ॥ ३ ॥ स्र० ५१ ॥

प्रमा० (१४७) भेदस्तु तद्भेदात्कर्मभेदः प्रयोगे स्यात्तेषां प्रधानशब्दत्वात् ।११।४। स्र०१२।

प्रमा० (१४८) आपि वा प्रतिपत्तित्व।त्तन्त्रं स्यात्स्वत्वस्याश्रुतिभूतत्वात् ।११।४। सू० ३३।

प्रमा० (१४९) तन्त्रिसमवाये चोदनातःसमानानामैकतन्त्र्यमतुल्येषु तु भेदो विधि-क्रिमतादर्थ्यात्तादर्थ्ये श्रुतिकालानिर्देशात् ॥ १२ ॥ १ ॥ सू० १॥

प्रमा० (१५०) निर्देशाद्धा बैदिकानां स्यात्॥ १२ ॥ २ ॥ सू० ३ ॥

प्रमा० (१५१) निशि यज्ञे पाकृतस्याप्रवृत्तिः स्यात्प्रत्यक्षशिष्टत्वात्।।१२॥२॥ सू० १४॥ अत्र पत्यक्षशिष्टत्वाबेवरणं पूर्ववत्।

प्रमा० (१५२) सङ्ख्यासु तु विकल्पः स्याच्छ्रतिविप्रतिषेधात् ॥१२॥४॥स्०९॥॥ भाषा॥

प्रमा०-(१४२) 'बिधेस्ति०' यहां ब्राह्मणभाग के बिधिवाक्यों को 'श्रुति' शब्द से कहा है। प्रमा०-(१४३) 'एकदेश०' यहां "स मे दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत" "दर्शपूर्णमासयोर्यज्ञ-कलोश्रवार ऋत्विजः" इत्यादि ब्राह्मणवाक्यों को 'शब्दोपदेश' पद से कहा है।

प्रमा ॰-(१४४) 'आम्नाय०' यहां 'यदेवाध्वर्युः करोति तत्प्रतिप्रस्थाता करोति' इस ब्राह्म० को 'आम्नायवचन' (बेदवाक्य) शब्द से कहा है।

प्रमा०-(१४५) 'पर्यामि' यहां 'पर्याम्भक्तानारण्यानुत्सृजताहिंसायै' इस ब्राह्मणवाक्य में . 'इत्सृजिति' पद को बेद पद के समानार्थक 'शब्द' पद से कहा है।

प्रमाव-(१४६) 'न श्रुतिव' यहां 'उपरिष्टात् सोमानां प्राजापत्यैश्चरन्ति' इस ब्राह्म॰ को 'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमाय-(१४७) 'भेद्स्तु०' यहां ब्राह्मणभाग के मुख्यविधिवास्यों को 'प्रधानशब्द' पद से कहा है ।

प्रमा०-(१४८) 'अपि वा प्रति०' यहां 'अर्थचें वसाहोमं जुहोति' इस बाह्यणवाक्य को 'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमा०-(१४९) 'तिन्त्रसम०' यहां 'अग्नीषोमीयं प्रणीयाग्नीषोमीयतन्त्रं प्रक्रमयित' वपया-प्रोडाशतन्त्रं प्रक्रमयित' इन ब्राह्मणवाक्यों को 'श्रुति' शब्द से कहा है।

प्रमा०-(१५०) 'निर्देशाद्वा०' यहां 'गाईपत्ये पत्नीः संयाजयन्ति' 'दक्षिणामौ फलीकरण-होमं करोति' 'यदाहवनीये जुहोति' इन ब्राह्मणवाक्यों को 'बेद' शब्द से कहां हैं।'

प्रमाव (१५१) 'निशियज्ञें 'यहां 'अमये रक्षोंमें पुरोह्याशमष्टाकपालं निर्वयेद् यं रक्षांसि स्थेरम्' इत्यादि ब्राह्मणवाक्य को 'प्रत्यक्ष' (साक्षात्पिठत बेद) कहा है।

ममा०-(१५२) 'संख्यास तु०" यहां 'एका देया षड् देया द्वात्श द्या" इस नाद्य को

प्रमा० (१५३) आम्नायवचनास्त ॥ १२ ॥ ४ ॥ सू० ३० ॥ इति ।

प्रमा० (१५४) किं च पूर्वमीमांसादर्शने 'अथातो धर्माजिङ्गासा 'इत्यारभ्य 'अन्वाहार्ये च दर्शनात् ' इत्यन्ते जामिनीये द्वादशस्यध्यायेषु षष्टिः पादाः त्रयोदशाधिकानि नवशतान्यि करणानि । तानि च प्रायो ब्राह्मणवाक्यविषयकाण्येव, अरुपीयांभि च मन्त्रवाक्य विषयकाणि न हि विहितकर्मानुवादकानां मन्त्रवाक्यानामर्थेषु सन्देहस्य प्राय उत्थानाव सरो येन तिक्रशकरणाय तेष्वपि विचारावसरः श्रायिकः स्यात् मन्त्रानुस्मरणीयार्थविधासरो यकब्राह्मणवाक्यार्थविचारजन्यनिर्णयेनव मन्त्रार्थेषु सन्देहस्य प्रायोऽनुत्थानात् । मीमांसा च वेदत्वाक्यार्थविचारणव । एवं च ब्राह्मणभागस्य वेदत्वाभावे तद्राक्येषु कस्यापि पूर्वमीमांसाधिकरणस्य विषयत्वं न स्यात् न हि पौरुषेयमन्वादिस्मृतिवाक्यार्थोऽपि मीमांसा दर्शने विचारितो, न वा तद्भिचारायैतद्दर्शनिमिति प्रायः शतशोऽधिकरणानि पूर्वोत्तरमीमांसयो वर्शने विचारितो, न वा तद्भिचारायैतद्दर्शनिमिति प्रायः शतशोऽधिकरणानि पूर्वोत्तरमीमांसयो ॥ भाषा ॥

'श्रुति' शब्द से कहा है। प्रमा०-(१५३) 'आम्नायव०' यहां 'संत्रे भूपसां यजमानानां यो गृहपतिः स भूिशा-मृद्धिमृश्लोति' इस ब्राह्मणवाक्य को 'आम्नायवचन' (बेदवाक्य) कहा है।

प्रमा०-(१५४) पूर्वमीमांसाद्शेन, 'अथातो धर्मीजज्ञासा' इस से आरम्भ हो कर 'अन्वाहार्ये च दर्शनात्' इस सूत्र पर्यन्त बारह १२ अध्याओं में समाप्त है जिस में तीसरे, छहें, और बारहें अध्याय में ८ आठ २ और अन्य अध्यायों में ४ चार २ पाद होने से सब मिलाकर साठ ६० पाद हैं, और इस दर्शन में नव सौ तेरह ९१३ अधिकरण (प्रधान निर्णय) हैं और अनेक अधिकरणों में अनेक वर्णक (अवान्तरानिर्णय) भी हैं जिन की सङ्ख्या मिलाने स निर्णयों की सङ्ख्या बहुत ही अधिक है, तथा इन निर्णयों और वर्णकों में प्राय: ब्राह्मणभाग ही के वाक्यार्थ का विचार है और बहुत थोड़े अधिकरण बा बर्णक एसे हैं जिन में मन्त्रवाक्य का विचार है। और इस में कारण भी दो हैं, एक यह कि पूर्व में कही हुई रीति के अनुसार कर्मीपयोगी मन्त्रवाहरा, किसी नये अर्थ का बिधान नहीं करते किन्तु ब्राह्मणभाग के बिधिवाक्यों से विधान किये हुए कर्मी का स्मरणमात्र अर्थात् अनुवाद मात्र करते हैं तो ऐसी दशा में मन्त्रवाक्यों के अर्थ में प्रायः विचार का अवसर ही नहीं भाता यह विषय छोक में भी प्रसिद्ध ही है कि अनुवादक (संदेश आहि के आने बाके) के बाक्यों में प्रायः बिचार नहीं किया जाता किन्तु उस मूखवाक्य ही में विचार किया जाता है जिस का कि वह अनुवाद है। और दूसरा कारण यह है कि जब मूलभूत ब्राह्मणभाग के उन विधिवाक्यों का अर्थ, विचार से निश्चित हो चुका तब शाखाह्मपी और भर्ज वादक मान्न, मन्त्रवाक्यों के अर्थ में प्रायः सन्देह ही नहीं होता कि उस के बारण के लिये निर्णय की आवर्यकता हो और यह भी दार्शनिकों में प्रसिद्ध ही है कि 'मीमांसाबेदवाक्यविचारं' (बेदवाक्यों ही के अर्थ के विचार का नाम मीमांसा है) क्यों कि मीमांसादर्शन में पौर्षेय, अर्थात मन्वादिस्मृति, इतिहास, पुराण, आदि के वाक्यों का अर्थिबचार नहीं किया गया है। अर्थ देना चाहिये कि यदि ब्राह्मणसाग बेद नहीं अर्थात् पौरुषेय होता तो उसी के वाक्यों की अर्थ किया पर्वासी के वाक्यों की अर्थ होता तो उसी के वाक्यों की अर्थ होता तो उसी के वाक्यों में विचार, पूर्वमीमांसा और उत्तरमीगांसा (वेदान्तद्र्शन) इन दोनों वैदिकद्र्शनों के अधिकर्णों हैं आय: (सैकडों स्थानों एट) क्यों कि ्रिपायः (सैकड़ों स्थानों पर) क्यों किया जाता ? इस रीति से यहां पूर्व में कहे हुए, और भाग करें

क्रीक्षणभागस्य बेदत्वे प्रमाणेभ्यः पूर्वोक्तेभ्यो वक्ष्यपाणेभ्यश्चान्यानि प्रमाणानि । विस्तरभयादेव तु नेह तेषां प्रातिस्विकोछेखः क्रियते । नच प्रीमांमादर्शनसूत्राणां प्राप्ताण्ये
भूमिकाधारी विप्रतिपत्तुं शक्तोति, भाष्याभासभूमिकायाम् 'वेदविषयविचारविषय' इत्युपक्रमे प्रीमांसादर्शनसूत्रयोः 'द्रव्यमंस्कारकर्मसु प्रार्थत्वात्फळश्चातिरर्थवादः स्यात् (अ० ४
पा० ३ सू० १) द्रव्याणान्तु क्रियार्थानां संस्कारः क्रतुधर्मः स्यात् (अ० ४ पा० ३ सू० ८)
इत्यनयोः स्वयमेव प्रपाणतया तेनोपन्यस्तत्वात् । एवमनेकत्र भाष्याभासभूमिकायामेव तेन
पूर्वमीमांसादर्शनसूत्राणि प्रमाणतयोपन्यस्तानीति कृतन्तदुपन्यासविस्तरेण । एवस्रत्तरपीमांसादर्शनदेशि बोध्यम् । उक्तयोश्च पीमांसयोबोद्धाणवाक्यावळिष्वनां सर्वेषामधिकरणानां
वर्णकानां च प्रत्येकिमिहोद्धरणे च कियद्नं दर्शनद्वयमेवोद्धतं स्यादिति ग्रन्थमहागौरवं
स्यादिति सम्भवतः सार्द्रान्यष्टौ शतानि तान्यधिकरणानि ब्राह्मणभागस्य वेदत्वे प्रमाणाचीत्युन्केव विरम्यते ।

तदेवम् प्रबोधोक्तान्यष्टादश । अत्रपरिगणितानि चतुःपञ्चाशं शतम्-प्रमाणस्थेषु त्रिषु वाक्येषु चरमे छे--अन्तिमाङ्कसूचितानि सार्धान्यष्टौशतानि इति ब्राह्मणभागस्य वेदत्वे चतुःविंशं सहस्रं प्रमाणानि ।

ब्राह्मणभागस्य बेदत्वे सिद्धे 'सर्वेषां मन्त्राणां साक्षादेवेश्वरस्तुतिपरत्वम्'। 'भागवतादि

जाने बाले सब परिगणित प्रमाणों से अतिरिक्त अर्थात् एक दर्शनों में सैकड़ों अधिकरण क्या ? प्रायः सब ही अधिकरण, ब्राह्मणभाग के बेद होने में अटलप्रमाण हैं। और खामी को यह भी कहने का अवसर नहीं है कि मैं उक्त दर्शनों को प्रमाण नहीं मानता, क्योंकि अपने वेदमाच्य-भूमिका नामक प्रन्थ पृष्ठ ४७ में 'द्रव्यसंस्कारकर्मसु०' अ० ४ पा० ३ ॥ सू० १॥ 'द्रव्याणां दु कियार्थानाम् ७' अध्या ० ४ पा० ३ ॥ सू० ८॥ इन मीमांसास्त्रों को उन्हों ने खयं प्रमाण दिया है और ऐसे ही अनेक स्थानों पर मीमांसादर्शन के अन्यान्य स्त्रों को भी प्रमाण दिया है। ऐसे ही उत्तर्भों मों सा (वेदानतदर्शन) में भी प्रायः ब्राह्मणबाक्यों ही पर अधिकरण और वर्णक हैं। और दोनों मीमांसादर्शनों के ब्राह्मणबाक्यावलम्बी उन सब अधिकरणों और वर्णकों को यहां उद्भुत करने में प्रनथ का बहुत ही विस्तार हो जायगा। परन्तु वे सब अधिकरण ब्राह्मणभाग के वेद होने में प्रमाण हैं इस लिये उनकी न्यून से न्यून सङ्ख्या यहां दिखलायी जाती है कि वे भाठ सौ प्रमास ८५० प्रमाण, ब्राह्मणभाग के वेद होने में हैं।

अब थ्यान देना चाहिये कि ब्राह्मणभाग के बेद होने में एक सहस्र चौबीस १०२४ प्रमाण हैं कि पूर्व ही बद्धुत प्रवोध में कहे १८, विशेषक्ष से गिने १५४, प्रमाणस्य तीन वाक्यों में प्रमाण दोर, अन्तिम अक्ष से स्चित८५०, कुळ जुमला १०२४। और इन प्रमाणों के बळ से ब्राह्मणभाग का बेद होना पूर्ण क्ष से सिंह हो गया और इस (ब्राह्मणभाग के बेदल सिद्ध होने) से यह भी सिद्ध हुआ कि अलस पुरुषों को प्रसन्न और प्रकृत करने के लिये कर्म में सुगमता दिखला कर खामी ने अपने खतन्त्रविहार के योग्य जिन इन नये र मनमाने कि एत्विषयों को अपने प्रन्थों में गढ़ रक्खा है कि "सब मन्त्रों का साक्षात् ही परब्रह्म की स्तुति में तास्त्रये है "१ " जब ब्राह्मणभाग बेद ही नहीं है तब तन्मूलक भगवतादिपुराण प्रमाण नहीं हैं "२ " यज्ञ सब होमि विशेषक्ष ही हैं अर्थात् उन का वह खक्ष

पुराणानां च न प्रामाण्यम् । 'यज्ञाश्च होमिबशेषरूपा एव नतु ब्राह्मणभागोक्तमकाराः' 'धर्मोऽपि सत्यादिसामान्यधर्मभिन्नो वर्णाश्रमादिबिशेषानुबन्धी प्रायो न प्रामाणिकः' इत्यादीनि क्रियालाघवप्रदर्शनमूलकपरमालसलोकपरोचनामात्रैकफलानि सर्वानर्थसार्थस्य धीनि भूमिकाबिधायिनः स्वरिबहारस्थानानि श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणसदाचारैः पञ्चाप्रिमिः प्रमाणतर्कगर्भतात्पर्यज्वालालजाटिलैः पञ्चलय्य भस्मभूयमनुभावितानि बिभावनीयानि । प्रन्थतो वेदानामियत्ता च भूमिकाबिधायिमतेन सप्ताष्ट्रमन्त्रसंहितामात्रविश्रान्ता वेददुर्गः सज्जनस्यान्ते वेदस्य प्रन्थतो महत्त्वोपपादनेन भस्मसाद्भृतेति तु तत्रैवावलोकनीयम् ।

तस्मात्—

समुन्नमन्मानसहस्रमेया करस्फुरत्कङ्कणकान्तिकरुपा।
मिथ्या कथं ब्राह्मणवेदतेयं स्यात्स्वामिदुष्करूपनजरूपनाम्याम् ॥१॥

यदपि भूमिकायाम् —

बेदबिषयाविचारविषय इत्युपक्रमे —

तत्र दितीयो विषयः कर्मकाण्डाख्यः स सर्वः क्रियामयोऽस्ति नैतेन विना विद्याभ्यामद्याने अपि पूर्णे भवतः । कृतः । बाह्यमानसब्यवहारयोर्वाह्याभ्यन्तरे युक्तत्वात् । सचानेकविधोस्ति। परन्तु तस्यापि खलु द्वौ भेदौ मुख्यौ स्तः । एकः परमपुरुषार्थसिध्यर्थोऽर्थाद्य ईश्वरस्तु तिमार्थनो-

नहीं है जो कि ब्राह्मणभाग में बिहित है" ३ "सत्य आदि सामान्यधर्म ही धर्म हैं जिन में कि सब मनुष्यों का अधिकार है अर्थात् शास्त्र में कहे हुए बर्ण और आश्रम के धर्मों में भी मनुष्यों का अधिकार है इस कारण वे भी सामान्यधर्म हीं हैं निदान, वर्ण और आश्रम के विशेषधर्म प्रायः प्रामाणिक नहीं हैं " ४ "इत्यादि, वे बिषय भी श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण, सदाचार, रूपी पश्चामि की, प्रमाणतर्कगर्भिततात्पर्यरूपी ज्वालामाला से भसीभूत हो कर इतस्ततः उड़ गये। और "ये चार पांच मन्त्रसंहिता ही बेद हैं अर्थात् बेद का इतना ही परिमाण है इस से अधिक नहीं " यह स्वामी का कथन तो बेददुर्गसज्जन के बेदमहत्त्वप्रकरण में, और इस प्रकरण में भी पुनः २ शतशः चूर्णित ही हो गया, इस से अब यही कहना अविश्वष्ट है जो कि कहा जाता है कि

"समुद्रमन्मान०" अ० पूर्वोक्त के अनुसार एक सहस्र बीस १०२४ प्रमाणों से सिद्ध हो कर करकङ्कण की शोभा के तुल्य प्रत्यक्षरूप से बिराजती हुई यह ब्राह्मणभाग की बेदता,

स्वामी के, पूर्वोक्त और दूषित कतिपय अनुमानों से कैसे मिथ्या हो सकती है ? ॥१॥

ऐसे ही खामी ने अपनी भूमिका के "बेद्बिषयिवचारिवषय" प्रकरण पृष्ठ ४६ में जो यह लिखा है कि "उन में से दूसरा कर्मकाण्ड विषय है सो सब क्रियाप्रधान ही होता है जिस के बिना बिद्याभ्यास और ज्ञान पूर्ण नहीं हो सकते क्योंकि मन का योग बाहर की किया भीतर के ब्यवहार में सदा रहता है। वह अनेक प्रकार का है परन्तु उस के हो भेद मुख्य है एक परमार्थ, दूसरा लोकब्यवहार अर्थात् पिहले से परमार्थ, दूसरे से लोक ब्यवहार की सिद्धि करनी होती है। प्रथम जो परमपुरुषार्थक्ष से कहा उस में परमेश्वर की (स्तुति) अर्थात् उस के स्था सब शक्तिमत्त्वादि गुणों का कीर्त्तन उपदेश और अवण करना (प्रार्थना) अर्थात् जिस करके ईश्वर सहायता की इच्छा करनी (उपासना) अर्थ त् ईश्वर के खक्तप में मम्न हो कर उस की सत्यभाषणादि

वासनाऽऽज्ञापालनधर्मा तुष्ठानज्ञानेन मोक्षमेव साधियतुं प्रवंतेत अपरो लोकव्यवहारिसद्धये यो धर्मेणार्थकामौ निर्वर्त्तायतुं संयोज्यते। सयदा परमेश्वरप्राप्तिमेव फलग्रुद्दिश्य कियते तदा श्रेष्ठ-फलाव्नो निष्कामसञ्ज्ञां लभते। अस्य खल्वनन्तसुखेन योगात्। यदा चार्थकामफल्किल्यवसानो लौकिकसुखाय योज्यते तदा सोऽपरः सकाम एव भवति। अस्य जन्म-मरणफलभोगेन युक्तत्वात् स चाग्निहोत्रमारभ्याश्वमेधादिपर्यन्तेषु यज्ञेषु सुगन्धिमिष्टपुष्टरोग-नाज्ञकगुणैर्धुक्तस्य सम्यक् संस्कारेण शोधितस्य द्रव्यस्य वायुवृष्टिजलग्रुद्धिकरणार्थममौ होमः क्रियते। स तद्द्वारा सर्वजगत्सुखकार्थ्यंव भवति। यत्र भाजनाच्छादनपानकलाकौशल यन्त्रसामाजिकनियमप्रयोजनासिद्ध्यर्थे विधत्ते सोऽधिकतया स्वसुखायैव भवति। अत्र पूर्वमीमांसायाः प्रमाणम्। द्रव्यसंस्कारकर्मसु परार्थत्वात्फलश्रुतिरर्थवादः स्यात्॥ अ० ४ पा० ३ सू० १॥ द्रव्याणान्तु कियार्थानां संस्कारः कत्त्वर्धः स्यात्॥ अ० ४ पा० ३ सू० १॥ द्रव्याणान्तु कियार्थानां संस्कारः कत्त्वर्धः स्यात्॥ अ० ४ पा० ३ सू० १॥ अनयोर्थः। द्रव्यं संस्कारः कर्म चैतत्त्रयं यज्ञकत्री कर्तव्यम्। द्रव्याणि पूर्वोक्तानि चतुःसङ्ख्याकानि सुगन्धादिगुणयुक्तान्येव ग्रहीत्वा तेषां परस्परसुत्तमोत्तमगुणसम्पादनार्थं संस्कारः कर्तव्यः। यथा सुपादीनां संस्कारार्थं सुगन्धयुक्तं घृतं चमसे संस्थाप्याग्रौ प्रतप्य

आज्ञा का यथावत् पालन करना, सो उपासना वेद और पात अलयोगशास्त्र की रीति से ही करनी चाहिये, तथा धर्म का स्वरूप न्यायाचरण है न्यायाचरण इस को कहते हैं जो पक्षपात को छोड़ कर सब प्रकार से सत्य का प्रहण और असत्य का परित्याग करना है। इसी धर्म का जो ज्ञान और अनुष्ठान का यथावत् करना है सो ही कर्मकाण्ड का प्रधान भाग है। और दूसरा यह है कि जिस से पूर्वोक्त अर्थ काम और उन की सिद्धि करने वाळे साधनों की प्राप्ति होती है सो इस मेद को इस प्रकार से जानना कि जब मोक्ष अर्थात् सब दु:खों से छूट कर केवल परमैश्वर की ही प्राप्ति के छिये धर्म से युक्त सब कर्मों का यथावत् करना, यही निष्काम मार्ग कहाता है क्योंकि इस में संसार के भोगों की कामना नहीं की जाती इसी कारण से इस का फल अक्षय है और जिस में संसार के भोगों की इच्छा से भम्युक्त काम किये जाते हैं उस को सकाम कहते हैं इस हेतु से इस का फल नाशवान् होता है क्योंकि सब कर्मी कर के इन्द्रयभोगों को प्राप्त हो कर जन्म-मरण से नहीं छूट सकता सा अग्निहोत्र से छे कर अश्वमेधपर्यन्त जो कर्मकाण्ड है उस में चार प्रकार के द्रव्यों का होम करना होता है। एक सुगन्धगुणयुक्त जो कस्तूरी केसरादि हैं, दूसरा मिष्टगुणयुक्त जो कि गुड़ और सहत आदि कहाते हैं, तीसरा पुष्टिकारकगुणयुक्त जो घृत दुग्ध भौर अत्र आदि है, और चौथा रोगनाशकगुणयुक्त जो कि सोमलतादि ओषाधि आदि हैं। इन षारों का परस्पर शोधनसंस्कार और यथायोग्य मिला कर अग्नि में युक्तिपूर्वक जो होम किया जाता है वह वायु और बृष्टिजल की शुद्धि करने वाला होता है इस से सब जगत् को सुख होता है और जिस को भोजन छाजन विमानादियान कलाकुशलता यन्त्र और सामाजिक्षियम होने के लिये करते हैं वह अधिकांश से कर्ता को ही सुख देनेवाला होता है।

इस में पूर्वभीमांसा धर्मशास्त्र की भी सम्मिति है (द्रध्य०) एक तो द्रव्य दूसरा संस्कार भीर तीसरा उन का यथावत् उपयोग करना ये तीनों बात यह के कर्ता को अवद्य करनी चाहिये सो पूर्वोक्त सुगन्धादियुक्त चार प्रकार के द्रव्यों का अच्छी प्रकार संस्कार करके आग्न में होम करने से जगत् का अत्यन्त उपकार होता है जैसे दान और शाक आदि में सुगन्ध द्रव्य और

सधूमे जाते सति तत्सूपपात्रे मबेश्य तन्मुखं बध्वा मचालयेच तदा यः पूर्व सधूम जात सात तत्त्वनगर नाम अविष्टः सन्सर्वे सूर्ण सुगन्धमेव करोति तेन पृष्टिः रुचिकरश्च भवति । तथैव यज्ञाघो बाष्पो जायते स बायुं बृष्टिजळं च निर्दोषं कृत्वा सर्वः जगते सुखायैव भवति । अतश्रोक्तम् । यक्षोऽपि तस्य जनतायै कल्पते यत्रैवं बिद्वान् होताः भवति ॥ ऐ० क्रा॰ एं० १ अ० २ ॥ जनानां समूही जनता तत्सुखायैव यहा भवति यसिन्यक्षेऽमुना प्रकारेण बिद्दान् सँस्कृतद्रव्याणामग्री होमं करोति । क्रुतः । तस्य परार्थः त्वात् । यज्ञः परोपकारायैव भवति । अतएव फलस्य श्रुतिः श्रवणमर्थवादोऽनर्थवारणाय भवति । तथैव होमक्रियाथीनां द्रव्याणां पुरुषाणां च यः सँस्कारो भवति स एव क्रतुभमें बोध्यः । एवं ऋतुना यज्ञेन धर्मी जायते नान्यथेति । इत्युक्तम् ।

तदेतत् शास्त्रानध्ययनफलम् ।

(१) द्रव्यं सँस्कारः कर्म च यज्ञकत्री कर्तव्यमित्यर्थे "यज्ञसँस्कारकर्मसु" इति सौत्रसप्तम्यर्थलोपप्रसङ्गात् । अनुवादिका विभक्ति र्श्वेषा न प्रथमेव विधेयतां प्रयोक्तमलम्। एवं च कर्त्तव्यपदाध्याहारोऽपि तद्विरुद्ध एव।

(२) एवं परार्थत्वादित्यस्यार्थोपि तदुक्तो न युक्तः । न हि यत्स्वार्थमुहिश्य क्रियते

घी इन दोनों को चमचे में अग्नि पर तपा कर उस में छौंक देने से वे सुगन्धित हो जाते हैं क्यौंकि चस सुगन्धद्रव्य और घी के अणु उन को सुगन्धित करके दाल आदि पदार्थों को पृष्टि और रि बढ़ानेवा के कर देते हैं वैसे ही यज्ञ से जो भाफ उठता है वह भी बायु और बृष्टि के जल को निर्देष और सुगन्धित करके सब जगत् को सुख करता है इस से वह यज्ञ परोपकार के लिये ही होता है। इस में ऐतरे गृत्राह्मण का भी प्रमाण है कि (यज्ञोपित०) अर्थात् जनता नाम जो मनुष्यों का समृह है उसी के सुख के छिये यज्ञ होता है और संस्कार के छिये द्रव्यों का होन करने वाला जो बिद्वान् मनुष्य है वह भी आनन्द को प्राप्त होता है। क्यौंकि जो मनुष्य जगत् का जितना उपकार करेंगा उस को उतना ही ईश्वर की ब्यवस्था से सुख प्राप्त होगा इस छिये यह का 'अर्थवाद' यह है कि अनर्थदोषों को हटा कर जगत् में आनन्द का बढ़ाता है परन्तु होन के द्रव्यों का उत्तम संस्कार और होम के करने वाले मनुष्यों को होम करने की श्रष्ठिबचा अवश्य होनी चाहिये सो इसी प्रकार के यज्ञ करने से सब को उत्तम फळ प्राप्त होता है विशेष करके यज्ञकर्ता को, अन्यथा नहीं "।

यह कथन भी शास्त्रों के न पढ़ने का फल है क्यौंकि-खं०—(१) यदि उक्त सूत्र (द्रव्य०) का "द्रव्य, संस्कार और कर्म ये तीनों यहाकर्ती को करना जाहिये" यह अर्थ हो तो 'द्रव्यसंस्कारकर्मसु' यह आकार, सूत्र के शब्द का त होगी क्योंकि 'सु' इस सप्तमीबिमक्ति का अर्थ है 'में' जिस के अनुसार यह अर्थ होता वाहिये कि 'कर्म में' और खामी का उक्त अर्थ मानने में तो 'कर्माणि' यह रूप हो जायगा। तथा किती चाहिये 'यह अर्थ भी नहीं हो सकैगा क्योंकि सूत्र में इस का बोध कराने वाला कोई शब्द ही नहीं है। ख० — (२) 'परार्थ' शब्द का जो जगत् का अत्यन्त उपकार अर्थ किया है वह भी क्यों कि स्वार्थ की के किया है वह भी ठीक नहीं है क्योंकि स्वार्थ ही के लिये जो काम किया जाता है उस से यदि पराया हपकार तदंतुषङ्गात्परोपकारमात्रेण परार्थमुच्यते न हि गृहद्वारद्योतनार्थं स्थापितो दीपो रथ्याद्योतन-बात्रात्परार्थ उच्यते । सर्वे वाक्यं सावधारणिमिति न्यायात् । होमोऽपि चात्मार्थं क्रियते । होमानां यज्ञाङ्गतया, यज्ञानां चं स्वर्गकामादिश्चिति विर्यजनानार्थतयैव विधानात् । ऐतरेय-बाक्यं त्वानुषङ्किकज्ञानफळानुवादमात्रम् ।

- (३) अपि च। एवं बिदित्युक्त्या होतृसमवेतस्य ज्ञानस्य जनतोपकारः फलिति लभ्यते तच्च होत्रा यज्ञानुष्ठानावृत्तिद्वारेण सर्वेषामेव यजमानानामुपकार इत्यभिमायेणोप-पद्यत एवेति नेदं वाक्यं भूमिकोक्तार्थलाभे मानम्।
- (४) किश्च। भोजनादाविष कथिश्चत्परार्थत्वस्य सन्वादेवमर्थापने परार्थपदोपा-दानस्यैव ब्यवच्छेद्यविरहेण नैरर्थक्यं स्यात्।
- (५) अन्यच । उक्तसूत्रस्यैतदर्थाङ्गीकारे "उत्पत्तेश्वातत्मधानत्वा" दिति तदुत्तर-सूत्रानुत्थानप्रसङ्गो दुर्बार एव, सङ्गतिबिरहात् ।

॥ भाषा॥

भी जाय तो इतने मात्र से वह काम परार्थ नहीं कहा जाता, जैसे अपने गृहद्वार मात्र की शोभा और प्रकाश के लिये दीप का जलाना, इतने मात्र से परार्थ नहीं कहा जाता कि उस दीप के प्रकाश से गली में चलने वालों का उपकार भी होता है। ऐसे ही होम को भी यक्षकर्ता अपने ही लिये करता है क्योंकि होम, यज्ञ का अङ्ग है और यज्ञ, 'स्वर्गकामो यज्ञत' आदि वैदिक विधिवाक्यों के अनुसार यजमान ही के लिये किये जाते हैं। और 'तथैव यज्ञात्' यह ऐतरेय ब्राह्मणवाक्य (जिस को स्वामी ने लिखा है) भी किसी कम का बिधान नहीं करता किन्तु यज्ञ के उस फल का अनुवाद मात्र करता है जो कि उस यज्ञ से प्रसङ्गतः हो जाता है।

खं०—(३) पूर्बोक्त ब्राह्मणवाक्य में 'होता' नामक ऋतिक् का 'एवं बित्' (ऐसा जानने वाला) कहा है इस से यही तात्पर्य निकल सकता है कि 'हाता' के ज्ञान से सब लोगों का उपकार होता है अर्थात् जो ही उस से यज्ञ कराता है उसी को उस यज्ञ का ठीक फल होता है निदान उक्तवाक्य के अनुसार स्वामी ने जिस प्रकार के लोकोपकार को यज्ञों का फल बतलाया है वह भी ठीक नहीं है।

खं०—(४) खामी के कथनानुसार यदि यज्ञों को परार्थ माना जाय तो उसी प्रकार से भोजन आदि सभी काम परार्थ हो जायंगे क्योंकि भोजन आदि यद्यपि अपने ही तृप्ति आदि फलों के लिये किये जाते हैं तथापि पुरुष उन (भोजन आदि) के द्वारा बलवान हो कर पराया उपकार करता ही है तो ऐसी दशा में खार्थ कियाओं की अपेक्षा यज्ञों में बिशेष ही क्या है जिस से वे परार्थ कहे जाय, इस रीति से सूत्र में 'परार्थ' शब्द ब्यर्थ ही हो जायगा।

खं - ५) 'द्रव्यसँस्कारं दस सूत्र के स्वाम्युक्त अर्थ में यह भी दोष है कि उस के अनन्तरोक्त 'उत्पत्तेश्चातत्प्रधानत्वात्' ॥२॥ इस सूत्र का उत्थान ही नहीं होगा क्योंकि इस का यह अक्षरार्थ है कि उत्पत्तिवाक्य में पुरुष प्रधान नहीं है इस से फल्श्रुति अर्थवाद है। यहां यह बात स्पष्ट है कि इस अर्थ के साथ स्वामी के कहे हुए पूर्वसूत्रार्थ का कोई सम्बन्ध नहीं है इस से यह सूत्र ही असङ्गत हो जायगा।

(६) किश्च । चतुर्थं छक्षणं हि प्रयोगलक्षणम् तत्राप्ययं फरुचिन्ताचरणो यस्येदः मादिमं सूत्रम्।अत्र चरणे चोनचत्वारिंजतसूत्राणि, अष्टादशचाधिकरणानि । तत्र चैकस्यास्य सूत्रस्यैवं स्वेच्छयोच्छृङ्कलार्थकरणे स्पष्टमेव प्रसजन्त्या अपरेषां सूत्राणामसङ्गतेरपाकरणाय तेषां सूत्राणामर्थाः सङ्गतयः प्रयोजनानि चान्यान्यानि भूमिकाविधायिनोऽवश्यवाच्यान्याः पद्यन्ते । अन्यथा तेषामानर्थक्यमसङ्गतत्वमप्रयोजनकत्वं च स्यात् । तानि च भूमिकाः भृता नोक्तानिगति प्रतितत्ततसूत्रमुक्तदोषत्रयाबृत्तः । तथाच यथा परेषां सूत्राणां शावराः चुक्ता एवार्थास्तयेकस्यास्य सूत्रस्यापीति भूमिकोक्तायमर्थो गगनकुसुमायते ।

(७) अपि च। एवमर्थकरणे सर्वेषामेव बैदिककर्मणां गुणकर्मताऽऽपचौ गुणप्रधानकर्म-विभागानुपपस्या तद्विभागबोधकसूत्रैः सह विरोधो दुरुपरोधएवस्यात् । भूमिकोक्तरीत्या

यज्ञमात्रस्य गुणकर्पतया प्रधानकर्मसम्भवस्यैवाभावात् तथाच-

मीमांसादर्शने अ॰ २ पा॰ १ ॥ सूत्राणि—
तानि द्वैधं गुणप्रधानभूतानि ॥ ६ ॥

॥ भाषा ॥

खं कि ने १८ मूत्र असङ्गत भी हो गये निस से कि स्वामी का ज्याख्यान बालकों की कीडा (खड़ी ईटों की पिक्क भीर असङ्गत भी हो गये निस से कि स्वामी का ज्याख्यान बालकों की कीडा (खड़ी ईटों की पिक्क भीर असङ्गत भी हो गये निस से कि स्वामी का ज्याख्यान बालकों की कीडा (खड़ी ईटों की पिक्क भीर इस का अधि असङ्गत भी हो गये निस से कि स्वामी के ज्याख्यान बालकों की कीडा (खड़ी ईटों की पिक्क भीर असङ्गत भी हो गये निस से कि स्वामी का ज्याख्यान बालकों की कीडा (खड़ी ईटों की पिक्क भीर असङ्गत भी हो गये निस से कि स्वामी का ज्याख्यान बालकों की कीडा (खड़ी ईटों की पिक्क में पिहली ईट के गिराने मात्र से पिक्क की कुल ईटों का पड़पड़ा कर गिरना हो है।

सय अर्थ, जो कि पूर्वोक्त अनेक दोषों से दुष्ट है।

खं०—(७) "द्रव्यसँस्कार०" सूत्र का खाम्युक्त अर्थ यदि माना जाय तो गुण कर्म और प्रधानकर्म ये दो विभाग कर्मों के जो जैमिनिमहर्षि के किये हुए हैं वे कदापि नहीं ही सकते क्योंकि सभी यज्ञकर्म जब जलवायु आदि की शुद्धि ही के लिये हैं तब द्रव्य के प्रधान होने से कोई यज्ञकर्म, प्रधान नहीं हुआ किन्तु सभी यज्ञ गुणकर्म ही हो गये इस रीति से खामी होने से कर्मविभाग के उन सूत्रों का विरोध दुर्वार है जो कि ये हैं कि—

पू० मी • द० अध्या० २ पा० १---

तानि द्वेषं गुणप्रधानभूतानि ॥ सू० ६ ॥

बु॰ ब्रीहीनवहन्तीत्यादौ सर्वत्र आरुयातान्तादेवापूर्वं भावाख्याताधिकरणन्यायादिति वहिः पूर्वपक्षे सिद्धान्तम। ह । तानीति । तानि आख्यातानि द्वैधं दिमकाराणि कचिद् द्रव्यं प्रति प्रधानानि च ॥ ६ ॥

येंद्रव्यं न चिकी व्यते तानि मधानभूतानि द्रव्यस्य गुणभूतत्वात् ॥ ७॥

बु॰ द्वैतिध्यं च्युत्पादयति। यिशितः । यैः आख्यातान्तैः द्रव्यं संस्कार्यत्वेन न विकीर्धिते तानि आख्यातान्तवाच्यानि कर्पाणि यागदानादीनि द्रव्यं प्रति प्रधानानि । यथा स्वर्गकामो यजेत, हिरण्यं ददातीति । तत्र द्रव्यस्य गुणभूतत्वाङ्घोकतः गुणत्वेन क्लप्तत्वात् ॥ ७ ॥

वैस्तु द्रव्यं चिकी व्यते गुणस्तत्र पतीयते तस्य द्रव्यप्रधानत्वात् ॥ ८॥

बृ० यैः कर्मभिः द्रव्यं संस्कार्यत्वेन चिकीर्ष्यते तत्र धात्वर्थः गुणः प्रतीयते तस्य धात्वर्थस्य द्रव्यप्रधानत्वात् द्रव्यं प्रधानं यस्य तत्त्वात्। यथा ब्रीहीनवहन्ति तण्डुक्रान्पिन्वर्शा त्यादी बितुषीभावरूपदृष्ट्रफलसम्भवान्नादृष्ट्रकरूपनेति भावः ॥ ८॥ बृ० ।

(८) एवं प्रत्यक्षसिद्धानां सिल्लिशुद्धादीनामेव यह्मफलत्वं नतु स्वर्गादीना मित्यभ्युपगच्छन् भूमिकाधारी प्रच्छन्नचार्वाक एव । कार्यकारणभावादौ किसाँश्रिदंशे शब्द-

॥ भाषा॥

यैर्इंडयं न चिकी वर्यते तानि प्रधानभूतानि द्रव्यस्य गुणभूतत्वात् ॥ सू० ७ ॥ यैस्तु द्रव्यं चिकी वर्यते गुणस्तत्र प्रतीयते तस्य द्रव्यप्रधानत्वात् ॥ सू० ८ ॥

अर्थ-बैदिककर्म दो प्रकार के होते हैं गुणकर्म, (द्रव्यों के अधीन कर्म) और प्रधानकर्म, (द्रव्य जिन के अधीन होते हैं)। प्रधानकर्म वे हैं जो कि द्रव्यों के संस्कार (शुद्धि) के छिये नहीं किये जाते किन्तु स्वर्गादिरूपी फल ही के लिये। जैसे 'स्वर्गकामो यजत' में याग, और 'हिरण्यं ददाति ' (सोना दे) इस में दान, इत्यादि, क्योंकि ऐसे स्थानों पर द्रव्य, कर्म ही के अधीन होते हैं।। ७।। जो कर्म द्रव्यों के संस्कार (शुद्धि) के लिये जिये जाते हैं वे गुणकर्म हैं जैसे 'ब्रीहीनवहन्ति' (धान कूटे) 'तण्डुलान् पिनष्टि' (चावल पीसे) इत्यादि में ब्रीहि तण्डुल आदि के सँरकारार्थ कूटना, पीसना, इत्यादि। क्योंकि यहां कूटना आदि किया का फल द्रव्यशुद्धि ही है न कि स्वर्गादि, इसी से क्रिया, द्रव्य के अधीन है और ब्रीह आदि द्रव्य ही प्रधान हैं ८।

खंठ-(८) 'जल बायु आदि की शुद्धिक्य प्रस्यक्ष ही फल यहां के हैं न कि स्वर्गादिक्षणी अप्रस्यक्ष फल 'इस, स्वामी के सिद्धान्त से यह निःसन्देह सिद्ध है कि स्वामी, प्रच्छन्नरूप से बार्बाक ही हैं जिन को लोकायातिक भी कहते हैं क्योंकि उन का भी यही सिद्धान्त है कि प्रस्यक्ष से अन्य और कोई अर्थात् अनुमान, शब्द आदि प्रमाण नहीं है। और पूर्वमीमांसादर्शन, तथा उत्तरमीमांसा (बेदान्त) दर्शन इन दोनों बैदिकदर्शनों के आचार्यों (जैमिनिमहर्षि, तथा उन के गुरू भगवान कुरणहैपायन ज्यास) का तो एक मुख से यही कथन है कि बेद का मुख्य तात्पर्यार्थ वही है कि जो बेद तथा उस क अनुसारी प्रमाण से अन्य किसी प्रमाण से कदापि नहीं ज्ञात हो सकता और ऐसे अर्थ में बेद ही प्रमाण है। जैसे 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादि बेदवाक्य ही स्वर्ग में स्वतन्त्रप्रमाण है और याग यद्यपि प्रसक्षसिद्ध है तथापि स्वर्ग आदि फल के प्रति याग की कारणता (कारण होना) उक्त बेदवाक्यों ही से ज्ञात होती है अर्थात् उक्त कारणता में भी उक्त

तदुपजीविषमाणातिरिक्तप्रमाणागम्ये एव प्रधान्येन प्रतिषिपादि यिषिते बेदमामाण्यस्य बैदिकदर्शनाचार्येर्बादरायणपभृतिभिर्महापिभिर्निर्णातत्वात्। तथा च मीगांसादर्शनस्य औत्पात्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धस्तस्य ज्ञानमुपदेशोऽब्यतिरेक्श्रार्थेऽनुपळ्डेष

तत्प्रमाणं बादगायणस्यानपेक्षत्वात् ॥ अ०१ पा०१। स्व०६ इति सुत्रे 'अर्थेऽनुपलब्धे तत्प्रमाणं बादरायणस्य ' इत्युक्तम् । अस्य सूत्रस्यार्थस्त

पूर्वमेव वेददुर्गसज्जने विवृतस्तत्रेवावलोकनीयः।

अतएव ॥ मी० द० अ० १ पा० ३॥

विरोधेत्वनपेक्षं स्यादसति हानुमानम् ॥ ३ ॥ इति सूत्रे वार्तिके —

भट्टपादाः —

छौकायतिकमूर्खाणां नैवान्यत्कर्म विद्यते । यावत्किश्चिददृष्टार्थं तद्दृष्टार्थं हि कुर्वते ॥ १ ॥ बैदिकान्यपि कर्माणि दृष्टार्थान्येव ते विदुः । अल्पेनापि निमित्तेन बिरोधं योजयन्ति च ॥ २ ॥

॥ भाषा॥

बिधिवाक्य ही खतन्त्रप्रमाण है और इसी कारणता का नाम धर्मत्व है जिस से याग, धर्म है। ऐसे ही 'चित्रया यजेत पशुकाम्: ' (पशुओं को चाहने वाला चित्र याग करें) इत्यादि वाक्यों में यदापि पशु और याग दोनों प्रत्यक्ष हैं तथापि पशुलाभ के प्रति, चित्रा याग की कारणता उक्त वाक्य ही से ज्ञात होती है अर्थात् उस कारणता में उक्त वाक्य ही स्वतन्त्रप्रमाण है। इस रीति से डक्त स्वर्गीदि फल, तथा उक्त प्रकार की कारणता ही बेद का मुख्य तात्पर्यार्थ है। इसी से "औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धस्तस्य ज्ञानमुपदेशोऽब्यतिरेकश्चार्थेऽनुपलब्धे तरप्रमाणं बादरायण-स्यानपेक्षत्वात्" (पू० मी० द० अध्या० १ पा० १ सू० ५) में जैमिनिमहर्षि ने "अर्थेऽनुपल्रब्धे तत्प्रमाणं बादरायणस्य " (लौकिक प्रमाणों से जिस अर्थ, अर्थात् स्वर्गादिरूपी फल और उस के प्रति कारणता आदि का ज्ञान कदापि नहीं हो सकता उस अर्थ में बैदिक बिधिवाक्य खतंन्त्र-प्रमाण हैं। यह मत बादरायण अर्थात् भगवान् कृष्णद्वैपायन का है) कह कर अपना मत पृथक् नहीं प्रकाश किया जिस से यह स्पष्ट है कि जैमिनिमहर्षि का भी यही मत है। और इस सूत्र के तात्पर्य का पूर्ण बर्णन बेददुर्गसज्जन में पूर्व हीं हो चुका है। और यह कभी नहीं ध्यान करना चाहिय कि खामी का पूर्वोक्त कथन अतिनवीन है क्योंकि लौकायतिक (चार्बाक) का मत पहिले (भगवत्पाद अर्थात् खामी शङ्कराचार्य से प्रथम पूज्यपाद भट्टपाद कुमारिलखामी के समय में) भी था जैसा कि पूर्व मीर्ट दर अध्यार १ पार ३ " बिरोधेलनपेक्ष्यं स्यादसित ह्यनुमानम् ॥३॥" इस सूत्र के भट्टवार्तिक में छ श्लोकों (जो कि संस्कृतभाग में ऊपर लिखे हैं) से यह कहा है कि

'छौकायितक ' यह प्रसिद्ध बात है कि छौकायितक मूर्खों का दूसरा काम ही नहीं है किन्तु यही काम है कि पारछौकिक फछ के देने वाछे जितने कर्म हैं उन सब को वे (छौकायितक) छौकिक ही फछ के छिये करते हैं ॥ १॥

'बैदिकान्यपि०' वे यह समझते हैं कि बैदिक कर्मों का भी जलवायुशादि आहि

तेभ्यश्वेत्प्रमरो नाम दत्ता मीमांसकैः कचित्। नच कश्चन मुश्चेयुर्धर्ममार्ग हि ते तदा ॥ ३ ॥ प्रमरं न लभनते हि यावत्कचन मर्कटाः । नाभिद्रवन्ति ते तावित्पशाचा वा स्वगोचरे ॥ ४ ॥ कचिद्दत्तंऽवकाशे हि स्वोत्पेक्षालब्धधामाभिः । जीवितुं लभते कस्तै स्तन्मार्गपिततः स्वयम् ॥ ५ ॥ तस्माल्लोकायतस्थानां धर्मनाश्चनशालिनाम् । एवं मीमांसकैः कार्यं न मनोरथपूरणम् ॥ ६ ॥ इति

(९) किश्च। क्रतुधर्मी बोध्य इत्यर्थी पि हेय एव, क्रतुधर्मत्वादित्यनुवादकहेतु-

पञ्चमीविगेधात्।

(१०) अपि च । क्रतुना यज्ञेन धर्मो जायत इति विवरणमपि निर्मूलमसम्भवग्रस्तं च, जायत इत्यस्य बोध्य इत्यनेन विरुद्धत्वात् । धर्मत्वादितिपञ्चमीविरोधाच ।

हों कि ही फल हैं न कि स्वर्गादि, (जैसा कि स्वामी का मत है)। और थोड़े से अवसर पाने पर भी बेद में बिरोध लगा देते हैं जैसे किमी से यज्ञ ठीक करते न बन पड़ा इस कारण उस को बेदोक्त फल न हुआ तो यह कहने लगते हैं कि बेदोक्त सब भिध्या ही हैं इत्यादि॥ २॥

'तेभ्यश्च०' यदि कहीं मीमांसकों ने छन को अवसर दे दिया तो वे किसी धर्ममार्ग को नांश किये बिना नहीं छोड़ सकते क्योंकि- ॥ ३॥

'प्रसरं०' बानर बा पिशाच जब तक कहीं अवसर नहीं पाते तभी तक मनुष्य पर् नहीं दौड़ते ।। ४ ।।

'क्वाचिइत्तै o' और यदि कोई अपने ही प्रमाद से उन को अवसर दे कर उन के मार्ग में जा पड़ा तो कौन ऐसा है कि जो उन के मारे अपना जीवनलाभ कर संकता है।। ५।।

'तस्मात् ' इस लिये धर्म के नाश करने वाले लौकायितकों के मनोरथ को किसी छोटे से छोटे अंश में भी पूर्ण करना मीमांसकों को कदापि नहीं उचित है।। ६।।

तसात् चार्वाकों की अपेक्षा खामी में इतना ही बिशेष है कि यह अपनी, आस्तिकों में गणना मात्र कराने के छिये बर्त्तमानसमय में प्रचिछत चार पांच मन्त्रसंहिता मात्र को बेद मान कर प्रमाण मानते हैं किन्तु उन को भी अपने मनमाने ही अथों में प्रमाण कहते हैं। परन्तु यह विशेष और भी अधिक अनर्थकारी है क्योंकि आस्तिक बन कर चार्वाक के सिद्धान्त का प्रचार कर, भोछे भाछे आस्तिकों की प्रतारणा करते हैं।

खं०—(९) द्वितीय सूत्र में 'क्रतुधर्म' का जो यह अर्थ किया है कि 'पुरुष और द्रव्य के संस्कार अर्थात् होमरूपी यज्ञ ही के द्वारा धर्म अर्थात् फल होता है' वह भी नहीं हो सकता क्योंकि उक्त सूत्र में 'क्रतुधर्मः' नहीं कहा है किन्तु 'क्रतुधर्मत्वात्' कहा है जिस में 'आत्' इस पश्चर्मा विभक्ति का 'क्योंकि' अर्थ है जो कि वैसा अर्थ करने में छूटता और अस्कृत हो जाता है।

खं० —(१०) अनन्तरोक्त अर्थ में कोई मूल भी नहीं है और उस अर्थ होने का संभव भी नहीं है तथा 'होता है' इस अर्थ का वाचक शब्द भी उक्त सूत्र में नहीं है। (११) एवम् । किन्तु पुरुषाणां चेत्यर्थोपि निर्मूख एव, 'तु' शब्द बिरुद्ध ।

(१२) किञ्च। एवमर्थकरणे "पृथक्त्वाद् ब्यवतिष्ठेते" त्युत्तरसूत्रानुत्यानापितः र्दुर्बारैव।

(१३) अपि च। भूमिकोक्तयोः सूत्रार्थयोरुभयोरेतदध्यायबिरोधब्याधिराचिकित्त्य एव । ऋत्वर्थत्वपुरुषार्थत्वयोरेव प्रयोगलक्षणे तत्र प्रकृतत्वात् तथाच ऋमेणाधिकरणद्यम् यत्र भूमिकोपन्यस्तं सूत्रद्वयम् ।

द्रच्यसंस्कारकर्मणां ऋत्वर्थत्वम् अधि॰ १ ।।

द्रध्यसंस्कारकर्मसु परार्थत्वात्कलश्चातिरर्थवादः स्यात् ॥ १ ॥

बु॰ यस्य पर्णममी जुहूर्भवति न स पापं श्लोकं शृणोतीतिः यदक्ते चक्षुरेव भ्रातृन्यस्य बुङ्क्ते इति, यत्प्रयाजानुयाजा इज्यन्ते, बर्म बा एतद्यक्तस्य क्रियतइति । किमेते फल्रमुह्ज्य विधीयन्ते उतार्थवादा इति संशये सिद्धान्तमाह । द्रव्यति । द्रव्यसंस्कारप्रधानकर्माविधिष्

खं - (११) जब उक्त पूर्वसूत्र 'द्रघ्याणां तुः' में 'तु' (तोः) शब्द है जिस से 'द्रव्यों का तो' यही अर्थ हो सकता है न कि 'द्रव्यों का भी जिस से पुरुषों का भी बोध हो। और इस सूत्र में 'च' अथवा 'अपि' (भी) शब्द नहीं है जिस से कि 'भी' अर्थ हो कर 'द्रव्यों का भी' यह अर्थ हो, जिस से कि पुरुषों का भी बोध हो कर पुरुषों के संस्कार का लाम हो तब ऐसी दशा में इस सूत्र के अक्षरों से पुरुषों का संस्कार निकालना सर्वथा अज्ञान है। है।

खं० → (१२) द्वितीय सूत्र का स्वाम्युक्त अर्थ यदि माना जाय तो 'पृथक्लाद् ब्यवतिष्ठेत' पूर्ण मीर दर अध्यार ४ पार ३ सूर ८ ॥ (ब्राह्मण के ज्योतिष्टोम का प्रकार क्षत्रिय आदि के ज्योतिष्टोम से अन्य ही है इसी से दुग्धपान का ज्ञत ज्ञाह्मण ही के ज्योतिष्टोम में होता है) इस अनन्तर सूत्र का उत्थान ही नहीं होगा क्योंकि इस के अर्थ के साथ पूर्वसूत्र के खाम्युक्त अर्थ का कोई सम्बन्ध ही नहीं हो सकता।

खं ० - (१३) खामी के कहे हुए दोनों सूत्रों के अर्थ स्वीकार करने में उक्त दोनों सूत्र असङ्गत हो कर चतुर्थ अध्याय ही से निकल जायँगे क्योंकि इस अध्याय में इसी का बिचार है कि कौन कर्म यज्ञार्थ और कौन पुरुषार्थ है। और इस दोष के स्पष्ट करने के लिये उन दो आधि-करणों का उपन्यास इस अवसर में अत्यावश्यक है जिन में कि पूर्वीक्त दोनों सूत्र हैं इस छिये वे दोनों अधिकरण संक्षेप से दिखलाये जाते हैं।

अधिकरण—(१) 'यस्य प्रणमयी जुहू भविति न स पापं ऋोकं शृणोति' (जिस की जुहू 'जिस से होम होता है' ढाक की होती है वह कदापि अपनी दुष्कीर्ति नहीं सुनता) 'गर्दे चक्षुरेव भ्रातृत्यस्य वृङ्के ' (जो आंखों में अजन देता है वह मानों शत्रु की आसें निकालता है) 'यत्प्रयाजानुयाजा इज्यन्ते, बर्म बा एतदाज्ञस्य क्रियतं' (जो प्रयाज नामक अङ्गभूत यज्ञ किये जाते हैं वहा मानों प्रधान यह को बर्म अर्थात् कवच धारण कराया जाता है जिस से कि बिह्न हरी बाणों की प्रवेश उस में न हो। । इन बेदवाक्यों में यह सन्देह है कि क्या ये वाक्य, दुष्कीर्तिनिबारण आदि फर्टी के लिये हाल की उस कार्रिक कि लिये के छिये ढाख की जुहू आदि का नवीन विधान करते हैं ? अथवा अर्थवाद हैं, अर्थात फर्ल दिख्ली कर उन की प्रशंसा मात्र करते हैं ? और इसी संश्य में निर्णयार्थ पूर्वोक्त प्रथम सूत्र यह है क्रमण उदाहृतवाक्येषु श्रुतिः फलश्रुतिः अर्थवादः परार्थत्वात् पर्णम्यीत्वादीनां प्रकरणेन

उत्पत्तेश्चातत्मधानत्वात् ॥ २ ॥

हु० ननु पुरुषमुद्दिश्य फलं न स पापं श्लोकं शृणोतीति, विधीयेत कथमर्थवाद् इत्यत आह । उत्पत्ति । उत्पत्तेः उत्पत्तिवाक्यस्य अतत्मधानत्वात् पुरुषमधानत्वाभा-बात् । अयं भावः । यस्य पर्णमयी जुहूः तस्यापापश्लोकश्रवणमिति । अत्र जुहा अपि पुरुषमुद्दिश्य श्रवणं तुल्यं यस्येति पुरुषमुहणादिति, जुहा एव फलत्वं किं नस्यादिति । अनुमानादिना तत्फलत्वस्य निरासो भाष्यादितो होयः विस्तरभयाद्योपन्यस्यते ॥२॥

पयोत्रतादीनां क्रतुधर्मत्वम् । अधि० ४ । द्रव्याणां तु क्रियार्थानां संस्कारः क्रतुधर्मत्वात् ॥ ८ ॥ खु० ज्योतिष्टोमे श्रूयते, पयोत्रतं ब्राह्मणस्येति । इदं व्रतं, पुरुषार्थं क्रत्वर्थं वेति

"द्रव्यसंस्कारकर्मसु परार्थलात् फळश्रुतिरर्थवादः स्यात्" ॥ १॥ इस का यह अर्थ है कि इन, जुहू आदि द्रव्यों के संस्कारकर्म कहनेवाले वाक्यों में जो दुष्कीित वारण आदि फलों के बोधक श्रुति 'बेद 'वाक्य अर्थता 'न स पापं स्रोकं श्रुणोति ' आदि वाक्य हैं वे अर्थवाद ही हैं क्यों कि ढाख की होना आदि जो जुहू आदि द्रव्यों के संस्कार हैं वे प्रकरण के अनुसार यज्ञ ही के उपकारी हैं अर्थात् यज्ञ ही के प्रकरण में वे कहे हुए हैं इसी से उक्त फलों के किये उन का विधान नहीं है किन्तु यज्ञ ही के लिये, और उक्त फलश्रुतिवाक्य, उक्त विधानों ही की प्रशंसा करते हैं इति।

इस सिद्धान्त पर ये प्रश्न हैं कि-

जब पुरुष के खहेश से इन वाक्यों में फल की श्रुति है तब क्यों ये वाक्य फल के लिये

और क्यों वे विधान, पुरुषों के भी उपकारी न हों ? तथा क्यों फड़ की श्रुतियां अर्थवाद हों ? इन हीं प्रश्नों के उत्तर में, उक्त सूत्र के अनस्तर यह सूत्र है कि—

" उत्पत्तेश्चातत्प्रधानलात्" ॥ २ ॥

इस का अर्थ यह है कि उक्त फल्रश्रुतियां अर्थवाद ही हैं क्योंकि इन उत्पक्ति (श्रुति) यों में बिशेषरूप से यह नहीं कहा है कि 'इन फलों के लिये इन कमों को करें 'किन्तु बर्त्तमान ही रूप से कहा है अर्थात् इन वाक्यों में 'लिङ्' आदि, विधान के शब्द नहीं हैं इति । इस पर अधिक विचार देखना हो तो शावरभाष्य आदि में देखना चाहिये।

अधि०—(४) ज्योतिष्टोमयज्ञ के प्रकरण में 'पयोत्रतं ब्राह्मणस्य' (दुग्वपानव्रत व्राह्मण का है) यह बाक्य है, इस में यह सन्देह है कि यह व्रत पुरुष का धर्म (उपकारी) है अथवा यज्ञ का ? यहां पूर्वपक्ष यह है कि यह व्रत पुरुष ही का धर्म है, क्यों कि प्रकरण यद्यपि यह का है तथापि उक्त वाक्य में पुरुष (ब्राह्मण) ही कहा गया है और प्रकरण की अपेक्षा वाक्य प्रवल होता है। इस पूर्वपक्ष के खण्डनार्थ—

"द्रव्याणां तु कियाथीनां संस्कारः क्रतुधर्मत्वात्"॥ ८॥

संशये षष्ठ्या पुरुषस्य प्रधानत्वात् पुरुषार्थमिति पूर्वपक्षे सिद्धान्तमाह । द्रव्याणामिति । सशय षष्ठ्य। पुरुषस्य नवागरमात् अर्थानां संस्कारः। क्रतुधर्मत्वात्। क्रतुधर्मत्वात्। क्रतुधर्मत्वात्। क्रतुधिक्षभौ पाठेन प्रयोगिबिधिपरिगृहीतत्वात् ॥ ७ ॥

पृथक्त्वाद् ब्यवतिष्ठेत ॥ ९ ॥

बृ० ननु ब्राह्मणस्येति किमर्थमत आह । पृथक्तवादिति । ब्राह्मणक्षत्रियादिम्योः

गाणां पृथक्त्व।द् ब्यवातिष्ठते ब्राह्मणकर्त्तके पयएवेति ॥ ९ ॥

(१४) किश्च । बायुशुद्धादेरेव यज्ञप्रयोजनत्वे "स्वर्गकामो यजेते" त्यादिविधिः वाक्यसहस्रपीडनप्रसङ्गस्योद्घटत्वात् तदिभधायिनि भूमिकाविधायिनि सुझभैव नामास्तिक-नामधारणा।

एतेन भूमिकायाम् ४८। ४९ पृष्ठयोः "अग्नेवै धूमो जायते धूमादब्भ्रमब्भ्राद्बृष्टिरमेर्ब ॥ भाषा ॥

यह पूर्वीक्त सिद्धान्तसूत्र है। इस का यह अर्थ है कि यज्ञकर्ता पुरुष के शरीरधारण और बल के लिये उक्त ब्रतरूपी संस्कार है वह यज्ञ ही का धर्म है क्यों कि यज्ञ के प्रकरण में कहा हुआ है और यदि वाक्य के अनुसार यह ब्रत, पुरुष का धर्म माना जाय तो इस के फल की कल्पना ऊपर से करनी पढ़िगी क्योंकि इस वाक्य में इस का फल नहीं कहा है, इस से गीख होगा और इस को यज्ञधर्म स्वीकार करने में प्रकरण वाले ज्योतिष्टोमयज्ञ ही का फल, इस का भी फछ है क्यों कि यह ज़त यज्ञ ही का अङ्ग है इस रीति से फल की कल्पना न करने के कारण इस पक्ष में लाघव है और गौरवरूपी दोष ही से ऐसे अवसर पर वाक्य ही दुर्बल होता है इसी से प्रकरण के अनुसार यही निर्णय है कि यह जत, क्योतिष्टोमरूपी कतु (यज्ञ) ही का धर्म है न कि पुरुषरूपी द्रव्य का। इति।

इस सिद्धान्त पर यह प्रश्न है कि यदि उक्त ज्ञत, पुरुष का धर्म नहीं है तो उक्त वास्य में 'ब्राह्मणस्य' (ब्राह्मण का 'क्यों कहा गया ? इस प्रश्न के उत्तर में-

" पृथक्लाद् ब्यवतिष्ठेत " ॥ ९ ॥

यह अग्रिमसूत्र है, इस का यह अर्थ है कि ब्यवस्था (नियम) के छिये 'ब्राह्मणस' कहा जाता है, वह ब्यवस्था यह है कि दुग्धव्रत ज्योतिष्टोमयज्ञ का अङ्ग है परन्तु उसी ज्योतिष्टोम का, जो कि ब्राह्मण ही का किया हुआ हो न कि क्षत्रिय आदि का इति।

अब यह स्पष्ट हो गया कि यदि पूर्वोक्त सूत्रों का स्वामिकृत अर्थ स्वीकार किया जाय है अपने २ उत्तर सूत्रों के साथ उन का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता और ऐसी दशा में ये होती आधिकरण हीं दूर जायँगे और इसी से पूर्वोक्त दोनों सूत्र इस अध्याय ही से बहिष्कृत हो जायँगे।

खं (१४) यदि स्वामी के मतानुसार जल बायु आदि द्रव्यों की शुद्धि ही यहीं का कि माना जाय तो 'स्वर्गकामो यजेत' आदि सैकड़ों बैदिक बिधिवाक्यों से बिरोध पड़ जायगा क्योंकि उन में खर्ग आदि ही, यज्ञों के फल साक्षात् कहे हुए हैं और ऐसे बेदबिरुद्ध कथन से यही कहती पढ़ैगा कि खामी महाशय नाम मात्र के आंस्तिक हैं। और इसी से वह भी परास्त हो गया जी हैं "इस में शतपथ ब्राह्मण का भी प्रमाण है कि [अग्ने०] जो होम करते के रूब्य भी स्वामी ने अपनी उक्त भूमिका पृष्ठ ४८। ४९ में कहा है कि-

एता जायन्ते तस्मादाह तपोत्रा इसि (श० का० ५ अ०३)। तस्माद्वा एतस्मा-हात्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः, बायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, वृधिच्या ओषधयः, ओषधिभ्योऽम्नम्, अन्नाद्रेतः, रेतसः पुरुषः, सबा एष पुरुषोऽम्नरस-मयः "। तै० उ० आनन्दबङ्घी १ अनु ० इति वाक्ययोरुक्तार्थे प्रमाणतयोपन्यासाऽपि निरस्तः । उक्तवाक्ययोरनुवादकत्या यज्ञानां तन्म त्रार्थकताया विधिवाक्यविरोधेनव ताभ्यां दुर्छभत्वात् ।

यत्तु तत्रैवोपऋमे-

''यथेश्वरेणाज्ञा दत्ता सत्यभाषणमेव कर्तव्यं नानृतिमिति यस्तामुह्यक्ष्य प्रवर्तते स पापीयान् भूत्वा क्षेत्रं चेश्वरब्यबस्थया पामोति । तथा यज्ञः कर्तव्य इतीयमप्यज्ञातेनैव दत्ताऽस्ति तामपि य उछ्छ यति सोऽपि पापीयान् सन् क्रेशवाँश्र भवति इति "।

तज्ज हास्यास्पदमेव।

तन्मते मन्त्रभागस्यैव बेद्रतया तत्र च तादृशाज्ञाबोधकपदाभावात् । ब्राह्मणभागस्य ॥ भाषा ॥

में डाले जाते हैं उन से धूआं और भाफ उत्पन्न होते हैं क्यों के अग्नि का यही स्वभाव है कि पदार्थों में प्रवेश करके उन को भिन्न २ कर देता है फिर वे हुछ के हो के बायु के साथ ऊपर आकाश में चढ़ जाते हैं उन में जितना जल का अंश है वह भाफ कहाता है और जो शुक्क है बह पृथ्वी का भाग है इन दोनों के योग का नाम धूम है। जब वे परमाणु मेघमण्डल में बायु के आधार से रहते हैं फिर वे परस्पर मिल कर बादल हो उन से बृष्टि, बृष्टि से औषधि, औषधियों से अम, अम से धातु, धातुओं से शरीर, शरीर से कर्म बनता है। और इस बिषय में तैतिरीय उपनिषद् का भी प्रमाण है कि [तस्माद्वा०] परमात्मा के अनन्त सामर्थ्य से आकाश, बायु, अग्नि, जल और पृथ्वी आदि तत्त्व उत्पन्न हुए हैं और उन में हीं पूर्वोक्त क्रम के अनुसार शरीर आदि, एरपत्ति, जीवन और प्रलय को प्राप्त होते हैं, यहां ब्रह्म का नाम अन्न, और अन्न का नाम ब्रह्म भी है क्यों कि जिस का जो कार्य है वह उसी में मिलता है वसे ही ईश्वर के सामर्थ्य से जगत् की तीनों अवस्थाएं होती हैं और सब जीवों के जीवन का मुख्य साधन है इस से अन्न को न्रह्म कहते हैं जब होम से बायु, जल और औषधि आदि शुद्ध होते हैं तब सब जगत् को सुख और अशुद्ध होने से सब को दु:ख होता है इस से इन की शुद्धि अवस्य करनी चाहिये"।

क्यों कि शतपथ और तैतिरीय के दोनों वाक्यों में कोई छिडादिरूपी शब्द, विधान करने वाला जब नहीं है तब वे लोकसिद्ध अर्थ के अनुवादक ही हैं इसी से वे बैदिक बिधिवाक्यों की अपेक्षा दुर्बल हैं तो एसी दशा में उन का यह अर्थ नहीं हो सकता कि जल बायु आदि की शुद्धि ही यज्ञों का फल है, क्योंकि इस अर्थ में खर्गादिरूपी फलों के प्रतिपादक 'खर्गकामो यजेत' हिलादि विधिवाक्यों से विरोध दुवार ही हो जायगा। ऐसे ही अपनी उक्त भूमिका के पृष्ठ ५० में, "जैसे इश्वर ने सत्यभाषणादिधर्म के ब्यवहार करने की आज्ञा दी है मिध्याभाषणादि की नहीं, जो इस आज्ञा से उलटा काम करता है वह अत्यन्त पापी होता है और ईश्वर की न्यायब्यवस्था से इस को छेरा भी होता है वैसे ही ईश्वर ने मनुष्यों को यज्ञ करने की आज्ञा दी है इस को जो नहीं करता वह भी पापी हो कर दु:ख का भागी होता है "। जो यह छिखा है, वह भी अज्ञान ही का

षेदत्वे सिद्धान्तपक्षेऽपि तत्मकरणे पूर्वो कृतेऽन्नेव मन्त्राणा विभाषायकमात्रताया निर्णाताया विभाषात्। यदिष तत्र-

यदि होमकरणस्यैतत्फलमस्ति तद्धोमकरणमात्रेणैय सिद्ध्यति पुनस्तत्र पेदमम्माणां पाठः किमर्थः क्रियते । अत्र ज्र्मः । एतस्यान्यदेव फक्षमस्ति । किम् । यथा हस्तन होणे नेत्रेण दर्शनं त्वचा स्पर्शनं च क्रियते तथा बाचा वेदमन्त्रा अपि पठ्यन्ते । तत्पाठेनेश्वरः स्तुतिप्रार्थनोपासनाः क्रियन्ते । होमेन किं फल्लं भवतीत्यस्य झानं तत्पाठानु कृत्या वेदमन्त्राणां रक्षणमीश्वरस्यास्तित्वसिद्धि । अन्यच सर्वकर्मादाचीश्वरस्य प्रार्थना कार्यत्युपदेशः । यहे तु वेदमन्त्रोचारणात्सर्वत्रेव तत्पार्थना भवतीति वेदित्ययम् । कश्चिदत्राह । वेदमन्त्रोचारणं विहायान्यस्य कस्यचित्पाठस्तत्र कियेत तदा किं दृषणमस्तीति । अत्रोच्यते । नान्यस्य पाठे कृते सत्येतत्प्रयोजनं सिध्यति । कृतः । ईश्वरोक्ताभावात्, निरतिशयसत्यिषरहाच । यद्यत्वत्त्रयोजनं सिध्यति । कृतः । ईश्वरोक्ताभावात्, निरतिशयसत्यिषरहाच । यद्यत्वत्वरुतं व्यद्यद्वि पत्र कचितसत्यं प्रसिद्धमस्ति तत्तत्सर्वं वेदादेव प्रसृतमिति विद्वयम् । यद्यत्वत्वरृतं सत्तदनीश्वरोक्तं वेदाद्वहिरिति च। अत्रार्थे मनुराह—त्वमेको ह्यस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयम्भवः।

॥ भाषा॥

परिणाम है क्यों कि ब्राह्मणभाग के बेद होने में पूर्वोक्त प्रमाण के अनुसार जब मन्त्रभाग, विधान ही नहीं करता और स्वामी के मत में मन्त्रभाग मात्र ही बेद है तब बेद में ईश्वर की आज़ा कहां से आयी।

स्वामी ने अपनी उक्त भूमिका के पृष्ठ ५७ में यह कहा है "प्र० होम करने का जो प्रयोजन है सो ता केवल होम से ही सिद्ध होता है। फिर वहां बेदमन्त्रों के पढ़ने का क्या काम है। ए०-उन के पढ़ने का प्रयोजन कुछ और ही है। प्र०-वह क्या है ?। उ०-जैसे हाथ से होन करते, आंख से देखते, और त्वचा से स्पर्श करते हैं वैसे ही बाणी से बेद्मन्त्रों को भी पढ़ते हैं क्यों कि छन के पढ़ने से बेदों की रक्षा, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना होती है तथा होन से जो २ फल होते हैं उन का सारण भी होता है बेदमन्त्रों के बार २ पाठ करने से कण्ठश रहते हैं और ईश्वर का होना भी विदित होता है कि कोई नास्तिक न हो जाय, क्योंकि ईश्वर की प्रार्थनापूर्वक ही सब कर्मी का आरम्भ करना होता है सो बेदमन्त्रों के उच्चारण से यह में तो खस की प्रार्थना सर्वत्र होती है इस छिये सब उत्तम कर्म बेदमन्त्रों ही से करना डिचत है "तथा पृष्ठ ५८ "प्र०-यज्ञ में बेद्मन्त्रों को छोड़ दूसरे का पाठ कर तो क्या दे। ष है १ ६०-अन्य के पाठ में यह प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता ईश्वर के बचन से जो सत्य प्रयोजन सिद्ध होता है सो धान्य के वचन से कभी नहीं हो सकता क्योंकि जैसा ईश्वर का वचन सर्वथा भ्रान्शिरहित सरा होता है वैसा अन्य का नहीं और जो कोई बेदों के अनुकूछ अर्थात् आस्मा की छुद्धि आप्तप्रकर्षों के प्रन्थों का बोध और उन की शिक्षा से बेदों को यथावत् जान के कहता है उस का भी बचत सत्य ही होता है और जो केवल अपनी बुद्धि से कहता है वह ठीक २ नहीं हो सकता इस से यह निश्चय है कि जहां २ सत्य दीखता और सुनने में आता है वहां २ बेदों में से ही फैला है और जो २ मिथ्या है सो २ बेद से नहीं किन्तु वह जीवों ही की कल्पना से प्रसिद्ध हुआ है क्योंकि जो ईश्वरोक्त प्रनथ से सत्य प्रयोजन सिद्ध होता है सो दूसरे से कभी नहीं हो सकता। इस विषय में मतु का प्रमाण है कि [लमें] मनुजी से ऋषि लोग कहते हैं कि स्वयम्भू जी अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य कार्यतत्त्वार्थवित्प्रभो॥१॥अ०१ स्हो०३॥ चातुर्वण्यं त्रयो स्नोकाश्चत्वा-रश्चाश्रमाः पृथक् । भूतं भव्यं भविष्यच सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति॥१॥ विभात्तं सर्वभूतानि वेद्शास्त्रं सनातनम्। तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥३॥ अ०१२ स्हो०९७,९९॥ इति । तटपि हेयमेव ।

(१) मन्त्राणामविधायकतायाः पूर्वमुक्ततया तेषां होमफळवोधकत्वायोगात् ।

(२) किश्च-किश्चदत्राहेत्यादिनाऽऽपादितो दोषोऽपि दुरुद्धर एव । तथाहि । यन्त्रद्वीश्वरोक्तत्वप्रयुक्तो लोकिकवाक्य्व्यावृत्तः को नाम विशेषः। दृष्टोऽदृष्टो वा। दृष्ट्येत् सोऽपि
सत्यार्थमितपादकत्वरूपो, माधुर्यादिगुणरूपो वा। यद्याद्यस्ति तत्समानार्थकलोकिकवाक्यापेक्षया तत्र न कोऽपि विशेष इति स दोषस्तद्वस्थ एव। यदि द्वितीयस्तदा तु न
वैयर्ध्यमात्रं कर्मसु मन्त्रपाठस्य, अपि त्वकार्यत्वमापद्येत । मन्त्रवाक्यान्यपेक्ष्याभिनवरिक्षेषु
सहसमानार्थकेषु काव्यभूतेषु—

"रत्नाकरोऽस्ति सदनं गृहिणी च पद्मा देयं किमस्ति भवते जगदीश्वराय। राधागृहीतमनसो मनसोऽस्ति दैन्यम् दत्तं मया निजमनस्तादिदं गृहाण '।। १।।

॥ भाषा ॥

सनातन बेद हैं जिन में असत्य कुछ भी नहीं और जिन में सब सत्य बिद्याओं का विधान है इन के अर्थ को जानने वाले केवल आप ही हैं ॥ १॥ [चातु०] अर्थात् चार वर्ण, चार आश्रम, भूत भविष्यत् और बर्त्तमान आदि की सब बिद्या बेदों से ही प्रसिद्ध होती हैं ॥२॥ क्योंिक [बिभर्त्ति०] यह जो सनातन बेद शास्त्र है सो सब बिद्याओं के दान से सम्पूर्ण प्राणियों का धारण और सब सुखों को प्राप्त करता है इस कारण से हम लोग उस को सर्वथा उत्तम मानते हैं और इसी प्रकार मानना भी चाहिय क्योंिक सब जीवों के लिये सब सुखों का साधन यही है "।

बह भी ठीक नहीं है क्योंकि— खं (१) जब कि ब्राह्मणभाग के बेद होने में पूर्बोक्त प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुकाः है कि मन्त्र, विधान नहीं करते, तब मन्त्रों से फल का बोध ही नहीं हो सकता।

खं?—(२) पृष्ठ ५८ के प्रश्न का उत्तर भी ठीक नहीं है क्यों कि ईश्वरोक्त होने के कारण मन्त्रों में क्या बिश्वष है ? अर्थात् क्या कोई अनुभविसद्ध बिशेष है " अथवा कोई ऐसा विशेष है जो कि अल्लाकिक है ? यदि अनुभविसद्ध बिशेष है तो क्या वह सत्य अर्थ का प्रतिपादन करना ही बिशेष है तो मन्त्र के समानार्थक लाकिक वाक्यों में भी वह बिशेष वर्तमान ही है इस कारण वन लोकिक बाक्यों की अपेक्षा मन्त्रों में कुछ भी बिशेष नहीं है इस से प्रश्लोक्त दोष ठीक ही है। और यदि वह विशेष माधुर्यादिक्षणी ही है तो इतना ही नहीं है कि मन्त्र व्यर्थ हो जायाँ किन्तु वह भी है कि लाक्यों के पाठ से अधिक फल होने के कारण यहां में मन्त्रों का पाठ ही वहीं होना चाहिये क्योंकि मन्त्रवाक्यों की अपेक्षा रस, गुण, रीति, अलंकार आदि अनेक प्रमत्कारी बिशेष, काव्यक्षणी लोकिक वाक्यों में अधिक होते हैं इस से मन्त्रों के उच्चारण की अपेक्षा उन काव्यवाक्यों ही के उच्चारण में अधिक फल है। जैसे मानसी पूजा में दार्क्षणादान का

इत्यादिवाक्येषु गुणरामणीयकातिश्वयस्य स्फुटतया तदुपेक्षाया अन्याद्यात्वात्। इत्यादिवानयञ्ज सुनाराता सर्वास्तिकसम्मतयज्ञाहृष्टाभ्युपगम एव युक्तः । अहुत्

- (त्स्वमतावरायय । (३) एवम् निरतिशयसत्यविरहाचेति हेतुर्ण्यसिद्धः अर्थवाधाभावे सत्यत्वानपायात्। निरतिशयत्वस्य च दृष्टमुपकारं प्रत्यप्रयोजकत्वात्। अदृष्टोपकारस्य च स्वयमेवानभ्युपगमात्।
- (४) अपि च "त्वमेक" इत्यादिमानवपद्यत्रयोपन्यसनमपि 'श्रुतं हरति पापानी ति न्यायेन पारायणमात्रम्, एतत्प्रकरणसंस्पर्शबिरहात्। को हि नामास्तिको बेदा असत्या इत्याद्याच्छे यं प्रत्ययमुपन्यासः किन्तु यदि मन्त्रपाठेन न किश्चिददृष्टं साध्यते तदा ॥ भाषा॥

"रक्षाकरोऽस्ति " यह छौकिक वाक्य है जो कि उपर संस्कृतभाग में छिखा है इस का यह अध है कि हे भगवन ! आप के श्वीरसमुद्ररूपी गृह में, ऐसे कोई रहा नहीं हैं जो न हों और उस्मी देवी (जिन को ब्रह्मदेव पर्यन्त सभी छोगा चाइत हैं) आप की गृहिणी ही हैं और यह भी नहीं है कि बेदयों के नाई आप, केवल धनी मात्र हैं किन्तु आप में जगत् के सृष्टि स्थिति संहार की . शक्ति भी है और छोक की मर्यादा भी यही है कि जो पदार्थ जिस के वश्य नहीं रहता वही उस को देना चाहिये अन्यथा देने का फल ही क्या है ? ऐसी दशा में में (आप का आकि अपन भक्त) जब यह बिचार करता हूं कि आप के लिये क्या दूं ? तो यही निर्णय कर पाता हूं कि "राधा देवी ने आप के मन को हरण कर लिया इस कारण आप मन से रहित हैं और मेरे समीप मन इन्हिंग है इस छिये अपना मन आप को दूं अर्थात् सदा के छिये अपना मन आप में लगा दूं ' तसात हे भगवन् मैंने आप के लिये इस अपने मनरूपी दक्षिणा को समर्पण कर दिया आप इसे ले कर सदा ही अपने में लगाये रहिये इति ।

अब ध्यान देना चाहिये कि स्वामी, दक्षिणादान के लिये किसी ऐसे बैदिक मन्त्र की कदापि नहीं दिखला सकत जिस में कि ऐसा अभिप्राय वा गुण हो तो ऐसी दशा में उन के मतानुसार दक्षिणादान के सभी मनत्र व्यर्थ हो जायगे। और यदि वैदिकमन्त्रों में सौकिक-बाक्यों की अपेक्षा अली किकशिकरूपी बिशेष माना जाय तब तो यहीं का भी अली किक फल (जो कि सब बैदिकों के सम्मत है) ही स्वीकार के योग्य है क्यों कि इस में कोई बिदेश नहीं दिखलाया जा सकता है कि जिस के अनुसार मन्त्रों की अलौकिकशक्ति मानी जाय और यहीं के अलीकिक फल न माने जायँ। तथा उक्त अलीकिकशिक के. स्वीकार से स्वामी की प्रतिज्ञा का भक्क हो जायगा।

खं - (३) जब मन्त्र के समानार्थक छौकिकवाक्य के अर्थ सत्य ही हैं तब उस बाक्य के सत्य होने में कोई सन्देह नहीं हो सकता और इस लौकिकवाक्य का अर्थ, जैसे प्रत्यक्षादिरूपी छौकिक प्रमाण से निश्चित होता है वैसे ही मन्त्र से भी, क्यों के स्वामी के मत में मन्त्रों से भी छै। किक ही अर्थ का बोध माना जाता है।

खं -- (४) इस अवसर में खामी का, मनुस्मृति के 'खमेक " आदि इन तीन की का पढ़ना भी धर्ममात्र के लिये है अर्थात् इस प्रकरण में उस की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि कौन आश्चिक यह कहेगा कि वेद असत्य है, कि जिस के ऊपर इन शोकों का पहनी

प्रत्यप्रितिन एसरीतिग्रणालकारसम्पन्नेन मितमृदुलाक्षरेणान्तर्थावितमन्त्रार्थेन च काव्येनेव पन्त्रप्रयोजनान्यथामिक्या मन्त्राणामानर्थक्यापत्तिरित्येवाक्षिपति, तत्र चाकिञ्चित्कर एवेष श्लोकत्रयोपन्यासः। इत्यलस् —

सार्क स्वर्गतरुः कोपि यस्य प्रुष्पं निशाकरः मातस्ते कीदृशा बृक्षा येषां मुक्ताफलं फलम् ॥१॥

हत्याद्यर्भकौ किमातकपिकासु भूमिकाऽऽभासोक्तिषु मानतर्कसंधुक्षितातिक्षमतीप-कटाक्षनिः क्षेपेणति दिक्।

इति बेबमामाण्ये क्षुद्रोपद्रविद्रावणम् । अथ परिखापरिष्कारः।

तदेवम्-सुसज्जितस्य बहुद्रिवद्रावितिनित्विलवाह्यक्षद्रोपद्रवकदम्बकस्य च बेददुर्गस्य क्ष्मण्राह्व सप्त परित्वा जाग्रति तत्र सुरिपतृभूसरप्रभृतिभिर्महाशयहंसैरुपसेविताभिर्थकाम- स्रमण्रानुषिक्षकैः पद्मबृन्देर्यत्रतत्रालङ्कृताभिरगाधाभिश्च धर्मप्राधान्यरूपाभिरद्भिः पूर्णा- स्तिह्योऽन्तः परित्वाः स्मृतिः, सदाचार, आत्मतुष्टिश्चेति । एवं सकललोकोपलालिताभि-र्थत्र तत्र धर्मकमलशण्डमण्डिताभिरतलस्पर्शाभिर्थकामप्राधान्यलक्षणाभिर्वाभिः पूरिता-॥ भाषा॥

सफल होगा। और प्रकृत में तो यही आक्षेप किया जाता है कि 'मन्त्रपाठ से यदि कोई अलोकिक फल नहीं होता तो मन्त्र के समानार्थक, रस रीति गुण अलंकार से संयुक्त और नये तुले कोमल अक्षर वाले नवीन काव्यवाक्य ही से मन्त्रों की अपेक्षा अधिक फल सिद्ध होने से मन्त्र, व्यर्थ ही हो जायँगे' और इस आक्षेप का समाधान खामी के मतानुसार इन ऋोकों से कुछ भी महीं हो सकता।

शौर जब खामी की नाममात्रधारी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सम्पूर्ण ही बालकोक्ति की नाई निर्मुल और नि:सार ही है तब उस पर अधिक विचार करने की आवश्यकता कुछ नहीं है जितना बिचार यहां तक किया गया उस भूमिका के लिये यही अधिक है।

यहां तक 'क्षुद्रोपद्रविद्रावण' प्रकरण समाप्त हो गना।

अब परिखापरिष्कार नामक प्रकरण का आरम्भ किया जाता है। क्ष

धर्मरानसज्जन नामक प्रथम प्रकरण में वर्णित धर्ममहाराज का बेदरूपी दुर्ग, (किला) वेददुर्गसज्जन नामक द्वितीय प्रकरण में सुसज्जित हुआ और उस से दूरवर्ती श्रुद्ध २ (कोटे २) विष्ट्व भी भगा दिये गये अब उक्त बेददुर्ग की परिखा (खाई) ओं का परिष्कार (वीच की मट्टी निकालना आदि) इस तीसरे प्रकरण में किया जाता है। उक्त बेददुर्ग की सात समुद्रों के समान अगाध और अक्षय सात परिखाएं हैं जिन में बीन परिखाएं बेददुर्ग के अभ्यन्तर (भीतर) हैं जिन का यथाक्रम स्मृति, सदाचार और आत्मतुष्टि ये तीन नाम हैं और इन में देवता, पितर, विका और क्षित्रय आदि अनेक जाति के हंसों की मण्डालियां (शुण्ड) सदा बिहार करती रहती हैं और रंग बिरंग के, अर्थ, कामकृपी बिचित्र कमलों के कमनीय कानन जहां तहां उन के बीच अपनी २ मनोहर शोभाओं से उन को सुशोभित करते रहते हैं और ये परिखाएं धर्म के प्रधान्यरूपी अतिमधुर, सर्वोपकारी अथाह जल से सदा परिवूर्ण ही रहती है। ऐसे ही बेददुर्ग की बाह्य

श्रतस्रो वहिःपरिखाः आयुर्वेदो, धनुर्वेदो, गान्धर्ववेदो, ऽर्थवेदश्रेति यानुपवेदानाच्याते । तत्र स्मृतिः वेदातिरिक्तदर्शविद्यारूपा चतुर्दशविद्या हि भोक्ता — आचाराध्याये याज्ञवल्क्येन—

युराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः

बेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥३॥ इति ।

अस्यार्थः पुराणं, ब्राह्मादि वक्ष्यमाणम्। न्यायः, गौतमीयं काणादं कापिलं पातञ्जाः लिमिति चतुर्विधम् प्रमाणादिनिरूपणवास्त्रम् गौतमादिप्रणीतम्। मीमांसा, जिमिनिप्रणीता कर्ममांमांसा, ज्ञाण्डिल्यप्रणीता भक्तिमीमांसा, बादरायणप्रणीता ब्रह्ममीमांसा च। धर्मशास्त्रं ब्रह्ममन्वादिप्रणीतम् इमान्येव चत्वार्युपाङ्गान्यावक्षते। अङ्गानि, शिक्षा कल्पो ब्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्यौतिषामिति। एतैरूपेताश्रत्वारो वेदाः। एतानि चतुर्दश्च, विद्यानां स्थामां पर्वामाधनकमे ब्रह्मज्ञानानां स्थानानि निमित्तानि धर्मस्य च निमित्तानि एतत्प्रमित एव धर्मस्य च निमित्तानि एतत्प्रमित एव धर्म इति एतासामेव धर्मस्थानत्विमत्युक्तम् इति। अत्र च न्यायमीमांसयोरेव षटदर्शनान्तभाव इत्युक्तप्रायम्। अङ्गिरसाऽपि—

स्वाभिप्रायकृतं कर्म यत्किश्चित् ज्ञानंबर्जितम् ।

क्रीडाकर्मेव बालानां तत्सर्वे निष्पयोजनम् ॥ इति ।

अत्र च ज्ञानबर्जितम् शास्त्रीयज्ञानबर्जितमिति कल्पतरुः ।

एवमर्थकामयोर्बिषयेऽप्यायुर्वेदादीनां चतस्रणामि विद्यानामावश्यकत्वम् ।

परिखाएं चार ४ हैं जिन के नाम आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थवेद हैं तथा इन को उपबंद भी कहते हैं और इन के बीच सब प्राणी बिहार करते हैं तथा इन में जहां तहां धर्महरी कमलों की मालाएं भी अपनी २ सुहावनी छायाओं से अच्छी २ छटा दिखलाती रहती हैं और वे परिखाएं अर्थ, काम, के प्राधान्यरूपी मधुर अगाध जल से सदा भरी रहती हैं। इन में प्रथम परिखा स्मृति है जो कि बेद से अतिरिक्त दशिबद्यारूपी है क्यों कि याझवरक्यस्मृति के आचाराध्याय में 'पुराणन्याय॰' ऋोक से चौदह बिद्याएं कही हैं जिस का अर्थ यह है कि पुराण १ (ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण आदि) न्याय २ (गौतम, कणाद, कपिल, पत জান্তি, इन महर्षियों का कृति, प्रमाणादि का निरूपणरूपी चार ४ दर्शनशास्त्र) मीमांसा ३ (जैमिनिमहर्षि की कर्ममीमांसा, (दर्शन) शाण्डिल्यमहर्षि की भक्तिमीमांसा और भगवान् कृष्णद्वेपायन ज्यास की ब्रह्ममीमांसा, जिस की बेदान्तद्शेन भी कहते हैं) धर्मशास्त्र ४ (ब्रह्मदेव और मनुआदि का प्रणीत) (ये चार विधार उपाङ्ग कहलाती हैं) शिक्षा ५ कल्प ६ ब्याकरण ७ निरुक्त ८ छन्द ९ ज्यौतिष १० (इन शिक्ष आदि ६ बिद्याओं को अङ्ग भी कहते हैं) इन दश विद्याओं से सहित चार ४ बेद (ऋग्वेद र यजुर्वेद २ सामबेद ३ अथर्ववेद ४) ये चौद्ह १४, बिद्या (अपने हित अहित का यथायती और ब्रह्मज्ञान)ओं तथा धर्म के स्थान 'प्रमाण' हैं इति। तथा अङ्गिरामहार्ष ने भी 'सामिप्रायक्रित के कि इस ऋोंक से यह कहा है कि शास्त्रीय ज्ञान के बिना जो कुछ कमें अपने विचारमात्र से किंग जाता है वह सब बालकों के की डाकर्म के नाई निष्फल ही है इति। ऐसे ही अर्थ और की

तदुक्तम्— यश्वाविज्ञातशास्त्रेण कदाचित्साधितं भवेत्। नैव तद्वद्वमन्तव्यं घुणोत्कीणीमवाक्षरम् ॥ इति ।

स्मृतिश्रब्दस्योक्तदशिबद्यावाचकत्वे प्रमाणं तु— आचाराध्याये—

श्रुतिः समृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः । सम्यक् सङ्कल्पजः कामो धर्ममूल्यामदं समृतम् ॥ ७॥

इति याज्ञवल्कयवचनमेव (अस्यार्थस्तु वेददुर्गसज्जनस्यारम्भे पूर्वमुक्तः)। अत्र स्मृतिगृदस्य ब्रह्ममुद्धादिप्रणीतधर्मशास्त्रमात्रपरत्वे पुराणन्यायेत्यादिना पूर्वोक्तवाक्येन सह
विरोधो दुष्परिहर एव स्यात् । तत्र चतुर्दशानामपि विद्यानां धर्मस्थानत्वस्यात्र च श्रुतिः
स्मृतिरिति पश्चानामेव विद्यानां धर्ममुलत्वस्य मितपादनात् एताहशिवरोधपरिहाराय
वात्र स्मृतिपदेन दशानामपि विद्यानां ग्रहणस्यावश्याभ्युपेयत्वात् । अतएव व्याकरणस्मृतिरित्यादिको ग्रन्थकाराणां व्यवहारोऽपि सङ्गच्छते सङ्गच्छते च स्मृतिमानाण्यानिरूपणप्रकरणे व्याकरणमामाण्यनिरूपणं जैमिनीयम् । एवं स्मृतिपदस्य विशेषतो ब्रह्ममन्वादिप्रणीतधर्मशास्त्रवाचकत्वमपि ।

शिष्य में भी आयुर्वेद आदि पूर्वोक्त चार विद्याओं की अति आवश्यकता है इसी से 'यत्त्विज्ञातं विद्याओं की अति आवश्यकता है इसी से 'यत्त्विज्ञातं वृद्ध स्त्रा से से सह कहा है कि जो काम, शास्त्र के बिना जाने किये जाते हैं व यदि दैवयोग से सिद्ध भी हो जाय तो उन का आदर नहीं करना चाहिये क्योंकि वे घुण (क्रमिबिशेष, जिस को घुन कहते हैं) से छिख गये हुए अक्षर के तुल्य हैं अर्थात् जैसे काठ (शहतीर आदि) में घुन के चालने से कदाचित् ककार आदि अक्षरों के स्वरूप की रेखा खिच जाने पर भी घुन, छेखक नहीं कहला सकता वैसे शास्त्रीयज्ञान के बिना किये हुए कम कदाचित् सिद्ध होने से उस कम का करने वाला मनुष्य आदुर्श्याय नहीं होता। इसी को घुणाक्षरन्याय कहते हैं।

प्रश्न इस में क्या प्रमाण है कि पूर्वीक्त पुराण आदि दश विद्याओं का 'स्मृति' नाम है। बरक यह इस के बिरुद्ध प्रसिद्ध ही है कि धर्मशास्त्र ही का 'स्मृति' नाम है।

ब०-आचाराध्याय का 'श्रुति: समृति: सदाचार: खस्य च श्रियमात्मन:। सम्यक्सङ्कल्पजः कामो धर्ममूलिमेदं समृतम्'।। ७।। यह याज्ञवल्क्यमहर्षि का वचन ही (जिस का अर्थ बेददुर्गसज्जन में पूर्व हैं। कहा जा चुका है) उक्त विषय में प्रमाण है क्योंकि इस वाक्य में 'स्मृति' शब्द से युद्धि केवल धर्मशास्त्रमात्र का प्रहण किया जाय तो 'पुराणन्याय०' है इस पूर्वोक्त उन्हीं के वाक्य से विरोध इस कारण पड़ जायगा कि वहां उक्त महार्ष ने पुराणादि चतुर्दश विद्याओं को धर्म में प्रमाण कहा है और यहां ५ (चारो बेद और धर्मशास्त्र) ही को। और इस विरोध के परिहार का एकमात्र यही उपाय है कि यहां 'स्मृति' शब्द से पुराणादि दश विद्याओं को प्रहण किया जाय और 'श्रुति' शब्द से चारो वेदों का प्रहण कर यहां भी चौदह विद्याओं को धर्म में प्रमाण कहा जाय। इसी से 'स्मृति' शब्द से व्याकरण आदि अङ्गों का प्रन्थकारों ने अनेक स्थानों पर व्यवहार किया है तथा जैमिनिमहर्षि ने भी पूर्वमीमांसादर्शन के स्मृतिप्रकरण में स्थानों पर व्यवहार किया है तथा जैमिनिमहर्षि ने भी पूर्वमीमांसादर्शन के स्मृतिप्रकरण में स्थानों पर व्यवहार किया है तथा जैमिनिमहर्षि ने भी पूर्वमीमांसादर्शन के स्मृतिप्रकरण में स्थानों पर व्यवहार किया है तथा जैमिनिमहर्षि ने भी पूर्वमीमांसादर्शन के स्मृतिप्रकरण में स्थान के प्रमाण्य का निरूपण किया है। और 'स्मृति' पद अद्यद्ध आदि के

तथाच अध्याये २ मनुः—

श्रुतिस्तु बेदो बिन्नेयो धर्मशास्त्रं तु बै स्मृति:। ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मी हि निर्वभौ ॥ १०॥ इति

नचैकस्य शब्दस्य सामान्यविशेषोभयवाचकत्वमदृष्टचरुम् पञ्चपञ्चब्राह्मणवाचिने। रिप गौडद्राविडपदयोब्रीह्मणविशेषवाचकत्वदर्शनात् । ननु यदि चतुर्दशैव विद्यास्ति हिं कथम्-

> अङ्गानि बेदाश्रत्वारो मीमांसान्यायाबिस्तरः । धर्मशास्त्रं पुराणं च बिद्याह्यताश्रद्धश्च ॥ आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रयः। अर्थशास्त्रं चतुर्थे तु बिद्या ह्यष्टादश्चेव ताः ॥

इत्यष्टादशिवद्या उक्ताः । कथं चायुर्वेदादीनां चतस्रणां विद्यानामि न स्मृतित्वम् न हि ताः श्रुतय इति चेन्न विद्यानामष्टादशत्वेऽपि स्वर्गापवर्गसाधनकर्मब्रह्मज्ञानैकस्थानभूतानां धर्मप्रधानानामेव विद्यानां याज्ञवल्कयेन महर्षिणा चतुर्दशतया परिगणनम् विष्णुपुराणे तु दृष्टार्थप्रधानाश्चतस्र आयुर्वेदादिविद्या अपि संकळध्याष्टादशतया परिगणनित्यविरोधात्। चतुर्दश हि विद्या अनुषक्षण यत्र तत्रार्थकामौ प्रतिपादयन्त्योऽपि प्रधान्येन धर्ममेव प्रति-पादयन्ति आयुर्वेदाद्यास्तु चतस्रोऽनुषक्षतो धर्म प्रतिपादयन्त्योऽपि प्राधान्यादर्थकामावेव ॥ माषा॥

प्रणीत धर्मशास्त्रमात्र का भी वाचक है इसी से मनु० अध्या ० २ में "श्रुतिस्तु बेदो विक्षेयो धर्मशास्त्र तु बै स्मृति: " १० (बेद को श्रुति समझना चाहिये, और धर्मशास्त्र को स्मृति) यह कहा है।

प्रश्र—यह कहां देखा गया है कि जो शब्द, सामान्य का वाचक है वही बिहा का भी बिशेषरूप से वाचक है ?

उत्तर एसा देखा जाता है जैसे सारस्वत, कान्यकुब्ज, गौड, मैथिल और उत्कर इन पांच प्रकार के ब्राह्मणों का वाचक गौड शब्द, गौड ब्राह्मणों का भी विशेषरूप से वाचक है तथा गुजर, द्राविड, महाराष्ट्र, तैलक्क और कर्णाट इन पांच प्रकार के ब्राह्मणों का वाचक द्राविड शब्द हाविड ब्राह्मणों का भी विशेषरूप से वाचक है वैसे ही पुराण १ न्याय २ मीमांसा ३ धर्मशाझ १ शिक्षा ५ करूप ६ ब्याकरण ७ निरुक्त ८ छन्द ९ और ज्यौतिष १० का वाचक स्मृति शब्द, केवल धर्मशास्त्र का भी वाचक है।

प्रश्न—यदि विद्या चौदह ही हैं तो "अङ्गानि वेदाः " "आयुर्वेदो " "इनं विष्णुपुराण के वाक्यों में पूर्वोक्त चौदह विद्याओं की गणना कर, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धवंबेद और अर्थशाई की गणना के अनुसार अठारह १८ विद्याएं क्यों कही गई ? और ये आयुर्वेद आदि चार विद्या (जिन को उपवेद कहते हैं) भी स्मृति क्यों नहीं हैं ? क्यों कि क्या ये श्रुति हैं ?

उत्त०—यद्यीप विद्याएं अठारह हैं तथापि उन में से उन्हीं चौदह ब्रिद्याओं का गार्म वर्क्यमहार्ष ने गणना किया है कि जिन में प्रधानरूप से धर्म ही का उपदेश है और बिष्णुपुराण में आयुर्वेद आदि ऐसी चार विद्याओं की भी गणना है जिन में कि प्रधानरूप से लेकिक और और काम का निरूपण है इसी से विष्णुपुराण के प्रथम वाक्य में याज्ञवल्क्यमहार्ष की कही हैं।

प्रविपादयन्तीति परस्परव्यावृत्तं स्वभावद्वयं सर्वबुधजनमसिद्धम् । अतएवोक्ते विष्णुप्राणे-अविद्या होताश्रत्तदेश '' ''विद्या हाष्टादशैव ताः'' इति द्वैराज्येन परिगणनद्धयं विरुद्धसंख्याऽ-वरुद्धमपि स्वीकृतम् अन्यथा तंत्रैव मिथोबिरोधस्य दुर्वारत्वात् । उक्ता बिरोधपरिहार-सर्णिर्यथा बिष्णुपुराणपद्मयोर्भियोबिरोधमुद्धरित तथैव पुराणन्यायेत्यादियाज्ञवल्कयवाक्य बिरोधमापि । एतत्सूचनायैव च याज्ञवल्क्यवाक्येन धर्मस्य च स्थानानीत्युक्तम् तस्य हि प्राधान्येन धर्ममतिपादकानीत्येवार्थः स्मृतिपदेन कचिद्व्यवहृतत्वाचार्थक्काममधानानां चरमाणां चतस्रणां न स्मृतित्वम् न हि श्रुतिभिन्नत्वमात्रं स्मृतित्वे प्रयोजकम्, काव्यादीनामपि स्मृतित्वप्रसङ्गात् । अतो धर्मप्रधानेऽस्मिनिबन्धे पूर्वोक्तदशविद्यात्मकस्मृतिप्रामाण्यमवसर-समार्थितमिदानीं निक्षप्यते । तथा हि-

अथ स्मृतिप्रामाण्यम् । ं मी० अ०१ पा० ३ अधि०१॥ पूर्वपक्षे-

धर्मस्य शब्दमूळत्वात् अशब्दमनपेक्ष्यं स्यात् ॥ सू० १ ॥ इति

अत्र बृत्तिः

उक्तदिशा बिध्यथवादमन्त्राणां धर्मे प्रामाण्यं व्यवस्थाप्येदानीं स्मृतिशिष्टाचाराणां धर्मे प्रामाण्यं ब्यवस्थापयन् पूर्वपक्षमाह । धर्मस्येति । धर्मस्य उक्तलक्षणलक्षितस्य शब्दः

विद्याओं को गिना कर "विद्या होताश्चतुर्दश" (ये चौदह विद्याएं हैं) कहा है और उसी के अनम्तर उक्त द्वितीय वाक्य में आयुर्वेद आदि चार विद्याओं को गिना कर यह कहा है कि 'विद्या सष्टादशैव ताः ' (ये अठारह विद्याएं प्रसिद्ध ही हैं)। तात्पर्य यह है कि विद्याओं में दो भाग हैं एक भाग में पुराण आदि वे बिद्याएं हैं जिन में प्रधानरूप से धर्म ही का निरूपण है और उन्हीं को चतुर्दश बिद्या कहते हैं तथा द्वितीय भाग में आयुर्वेद आदि वे चार बिद्याएं हैं जिन में अर्थ भौर काम ही का प्रधानरूप से निरूपण है और दोनों भागों के मिलाने पर बिद्याओं की संख्या भठारह होती है अथीत् विद्या तो अठारह अवदय हैं परन्तु धर्मविद्या चौदह ही हैं। और इसी से याज्ञवल्क्यमहार्षि ने भी 'पुराणन्याय' इस पूर्वोक्त वाक्य में उक्त चतुर्दश बिद्याओं को धर्म में प्रमाण कहा है। और यदि कहीं छायुर्वेद आदि उक्त चार बिद्याओं का भी किसी ने 'स्मृति' शब्द से ब्यवहार किया हो तो उस को ठीक नहीं समज्ञना चाहिये क्योंकि उन के 'स्मृति' होने में कोई प्रमाण नहीं है तथा स्मृति न होने मात्र से वे श्रुति भी नहीं हो सकतीं क्यों कि यदि ऐसा हों तो काव्य आदि भी श्रुति हो जायँगे क्योंकि वे भी स्मृति नहीं हैं। और यह (सनातनधर्मीद्वार) भन्थ धर्मप्रधाम ही है और श्रुति का प्रामाण्य पूर्व प्रकरणों में सिद्ध ही हो चुका है इस छिये अवसर नामक सङ्गति के अनुसार यहां अब (श्रुति के अनन्तर) पूर्वीक्त दस प्रकार की स्पृतियों के प्रामाण्य का निरूपण आरम्भ किया जाता है विचार यह है कि 'मनु आदि की निर्मित स्पृति और अनादि शिष्टाचार धर्म में प्रमाण नहीं हैं ' अथवा हैं। तद्नन्तर-

पूर्वपक्ष-

यह है। "धर्मस्य शब्दमूललादशब्दमनपेक्ष्यं स्यात्"।। १।। (पू॰ मी॰ द॰ अध्या॰ १ पा० ३) इस सूत्र का अक्षरार्थ यह है कि उक्त स्मृतियों से बिहित कर्म, और शिष्टाचार धर्म नहीं बेदः मूळं यस्य तस्वात् । अष्टकाः कर्त्तव्या इति केवलपौरुषेयवाक्यमतिपाद्यम-भाग्दम-बदमूलं अनपेक्थम् अनादरणीयं स्यात् इति।

शाव०भा० एवन्तावत्कतस्य बेदस्य प्रामाण्यमुक्तम्, अथ इदानीं यत्र न बेदिकं शावण्माण प्यापाय सार्वत, एवमयमर्थोऽनुष्ठातव्यः, एतसी च प्रयोजनाय इति।

त० बा० एवं तावद्धिध्यर्थवादमन्त्रनामधेयात्मकस्य बेदस्य धर्मे प्रत्युपयोगः साधितः। इदानीं पौरुषेयीषु स्मर्थमाणार्थावधिषु मन्वादिमणीतिनबन्धनासु स्मृतिष्विनवदेषु चाचारेषु चिन्ता। तत्र किश्चिदुदाहृत्य बिचारः कर्तव्य इत्यष्टकादिस्मरणानि मन्वादिस्थानि तद्भन्थः समर्पिताचि प्रमाणाप्रमाणविचारविषयत्वेनोदाहियन्ते । सन्देहहेतुश्राभिधीयते ॥

पारतन्त्त्र्यात्स्वतो नैषां श्रमाणत्वावधारणा । अप्रामाण्यविकल्पस्तु द्रिष्टिम्नेष विहन्यते ॥

मन्वादिवचनं स्मृत्यपेक्षं स्मृतिश्च मूलप्रमाणापेक्षिणीति न कस्यापि बेदविशर्षेक्ष-बेदवादिनामेवाबिगानेना िच्छिश्रपारम्पर्यपरिग्रहदार्ह्यमतो यतस्तु मामाण्यनिश्रयः नामामाण्याध्यवसानामिति युक्तः सन्देहः तत्र पूर्वपक्षवादी वदति नैषां मामाण्यमेवापेक्षि-तब्यमिति कृतः।

पूर्वविज्ञानविषयं विज्ञानं स्मृति रुच्यते ।

सर्वसरणानि हि प्रत्यक्षाद्यवगतेऽर्थे तदानुरूप्येणोपजायमानान्यर्थे समर्थयन्ति। तिदृष्टिकादींनां स्वगीदिसाध्यसाधनभावं पत्यक्षादीनि तावस युक्तन्तीति साधितम्। शब्दोऽपि यथाऽग्रिहोत्रादिषु मत्यक्षेणोपलभ्यते नैवमत्र ।

प्रत्यक्षानुपछन्धे च शब्दे सञ्जावकरपना । भर्मास्तित्वप्रमाणादि विप्रकृष्टतरा भवेत् ॥

हैं, क्योंकि धर्म वही कहलाता है जो बेद से बिहित हो इस कारण उक्त स्मृति और शिष्टाचार धर्म में प्रमाण नहीं हैं और शाबरभाष्य, तन्त्रवार्तिक, (जो कि ऊपर संस्कृतभाग में है) में हैं उन में इस सूत्र का जो तात्पर्य स्पष्ट कहा, अथवा सूचित किया गया है वह यह है कि उक्त सन्देह उन स्मृतियों के विषय में है कि जिन का मूलभूत बेदवाक्य प्रत्यक्षपिठत नहीं मिलता जैसे "अष्टका कर्तव्याः" (पितरों के छिये अष्टका नामक श्राद्धिकाष करें) तथा एसे शिष्टाचारों के विषय में चक्त सन्देह है जिन का कि धर्मशास्त्रों में बिशेषरूप से बिधान नहीं है। और सूत्रोक्त पूर्वपक्ष की बिबरण यह है कि स्मृति (सारण अर्थात् याद करना) उसी विषय की होती है कि जिस की अनुभव, (प्रथमज्ञान) प्रस्थ आदि प्रसिद्ध प्रमाणों के द्वारा हुआ रहता है और यह बात पूर्व ही सिद्ध हो चुका है कि अष्टका आदि यागों की खर्ग आदि फलों के प्रति कारणता (कारण होता) की प्रत्यक्ष आदि प्रमाण, कदापि विषय नहीं कर सकते। तथा वेदरूपी शब्द भी अपिहोत्र आदि ही के विषय में प्रत्यक्षरूप से मिछता है न कि अष्टका आदि के विषय में । निदान अष्टका आदि के

समाधान-यद्यपि इन स्मृतियों का मूलभूत प्रत्यक्षपिठत बेद नहीं मिलता तथापि है की हुई। स्मृति के बल से ऐसे बेदवाझ्य की कल्पना होती है कि जिस के अनुसार यह स्मृति है और स्मी

रीति से वही बेद उस स्मृति का मूळ है।

त० बा० शब्दस्य ताबदेकमेव मत्यक्षं प्रमाणम् । सचेत्तेनानवगम्यमानोऽप्यस्तीसुद्यते ततो वरं धर्मास्तित्वमेव निष्पमाणकमभ्युपगतिमिति ।
नचानुमानमप्यस्मिश्रष्टकाश्चितिकल्पने ।

न इ स्मृतिस्तया व्याप्ता दृष्टाऽन्यद्वाऽनुमापकम् ॥ यथैव धर्मे सम्बन्धादर्शनान्त्र किश्चिछिङ्गं क्रमते तथाऽष्टकादिश्चतावि । नचागमेन तद्वोधो नित्येन कृतकेन वा ।

बिस्नम्भः कृतके नास्ति नित्यो नैवौपपंचते ॥

यद्यप्यैन्द्रियकत्वादष्टकादिश्रुतीनां पौरुषेयागमगम्यत्वं सम्भवति तथापि विमलम्भभूषिष्ठत्वादश्रद्धेयवचनेषु पुरुषेष्वनध्यवसानम् । दृश्यन्ते ह्यागमिकानप्यर्थानागमिकत्वाध्यारोपेण केचिदद्यत्वेऽप्यभिद्धानाः । तेन मन्वादिभिरपि किमष्टकाश्रुतीरुपलभ्य वेदमृलत्वं स्वनिबन्धनानां प्रतिज्ञातमुतानुपलभ्येव श्रद्धेयवाक्यत्वार्थमिति दुष्टपरुषाकुलितचेतसां
॥ भाषा॥

खं • — बेद, शब्दरूपी है और शब्द में श्रोत्रेन्द्रिय मात्र प्रमाण है तो ऐसी दशा में यदि ऐसे बेद की भी कल्पना की आय जो कि श्रोत्रेन्द्रिय से ज्ञात नहीं हो सकता तो उस का यही अर्थ हैं कि अप्रामाणिक वस्तु की भी कल्पना होती है और यदि ऐसा ही स्वीकार करना है तो बिना बेद के धर्म ही की कल्पना क्यों न कर छी जाय ? बरुक यही कल्पना उचित होगी और उक्त बेद की कल्पना का कुछ भी प्रयोजन नहीं है।

समा०-जैसे धूम से अग्नि का अनुमान होता है वैसे ही उक्त स्मृतियों से बेदवाक्य

का अनुमान हो सकता है।

खं ० – अग्नि का सम्बन्ध धूम में जब प्रथम से झात रहता है तब ही धूम से अग्नि का अनुमान होता है अर्थात् पाकगृह में धूम, अग्नि और धूम में अग्नि का सम्बन्ध ये तीनों पूर्व हीं झात रहते हैं इसी से पर्वत में धूम से अग्नि का अनुमान होता है और उक्त स्मृतियों में बंद का तो सम्बन्ध प्रथम से नहीं ज्ञात है तो कैसे उक्त स्मृतियों से बेदवाक्य का अनुमान हो सकता है।

समा०—"अष्टका आदि की स्मृतियों का बेद मूळ है" इस, प्रामाणिक पुरुषों के वाक्य से अथवा मनु आदि ने अपनी स्मृतियों में यह कहा है कि "मेरी यह स्मृति बेदमूलक है" इसी से उक्त बेदवाक्य की सिद्धि (निश्चय) होती है।

खं०—यद्यपि उक्त वाक्यों से उक्त बेद की प्रवृत्ति (पता) चळ सकती है तथापि भ्रम, प्रमाद, प्रतारणा (ठगी) आदि दोषों के कारण उक्त वाक्यों पर विश्वास ही नहीं हो सकता क्यों कि वर्तमान समय में भी अवैदिक पदार्थों को बैदिक बनाने वाळे बहुतेरे पुरुष देखे जाते हैं और इस के अनुसार यह सन्देह अवद्य होता है कि क्या मनु आदि ने अष्टका आदि के विषय की श्रुतियों को सुन और पढ़ कर अपने स्मृतिग्रन्थों के श्रुतिमूळक होने की प्रतिज्ञा की है ? अथवा उक्त श्रुतियों को विना पढ़े और सुने केवळ पाठकों के विश्वासार्थ ही उक्त प्रतिज्ञा की है ? और नव अनुसाद का उक्त वाक्य इस सन्देह से दूषित हो गया तब उस पर विश्वास की आहाा कैसे की जा सकती है ! और नित्य (बैदिक) वाक्य तो कोई ऐसा है नहीं कि जो बह प्रतिपादन करें कि अप्टकादि स्मृतियों का कोई बेदवाक्य समुळाई के ection Gujarat. An eGangotri Initiative

शा • किमसौ तथैव स्यास वा? इति।यथा अष्टकाःकर्तव्याः,गुरुर तुगन्तव्यः,तहागः विने तव्यः,प्रपा प्रवर्त्तियितव्या,शिखाकर्म कर्तव्यमित्येवमाद्यः।तदुच्यते,धर्मस्य शब्दम् लत्वादशब्द

त्वयान्त्रपायवान्तात्वता च प्रामाण्यविद्यातः । नित्यस्य वचनस्यादिमत्स्यरणमूलः प्रतिपादने व्यापार एव नास्ति । नच मन्त्रालिङ्गानि स्वयं मूलत्वं प्रतिपद्यन्ते, विधिश्रन्यत्वात् । नच सर्वेषां स्मृतिप्रणायेनामिवगानं स्वयान्तरं न्यायागतं सूचयन्ति, अन्यपरत्वात् । नच सर्वेषां स्मृतिप्रणायेनामिवगानं येन पौरुषेयागमबलादुपलञ्धपूर्वश्रुतिमूलत्वं स्यात् ।

नच विज्ञायते वाक्यं कीह्यं तैनिंनरूपितस्। अर्थवादादिरूपादि पश्यामा आम्यतो बहून्।।

॥ भाषा॥

समा०—"धन्वित्रव प्रपा असि" (तुम धन्व अर्थात् निर्जालदेश की प्रपा अर्थात् पत-सला से हो) इलादि मन्त्रों में पनसला आदि की चर्चा के अनुसार यह कह सकते हैं कि पनसला आदि को विधान करने वाली स्मृतियों के मूल ये मन्त्र हैं और इसी से मनु आदि की उक्त प्रतिज्ञा (मेरी स्मृति बेदमूलक है) पर अवस्य विश्वास हो सकता है और उक्त प्रतिज्ञा के अनुसार अष्टका आदि स्मृतियों का मूलभूत उक्त बेद भी सिद्ध होता है।

खं - जब एक मन्त्रों में विधानरूप से यह नहीं कहा है कि "पनसला चलाने" किन्तु हपमा के लिये पनसला का अनुवादमात्र है और स्मृतियों में तो पनसला चलाने का विधान है तो ऐसी दशा में वह मन्त्र इस स्मृति का मूल ही नहीं हो सकता।

समा०-यद्यपि एक्त मन्त्र में पनसला का बिधान नहीं है तथापि विधान की सूचना तो है इसी से वह मन्त्र पनसला की स्मृति का मूल हो सकता है।

खं - सूचना, तात्पर्य ही का नाम है और मन्त्राधिकरण में यह सिद्ध हो चुका है कि 'मन्त्रों का किसी के विधान में तात्पर्य नहीं होता है" तो कैसे विधान की सूचना मन्त्रों से हो सकती है ?

समा - उक्त मन्त्र से प्रपा की प्रशंसा बोधित होती है उसी से इस विधि की कर्पना

होगी कि 'प्रपा को चलावे'।

(खं० १) उक्त मन्त्र का देवता ही की प्रशंसा में तात्पर्य है न कि प्रपा की प्रशंसा में, और प्रपा के खरूपमात्र का अनुवाद इस मन्त्र में है इसी से उक्त मन्त्र के अनुसार उक्त विधि की कल्पना नहीं हो सकती हां यदि उक्त मन्त्र में प्रपा की कर्तव्यता का अनुवाद (प्रपा को चळाता है) होता तो उक्त बिधि की कल्पना हो भी सकती, परन्तु वह भी उक्त मन्त्र में नहीं है। इसी से कोई मन्त्र, अष्टकादि स्मृति का मृत्र श्रुति को नहीं सिद्ध कर सकता।

(खं०२) यदि कोई प्रत्यक्षपिठत बेद, अष्टकादि स्मृतियों का मृल होता तो इस के तुरुयक्षप होने से इक्त स्मृतियां भी तुरुयक्षप ही होतीं परन्तु ऐसा नहीं है किन्तु स्मृतियां परस्प में विरुद्ध भी होती हैं जैसे—यदुच्यते द्विजातीनां शूद्रादारोपसङ्ग्रहः। न तन्मम मतं यस्मात् तन्नात्मी जायते स्वयन्'।। (स्मृतियों में न्नेविणकों के साथ शूद्रकन्या का भी बिवाह को कहा है वह मेरी मत नहीं है क्योंकि अपनी विवाहिता स्त्री में पुरुष, पुत्रक्षप से स्वयं उत्पन्न होता है अर्थात् शूर्षि मत नहीं है क्योंकि अपनी विवाहिता स्त्री में पुरुष, पुत्रक्षप से स्वयं उत्पन्न होता है अर्थात् शूर्षि के गर्भ से नेविणक का पुत्रक्षप से उत्पन्न होना अतिघृणित है) इस याज्ञवल्क्यस्मृति में क्ये स्मृतियों स्मृतियों की, उक्त विषय में निन्दा की हुई है। इस से यह निश्चित होता है कि बेद उक्त स्मृतियों का मुल नहीं है।

शा॰मनपेक्ष्यं स्यात् इति।श्वब्दलक्षणो धर्मः इत्युक्तं चोदनालक्षणोऽथीं धर्म इति, अतो नित॰यदि ह्योतदेकान्तेन गम्येत यथाबिधिवाक्यान्येव मन्वादिभिरुपल्रब्धानीति । ततः
काऽपि कल्पना स्यादचत्वेऽप्यन्यपरार्थवादादिवचनेभ्योऽपि भ्राम्यन्तः पुरुषा दृश्यन्ते ।
तेन तेष्वप्याशङ्का भवति । मृतसाक्षिकब्यवहारवच प्रलीनशालाम् स्रत्वकल्पनायां यसी
यद्रोचते स तस्प्रमाणीकुर्यात् तस्मान्नागमेनापि मृलोपल्रब्धिः ।

खपमानंत्वदृष्टेऽथें सद्दशे चानिरूपिते। नैवेष्टमिति तेनापि न मूछश्रुतिसाधनम्।। अर्थापच्याऽपि यत्किचिन्मूकामित्यवगम्यते। तचाप्रमाणपक्षेऽपि भ्रान्त्यादि न विरुद्धाते॥

यदि हि श्रुतिकल्पनेन बिना स्मृतिनोपपद्यते ततः सम्यद्धान्ना स्यात् । सम्भवति तु

स०-जैसे स्मृतियां परस्परिव रुद्ध होती हैं वैसे ही मूलभूत बेद भी परस्पर में विरुद्ध हो होगा। सं०-स्मृतियों में कमों का विभान है इसी से वही बेदवाक्य उन का मूल हो सकता है जो कि विधिक्षी ही है न कि अर्थवाद (प्रशंसा) रूपी इसी से यह निश्चय करना भी बहुत ही आवश्यक है कि विधिक्षी ही बेदवाक्यों को प्रत्यक्ष से निश्चित कर मनु आदि ने उस के अनुसार अष्टका आदि स्मृतियों को बनाया' और इस निश्चय का होना बहुत ही दुर्घट है क्योंकि स यदि ह बा आप मृषा वदित सत्यं है वाऽस्योदितं भवित य एवमेतत्स्त्रस्य सत्यं वेद' (जो पुरुष पूर्वोक्त सत्य की सत्यता को जानता है वह यदि मिध्या भी बोलता है तो वह भी उस का सत्य ही होता है) इत्यादि अर्थवादों के देखने से आज भी बहुतों को यह श्रम होता है कि 'यह वाक्य मिध्या बोलने में अपनी सम्मति देता है' तात्पर्य यह है कि विधि और अर्थवाद का विवेक (जो कि वेददुर्गसज्जन के अर्थवादप्रकरण में पूर्व हीं पूर्णे रूप से दिखला दिया गया है) करना बढी बुद्धिमानी और सावधानी का काम है इस से सब समृतियों में शङ्का हो सकती है कि 'कदाचित् यह स्मृति अर्थवाद को देख कर उसी के अनुसार बनी हो' और ऐसी दशा में जो समृतियां परस्पर में विरुद्ध नहीं हैं उन के विषय में भी विधिवाक्यक्षी वैदिकमूल की करपना जब नहीं हो सकती तब परस्पर में विरुद्ध समृतियों के विषय में उक्त मूल की करपना का तो सम्भव भी नहीं हो सकता। इस रीति से प्रतक्षपित वेद, उक्त अष्टका आदि की स्मृतियों का मूल नहीं हो सकता।

स०-यदि प्रत्यक्षपिठत बेद, उक्तस्मृतियों का मूळ नहीं है तो जो बेदशासाएं छप्त हो विकी हैं उन्हीं में उक्तस्मृतियों का मूळ रहा होगा जिस के अनुसार मनु आदि ने उक्तस्मृतियों को बनाया।

खं - यदि ऐसा है तो जिस को जो ही काम रोचक (पसंद) होगा वह उस काम के छिये स्पृतिवाक्य की रचना कर छेगा और उस को छुप्त वैदिकशाखारूपी मूल से प्रमाणित कर देगा।

स०- नहामूला प्रसिद्धिः ' (मूल के बिना कोई प्रसिद्धि नहीं होती) और अष्ट्रका आदि की स्मृतियां प्रसिद्ध ही हैं तब उन के बेदरूपी मूल की कल्पना अवश्य ही हो सकती है।

खं०-प्रसिद्धि से यही कल्पना हो सकती है कि 'इस का कोई मूळ अवश्य है' परन्तु 'अमुक ही पदार्थ इस का मूळ है' यह निश्चय, प्रमाण के बिना नहीं हो सकता और उक्तस्मृतियों CC-0. Ankur Joshi Collection Gujarat. An eGangotri Initiative

शा भू लत्वाकापेक्षितव्यमिति।नतु ये बिद्धः इत्थमसौ पदार्थःकर्तव्य इति, कथमिवते बहि च्यन्ति, अकर्तव्य एवायमिति १। स्मरणानुपपस्या, न हि अननुभूतोऽश्रुतो बाऽर्थः सर्यते। नच, अस्याबदिकस्यालौकिकस्य च स्मरणमुप्पद्यते । पूर्वविज्ञानकारणाभावादिति, याहि वन्ध्या सारेत्, इदं मे दौहित्रकृतमिति न मे दुहिताऽस्ति इति मत्वा, न जातुचिदसौ मतीयात्,

त०स्वममूलत्वेन तेनानकान्त्यादर्थापत्तेः सामान्यतो दुष्टस्य बानावकाताः। तस्माद्नुपः किथगो चरापन्नायां श्रुतौ सत्स्विप मूलान्तरेष्विभिनेतमूलाभावान्निम् लत्वाभिधानम्। नतु मे विदुरेविमितिकर्तव्यताक एवंफलकश्वासी पदार्थः कर्तव्य इति । अथवा ये कर्तब्योऽसा वितीत्थं विदुस्ते तथा विजानन्तस्तादृशाः कथमिवास्मान्विप्रक्रव्धुं न कर्त्तव्योऽसाविति वदेयुः। नन्वन्य एवं वदन्ति कर्तव्य इत्यन्य नवा कर्तव्य इत्याहुः। कथमन्यत्वं यदा तेषा-मप्येवमयं स्मर्थत इति कथित भवत्यंव प्रतिपत्तिः । अथवा य मन्वादयो बिदुरक्तव्योऽयं पदार्थ इति । कथामिव ते बिनाऽपराधेन लोकं बश्चियतुं विदिष्यन्ति कर्तव्य एवायमिति । स्मरणानुपपस्योति । ये तावन्मन्वादिभ्योऽबीश्चः पुरुषा स्तेषां यज्ज्ञानं तत्तावदनवगतः पूर्वार्थत्वान्न स्मृतिः । मन्वादीनामपि यदि प्रथमं किश्चित्प्रमाणं सम्भाव्यते ततः स्मरणं भवेन्नान्यथा। कस्मात्पुनः पुत्रं दुहितरं बाऽतिक्रम्य बन्ध्यादोहित्रोदाहरणं कृतम् ? स्थान-तुल्यत्वात् । पुत्रादिस्थानीयं हि मन्वादेः पूर्वविज्ञानं दौहित्रस्थानीयं सारणमतश्च यथा

के विषय में जब कोई मूळिविरोष, प्रमाण से सिद्ध नहीं हैं तो प्रसिद्धि के अनुसार यही सिद्ध हो सकता है कि स्वप्न ही इस का मूळ है अथीत मनु आदि ने स्वप्न में जिन कामों को देखा उन के स्मृतिवाक्यों को गढ़ मारा तो क्या इस से एक स्मृतियां प्रमाण हो सकती हैं ?

स०-जो लोग (मनु आदि) यह जानते हैं कि 'अमुक काम अमुक रोति से करने योग्य है और उस का यह फल है ' वे क्यों जान बूझ कर हम को प्रतारने के लिये ऐसा कहेंगे ! कि यह काम करने के योग्य नहीं है। अथवा जिस काम को वे समझत हैं कि 'अमुक काम नहीं करना चाहिये ' उस काम के विषय में यह कहेंगे कि 'यह काम कर्तव्य है '।

खं०-यह सब तब ही ठीक हो सकता है कि जब स्मृतियों में विधान किये हुए अशें को मनु आदि सारण कर सकते हों, क्योंकि सारण वा स्मृति उस झान को कहते हैं कि जिस की विषय पूर्व हीं अनुभव में आ चुका है अर्थात् पूर्वज्ञान ही स्मरण का कारण है तो जब उक्तस्मृतियों में कहे हुए अर्थ, इक्तस्मृति बनाने से पूर्व मनु आदि के अनुभव में आ चुके हों तब ही उन की स्मरण मनु आदि का हो सकता है और जब पूर्वोक्त रीति से कोई बेदवाक्य उक्तस्मृतियों का मूल नहीं है तब किस के बल से मनु आदि को अष्टका आदि अर्थी का अनुभव हुआ ? जिस के अनुसार उन अर्थों को सारण कर उन्हों ने उक्तस्मृतियों को बनाया। इसी अवसर पर भाष्यकार शवरस्वामी ने बन्ध्या (बांझ स्त्री) दौहित्र (बेटी का बेटा) का दृष्टान्त दिया है जिस की आशय है कि जैसे बन्ध्या को यह सारण हो कि 'यह गृह, मेरे दौहित्र का बनाया है' तद्नन्तर बन्ध्या यह बिचार कि 'बेटी तो मेर उत्पन्न हीं नहीं हुई तो दाहित्र कहां से आया' और इस विचार के अनन्तर उस को यही निश्चित हो कि उक्त सारण, झूठा ही है, वैसे ही जब उक्त रीहिं से मत आहि को एक नेत्राहर के प्राप्त के अनुका से मतु आदि को, मूक बेदवाक्य के न होने से यह अनुभव ही नहीं हो सकता कि अहिं। आदि कर्म, स्वर्गादिरूपी फल के प्रति कारण हैं' तो इस अनुभव (जो कि बेटी के तुल्य हैं) के वि शा० सम्यगेतत् ज्ञानश्मिति । एतमपि यथैव पारम्पर्येणाविच्छेदात् अयं बेदः इति अमाणमेषा स्मृतिः एवम्

पूर्वज्ञानाद्विना तस्याः प्रामाण्यं नावधार्यते ॥

इयमपि प्रमाणं भविष्यति इति । नैतद्वं, प्रत्यक्षेणोपल्रब्धत्वात् ग्रन्थस्य, नानुपपन्नं वृर्वविज्ञानम्, अष्टकादिषु त्वदुष्टार्थेषु पूर्वविज्ञानकारणाभावात् ब्यामोहस्मृतिरेव गम्यते ।

तः दुहितुरभावं परामृश्य दोहित्रस्मृति भ्रान्ति मन्यते तथा मन्वादिभिः मत्यक्षाद्यसम्भवपराम्श्रादिष्ठकादिस्मरणं मिथ्येति मन्तन्यम् यथैव पारम्पर्येणाविच्छेदादयं वेद इति वाक्यानुमानाभित्रायणोक्तम् । इतरस्त्वथस्यैवाविच्छेदस्मरणमयमाहिति मत्वा पुनिर्नम् छत्वमाह्
वेदः पुनः सविश्रेषः मत्यक्षगम्यस्तत्र घटादिवदेव पुरुषान्तरस्थम्रपळभ्य स्मरन्ति तरिपि
स्मृतम्रपळभ्यान्येऽपि स्मरन्ते।ऽन्यभ्यस्तथेव समर्पयन्तीत्यनादिता । सर्वस्यचात्भीयस्परणात्पूर्वम्रपळ्थान्येऽपि स्मरन्ते।ऽन्यभ्यस्तथेव समर्पयन्तीत्यनादिता । सर्वस्यचात्भीयस्परणात्पूर्वम्रपळ्थान्येऽपि सम्भवतीति न निर्मूळता । शब्दसम्बन्धच्युत्पत्तिमात्रमेव चेह बृद्धच्यवहाराधीनम् । पागिपि हि वेदशब्दादन्यचस्तुविळक्षणं वेदान्तरिवळक्षणं वाऽध्येतस्थम्ग्वेदादिरूपं मन्त्रबाह्मणादिरूपाणि चान्यविळक्षणान्युपळभ्यन्ते । सर्वेषां चानादयः संज्ञा इति
तद्द्रारेणोत्तरकाळपपि गम्यमानानां मत्यक्षत्वं साधितम्। नन्वष्टकादिषु पुरुषान्तरस्थेष्विप

॥ भाषा॥

भ्द्रका आदि के स्वर्गादि के प्रति कारण होने का स्मरण, (जो कि दौहित्र के तुल्य है) उन को कैसे हो सकता है। और स्वर्गादि के प्रति अष्टका आदि की कारणता (कारण होना) प्रत्यक्ष-आदि छौकिकप्रमाणों से ज्ञात ही नहीं हो सकता इस से यह भी नहीं कह सकते कि प्रत्यक्ष आदि छौकिकप्रमाणों के द्वारा मनु आदि को इक्त कारणता का अनुभव हुआ। किन्तु उक्त कारणता के अनुभव कराने की शक्ति, केवळ बेदवाक्य ही में हो सकती है और बेदवाक्य तो पूर्वोक्त युक्तियों से उक्त कारणता के किवल में हो ही नहीं सकता।

स०-अष्टका आदि के स्मृतियों की परम्परा, अनादिकाल से चली आती है अर्थात् एक स्मरण का मूल दूसरा स्मरण और दूसरे का तीसरा इस कम स उत्तर २ स्मरण में पूर्व २ स्मरण कारण है निदान एक ऋषि ने दूसरे और दूसरे ने तीसरे ऋषि की बनायी स्मृति के अनुसार अपनी २ स्मृति की रचना किया। इस से यद्यपि सब से प्रथम अनुभव का ठीक पता नहीं चळता तथापि ये स्मृतियां निर्मूल नहीं हैं और प्रमाण भी हैं। जैसे मन्त्र और ब्राह्मण के समुदाय में अनादिकाल से बेद होने की स्मरणपरम्परा चळी आती है इसी से बेदल का स्मरण निर्मूल नहीं हैं और प्रमाण भी है।

शा॰ तत् यथा, कश्चित् जात्यन्धो वदेत्, साराम्यद्दमस्य रूपविशेषस्य इति, क्रुतस्ते पूर्व शा॰ तत् यया, जायप् नात्र विवादं विनिर्दिशत् । तस्य कुतः १ जात्यन्धान्तरात्, विज्ञानम् १ इति च पर्यनुयुक्तो जात्यन्धवेषायाः विनिर्दिशत् यदि हि कर्मस्वरूपाः कर्

म् १ इति च पयगुत्रका सात्त । त्यान्तराह, त० कुम्भकारिक यादि हि कर्मस्वरूपमात्रं स्मर्थेत ततः पाकादि तदिन्द्रियैरन्याननुतिष्ठतो दृष्ट्वा.परे स्मरेयुः।यतस्तिवद्द स्वर्गादिसाध्यसाधनसम्बन्धः स्मर्यते नासौ पुरुषान्तरेषूत्पद्यमानः केश्विद्दश्यत इत्यन्धपरम्परान्यायेनाममाणता । सर्वः स्मयत नाला उर्गासर्द्र । त्या । त्या । त्या । त्या । स्यानादिव्यवहारोपन्यासेन बेदवत्प्रसिद्ध्यभिमानो भवत्यतोऽन्धपरम्परानिदर्शनम् । बेदे हि शामाण्यस्यानादित्वमिहाशामाण्यस्य । कथम्

> यो यो ग्रहीता जात्यन्धः स स्वयं नोपछब्धवान् । स्वातन्त्रयेणागृहीते च प्रामाण्यं नावतिष्ठते ॥

ताहशं चाष्टकादिसमरणम् । नच चोदना मूलभूतोपलभ्यते नचाननुभूतसम्बन्धाः Sनुमातुं शक्यते । यदि च बेदादुपलभ्य स्मृतयः प्रवर्तिताः स्युः ततोऽर्थस्मरणवदित जप-लभ्यायं मन्वादिभिः भणीत इत्यपि पारम्पर्येण स्मर्येत । स्यादेतत् । अर्थस्मरणेन कृता-र्थानां निष्पयोजनं मूलस्मरणमनादराद्भ्रष्टामिति । तद्युक्तम् । न हि यत्कृतं प्रामाणं तदेव बिस्मर्तुं युज्यते । अर्थस्मृतेः स्वतःप्रामाण्याभावात् । सर्वे श्रुरुषास्तावदेतज्ञानित ॥ भाषा ॥

का सारण करता हूं और अन्य पुरुष ने उस जनमान्ध से पूछा कि आप को उस के शुक्ररूप का ज्ञान प्रथम कैसे हुआ ? ज० अमुक जन्मान्ध के वाक्य से। तद्दनन्तर उस अन्यपुरुष ने उस द्वितीय जन्मान्ध से भी उक्त प्रश्न किया और उन्हों ने तीसरे जन्मान्ध के वाक्य का प्रमाण दिया ऐसे ही जन्मान्धों के शुक्रसारण की परम्परा यद्यपि अनादि है तथापि वह बहुत ही अप्रामाणिक है क्योंकि ग्रुक्टरूप का प्रत्यक्ष अनुभव, किसी जन्मान्य को नहीं हो सकता ऐसे ही जब अष्टका आदि कमों की खर्गादि के प्रति कारणता का अनुभव, उक्त रीति से मनु आदि को नहीं हो सकता तो मनु आदि के प्रति, वह कारणता, अन्धों के प्रति शुक्रुरूप ही के तुल्य है और उस कारणता के विषय में मनु आदि भी जन्मान्ध के समान हैं इसी से मनु आदि की सारणपरम्परा, अनिदि होने पर भी अत्रमाण ही है।

स०—यह क्यों नहीं हो सकता ? कि मनु आदि ने प्रत्यक्ष से बेदवाक्यों को अनुभव कर उन के अनुसार स्मृतियों को बनाया क्योंकि उन्हों ने सहस्रों बेदशाखाओं को पढ़ा और देखा था तो ऐसी दशा में हम अल्पज़ों को यदि वे बेदवाक्य प्रत्यक्ष नहीं हैं तो इतने मात्र से इत वाक्यों का अभाव नहीं हो सकता।

खं० —यदि ऐसा होता तो जैसे अष्टका आदि की स्मरणपरम्परा आज तक चळी आती है ऐसे ही 'अमुक २ बेदवाक्य को देख कर अमुक २ स्मृतिवाक्य को मनु आदि ने बनायां' ऐसे स्मरणों की परम्परा भी भाज तक चली भाती, जो कि नहीं है और उसी के न होते से हर्ण स्मृतियों के प्रमाण होने में इस समय विचार हो रहा है।

स०— उक्त स्मृतियों के मूलभूत बेदवाक्यों का अनन्तरोक्त सारण, जो भ्रष्ट हो गया ्र चस का यह कारण है कि मनु आदि के स्मृतिवाक्यों हीं से सब कामों के निर्वाह हो जाते हैं उस के स्मृतिवाक्यों हीं से सब कामों के निर्वाह हो जाते हैं इन बोद्देक मूळवाक्यों का आदर नहीं हुआ।

शा०एवं जात्यन्धपरम्पराथामपि सत्यां नैव जातुचित्सम्पतीयुर्विद्वांसः सम्यग्दर्शनमेत-दिति । अतो न आदर्तव्यमेवंजातीयकमनपेक्ष्यं स्यादिति ।

त्वथा बेदम्लज्ञानाद्विना प्रामाण्यं न निश्चीयत इति ते कथमिव तत्रानादरं कुर्युः।अपि च।।
येन यत्नेन मन्वाद्यैरात्मवाक्यं प्रपाठितम्।

कस्मात्तेनैव तन्मूला चोदना न समर्पिता॥

यदि हि तैर प्यर्थमात्र भेवान्ये भ्योऽधिगतं न बेदो दृष्ट इति ततस्तत्पूर्वके व्वप्ययमेष पर्यतुयोग इति निर्मूलसम्भदायत्वभसङ्गान्निर्मूलत्वान्न मुच्यते। यदि तु प्रलीनशाखामूलता कल्प्येत ततः सर्वासां बुद्धादिस्मृतीनामपि तद्द्वारं प्रामाण्यं प्रसज्यते। यस्यैव च यदि भिष्ठतं स एव तत्प्रलीनशाखामस्तके निक्षिप्य प्रमाणीकुर्यात् । अथ विद्यमानशाखागता एवते-ऽर्थास्तथापि मन्वादय इव सर्वे पुरुषास्तत एवोपलप्स्यन्ते युक्ततरा च स्वाध्यायाध्ययनिवधेः साक्षाद्धेदादेव प्रतीतिरिति स्मृतिप्रणयनवैयध्यं स्यात्। नचैतद्धिज्ञायते। कीदृशाद्धाक्यादिदं

खं०-(१) जब उन मूळ बेदवाक्यों के बिना, उक्तस्मृतियां प्रमाण ही नहीं हो सकतीं तो ऐसे आवश्यक उन बेदवाक्यों के अनादर का सम्भव ही नहीं हो सकता।

खं 0-(२) यदि उक्त बेदवाम्य मनु आदि को प्रत्यक्ष होता तो कोई कारण नहीं था कि अपने रचित उक्त स्मृतिवाक्यों में उन के मूलवाक्यों का बिशेषरूप से उल्लेख वे लोग न करते। और यह तो कह नहीं सकते कि मनु आदि को व वाक्य यद्यपि प्रत्यक्ष नहीं थे तथापि अपने २ पूर्वजों से उन वाक्यों के अर्थ ही मात्र को सुन २ कर मनु आदि, अपनी २ स्मृतियों को बनाते चछे आये, क्योंकि ऐसा स्वीकार करने में यह भी स्वीकार करना पड़ैगा कि मनु आदि के नाई उन के पूर्वजों को भी वे मूलवाक्य प्रत्यक्ष नहीं थे इसी से उन्हों ने मनु आदि को उन वाक्यों का षपदेश नहीं किया किन्तु उन का अर्थ मात्र पढ़ाया, तो ऐसी दशा में अन्धपरमारा के दृष्टान्त से गढ़ान छूटैगा। तथायह भी नहीं कह सकते कि जो बेद की शाखाएं छुप्त हैं उन्हीं में उक्त-स्मृतियों के मूलवाक्य स्थित हैं, क्यों कि तब यह भी कहा जा सकता है कि बुद्ध आदि की स्मृतियों के मूलवाक्य भी उन्हीं लुप्तशाखाओं में स्थित हैं। और इतना ही नहीं किन्तु जिसी को जो काम (उचित बा अनुचित) इष्ट होगा वही उस के छिये स्मृतिवाक्य की कराना कर यह कह सकता है कि इस का मूल बेद की लुप शाखाओं में है। और यदि बेद की वर्तमानशाखाओं में उक्त स्मृतियों के मूलवाक्य स्थित हैं तब तो उक्त समृतियों की रचना ही ब्यर्थ है क्यों। क उन्हीं मृत्रव क्यों से सब पुरुषों को उपदेश हो सकता है। बरुक ऐसी दशा में स्मृतिवाक्यों से उपदेश नहीं होना चाहिये क्योंकि 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' (बेद को पढ़ै) इस उक्त शतपथवाक्य के अनुसार उन मूछवाक्यों ही से उपदेश होना चाहिये।

स०-'यः कश्चित् कस्य चिद्धमीं मनुना परिकीर्तितः। स सर्वेऽभिहितो वेदे सर्वज्ञान-मयो हि सः' मनु० अध्या० २ ऋो० ७ (मनु ने अपने धर्मशास्त्र में किसी वर्ण वा आश्रम का जो कुछ धर्म कहा है वह सब, वेद में कहा है क्योंकि वेद सब के ज्ञानों से भरा है) इस वाक्य से यह स्पष्ट होता है कि स्मृतियां वेदमूलक हैं तब क्यों नहीं प्रमाण हो सकती हैं ?

खं०-(१) जब उक्त रीति से यह निश्चय नहीं हो सकता कि 'बिधिरूपी बेदवाक्यों हीं

त० मन्वादिभिः प्रतिपन्नं किं विधिपरादुतार्थवादरूपादिति । पश्य ॥

महताऽपि प्रयत्नेन तमिस्रायां परामृशन्। क्रुष्णशुक्रविवेकं हि न कश्चिद्धिगच्छति ॥

नच मन्वादिवचनाद्वेदमूलत्वं निश्चितुमः। ते हि विभूलमपि बिमलम्भादिहेतोहन्त्वा स्रोकं बश्चियतुमेवं वदेयुः । तस्यादममाणम् ।

अत्र सिद्धान्तः।

अपि वा कर्तृसामान्यात्ममाणमनुमानं स्यात् अ०१।पा० ३ स्०॥२॥ अत्र बृात्तः।

सिद्धान्तमाह । अपि बेति । दृढवैदिकप्रणयनान्यथाऽनुपपत्तिक्यमनुमानं स्मृतिमृतः भूतश्रुतिसस्वे स्यात् । तदित्थम् । स्मृतिः, स्वमूलभूतवेददर्शनवत्मणीता, वेदातिरिक्तगम्यो धर्मो न भवतीतिनिश्ययवता परेषां धर्मज्ञानार्थं प्रणीतत्वात्, कल्पस्त्रादिवत् । नान्वदं प्रतारकवाक्यमित्येव किं नोच्यत इत्यत आह । कर्तृसामान्यात् बैदिकानुष्ठानस्मृत्योरेकः कर्तृकत्वात् । न हि बैदिकं कर्म, धर्मबुद्ध्या अनुतिष्ठन् प्रतारको भवेदिति भावः इति।

शा०भा० अपि बा इति पक्षो ब्याबर्ट्यते । प्रमाणं स्मृतिः, बिज्ञानं हि तत्, किमिति त्त वा सर्वथा तावन्मन्वादिप्रणताः सन्निबन्धनाः स्मृतयः शेषाणि च विद्याः

के अनुसार मनु आदि ने स्मृतियों की रचना की न कि अर्थवादवाक्यों में बिधि होने के भ्रम से धर्यवादों के अनुसार ' तब उक्त मनुस्मृति के वाक्य से क्या हो सकता है ? क्योंकि वह साधारण ही रूप से बतलाता है कि स्मृतियाँ बेदमूलक हैं।

खं -(२) उक्त, मनुस्मृति के वाक्य पर भी क्या विश्वास है ? क्यों कि यह भी हो सकता है कि मनु आदि ने अपनी स्मृतियों में निर्मूल अर्थी को भी कह कर लोकव वना के लिये छन को बेदमूलक भी कह दिया हो।

तस्मात् यह सिद्ध हो गया कि अष्ठका आदि स्मृतियां धर्म के बिषय में कदाऽपि प्रमाण नहीं हो सकतीं।

सिद्धान्त।

यह है कि 'अपि वा करिसामान्यात्प्रमाणमनुमानं स्यात्'।। सू० २।। उक्त स्मृतियां उन के मूलभूत बेदवाक्यों के प्रत्यक्ष अनुभव वाले पुरुषों की रिचत हैं क्यों कि वे जिन की रिचत हैं हत (मनु आदि। को यह निश्चय था कि 'धर्म, बेद ही से ज्ञात हो सकता है' और धर्म ही के हर्प देशार्थ उन्हों ने इन स्मृतियों की रचना की है। और ये स्मृतियां बश्चकवाक्य नहीं हैं क्योंकि वैदिक कमों के जो कर्ता हैं वे ही इन स्मृतियों के कर्ता हैं अर्थात् जो केवल धर्मबुद्धि से कर्म करती है वह बश्चक नहीं होता। इस सूत्र का जो तात्पर्य शावरभाष्य और तन्त्रवार्तिक में बर्णित है वह यह है कि मनु आदि की रिचत स्मृतियों में जैनस्मृतियों की नाई अपभ्रंश शब्द कोई तहीं है किन्तु सब ही शब्द संस्कृत और शुद्ध हैं तथा वाक्यों की सङ्गति भी उन में उचित ही है और रचना भी उन की ऐसी प्रीट (गँठी) है कि जैसी अस्मदादि की रचनाएं नहीं हो सकती और शा॰ अन्यथा भविष्यति १। पूर्वविज्ञानस्य नास्ति,कारणाभावादिति चेत्। अस्या एव स्मृतेर्द्रहिन्नः कारणमनुपास्यामहे। तत्तु न अनुभवनम् अनुपपत्त्या, न हि मनुष्या इहंव जन्मिन एवंत॰ स्थानानि स्वार्थे प्रतिपादयन्त्युपळभ्यन्ते। मन्वादीनां चापत्यक्षत्व। सिद्धज्ञानम् ळप्रहर्ष्टं किश्चिदवश्यं कल्पनीयम्। तत्र च—

भ्रान्ते र तुभवाद्धाऽपि पुंवाक्याद्विप्रलम्भनात् । दृष्टानुगुण्यसाध्यत्वाचोदनैव. लघीयसी ॥

सर्वत्रैव चाद्दष्टकल्पनायां तादशं कल्पयितन्यं यद् दृष्टं न बिरुणाद्धि भ वाऽदृष्टान्तर-मासञ्जयति । तत्र भ्रान्तौ तावत् । सम्यङ्निबद्धशास्त्रदर्शनाविरोधापात्तिः सर्वछोकाभ्युपन

॥ भाषा ॥

थोड़े २ शब्दों में इतने बिषय स्पष्टरूप से उन में कहे हैं जैसा कि आधुनिक पण्डितों की रचना में दुर्छम है और यह स्वभाव केवल धर्मशास्त्रों ही का नहीं है किन्तु पूर्वोक्त पुराणादि सब बिद्याओं का है तथा शब्दों का यह स्वाभाविक शाक्ति है कि वे श्रोताओं में अपने अर्थ के बोध को उत्पन्न करते हैं वहीं स्वभाव उक्त स्मृतियों का भी है क्यों कि ये भी शब्द ही हैं। अब ध्यान देना चाहिये कि मनु आदि इस समय यदि हम को प्रत्यक्ष होते तब हम उन के हृदयस्थित, उक्त स्मृतियों के मूलभूत बेदवाक्यों को प्रत्यक्ष निश्चित कर सकते परन्तु मनु आदि तो इम को प्रत्यक्ष ही नहीं हैं इस से उन की स्मृतियों का मूळ जो मनु आदि का अनुभव है उस के मूछ कारणरूपी अदृष्ट (प्रसक्षः नहीं) पदार्थ की कल्पना हम को अनन्यगति हो कर अवश्य करना पड़ेगा और ऐसी दशा में इन अदृष्ट पांचा पदार्थों की करूपना हो सकती है। १ स्नम २ अलैकिक अनुभव ३ पुरुष-वाक्य ४ बन्धना ५ चोदना (बैदिक बिधिवाक्य) । और अदृष्ट (अप्रस्यक्षः) की कराना की यह रीति है कि जहां तक हो सकै ऐसे ही अहब्द की कल्पना करनी चाहिये कि जिस में हुए (प्रसक्ष) का बिरोध न पड़े तथा जिस अदृष्ट के कल्पना के कारण अन्य अदृष्ट की कल्पना न करनी पड़े । अब ध्यान देना चाहिये कि प्रकृत में यदि उक्त प्रथम कारण की करपना की जाय अर्थात् यह कहा जाय कि मनुः आदि को प्रथम २ यह भ्रम हुआ कि 'अष्ट्रका आदि कर्म, स्वर्गः आदि फल्लों के प्रति कारण हैं ' और उसी भ्रम के अनुसार उन को स्मरण भी वैसा ही हुआ जिसन के अनुसार उन्हों ने उक्त स्मृतियों की रचना की, तो इस कल्पना में दृष्ट का विरोध पड़ता है क्यों कि अलन्तरोक्त रीति से उन के निर्मित स्मृतिशास्त्र अत्यन्त महानुभाव और निर्दोष देखे जाते हैं तो वे कैसे अममूलक हो सकते हैं तथा असङ्ख्य महाशयगण इन स्मृतिशाखों की रचनासमय से के कर आज तक इन्हीं के अनुसार कायक्केश और द्रव्यों के ब्यय से आति किश्वासपूर्वक कमी को करते आते हैं जिस से कि इन स्मृतिशास्त्रों का प्रमाण होना अत्यस्त हढ देखा जाता है इस का भी बिरोध पहुँगा क्योंकि भ्रममूलक शास्त्र में ऐसा हट प्रामाण्य नहीं देखा जाता अर्थात् थोड़े ही दिनों में अममूलक शास्त्रों का अमरूपी पोल खुल ही जाती है और उक्त कल्पना में अनेक अहरहों

शा॰जातीयकमर्थमनुभवितं शक्नुवन्ति।जन्मान्तरानुभूतं च न स्मर्थते । ग्रन्थस्तु अनुमीयेत्, शाव्जातायकमथमनु नायस्य राज्यात्र स्वादीनामनुवर्तिता। तत्परिहाः रोपन्यासश्च मन्वादीनामित्यनेकादृष्टकरूपना । अनुभवेऽपि स एव तावदनुभवः कल्पियतन्त्रः पुनश्रेदानीन्तनमर्बेषुरुषजातिबिपरीतसामर्थ्यकल्पना मन्यादेः तचैतत् सर्वज्ञवादे निराकृतम्। पुरुषवाक्यपरम्पराऽपि अन्धपरम्परया निराकृता । न हि निष्पतिष्ठममाणात्मलाभो दृश्यते । तथा बिप्रलम्भऽपि तत्कलपना विप्रलिप्साप्रयोजनं लोकस्य च तत्र भ्रान्तिः तस्याः श्चेयन्तं कालमनुबृत्तिरित्याद्याश्रयणीयम् । उत्पन्नस्य च दृदस्य प्रत्ययस्य प्रामाण्यानिराकरः णाद् दृष्ट्विरोधः । तस्मात् सर्वेभ्यश्चादनाकल्पनैव ज्यायसी । तत्र हि तन्मात्रादृष्ट्राभ्युपः गमः । शेषास्तु महाजनपरिग्रहादयः सर्वेऽनुबिधीयन्ते । संभाव्यते च मन्वादीनां चोदना,

॥ भाषा ॥

की करपना भी करनी पड़ेगी अर्थात् यह भी करपना करनी पड़ेगी कि मनु आदि के समकालिक महाशयों ने भी उन के उक्त भ्रम को नहीं समझा बरुक उसी भ्रम को यथार्थ समझ कर उसी के धनुसार स्वयं भी कमों को किया और यदि किसी को यह भी शङ्का हुई कि मनु आदि का उक्त ज्ञान क्या भ्रम है ? तो मनु आदि ने उस शङ्का का निवारण भी उपायों से किया, इस रीति से अनेक अदृष्टों की कल्पना करनी पड़ैगी। और यदि द्वितीय अदृष्ट की कल्पना की जाय अर्थात यह कहा जाय कि मनु आदि का उक्त मूलज्ञान यथार्थ अलैकिक अनुभवरूपी था उस के अनु-सार उन का स्मरण भी यथार्थ ही था जिस के अनुसार उन्हों ने उक्त स्मृतियों की रचना की, तो भी एक तो उक्त यथार्थ अनुभवरूपी अदृष्ट की कल्पना की गयी दू सरे यह भी कल्पना अवश्य करनी पड़ैगी कि मनु आदि के ऐसी अछौकिक अनुभवशक्ति थी कि जैसी किसी आधुनिक महाशय में नहीं देखी जाती क्योंकि इस समय का कोई महाशय, उक्त स्मृतिवाक्यों के बिना, केवल अपने अनुभव से यह नहीं जान सकता कि अष्टका आदि कर्म, स्वर्गादि फल के कारण हैं। इस रीति से अनेक अदृष्टों की कल्पना करनी पड़ैगी। और पुरुषवाक्यरूपी तीसरे अदृष्ट की करुपना तो अन्धपरम्परान्याय से पूर्वपक्ष ही में खण्डित हो चुकी है । तथा बञ्चनारूपी चतुर्थ अह्ट की कल्पना में भी बञ्चना का प्रयोजन, (इस अर्थ के लिये बश्चना किया) तथा उस बञ्चना को तब से आज तक असङ्ख्य महाशयों में से किसी ने नहीं समझा, बरक अपने भ्रम से उसी बञ्चना को यथार्थ समझते आये और किसी को यदि बञ्चना की शङ्का हुई ता महाश्य लोग उचित उपायों से उस का बारण भी करते आये, इन अनेक अदृष्टों की कल्पना करती पड़ैगी । तथा उक्त समृतियों के अनन्तरोक्त दृढ प्रामाण्यरूपी दृष्ट (प्रत्यक्ष) का बिरोध भी इस कल्पना में पड़ैगा। इस रीति से आदि के चारो अदृष्टों की कल्पनाएं नहीं हो सकतीं इस लिय वैदिक विधिवाक्यरूपी पांच में अहब्ट ही की कल्पना उचित है अर्थात् मनु आदि को बैदिक बिधि वाक्यों ही से यह अनुभव प्रथम हुआ कि 'अष्टका आदि कर्म, स्वर्गादि फल के कारण हैं , और इसी अनुभव के अनुसार स्मरण भी ऐसा ही हुआ जिस के अनुसार उक्त स्मृतियों को मनु आदि ते वनाया । यह कंल्पना इस कारण से ठीक है कि बैदिक बिधिवाक्यों से अनुभव की होती प्रसास की है क्या में किसी कारण से ठीक है कि बैदिक बिधिवाक्यों से अनुभव की होती प्रत्यक्ष ही है उस में किसी अहब्द की करुपना नहीं करनी पड़ती और किसी हब्ट का बिरोध भी है उस में किसी उत्तर का किसी है उस में इंस कल्पना में नहीं पड़ता तथा मनु आदि त्रैवर्णिक थे इस से यह बहुत ही सम्भव है कि उत

शा॰ कर्तृसामान्यात्स्मृतिवैदिकपदार्थयोः । तेन उपपन्नो वेदसंयोगस्त्रैवर्णिकानाम्। नजु नोपत॰ पूर्वविज्ञानकारणत्वेन । तदर्थमेवाह 'तेनोपपन्नो वेदसंयोगस्त्रैवर्णिकानामि' ति । यानि
पुनरनुपपन्नवेदसम्भावनानां म्लेच्छादीनामतीन्द्रियार्थस्मरणानि तेषां मूलकल्पनावेलायामेव
वोदना, सम्भावनापदं नारूढेति मिथ्यात्वहेतुमूलचतुष्ट्यपारिशेष्यादप्रमाणत्वम् । सम्भावितायां पुनश्चोदनायां कारणान्तरिनषेधे कृते निर्मूलत्वासम्भवात्परिशेषितदं चोदनामूलत्वम् ।
यन्तु किमर्थं चोदना नोपलभ्यन्त इति । तन्न केचिदाहुः । नित्यानुमेयास्ता न कदाचिदुवार्यन्ते । यथा लिङ्गादिकल्पिताः । कथमनुचारितानां मूलत्वोपपत्तिरिति चेत् । नैष
दोषः । पाठाविच्छेदवत्पारम्पर्येण स्मरणात्तित्तदेः यथैव हि ग्रन्थः सम्प्रदायादिविच्छित्रोन

प्रथम उक्त अनुभव का मूल, बैदिक विधिवाक्य ही हैं क्यों के त्रेवाण को ही को बेदाध्ययन में अधिकार है और बेदिवर। धी बुद्धदेव अथवा म्लेच्छ आदि की रचित स्मृतियों के विषय में तो बैदिक विधिवाक्य रूपी मूल की सम्भावना ही नहीं हो सकती तथा प्रत्यक्षादिरूपी लौकिक प्रमाण भी उन के मूल नहीं हो सकते क्यों कि धमेरूपी विषय ऐसा ही है कि उस का प्रथम अनुभव, केवल लौकिक प्रमाणों से हो ही नहीं सकता जैसा कि पूर्व में भली भाँति कहा जा चुका है इस रीति से अनन्यगति हो कर सब को यही स्वीकार करना पड़ता है, कि अम प्रमाद और बच्चना आदि रूपी अद्युद्ध पदार्थ ही उन स्मृतियों के मूल हैं इसी लिये बुद्ध, जिन और म्लेच्छ आदि की निर्मित सब समृतियाँ अप्रामाणिक ही हैं। इस रीति से जब अद्युद्ध, जिन और म्लेच्छ आदि की निर्मित सब समृतियाँ अप्रामाणिक ही हैं। इस रीति से जब अद्युद्ध, जिन और के विषय में बैदिक विधिवाक्य हो जाता है तथा पूर्योक्तरीति के अनुसार यह भी सिद्ध हो चुका है कि अष्टकादि स्मृतियाँ सर्वथा निर्मूल नहीं हैं तो इस में अब कुछ सन्देह नहीं रहा कि इन स्मृतियाँ के मूल, बैदिक विधिवाक्य ही हैं और बेदमूलक ही होने से अद्युत्साद स्मृतियाँ धर्म के विषय में अटल प्रमाण हैं।

प्र०-एक अष्टकादि स्मृतियों के मूलभूत बेदवाक्य क्यों प्रत्यक्ष नहीं हैं ?

स०—इस समय उक्त बैदिक बिधिवाक्य नहीं प्रस्थ हैं तो क्या ? क्योंकि अष्टकादि स्मृतियों ही के अनुसार उन बिधिवाक्यों का अनन्तरोक्त रीति से अनुमान होता है।

प्र - उक्त बिाधिवाक्य, क्या कदाचित् प्रत्यक्ष भी थे ? अथवा सदा उन का अनुमान

स०—उन का सदा अनुमान ही हो तो भी क्या दोष है ? क्या अनुमान प्रमाण ही नहीं है जिस से कि उक्त बिधिवाक्यों का निश्चय ही न हो सके ? बहुत से पदार्थ एसे हैं जो कि अनुमान ही से सिद्ध होते हैं जैसे न्यायमत में पृथिवी आदि के परमाणु, साङ्क्षय के मत में मूळ-प्रकृति, योगमत में स्फोट, इत्यादि "

प्र०— उक्त मूळबदवाक्य, यदि कदाडिप प्रत्यक्ष न थे तो उन का उचारण भी कभी नहीं हैं जो क्यों कि यदि उचारण हुआ होता तब तो अन्य पुरुष बा उचारण करने वाले को वे प्रत्यक्ष हैं। होते, और जब कदाडिप उचारित नहीं हैं तो वे किसी के मूल नहीं हो सकते।

स०— जैसे वे उक्त बै.दिकवाक्य हम को प्रत्यक्ष नहीं हैं परन्तु मनु आदि की स्मृति के अनुसार हम उन को जानते हैं ऐसे ही मनु आदि को भी वे प्रत्यक्ष न थे किन्तु अपने पूर्वजों की

त॰ऽस्तित्वं भजते तथैव प्रतिज्ञया नित्यानुमयश्रुतिसंपदायाविच्छेदासादिः। तच्ययुक्तम्। त॰ अन्धपरम्परान्यायादेव । या हि चोदना न कदाचिदुचार्यते तस्याः सर्वपुरुषप्रसाहिः अन्धपरम्परान्यायादव । या १६ नार । प्रसराभावाद् दुलभतरमस्तित्वम् । तथाच स्मृतेरिप सैच बन्ध्यादौहित्रतुल्यता । लिङ्गादीनां तु नित्यत्वािकत्यमनु चितिश्रुत्यनुमानकारणत्वमिकद्भम् । तेन वरं प्रलीनश्रुत्यनुमानमेव। नच प्रछयो न सम्भाव्यते । दृश्यते हि प्रमादालस्यादिभिः पुरुषक्षयाचाल्पिब्षयत्वम् ।

। भाषा ॥

स्मृति के अनुसार वे उन वाक्यों को जानते थे और उन के पूर्वज भी अपने पूर्वज की स्मृति के सनुसार, इस रीति से अनादिपरम्परा जान चली आती है तब क्यों वे नाक्य, एक्समृतियों के मूळ नहीं हो सकते ?।

खंब--उक्त बद्वाक्य, जब शब्दरूपी हैं तब उन का निश्चय, प्रत्यक्ष के बिना नहीं हो सकता क्यों कि शब्द की सिद्धि अवण इन्द्रिय ही से होती है तो जब वे प्रत्यक्ष ही नहीं हैं और पूर्वोक्त युक्ति से उन का अनुमान भी नहीं हो सकता तब यही कहना उचित है कि वे बेदवाक्य हुई नहीं हैं और उक्त स्मृतियाँ स्वप्नादिमूळक ही हैं तथा इस रीति से यह भी कह सकते हैं कि पूर्वोक्त अन्धपरम्परा के दृष्टान्त से ये समुतियाँ अप्रामाणिक ही हैं।

स॰-जैसे 'प्रति ह वा तिष्ठान्ति य एता रात्री रुपयन्ति ' (रात्रिसत्र नामक यज्ञ को जो करते हैं के प्रतिष्ठित होते हैं) इस अर्थवाद के अनुसार 'प्राविष्ठाकामा रात्रिसन्नमाशीरन्' (प्रतिष्ठा के चाहने वाले, रात्रिसत्र को करें) इस विधिवाक्य का सदा अनुमान ही होता है अर्थात् यह बिधिवाक्य बेद में कदाऽि प्रत्यक्षपित नदीं है परन्तु प्रमाण है और इसी के अनुसार रात्रिसक किया जाता है वैसे ही उक्त स्मृतियों के अनुसार मूलबेदवाकयों का सदा अनुमान ही होता है भौर उन के अनुसार अध्दका आदि कर्म किये जाते हैं तो इस में क्या हानि है ?

खं - उक्त अर्थवाद, अनादि निर्देष बेदवाक्य है इसी से सदा ही उस के अनुसार एक विधिवाक्य का अनुमान होना ठीक ही है और अष्टकादि स्मृतियाँ तो पुरुषबुद्धि से रिवत सथा भ्रम आदि अनेक दोष रूपी मूलों की शङ्काओं से कलङ्कित हैं इस कारण इन स्मृतियों के अनुसार इक्त बेदवाक्यों का अनुमान कदाऽपि नहीं हो सकता निदान उक्त अर्थवाद के दृष्टान्त से शकत में कोई लाभ नहीं है।

स० — अष्टकादि स्मृतियों के बैदिकवाक्यरूपी मूल, उन बेदशाखाओं में हैं कि जो अब छुप्त हो गयीं और अब्दकादि स्मृतियों के अनुसार उन्हीं मूलों की कल्पना, बा अनुमान उक्त रीति से होता है ।

प्र०-उक्त बेद्शाखाओं का लोप कैसे हो गया ?

स० - पुरुषों के प्रमाद, आलस्य, अशक्ति और नाशा आदि कारणों से उक्त शालाओं का छोप होना कुछ आश्चर्य नहीं है।

प्र०—यदि ऐसा है तो छुप्तशाखाओं, में बुद्ध आदि की स्मृतियों के मूछ का अतुमान क्यों नहीं होता ?

स०—बुद्ध आदि जब वर्त्तमानशाखाओं के बिरोधी हैं और स्छेच्छगणः वेदाध्ययत के अधिकारी ही नहीं हैं तब बैदिक विधिवाक्यों के अनुसार उन की स्मृतिरूचना का सम्भव है। तहीं

शावानां विप्रकीर्णत्वातपुरुषाणां प्रमादतः। अध्यनुमिमीरन् विस्नरणमप्युपपद्यते इति, तव्नचैवं संति यत्किश्चित्पमाणमापतस्यते।शिष्टत्रैवर्णिकदृढस्मरणानुपपत्तिलभ्यत्वाच्छ्रत्यनु-शानस्य। यद्वा। विद्यमानशाखागतश्रुतिम्लत्वमेवास्तु। कथमनुपल्लिधिरिति चेत्। उच्यते। शाखानां विप्रकीर्णत्वातपुरुषाणां प्रमादतः।

नानापकरणस्थत्वात् स्मृतेम् लं न दृश्यते ॥

यतु किमर्थ बेदवाक्यान्येव नोपसंगृहीतानीति। सम्प्रदायविनाशभीतेः। विशिष्टानुपूर्व्या ब्यवस्थितो हि स्वाध्यायोऽध्येतव्यः श्रूयते। स्मात्तीश्वाचाराः केचित् कचित् कस्या
श्चिच्छाखायाम्। तत्रापि तु केचित् पुरुषमेवाधिकृत्याम्नायन्ते ये न क्रतुपकरणाम्नाताः

॥ भाषा॥

है इसी से उन स्मृतियों में मूलवेद का अनुमान नहीं हो सकता।

प्र — तब भी कोई त्रैवार्णिक अपनी मनमानी स्मृति बना कर छप्तशाखाओं में उस का मूल बतला उस को क्यों नहीं प्रमाण कर सकता ?

स० — यदि कोई असभ्य पुरुष ऐसा करें भी-तो यह विश्वास ही नहीं हो सकता कि ' उस ने लुप्तशाखाओं में अपनी स्मृति का मूल अवश्य देखा है ' तथा उस के खार्थ की पोल भी वे खुले न रहेगी।

प्र — जिन स्मृतिवाक्यों के मूल विधिवाक्य, इस समय के बर्त्तमान बेदशाखाओं में मिल सकते हैं उन स्मृतियों के बनाने का क्या प्रयोजन है ? क्यों कि उन मूलवाक्यों ही से सब काम चल सकता है।

स०-वर्त्तमानशाखाएं भी सब एकत्रित नहीं मिळतीं अथीत् जहां तहां अनेक देशों में कहीं किसी और कहीं किसी शाखा का प्रचार है और पुरुषों के प्रमाद से उन शाखाओं का एकत्रित होना बहुत कठिन है और यदि कथि चत् ये शाखाएं एकत्रित भी की जाय तो उन में उन मूळभूत विधिवाक्यों का, अर्थवादों के परिहारपूर्वक बिवेक करना बहुत ही कठिन है इस छिये उन स्मृतियों की रचना बहुत ही सप्रयोजन है।

प्र०-यदि ऐसा है तो मनु आदि ने उन मूल बैदिक बिधिवाक्यों ही को एकत्रित कर पन्यरूप से क्यों नहीं बना दियां ? क्यों नवीन स्मृतियों की रचना की ?

स० - यदि ऐसा करते तो बेदसम्प्रदाय ही का मूळीच्छंद हो जाता इसी से ऐसा

प्र०-कैसे मूलोच्छेद होतां ?

स०—ऐसे—बंद में बर्ण, पद, वाक्य और वाक्यसमूह रूपी महावाक्य जिस बिशेष कम के अनुसार अनादिकाल से ब्यवस्थित चले आते हैं उसी कम से उन के पढ़ने का बिधान 'खाध्यायोऽध्यतव्य:' इस उक्त शतपथ श्रुति से किया जाता है और सार्च (स्मृतियों में कहे हुए) आचार कोई २ किसी २ शाखा में कहीं २ हैं उन में भी कोई आचार ऐसे हैं कि जो यद्यपि यज्ञों के प्रकरण में पठित हैं तथापि यज्ञों के उपयोगी नहीं हैं किन्तु पुरुषों के साक्षात् उपयोगी हैं इस लिये मीमांसादर्शन के बिचारानुसार, उन आचारों को यज्ञ क प्रकरण से निकाल कर उन का पुरुषोपयोगी होना सिद्ध है जैसे 'यस्य व्रत्येऽहन् पत्न्यनालम्भुका स्थानामवरुष्य यजेत' (यज्ञ

ि विण्हे २

त ० केनचिनि। मित्तेनोत्कृष्यमाणाः पुरुषधर्मतां भजनते। यथा 'मलबद्दाससा सह न संबदेत्' त्वनाचान्नामत्तनारक्षण्यनाना हुए। तत्र यदि तावत्तान्येव वाक्यान्युद्धला-'तस्मान्न ब्राह्मणायावधुराद एत्यात् । अनेन च निर्देशेन अन्येऽप्यथेवाः ध्यापयेयुस्ततः क्रमान्यत्वात्स्वाध्यायविधिविरोधः स्यात् । अनेन च निर्देशेन अन्येऽप्यथेवाः दोद्धारेण विधिमात्रमधीयीरन् कर्मीपयिकमात्रं वा । तत्र वेदमलयः प्रसङ्येत । नचावश्यं मन्वादयः सर्वशाखाऽध्यायिनः । ते हि प्रयत्नेन शाखान्तराध्यायिभ्यः श्रुत्वाऽर्थमात्रं स्ववाक्यरिबिस्मरणार्थं निबधीयुः। नच वाक्यबिशेषो न ज्ञायते। यथैव हि स्मृत्तर्देहत्वा-द्धान्तिमूलत्वं नास्त्येवमर्थवादमूलत्वमपि । शक्नुवन्ति हि ते विध्यर्थवादौ बिबेक्तुम् । तत्र स्मृतेर्विध्यात्मकत्वात्प्रकृतितादात्म्यानुमानलब्धास्पदेऽर्थवादपूर्वकत्वं निष्प्रमाणकम् । अपि च। 'बेदोऽखिलो धर्ममूलं' 'स सर्बोऽभिहितो बेद' इति च स्वयमेव स्मर्तिभरात्मा बद्धाः

॥ भाषा ॥

के दिन यदि यजमान की पत्नी रजखला हो जाय तो उस को अन्य गृह में स्थापित कर यज्ञ करे। इस बेदवाक्य से जब पत्नी यजमान के गृह से निकाँछ दी गयी तब उस के साथ उस समय बात करने का कोई सम्भव नहीं है और द्रीपूर्णमास यज्ञ के प्रकरण में 'न मलवद्वाससा सह संवदेत' (रजखला स्त्री के साथ बात न करें) यह निषेध पाठित हैं तो जब पूर्व विधि के अनुसार रजखला के साथ वात न करने का सम्भव ही नहीं हैं तो दर्शपूर्णमास यज्ञ में यह निषेध व्यर्थ ही है इस छिये इस निषेध को दर्शपूर्णमास के प्रकरण से निकाल कर केवल पुरुषोपयांगी माना जाता है अर्थात् उक्त निषेध का यही तात्पर्य है कि पुरुष, यज्ञ से अन्य समय में भी रजस्वला के साथ बात न करें और यह निर्णय मीमांसाद्रीन में है इसी से मनु ने भी सामान्यरूप से 'नोद्क्ययाऽभि भाषेत ' (रजखला से सम्मुख भाषण न करें) यह निषेध कहा है। ऐसे ही अनेक उदाहरण हैं। अब ध्यान देना चाहिये कि यदि बेद से मूलभूत उन बिधिवाक्यों हीं को उद्धृत कर प्रन्थ बनाते और उसी के अध्ययन का प्रचार करते तो अनन्तरोक्त अध्ययनिविधि का विरोध अवश्य पड़ता क्योंकि बैदिक क्रम दूट जाता और उसी प्रन्थ के दृष्टान्त से अर्थवादों को छोड़ कर केवल बिधिवाक्यों ही को छोग पढ़ने पढ़ाने लगते यहां तक कि जिस को जिस कम के करने की इच्छा होती वह उसी कम के बिधिवाक्य मात्र को पढ़ कर कृतार्थ हो जाता इस रीति से बेद के अध्ययन अध्यापन के सम्प्रदाय का प्रलय ही हो जाता।

प्र०-मनु आदि ने जब यह समझा था कि धर्म के बिषय में बेद के बिना कोई वाक्य प्रमाण नहीं हो सकता तो अपने प्रत्येक स्मृतिवाक्य में उस २ के मूलभूत बैदिक विधिवाक्यों का निर्देश क्यों नहीं किया ? और बिशेषरूप से अष्टकादि स्मृतिवाक्यों (जिन का मूल प्रतिक्षणित नहीं मिलता) के मूल बैदिकबिधित्राक्यों का निर्देश उन में क्यों नहीं किया ?

स०—(१) मनु आदि भी बेद के सब शाखाओं को अवश्य पढ़े थे यह निश्चय नहीं हो सकता और यह हो सकता है । के अपनी अपिटत शाखाओं के पढ़नेवालों से अर्थमात्र सुन कर बिस्मरण न हो जाने के छिये अपने वाक्यों में उन अर्थी को बांध दिया हो। ता ऐसी दशा में अष्टकादि स्मृतियों में मनु आदि, उन के मूलवाक्यों का निर्देश कैसे कर सकते थे।

स०--(२) यद्यपि प्रत्येक स्मृतिवाक्य में बिशेषरूप से मूलवाक्य का निर्देश नहीं है तथापि 'बेद्रांऽ खिलो धर्ममूलम्' (समस्त बेद, धर्म का मूल है) 'स सर्बोऽ मिहितो बेदे' (अपनी शावतदुवपन्नत्वातपूर्वविज्ञानस्य त्रैवार्णिकानां स्परताम, विस्मरणस्य च उपपन्नत्वात् ग्रन्थातुमानमुपपद्यते इति प्रमाणं स्मृतिः । अष्टकालिङ्गाश्च मन्त्रा वेदे दृश्यन्ते, 'यां जनाः प्रतिनन्दन्ति' इत्येवमादयः । तथा पत्युपस्थितनियमानामाचार।णां दृष्टार्थत्वादेव प्रामाण्यं गुरोस्तुगमात् प्रीतो गुरुः अध्यापयिष्याति, ग्रन्थग्रन्थिभोदिनश्च न्यायान् परितुष्टो वक्ष्यति इति ।

तः समिर्पतस्त चैतिन्नयोगतस्तत्का छैः कर्तृ भिर्जु द्विकारित्वादु पछ व्यमतः निद्धं वेदद्वारं प्रामाग्यम् । यस्तु कर्तृ सामान्यात् स्वतन्त्रमेव प्रामाण्यं वेदम् छत्वं वाऽनुमानेन साध्यति तस्यार्थकामानुसारिभिर्दृष्टार्थेराचारैरनेकान्तः । श्रूयमाणश्रुत्यर्थानप्रामाण्यापत्तेश्च विरुद्धता । तस्मादर्शापत्तिरेवात्राव्याभेचागदुपचारात्पश्चान्यानादनु वानत्वेनोक्ता अस्या एव स्मृतेर्दृ दिम्न इति ।
दृष्टत्वात्कारणानुमानमथवा दृष्टत्वस्य । न हि मनुष्या इहेवति निःशेषसंस्कारिक्यदा
मरणनान्तरितत्वात्कर्भफलसम्बन्धानुसन्धानासम्भवेनाच्यते । स्मृतिवैदिकपदार्थयोः कर्तृ
सामान्यादुपपन्नो वेदसंयोगस्त्रविणिकानामिति चोदनाम् लसम्भावनापदलाभार्थं विस्मरणमप्युपयति इति । दृश्यते ह्यात्वेऽप्यर्थस्मरणं ग्रन्थनाशश्च । यदा तु शास्तान्तरेषु विद्यन्त
एव ताः श्रुतयस्तदापि कस्यां शास्त्रायां काः पठ्यन्त इति अस्यांशस्य विस्मरणम् । वैदिकत्वमात्रं तु प्रामाण्यसिद्धये परिपालयन्ति । तद्विशेषज्ञानं पुनरनोपयिकत्वादनादर्त्वयमेव ।
तथा प्रत्यपस्थितनियमानामित्यागतमागतं निमित्तं प्रति ये नियम्यन्ते वृद्धवयः प्रत्युत्था-

नादयस्तेषां दृष्टार्थत्वादेव प्रामाण्यमिति । एतदयुक्तम् । कुतः ॥ धर्मे प्रति यताऽत्रेदं प्रामाण्यं प्रस्तुतं स्मृतेः । तस्मादृष्यादिवत्तेषामुपन्यासो न युज्यते ॥

न हि यावितिश्चिदाचरणं तस्य सर्वस्य मूलिमह प्रमाणीक्रियते। धर्माजिक्कासाऽधिकागत्। यदि च गुर्वनुगमनादीनां केवलं दृष्टार्थत्वमेवं स्यात्तत ऋष्यादिवद्धमिपत्यमामाण्यमेवेति नोपन्यसित्वयाः। स्यादेतद्भमाणत्वेनैपामुपन्यास इति। न । तथा सित हेतुदर्शनाचेत्यत्रोदाहर्त्तव्या भवेयुः। तस्माच्ल्र्यांसमिति च दर्शनं निष्फलम्। न च नियोगतः
शास्तादते प्राप्तिः। शक्यते द्युगायान्तरेणापि सामदानादिना गुरुरध्यापनादीनि कारपितुम्। तत्रास्ति नियमादिविधरवकाशः। सर्वत्र च यथा कथि छ्राकेष्ठिकसहायोपादानात्मरक्षणित्रीत्युत्पादादिका दृष्टार्थता भाष्यकागोक्ता शक्या वक्तम्। नचावघातादीनां वृष्टिकामयाजादीनां च दृष्टार्थानामवैदिकत्वम्। तस्त्रात् सत्यपि दृष्टार्थत्वे सम्भाव्यते वेदम्लत्वम् नियमादृष्टिसद्धेरनन्यप्रमाणकत्वादत्वश्च गुर्वनुगमनादेनैमित्तिकत्वादिक्रियायां प्रत्यवायः
करणे च न भवति। दृष्टं च प्रीतो गुरुरध्यापयिष्यतीत्येवपादि निष्पद्यते। नियमाचाविद्यसमाप्त्यर्थाऽपूर्वसिद्धिः। एत्रंचाचाराद् गृष्टमाणेषु तथा स्यादित्यत्र सक्रदसक्रद्धा-

॥ भाषा॥

स्पिति में मनु ने जो फुछ धर्म कहा है वह सब बेद में कहा हुआ है) इत्यादि वाक्यों से मनु आदि

ने अपनी स्मृतियों के मूलभूत बेद का सामान्यक्रप से निर्देश किया ही है और उक्त अपने वाक्यों
से खयं अपने को बांध कर बेद के हाथ में समर्पण कर दिया है।

प्र०—मनु आदि को बेद के बिधि और अर्थवाद का बिबेक कैसे हुआ होगा ? स०—जब मीमांसादर्शन के अनुसार हम लोगों को भी बिधि और अर्थवाद का विवेक

शा०तथाच दर्शयति, तस्मात् श्रेयांसं पूर्वयन्तं पापीयान् पश्चादन्वेति इति । प्रपास्तहागाश्च शाव्तथाच दशयात, तस्मात् अपाए रूप्याच दर्शनं 'धन्वानिव प्रपा असि' इति, तथा परोपकाराय, न धर्माय, इत्येवावगम्यते तथा च दर्शनं 'धन्वानिव प्रपा असि' इति, तथा इति । तेन ये दृष्टार्थाः, ते तत एव प्रमाणं, येत्वदृष्टार्थाः, तेषु वैदिकशब्दानुमानिमिति।

त ० ऽनुष्ठानमिति बिचारो युक्तः। इतरथा तु दृष्टार्थत्ववशेनैवोदकपानादिवदवधारणं स्यात्। त०ऽनुष्ठानामात विचारा युक्तः । स्यार्थ छ उटा त्यूर्वपक्षवाद्यतिशयार्थम् एतदुक्तं भवति । यास्तावदृह्णार्थाः स्मृतयस्ताः कथित्रद्रपाणीकुर्याद्भवान् इमाःपुनर्गुर्वनुगमनादिविषयाः यास्तावददृष्टायाः स्मृतयस्ताः नायान्ययः । । स्माप्रपादीनां यद्यपि । बिशेषश्चातिनीव करूपते तथापि क्यामिवाप्रमाणंभाविष्यन्तीति । सभाप्रपादीनां यद्यपि । बिशेषश्चातिनीव करूपते तथापि कथामवासमार्यमाव व्यवस्ताता । स्वाप्त प्राप्ताप्त । तस्त्राच्छ्रेयांसमित्यश्वे गर्दभेनानुगन्तव्ये सिद्धवच्छ्रेयसामूनैरनुगमनं दर्शयति । यथा धन्वनि निरुद्रके कृताः प्रपाः परेषामुपकुर्वः न्त्येवं त्वामिति देवतापरे स्तुतिवाक्ये सिद्धवत्प्रपासद्भावः तस्याश्च् पारार्थ्यं दृश्यते । गोत्र-चिक्तं शिखाकर्मीत । तत्राष्याचारानियमस्यादृष्टार्थत्वान्नत्।वन्मात्रमेव प्रयोजनम् । शक्यं ह्यपायान्तरेणापि गोत्रं स्मर्तुम् तेनायमेवाभिप्रायः। कर्माङ्गभूतं तावचतुरवत्तपञ्चावतादि विभागसिध्यर्थमवश्यं स्मर्त्तव्यं गोत्रम्। अतश्च तचिह्नार्थमपि तावाच्छिखाकलपस्मृतेः प्रामाण्य मस्तु । तिश्वयमादृष्टस्यत्वेकान्तेनैवानन्यगतिकत्वात् पुरुषार्थता सेत्स्यतीति । तेन सर्व-॥ भाषा॥

हो सकता है तब मनु आदि ऐसे महानुभावों के बिषय में उक्त प्रश्न ही अनुचित है। तथा विधान करने वाले स्मृतिवाक्यों के मूल भी वे ही बेदवाक्य हो सकते हैं जो कि विधान करने वाले हैं क्योंकि छोक में मूल और मूली (मूलवाला) प्रायः तुल्य ही देखे जाते हैं।

प्र०- प्रेपा कर्तव्या ' (पनसला खोलै) इत्यादि स्मृतियों का तो लोकोपकाररूप दृष्ट (प्रत्यक्ष) ही प्रयोजन से उपपत्ति हो सकती है तो ऐसी स्मृतियोँ के विषय में मूलवेद के अनुमान से क्या प्रयोजन है ?

स०-(१) ऐसी स्मृतियाँ के विषय में यदि मूलवेद का अनुमान न भी हो तो कुछ

हानि नहीं है क्योंकि ऐसी स्मृतियोँ लोकानुभव ही के अनुसार प्रमाण हैं।

स०-(२) इन स्मृतियों का भी परोपकार का बिधान करने वाला बेद, मूल हो ही सकता है क्योंकि यह कोई नियम नहीं है कि जिस कर्म से दृष्ट प्रयोजन न सिद्ध हो वहीं कर्म, बेदमूलक होता है, क्योंकि अवघात (कूटना) आदि बैदिक कर्मी का धान्य का भुस छुटजाना आदि दृष्ट भी प्रयोजन हैं तो क्या अवघात आदि कर्म बैदिक नहीं हैं ? किन्तु यही नियम है कि जिस कर्म का कुछ अदृष्ट प्रयोजन अवदय हो (दृष्ट प्रयोजन हो बा न हो) वही कर्म, बेदमूलक है जैसे यज्ञोपकाररूप अदृष्ट प्रयोजन वाले अवघात आदि कर्म, हैं बेद्मूलक हैं इसी रीति से 'प्रपा कर्तव्या' आदि स्मृतियाँ भी बेदमूलक हैं क्योंकि प्रपा आदि का यद्यपि छोकोपकाररूपी दृष्ट प्रयोजन है तथापि उन के कर्ताओं का स्वर्गादिरूपी अदृष्ट प्रयोजन भी है।

तस्मात् जैसे परीक्षा करने से जिस पुरुष के ९९ वाक्य सत्य होते हैं इस के दें। एक वाक्य (जिन में कि उस पुरुष का खार्थ न हो) बिना परीक्षा के भी सत्य ही माने जाते और वास्तविक में सत्य ही होते भी हैं वैसे ही जब मनु आदि के सहस्रों स्मृतिवाक्यों के मूलवाक्य प्रत्यक्षपठित बेदों में मिलते हैं तो अष्टका आदि के बिषय में उन्हीं मनु आदि के रिवत कित्रण स्मृतिवाक्यों को, बिना परीक्षा के भी बेद्मूलक और प्रमाण मान लेना ही उचित है। और वहीं तो जब उक्त रीति से पूर्ण परीक्षा के अनुसार उन का बेदमूलक होना भलीभांति सिंड है। वुकी बब अन के बेदमूळक और प्रमाण होने में सन्देह ही क्या है ? इस रीति से मन्वादि स्मृतियों की त्रव्सृतीनां प्रयोजनवती प्रामाण्यसिद्धिः। तत्र तु याव द्वर्ममोक्षसम्बन्धि तद्वेदप्रभवम्। व्यक्षिस्रवांबष्यं तल्लोकब्यवहारपूर्वकामिति विवेक्तव्यम्। एषवेतिहामपुराणयोरप्युपदेशवाक्यानां गतिः। उपाख्यानानि त्वर्थवादेषु ब्याख्यातानि। यत्तु पृथिवीविभागकथनं
तद्धर्माधर्मसाधनफलोपभोगपदेशविवेकाय किश्चिद्दर्शनपूर्वकं किञ्चिद्धेदमूलम्।वंशानुक्रमणवाण् ब्राह्मणक्षत्रियजातिगोत्रज्ञानार्थं दर्शनस्परणमूलम् । देशकालपरिमाणमपि लोकहयोतिःशास्त्रब्यवहारसिद्ध्यर्थं दर्शनगणितसम्पदायानुमानपूर्वकम्।भाविकथनमपि त्वनादि॥ भाषा॥

प्रामाण्य सिद्ध हो गया। परन्तु इस बिषय में इतना ही बिबेक है कि जो स्मृतिवाक्य, धर्म और में क्षे सम्बन्ध में हैं वे बेदमूलक हैं और जो स्मृतिवाक्य, केवल अर्थ और सुख के विषय में हैं वे लेकव्यवहारमूलक हैं। और जो प्रामाण्य सिद्ध करने की रीति, धर्मशास्त्र के विषय में यहां तक कहीं गई है यही रीति, इतिहास और पुगण के उपदेशवाक्यों में भी प्रामाण्यसिद्धि के लिये है।

प्र० इतिहास और पुराण के उपाख्यान भागों का प्रामाण्य, कैसे सिद्ध होगा ? भीर वे उपाख्यान, वेदमूळक कैसे हो सकते हैं ? क्योंकि उन के बनाने वाळों की सत्यवादिता पर विश्वास करने का कोई कारण नहीं है तथा उन उपाख्यानों में कही हुई घटनाएं प्रायः छोकानुभव से बिरुद्ध हैं।

स०-पूर्व हीं अर्थवादाधिकरण में इस प्रश्न का समाधान हो चुका है अर्थात् जैसे बेद के अर्थवाद भाग का प्रयोजन और प्रामाण्य सिद्ध होता है वैसे ही उक्त उपाख्यानों का भी।

प्रo — इतिहास और पुराण में जो पृथिवी के द्वीपों का और भारतादिवर्षों का विभाग कहा हुआ है उस में क्या मूळ और उस का क्या प्रयोजन है ?

स०—वर्णाश्रमधर्म, जम्बूद्वीप के भारतवर्ष ही में यदि किया जाय तो उस से फललाभ होता है न कि अन्य देश में। और भारतवर्ष से अतिरिक्त जितने देश अर्थात् द्वीपान्तर आदि पृथिवीदेश तथा स्वर्गादिलोक और नरकादिस्थान हैं सब, धर्म और अधर्म के फलभाग ही के लिये हैं निदान भारतवर्ष ही विशेष और धर्म अधर्म की भूमि है और सव, फलभूमि हैं यह निश्चय ही, उक्त विभाग के कथन का प्रयोजन है और मन्वादिस्मृतियों के नाई इस कथन का भी वेद ही मूल है।

प्र०-पुराणादि में देवता, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि के बंशवर्णन का क्या प्रयोजन और मूल है ? स॰ — जाति और गोत्र का विवेक ही बंशवर्णन का प्रयोजन है और मुल भी प्रसक्ष भनुभव और स्मरण है।

प्र — पुराण आदि में अंगुल, बिलस्त, हाथ, लट्टा, क्रोश, आदि देशपरिमाणों (नाप) तथा निमेष, काष्टा, क्षण, पला,, दण्ड, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, आदि कालपरिमाणों के वर्णन का क्या प्रयोजन और मूल है ?।

स०—देशपरिमाण, लोकज्यवहार के लिये और कालपरिमाण, ज्यौतिषशास्त्रीय ज्यवहार के लिये है तथा खगोल (चन्द्र सूर्य आदि प्रहों का अन्तराल) का बर्णन भी ज्यौतिषशास्त्रीय ज्यवहार के लिये है। और इन बर्णनों का मूल भी गणितिबद्यामूलक दृढतर अनुमान ही है।

प्रेमी अधिक सुख होगा इलादि) का क्या प्रयोजन और मूल है ?

त ०कालप्रबृत्तयुगस्वभावधर्माधर्मानुष्ठानफलविपाकवैचित्रयज्ञानद्वारेण वेदमूलमेव। अक्ष-त०कालप्रवृत्तयुगस्य मायपापापाउँ । अङ्गः विद्यानामपि क्रत्वर्थपुरुषार्थपतिपादनं लोकबेदपूर्वकरवेन बिबेक्तन्यम् । तत्र शिक्षायां तावद्यद्ः स्मरणम् मन्त्रो हीनः स्वरता वर्णतो वेति च प्रत्यवायस्मृतिस्तद्भद्धस् । एवं कल्पमूत्रे. व्वर्थवादादिमिश्रशाखान्तरिब्पकीर्णन्यायलभ्यविध्युपसंहारफलपर्थानेरूपणं तत्तत्रमाण मङ्गीकृतम् । लोकब्यवहारपूर्वकाश्च केचिद् ऋत्विगादिब्यवहाराः सुखार्थहेतुत्वेनाश्चिताः। ब्याकरणेऽपि शब्दापशब्दिबभागज्ञानं साक्षाङ्कृक्षादिविभागवत्त्रत्यक्षानिमित्तम्। साधुशब्दः प्रयोगात्फलसिद्धिः, अपशब्देन तु फलंबगुण्यं भवतीति बैदिकम्। छन्दोविचिलामपि गायन्यादिबिबेको लोकबेदयोः पूर्ववदेव प्रत्यक्षः। तज्ज्ञानपूर्वकप्रयोगातु फलमिति श्रौतम्।

॥ भाषा॥

स० - युगों के स्वभावानुसार धर्म और अधर्म तथा सुख और दुःख की बिचित्रता का ज्ञान ही उक्त भविष्यत् बाणी का प्रयोजन है तथा 'आघाता गच्छान् उत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि । ऋ० मं० १० अध्या० १ सू० १० मं० १० (जिन समयिवशेषों में भगिनियाँ भाइयों से अन्य पति करेंगी वे समयांबराष आगे आवेंगे) भाव यह है कि यम अपनी भगिनी यमी से यह कहते हैं कि इस समय यद्यपि किलकाल का अन्तिम भाग है जिस में कि भागिनी भाई के और पिता, पुत्री के तथा पुत्र, माता के साथ गमन कर रहे हैं तथापि वे सत्य आदि या आन वाले हैं जिन में कि भीगनी आदि भाई आदि से अन्य ही को पति करेंगी इति। इसाहि बेदवाक्य, उस के मूल हैं।

शिक्षा कल्प आदि पूर्वोक्त अङ्गविद्याओं में भी किसी का यज्ञोपकार और किसी का पुरुषापकार फल है तथा यथासम्भव किसी का बेद और किसी का लोकानुभव मूल है। जैसे शिक्षा में अकारादि वर्ण, सम्बृत आदि प्रयत्न, (जिस ब्यापार से वर्ण उत्पन्न होते हैं) उदात आदि खर, हस्व दीर्घ आदि काल और कण्ठतालु आदि स्थानों का कथन, प्रसक्षमृलक है तथा उक्त बर्णादि के ज्ञानपूर्वक, शब्दों के प्रयोग का यज्ञीपकार और पुरुषोपकाररूपी फल का कथन और मन्त्रों के बर्णहीन और खरहीन होने से पाप होने का बर्णन, बेदमूलक है।

ऐसे ही कल्पसूत्रों में बेदार्थ के निरूपण का, अनेकशाखा के अनेक स्थानों पर अर्थवादों से मिले जुले विधिवाक्यों का एकत्रित होना और अर्थवादों से पृथक् उन का बिबेक तथा न्याय-पूर्वक उन के तात्पर्यों का निर्णय, ये फल हैं और यथासम्भव न्याय, (युक्ति) लोकानुभव और बेदवाक्य उस के मृछ हैं तथा ऋत्विक् आदि के 'को यज्ञः' (यज्ञ कीन है) इत्यादि प्रशासर का यज्ञिया की सुगमता फल है और दक्षिणा के प्रश्नोत्तरों का अर्थ, (धन) फल है। और इन दोनों प्रकार के प्रश्नोत्तरों का, लोकब्यवहार, मूल है।

ज्याकरण का भी साधु और असाधु शब्द का विवेकज्ञान प्रयोजन है और उस का मूल प्रत्यक्ष है। तथा यह अंश कि यहाँ में साधुशब्द के प्रयोग से फलसिद्धि और असाधुशब्द के प्रयोग से उल्लंड फल होना, बेदमूलक है। एसे ही निरुक्त का, बैदिकपदों के अर्थ का झान, कि छन्दःशास्त्र का भी लीकिक और बैदिक मन्त्रक्षपी वाक्यों में गायत्री आदि छन्दों की है और प्रत्यक्षअनुभन उस का मूल है।

त्व्याचानिष्टं श्रूयते। यो इ बाडिबिदितार्षेयछन्दोदैवतब्राह्मणेन मन्त्रेण यजित याजयित विद्यादि । ज्योतिः शास्त्रेडिप युगपरिबर्त्तपरिमाणद्वारेण चन्द्रादित्यादिगतिविभागेन तिथिन तस्त्रज्ञानमिबिच्छिन्नसम्भदायगणितानुमानमूलं प्रहसौस्ध्यदौस्ध्यनिमित्तपूर्वकृतशुभाशुभ-कर्मफलिबिपाकसूचनं तद्गतशान्त्यादिविधानद्वारेण वेदमूलम् । एतेन सामुद्रवास्तुविद्यादि व्याख्यातम् । ईदृशा बा विधयः सर्वत्रानुमात्व्याः । ईदृशे हि गृहश्ररीगदिसिन्नवेशे सत्येत-देतच श्रतिपत्तव्यमिति । मीमांसा तु लोकादेव प्रत्यक्षानुमानादिभिरविच्छिन्नसम्भदाय-॥ भाषा॥

बिबंक फल है और मूल भी उस का लोकानुभव तथा वेद यथासम्भव है और इस अंश का कि गायत्री आदि छन्दों के बिबंकपूर्वक ही मन्त्रपाठ से फलिसिद्ध होती है वेद मूल है क्यों कि गायत्री आदि के बिबंक बिना, यहां करने कराने से पाप होना 'यो ह बाऽबिदिताषें यल्लन्दोदै वत- ब्राह्मणेन मन्त्रण यर्जात याजयित बा स स्थाणुं बर्छित प्रवा मायते स पापीयान्भवति' (जो पुरुष मन्त्रों के ऋषि, छन्द, देवता, और ब्राह्मणभाग के वाक्य को, बिना जाने, मन्त्रों से यहां करता बा कराता है वह पापी होता है) इत्यादि बेद में कहा है।

ज्यौतिषशास्त्र में भी तिथि आदि के कथन का लोकानुभवसिद्ध गणितमूलक अनुमान ही मल है क्योंकि कल्प (ब्रह्मा का दिन) के आदि में सूर्य आदि प्रह एक ही नक्षत्र पर स्थित रहते हैं, तदनन्तर अपनी २ शोघ और मन्द गतियों के अनुसार अन्यान्य नक्षत्रों पर भ्रमण करते हैं और उक्त गतिबिशेष के अनुसार उन प्रहों में अनन्त प्रकारों की बिलक्षणता होती है तथा उन गितिबिशेषों से संयुक्त और उन्हीं के अनुसार किएत, कालभागों को 'तिथि' 'नक्षत्र' आदि शब्दों से कहते हैं इस रीति से प्रहों के गतिबिभाग ही के अनुसार तिथि नक्षत्र आदि का बिबेक होता है। और 'एक युग में सूर्य चन्द्रमा के गतिबिशेषों की इतनी बार आबृतियां होती हैं' इस क्षान के अनुसार मास वर्ष आदि विभाग का विवेक होता है। और इन सब विवेकों का मूछ भी अनादि गणितसम्प्रदाय ही है तथा जीवों के प्रारब्धकर्मों के अनुसार उन के सुख दु:ख और शरीर भादि सब बिषयों का परिवर्तन भी काल ही के द्वारा होता है और काल, निरवयव अनादि अनन्त पदार्थ है जिस का सम्बन्ध सब पदार्थी (प्रहों की गति और शरीर आदि बिषय) के साथ है तथा काल में असङ्ख्य प्रकार की अनन्त शक्तियां हैं जिन के अनन्त प्रकार के फल सब बिषयों पर छोक में प्रत्यक्ष ही हैं और उन शक्तियों का बिबेक, बिना काल में अवयवकल्पना के नहीं हो सकती इस लिये ज्यौतिषशास्त्र में प्रह आदि की गति आदिरूपी कियाओं के अनुसार विषघटी से ले कर महाकर्प (ब्रह्मा का जीवनकाल) पर्यन्त छोटे से छोटे और बड़े से बड़े असङ्ख्य अवयवों की कर्पनामात्र कर उस के अनुसार कालशक्तियों के विवेकद्वारा जीवों के सुख दु:ख और श्रीरादि-विषयों के अवस्थाबिशेषरूपी फलों के ज्ञान करूने के उपाय कहे हुए हैं पान्तु अमुक प्रह के अमुक गतिबिशेष से अमुक फल होता है तथा अमुक ग्रह की शान्ति से अमुक फल होता है इलादि अंशों में ज्यौतिषशास्त्र का, बेद ही मूल है।

ज्यौतिषशास्त्र के मूळ और फल के बर्णन ही से सामुद्रक (शरीररेखा आदि का बर्णन)
तथा नास्तु निद्या (प्रहादिरचना का प्रकार) आदि (जो कि अर्थशास्त्र में अन्तर्गत हैं) बिद्याओं का
भी मूळ और फल बार्णत प्राय है।

मीमांसा का तो धर्मबिबेकरूपी फंल प्रथमसूत्र ही पर कहा गया है और प्रत्यक्ष, अनुमान

त०पण्डितब्यवहारैः पबृत्ता। न हि कश्चिद्पि प्रथममेतावन्तं युक्तिकछापग्रुपसंहर्तुं क्षमः। एतेन न्यायाबस्तरं ब्याचक्षीत ॥

विषयो बेदवाक्यानां पदार्थेः भितपाद्यते।
ते च जात्यादिभेदेन सङ्कीर्णा लोकवर्त्माने।।
स्वलक्षणविविक्तेस्तैः प्रत्यक्षादिभिरद्धाता।
परीक्षकार्षितैः शक्याः प्रविवेक्तं नतु स्वतः।।
बेदोऽपि विप्रकीर्णात्मा प्रत्यक्षाद्यवधारितः।
स्वार्थे साध्यतीत्येवं ज्ञेयास्ते न्यायबिस्तरात्॥
तथाच मानवेऽप्यभिहितम्।
प्रत्यक्षमनुमानं च शास्तं च विविधागमम्।
त्रयं सुविदितं कार्य्ये धर्मशुद्धिमभीष्सता।। इति

तथा —

यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्म बेद नेतरः॥

इत्यादिभिस्तर्भविशुद्धिराश्रिता । पायेण च मनुष्याणावधर्मभूयिष्ठत्वात्तज्ज्ञानमित-बद्धाः प्रतिभास्तेषु तेषु कुमार्गेषु प्रवर्तन्ते । तत्र लोकार्थवादोपनिषत्पस्ततैस्तर्भशास्त्रैः सर्व-॥ भाषा ॥

आदि प्रमाणों के अनुसार अनादिकाल से निरन्तर चलता हुआ आया है बड़े २ पण्डितों का लोकब्यवहार ही इस का मूल है क्योंकि किसी का यह सामर्थ्य नहीं हो सकता कि एकाएकी इतनी युक्तियों का सक्तृह कर ले।

मीमांसा का जो मूल और फल है वही न्यायशास्त्र का भी मूल और फल है।
प्र० — न्यायशास्त्र में प्रत्यक्ष अनुमान आदि प्रमाणों का निरूपण ही है तब ऐसे शास्त्र
का धर्मज्ञान कैसे प्रयोजन हो सकता है ?

स॰—प्रमाणों के निर्णय बिना, पदार्थों का ठीक निर्णय नहीं हो सकता और उस के बिना बैदिकपदों के अर्थ का निश्चय नहीं होता तथा तर्कशास्त्र से झून्य मनुष्यों का यह काम नहीं है कि वे प्रमाणों का और पदार्थों का ठीक बिवेकपूर्वक निर्णय कर छे। और बेद भी ऐसा नहीं है कि एकाएकी प्रमाणों के बिना कोई उस के खरूप का निर्णय ठीक कर छ। इसी से मनु अध्या० १२ 'प्रत्यक्षमनुमान वि० ।। १०५॥ 'यस्तर्केणानुसन्धत्ते विद्या में यह स्पष्ट ही कहा है कि धर्म तत्त्व के निश्चयार्थ, प्रत्यक्ष, अनुमान और सब बिद्याओं के सिहत बेद को भछी भांति जानना चाहिये। तथा बेद और बाह्य के स्मृत्यादि प्रन्थों के तात्पर्यों को जो पुरुष बेद और शास्त्र के स्मृत्यादि प्रन्थों के तात्पर्यों को जो पुरुष बेद और शास्त्र के स्मृत्यादि प्रन्थों के जानता है न कि दूसरा इति।

प्र०—यदि तर्कशास्त्र भी धर्मीपयोगी है तो बौद्धादि के रिचत तर्कशास्त्र भी क्यों नहीं । धर्मीपयोगी हैं ?

स०—वे भी इस रीति से धर्मीपयोगी हैं कि प्रायः मनुष्यों के अन्तःकरण के, अध्में वासना से वासित होने के कारण उन की प्रतिभाशक्ति, कुमार्गी हीं के ओर प्रवृत्त होती है और उन के निर्मित तर्कशास्त्र भी छोक और अर्थवाद के अनुसार धर्मिबिरुद्धपक्षों को उठा कर उन की

त्वित्रतिपत्तिमुखपदर्शनम्।तदुपपत्तयस्तद्वलावलपूर्वकं च निश्चयद्वारं कथ्यते।अन्यथा पुनः। प्रतिभान्त्यः स्वयं पुंसामपूर्वी सुपपत्तयः । भ्रान्ति बहुमताः सत्यः कुर्युग्ज्ञानवोधनात् ॥

सर्वासु तु प्रदर्शितासु स्वातन्त्र्येण विशोधयन्तः कश्चिद्वत्स्रज्यान्याः प्रमाणीकरिन्
ध्यन्ति । यदिष च नित्यानित्यपृथक्तैकत्वसामान्यविशेषव्यतिरंकाद्येकान्तप्रतिपादनं तदिष
पश्चपाताद्दते अन्यतरांशिनिरूपणाशक्तेः । अवश्यं च सर्वात्मकवस्तुयुगपद्भद्दणासम्भवात्
तद्भागोपनिपातिपदिविषयविवेकः थेमेकैकिनिरूपणमादरेण कर्त्तव्यम् । अन्यथा येऽनवाप्तसामान्यविशेषाद्यपपत्तयः पुरुषास्ते पदमितपाद्यं निष्कृष्टं वस्तुभागं लोकमात्रालोचनेन
नैवाध्यवस्ययुः । मन्त्रार्थवादोपात्ताश्च स्तुतिनिन्दास्तत्तिन्त्यानित्यंकपृथक्तेकान्तमाश्चित्य तत्र
तत्र विधिमितिषेधाङ्गत्वेन प्रवर्त्तमानाः पक्षपातमितपादितवस्तुधमेवैचित्र्यादते निरालम्बनाः
स्युः । याश्चेताः प्रधानधुरुषेश्वरपरमाणुकारणादिमिक्रयाः स्रष्टिमलयादिरूपेण मतीतास्ताः
॥ भाषा ॥

हपपत्ति करते हैं जिस से कि अनेकपक्षों के बिचार का अवसर मिलता है कि जिस के अनुसार बिचार करने से सिद्धान्तरूपी पक्ष का निर्णय होता है। यदि उन के तर्कशास्त्र न हों तो बिचार करने का प्रयोजन न होने से सिद्धान्तपक्ष का केवल स्वरूप ही कहा जायगा और उपपत्ति न कहने से सिद्धान्तपक्षों पर लोगों की श्रद्धा कम हो जायगी जिस से कि स्वतन्त्र हो कर अपने मनमानी युक्तियों से लोग अनेक प्रकार के पक्षों को प्रमाणित करने लगैंगे। तात्पर्य यह है कि बौद्ध आदि के तर्कशास्त्र भी पूर्वपक्ष उठाने के द्वारा धमीबचार के उपयोगी होते हैं और लाकानुभव तथा अर्थवाद आदि कुछ न कुछ मूल भी उन शास्त्रों का होता ही है। परन्तु तर्कशास्त्र के अनुसार बौद्धादितर्कों की दुर्बलता का निर्णय होता है।

प्र०—न्याय, बैशेषिक, साङ्ख्य, आदि दर्शन सबी न्यायशास्त्र ही हैं क्योंकि प्रमाण-निरूपण सब में किया है तो ऐसी दशा में उन में कहे हुए जितने तर्क, धर्म के प्रमाण से सम्बन्ध रखते हैं वे धर्म में उपयोगी हों परन्तु साङ्क्ष्य में जो सब जगत् के नित्यत्व का और बौद्धशास्त्र में सब जगत् के अनित्यत्व का तथा बेदान्तदर्शन (अद्वैतवाद) में सब के एकत्व का और बैशोषिकमत में जगत् के अनेकत्व का एकान्तरूप से प्रतिपादन है वह कैसे धर्मज्ञान का उपयोगी है ?

स०—उक्त प्रदिपादन भी पक्षपात के कारण से नहीं है किन्तु सब वस्तुओं के तात्विक-स्वरूप का ज्ञान एक ही बार किसी को नहीं होता किन्तु दशाबिशेष में अपने २ बिचारानुसार सब महाशय किसी २ तत्त्व का निर्णय किया करते हैं और पदार्थनिर्णय के द्वारा वे सब निर्णय, बेदार्थनिर्णय में उपयोगी होते हैं । और यदि उक्त प्रातिपादन, उक्त शास्त्रों में न किये जाय तो सामान्यपुरुष, बिचारशक्ति की न्यूनता से लोकानुभवमात्र के अनुसार पदार्थभाग के तत्त्व का ठीक निर्णय नहीं कर सकते और मन्त्र तथा अर्थवाद में कही हुई अत्यन्तगृह स्तुतियाँ और निन्दाएं भी ठीक निश्चित नहीं हो सकतीं यदि पुरुष में बिचारशक्ति न्यून हो, इस लिये बिचारशक्ति की वृद्धि के द्वारा उक्त बिषयों का प्रदिपादन भी अवश्य धर्मोपयोगी है।

प्र-साङ्ख्यमत में मूलप्रकृति से, बेदान्तदर्शन में ब्रह्म से, योगदर्शन में ईश्वर से, वेशिषकदर्शन में परमाणुओं से, जगत्सृष्टि की प्राक्रियाएं कही हैं इन प्रक्रियाओं का क्या मूल है ?

त्रं प्रमाण्यात् वात्रानादेव दृश्यमानसूक्ष्मस्थूलद्रव्यमकृतिविकारभावदर्शनेन च दृष्ट्याः। स्राप्तल्यमेनस् त्रमबा मन्त्रायवाद्शामाप्त वर्षा स्थानम् । सर्गमलयोपवर्णनम् विवष्ठ हर्षाः। प्रयोजनं च स्वर्गयामाद्युत्पाद्योत्पादकविभागज्ञानम् । सर्गमलयोपवर्णनम् विवष्ठ हर्षकारः प्रयाजन च स्वग्यागाञ्च । सर्वत्र हि तद्वलेन प्रवर्तते तदुपरमे चोपर्मतीति विज्ञानमात्र. भभावपाबमागद्यापय । स्थापमाप्य पिन्य विवयेष्यात्य नितकं रागं निवर्त्ति मित्युप्य ने सर्वेषां प्रामाण्यम्। सर्वत्र च यत्र कालान्त्रफलत्वादिदानीमनुभवासम्भवस्तत्र श्रुतिमूलता। सान्दृष्टिकफले तु बृश्चिकाबिद्यादौ पुरुषान्तरे ब्यवहारदर्शनःदेव प्रामाण्यमिति बिबेकसिद्धिः॥ इति । इतिस्मृतिपामाण्यम् ।

श्रुतिबिरोधे दृष्टलो भादिमूलकत्वे बा स्मृतेरप्रामाण्यमेव । तथा च सुत्रे— बिरोधेत्वनपेक्ष्यं स्यादसति हानुमानम् ॥ ३ ॥ हेतुदर्शनाच ॥ ४॥ इति (मी॰

द० अध्या० १ पा० ३)

त०बा० यान्येतानि त्रयीबिद्धि न परिगृहीतानि किश्चित्तन्मिश्रथमकञ्चकच्छार्याः लोकोपसङ्गहल।भपूजारूयांतिपयोजनपराणि त्रयीबिपर्गतासम्बद्धः शोभा-दिप्रत्यक्षानुमानोपमानार्थापत्तिपाययुक्तिम्लोपनिबद्धानि साङ्ख्ययोगपाञ्चरात्रपाशुपत-

स० — मन्त्र और अर्थवाद ही इन सब प्रक्रियाओं के मूल हैं और तालर्थ भी इन प्रक्रियाओं का जगत् के उपादान और निमित्त कारण के निश्चय में है और प्रयोजन भी इन का यह निश्चय ही है कि अदृष्ट से भी दृष्ट उत्पन्न होता है जैसे धर्म की अपूर्वशक्ति से खर्गादि फछ।

प्र0-जगत् की सृष्टि और संहार का बर्णन जो कि शास्त्र और पुराण आदि में है

उस का क्या फल और क्या मूल है ?

स०-प्रलय के पूर्वसमय में जगत् की स्थिति और उन्नति के लिये देवता और मतुष्य आदि महानुभाव छोग उद्योग ही करते रहते हैं तथापि दैव (पूर्वकृतकर्भ) के बल से जगत् का प्रलय हो ही जाता है तथा सृष्टि के पूर्वसमय से जीवगण जगत् के लिये उद्योग करने के योग्य भी नहीं रहते तथापि जगत् की सृष्टि हो ही जाती है इस छिये यह निश्चय है कि उद्योग की अपेक्षा दैव, बहुत ही प्रबल है यही निश्चय सृष्टि और प्रलय के बर्णन का फल है और मन्त्र ही अर्थवाद इस बर्णन के मूल हैं। ऐसे ही नास्तिकदर्शनों के बिज्ञानवाद, (क्षणिकज्ञान के आति।रिक्त सब मिथ्या है) क्षणभङ्गवाद (सब जगत् क्षणि क है) और नैरात्म्यवाद (आत्मा भी मिथ्या है अर्थात् शून्य ही तत्त्व है) का भी असद्वा इद्मप्रआसीत् इत्यादि उपनिषद् ही मूल है और जगत् की तुच्छता के द्वारा बैराग्य ही, इन वादों का फल है इस रीति से बेद से अतिरिक्त, स्मृतिनामक पूर्वोक्त दश विद्याओं तथा अन्यान्यविद्याओं का मूल, फल और प्रामाण्य सिद्ध हो चुका और सब विद्याओं के विषय में यही विवेक है कि बृश्चिकविद्या, आयुर्वेद आदि उपवेद, नीतिशाह, कामशास्त्र, सूपशास्त्र, आदि विद्याओं में भी जिस अंश का फल लीकिक है उस अंश का मूल छोकानुभव और जिस अंश का फल अलौकिक है उस अंश का मूल, बेद ही है । इति

बेद से बिरुद्ध अथवा लोभादिमूलक स्मृति, प्रमाण नहीं होती क्योंकि बेद्विरोध अथवी लोभ आदि दृष्टमूल मिलने से उस स्मृति के बिषय में बैदिकविधिवाक्यक्षी मूल की कहाती है। नहीं हो सकती जैसा कि 'बिरोधे लनपक्षं स्यादसातिह्यनुमानम्' ।।सू० ३॥ 'हेतुदर्शनाइ०' ॥सू० ४॥ (प० मी० ह० अध्यात १ परं ३) (पूर्ण मीर्व व अध्यार्थ पार्व है। इन सूत्रों से जैमिनिमहार्षि न स्पष्ट ही कहा है। इन सूत्रों की तात्पर्य, बार्तिककार ने यह उत्तर है। तात्पर्य, बार्तिककार ने यह कहा है कि साङ्ख्य, योग, पाञ्चरात्र, शाक्य, (जैन) निर्प्रत्य आहि के असाधारण धर्मीधर्म के प्रतिपादन कर है के असाधारण धर्मीधर्म के प्रतिपादक तथा मिश्रकभोजन (एक काल और एक पात्र में अनेक मर्जि त०शाक्यनिग्रन्थपरिग्रहीतधर्माधर्मानेबन्धनानि विषचिकित्सावशीकरणोच्चाटनोन्मादना-हिसम्धकतिमपयन्त्रीषधिकादाचित्कसिद्धिनिदर्शनाहिंसासत्यवचनदमदानदयाऽऽदिश्चिति-

का भीजन) आदि म्लेच्छाचारों के प्रतिपादक तथा बेद से अत्यन्तवाह्य जो स्मृतिवाक्य हैं उन्हीं की अप्रमाणता का, बेदबिरोध और हेतु (लोभादि कारण) देखने के अनुसार इन दो सूत्रों से खण्डन किया जाता है।

प्र• —यदि स्मृतिवाक्य भी अप्रमाण होने छगे तो मनु आदि की स्मृतियाँ कैसे प्रमाण होंगी ? स॰ —बैदिक त्रैवर्णिक छोग बहुत काछ से मनु आदि की स्मृतियों का आदर और उन के अनुसार धर्म का अनुष्ठान तथा अधर्म का बर्जन करते आते हैं इसी से वे स्मृतियाँ प्रमाण हैं और ऐसा न होने से उक्त शाक्यादिस्मृतियाँ अप्रमाण हैं।

प्रवास कर है तो उस के अनुसार सत्य आदि के बिषय में शाक्य आदि के वाक्य वेदमूलक हैं तो उसी हिला के अनुसार सत्य आदि के बिषय में शाक्य आदि के वाक्य वेदमूलक हैं तो उसी हृष्टान्त से उन के अन्यान्यवाक्यों में भी बेदमूलक होने का अनुमान होता है तो ऐसी दशा में बैदिक प्रवर्णिकों के स्वीकार न करने मात्र से कैसे शाक्यादिस्पृतियाँ अप्रमाण हो सकती हैं ?

स० - जैसे कोई पुरुष वास्तिक अपने अङ्गिषकार को वस्ति से अच्छादित रखता है वैसे ही 'चैत्यं बन्देत' (जैनदेवालय को नमस्कार करें) इत्यादि वेदिवरद्धवाक्यों के मिध्यात्व को आच्छादन करने के लिये लोकबश्वनार्थ ही कहीं २ सत्य आदि वैदिकधर्मी का शाक्यादिस्मृतियों में उपदेश है तो इतने मात्र से वैदिकिविधिवाक्यरूपी मूल का अनुमान उन के विषय में नहीं हो सकता।

प्रo - लोकब ध्वना से शाक्यादि को क्या प्रयोजन था ?

स०-छोकसङ्गह, अर्थछाम, पूजाछाम और कीर्ति ही प्रयोजन थे।

प्र-तब भी सत्य आदि के स्युतिवाक्यों को दृष्टान्त बना कर बैदिकविधिवाक्यरूपी मूछ का अनुमान, उन में क्यों नहीं होता ?

स०-प्रतिथां हों के द्वारा उन स्मृतियों में धर्मोपदेश है और प्रतिथान स्प्र (सत्सम्प्रयोगे पुरुषस्थेन्द्रियाणां बुद्धिजन्म तत्प्रत्यक्षमिनिमत्तं विद्यमानोपलम्भनत्वात् पूर्ण मी० अ०१ पा०१ सू०४) पर पूर्व में यह सिद्ध कर दिया गया है कि धर्म, प्रत्यक्षादिप्रमाणों से गम्य नहीं है तथा इन स्मृतियों में बहुत काम ऐसे कहे हुए हैं जो कि वेद से अत्यन्त विरुद्ध हैं और महत से ऐसे हैं जो शोभा आदि दृष्टफल ही के लिये हैं तथा वैदिकलोग एक मुख हो कर इन स्मृतियों का अनादर करते हैं इन्हीं कारणों से वैदिक विधिवाक्य रूपी मूल का अनुमान, इन के विषय में कदाऽपि नहीं हो सकता।

प्र- उक्त रीति से जब शाक्यादिस्मृतियों के प्रमाण होने का सम्भव ही नहीं है तो उस का खण्डन क्यों किया जाता है ?

स० — शाक्यादिस्मृतियों में स्थान २ पर बिषाचिकित्सा, वशीकरण, उचाटन, मारण, भादि के उपयोगी कतिपयमन्त्र और औषध भी छोकर जनार्थ छिखे हैं जिन का फल भी कदाचित् भूसक्ष होता है तथा छोकबिश्व। सार्थ, श्रुतिस्मृति में कहे हुए अहिंसा, सत्य, दम, दान, दया आदि

स्मृतिसंबादिस्तोकार्थगन्धवासितजीविकाप्रायार्थान्तरापदेशीनि यानि च वाधातराणि महे स्मृतसमादस्ताकायगन्यपातिका कि तेषामेवैतच्छुतिबिरोधहेतुदर्शनाभ्यामनपेक्षणीयत्वं मितिपाद्यते। नचैतत्कचिद्धिकरणान्तरे निरूपितम्। नचावक्तव्यमेव गाव्यादिशब्दवाचकत्वे बुद्धिवद्तिमसिद्धत्वात् ।

यदि हानादरेणैषां न कल्प्येताप्रमाणता । अशक्यैवेति मत्वाऽन्ये भवेयुः समदृष्ट्यः ॥ शोभासीकर्यहेतुक्तिकलिकालवशेन वा। यज्ञोक्तपशुहिंसादित्यागभ्रान्तिमवाप्तुयुः ॥

ब्राह्मणक्षत्रियमणीतत्वाबिशेषेण बा मानवादिवदेव श्रुतिमूळत्वमाश्रित्य सचेतसोऽपि श्वतिबिहितैः सह बिकल्पमेव मतिपद्येरन् ॥

॥ भाषा ॥

भी इन में कहीं २ कहे हैं और छोकसङ्गृह ही के छिये जीविका के उपयोगी अन्यान्य कर्म भी इन में कहे हैं इन कारणों से साधारण मनुष्यों को यह सम्भावना हो सकती है कि शाक्याहि-स्मृतियाँ धर्म में प्रमाण हैं और यही सम्भावना, पूर्वपक्ष का बीज है इसी से इन स्मृतियों के प्रामाण्य का खण्डन किया जाता है।

प्र० - जब पूर्व हीं प्रत्यक्षसूत्र ही पर प्रत्यक्षादिप्रमाणों की धर्ममूलता का खण्डन हो चुका है और इसी खण्डन से शाक्यादिस्मृतियों के प्रामाण्य का भी खण्डन कृतप्राय है क्योंकि प्रत्यक्षादिप्रमाण हीं इन स्मृतियों के मूळ हैं तो इन स्मृतियों के प्रामाण्य का खण्डन पुनः क्या किया जाता है ?

सं - शाक्यादि की स्मृतियों के बेदमूलक होने का साक्षात् खण्डन पूर्व ही नहीं हुआ

था इसी से वह अब किया जाता है।

प्र० - जब शाक्यादि, अपनी स्मृतियों का बेद्मूलक होना खयं नहीं खीकार करते और इसी से उन का वेदमूलक न होना प्रसिद्ध ही है तब उन के प्रामाण्य का खण्डन किस प्रयोजन से हे ?

स॰ — उक्त खण्डन के अनेक प्रयोजन हैं। असे (प्रयो १) यदि शाक्यादिस्मृतियों को तुच्छ समझ कर उन का खण्डन न किया जाय तो छोकिक छोग यह समझ कर कि 'उन का खण्डन होई नहीं सकता', मन्वादिस्पृतियों भीर बाक्ष्यादिस्मृतियों के विषय में समदृष्टि हो जाया।

प्रयो०—(२) अथवा कलिकाल के अनुसार अधर्म के प्रवल होने वा शोभा और आतन्द आदि के लोभ से बेदवाह्य शाक्यादिस्मृतियों ही पर श्रद्धा कर श्रीत (बेद में कहा हुआ) और सार्त (मन्वादिस्मृतियों में कहा हुआ) कमों को छोड़ बैठेंगे।

प्रयो०—(३) छोकिकों को कौन कहे परीक्षक (सुशिक्षित बा अन्यशास्त्रक) होग भी शाक्यादिस्मृतियों को त्रैवाणिकरचित होने के कारण बेदमूलक समझ कर इन स्मृतियों पर भी मनु आदि की स्मृतियों के तुल्य श्रद्धा कर बैठेंगे और कदाचित् यह भी हो जायगा कि इन स्मृतियों के अनुसार एसे कमें को भी पाने के देन हैं तिर्देश के अनुपार एसे कमों को भी करने छोंगे कि जिन कमों का मनु आदि की स्मृतियों में निषे तेन यद्यपि छभ्येत स्मृतिः काचिद्विरोधिनी ।

मन्बाद्युक्ता तथाप्यस्मिन्नेतदेवोपयुज्यते ॥

त्रयीमार्गस्य सिद्धस्य ये श्वत्यन्तिबरोधिनः ।

अनिराकृत्य तान् सर्वान् धर्मश्चिक्तं छभ्यते ॥

महाजनगृष्ठीतत्वं पित्राद्यनुगमादि च ।

तेऽपि द्वीपान्तरापेक्षं वदन्त्येव स्वदर्शने ॥

तत्र श्रद्धामात्रमेवैकं ब्यवस्थानिमित्तम् सर्वेषां स्विपतृपितामहादिचारितानुयायित्वात् ।

श्रेश्च मानवादिस्मृतीनामप्युत्सन्नवेदशाखाम् छत्वमभ्युपगतं तान्त्रति स्वतरां शाक्यादिभिरिप
शक्यं तन्मू छत्वमेव वक्तुम् । को हि शक्तुयादुत्सन्नानां वाक्यविषयेयत्तानियमं कर्त्तुम् ।
तत्रश्च याविकिश्चितिकयन्तमिप कालं केश्चिदाद्रियमाणं प्रसिद्धं गतं तत्त्रत्यक्षशाखाविमंवादे
उत्युत्सन्नशाखाम् छत्वावस्थान मनुभवतुल्यकक्षतया प्रतिभायात् अत आह 'विरोधे त्वनपेकं स्या' दिति । पारतन्त्रयं तावदेषां स्पर्यमाणपुरुषविशेषप्रणीतत्वात्तरेव प्रतिपन्नम् शब्दकृतकत्वादिप्रतिपादनादराच पार्श्वस्थैरिप विज्ञायते । वेदम् छत्वं पुनस्ते तुल्यकक्षत्वाक्षमयैव
कृत्वा च मातापितृद्वेषिदुष्टपुत्रवन्नाभ्युपगच्छन्ति।अन्यच स्मृतिवाक्यमेकमेकेन श्रुतिवचनेन
॥ भाषा ॥

किया हुआ है। इस रीति से, बैदिकमार्ग के अत्यन्त बिरोधी जितने मत हैं उन को, बिना खण्डन किये धर्मतत्त्व की शुद्धि कदापि नहीं हो सकती इस छिये उक्तखण्डन बहुत ही आवश्यक है।

प्र०—जब बहुत से छोग, शाक्यादि के कहे हुए वाक्यों के अनुसार कर्म करते हैं और उन के स्मृतियों में भी सत्य आदि धर्म कहे हैं तब आप्रह से यह कहना कि वे स्मृतियां बेदमूळक नहीं हैं, कैसे उचित है ? और मान छिया गया कि उन स्मृतियों में मनु आदि स्मृति से
विरुद्ध भी बहुत सी बातें हैं, तथापि उन के अनुसार उन के मूळ बेद की कल्पना क्यों नहीं हो
सकती ? क्योंकि जैसे 'आतिरात्रे वोडिशनं गृह्णाति' (अतिरात्रयज्ञ में वोडिशी नामक पात्र का प्रहण
करें) 'नातिरात्रे वोडिशनं गृह्णाति' (अतिरात्रयज्ञ में वोडिशी नामक पात्र का प्रहण न करें) ये
होनों बेदवाक्य यद्यपि परस्पर में विरुद्ध हैं तथापि यह ब्यवस्था की जाती है कि अतिरात्रयज्ञ में
वोडिशी पात्र के प्रहण का विकल्प है अर्थात् यजमान अपनी इच्छा से प्रहण करें वा न करें।
वेसे ही मनु आदि और शाक्य आदि की स्मृतियों के अन्योन्य में विरोध होने पर भी उन में
विहित कर्मों का, कर्ता की श्रद्धानुसार विकल्प हो सकता है। और जब मनु आदि की भी
वष्टकादिस्मृतियों का मूळवाक्य, बेद की छुप्रशाखाओं में स्थित माना जाता है तब शाक्य आदि
ही स्मृतियों का मूळ भी यदि छुप्रशाखाओं में माना जाय तो क्या अनुवित है ?

स० — शाक्यादिस्मृतियों का पौरुषेय होना सब के सम्मत ही है और ऐसी दशा में पित वे बेदमूलक हों तब ही धर्म में मनु आदि की स्मृतियों के तुल्य प्रमाण हो सकती हैं। परन्तु जैसे माता पिता का परमद्वेषी पुत्र अपने को यह नहीं कहता कि में अमुक और अमुकी का पुत्र हैं वैसे ही द्वेष और लज्जा बहा, शाक्य आदि स्तयं यह नहीं कह सकते कि उन की स्मृति बेद-

म्बिक है इस से वे स्मृतियां अप्रमाण हीं हैं।
प्रिक्त है इस से वे स्मृतियां अप्रमाण हीं हैं।
प्रिक्त है इस से वे स्मृतियां अप्रमाण हीं हैं।
प्रिक्त है इस से वे स्मृतियां अप्रमाण हीं हैं।
प्रिक्त है इस से वे स्मृतियां अप्रमाण हीं हैं।

बिरुध्येत । शाक्यादिवचनानि तु कतिपयदमदानादिवचनवर्ज सर्वाण्येव समस्तचतुर्दशः विद्यास्थानावरुद्धान त्रयामाणन्यार्याः समर्पितानीति न बेदमुळत्वेन सम्भाव्यन्ते। भ्यश्रत्थबणानरवासत्त्राय स्था ज्यात्र्य स्वाप्त्रियहाँ मतिपन्नौ स धर्ममबिष्कुतमुपदेश्यतीः ति कः समाश्वासः।

उक्तंच।

परलोकविरुद्धानि कुर्वाणं दूरतस्त्यजेत्। आत्मानं योऽतिसन्धत्ते सोऽन्यसौ स्यात्कथं हित इति ॥ बुद्धादेशपुन्रयमेवव्यतिक्रमोऽलङ्कारबुद्धौ स्थितः येनैवमाह । कलिकलपकृतानि यानि लोके मयि निपतन्तु बिम्रुच्यतां तु लोके इति ।

स किल लोकहितार्थं क्षत्रियधममितिकम्य बाह्मणबृत्तं प्रवक्तृत्वं प्रतिपद्य प्रतिषेशाः ॥ भाषा ॥

मान ले तो उस में क्या बाधक है ?

स०—इसी प्रश्न के समाधान के छिये 'बिरोधे लनपेक्षं' इस पूर्वोक्त प्रथमसूत्र से शाक्य आदि स्मृतियों, के बेदमूलक होने में बाधक दिख्लाये जाते हैं।

वाध्-(१) मनु आदि की स्मृतियों में कहीं किसी एक वाक्य पर बेदविरुद्ध होने की शक्का यदि हो सकती है तो भी उस का बारण तुरित ही हो जाता है और शास्य आदि की स्मृतियों में तो सत्य, द्या, आदि कृतिपय विषयों को छोड़, एक ओर से सब ही वाद्य, पूर्वोत्त वेद आदि चौदहो धर्मविद्याओं से विरुद्ध ही हैं तब कैसे वे स्मृतियां बेदमूलक हो सकती हैं !

वाः -(२), बेद्बिरुद्ध आचार के करने वाले शाक्य आदि पुरुष् हैं। जब उन के कर्ता हैं तब वे कैसे बेद० १

वा०-(३) जब शाक्य आदि ने बना कर उन स्मृतियों को बदव हा शुद्र आदि के विवे समर्पण किया तब वे कैसे बेद • ?

वा०-(४) जब बेदवाहा शूद्रादि और बणीश्रम के आचार से रहित ही पुरुष, शांवय अति की स्मृतियों के पढ़ने और धारण करने वाले हैं तब कैसे वे स्मृतियां बेद० ?

वा०-(५) जब बुद्ध आदि ने क्षात्रिय हो कर अपने बैदिकधर्म के बिरुद्ध, स्परेश करने और दान छेने का काम खयं उठा छिया अर्थात् परछोक् बिरुद्ध काम अपने हीं करते छो। तब उन के धर्मीपदेश पर क्या विश्वास हो सकता है ? और इसी, से पूर्वीचार्यों (अहुवाद से भी पूर्व के आचार्यों) ने भी कहा है कि 'परलो ?' परलोक के बिरुद्ध कर्म करनेवाले को दूर ही से त्यायना चाहिये क्योंकि जो अपना ही शत्रु हो रहा है वह दूसरे का क्या हित होगा ? और बुद्ध आदि का परलोक से बिरुद्ध काम करना 'अलङ्कारबुद्धि' नामक उन्हीं के प्रह्थ में शित है उस में उन्हों ने कहा है कि 'किक खुषकृतानि ' (बादिक निषेधों के उस्त्वन से किकाल के अनुसारी पाप को मैंने अपने मस्तक पर छिया तुम छोग, छोक के अनुसार को छोड़ों) तथा हत के मती ह्यायी छोग उन के गुणों को यों कहते हैं कि 'वे ऐसे छोकहितेषा और दया है कि छोकि

तिक्रमासमर्थेक्रीहाणैरननुशिष्टं धर्मे वाह्यजनानमुशासद्धर्भपीढामप्यात्मनोऽङ्गीकृत्य परानुग्रहं कृतवानिति, एवंविधैरेव गुणैः स्तूयते तदनुशिष्टानुसारिणश्च सर्वएव श्रुतिस्मृतिविद्वितधर्मातिक्रमेण ब्यवहरन्तो विरुद्धाचारत्वेन ज्ञायन्ते ॥

तेन मत्यक्षया श्रुत्या बिरोधे ग्रन्थकारिणाम्। ग्रहीत्राचरितृणां च ग्रन्थप्रामाण्यबाधनम्।।

महोषां पूर्वोक्तेन न्यायेन श्रुतिप्रतिबद्धानां खमूळश्रुत्यनुमानसामध्र्यपस्ति ॥ नच शाखान्तरोच्छेदः कदाचिदिष विद्यते । प्रागुक्ताद्धेदिनित्यत्वाश्रचैषां दृष्टमूळता ॥

निह यथोपनयनादिस्मृतीनां शाखान्तरदृष्ट्युतिसंवादः । एवं चैत्यकरणतद्वन्दनशूद्ध-सम्प्रदानकदानादीनां संवादः सम्भवति मुलान्तरकल्पनं च मागेव मत्याख्यातम् ॥

कोभादि कारणं चात्र बहेवान्यत्मतीयते। यस्मिन् सिनिहिते दृष्टे नास्ति मूलान्तरानुमा॥ शाक्यादयश्च सर्वत्र कुर्वाणा धर्मदेशनाम्। हेतुजालिबिर्मुक्तां न कदाचन कुर्वते॥ नच तैर्वेदम्लत्व-मुच्यते गौतमादिषत्। हेत्वश्चाभिधीयन्ते ये धर्माद् द्रतः स्थिताः॥

के िक्ये अपने क्षात्रियधर्म को त्याग कर अपने पर पाप और परलोक्त वाधा को भी स्त्रीकार कर उपदेशक्तपी ब्राह्मणधर्म (जो कि उन के िल्ये वेद से निषिद्ध और पाप है) के द्वारा लोक पर अनुप्रह किया 'इत्यादि, तो ऐसों की रिचत स्मृतियां कैसे वेद ? मनु यद्यपि क्षत्रिय हैं तथा 'मनुकैं यदवदन् तद्भेषजम्' (मनु जो कहता है वह हित है) इस वेदवाक्य से उन को उपदेश करने का अधिकार है।

वाव-(६) जिन के मान्नेवाले लोग प्रायः बेदिवरुद्ध ही कामीं की करते हैं वे स्मृतियां

प्र - शाक्य आदि स्मृतियों का यद्यपि बेद, मूल नहीं हो सकता तथापि अन्यान्य

प्रमाण, क्यों नहीं इन स्मृतियों के मूछ हैं ?

स॰—इस प्रश्न का समाधान, 'हेतुद॰' इस पूर्बोक्त द्वितीयसूत्र से किया गया है इस का ताल्पर्य यह है कि जब लोभादिक्ति लौकिक ही मूल, उन स्मृतियों का देखा जाता है तब उन के विषय में किसी सल्य प्रमाण के मूल होने का सम्भव नहीं है और शाक्य आदि का कोई उपदेश ऐसा नहीं होता कि जिस में युक्तिजाल कारण न हो तथा वन की युक्तियां (हेतु) ऐसी होती हैं जो कि धर्म से बहुत ही दूर रहती हैं क्योंकि प्रत्यक्षसूत्र पर यह सिद्ध हो चुका है कि धर्म, केवल लौकिक प्रमाण और युक्ति का विषय नहीं है। और यह भी है कि जैसे गौतम आदि महार्ष अपनी स्मृतियों को बेदमूलक कहते हैं वैसे शाक्य आदि यह नहीं कहते कि हमारी स्मृति बेदमूलक है।

और इस द्वितीयसूत्र का यह भी अभिप्राय है कि 'पाखिष्डनो विकर्मशान वैदाल-

[स्वण्ड २

एतएव च ते येषां वाङ्मात्रेणापि नार्चनम्। पाखाण्डनो विकर्मस्था हैत्काश्चेत एव हि ॥ एतदीया ग्रन्थाएव च मन्वादिभिः परिहार्यत्वेनोक्ताः । या बेदवाद्याः स्मृतयो याश्च काश्चित्कृदृष्ट्यः । सर्वास्ता निष्फलाः पेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ॥

(म० अ० १२ श्लो० ९५) इति।

तसाद्धमंत्रति त्रयीवाह्यमेवंजातीयकं नामाण्येनानपेक्ष्यं स्यादिति सिद्धम्। एवम् बेदवाह्यबुद्धादिस्मृतिस्थानां श्रुतिस्मृत्यबिरुद्धानामहिंसादिवाक्यानामिष न धर्मे मामाण्यम् तथाच -

बार्तिककुत्संमतम् अधिकरणम् (मी० द० अध्या० १ पा० ३) शिष्टाकोपेऽविरुद्धामिति चेत्। स्० ५ न शास्त्रपरिमाणत्वात् । सू० ६

बा० यत्ति वेदविहितं न बाधते शिष्टान्बा बेदाविदो न कोपयित बिहाराराम्मण्डस-करणवैरायध्यानाभ्यासाहिंसासत्यवचनदमदानद्यादि तद्बुद्धादिभाषितं प्रमाणेनाविरुद्ध-

म भाषा म

मतिकाञ्छठान् । हैतुकान् वकवृतीं अ वाक्मात्रेणापि नार्चियत् ' मनु अ « ४ ऋो० ३ « (वेदवाह्य व्रत और चिह्न के धारण करने वाले बौद्धाभिक्ष आदि, बेदनिषिद्ध जीविका वाले विलंभगत अर्थात् हिंसक छली धर्मभ्वजी, बेद के बिषय में श्रद्धारहित, बेदबिरोधी तर्कों का बकने वाला और बकुछंभगत अर्थात् जो अपने बिनय दिखाने मात्र के छिये नीची दृष्टि रक्खे तथा अपने अर्थ में तत्पर और निर्दय हो, ऐसे लोग यदि अतिथि हो कर भी उपस्थित हों तो वचनमात्र से भी इन की पूजा न करें) इस वाक्य में पाखण्डी, विकर्मस्य और हैतुक (बेदविषद्ध तकों के बकते बाल) जो कहे हैं वे शाक्य आदि ही हैं। तथा उक्त द्वितीयसूत्र का यह भी भाव है कि 'या वेंदवाह्या: 0' जो स्मृतियां वेदमूलक नहीं हैं वा जिन में वेदविरुद्ध युक्तियाँ कही हुई हैं वे सब परलोक में निष्फल ही हैं क्योंकि मनु आदि ने ऐसी २ स्मृतियों को परलोक में नरकभोग कराने वाळी सारण किया है) इस वाक्य में मतु ने शाक्य आदि की स्मृतियों की निन्दा की है। तसात् दौद्ध, जैन, म्लेच्छ आदि की स्मृतियाँ धर्म के विषय में प्रमाण नहीं हैं।

ऐसे ही बेदबाह्य बुद्धादि की स्मृतियों में सत्य, आहंसा, आदि के जो वाक्य हैं वे यद्यपि श्रुति और स्मृति से बिरुद्ध नहीं हैं तथापि धर्म के बिषय में प्रमाण नहीं हो सकते इस वात को प्रश्न और समाधान के रूप से, मी० द० अध्याय १ पा० ६ शिष्टाकोपे विद्यमिति चेत्।।स्॰५॥ न शास्त्रपरिमाणलात् ॥ सू०६॥ इन सूत्रों से जैमिनिमहर्षि ने कहा है जिन का क्रम से यह तात्पर्य

है (जो कि बार्तिक में कहे हैं) कि-

प्र०—सत्य, आहंसा, आदि धर्म बेद में कहे हैं तथा हसी के अनुसार मनु आदि की समृतियों में भी, और वेदवाहा बुद्धादि की समृतियों में भी आहिंसा सत्य आदि के वाक्य हैं तथी वैदिक जनों में और वेदवाहा जनों में भी आहिंसा आदि धर्म का साधारणहर से प्रवार होती असिद्ध ही है इसी से उन को सामान्यधर्म कहते हैं। इस रीति से जैसे आहेंसा आदि

मिति चेका । शास्त्रपरिमाणत्वात् । परिमिताम्येव हि चतुर्दशाष्टादश वा विद्यास्थानानि धर्मप्रमाणत्वेन शिष्टैः परिगृहीतानि वेदोपवेदाक्षोपाङ्गाष्टादशधर्मसंहितापुराणशास्त्रशिक्षादण्डनीतिसञ्ज्ञकानि । नच तेषां मध्ये वौद्याहितादिग्रन्थाः स्मृता गृहीता वा ।

मतिकञ्चकरूपेण पूर्वशास्त्रार्थगोचरम् । यदम्यत्क्रियते तस्य धर्म मत्यममाणता ॥

तथाच प्रायिश्वचादिदानकाळे यो वाक्यमात्मीयमन्यकविकृतं वा श्लोकं सूत्रं वोचार्यं

॥ भाषा ॥

विषय में मनु आदि के स्मृतिवाक्य प्रमाण हैं वैसे ही बुद्धादि के स्मृतिवाक्य क्यों नहीं प्रमाण हैं ? क्योंकि उक्त विषय में बुद्धादि के स्मृतिवाक्यों की अपेक्षा मनु आदि के स्मृतिवाक्यों में कोई ऐसा विशेष नहीं कहा जा सकता कि जिस के अनुसार मनु आदि के वाक्य उक्तविषय में प्रमाण हों और बुद्धादि के नहीं।

ह०—धर्म में प्रमाण होने के योग्य अठारह १८ विद्यायें (जो कि पूर्व में दिखला दी गई हैं) गिनी हुई हैं जिन को कि अनादिकाल से सब वैदिक शिष्टजन बड़े आदर से प्रहण कर उन के अनुसार धर्म का अनुष्ठान करते चले आते हैं। उन के मध्य में बुद्ध जैन आदि बेदवाहों के प्रन्थों की गणना कदापि न थी और न अब है इस से उक्त बुद्धादिवाक्य धर्म में प्रमाण नहीं हैं।

प्र-उक्त विद्याओं में बुद्धादि के प्रन्थों की गणना न हो तथापि जो बुद्धादिवाक्य, श्रुति और स्मृति में कह हुए अहिंसा आदि धर्म का प्रतिपादन करते हैं उन के प्रमाण होने में वाधक क्या है ?

प०-यही बाधक है कि पूर्व में यह कहा जा चुका है कि धर्म किसी छौकिकप्रमाण का विषय नहीं है किन्तु किसी कर्म का धर्मरूपी होना केवल वेद हा से ज्ञात हो सकता है 'खाध्या-योऽध्येतव्यः ' (बेद अवश्य पदें) इस वाक्य (जिस के अर्थ का पूर्ण बिस्तार, बेददुर्गसज्जन के अर्थवादप्रकरण में कहा जा चुका है) से जैसे यह सिद्ध है कि ब्यार ्ण, निरुक्त आदि में ब्युत्पन हो कर आप से आप बेदपुस्तकों से अर्थ समझ कर उस के अनुसार किये बा कराये हुए यज्ञादि-कर्म, धर्म नहीं हैं अर्थात् ऐसे कर्मों से खर्गादिफळ का लाभ नहीं हो सकता किन्तु ब्रह्मचर्य भादि नियमों के साथ गुरुमुख से पढ़े हुए और मीमांसादर्शन से निर्णय किये हुए बेदार्थ के क्षानानुसार ही किये वा कराये हुए यज्ञादिकर्म ही धर्म हैं वैसे ही इसी बेदवाक्य से यह बिषय भाप ही आप कि इ कि बुद्धादिवाक्यों से अर्थ समझ कर उस के अनुसार किये हुए सत्य बोसना आदि कर्म भी धर्म नहीं हैं अर्थात् निष्फल ही हैं। और प्रसिद्ध ही है कि अपने रचित षा अभ्यक्षिरिचित गद्य वा पद्य रूपी वाक्य को पद कर यदि कोई पुरुष उन्हीं प्रायश्चित्तों को (जो कि मनुस्मृति आदि में कहे हुए हैं) उपदेश करे तो उस पर कोई पुरुष विश्वास नहीं करता अर्थात् उस वाक्य को धर्म में प्रमाण न मान कर उस का अनादर कर देता है और ऐसा ही एक रिष्टान्त यह भी है कि जारज (ब्यभिचार से चत्पन्न) मनुष्य का यद्यपि आकार सत्पुत्र ही के पेसा होता है और छौकिक कार्य भी उस से वैसे ही होते हैं जैसा कि सत्पुत्र से, तथापि बैदिक-विधि से जो अलौकिक विशेष, पुत्रों में चत्पन्न होते हैं वे जारज में नहीं होते हैं इसी से जारज के किये हुए वैदिककर्म, धर्म नहीं अर्थात् फलदाता नहीं होते, ऐसे ही चुद्धादिवाक्यों का खरूप मनु

मानवादिमायश्चित्तं द्याञ्चकश्चिदपि धर्मार्थं प्रतिपद्यतः ।
बेदेनैव।भ्यजुज्ञाता येषामेव प्रवक्तता ।
नित्यानामभिषेयानां मन्वन्तरयुगादिषु ।।
तेषां बिपरिवर्त्तेषु कुर्वतां धर्मसंहिताः ।
ध्वनानि प्रमाणानि नान्येषामिति निश्चयः ॥

तथा च 'मनोर्ऋचःसामिधन्यो भवन्ती' त्यस्य विधेविक्यशेषे श्रूयते। 'मनुर्वे यत्किश्चिद्वद्तस्त्रेषजं भेषजताया' इति प्रायश्चित्ताद्युपदेशवचनं पापब्याधेर्भेषज्य॥

मबैतच्छ्रतिसामान्यमात्रं नित्येऽपि संभवात् । यज्ञेऽध्वर्युरिव ह्यस्ति मनुर्मन्वन्तरे सदा ॥

॥ भाषा ॥

आदि के वाक्यों के ऐसा होता है और अर्थबोधरूपी छीकिककार्य भी उन की वैसा ही होता है जैसा कि मनु आदि के वाक्यों का तथापि उन के अनुसार किये हुए कर्म, धर्म नहीं होते अर्थात् उन से स्वर्गादिफळ का छाम नहीं होता क्यों के व वाक्य, गिनी हुई अष्टादश विद्याओं से बहिर्मृत हैं।

प्र०-इस में क्या प्रमाण है कि इन्हीं अष्टादशिवदाओं के वाक्य धर्म में प्रमाण हैं न कि अन्यवाक्य ?

उ०-उक्त अष्टादशिवद्याओं में चार विद्याएं अर्थात् ऋग्वेद आदि चार वेद अपीरुवेय और सदा निर्दोष होने के कारण धर्म में आप से आप प्रमाण हैं जैसा कि वेददुर्गसज्जन में दृहतर-युक्तियों सें पूर्व हीं सिद्ध हो चुका है और अन्य चतुर्दशिवद्याओं का धर्म में प्रमाण होना भी वेद ही से सिद्ध है। तात्पर्य यह है कि निन महाशयों का उपाधि (मनु आदि) वा नाम धर्मो-पदेशकों में वेद ने कहा है अथवा जिन का धर्मोपदेशक होना वेद से निकलता है उन्हीं के वाक्य धर्म में प्रमाण हैं और उक्त चतुर्दशिवद्याओं के आचार्यों हीं के उपाधि और नाम वेद में कहे हुए हैं तथा उन्हीं का धर्मोपदेशक होना वेद से निकलता भी है इसी सं केवल उक्त अष्टादशिवद्याएं धर्म में प्रमाण हैं न कि उस से विहर्भूत बुद्धादिवाक्य भी।

प्रमा०-(१) जैसे "मनोर्क्सचः सामिधेन्यो भवन्ति" (मनु की ऋचाओं से अपि में सिमिध् (काष्ठ डाछै) इस बिधि के वाक्यशेष (अर्थ करने बाला वाक्य) "मनुर्बे यिकि चिदवर त्त्रेषजं भेषजतायाः" (मनु जो कुछ अर्थात् प्रायश्चित्तादि का उपदेश करता है वह, पापरूपी ज्याधि का औषध है) इस बेदवाक्य से यह सिद्ध-है कि "मनु" उपाधि वाला महाशय अपने र समय पर धर्मोपदेशक होता है।

प्र०—मनु एक अनित्य पुरुषिवशेष है और जब उस की चर्चा बेद में है तब बेद अनित्य क्यों न हो ?

द०—जैसे प्रत्येकयज्ञ में अध्वर्ध आदि सोलह ऋितज् (कर्मकारी) होते हैं और हत के अध्वर्ध आदि नाम तथा काम बेद में कहे हुए हैं परन्तु इतने मात्र से बेद अनित्य नहीं ही सकता क्योंकि 'अध्वर्ध' आदि शब्द, किसी एक पुरुष का नाम नहीं है किन्तु हन र काम के करने वालों की हपाधि है जैसे 'प्राइविवाक' (जज) आदि, ऐसे ही 'मनु' शब्द भी किसी पुरुषविशेष का नाम नहीं है किन्तु अन्तर (७१ चतुर्धुग) तक धर्म के प्रवार और प्रजापाहनी

भतिमन्वन्तरं चैवं श्रुतिरन्या विधीयते। स्थिताश्र मनवो नित्यं कल्पे कल्पे चतुर्दश॥ तेन तद्धाक्यचेष्टानां सर्वदैवास्ति सम्भवः। तदुक्तिशापनाद्धेदो नानित्योऽतो भविष्यति॥ प्रतियशं भवन्त्यन्ये सर्वदा षोडशर्तिंजः। आदिमत्त्वं च वेदस्य न तचारितवन्धनात्॥

इति च-

यथर्चा हुता छिङ्गानि नाना रूपाणि पर्यये।
हरयन्ते तानि तान्येव तथा भाति युगादिषु ॥ इति ॥
हतिहासः पुराणं च कुत्रिमत्वेन निश्चिते।
सथाप्यकुत्रिमे वेदे ताद्विद्यात्वेन सम्मतम्॥

एवं शुपनिषत्स्क्तम् । 'ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यज्ञवेदं सामवेदमथर्बवेदं चतुर्थमिति-हासहराणं पश्चमि । ति तेन प्रतिकल्पमन्वन्तरयुगानियतिनत्यऋषिनामाभिधेयकुत्रिमिविद्या-स्थानकारा ये वेदेऽपि मन्त्रार्थवादेषु श्रूयन्ते तत्प्रणीतान्येव विद्यास्थानानि धर्मज्ञानाङ्गत्वेन ॥ भाषा॥

आदि कर्मों के अधिकारी पुरुष का उपाधि है और प्रातिकरूप अर्थात् ब्रह्मदेव के दिन में चौदह २ अन्तर होते हैं तथा प्रति अन्तर में एक २ मनु होता है।

प्रमा०—(२) " ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमथर्वेवेदं चतुर्थमितिहासपुराणं पश्चमम् " छा० उ० प्रपा० ७ (हे भगवन् में ऋग्बेद, यजुर्वेद, सामबेद, अथर्वबेद चतुर्थ और इतिहास, पुराण पांचवां पढ़ चुका हूं) इस वाक्य से इतिहास और पुराण के कर्ता (ब्यास) का धर्मीपदेश होना सिद्ध है। और 'मनु' उपाधि की नाई "ब्यास" भी वेद के बिभागकर्ता की हपाधि है अर्थात् किसी समयिवशेष में कोई ज्यास होता है जैसे इस समय कुष्णद्वैपायनमहार्ष ज्यास हैं निदान "ज्यास" भी किसी एक पुरुषविशेष का नाम नहीं है। और इतिहास, पुराण भी असी के रिचत होते हैं जो कि ज्यास होता है। तात्पर्य यह है कि इतिहास और पुराण के धन्य प्रतेष ध्यास के अन्यान्य ही होते हैं परन्तु इतिहास और पुराण की परम्परा, मनुओं तथा अध्वर्यु आदि मालिजों और व्यासों की परम्परा के समान अनादि ही है। और उक्त बेदवाक्यों का तत्पर्य यही है कि मनु और ज्यास जी कुछ धर्मीपदेश करते हैं वह बेदवाक्यों ही के अनुसार करते हैं इस से यदि किसी समय में कतिपय बेद्शाखाएं छप्त हो जावें और मनु तथा ज्यास के बाक्यों का मूल, वर्तमान बेद्शाखाओं में न मिले तब भी यहीं निश्चय करना चाहिये कि उन का मूल, बेद की छप्तशाखाओं में अवस्य है और इसी निश्चय से 'मनु' और 'ब्यास' के उपदेश-षाक्यों के अनुसार कर्मी का अनुष्ठान करना चाहिये और ऐसे अनुष्ठितकर्मों से स्वर्गादिफल का लाभ अवश्य होता है। ऐसे ही बैदिकअर्थवादों और उपनिषदों में ब्रह्मा, अङ्गिरा, नारद, वृहस्पति, याज्ञवरूक्य आदि नाम और ऋषिवंशों की परम्परा सैकड़ों स्थानों पर वेद में कही हुई हैं वे भी सामान्य से भूत, भविष्यत्, बर्तमान अनेक ऋषियों के एक २ नाम हैं न कि किसी एक ही व्यक्ति के, अर्थात् एक नाम के अनेकऋषि भिन्न २ काल में उत्पन्न हुआ करते हैं और एक प्रकार के नाम के अनेक बंश भी भिन्न २ काल में उत्पन्न हुआ करते हैं और उन नाम और बंशों के

सम्मतानि । तथाच, ऋग्वेदादिबिहितयज्ञाङ्गभ्रेषप्रायश्चित्तविद्यानिश्वाय (यथाविज्ञात) इति प्रायाश्चतान्तर । १९५५ वर्ष नामानु । १९५० । १९ थादि च स्मर्थमाणबेदमूलग्रन्थनिबन्धनानामबिज्ञातबेदबिशेषपूर्वकत्वेनापि स्थितानां प्रामाण्यं

तसाचान्येव शास्त्राणि बेदमुळानतिक्रमात् । अवस्थितानि तैरेव ज्ञातो धर्मः फलपदः ॥ यथैवान्यायविज्ञाताद्वेदालेख्यादिपूर्वकात् । श्रुद्रेणाधिगताद्वाऽपि धर्मज्ञानं न सम्मतम् ॥ तथाऽतिक्रान्तवेदोक्तमयोदाब्यवहारिणाम् । संवादिष्वापि बाक्येषु नेष्यते धर्महेतता ॥

॥ भाषा ॥

ऋषि, अपने २ समय में धर्मोपदेश किया करते हैं इस से उन की रचित स्मृतियां धर्म में प्रमाण होती हैं परन्तु बेदवाह्यबुद्ध आदि के नाम का उल्लेख बेद में कहीं नहीं पाया जाता इसी से इन के कोई वाक्य धर्म में प्रमाण नहीं हैं।

प्रमा॰ —(३) बैदिकयज्ञों के अङ्गवस्तुओं के बिगड़ जाने पर उस का प्रायश्चित्तरूपी अनेक प्रकार कर्मों के विधान के अनन्तर एक दूसरे प्रायश्चित्त का विधान बेद में है उस का यह वाक्य है "यद्यविज्ञाते" (यज्ञ के जिस अङ्ग का बेंद् में पठित अर्थात् प्रत्यक्ष विधान करने बाले वाक्य न मिलें वे अङ्ग यदि बिगड़ जायँ) इत्यादि । अब ध्यान देने की बात है कि प्रतक्ष-पिठत बेदवाक्य से जिन वस्तुओं का यज्ञ में बिधान है उन के बिगड़ने के निमित्त से तो पूर्व में प्रायश्चित्त सब कहे जा चुके हैं और इस वाक्य में "अबिज्ञात" शब्द कहा हुआ है जिस का वह बस्तु, अर्थ है कि जो बिशेषरूप से (प्रत्यक्षपिठत बेदवाक्य के द्वारा) बिज्ञात नहीं है तो ऐसा बस्तु किस प्रमाण के अनुसार यज्ञों में प्रहण किया जाता है ? कि जिस के बिगड़ने के निमित्त से इस प्रायाश्चित्त का विधान बेद में है अर्थात् यदि ऐसे स्मृतिवाक्य (जिन का मूल प्रतक्ष वेद-शाखाओं में नहीं मिलते किन्तु बेद की लुप्तशाखाओं में उन के मूल का अनुमान होता है) धर्म में प्रमाण न माने जायँ तो यज्ञ में कोई वस्तु ऐसा अङ्ग नहीं हो सकता जो कि अविज्ञात कहा जा सके, क्योंकि घृत, तण्डुल, आदि तथा सत्य, द्या, द्यान, आदि यज्ञाङ्क तो बेद में प्रसक्ष ही बिहित होने से विज्ञात ही हैं और उन के बिगड़ने के निमित्त से प्रायश्चित्त भी पूर्व में कहे ही गये हैं इस से उक्त प्रायश्चित्तविधान ब्यर्थ ही हो जायगा। और जब उक्त प्रकार के स्मृतिवाक्य भर्म में प्रमाण हैं तब उन के अनुसार जो वस्तु यज्ञों में लगाये जाते हैं वे ही उक्त बेदवाक्य के 'अविज्ञात' शब्द से लिये जायँगे क्योंकि वे ही बिशेषरूप अर्थात् प्रत्यक्षपाठित बेदवाक्य से ज्ञात नहीं हैं किन्तु उक्त स्मृतिवाक्यों से अनुमान किये हुए उन बेदवाक्यों से ज्ञात हैं जो कि बेद की कुप्रशाखाओं में हैं। और उन्हीं वस्तुओं के बिगड़ने के निमित्त से इस प्रायाश्चित्त का बिधान सफर है। इस रीति से यह अविज्ञात के विगड़ने के निमित्त से प्रायश्चित्त का विधान करने वाला वेद बाक्य, स्पष्टरूप से इस विषय को सिद्ध करता है कि मनु आदि के स्मृतिवाक्य धर्म में प्रमाण है तथा जब बुद्ध आदि के बहुत से ब्यवहार, पूर्वीक्तरीति से बेदिबिरद हैं तब उन के वाक्य, किसी

स्मर्थ्यन्ते च पुराणेषु धर्मबिप्छितिहेतवः। कलौ शाक्यादयस्तेषां को वाक्यं श्रोतुमहिति॥ यथा कुतककपूरसुवणीदिषु दीयते। तद्धीनं तदपि व्यक्तमग्राह्यत्वात्मलीयते॥

तेन कर्मातिसारूप्यसामान्यतोदृष्टार्थापत्तिबलात्तद्भिप्रायकित्पत्थर्मभासमध्यपतितं सन्मूलमप्यहिंसादि श्वदृतिनिःक्षिप्तक्षीरवदनुपयोग्यविस्नम्भणीयं च तन्मात्रोपलब्धं भव-त्रीत्यवद्यं यावत्परिगणितधर्मशास्त्रभ्यो नोपलभ्यते तावद्यात्ः भवति ।

यदा शास्त्रान्तरेणैव सोऽर्धः स्पृष्टोऽवधार्यते । तदा तेनैव सिद्धत्वादितरत्स्यादनर्थकम् ॥

तसाद्यावत् परिगाणितबेदादिशास्त्रब्यतिरिक्तनिवन्धनं तद्धर्मप्रमाणत्वेन नापेक्षित्व्यमिति ।

नतु शाक्याद्यागमानां वेदमूलकत्वाभावात्स्मृतितयाप्रामाण्याभावेऽपि वेदत्वेन खतन्त्र तत्प्रामाण्यं क्वतो न स्यात् वेदे कठादीनामिव तत्तदागमेष्विप शाक्यादीनामिप प्रवक्तताया एवोपेयत्वात् इति चेन्न । अस्याक्षेपस्य भगवता जैमिनिनैव परिहृतत्वात् । तथाच —

मीमांसादर्शनस्य १ अध्याये ३ पादे ७ अधिकरणस्य ।

सूत्रे मयोगशास्त्रमिति चेत् ॥ ११ ॥ नासन्नियमात् ॥ १२ ॥ इति ।

॥ भाषा ॥

धर्म में कैसे प्रमाण हो सकते हैं ? और पुराणों में बुद्ध आदि, किलकाल में धर्मलोपक लिखे हुए हैं तो धर्म के बिषय में उन के वाक्य कैसे सुनने योग्य हैं ? और यह भी है कि जब अनादि बदवाक्यों से अहिंसा आदि धर्म का निश्चय पूर्व में हो ही चुका है तो बेदवाह्य बुद्ध आदि के वाक्यों से उस का निश्चय करना ब्यर्थ और अनु।चित ही है तथा बेदवाह्य लोग, जिन अनुमानों के अनुसार धर्म और अधर्म की ब्यवस्था करते हैं उन अनुमानों का पूर्णक्र से खण्डन, 'औत्पित्तक' सूत्र ही पर हो चुका है (जो कि इस प्रन्थ के बेददुर्गसज्जनप्रकरण में भी कहा जा चुका है) इस । छिये अब यह सिद्ध हो चुका कि उक्त १८ बिद्याओं से बाहिर्भूत कोई वाक्य धर्म में प्रमाण नहीं है।

प्र०—यह मान लिया गया कि बुद्धादि के वाक्य, बेदमूलक न होने से स्मृतिक्षी हो कर घर्म में प्रमाण नहीं हो सकते तथापि बेदरूपी हो कर वे धर्म में स्वतन्त्रप्रमाण क्यों नहीं होते ? ताल्य वह है कि जिन वाक्यों को सामान्य लोग बुद्ध आदि के रचित बतलाते हैं वे वाक्य किसी के रचित नहीं हैं किन्तु अनादि और अपीरुषेय अर्थात् बेद ही हैं और जैसे बेद की शाखाएं कठ आदि करियों की राचित नहीं हैं किन्तु कठ आदि के पढ़ाने के कारण उन का काठक आदि नाम कहा जाता है वैसे ही बुद्ध आदि उन के पाठक हैं इसी से बुद्धवाक्य, जैनवाक्य, म्लेच्छवाक्य, इलादि ब्यवहार इन के बिषय में लोगों के होते हैं।

ए०—इस प्रश्न का समाधान पूर्ण मीठदर अध्यार १, पार ३, अधिर ७, "प्रयोग-शास्त्रिमिति चेत् ११, नासित्रयमात् १२" इन प्रश्नोत्तररूपी सूत्रों से जैमिनिमहर्षि ने किया है और इन सूत्रों के, क्रम से बार्तिकोक्त ये अर्थ हैं जो छिखे जाते हैं कि— अत्र बार्तिकम्

शाक्यादिनिर्मिते धर्मशास्त्राभासे निराकृते। धर्मप्रयोगशास्त्रत्वं तस्य बेद्मिहोच्यते ॥ येनैवाकृतकस्वं हि बेदस्य प्रतिपाद्यते । न्यायेन तेन शाक्यादिग्रन्थस्यापि भविष्यति ॥ बोधकत्वोत् प्रमाणत्वं स्वतस्तस्यापि लभ्यते । नच सन्दिह्यते बुद्धि न विषयर्यते क्वित् ॥ अकर्जुकतया नापि कर्नुदोषेण दुष्यति । बेदवद्बुद्धवाक्यादि कर्तृस्मरणवर्जनात्।। बुद्धवाक्यसमाख्याऽपि प्रवक्तृत्वनिबन्धना । तदृष्टत्वनिमित्ता बा काठकाङ्गिरसादिवत् ॥ यावदेवोदितं किश्चिद्धेदमामाण्यसिद्धये। तत्सर्वे बुद्धवाक्यानामतिदेशेन गम्यते ॥ तेन प्रयोगशास्त्रत्वं यथा बेदस्य सम्मतम्। तथैव बुद्धशास्त्रादेवीत्तुं भीमांसकोऽहीति ॥ इति ॥ ११ ॥ एवं माप्ते बदामोऽत्र तन्नासन्त्रिययमादिति । असन्निबन्धनं ह्यतस्पूर्वोक्तं सर्वमृद्धियते ॥ इहैका परमार्थेन बुद्धिरथें षु जायते । अन्या भ्रान्तिरजाताऽपि स्वन्या जाताऽपि दुष्यति ॥ परेण सह केषाश्चिद्वाकोवाक्यानि जल्पताम्। उक्तयः पातिभासिकयो जायन्ते प्रवाक्यतः॥

प्र०-जिन २ युक्तियों से बेद की अपीरुषेयता पूर्व में सिद्ध की गई है उन्हीं युक्तियों से चुद्धादि के प्रन्थों में भी अपीरुषेयता सिद्ध हो सकती है और पूर्वोक्तरीति से जब सब ही ब्रान आप से आप प्रमाण होते हैं तब बुद्ध आदि के प्रन्थों से जो ज्ञान होता है वह भी आप से आप प्रमाण हैं इस से वे प्रन्थ भी स्वत:प्रमाण हैं और उन प्रन्थों का भी कोई कर्ता नहीं है इसी से कर्ता के दोषानुसार उन प्रन्थों को कोई अप्रमाण नहीं कह सकता तथा उन प्रन्थों के विषय में खुद्धवाक्त्य आदि ब्यवहार बुद्ध आदि के पढ़ाने से है न कि रचना करने से। इस लिये बुद्ध आदि के प्रन्थ भी बेद के तुल्य प्रयोगशास्त्र (धर्म के स्वतन्त्र उपदेश) क्यों नहीं हैं। यही ताल्पर्य उपमस्त्र का है।

उ०-(१) उक्त द्वितीयसूत्र के चार तात्पर्य हैं इस से ३ उत्तर निकलते हैं जैसे कि गुढ़ आदि के प्रनथों में बेद की जो २ तुल्यता दिखलायी गई है उस में कोई प्रमाण बा तर्करूपी नियम नहीं है इस लिय वह निर्मूल ही है क्योंकि प्रमाणों के ओर से आंखें मीच कर इक्त रीति से जो जिस्र-प्रनथ को चाहे बंद कह सकता है क्योंकि बंद का खरूप सिद्ध ही है उस में बेद के अर अपीर पेप विद्य ही है उस में बेद के अर अपीर पेप विद्य ही है तथा बेद से से अपीर पेप विद्य ही है तथा बेद से अपीर पेप विद्य ही है से अपीर प

स्वसंबेद्यं च सिद्धान्त मात्मीयमपि जानताम्। छायां तथापि रक्षन्तो जल्पन्ति प्रतिशब्दकैः ॥ यथा मीमांसकत्रस्ताः शाक्यवैशेषिकादयः। नित्यमवागमोऽस्याक मित्याहुः शून्यचेतनम् ॥ पद्धेषाद्धेदपूर्वत्वमनिच्छन्तः कथंचन । तन्मात्रेऽपि च भूयिष्ठामिच्छन्तः सत्यवादिताम् ॥ भूयसां वेदवाह्यत्वाद् बुद्धादिवचसाममी। अहिंसाद्यप्यतत्पूर्वमित्याहुस्तर्कमानिनः ॥ ततश्च पौरुषेयत्वादमामाण्यमतीन्द्रिये। पयुक्तेर्वेदानित्यत्व-वागाभासैर्विमोह्यते ॥

यादशतादशमीमां सकैरप्यतीन्द्रियविषयपुरुषवचनप्रामाण्यानिराकरणादपौरुषेयत्वा-ध्यवसायनिराकृतकारणदोषाशङ्कनिरपवादपामाण्यसिद्धि **मतिइन्तुमशक्यां** निरुत्तरीभूता बालानुकरणवाक्यसहर्त्तैः खवाक्यैब्यवलिख्यमानहृद्याः सन्तोऽपि प्रक्षीण-ह्नहेतुवचनजाद्धाः कन्यावरणार्थागतमूर्खबरगोत्रपश्चोत्तरवत् ।

यदेव भवतां गोत्रं तदस्माकपपीतिवत्। आहुः स्वागमनित्यत्वं परवाक्यानुकारिणः ॥ अस्मद्रीयामिदं वाक्यं भवतामिति चोदिताः। जल्पन्त्यस्माकमेवैतच्छ्रत्वामीमांसकैईतम् ॥ त्यक्तरुजं ब्रुवाणो हि वाचोयुक्तिपनर्थिकाम्। क्कर्वन् परातिसन्धानमश्रान्तः कोऽवसीद्ति ॥ तत्र शाक्यैः प्रसिद्धाऽपि सर्वक्षणिकवादिता । त्यज्यते बेदसिद्धान्ताज्जलपद्भिनित्यमागमम्।

भन्य चतुर्दश बिद्याओं में बेद्दव और अपौरुषेयता की बुद्धि यदि किसी को होती हो तो वह यथार्थ नहीं है क्यों कि मनु आदि कर्ताओं की टढ प्रसिद्धि और "मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" इत्यादि महर्षिवाक्यों का विरोध, उस बुद्धि का बाधक है और बौद्धादि के प्रन्थों में तो बेदत्व और अपीरिषेयता की बुद्धि यदि किसी को हो भी तो बौद्धादि के सिद्धान्त ही उस बुद्धि के बाधक हैं म्योंकि वे स्वयं अपने प्रनथ को बेद नहीं कहते और यह भी कहते हैं कि यह प्रनथ बुद्धादि के रिचित हैं। वास्तविक बात यह है कि जब बेद की अपौरुषेयता और स्वतः प्रमाणता का खण्डन भोद आदि कर नहीं सके तो उन्हीं मीमांसा की युक्तियों को (जो कि बेद की अपैक्षियता और खत:-ममाणता के विषय में कही हुई हैं) अपने प्रन्थों के विषय में लगा कर और अपने सिद्धान्तों को जान भूत कर भी भूला सा बेना कर उक्त प्रश्न कर सकते हैं और यद्यपि अपने प्रनथ को बेदमूलक कह कर भी वे प्रमाण बना सकते हैं तथापि द्वेष और लजा के कारण वैसा नहीं करते और जब धर्म की छोकिकप्रमाण से अगम्य सिद्ध कर बुद्धादिवाक्यों के प्रमाण होने का खण्डन मीमांसक ने किया भीर बैद्धि आदि उस का समाधान न कर सके तभी अपने सिद्धान्तों को भूल कर मीमांसक ही

धर्मस्तेनोपदिष्टोयमानित्यंसर्वसंस्कृतम् । क्षणिकाः सर्वसंस्कारा अस्थिराणां कृतः क्रिया ॥ बुद्धिबोध्यं त्रयादन्यत्संस्कृते क्षणिकं च तत् ।

तथा शब्देऽपि बुद्धेर्नियमाश्राभिव्यक्तिर्धेघाऽपिदोषादित्येवमादिश्वः सर्वदा पदार्थसम्बन्धाः नित्यत्वप्रतिपादनात्तिद्विपरातमागमिनत्यत्वमभ्युपगम्यमानं क्रोकोपहासास्पद्मात्रमेव भवेत्॥ तथा हि—

यस्तन्त्न नुपादाय तुरीमात्रपरिग्रहात्। पटं कर्तुं समीहेत स हन्याद् ब्योम सुष्टिभिः॥ यावदागमनित्यत्व - बेश्मदारूपकलिपते। हेत्वाभासाग्निनिर्दग्धे तस्मिस्तद्वेश्म दुष्करम्॥

ब्यवहारनित्यताशब्दश्च क्रियानित्यत्वपर्यायः तद्यस्य शब्दार्थसम्बन्धानामनित्यत्वे तस्य तदाश्रयब्यवहारनित्यत्वं किमाधारं भविष्यतीत्यतिदुःसम्पादम् ।

> तच शब्दार्थसम्बन्ध-क्टस्थत्वमनिच्छताम् । नित्यता ब्यवहारस्य निराधाराऽवकल्पते ॥ शब्दादिषु बिनश्यत्यु ब्यवहारः क वर्तताम् । स्थितैषा धर्मतेत्येतदर्थशून्यमतो वचः ॥ एषेत्यपि न निर्देष्टुं शक्या क्षणबिनाशिनी । किम्रुत स्थितया साक-मेषेत्यस्यैकवाक्यता ॥

तेनानित्यशब्दवादिनामागमनित्यत्वानुपपत्तेः अनित्यस्य च वाक्यस्य प्रयोगशास्त-त्वाभावात् नासन्नियमादित्युच्यते ॥

असाधुशब्दभूयिष्ठाः शाक्यजैनागमादयः। असिन्वन्धनत्वाच शास्त्रत्वन्न प्रतीयते॥

मागधदाक्षिणात्यतदपभ्रंशप्रायासाधुशब्दिनबन्धना हि ते। ममिव ही भिक्खवे कम्भव्य इसीसवे। तथा उक्खित्ते छोडिम्मि उच्वे अत्थि कारणं पडणे णितथ कारणम्। अणुभवे

के सिद्धान्त को अपना सिद्धान्त बना कर वे ऐसा प्रश्न कर सकते हैं क्योंकि जब बुद्ध, सब परार्थ को क्षणिक मानते हैं तो अपने प्रन्थ को नित्य कैसे मानेंगे और हारने पर भी प्रतिवादी के सिद्धान्त को अपना बना कर यदि कोई यह कहैं कि मेरे ही सिद्धान्त को तुम चुरा कर छे गये ही तो क्या कोई इतने से बिजय पा सकता है ? और जब घटादि शब्द और घड़ा आदि अर्थ और इत के परस्पर में सम्बन्ध को बौद्धादि, अनित्य कहते हैं तब अपने प्रन्थ को वे नित्य कैसे कह सकते हैं। परस्पर में सम्बन्ध भी तो शब्दरूपी ही हैं। यह द्वितीय सू० का प्रथम तात्पर्य है।

उ०—(२) बुद्ध जैन आदि के प्रन्थों में जितने शब्द हैं वे प्राय: ब्याकरण के तियम से शून्य हैं अर्थात् असाधु और अशुद्ध हैं जैसे "ममिव ही भिक्खवे कम्मवधिसंसवे" (है भिक्षवें गण मेरे भी शरीरधारण करने तक कर्म होते ही हैं) इस की छाया संस्कृत "ममिषि हि

कर्म वर्तत एव आ शरीरपातात्"

कारणं इमे सङ्गढा धर्माः सम्भवन्ति सकारणा अकारणा विणयन्ति।। अणुप्पत्तिकारणमि-

ततश्रासत्यशब्देषु कुतस्तेष्वर्थसत्यता। दृष्टापश्रष्टक्षेषु कथं बा स्यादनादिता॥

बेदे हि तावदेव पदवाक्यसङ्घातात्मकत्वादिहेत्वाभासैः कृतकत्वभ्रान्तिर्भवति ।

यावद्वहिरवस्थानाद्वेदरूपं न दृश्यते।
ऋक्सामादिस्वरूपे तु दृष्टे भ्रान्तिर्निवर्तते॥
आदिमात्रमपि श्रुत्वा वेदानां पौरुषेयता।
न शक्या ऽध्यवसातुं हि मनागपि सचेतनैः॥
दृश्यव्यवहारेषु वाक्येंकोंकानुसारिभिः।
पदेश्व तद्विधेरेव नराः काच्यानि कुर्वते॥
प्रपाठकचतुःषष्टि-नियतस्वरकैः पदैः।
क्रोकेष्वप्यश्रुतमायैर्ऋग्वेदं कः करिष्यति॥
आग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमामित्येतन्तृवचः कथम्॥
॥ भाषा॥

'' छाक्लित्ते छोडिक्सि उच्चे अश्थि कारणं पहणे णिश्य कारणम् अणुभवे कारणं इसे सङ्कृडा धर्माः सम्भवन्ति सकारणा अकारणा बिणसान्त अणुष्पत्ति कारणं " (छोष्ट अर्थात् ऊपर फेंके हुए ढेले के, ऊपर जाने में कारण है गिरने में कारण नहीं है और लोष्ट के उत्पात्त में भी कारण है ये सब काम कारण से हो सकते हैं। वस्तु के नाश में कोई कारण नहीं है किन्तु उत्पत्ति में कारण की अपेक्षा है) छाया सं० " उत्थिप लोष्टे उत्थेपे अस्ति कारणम् पतने नास्ति कारणम् अस्ति उद्भवे च कारणम् इमे च संस्कृता धर्माः सम्भवन्ति सकारणा अकारणा विनश्यन्ति । उत्पत्तिम् अनु कारणम् अपेक्षन्ते "। इत्यादि बुद्धादि के प्रनथों में मागधी और दाक्षिणात्य भाषा के शब्द प्रायः रहते हैं जो कि अपभ्रंश (अशुद्ध) हैं और उन में भी बहुत से शब्द ऐसे हैं जो कि इक्त भाषाओं के नियम से भी बिरुद्ध हैं अर्थात् वे शब्द अपभ्रंश के भी अपभ्रंश (अति अशुद्ध) हैं। इस रीति से जो शब्द, स्वयं अतिश्रष्ट हैं उन के किये हुए उपदेश में सत्यता की आशा कैसे हों सकती है ? और ऐसे शब्दों से प्रथित वाक्यों के अपीरुषेय और अनादि होने का सम्भव भी कैसे हो सकता है ? बेद में तो तब तक ही यह भ्रम रहता है कि "बेद जब वाक्यरूपी है तव लोकिकवाक्य के नाई पौरुषेय है" जब तक बेद का खरूप प्रसक्ष नहीं होता। तात्पर्य यह है कि भाषेद आदि के प्रथम हीं वाक्यों के सुनने से उन के पौरुषेय होने का अम दूर भागता है समस्त बेदों की तो बात ही न्यारी है। और बेद का तो यह स्वरूप है कि ऋग्बेद की एक मनत्र-संहिता में ६४ प्रपाठकं हैं जिन में एक २ पद उदात्त आदि खरों से नियमित हैं और यह नियम अनादिकाल से एकरस चला भाता है तो ऐसे ऋग्बेद की रचना कीन कर सकता है ? तथा उक्त-संहिता के आरम्भ ही में 'अग्निमीले पुरोहितम् यज्ञस्य देवमृत्विजम् होतारं रत्नधातमम्' (में अर्थात् होतानामक ऋत्विक्, अग्निनामक देवता की स्तुति करता हूं जो कि यज्ञ के पूर्वभाग में

किमालोच्य क वा दृष्ट्वा वाक्पतिच्छन्दमीदृशस् ।
इन्चयेत्पुरुषो वाक्यं कि चोद्दिश्य प्रयोजनम् ॥
अग्नेः पुरोहितत्वं च क दृष्टं येन कीर्त्यते ।
ईलेशब्दप्रयोगश्च क दृष्टः स्तोन्नगोचरः ॥
देवत्वं चास्य यद्मस्य विदितं कोपलक्षितम् ।
विधिनैव हि देवत्वं प्रतिकर्मावधार्यते ॥
न जात्या देवतात्वं हि कचिदस्ति ब्यवस्थितम् ।
होतृत्वमपि यत्तस्य देवताहानहेतुकम् ॥
स्त्रधायितमत्वं च तन्नरैर्न्नायते कथम् ।
अविज्ञातगुणानां च कल्पते स्तवनं न तः ॥
स्त्रतन्त्रो वद्पवैतत्केवलो वक्तुमहिति ।
इषेत्त्वेत्ययमप्यर्थः पुरुषेणोच्यतां कथम् ॥
शाखाच्छेदोपयोगश्च पुम्भिरुत्नेक्ष्यतां कृतः ।
एवमूर्जेत्ययं मन्त्रः केन शाखाऽनुमार्जने ॥
वक्तुं शक्यो नियोक्तुं वा बुद्धिपूर्वककारिणा ।

॥ भाषा ॥

शाहवनीयरूप से स्थित और दान आदि गुण से युक्त है तथा देवताओं के किये हुए यहाँ में होतानामक ऋत्विक् है और यहां के फलरूपी रहों का धारण करने थाला है) यह मनत्र कैसे भनुष्यरचित हो सकता है क्योंकि क्या समझ कर और कहां देख कर तथा किस प्रयोजन के लिये मनुष्य ऐसे वाक्य को बनावैगा ? अग्नि का पुरोहित होना लोक में कहां देखा गया है ? कि उस को बनावैगा ! लोक में "ईले" इस शब्द का प्रयोग स्तृति अर्थ में कहां होता है ? कि जिस के अनुसार यहां पुरुष, वैसा प्रयोग करैगा। तथा देवतारूपी अर्थ, केवल वेतें ही से ज्ञात हो कर लोक में प्रचलित है तो ऐसी दशा में बेद से प्रथम, 'देव' शब्द का अर्थ कीई मनुष्य कैसे जान सकता है कि जिस से इस मन्त्र में अग्नि को 'देव' शब्द के वह कहेगा और यह भी मनुष्य नहीं समझ सकता कि आग्नि, अन्य देवताओं के होता और उक्तरहों के धारण करने वाले हैं। और जब आग्नि के ये गुण, पुरुष को ज्ञात ही नहीं हो सकते तब पुरुष, घेसे इन गुणों से आग्नि की स्तृति कर सकता है ? बेद तो स्वतन्त्र और अनादि है इसी से ऐसे शिसे इन गुणों से सत्ति करना केवल बेद ही का काम है।

शुक्त यजुर्वेद की एक मन्त्रसंहिता के आरम्भ में "इषेट्वा" (हे पळाडा की शाखा। वृष्टि के िळये तुसे काटता हूं) इस वाक्य को भी पुरुष कैसे बना सकता है किया में उपयोगी है। इस वाक्य से प्रथम, यह कैसे ज्ञात हो सकता है कि यह मन्त्र, शाखा के छेदन में उपयोगी है। ऐसे ही "ऊर्जेत्वा" (जलगत मधुरस के लिये तुसे सूधी करता हूं) इस मन्त्र को भी कीन पुर्ष रचना कर सकता है क्यों कि इस से प्रथम, पुरुष को यह ज्ञात ही नहीं हो सकता कि इस मान्त्र के शाखा को सूधी करने से रसला कि इस मन्त्र के शाखा को सूधी करने से रसलाभ होता है तथा यह भी ज्ञात नहीं हो सकता कि इस मान्त्र के शाखा को सूधी करना चाहिये। "बायवः स्थ" (हे बछरा ! तुम बायु हो जावो क्योंत् बायु के शाखा को सूधी करना चाहिये। "बायवः स्थ" (हे बछरा ! तुम बायु हो जावो क्योंत् बायु के

बायवःस्थेत्ययं मन्त्रो बत्सायाकरणं प्रति॥ एकशो बिनियोक्तव्य इति कः कथयिष्याति।

बायुशब्देन बहुवचनान्तेन मातुर्वियोज्यमान एकैको बत्सोऽभिधीयत इति नैतद्भुद्धिपूर्वकारिणा चिन्तितुं शक्यम् ।

सामबेदे यदोग्नाईप्रभृतीनां प्रयुज्यते । रूपं तत्रापि पौँस्तत्वे नाभिपायोऽस्ति कश्चन ॥

को नाम बुद्धिपूर्वकारी पुरुषोऽर्थाभिधानपराणामृगक्षराणां लोकव्याकरणादिष्वन-वगतपूर्वमग्रहत्यस्य पदस्याकारमोकारेण प्लतेन विक्रयीत् ॥

तथा बीतयइत्यस्मिन्नीकारस्यापि विक्रियाम् ।
तशब्दस्य च तोशब्दं एशब्दस्यानिरूपताम् ॥
को मृढो बुद्धिपूर्वो वा नियमात्कलपयिष्याते ।
तेन बेदस्वतन्त्रत्वं रूपादेवावगम्यते ॥
किश्चिदेव तु तद्वाक्यं सहशं लोकिकेन यत् ।
तत्रापि छान्दसी मुद्रा हश्यते सूक्ष्मदर्शिभः ॥

एवं च यदाऽध्येतारोऽध्यापियतारः पार्श्वस्था वा बेदपदवाक्यतदर्थस्पाण्या-स्रोचयन्ति तदा स्वसंबेद्यमेवापौरुषेयत्वमध्यवस्यान्ति ॥ तावता तु वाह्यतार्किकाणां प्रतीति-

॥ भाषा ॥

समान अपने माता के समीप से चले जावो) इस वाक्य का भी रचना मनुष्य कैसे कर सकता

है १ क्यों कि मनुष्य को यह नहीं ज्ञात हो सकता कि गौओं से बछरों को अलग करने में इस

मन्त्र का अपयोग है और यह भी नहीं ज्ञात हो सकता कि "बायु" शब्द से बछरे कहे जाते हैं।

किन्तु उक्त तीन वाक्यों का अर्थ, कम से, ब्राह्मणभाग के इन तीन वाक्यों ने बतलाया है "बृष्ट्येतदाह यद्राहेषेत्वेति " (१, ७, १, २) (इषेत्वा यह मन्त्र बृष्टि के लिये कहा जाता है) "यो बृष्टादूर्मसो जायते तसी तदाहिति" (१, ७, १, २,) (बृष्टि के जल में जो मधुर रस है उस के लाभार्थ
"ऊर्जेत्वा" (यह मन्त्र पढ़ा जाता है)

"बायवः खेलाह बायुर्वा अन्तिरिक्ष साध्यक्षां उन्तिरिक्ष देवताः खलु पश्वो बायव एवेतान् परिद्रातीति" ।। ते० व्रा० ।। (आकाश का स्वामी अर्थात् उस में सदा चलने वाला बायु है और आकाश, पशुओं का देवता है इस लिये बायु ही के अर्थ इन को देता है) इन तीन बाद्याणवाक्यों में भी जो बातें कही गई हैं वे इन वाक्यों से प्रथम, पुरुष की चिन्ता में कदापि नहीं आ सकतीं कि जिस के अनुसार इन बाक्यों को पुरुषरिचत कहा जाय। ऐसे ही साममन्त्र की संहिता के गानभाग में प्रथम हीं "अप्र श्रासाहि बीतये" इस ऋचा में "अप्रे" के स्थान में "ओप्राई" कहा है पुरुष, इस की रचना कदापि नहीं कर सकता क्यों कि लोक और व्याकरण के अनुसार आप्रि के सम्बोधन में, आप्रिशब्द का "अप्रे" यही स्वरूप होता है। इस में आदि अकार के स्थान में प्लुत "ओरे" तथा 'ए' के स्थान में आप्रे" यही स्वरूप होता है। इस में आदि अकार के स्थान में प्लुत "ओरे" तथा 'ए' के स्थान में आप्रें को पह कर कैसे कोई पुरुष, इक स्वरूप को बिगाइ सकता है ? क्यों कि स्वरूप के बिगाइने में अति का बोध ही नहीं हो सकता। और ऐसे २ सहक्षों स्थान्त प्रायः वेद में आतिसुलभ हैं कि जिन के देखने से बेद का अपीरुषय होना प्रसक्ष देख पड़ता है। निदान बेद में ऐसे वाक्य

भावना नोत्पद्यत इति तत्तत्प्रतिपादनक्षविद्रोत्थापितन्यायोपनिबन्धनान्मीमांसकैः केवलं भावना नात्पद्यत इति व व विकास स्थापत्र प्रमाय कि श्वित्साधुशब्दाभिमायेणाविन एव प्राप्त ।। शाक्यादिग्रनथेषु पुनर्यदिष कि श्वित्र हे ना विकास स्थापति ।। यश एव पानम् ॥ साननात्त्र । उ उ पानम् । साननात्त्र । पानम् व क्या प्रमाणि प्रज्ञाप्ति । कि मृत यानि । कि मृत यानि प्रयुक्त तत्रापि अशातारम्याः अपभ्रष्टतगणि भिक्खवे इत्येवमादीनि, द्वितीयाबहुवचनः मामद्भापन्नष्टवराना सम्बोधनेऽपि संस्कृतशब्दस्थाने व ककारद्वयसंयोगोऽनुस्वारलापः । ऋवणीकारापत्तिमात्रमेव प्रकृतापभ्रंशेषु दृष्टं न डकारापत्तिः रिप । सोऽयं संस्कृता धर्मा इत्यस्य सर्वकाळं स्वयमेव प्रतिषिद्धोऽपि विनाशः कृत इति असाधुशब्दनिबन्धनत्वादित्यन्तेन हेतुना बेदत्वाकृतकशास्त्रान्तरत्वशङ्कानिबृत्तिः। यावाँ-श्राकृतको विनष्टः शब्दराशिस्तस्य ब्याकरणमेवैकम्रुपलक्षणं तदुपलक्षितरूपाणि च॥

बेदे यथोपलभ्यन्ते नैवं शाक्यादिभाषिते। प्रयोगो नियमाभावादतोऽप्यस्य न शास्त्रता ॥

असिवयमादिति च ब्याकरणोक्तानियमाभावादित्यर्थः ॥ क्षणिकत्वनिराक्तानित्यत्व-सिद्धानित्यत्वात्यन्ताबिद्यमानग्रन्थनियमाभ्युपगमाभित्रायेण बा उसानियमादित्युक्तम्।

असतां वा क्षणभङ्गशून्यवादानात्मकत्वादीनामसद्धेतुभिकी प्रतिपादनानियमात्तदेक-कर्तकधर्मवचनानामप्यप्रामाण्यम् ।

कर्तृसरणदाढ्यांच नैषामकृतता मता। तेनाकृतकगम्येऽर्थे स्वातन्त्र्यास प्रमाणता ॥ ॥ भाषा ॥

बहुत थोड़े हैं कि जिन के शब्द और अर्थ लौकिकवाक्यों के शब्द और अर्थ से सदश हैं तथापि सूक्ष्मदर्शी बिचारक पुरुषों को उन में भी छान्दसी मुद्रा (बेद की मुहर अथवा अलीकिकबिशेष) देख पड़ती है और बुद्ध आदि के प्रन्थों में तो जो शब्द शुद्ध समझ कर भी रक्खे गये हैं वे भी अशुद्ध .ही हैं जैसे "प्रकाप्ति" "पर्यता" "तिष्ठता" आदि जिन के शुद्ध शब्द प्रज्ञापना, दृष्टता, स्थात्रता, इतादि हैं। और जो पूर्वीक्त, "भिक्खवे," आदि हैं वे तो देशभाषा की अपेक्षा भी अतिभ्रष्ट हैं जैसे अनेक के सम्बोधन में बहुवचन को एकार आदेश भाषा में नहीं होता "छोडिमि " में हकार भी अपभ्रंशभाषा में नहीं होता। इस रीति से यह सिद्ध हो गया कि बुद्धादि के प्रन्थ कदापि अपौरुषेय नहीं हो सकते क्योंकि उन के स्वरूप ही देखने से उन का पौरुषेय तथा अशुद्ध होता प्रत्यक्ष ही देख पड़ता है। उक्त द्वितीयसूत्र का यह द्वितीय तात्पर्य है।

उ०-(३) क्षणभङ्ग (जगत् क्षणिक है) शून्यवाद (सब मिध्या है कुछ भी सत्य नहीं) अनात्मकल (आत्मा कोई वस्तु नहीं) इत्यादि अनेक अनुचित और निर्मूल बिषयों को (जो कि पहिले नहीं थे अर्थात् आधुनिक हैं) जो लोग अपना सिद्धान्त मान बैठे ऐसे बुद्ध आदि के रिवर प्रनथ, धर्म के बिषय में प्रमाण नहीं हो सकते तथा उन के अपीक्षेय होने की चर्चा भी कैसे ही सकती है ?। उक्त द्वितीयसूत्र का यह तृतीय तात्पर्य है।

जब बुद्ध आदि ने प्रन्थों की रचना की तभी से आज तक उन के प्रन्थकर्ती होते की स्मर्रणप्रम्पर।, दृढ और अबिच्छिन्न चली आती है तो ऐसी दशा में उन की अपीरवेयता केंद्रे कहीं जा सकती है ? और इसी स्मरणपरम्परा की प्रसिद्धि भी कहते हैं तथा इसी प्रसिद्धि के

एवं समस्तवेदाङ्गधर्मशास्त्रव्वपीद्दशात्। कर्तृस्मृतिद्रिष्ठिम्नः स्यान स्वातन्त्रयेण शास्त्रता। अनेन कल्पस्त्राणां प्रत्याख्याता स्वतन्त्रता। कर्तृस्मृत्या दृढं ज्ञाता तेषापप्यसतां क्रिया॥ येन न्यायेन वेदानां साधिताऽनादिता पुरा। दृढकर्तृस्मृतेस्तस्य कल्पस्त्रेषु बाधनम्॥

यथैव हि कल्पसूत्रग्रन्थानितराङ्गस्मृतिनिबन्धनानि चाध्येताध्यापियतारः स्मरित तथा अश्वकायनबौधायनापस्तम्बकात्यायनप्रभृतीन् ग्रन्थकारत्वेन ॥

ततश्च प्रागवस्थायामसतामेव बन्धनात् । कुतः प्रयोगशास्त्रत्वं बेदवद्धेदतैव बा ॥

नचैषां समाख्यामात्रबळादेव कर्तृत्वमुच्यते येना 'ख्याप्रवचनादि' त्युत्तरमुच्यते ।
पुरुषपरम्परयेव हि स्मृतेषु कर्तृषु समाख्याऽभ्युच्चयहेतुत्वेन ज्ञायते यथा च कठादिचरणैरनादिभिः पोच्यमानानामनादिबेदशाखानामनादिसमाख्यासम्भवो नैवं नित्यावस्थितपाश्वकादिगोत्रचरणप्रवचननिमित्तसमाख्योपपात्तः । माशकबौधायनापस्तम्बादिशब्दाह्यादिमदेकद्रव्योपदेशिन इति न तेभ्यः प्रकृतिभूतेभ्योऽनादिग्रन्थिष्वपसमाख्याब्युत्पादनसम्भवः।
अत्रश्च पाशकादिसमाख्याऽप्यविद्यमानग्रन्थिनयमनादेव प्रवृत्तेत्विप हेत्वर्थयोजना।। इति १२

स्मृतीनां भेदः कत्रीदयश्च-

बीरमित्रोदये परिभाषाप्रकरणे।
अथ पुराणानि।
तत्र पुराणलक्षणम्।
मात्स्ये,
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च बंशो मन्वन्तराणि च।
बंशानुचरितं चैव पुराणं पश्चलक्षणम्॥
प्रतिसर्गः संहारः। तद्धिभागश्च—

॥ भाषा॥

अनुसार, बेद से अन्य कोई बिद्या, अपौरुषेय नहीं है और न धर्म में खतन्त्रप्रमाण हो सकती है तथा इसी से यह भी निश्चय हो गया कि बुद्ध आदि के प्रन्थ, बुद्ध आदि के पढ़ाने के कारण बुद्धवाक्य आदि नहीं कहलाते किन्तु बुद्ध आदि ने उन प्रन्थों की रचना की इसी से वे प्रन्थ, बुद्ध आदि के बाक्य कहलाते हैं इस लिये बुद्ध आदि के प्रन्थ, न बेद हो सकते हैं और न बेद के बुद्ध । यहां तक स्मृतियों का प्रामाण्य सिद्ध हो चुका ।

अब स्मृतियों के भेद और उन के कर्ता आचार्यों के नाम आदि कहे जाते हैं।

॥ बीरमित्रोदय परिभाषाप्रकरण ॥

मत्स्यपुराण में पुराण का लक्षण यों कहा है कि "सर्गश्च०" (जगत की सृष्टि प्रलय महानुभावों का बंश, मनुओं के अधिकारसमय और उक्त बंशवालों के चरित्र, इन पांच बिषयों की बर्णन जिस प्रनथ में हो। उस को पुराण कहते हैं) बिष्णुपुराण में "अष्टादश पुराणान " र्

बिष्णुपुराणे-अष्टादशपुराणानि पुराणज्ञाः प्रचक्षते । ब्राह्मं पाद्यं बैष्णवं च शैवं भागवतं तथा।। तथा ऽन्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम्। आग्नेयमष्टमं चैव भविष्यं नवमं स्मृतम् । दशमं ब्रह्मवैवर्त्त लैक्कमेकादशं स्मृतम्। बाराहं द्वादशं चैत्र स्कान्दं चात्र त्रयोदशम् ॥ चतुर्दशं बामनं च कौर्म पश्चदशं स्मृतम्। मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डं च ततः परम्।।

पुराणपरिमाणं भागवते -

बाह्मं दशसहस्राणि पाद्यं पश्चोनषष्टि च। श्रीवैष्णवं ततो विंशचतुर्विशति शैवकम्।। दशाष्ट्री श्रीभागवतं नाग्दं पञ्चविंशतिः। मार्कण्डं नव बाह्नं च दश पञ्चचतुः शतम् ।। चतुर्दश भविष्यं स्यात्तथा पञ्चशतानि च। दशाष्ट्री ब्रह्मबैबर्त लेङ्गमेकादशैव तु।। चतुर्विंशति बाराह मेकाशीतिसहस्रकम्। स्कान्दं शतं तथा चैकं बामनं दश कीर्त्तितम्।। कौर्म सप्तदशाख्यातं मात्स्यं तच चतुर्दश। एकोनबिंशं सौपर्ण ब्रह्माण्डं द्वादशैव तु ।। ऍवं पुराणसन्दोहश्चतुर्रुक्ष उदाहृतः।

मत्स्यपुराणे तु भागवतीयगणनातः षद्शत्याऽग्निपुराणं द्विशत्या च ब्रह्माण्डपुराण मधिकग्रुन्काउन्ते चतुर्छक्षमित्युपसंहतं, तददूरिबमकर्षेण, भवन्ति हीहशा अपि वादा

॥ भाषा ॥ इतादि वाक्यों से पुराण का विभाग यों दिखलाया है कि (१) ब्राह्म (२) पाद्म (३) बैह्णव (४) शैव (५) भागवत (६) नारदीय (७) मार्कण्डेय (८) आग्नेय (९) भविष्य (१०) ब्रह्मवैदर्ग (११) छेझ (१२) बाराह (१३) स्कान्द (१४) बामन (१५) कौर्म (१६) मात्स्य (१७) गार्ह (१८) ब्रह्माण्ड । ये अष्टादशपुराण हैं एक २ पुराणों की, अनुबद्धप् ऋोक के अनुसार क्रोंकी की सङ्ख्या भागवत में "ब्राह्म द्रा०" इत्यादि ऋोकों से यह कहा है कि ब्राह्म १०००। वाद ५५००० | बैंडणव २०००० | शैव २४००० | भागवत १८००० | नारदीय २५००० | मार्गि ९००० । साम्रेय १५४०० । भविष्य १४५०० । ब्रह्मबेबर्त १८००० । लेङ्ग ११००० । मार्यास २४००० | स्कान्द् ८११०० | बामन १०००० | कोम १७००० | मात्स्य १४००० | गार् ह १९०० | ब्रह्म हिंदी ब्रह्माण्ड १२०००। इस रीति से सब पुराणों की मिलित ऋोकसङ्ख्या ४०००० वार ही इति । मत्स्यपुराण में तो चन्नगणना के इति। मत्स्यपुराण में तो चक्तगणना से आधिक, आग्नयपुराण की ६०० तथा ब्रह्माण्डपुराण के २०० सङ्ख्या कह कर यह कहा है कि का प्राप्त के कि २०० सङ्ख्या कह कर यह कहा है कि पुराणों के ऋोकों की सङ्ख्या ४००००० है। ही बह यिकि श्चिन्न्यून। धिकं शतं लब्ध्वा शतं मया लब्धिमिति । एवं भागवतीयमपि चतुर्लक्षवचनं व्याल्येयम् । याऽपि बिष्णुपुराणे ब्रह्माण्डमादाय बायवीयत्यागेन या च ब्रह्मबंबर्त्ते वायवीयप्रपादाय ब्रह्माण्डपुराणपित्यागेनाष्टादशसङ्ख्योक्ता सा कल्पभेदन ब्यवस्थापतीया । काशीखण्डादयस्तु स्कान्दान्तर्गता एव तथाच—

प्रभासखण्डम् ।
स्कान्दन्तु सप्तथा भिन्नं बेद्ब्यासेन धीमता ।
एकाशीतिसहस्राणि शतं चैकं च मङ्ख्यया ॥
तस्याद्यो यो बिभागस्तु स्कन्दमाहात्म्यसंयुतः ।
माहेश्वरः समाख्यातो द्वितीयो बेंज्णवः स्मृतः ॥
ततीयो ब्राह्मणः भोक्तः सृष्टिसङ्क्षेपसूचकः ।
काशीमाहात्म्यसंयुक्तश्रतुर्थः परिपठ्यते ॥
सेवायाः पञ्चमो भागः सोज्जयिन्याः मकीर्तितः ।
षष्ठस्तस्य विभागस्तु तयोर्माहात्म्यसूचकः ॥
सप्तमो यो विभागोऽयं स्मृतः प्राभासिको द्विजाः । इति ।
एतद्भिन्नान्युपपुराणानि । तथा च महापुराणान्युक्कोक्तं —

कीमें महापुराणे,
अन्यान्युपपुराणानि म्रानिभिः कथितानि तु ।
अष्टादश पुराणानि श्रुत्वा सङ्घेपतो द्विजाः ॥
श्रुत्वा कथितानीत्यन्वयः । तानि च ।
तन्नेवआद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहं ततः परम् ।
वृतीयं नान्दमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितम् ॥
चतुर्थं शिवधमी एयं साक्षान्नन्दी शभाषितम् ।

कहना वैसा ही है जैसा कि छोक में १०० से २-४ अधिक बा न्यून पाने पर भी कहा जाता है कि १०० मेंने पाया। यद्यपि उक्त विष्णुपुराण में वायुपुराण को त्याम कर उस के स्थान में कि १०० मेंने पाया। यद्यपि उक्त विष्णुपुराण को त्याम कर उस के स्थान में कायुपुराण की तथा ब्रह्मवैवर्त्त में ब्रह्माण्डपुराण को त्याम कर उस के स्थान में बायुपुराण की मणना है तथापि कल्पभेद के अनुसार दोनों गणनाएं ठीक ही हैं क्योंकि किसी कल्प प्रचित एक दिन) में बायुपुराण को और किसी कल्प में ब्रह्माण्डपुराण को छे कर १८ पुराण प्रचित रहते हैं। और काशीखण्ड आदि तो पृथक् पुराण नहीं हैं किन्तु स्कन्दपुराण ही में हैं क्योंकि पहते हैं। और काशीखण्ड आदि तो पृथक् पुराण नहीं हैं किन्तु स्कन्दपुराण ही में हैं क्योंकि प्रभासखण्ड के "स्कान्दन्तुन्तुन् देवादि क्रोकों में यह कहा है कि ८११०० स्कन्दपुराण, की अभासखण्ड के "स्कान्दन्तुन् " इत्यादि क्रोकों में यह कहा है कि ८११०० स्कन्दपुराण, की अभासखण्ड के "क्तान्दन्तुन ले बिभाग कर दिया (१) माहेश्वर खं० (२) बेच्या खं० (३) ब्राह्म खं० (४) काशी खं० (५) रेवा खं० (६) रेवामाहात्म्य खं० (७) प्रभास खं० । ऐसे ही कौर्म खं० (४) काशी खं० (५) रेवा खं० (६) रेवामाहात्म्य खं० (७) प्रभास खं० । ऐसे ही कौर्म महापुराण में पूर्वोक्त अठारह महापुराणों की गणना के अनन्तर "अन्यान्युपण" इत्यादि क्राकों से १८ उपपुराणों की गणना की है जो यह है (१) सनत्कुमार, (सनत्कुमार का रचित) (२) नारसिंह १८ उपपुराणों की गणना की है जो यह है (१) सनत्कुमार, (सनत्कुमार का रचित) (२) नारसिंह (३) नान्द (नन्दी का माहात्म्य) (स्वामिकारिकेय का रचित) (४) शिवधर्म, (नन्दीश्वर का

दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं नारदीयमतः परम् ॥ कापिलं मानवं चैव तथेवोश्चनसेरितम्। ब्रह्माण्डं बारुणं चैव कालिकाह्यपेवच ॥ माहेश्वरं तथा साम्बं सोरं सर्वार्थसञ्चयम् ॥ पाराशरोक्तमपरं मारीचं भागवाह्यम् ॥ इति ब्रह्मवैवर्त्तेऽपि,

शाद्यं सनत्कुमारं च नारदीयं द्वितीयकम् । तृतीय नारिसंहाख्यं शैवधर्मं चतुर्थकम् ।। दोर्वामं पञ्चमं षष्ठं कापिलेयमतः परम् । सम्मं मानवं प्रोक्तं शौक्रमष्टममेवच ।। बारुणं नवमं पाहुर्बद्याण्डं दशमं स्मृतम् । कालीपुराणं च तत एकादशममुच्यते ।। बासिष्ठलेक्नं द्वादशमं माहेशं तु त्रयोदशम् । साम्बं चतुर्दशं पोक्तं सौरं पञ्चदशं स्मृतम् ।। पाराश्चर्यं षोडशमं मारीचं तु ततः परम् । अष्टादशं भार्गवाख्यं सर्वधर्मप्रवर्त्तकम् ।। एतान्युपपुराणानि सर्वबेदमयानि च ।

जपपुराणान्तर्गते नारदीयब्रह्माण्डपुराणे भिन्ने। एतान्युपपुराणानि पुराणेभ्य एव निर्गतानीति याज्ञबल्क्येन पुराणत्वेन संगृहीतानि। तथाच—मात्स्ये,

पान्ने पुराणे यत्रोक्तं नर्रासंहोपवर्णनम्।
तदष्टादशसाहस्रं नार्रासंह मिहोच्यते॥
नन्दाया यत्र माहात्म्यं कार्तिकेयेन वर्णितम्।
नन्दापुराणं तल्लोके नन्दाख्यमिति कीर्तितम्॥

रचित। (५) आश्चर्य (दुर्बासा का रचित) (६) नारदीय (नारद का रचित) (७) कापिल (किंकि का रचित) (८) मानव (मनुरचित) ९) औशनस (शुकाचार्य रचित) (१०) ब्रह्माण्ड (११) बी कण (१२) कालिका (१३) माहेश्वर (१४) साम्ब, (१५) सीर (१६) पाराशर (पराशर वित) (१७) मारीच (मरीचिरचित) (१८) भागेव, (भूगुरचित)। ब्रह्मबैबर्त में भी 'आई को त्रार्दीय और व्रह्माण्ड कहे हुए हैं वे, महापुराणों में कहे हुए नारदीय और ब्रह्माण्ड से भिन्न हीं हैं। वह वपपुराण, पूर्वोक्त महापुराणों ही से निकले हैं इसी से याज्ञ बल्क्य महार्च के लिया है और इसी स्थादि पूर्वोक्त का के पूराण श्वराण से जी नरिस हैं। वह भीर इसी से पाइच कहा है कि पद्मपुराण में जो नरिस का से 'पुराण' शब्द से इन उपपुराण में यह कहा है कि पद्मपुराण में जो नन्दा वित्रा का महार्दिण से जो नन्दा वित्रा का महारस्य कहा हुआ है उसी का बित्तार यह १८००० नारसिंह उपपुराण है और पद्मपुराण में जो नन्दा वित्रा का माहात्म्य कहा हुआ है उसी का बित्तार स्वामिकार्तिकेय का कहा हुआ है वही लोक में नार्वा का माहात्म्य कहा हुआ है उसी का बित्तार स्वामिकार्तिकेय का कहा हुआ है वही लोक में नार्वा

यत्तु साम्बं पुरस्कृत्य भिवष्येऽपि कथाऽऽनकम् । प्राच्यते तत्पुनलोंके साम्बमेव मुनिव्रताः ॥ एवमादित्यसञ्ज्ञा च तत्र्व परिगद्यते । अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराणं यत्तु दृश्यते ॥ बिजानीध्वं द्विजश्रेष्ठास्तदेतेभ्यां विनिर्गतम् ।

कथानकम् कथा। बिनिर्गतम् समुद्भतम् । यथा महाजनपरिगृहीतनन्दिकेश्वरपुरा- । जादिपुराणदेवीपुराणादीति सङ्क्षपः।

अथ धमशास्त्राणि । तत्र तत्प्रणतृनाह । याज्ञवल्क्यः।

मन्वित्रिबिष्णुहारीत-याज्ञबल्क्यांशनांऽङ्गिराः।
यमापस्तम्बसंबर्ताः कात्यायनबृहस्पती॥
पराश्चरब्यासशङ्खिलिखिता दक्षगातमा ।
श्चातातपो बसिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजकाः॥
प्रयोजकाः कर्तारः
पैठीनिसः,

तेषां मन्वाङ्गरोब्यास मौतमात्र्युशनोयमाः ।
बिष्णवापस्तम्बहारीताः शङ्खः कात्यायनो भृगुः ।
प्रचेता नारदो योगी बौधायनिपतामहौ ॥
सुमन्तुः कश्ययो बश्चः पैठीनो ब्याघ एव च ।

उपपुराण कहा जाता है तथा भविष्यपुराण में जो साम्ब की कथा है उसी से साम्ब उपपुराण निकला है और भविष्यपुराण ही में सूर्य की कथा से सौर उपपुराण निकला है। हे मुनिगण ! मेरे कहने का यह तात्पर्य है कि १८ महापुराणों से अन्य निन्दिकेश्वर पुराण, आदि पुराण, देवी पुराण, और १८ उपपुराण आदि जितने कथा के यन्थ हैं वे सब १८ महापुराणों ही से निकले हैं।

धर्मशास्त्र प्रन्थों के कर्ता आचार्यों को "मन्वित्रिह्णुं " इत्यादि स्रोकों से याझबल्क्य ने गिनाया है। (१) मनु, (२) अत्रि, (३) विष्णु, (४) हार्रात, (५) याझबल्क्य, (६) ड्याना [ग्रुक़] (७) अङ्गिरा, (८) यम, (९) आपस्तम्ब, (१०) संबत्तं, (११) कात्यायन, (१२) बृहस्पति, (१३) परा-श्रि, (१४) ब्यास, (१५) शङ्क, (१६) छिखित, (१७) दक्ष, (१८) गौतम, (१९) शातातप, (२०) शरि, (१४) ब्यास, (१५) शङ्क, (१६) छिखित, (१७) दक्ष, (१८) गौतम, (१९) शातातप, (२०) विस्त्र,। शङ्क और छिखित दोनों आता हैं उन का रचित एक ही धर्मशास्त्र है। तथा पैठीनसिमहाँष ने इस रीति से गिनाया है (१) मनु (२) अङ्गिरा (३) ब्यास (४) गौतम (५) अत्रि (६) उशना (७) यम (८) बांशष्ठ (९) दक्ष (१०) संबत्त (११) शातातप (१२) पराशर (१३) विष्णु (१४) आपस्तम्ब (१५) हारीत (१६) शङ्क (१७) कात्यायन (१८) भृगु (१९) प्रचेता (२०) नारद (२१) योगी (याङ्गवल्क्य) (२२) बौधायन (२३) पितामह (ब्रह्मा) (२४) सुमन्तु (२५) कञ्चप (२६) बञ्च

सत्यव्रतो भरद्वाजो गार्ग्यः काष्णीजिनिस्तथा।। जाराजिजमदाप्तश्च लौगाक्षित्रहासम्भवः। इति धर्मप्रणेतारः षट्त्रिंशदृषयस्तथा।। व्रह्मसम्भवो ब्रह्मगर्भः।

शङ्खालाबिता ।

स्मृतिर्धर्मशास्त्राणि तेषां प्रणेतारो पनुविष्णुयमदक्षाङ्किरोऽत्रिष्टृहस्पत्युशनआपस्तम्बः बिसष्टकात्यायनपराश्चरव्यासशङ्खिखितसम्बर्णगौतमशानातपहारीतयाज्ञबल्कयमाचेतसाः दयः इति । प्रचेता एव प्राचेतसः आदिशब्देन कल्पतरौ बुधदेवलसोमजमद्गिविश्वामित्रः प्रजापितनाग्दपैठीनिसिपितामहबौधायनच्छागलेयजाबालच्यवनमरीचिकश्यपा उक्ताः।

एवं च--

मन्वादिस्मृतयो यास्तु षट्त्रिंशत्परिकीर्तिताः।

इत्यत्र एताः षट्त्रिंशद्वोध्याः । अबिगानेन सर्वपरिग्रहादिति कल्पतरः । योगियाङ्गः वल्क्यबृद्धभनुबृद्धशातातपबृद्धबसिष्ठलघुहारीतस्त्ररणानि षट्त्रिंशत्स्मृतिकारकर्तृकाण्येन अवस्थाभेदेन तरेव करणात् । अतएव याज्ञबल्क्येनोक्तम् 'योगशास्त्रं च मत्मोक्तिमे 'ति। योगियाज्ञबल्क्यग्रन्थे

स्नानमब्दैवतैर्भन्त्रैर्यन्वयोक्तं पुराऽनघ।

इति योगियाञ्चबल्कयं प्रति ऋषिप्रश्ने याञ्चबल्क्यग्रन्थोक्तस्त्रानानुवादाच । एवं वृद्ध-मन्वादीनामपि मन्वाद्यभेदः शिष्टप्रसिद्ध्यादिभिरवगन्तव्यः । यानि मृह्यतत्परिशिष्टादीनि ॥ भाषा ॥

(२७) पैठीनास (२८) ब्याघ्र (२९) सत्यत्रत (३०) भरद्वाज (३१) गार्ग्य (३२) कार्जाजिनि (३३) जाबाछि (३४) जमदग्नि (३५) छौगाक्षि (३६) ब्रह्मगर्भ, । तथा शङ्ख और छि।बित महार्षिगें ने "मनुविष्णु०" इत्यादि वाक्य से यों कहा है कि (१) मनु (२) विष्णु (३) यम (४) दक्ष (५) अङ्गिरा (६) अत्रि (७) बृहस्पति ८) उद्याना (९) आपस्तम्ब (१०) बसिष्ठ ।११) कात्यायन (१२) पराश्चर १३) ब्यास १४) शङ्क (१५) छि।खत (१६) संबर्च १७ गीतम (१८) शहाताप (१९) हारीत (२०) याज्ञबल्क्य (२१) प्रचेता आदि महार्षि, धर्मशास्त्र के कर्ता हैं। कल्पतकनामक प्रनथ में यह कहा है कि शङ्ख लिखित इस वाक्य में "अ।दि" शब्द से २२) बुध (२३) देशह (२४) सोम (२५) जमदिम २६) बिश्वामित्र २७) प्रजापति । दक्ष), (२८) नारद (२९ पैठीनिर्ध (३०) पितामह (ब्रह्मा १, (३१) बौधायन (३२) छाग्छेय (३३) जाबाल (३४) च्यंवत ३५ मर्सी (३६) कइयप का ग्रहण है। और "मन्वादिस्मृतयां" इस वाक्य में जो ३६ स्मृतियां कहीं हैं। ये ही हैं यह भी कल्पतर ने कहा है। और योगि-याज्ञ बल्क्य, बुद्ध-मनु, बुद्ध-झातातप, बुद्ध-बिक्ष अहिर छघु-हारीत के नाम से जो स्मृतिग्रन्थ बने हैं जे भी पूर्बोक्त छत्तीस स्मृतिकारों में से प्रि माणित याज्ञवल्क्य आदि ही के बनाये हैं। तात्पर्य यह है कि याज्ञवल्क्य ही ते जब बोगाश्रीह किया तम योगि-याज्ञ बरक्य कहलांने लग खेसे ही कृद्ध-मनु आदि नाम भी अवस्थिति के का ्यार मनु आदि ही के नाम हैं न कि किसी अन्य ऋषि के । तथा मृह्यसूत्र और मृह्यपि कि जो ऋषियों के बनाय हैं वे पुराणों के नाई इस छत्तीस स्मृतियों की अपेक्ष्स अन्य ही हैं और मी

तानि भिन्नकोटीन्येव पुराणवत्ममाणानि । तथा बिष्णुधर्मोत्तरमहाभारतरामायणादीन्वपि। अष्टादशपुराणेषु यानि वाक्यानि भारत। तान्याळोच्य महाबाहो तथा समृत्यन्तरेषु च ॥ मन्वादिस्मृतयो याश्र षट्त्रिंशत्परिकीर्तिताः। तासां वाक्यानि क्रमशः समाळोच्य ब्रवीमि ते ॥ इति भविष्यपुराणे षट्त्रिंशत्स्मृतिभिन्नस्मृत्यन्तराभिधानात् । अष्टादशपुराणानि रामस्य वरितं तथा। बिष्णुधर्मादिशास्त्राणि शिवधर्माश्र भारत।। कारणे च पश्चमं बेदं यन्महाभारतं स्मृतम्। सौराश्च धर्मा राजेन्द्र मानवोक्ता महीपते ॥ जयेति नाम एतेषां पवदन्ति मनीषिणः। इति बिशिष्य रामचरितादेस्त्त्रैवाभिधानाच ॥

कार्ष्ण कृष्णेन ब्यासेन प्रणीतुम् । अत्र जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते इति ब्युत्पस्या धर्मप्रमाणत्वं छभ्यते शब्दे प्रमाणत्वरूपीत्क्षिस्यवीचित्यात् । स्पष्टं चेदं,

श्रादशूलपाणौ भविष्यपुराणे — चतुर्णामपि बर्णानां यानि मोक्तानि श्रेयसे। धर्मशास्त्राणि राजेन्द्र शृणु तानि नृपोत्तम ॥ अष्टादश पुराणानि चरितं राघवस्य च। रामस्य कुरुशार्द्छ धर्मकामार्थसिद्धये ॥ तथोक्तं भारतं बीर पाराश्चर्येण धीमता। वेदार्थं सकलं योज्य धर्मशास्त्राणि च प्रभो ॥ इति

में प्रमाण भी हैं। ऐसे ही बिष्णुधर्मोत्तर, महाभारत, रामायण आदि भी धर्म में प्रमाण और उक्त स्मृतियों से भिन्न ही हैं। जैसा कि भविष्यपुराण में "अष्टादशपुराणेषु०" इत्यादि साढ़े चार (४१) स्रोकों से कहा है जिन का यह अर्थ है कि, "हे भारत! १८ अठारह पुराणों में जो वाक्य हैं और मनु आदि की ३६ छत्तीस स्मृतियों में जो वाक्य हैं तथा अन्यान्य स्मृतियों में जो वाक्य हैं उन सब को समझ कर में तुम से कहता हूं"। "१८ अहारह पुराण, रामचरित (रामायण) विष्णुधर्म शिवधर्म आदि शास्त्र, और कृष्णद्वेपायन ब्यास का रचित महाभारत तथा सौरधर्म (सीर उपपुराण) और मनुका धर्मशास्त्र इत प्रन्थों को पण्डित लोग " जय " कहते हैं अर्थात् धर्म के बिषय में प्रमाण होने से ये प्रनथ अन्यप्रनथों की अपेक्षा अधिक प्रशंसनीय हैं। तथा श्राद्धश्रावि नामक प्रनथ में उद्धृत "चतुर्णामपि०" इत्यादि स्रोकों से भी उक्त ही विषय कहा ाता है कि "हे राजेन्द्र! चारो बणों के हितार्थ जो धर्मशास्त्र हैं उन को मैं तुम से कहता हूं। १८ अष्टादशपुराण और राघवचरित (रामायण) जिस से कि अर्थ, धर्म, काम की सिद्धि होती है। व्या प्राशर के पुत्र इयास का राचित ' भारत ' जिस में कि बेद के अर्थों और धर्मशास्त्रों मी योजना ब्यास ने की है "। ऐसे ही प्रामाणिक घन्थों में "अत्र स्पृतिः" (इस बिषय

यद्पि स्पर्तनाम अनिर्दिश्य 'अत्र स्मृतिः' 'अत्र श्लोकः' इत्यादि प्रामाणिकालिलनम्। यदाप स्पत्नाम जातादः। तदप्यविगीतभ्रहाजनपरिगृहीतत्वेन प्रमाणं 'स्मृत्यन्तरेषु चे' त्यनेनैव सङ्गृहीतं वेदितव्यम्। षद्त्रिंशन्मतादिकं तु कैश्चिदेव परिगृहीतत्वाद्विगीतत्वादममाणामित्युक्तं कल्पतरुणा । विद्याः नेश्वरापराकश्चलपाणिप्रभातिभिस्तु प्रमाणत्वेन गृहीतम् युक्तं चैतत् । यतः अन्येऽपि स्मृतिकर्तारः प्रयोगपारिजातादौ परिगण्यन्ते यथा-

प्रयोगपारिजाते ।

यनुर्बृहस्पतिदेक्षो गौतपोऽथ यमोऽङ्गिराः । योगीश्वरः प्रचेताश्च शातातपपराश्चरौ ॥ संबत्तींशनसौ शङ्खिखितावात्रिरेव च । बिष्ण्वापस्तम्बहारीता धर्मशास्त्रमवर्त्तकाः॥ एते ह्यष्टादश प्रोक्ता मुनयो नियतव्रताः। जाबाळिनीचिकेतश्र स्कन्दो छौगाक्षिकाश्यपी॥ ब्यासः सनत्कुमारश्च शन्तनुर्जनकस्तथा । ब्याघ्रः कात्यायनश्चेव जातूकर्ण्यः कापिञ्जलः॥ बौधायनश्च काणादो विश्वामित्रस्तथैव च। पैठीनसिर्गोभिळक्चेत्युपस्मृतिविधायकाः॥ बसिष्ठो नारदश्चेव सुपन्तुश्च पितामहः । बिष्णुः काष्णीजिनिः सत्यव्रतो गार्ग्यश्च देवलः॥ जमदाग्निर्भरद्वाजः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । आत्रेयश्च गवेयश्च मरीचिर्वत्स एव च। पारस्करश्रव्यशृक्षो वैजावापस्तथैव च। इत्येते समृतिकत्तीर एकविंशतिरीरिताः॥ एतैयानि प्रणीतानि धर्मशास्त्राणि वै पुरा । इति ।

में स्मृति है) "अत्र श्लोक:" (इस बिषय में श्लोक है) इस रीति से जो वाक्य लिखे जाते हैं वे भी प्रमाण हैं क्योंकि यद्यपि वहां स्मृतिकर्ता का नाम, विशेषरूप से नहीं लिखा रहता तथापि शिष्टछोग उन वाक्यों को भी सादर स्वीकार करते हैं। और पूर्वोक्त भविष्यपुराण में जो "अन्यान्य स्मृति" लिखा है उसके अंनुसार वे वाक्य अन्यस्मृतियों (जो अब प्रचित नहीं हैं) के हैं इस लिये वे प्रमाण हैं। पं० कल्पतरु ने यह कहा है कि ''षट्त्रिंशत् मत," आदि के नाम से जो वाक्य अनेक प्रन्थों में उद्धृत हैं वे प्रमाण नहीं हैं क्यों कि उन को बिरले ही मनुष्यों ने स्वीकार किया है। परन्तु विज्ञानेश्वर, अपरार्क और शूलपाणि आदि पाण्डितों ने कल्पतरु से विपरीत अर्थात् उन वाक्यों को भी प्रमाण कहा है। और यही मत उचित भी है न कि कल्पतरु का, क्यों कि प्रयोग-पारिजात और मदनरत्न इन दोनों प्रन्थों में ''मनुर्वृहस्पितः'' इत्यादि ऋोकों से, ३६ छत्तीस सर-तिकारों से अन्य अनेक स्मृतिकारों का नाम भी यों कहे हुए हैं कि (१) मनु २) बृहस्पित (३) दक्ष (४) गौतम (५) यम (६) अङ्गिरा (७) योगीश्वर (याज्ञबल्क्य) (८) प्रचेता (९) शातातप (१०) पराज्ञर (११) संबर्त्त (१२) उशना (१३) शङ्ख (१४) छिखित (१५) अत्रि (१६) विष्णु ^(१७) आपस्तम्ब (१८) हारीत ये १८ अठारह ऋषि धर्मशास्त्र के प्रवर्तक आचार्य हैं ॥ (१) जाबाहि (२) नाचिकेत (३) स्कन्द (४) छौगाक्षि (५) काञ्चप (६) ब्यास (७) सनत्कुमार (८) शन्तनु (९) जनक (१०) व्याघ्र (११) कात्यायन (१२) जातूकण्ये (१३) किपि जल (१४) बौधायन (१५) काणार (१६) बिश्वामित्र (१७) पैठीनसि (१८) गोभिल ये १८ अठारह ऋषि उपस्मृतियों के कर्ता हैं। (१) बिश्य (२) नारद (३) सुमन्तु (४) पितामह (ब्रह्मा) (५) बिश्यु (६) कार्ष्णीजिति (७) म्रह्म बत (८) गार्ग्य (९) देवल (१०) जमद्भि (११) भरद्वाज (१२) पुलस्य (१३) पुलह (१४) क्रि (१५) आत्रेय (१६) गवेय (१७) मर्राचि (१८) बत्स (१९) पारस्कर (२०) ऋष्यशृङ्ग (२१) बैजावाप,

एते एवोपस्मृतिकर्तारो मदनरत्नेऽप्युक्ताः । इति स्मृतयः ।

इयं च स्मृतिः पश्चविधा । तथा च-

भविष्यपुराणे।

दृष्टार्था तु स्मृतिः काचिद्दृष्टार्था तथा ऽपरा । दृष्टादृष्टार्थरूपाऽन्या न्यायमूला तथाऽपरा ॥ अनुवादस्मृतिस्त्वन्या शिष्टेदृष्टा तु पश्चमी । सर्वा एता बेदमूला दृष्टार्थाः परिहृत्य तु ॥

एतासां लक्षणानि-

तत्रैव,

षड्गुणस्य प्रयोज्यस्य प्रयोगः कार्यगौरवात् ।

सामादीनामुपायानां योगो व्याससमासतः ॥
अध्यक्षाणां च निःक्षेपः कण्टकानां निरूपणम् ।

दृष्टार्थेयं स्मृतिः प्रोक्ता ऋषिभिर्गरुदात्मन ॥
सन्ध्योपास्या सदा कार्या श्रुतो मांसं न भक्षयेत् ।
अदृष्टार्था स्मृतिः प्रोक्ता ऋषिभिर्ज्ञानकोविदैः ॥
पालाशं धारयदण्ड-मुभयार्था बिदुर्बुधाः ।
बिरोधे तु विकल्पः स्या-ज्जपहोमश्रुतौ यथा ॥
श्रुतौ दृष्टं यथा कार्य्य स्मृतौ यत्ताद्द्रशं यथा गृहात् ॥ इति ।
अनुक्तवादिनी सा तु पारिक्राज्यं यथा गृहात् ॥ इति ।

षड्गुणाः सन्धिबग्रहादयो वक्ष्यन्ते। प्रयोगः कार्यगौरवात् षड्गुणस्यैव ब्याससमासाभ्यां कर्तव्यः। सामादीनामिष कार्यगौरवाद्वचाससमासाभ्यां योगः प्रयोगः कर्त्तव्य इत्यर्थः। जपहोमश्रुताविति । सूर्योदयाविध सावित्रीजपोऽनुदितहोमबिषयो यथा । अनुक्तवादिनी

॥ भाषा ॥
ये इक्कीस २१ भी धर्मशास्त्र के कर्ता हैं । भिवत्यपुराण में यह कहा है कि स्मृतिवाक्यों का पांच ५ विभाग है (१) दृष्टार्थ, अर्थात् जिन में विधान किये हुए कामों का फळ छोक में प्रयक्ष है जैसे नीतिसम्बन्धी सिन्ध विप्रह आदि तथा सामदान आदि उपायों के व्याख्यान करने वाळे स्मृतिवाक्य, (२) अदृष्टार्थ, जिस में कहे हुए काम का फळ परळाक ही में अनुभव करना होता है न कि इस छोक में, जैसे "सन्ध्यापासन प्रतिदिन करें", "कुत्ते का मांस न खाय," इत्यादि विधि और निषेध के वाक्य, (३) दृष्टादृष्टार्थ, जिस में कहे हुए काम का फळ, छौकिक और पार-छौकिक दोनों हैं जैसे "पळाश के दण्ड को धारण करें" इत्यादि, क्यों कि दृण्डधारण का शत्रुश्कर-छौकिक दोनों हैं जैसे "पळाश के दण्ड को धारण करें" इत्यादि, क्यों कि दृण्डधारण का शत्रुश्कर-छौकिक है, (४) न्यायमूळक, जैसे "सूर्योदयपर्यन्त जो गायत्री का जप करना कहा है वह असी के छिये है जो कि नियम से सूर्योद्य के प्रथम अग्निहोत्र करता है।" इत्यादि व्यवस्था करने विशेष के छिये है जो कि नियम से सूर्योद्य के प्रथम अग्निहोत्र करता है।" इत्यादि व्यवस्था करने विशेष वाक्य। (५) अनुवादक, वेद में कहे हुए "यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रवजेत गृहाद्वा बनाद्वा".

अनूदितवादिनी। यथा 'यदिबेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत् गृहाद्वा बनाद्धे' त्यनयाऽन्दितं,

तथा तत्रैव — ननु साङ्ख्ययोगपश्चरात्रपाशुपताद्यागमाः किं धर्मे प्रमाणमुत न । आधे तथा तत्रय गुरु ता सङ्ख्याब्याकोपः । द्वितीयेऽबिगीतमहाजनपारिग्रहिबरोधः। उच्यते तेऽपि बेदाबिरुद्धाः प्रमाणमेव । तथाच ।

योगियाज्ञबल्क्यः,

न बेदशास्त्रादन्यतु किञ्चिच्छास्त्रं हि बिद्यते। निः सतं सर्वशास्त्रं तु वेदशास्त्रात्सनातनात् ॥ दुर्बोध्यं तु भवेद्यसाद्ध्येतुं नैव शक्यते। तसादुद्रत्य सर्वे हि शास्त्रं तु ऋषिभिः कृतम्।। पुराणन्यायमीमांसा-धर्मशास्त्राङ्गिश्रिताः । बेदाः स्थानानि बिद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥ साङ्ख्यं योगः पश्चरात्रं बेदाः पाशुपतं तथा। अतिममाणान्येतानि हेतुभिनं विरोधयेत् ॥ इति ॥

अत्र साङ्ख्यं योगः पश्चरात्रामित्युपक्रम्य हेतुभिनिविरोधयेदित्युक्तेस्तेषामदृष्यत्वमात्रे ो भाषा ॥

(यदि उत्कट बैराग्य हो जाय तो अपनी इच्छा के अनुसार जिस आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्य वा गृह-स्थाश्रम बा बानप्रस्थ को छोड़ कर सन्यास छ) इस श्रुति के अर्थ को "त्राह्मण: प्रत्रजेद् गृहात्" (ब्राह्मण गृहस्थाश्रम से संन्यास को छे) यह मनुवाक्य विधान करता है।।

प्र० —साङ्ख्य, योग, पञ्चरात्र, पाशुपत, आदि शास्त्र, धर्म के बिषय में प्रमाण हैं अथवा नहीं ? यदि हैं तो याज्ञबल्क्य ने पूर्वोक्त वाक्य में "धर्मस्य च चतुर्दश" से धर्म के बिषय में १४ ही बिद्याओं को क्यों प्रमाण कहा ? क्योंकि साङ्ख्य आदि बिद्याओं की सङ्ख्या बढ़नी चाहिये। और यदि साङ्ख्यादिशास्त्र, धर्म में प्रमाण नहीं हैं तो क्यों बड़े लोग इन शास्त्रों की सादर प्रमाण खीकार करते चले आते हैं?

उ०—साङ्ख्य आदि शास्त्र भी जिस अंश में बेदबिरुद्ध नहीं हैं उस अंश में प्रमाणः ही हैं। इसी से योगी याज्ञबल्क्यमहार्ष ने "न बेद्शास्त्रा०" इत्यादि चार ४ ऋोकों से यह कहा है कि "बेदरूपी शास्त्र से अन्य कोई, शास्त्र नहीं है क्योंकि इसी बेदरूपी सनातनशास्त्र से सब शास्त्र निकले हुए हैं बात यह है कि बेद का शब्दपाठ बहुत अधिक तथा उस का भावार्थ भी बहुत सूक्ष्म है इस से समस्त बेद को कोई पढ़ नहीं सकता इस छिये छोकोपकारार्थ उस के अंशों को उद्धृत कर अनेक प्रकार के शास्त्रों की रचना की गई है। पुराण, न्याय मीमांसा, आदि से सहित ४ वेद रूपी १४ विद्यायें, ज्ञान और धर्म के मूल हैं। ४ बेद, साङ्ख्य, योग, पञ्चरात्र, और पाशुपत, य शास्त्र अतिप्रमाण हैं इन के विरुद्ध अनुमान वा तर्क नहीं करना चाहिये" यहां अपरार्क ने यह कही है कि ''उक्त आन्तिमवाक्य का इतना ही तात्पर्य है कि युक्तियों से साङ्ख्यादि का खण्डम नहीं करना चाहिये और यह तात्पर्य नहीं है कि साङ्ख्यादिशास्त्र धर्म में प्रमाण हैं" यह अपरार्क की भूछ है क्योंकि उसी वाक्य में स्पष्ट यह कहा है कि "ये आतिप्रमाण हैं" और महाभारत में

13527 6773

तात्पर्यं नतु प्रामाण्ये इत्यपराकींक्तमनादरणीयम्, अतिप्रमाणानीत्यभिधानात् तथा-यहाभारते।

पश्चरात्रविदो मुख्यास्तस्य गेहे महात्मनः। प्रापणं भगवत्रोक्तं भुञ्जते चात्र भोजनम् ॥ तस्य प्रशासतो राज्यं धर्मेणामित्रघातिनः। नानृता वाक्समभवत् पनो दुष्टं सचाभवत् ॥

इति उपरिचरराजप्रशंसामुखेन पश्चरात्रस्य प्राज्ञस्त्यमुक्तम् 📜 📜 प्रापणं नैवेद्यम् । तथाः

साङ्ख्यस्य वक्ता कपिळः प्रामिष्टिः स उच्यते। हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः॥ अपान्तरतमाश्रव बेदाचार्यः स उच्यते। प्राचीनगर्भे त्रमृषिं पवदन्तीह केचन ॥ उमापातिभूतपृतिः श्रीकण्ठो ब्रह्मणः सुतः। उक्तवानिदमस्यग्नो ज्ञानं पाञ्चपतं शिवः॥ पञ्चरात्रस्य कृत्स्नस्य वृक्ता तु भगवान् स्वयम् ।

बृहत्पराश्वरोऽपि,

वैदिकं तु ज्यां क्रुयांत्युराणं पाञ्चरात्रिकम्। यो बेदस्तानि चैतानि यान्येतानि च सा श्रुतिः ॥ पञ्चरात्रविधानेन स्थण्डिले बाऽथ पूजयेत्। बिष्णुधर्मोत्तरेऽपि, बिष्णुधमोत्तरंऽपि, विष्णुधमोत्तरं तथा। साङ्ख्यं योगः पञ्चरात्रं बेदाः पाशुपतं तथा। कृतान्तपञ्चकं विद्धि ब्रह्मणः परिमार्गणे ॥

राजा उपरिचर, की प्रशंसा के द्वारा "पश्चरात्राबदों ?' इसादि श्लोकों से पश्चरात्र की प्रशंसा ऐसे की है कि "राजा उपारेचर के कोट में पश्चरात्र के मुख्य २ पण्डित नैबेस भोजन करते हैं और धर्म से प्रजापालन करते हुए राजा उपरिचर ने अपने जीवन भर में एक वाक्य भी मिथ्या नहीं कहा और पाप की चिन्ता कदापि महीं किया तथा महाभारत में "साङ्ख्यस्य " इसादि ऋोकों से यह कहा है कि "साइ्ख्य के कर्ता कपिलमहर्षि कहे जाते हैं। हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) से अन्य कोई: योगशास्त्र का प्राचीन ज्ञाता नहीं है। बेद के ज्ञाताओं में अपान्तरतमा ऋषि आचार्य कहे जाते हैं जिन की प्राचीनगर्भ भी कहते हैं। ब्रह्मा से प्रकट हुए शिव जी ने सावधानी से इस पाशुपतशास्त्र की रचमा की है जिस शिव जी को उमापति, भूतपति और श्रीकराठ भी कहते हैं। सब पश्चरात्र की वक्ता तो नारायण स्वयं हैं"। और बृहत्पराशरमहार्ष ने भी "बैदिकन्तु॰" इत्यादि ऋकों से यह कहा है कि बेदोक्त वा पुराणीक अथवा पञ्चरात्रीक मन्त्र की जपे, क्योंकि पुराण और पञ्च-रात्र भी बेद ही हैं और बेंद भी पुराण और पञ्चरात्र ही हैं। (तात्पर्य यह है कि बेद अपीरुषेय है और पुराण, पञ्चरात्र भी बेद ही से निकले हैं इस से वे भी बेद के तुल्य ही हैं) अथवा बेदी पर प्रचरात्र मा वद् हा सा ग्रिक्ट ए पर प्राचित्र में भी "साङ्ख्यं योगः" इत्यादि ऋोकः CC-0. Ankur Joshi Collection Gujarat. An eGangotri Initiative कृतान्तः सिद्धान्तः । कृतान्तो यमसिद्धान्त्रदैवाकुशळकर्मणि ।

इति त्रिकाण्डीस्मरणात् । किञ्च षाशुपतागमानां तावद्वौदिकाबैदिकभेदेन द्वैविध्य-मवश्यं वाच्यम् ।

निर्मितं हि मया पूर्वं ब्रतं पाश्चपतं शुभम्। गुह्यादुह्यतमं सूक्ष्मं वेदसारं विश्वक्तये।

इत्यारभ्य-

एष पाशुपतो योगः सेवनीयो ग्रुग्रुक्षुभिः। यसाच्छन्नेहिं सततं निष्कामौराति हि श्रुतिः॥

इति बेदसारमयत्वमेकस्याभिधाय-

अन्यानि चैव शास्ताणि छोकेऽस्मिन्मोहनानि सै। बेदवादिकद्धानि मयैव कथितानि तु॥ बामं पाशुपतं सोमं छाङ्गछं चैव भैरवम्। न सेव्यमेतत्कथितं बेदवाहां तथेतरत्॥

इति बेदाविरुद्धस्यान्यस्य कौर्मेऽभिधानात्।

बायुसंहितायां तु,

श्वैवागमोऽपि द्विविधः श्रौतोऽश्रौतश्च संस्मृतः।

श्रुतिसारमयः श्रोतः स्वतन्त्र इतरो मतः ॥

' स्वतन्त्रोदशधापूर्विम ' त्यारभ्य —

श्रुतिसारमयोऽन्यस्तु शतकोटिपाविस्तरः।

परं पाशुपतं यत्र ब्रतं ज्ञानं च कथ्यते ॥

इत्यन्तेन श्रीताश्रीतिबिभागः स्पष्टीकृतः 'अत्र श्रीवागमीऽपि द्विबिधः ' इत्यपिना स्वसमानयोगक्षेमवैष्णवपश्चरात्राद्यागमानामपि श्रीताश्रीतभैदेन द्वीबिध्यमुक्तं भवति । एकं च पञ्चरात्रादेवैदिकत्वं —

भाषा॥

से यह कहा है कि साङ्ख्य, योग, पञ्चरात्र, बेद, और पाशुयत ये पांच सिद्धान्त, परब्रह्म के ज्ञात में उपाय हैं। पाशुपत शास्त्र दो २ प्रकार का है इसी से कूर्मपुराण में "निर्मितं हि मया" इसारि में उपाय हैं। पाशुपत शास्त्र दो २ प्रकार का है इसी से कूर्मपुराण में "निर्मितं हि मया" इसारि क्षीर करवाणकारी पाशुपतशास्त्र को बनाया। श्रुति में भी यह कहा है कि मोक्ष के लिये बिरलों को इस पाशुपत योग का अभ्यास सदा करना चाहिये। लोक में तामस जीवों को मूढ करते के को इस पाशुपत योग का अभ्यास सदा करना चाहिये। लोक में तामस जीवों को मूढ करते के लिये बेद के बिरुद्ध अन्यान्य शास्त्र भी मेरे ही कहे हुए हैं जैसे (१) बाम, (२) पाशुपत, (१) सोम, (४) लाइजल, (५) मैरव, ये शास्त्र उत्तम लोगों के योग्य नहीं हैं क्योंकि बेदवाध हैं "सोम, (४) लाइजल, (५) मैरव, ये शास्त्र उत्तम लोगों के योग्य नहीं हैं क्योंकि बेदवाध हैं "वायुसाहिता में तो "शैवागमोऽपि०" इस स्रोक से स्पष्ट ही यह कहा है कि "पाशुपतशास्त्र भी बैक्षि वौर अवैदिक २ प्रकार का होता है"। यहां "भी," कहने से यह तात्पर्य है कि बैक्णव बौर अवैदिक २ प्रकार का होता है "। यहां "भी," कहने से यह तात्पर्य है कि बैक्णव बौर प्रकार आदि भी दो २ (बैदिक और अवैदिक) प्रकार के होते हैं। इसी हेमाद्रियन्थ में ल्डूक

हेमाद्रौ विष्णुधर्मोत्तरे,

साङ्ख्यं योगः पञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा।
कृतान्तपञ्चकं विद्धि ब्रह्मणः परिमार्गणे॥
संसारक्षपणे स्वर्गभावोपकरणेषु च।
सेतुरावेष्णवाद्धर्मात्सारमेतत्प्रकीर्त्तितम्॥
एतावानेव सकळो वेदमार्गस्त्वदीरितः। इति।
भावः ऐश्वर्यम् सेतुर्मार्गः। एवं च—
कौर्में,
कापाळं पञ्चरात्रं च यामळं वाममाईतम्।
एवंविधानि चान्यानि मोहनार्थानि तानि तु॥
इति पञ्चरात्रस्य यन्मोहकत्वाभिधानं तद्वैदिकपञ्चरात्रपरम्।
यानि शास्त्राणि दृश्यन्ते छोकेऽस्मिन् विविधानि तु।

इति तत्रैव बेदिविरुद्धानामेवोपक्रमे अवणात्। 'बिरोधे त्वनपेक्षंस्यादि 'ति मीमांसाधिकरणं च 'यान्येतानि त्रयीबिद्धिने परिगृहीतानी 'त्यादिग्रन्थदर्शनाद्बैदिकागमविषयत्वेनाप्युपपत्तेनीवश्यमागममात्रस्याप्रामाण्यमापादयति। कथं तिर्हे 'धर्मस्य च चतुदेशेति 'सङ्ख्यानिर्देशै उपपद्यते। उपछक्षणमात्रतयेति ब्रूमः अन्यथा रामायणश्चिष्ठाचारादीनामप्यनुपसङ्घद्दप्रामाण्यापत्तेः। यदि तु 'तथा समृत्यन्तरेषु चे' तिपूर्वोदाहृतभविष्यत्पुराणवचनेन तदुपसङ्घहः तदा स प्रकृतेऽपि तुल्यः। यत्तु साम्बपुराणे,

श्रुतिभ्रष्टः श्रुतिमोक्तमायश्रित्ते भयं गतः । क्रमेण श्रुतिसिद्ध्यर्थं मनुष्यस्तन्त्रमाश्रयेत् ॥ इति

श्रुतिसमृतिबिरुद्धानि निष्ठा तेषां हि तामसी ॥

विष्णुधर्मीत्तर के "साइल्यं योग:0" इत्यादि ऋोकों से यह कहा है कि साइल्य, योग, पश्चरात्र, बेद, पाशुपत, ये पांच ब्रह्मज्ञान के उपाय हैं। संसार के छूटने (मोक्ष) अथवा स्वर्ग के लाम में बैष्णव-धर्मपर्यन्त यह राजमार्ग कहा गया है ये सब बेदमार्ग आप के कहे हुए हैं" तथा कूर्मपुराण के "कापालं पश्चरात्रं च0" "यानि शास्त्राणि0" इन ऋोकों में यह कहा हुआ है कि इस लोक में जो श्रुति और स्मृति के बिरुद्ध अनेक प्रकार शास्त्र देखे जाते हैं उन से इस लोक में तो लाभ होता है परन्तु परलोक में बड़ी ही हानि होती है। कापाल, पश्चरात्र, यामल, बाम और आईत (जैन शा०) और ऐसे २ अन्यान्य शास्त्र भी लोगों को मूढ करने के लिये हैं।

प्र- जब उक्त रीति से साङ्ख्यादि भी धर्म में प्रमाण हैं तो यह क्यों कहा गया है कि धर्म।बेद्यायें १४ ही हैं ?

उ॰—१४ बिद्याओं में धर्मशास्त्रों की गणना पूर्व में हो चुकी है तथा धर्मशास्त्र को स्पृति भी कहते हैं और पूर्वोक्त भविष्यपुराण के बचन में यह भी कहा है कि उक्त स्पृतियों से अन्यान्य स्पृतियां भी हैं इस रीति से साङ्ख्य आदि शास्त्र धर्मशास्त्र ही में अन्तर्गत हैं इस छिये धर्मिबद्याओं की सङ्ख्या १४ ठीक ही है। कितिपय पाण्डितों का यह मत है कि जिन छोगों को साभाविक अथवा किसी कारण से बेद में अधिकार नहीं है उन्हीं का पश्चरात्र आदि में अधि-

यच कौर्मे,

अथां शुः सात्वतो नाम विष्णुभक्तः प्रतापवान् ।

महात्मा दानिरतो धनुर्वेद्दावदां बरः ॥

स नारदस्य वचनाद्वासुदेवार्चने रतः ।

शास्त्रं प्रवर्त्तयामास कुण्डगोळादिभिः श्रितम् ॥

तस्य नाम्ना तु विष्यातं सात्वतं नाम शोभनम् ।

प्रवर्तते महाशास्त्रं कुण्डादीनां हितावहम् इति ॥

श्रीभागवतेऽपि,

तेनोक्तं सात्वतं तन्त्रं यद् ज्ञात्वा मुक्तिभाग्थवेत्। यत्र स्नीशूद्रदासानां संस्कारो वैष्णवः स्मृतः॥

इत्यादिवचनैः श्रुतिभ्रष्टादीनामेवागमेष्वधिकारपातिपादनाद्धेदिबदामनिधकार इति कैश्रिदुक्तं, तम न्यायिवदामिभिधानम् । तथाहि श्रुतिभ्रष्टादिवावयेषु न तन्त्रमुद्दिय कत्तीरो विधीयन्ते। राजस्योद्देशेन राजेव येनान्येषामनिधकारः स्यात्, किन्तु श्रुतिभ्रष्टा-दीनुद्दिय तन्त्रं विधीयते। तथा च

'स्त्री श्रद्राद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा।

्॥ भाषा ॥

कार है न कि देदाधिकारियों का । इसी से साम्बपुराण में "श्रुतिश्रष्ट:0" इस स्रोक से यह कहा है कि 'जो मनुष्य बेंदाधिकार से च्युत हो गया और बेंदोक्त प्रायाश्चित्त करने से हरता है वह क्रम से बेदाधिकार के लाभ के लिये तन्त्रोक्तमार्ग का धारण करें" और कूर्मपुराण में भी "अथांशुः" इलादि स्रोक से यह कहा है कि "बिष्णुमक्त और महात्मा तथा धनुर्वेद का पाण्डत एक अंशु-नामक प्रतापी पुरुष था जिस को सात्वत भी कहते हैं उस ने नारद देवार्ष की आज्ञानुसार एक सात्वत नामक शास्त्र बनाया जिस में कि कुण्ड (सधवा स्त्री का, व्यभिचार से उत्पन्न पुत्र) और गोलक (ब्यभिचार से उत्पन्न, बिधवा स्त्री का पुत्र) आदि नीच मनुख्यों का अधिकार है" तथा, भागवत में भी "तेनोक्तं०" इस स्रोक से यह कहा है कि "उस ने सात्वततन्त्र को बनाया जिस के ज्ञान स मुक्ति होती है और जिस में स्त्री, शूद्र और दासों, के लिये बैज्जवसँस्कार कहा है" इति। परन्तु यह मत न्यायानुसारी तहीं है क्योंकि जैसे राजसूययज्ञ को उद्देश्य कर क्षत्रिय वर्ण ह्यी अधिकारी के विधान करने से यह निषेध निकलता है कि क्षत्रिय से अन्य का राजसूय करने का अधिकार नहीं है प्रकृत विषय में भी वैसा तब होता यदि " श्रुतिभ्रष्टः " आदि वाक्यों में तन्त्र के उद्देश से श्रुतिश्रष्टः अवि का विधान होता, अर्थात् तव "श्रुतिश्रष्टः" आदि का विधान होता अर्थात् तब "श्रुतिभ्रष्टः" आदि को ही का तन्त्र में अधिकार होता न कि बेदाधिकारियों की, परन्तु यहाँ ऐसा नहीं है किन्तु उस से डलटा है अर्थान् श्रुतिश्रष्ट आदि को उद्दय बना कर तन्त्र ही का विधान है जिस से यही निकलता है कि श्रुतिश्रष्ट आदि का अधिकार तन्त्र ही में है न वेद में, और यह किसी प्रकार से नहीं निकल सकता कि तन्त्र में श्रु ति प्रष्ट आदि की ही की अधिकार है न कि बेदाधिकारियों का, जैसे " स्त्रीशूद्रित बन्धूनां के गईस वाक्य से अनुसार यहाँ। सी, राह, आदि के छिये महाभारत बना तथापि उस में बेट्राधिकारियों का भी अधिकार होता हीहै

अतो भारतमाख्यानि ते वचनात् स्त्रीश्र्द्रादीन्त्रति भारतप्रवृत्तावि अन्येषां भारताधिकारवदागमेष्वप्यविरुद्धेष्वविहतोऽधिकारः । इति इति स्मृतिप्रामाण्यम् ।

अथ विशेषतः पुराणेतिहासप्रामाण्यम् ।
प्रामाण्ये धर्मविद्यानामेवमुक्ते महर्षिणा ।
अर्थापिते च बहुशो मानस्तर्कैरनेकशः ॥
पूर्वाचार्यः पक्षपात-रहितैर्देवदर्शनैः ।
किश्चिदण्वपि वक्तं न यद्यपीहावशिष्यते ॥
तथाप्याचार्यवचसां भावगाम्भीर्यशास्तिनाम् ।
दुष्ट्युम्बश्चुम्बकेरद्धा प्रभावो भावसम्भवः ॥
आद्यत्विकेस्तु विद्वज्ञिरुपेक्षन्तेऽद्य नास्तिकाः ।
दूषयन्ति च ते विद्वन्मानिनोऽप्यास्तिकान्नरान् ॥
प्रामाण्ये हि पुराणानां विवादादेष विग्रवः ।
बोभूयतेऽतस्तन्मन्द-बोधायाम्रेड्यतेऽधुना ॥

तत्र बेद एव तावत् पुराणानां प्रामाण्यं प्रमापयति तथा च श्र्यते।
(१) स बृहतींदिशमनुब्यचलत् (मन्त्र १० अय० कां० १५ अनु० ९ सू० ६)

एसे ही बेंदाधिकारियों का भी उन तन्त्रों में अधिकार अवश्य है जो कि बेदविरुद्ध नहीं हैं। यहाँ तक स्मृतियों के प्रमाणता का निरूपण हो चुका अब पुराण और इतिहास रूपी स्मृतियों के प्रमाणता का विशेषरूप से निरूपण किया जाता है।

यद्यपि अनन्तरोक्त प्रकरण में सब धमेबिद्याओं का प्रमाण होना "पुराणन्याय०" इस बाजबल्स्यमहार्षि के वाक्य से कहा गया और तदनन्तर शवरखामी और कुमारिळमट्ट आदि, पक्ष-पातरित प्राचीन आचार्यों के कहे हुए हटतर अनेक प्रमाणों और तकों से भी धमेबिद्याओं की प्रमाणता भटळ कर सिद्ध कर दी गयी और पुराण तथा इतिहास भी उन्हों बिद्याओं में परिगणित हैं इस लिये पुराण की प्रमाणता के विषय में अब कुछ कहने का काम नहीं है तथापि पूर्व आचार्यों के वाक्यों का तात्पर्य, बहुत गम्भीर है इस से उस तात्पर्य के प्रभाव को चुम्बक (इघर उसर से स अनेक मन्यों के हो २ चार २ बातों के जानने वाळ पण्डितमानी) छोग चूम भी नहीं सकते और आज कल्ह के उत्तम बिद्धान छोग उन चुम्बक नास्तिकों (जो पुराण और इतिहास नहीं प्रमाण हैं इसादि अनेक निर्मृछ वाक्य बका करते हैं) के और अनादर से देखते भी नहीं और वे नास्तिक, अधपदे और अनपदे अन्यान्य आसिकों को प्रतिदिन अपने बकवाद से ऐसा बिगाइते जाते हैं कि जैसे बिकृत रुधिर, अच्छे रुधिर को बिगाइता है। और छोक की इस बहुत बड़ी हानि में मूछ कारण यही है कि जो पुराण और इतिहासों के प्रमाण्य में नास्तिकों के निर्मृछ विवादों का समूछ उन्मूछन नहीं किया जाता अर्थात उन बिवादों की जइ खोद कर फेक नहीं दी विवादों का समूछ उन्मूछन नहीं किया जाता अर्थात उन बिवादों की जह खोद कर फेक नहीं दी विवादों का समूछ उन्मूछन नहीं किया जाता अर्थात उन बिवादों की जह खोद कर फेक नहीं दी विवादों का समूछ उन्मूछन नहीं किया जाता अर्थात उन बिवादों की जह खोद कर फेक नहीं दी विवादों का समूछ उन्मूछन नहीं किया जाता अर्थात उन बिवादों की जह खोद कर फेक नहीं दी विवादों का समूछ उन्हों के समझने के अर्थ, पुराण के प्रमाण होने में प्रमाण ये हैं कि विवादों सो उन स्वाद का प्रमाण ये हैं कि

(प्रमा०-१) "स बहतीं०" वह परमेश्वर बड़ी दिशा की ओर चले।

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्वानुब्यचळन् (मन्त्र १९)

(२) इतिहासस्य च बै सपुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च मियं धाम भवति

य एवं बेद (मन्त्र १२) इति ।

(३) छान्दोग्योपनिषदि ७ प० सनत्कुमारनारदाख्यायिकायाम् ॐ अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदस्त धिहोवाच यद्धेत्य तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्व वस्यामीति ॥ १ ॥ सहोवाचग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेद धिमामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहास- पुराणं पश्चमं वेदानां वेदं पित्र्य धिराश्चिं देवं निधिं वाकोवान्यमेकायनं देविवद्यां क्रसाविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतज्ञ्यगवोऽध्येमि ॥ २ ॥ सोऽहं भगवोभन्त्रविदेवासि नात्मविच्छुत् होव मे भगवद्दशेभ्यस्तरित शोकमात्मविदिति सोऽहं भगवः शोचामि तं मा भगवाञ्च्छोकस्य पारं वारयत्विति तधि होवाच यद्धे किञ्चेतद्ध्यगीष्ठा नामैवेतत् ॥ १ ॥ नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आयर्वण- खतुर्थ इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः पित्र्यो राशिदेवोनिधिर्वाकोवाच्यमेकायनं देविवद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या क्षत्रविद्या सन्नविद्या नक्षत्रविद्या सर्पदेवजनविद्यानामैवेतन्नामोपास्वेति ॥४॥ स यो नाम, ब्रह्मेत्युपास्ते यावनाम्नो गतं तन्नास्य यथा कामचारो भवति यो नाम ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो नाम्नो भूय इति नाम्नो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान ब्रवीत्विति॥५॥ अद्योतस्य प्रावति भगवो नाम्नो भूय इति नाम्नो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान ब्रवीत्विति॥५॥

एवम् नित्यब्रह्मयज्ञविधाने 'य एवं विद्वान्स्वाध्यायमधीते ' इति प्रकृत्य श्रूयते । (४) यद्दचोऽधीते यद्यजूषि यत्सामानि यद्वाह्मणानि यदितिहासपुराणानि यत्करणानिति ।

॥ भाषा ॥
"तमितिहासश्च०" उन के पीछ इतिहास, और पुराण, तथा गाथा, और नाराशंसी
भी चळे।

(प्रमा०—२) "इतिहासस्य च०" जो उक्त विषयों को जानता है वह इतिहास और पुराण वथा गाथा और नाराशंसियों का प्रिय स्थान होता है।

(प्रमा०-३) ॐ 'अधीहि०' नारद, सनत्कुमार के समीप जा कर कहते हैं कि हे भगवन ! सुझै पढ़ाइये, सनत्कुमार कहते हैं कि जो पढ़ चुके हो उस को बतलाओ तब पढ़ाऊंगा ।। १ ।। ना० है भगवन ! ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामबेद, चौथा अथर्ववेद इतिहास और पुराण पांचवाँ बेदों का वेद इत्यादि बिद्याओं को में पढ़ चुका हूं ।। २ ।। इस से में बेद तो जानता हूँ परन्तु आत्मज्ञानी नहीं हूँ और श्रीमान के ऐसे महापुरुषों से यह सुना है कि आत्मज्ञानी, संसारक्ष्पी शोक को तर जाता है इस से अब भगवान (आप) मुझै शोक से पार करें । स० तुम ने जो कुछ पढ़ा है वह सब 'नाम' अर्थात् शब्द ही है ।। ३ ।। क्योंकि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामबेद चौथा अथर्ववेद पांचवाँ इतिहास, पुराण, वेदों का वेद इत्यादि बिद्याएं नाम ही हैं ।। १ ।। जो नाम को ब्रह्म समझ कर सपासना करता है उस को नाम के फल की अपेक्षा आधिक फल नहीं होता । ना०-नाम से भी अधिक कोई वस्तु है ! सन०-हां है । ना०-इसी का उपदेश, भगवान (आप) मेरे लिये करें ।। ।।

(प्रमा • — ४) नित्य ब्रह्मयज्ञ (प्रतिदिन बेदाध्ययन) के प्रकरण "य एवं०" (उक्त शिति से जी बेद पढ़ता है) में कहा है कि "यद्ऋषो०" ऋक्, यजु, साम, सन्त्रों तथा ब्राह्मणों और

एवम् न्यायदर्शने ४ अध्याये १ आहिके 'समारोपणादात्मन्यप्रतिषेधः' ६ इति सूत्रे बात्स्यायनीये भाष्ये उच्छता आथर्वणिकी श्रुतिः।

(५) ते वा खल्वेते अथवािक्रिरसएतादितिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यवदन् इतिहास-

पुराणं पश्चमं बेदानां बेद इति ।

किश्च शतपथ ब्रा० १३ काण्डे आश्वमोधिके ३ प्रपा० श्रूयते।

(६) अथाष्ट्रमेऽहन् एवमेवैतास्विष्टिषु संधितास्वेपैवाबृदध्वर्यविति हं वै होतः रित्येवाध्वर्युर्मत्स्यः सामवेदो राजेत्याह तस्योदकेचंरा विशस्त इम आसत इति मत्स्याश्च-मत्स्यहनश्रोपसमेता भवन्ति तानुपदिशतीतिहासो बेदः सोऽयमिति कश्चिदितिहासमाचक्षी-तैवमेवाध्वर्युः सम्मेष्यति न मक्रमां जुहोति कं ।। १२॥

अथ नवमेऽहन् एवमेवैतास्विष्टिषु सं स्थितास्वेषैवाबृद्ध्वर्यविति ह वै होतरित्ये-वाध्वयुस्ताक्ष्यों ब्वै पश्यतो राजेत्याह तस्य व्वया एसि व्विशस्तानीमान्यासत इति व्वया-एसि च व्वयोविधिकाश्चोपसमेता भवन्ति तानुपदिशति पुराणं वेदः सोऽसमिति कि-

व्चित्पुराणमाचक्षीतैवमेवाध्वर्धुः सम्प्रेष्यति न प्रक्रमां जुहोति कं ।। १३॥

(प्रमा० ७) स यथाऽद्वेंधाग्नेरभ्याहितस्य पृथम्भूमा विनिश्वरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निः श्वसितमेत चहारे वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उप निषद्ं क्लोंकाः सूत्राण्यनुब्याख्यानानिब्याख्यानानीष्ट् हुतमाशित पायितमयं च छोकः परश्र लोकः सर्वाणि च भूतान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानि (श्र० कां० १४ अ० ६ ब्रा० ६ कं० ११)।

इतिहासपुराणशब्दौ ब्राह्मणभागवाचिनाविति तु क्षुद्रोपद्रवाविद्रावणप्रकरणोपन्यस्ते महामोहविद्रावणे 'पुराणितिहाससञ्ज्ञकत्वादि 'ति भाष्याभासभूमिकोक्तप्रथमहेतुदृषणावसरे

पूर्वमेव निराकृतम् ॥

(८) तथा-महाभारते। पुराणं मानवो धर्मः साङ्गो वेदाश्रिकित्सितम्। आज्ञासिद्धानि चत्वारि न इन्तव्यानि हेतुभिः॥१॥

रितिहासों तथा पुराणों और कल्पों को पढ़ा करे।

(प्रमा०-५) "ते वा खल्वेते०" ये अथर्वाङ्गिरस् छोग इतिहास और पुराण के प्रामाण्य को यों प्रत्यक्ष कहे हैं कि इतिहास और पुराण, वेदों का पांचवाँ वेद है। (न्या॰ द० अध्या॰ ४, षा० १, "समारोपणादातमन्यप्रतिषेघः" सू० ६२ के बात्स्यायनभाष्य में उद्भुत अथर्षेद की श्रुति)।

(प्रमा०-६) "अथाऽष्टमे०" अश्वमेघ में आठवें दिन किसी इतिहास का पाठ करें क्योंकि रितिहास, बेद के तुरुष अर्थात् बेदानुसारी है। "अथ नवमे०" नवें दिन किसी पुराण का पाठ करें क्योंकि पुराण, बेद के तुल्य अर्थात् बेदानुसारी है। (शत० मा० १३, आ० खं० म०३)।

(प्रमा० - ७) " स यथा० " ऋग्बेद, यजुर्वेद, सामबेद, अथवा क्रिरस इतिहास और पुराण,

परमेश्वर के श्वास के तुल्य हैं (श० कां० १४० अ० ६ ब्रा० ६ कं० ११)।

(प्रमा०—८) "पुराणं०" पुराण, मनु का धर्मशास्त्र, ६ अङ्गों से सहित बेद, और वैद्यशास्त्र

(९) मनुः अध्या॰ ३ श्लो॰ २३२। स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्रे धर्मशास्त्राणि चैव हि । आख्यानानीतिहासांश्र पुराणानि खिलानि ख ॥

(१०) याज्ञषल्कयः

पुराणन्यायमीमांसा-थर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः । बेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥

न्यायदर्शने ४ अध्याय १ आ० 'समारोपणादात्मन्यमतिषेधः' ६२ इति सूत्रे।

(११) भाष्ये भगवान् बात्स्यायनः।

चातुराभम्यविधानाचेतिहासपुराणधर्मशास्त्रेष्वेकाश्रम्यानुपपत्तिः तद्मपाणिमितिचेत्र।
त्रमाणेन खळ ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते । ते वा खल्वेते अध-वाक्तिरस एतदितिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यवदन् इतिहासपुराणं पश्चमं वेदानां वेद इति तस्मादयुक्तमेतदप्रामाण्यामिति । इत्येवपादीनि पुराणपामाण्ये प्रमाणानि । पुराणप्रामाण्यो-पपादनसरणिस्तु पूर्वोपन्यस्ते 'अपि वा कर्तृसामान्यात्" (मी॰ द० अ०१ पा०३ स्र०२) इति स्रते ।

बार्तिके।

तत्र यावद्धर्ममोक्षसम्बन्धि बद्धेदप्रभवम् । यन्वर्थसुखिषयं तङ्कोषव्यवहारशूर्षकिषिति विवेक्तव्यम् । एषैवेतिहासपुराणयोरप्युपदेशवाक्यानां गतिः ।

॥ भाषा॥

ये चार खाभाविक प्रमाण हैं मनुष्य को अपनी बुद्धि से इन के बिरुद्ध कोई युक्ति नहीं करनी चाहिये।

(प्रमा०—९) "खाध्यायं०" श्राद्ध में बेद, मानव आदि धर्मशास्त्रों, सौपर्ण, मैत्रावरण आदि आख्यानों, महाभारत आदि इतिहासों, ब्राह्म आदि पुराणों, और श्रीसूक्त, शिवसङ्करूप आदि खिलों, को ब्राह्मणों के लिये सुनावे।

(प्रमा०—१०) "पुराणन्याय०" बिद्याओं और धर्म के ये १४ स्थान हैं पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, तथा शिक्षादि ६ अङ्ग और ४ बेद।

(प्रमा०—११) "चातुराश्रम्य०" "आश्रम १ ही है" यह मत ठीक नहीं है क्योंकि इतिहासों, पुराणों और धर्मशास्त्रों में ब्रह्मचर्य आदि ४ आश्रमों का विधान है। यह तो कह नहीं सकते कि इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र, प्रमाण नहीं हैं क्योंकि ब्राह्मणभागरूपी इस प्रमाण से इतिहास, और पुराणों का प्रमाण होना सिद्ध है कि "तेबा खस्वेते०" (ये अथबींक्रिय होग इतिहास और पुराण के प्रामाण्य को यों प्रसक्ष कहे हैं कि इतिहास और पुराण बेदों का पांचवाँ बेद है)। ऐसे २ और भी प्रमाण मिल सकते हैं परन्तु उन के लिखने से प्रनथिक्तर होगा इस लिखे नहीं दिये जाते।

पुराणों के प्रामाण्य सिद्ध करने की युक्ति तो अनन्तरोक्त स्मृतिप्रामाण्य के प्रकरण में "अपि वा कर्तृसामान्यात्०" (मी० द० अ० १ पा० ३ सू० २) इस सूत्र के उद्धृत बार्तिक में कही जा सुकी है। तथा (मी० द० अ० १ पा० २) "विधिनात्वेकवाक्यलात्०"॥ २॥ इस

खपाख्यानानि त्वर्थवादेषु व्याख्यातानि । यतु पृथिवीविभागकथनं तद्धर्माधर्मसाधनफलोपभोगमदेशविवेकाय किश्चिद्दर्शनपूर्वकं किश्चिद्धेरमूल्रम् । वंशानुक्रमणमिश्चाह्मणक्षत्रियलातिगोत्रज्ञानार्थं दर्शनसारणमूलम् । देशकालपरिमाणमिष क्षोकल्योतिःशास्त्रव्यवहारसिद्ध्यर्थं दर्शनगणितसम्भदायानुमानपूर्वकम् । भाविकथनमिपत्वनादिकालभवृत्तयुगस्वभावधर्माधर्मानुष्ठानफलविपाकवैचिन्यज्ञानद्वारेण वेदमूलम् इति ।

एवम् (मी०द० अध्या० १ पा० २) 'बिधिनात्वेकवाक्यत्वात्' स्०२ इति

सूत्रवार्त्तिके ।

एवं भारतादिवाक्यानि व्याख्येयानि । तेषामि हि 'श्रावयेचतुरोवर्णानि' त्येव-मादिविध्यनुसारेण पुरुषार्थत्वान्वेषणाद्क्षरादिव्यतिक्रम्य धर्मार्थकाममोक्षाधर्मानर्थदुःख-संसारसाध्यसाधनप्रतिपत्तिरुपादानपरित्यागाङ्गभूताः फल्लम् तत्रापि तु दानराजमोक्षधर्मा-

सूत्र के बार्तिक में भी इतिहास और पुराणों के उपाख्यानभाग के प्रामाण्य की युक्तियां यों कही हैं (इस सूत्र से बैदिक अर्थवादों का प्रामाण्य सिद्ध होता है और इस का पूर्ण ब्याख्यान बेददुर्ग- सजन में पूर्व हीं हो चुका है) कि—

'यावदुं , जिस रीति से बैदिक अर्थवादवाक्यों का प्रामाण्य अभी सिद्ध किया गया

है उसी के तुल्यरीति से भारतादि के उपख्यानों का भी प्रामाण्य सिद्ध होता है।

प्रश्न—"खाध्यायोऽध्येसच्यः" (बेद पदं) इस बेदवाक्य के बळ से बेदिक अर्थवादों का, खगीदि पुरुषार्थ के प्रति कारण होना सिद्ध होता है और उसी के अनुसार उन अर्थवादों के अक्षरार्थ को उल्लान कर लक्षणाज्ञात्त के द्वारा स्तुति और निन्दारूपी अर्थ में उन अर्थवादों के वात्पर्य का निश्चय होता है और उक्त उपाख्यानों के बिषय में तो कोई ऐसा वाक्य नहीं है कि जिस के अनुसार उक्त रीति से उन के तात्पर्य का निश्चय किया जाय तब कैसे उक्त उपाख्यानों का प्रमाण होना सिद्ध हो सकता है ?

डं०—भारतादि के बिषय में भी "शावयेषतुरों बर्णान्" (चारों वर्णों को सुनावे) इस बिधिवाक्य के बल से भारतादि के उपाल्यानों का स्वर्गादिरूपी पुरुषार्थ के प्रति कारण सिद्ध होता है और उस के अनुसार उन के अक्षरार्थ का उल्लान कर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के उपायों के प्रहण तथा अधर्म, अनर्थ, दु:स्व और संसार के कारणों के त्याग में उक्त उपाल्यानों के तात्पर्य का निश्चय होता है। इसी से भारत के आरम्भ ही में "धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरत्वभ, यदिहास्ति तद्न्यत्र यत्रेहास्ति न तत्कचित्" (हे भरत्वभ अर्थात् जनमेजय! धर्म और अधर्म तथा काम और दु:स्व तथा मोक्ष और संसारवन्ध के विषय में जो इस महाभारत में कहा हुआ है वही अन्यान्य प्रन्थों में मिलता है और जो यहां नहीं कहा है वह किसी प्रन्थ में कहीं नहीं कहा है। ऐसा कहा है।

प्र-भारत आदि में विधि और निषेध के जो वाक्य हैं उन का प्रामाण्य तो अनन्त-रोक प्रकरण में पुराणों के अवसर पर कहा जा चुका है परन्तु उन में जो उपाख्यान (कथाभाग) हैं वह किस परम्परा से पुरुषार्थ के प्रति कारण हैं ? क्योंकि उन के वाच्यार्थ, सिद्धरूपी हैं इस से वे किसी कमें में पुरुष की प्रवृत्ति वा किसी कमें में निवृत्ति नहीं करा सकते, तब कमें के द्वारा वे

पुरुषार्थ के कारण कैसे हो सकते हैं ?

दिषु केचित्साक्षाद्विधयः केचित्युनः परकृतिपुराकल्परूपेणार्थवादाः । सर्वोपारुयानेषु व तात्पर्ये सित 'श्रावयेदि' ति विधेरानर्थक्यात्कथिश्चिद्रम्यमानस्तुतिनिन्दापिरग्रहः । तत्पर-त्वाच नातीवोपारुयानेषु तत्त्वाभिनिवेशः कार्यः । वेदमस्थानाभ्यासेन हि बाल्मीकिद्वैपायन-प्रभृतिभिस्तथैव स्ववाक्यानि प्रणीतानि । प्रतिपाद्यानां च विचित्रबुद्धित्वाद्यक्तभेवतत् । इह केचिद्धिधिमात्रेण प्रतिपद्यन्ते अपरे सार्थवादेन अपरेऽल्पेनार्थवादेनापरेमहता । सर्वेषां

॥ भाषा ॥

उ०— उपाख्यानों के बिषय में यह बिबेक है कि इतिहास और पुराणों में दो प्रकार के वाक्य होते हैं एक प्रकार यह कि दानधर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म तथा तप आदि के सम्बन्धी धर्मों के साक्षात् बिधान करने बाले वाक्य, और दूसरे यह कि पूर्वकाल के महात्माओं तथा दुरात्माओं के चित्रवर्णनरूपी अर्थवादवाक्य, जिन को उपाख्यान कहते हैं। तथा उपाख्यानों का मुख्यतात्पर्य स्तुति और निन्दा ही में है न कि अपने अक्षरार्थ में, क्योंकि उन के अनुसार इस बिधि और निषेध के वाक्य का अनुमान होता है कि "इस कर्म को करें क्योंकि महात्माओं ने इस को किया है" तथा "इस कर्म को न करें क्योंकि दुरात्माओं ने इस कर्म के करने से दु:ख उठाया है"। और इसी रीति से सब उपाख्यान, बिधि और निषेध वाक्यों के अङ्ग हो कर कर्मों के द्वारा अर्थवादों के नाई पुरुषार्थ के प्रति उपयोगी हैं और इस में मूलकारण "श्रावयेत्०" यह अनन्तरोक्त वाक्य ही है। और जब उपाख्यानों का अपने अक्षरार्थ में मुख्यतात्पर्य नहीं है तब उन के अक्षरार्थ का सत्य होना उन के प्रमाण होने में उपयोगी नहीं है किन्तु स्तुति और निन्दारूपी लक्ष्यार्थ ही की सत्यता का उपयोग उन की प्रमाणता में है क्योंकि जिस वाक्य का जिस अर्थ में मुख्यतात्पर्य होता है उसी अर्थ की सत्यता से उस वाक्य की प्रमाणता और असत्यता से अप्रमाणता होती है। और प्रतेक उपाख्यानों के अक्षरार्थ में सत्यता का बहुत सा आप्रह नहीं करना चाहिये।

प्र- बंद तो अपौरुषेय है इस से अनन्यगित हो कर उस के अर्थवादों का, उक्त अध्यय निविध के अनुसार स्तुति और निन्दा में मुख्यतात्पर्य माना जाता है और उन के अक्षरार्थ की सत्यता वा असत्यता पर दृष्टि नहीं दी जाती परन्तु भारतआदि में यदि कतिपयउपाख्यानों का अक्षरार्थ सत्य नहीं है तो ऐसे झूठे उपाख्यानों के बनानेवालों को मूढ बा धूर्त क्यों न कहा जाय ?

उ०—बेदमागों के पढ़ने पढ़ाने और उस के अर्थविचार में एडतर अभ्यास होने ही के कारण बाल्मीकि और ब्यास आदि महार्षियों ने इतिहास और पुराण आदि में बेद ही के तुल्य वाक्यों की रचना की है इसी से वे मूढ बा धूर्त नहीं हैं।

प्र० — यद्यपि ब्यास आदि मूढ बा धूर्त नहीं हैं तथापि " अबिमृश्यकारी" (समझे बिना काम करने वाला) क्यों नहीं हैं ? क्योंकि उन के समझ में यह नहीं आया कि ऐसे उपाख्यानों की रचना में क्या प्रयोजन है ?

उ०--श्रोताओं की बुद्धियां अनेक प्रकार की होती हैं अर्थात् कोई श्रोता केवल विधान वाक्य ही को सुन कर कर्म में प्रबृत्त अथवा उस से निष्टुत्त होता है और कोई श्रोता केवल विधिन वाक्य से प्रबृत्त वा निबृत्त नहीं होता किन्तु अर्थवादसहित ही विधिवाक्य से तथा कोई थोड़े से अर्थवाद से श्रोर कोई बहुत से अर्थवादों से प्रबृत्त वा निबृत्त होता है और इतिहासपुराण आदि,

व चित्तं ग्रहीतव्यामित्येवमारम्भः । तत्र तु कोचिद्विधिमितिपेधाः श्रुतिमूलाः केचिद्र्थसुलादिषु लोकमूलास्त्रथार्थवादाः केचिद्वैदिका एव केचिल्लोकिका एव केचित्तु स्वयमेव काव्यन्यायेन रिचताः । सर्वे च स्तुत्यर्थेन ममाणम् ये तु वाक्यशेपत्वं न मितपद्यन्ते तेऽपि
केचित्स्वयमेव श्रूयमाणा गन्धमादनादिवर्णकमभृतयः मीतिं जनयन्ति । ये तु युद्धवर्णकास्ते
सर्वेषां श्रूराणां भीरूणां चोत्साहकराः पार्थिवानाम्रुपयुज्यन्ते । यत्र तु न किश्चिद्दृष्टम्रुपलभ्यते तत्र विशिष्टदेवतादिस्तुतिद्धारमदृष्टं कल्पनीयमित्येषा दिक् । इति

म भाषा॥

केवल एक ही प्रकार के श्रोताओं के लिये नहीं बने हैं किन्तु सब प्रकार के श्रोताओं के लिये, इसी से सब श्रोताओं के हृदयप्राही अनेक प्रकार के उपाख्यानों की रचना, ज्यास आदि महार्षियों ने की है। इसी से वे अविमृश्यकारी कदापि नहीं हो सकते बरुक ऐसे विचारशील और लोक-बतुर हैं जैसे कि वे ही हैं अर्थात् अन्य कोई वैसा नहीं हो सकता।

प्र -- जो कुछ हो ? परन्तु जब असत्य उपाख्यानों की रचना भी ब्यास आदि ने किया है तो उन के किसी वाक्य पर कैसे किसी को विश्वास हो सकता है ?

एक न्वयास आदि के रचे हुए जितने धर्मादिसम्बन्धी, बिधि और निषेध के वाक्य हैं एन सब के मूळवाक्य, बेद में हैं तथा एन के जो जो बिधि और निषेध के वाक्य, अर्थ और काम आदि के सम्बन्धी हैं एन के मूळ, प्रत्यक्ष और अनुमान आदि छौकिकप्रमाण हीं हैं अर्थात् वे वाक्य, छोकानुभवमूळक ही हैं। इसी से ख्यास आदि महर्षियों की सत्यवादिता पर दृढ विश्वास होता है। और उपाख्यानों के बिषय में भी वे असत्यवादी नहीं हो सकते क्योंकि बहुत से एपाख्यान बेदमूळक और बहुत से छोकमूळक हैं और अपनी उत्प्रेक्षामात्र से कल्पना कर जिन कितिपय उपाख्यानों की रचना ज्यास आदि महर्षियों ने की है वे उपाख्यान भी काव्य आदि के नाई छोकर अन हीं के अभिप्राय से हैं न कि धूर्तता से छोकब ब्वना के छिये, इस से उन उपाख्यानों के बनाने के कारण भी, ज्यास आदि महर्षि, असत्यवादी नहीं हो सकते।

प्र०—धर्मादि के सम्बन्धी वाक्य, बेदमूलक होने से प्रमाण हो सकते हैं, परन्तु जो उपाख्यान, बेदमूलक नहीं हैं वे कैसे प्रमाण हो सकते हैं ? क्योंकि किसी बिधिवाक्य के साथ हन की एकवाक्यता जब नहीं हो सकती तब कैसे स्तुति और निन्दा रूपा अर्थ में उन का मुख्य- वार्प्य हो सकता है ?

प०—यह बात वर्धवादप्रकरण में कहा जा चुका है और यहां भी पुन: कहा जाता है कि जिन उपाख्यानों के समीप में बिधि बा निषेध का वाक्य प्रत्यक्षपिठत नहीं है वहां उन्हीं उपा- ख्यानों के अनुसार किएत, बिधि और निषेध वाक्यों के साथ उन की एकवाक्यता होती है क्योंकि बैदिक अर्थवादों के बिषय में यही रीति है और जहां भारत आदि में बिधि और निषेध वाक्य के समीप उपाख्यान प्रत्यक्षपिठत नहीं हैं वहां भी अन्यत्र पिठत उपाख्यानों के साथ उन विधि, निषेध, वाक्यों की एकवाक्यता होती है। तथा जो उपाख्यान नदी, पर्वत आदि का बर्णन करते हैं वे छोगों की प्रीति के द्वारा उपयोगी हैं और जो युद्ध के उपाख्यान हैं वे शूर और भीर (डरपोंक) अर्थात् सब मनुष्यों के उत्साह उत्पन्न करने के द्वारा राजाओं के उपयोगी हैं और जिन विपाख्यानों में देवता, ऋषि, आदि की स्तुतिमात्र है अर्थात् उस का छोकिक प्रयोजन नहीं मिछ सकता उन उपाख्यानों का पारछोकिक प्रयोजन में उपयोग है इस रीति से भारत आदि के सब

अत्रेदमवधेयम्।

पुराणानां व्यक्त्यनादित्वाभावेऽपि स्वसंजातीयमितयोगिकध्वंसव्याप्यमागभावः मित्योगित्वरूपं मवाहानादित्वमसन्दिग्धमेव उक्तेषु वेदवाक्येषु तेषां ममाणतयोपन्यसनातः। पुराणोतिश्रव्दस्वारस्याच । तत्तत्कालिकपुराणप्रन्थव्यक्तीनां तु तत्तत्कालिकतत्त्वस्यः निहः तत्या सादित्वं न मवाहानादित्वेन विरुध्यते मागभावमितयोगित्वात्मकस्यादित्वस्यः निहः क्षमवाहानादित्वापेक्षया सामान्यत्या सामान्यविशेषयोश्य समावेशस्येव सार्वलोकिकतया ऽतुभवेनैव विरोधस्य प्रत्यादेशात् । इयमेव च गतिः सर्वास्त्रकासु विद्यासु वेदिवव्या । पुराणानि च वेददेशीयान्येव भवन्ति तेषु विधिनिषेधमन्त्रार्थव।दनामध्योपनिषद्वपाणां पण्णामेव भागानां वेदेष्विव विद्यमानत्वात् कर्मोपासनाज्ञानकाण्डानां च वेदवदेव पुराणेषु यथायथं निवन्धनाच यथार्थरञ्जकभयानकानां त्रयाणामिष भागानां वेदवदेव पुराणेषु व्यथ्ययं निवन्धनाच यथार्थरञ्जकभयानकानां त्रयाणामिष भागानां वेदवदेव पुराणेषु व्यथ्यः । भाषा ॥

उपाख्यान समूछक तथा अति उपयोगी हैं। और उपाख्यानों ही के बिषय में प्रायः नास्तिक लोग

झगड़ते हैं इस से बार्तिककार ने उपाख्यानों के बिषय में यहां यह निर्णय किया है।

यहां तक पुराण और इतिहास की प्रमाणता के विषय में सक्केप से प्रमाणों और युक्तियों का सङ्गृह कर दिया गया।

अब इन प्रमाणों और युक्तियों के फलीभूत निर्णय के छिये छोकोपयोगी ब्याख्यान

किया जाता है इसे सावधानी से सुनना चाहिये कि-

पुराण और इतिहास के एक २ प्रन्थ, यद्यपि अनादि नहीं हैं किंतु समय २ पर ध्यास आदि महर्षियों के द्वारा रचित हुआ करते हैं तथापि इस में कुछ भी सन्देह नहीं है कि पुराण और इतिहास रूपी शास्त्रों की सम्प्रदायपरम्परा कदापि नवीन नहीं है किन्तु अनादि ही है क्योंकि यदि पुराण आदि अनादि न होते तो पूर्वोक्त पाठ बेदवाक्यों में प्रमाणता से उन का उपन्यास न होता और "पुराण" (पुराना अर्थात्—अनादि) नाम से भी उन का अनादि होना सूचित होता है। और यह रीति, पुराण आदि के बिषय में कुछ नवीन नहीं निकाछी जाती है किन्तु बेद से अन्य पूर्वोक्त प्रत्येक बिद्याओं के बिषय में यही रीति है अर्थात् वे सब बिद्याएं अनादि ही हैं उन के बिषय में केवछ प्रन्थ मात्र कभी किसी के और कभी किसी के रचित हो कर प्रचित्र और छुप्त हुआ करते हैं परन्तु महाप्रछय से अन्य कोई ऐसा समय नहीं है जिस में कि एक बिद्याओं के कोई प्रन्थ प्रचित्र न रहें।

पुराण तो सब रीति से बेद ही के ऐसे हैं क्योंकि—
(१) जैसे बेद में विधि, निषेध, मन्त्र, अर्थवाद, नामधेय (कर्मों का बाजपेय आदि

नाम), और उपनिषद्, ये छ भाग होते हैं वैसे ही पुराण आदि में भी ये ही छ भाग हैं। (२) और जैसे बेद में कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड ये तीन काण्ड-

बिभाग हैं वैसे ही पुराष और इतिहास में भी ये ही तीन काण्डिबभाग हैं।

(३) तथा जैसे बेद में यथार्थ, (बिधि और निषेध) रखक, (अर्थवाद का प्रशंसान्त्रामा) और भयानक (अर्थवाद का निन्दाभाग) ये तीन भाग होते हैं वैसे ही पुराण आदि में भी ये तीन भाग रहते हैं।

(४) और जिन "गृभीत " (गृहीत) आदि शब्दों का बैदिक ब्याकरण के अनुसार होक में प्रयोग नहीं होता किन्तु बेद ही में उचारण होता है उन सहस्रों शब्दों का पुराण आदि के अनेक स्थानों में अनेक बार प्रयोग देखे जाते हैं। 'यदु ह बाबे' त्यादिकानां बैदिकीनां पदघटनामुद्राणां वैदिकस्य खल्वादिनिपातवाहुल्यस्य ब पुराणेषु परिशीलनाच्च कचित्कचित् कियन्त्यपि पदानि विनिमाय कचित्कचिच्च ब्यत्य-स्य श्रुद्रादिश्रवणाधिकारसम्पिपाद्यिषाप्रयुक्तवैदिकानुपूर्वीभक्तमात्रप्रयोजनकप्रयत्नातिशयेन बेदार्थानुवादिनां वाक्यानां पुराणेषु सहस्रशो जागरूकत्वाच्च यथाश्रुतवैदिकमन्त्राणामपि शुद्राद्यश्रवणादिरूपस्वाध्यायनियमप्रहापणमात्राभिप्रायेण प्रायेण पुराणेषूपबन्धनाच्च । तथा च

स्वभेश्वरीये।

शाण्डिल्यमहर्षिप्रणीतभक्तिमीमांसासूत्रभाष्ये।

तदुक्तवाचार्यैः — तानेव वैदिकान्मन्त्रा-नभारतादिनिवेशितान्। स्वाध्यायनियमं हित्वा लोकबुद्ध्या प्रयुक्षते ॥ इति

एवं च यादशी पुराणेषु साधम्योंद्रेकधुरीणा बेदस्य प्रत्यासत्तिः क्षीरनीरन्यायेन बिस्पष्टसुिकछा प्रत्यक्षळक्ष्या न तथा कस्यामपीतरस्यां बिद्यायामिति स्पष्टमेव । अतएव 'पुराणन्यायमीमांसे' त्यादिसमृतिवाक्ये भगवान् याज्ञबल्क्यः प्राधान्यात्प्रणविमव मन्त्रेभ्यो ऽन्योपाङ्गबिद्याभ्यः प्रथममेव पुराणं निर्दिदेश । एतदिभिपायेणैव च 'पुराणं मानवो धर्मः' ॥ भाषा ॥

(५) तथा बेद की " यदुह बा" इत्यादि वाक्यारम्भ की बोळ चाल तथा (खलु, बै, तु,) आदि निपातनामक शब्दों का जैसे बेद में प्रायः प्रयोग होता है वैसे ही बोल चाल की रीति और " खलु " आदि निपातों का प्रयोग पुराण आदि में प्राय: रहता है।

(६) और पुराण आदि में सहस्रों स्थानों पर ठीक २ बेदवाक्य ही पढ़े हुए हैं परन्तु बेदवाक्य के श्रवण में शूद्रादिकों को अधिकार नहीं है इस कारण उन बेदवाक्यों में कहीं २ कोई २ पद बदल दिये गये और कहीं २ पद तो वही रहे किन्तु आगे पीछे होने का क्रम मात्र ही बदला गया है। जिस से यह स्पष्ट ही बिदित होता है कि केवल शूद्रादिकों के उपकारार्थ ही इतना

बैषम्य किया गया नहीं तो वे बेदवाक्य ही ज्यों के त्यों पुराणों में रख दिये गये हैं।

(७) यहां तक कि बैदिकमन्त्र भी केवल इतने ही अभिप्राय से पुराणों में रख दियेगये हैं कि जिस में उन मन्त्रों के श्रवण का अधिकार शूद्रादिकों को हो । जैसा कि भक्तिमीमांसा-दर्शन के स्वप्नेश्वरभाष्य में उद्भृत 'तानेव ' (भारतादि में उद्भृत किये हुए उन्हीं बैदिकमन्त्रों को बेदसम्बन्धी नियमों के बिना हीं छौकिकवाक्यों के नाई छोग पढ़ते और सर्वसाधारण को सुनाते हैं) यह स्लोक है।

(८) अब इतने से यह स्पष्ट हो गया कि बेद की जितनी गाढ़ी तुल्यता और क्षीर नीर के नाई हेल मेल, पुराण और इतिहास में प्रत्यक्ष देखी जाती है उतनी किसी अन्यविद्या में नहीं है। और इसी से यह भी स्पष्टरूप से सिद्ध होता है कि अन्य सब बिद्याओं की अपेक्षा पुराण भीर इतिहास, बेद के बहुत ही अन्तरङ्ग सम्बन्धी हैं।

(९) इसी से जैसे प्रधान समझ कर सब मन्त्रों के प्रथम शिररूपी ओङ्कार पढ़ा जाता है वैसे ही " पुराणन्यायमीमांसा " इस पूर्वोक्त श्लोक में याज्ञबल्क्यमहार्ष ने अन्य

खपाङ्ग विद्याओं से प्रथम, पुराण हीं का नाम लिया है।

इत्यादिभारतीयवाक्ये मानवधर्मादपि पुराणं प्रथममुपात्तम् । किं बहुना यत्र 'इतिहास. पुराणं पश्चमं बेदानां बेदम् ' 'इतिहासपुराणः पञ्चमो बेदानां बेदः ' 'इतिहासपुराणं पञ्चमं बेदानां बेदः' 'तानुपदिशति पुराणं बेदः सोऽयमिति किञ्चित्पुराणमाचक्षीतं इत्याद्याः श्रुतय एव, मुखं चन्द्रइत्यादिरूपकन्यायेन साह्यातिशयस् छक् मभेदाध्यारोपमाभे-प्रयन्त्यः पुराणेषु प्रतिपदोक्तं बेदशब्दमेव निर्दिशन्ति अर्थापयति च तदेव श्रोतेन बेदशब्दः ब्यवहारेण बेदत्वमेव पुराणानां मा प्रसाङ्क्षीदिति श्रौतस्य, पुराणपरस्यानेकशः प्रयुक्तस्य बेदपदस्य च सादृश्यातिशयमूलकाभेदारोपपरतामभिव्यङ्कुं वेदार्थवेदकतया बेदत्वमि-त्यभिब्यञ्जत् 'इतिहासपुराणाभ्यां बेदार्थम् पत्रुं इति वाक्यम् । एवं यथा वेदे 'स्वाध्यायोऽध्येतच्यः' इति वाक्यं स्वस्वेतरस्रमस्तवेदवाक्येषु पुरुषार्थानुबन्धितां सत्याप्यदाः म्नायते तथैव 'पिवत भागवतं रसम्' 'श्रावयेच्चतुरोबणान्' इत्यादि वाक्यमपि स्वस्वेतर-यावत्तत्तत्पुराणादिवाक्येष्वक्षराध्ययनश्रवणवाक्यार्थग्रहणतदर्थानुष्ठानादिद्वारिकां पुरुषार्था-जुवन्धितां प्रमापयत्प्रकाइयत इति किमतः परमप्यस्ति किञ्चित्सीसादृश्यम् । वाक्यं ह्यतत् 'निषादस्थपतिं याजये' दितिवाक्यवाण्णिजथीवित्रक्षया श्रवणमेव विद्धाति नतु श्रावणाम् चतुःशब्दश्रेह बेदानाधिकारिणः श्रुदादीनुपसङ्ग्रह्णँस्तेषाम्रपकारएव पुराणादीना-मसाधारणं प्रयोजनमिति स्फुटतरमेवाभिब्यनक्ति । एवं 'एतादितिहासपुराणस्य प्रामाण्य-मभ्यवद्नु' इत्याथर्वणिकी श्रुतिरेतिदिति शृक्षग्राहिकाङ्गाहयन्ती प्रामाण्यमिति प्रतिपदोक्तमेव ॥ भाषा॥

(१०) और " पुराणं मानवो धर्मः " इस पूर्वोक्त, महाभारत के ऋोक में भी पुराण हीं का नाम प्रथम लिया है।

(११) अधिक कहना ही क्या है ? जब कि 'इतिहासपुराणं पश्चमं बेदानां बेदः" ''तानुपिद्शति बेदः सोयमिति किश्चित् पुराणमाचक्षीत" इतिहासपुराणः पश्चमो बेदानां बेदः इत्यादि पूर्वोक्त बेदवाक्य ही, जैसे 'यह मुख, चन्द्र है' इस वाक्य में चन्द्रमा के आतितुल्य होने से मुख को भी चन्द्र कहा जाता है वैसे ही बेद के अतितुल्य होने से पुराण और इतिहास को 'बंद 'शब्द ही से साक्षात् कहते हैं।

(१२) और यह भी कहते हैं कि इतिहास और पुराण बेदों का बेद है अर्थात् वेदों

के अर्थ का बेदन (निश्चय) कराने वाला है।

(१३) तथा जैसे बंद में 'स्वाध्यायोऽध्येतव्य: 'यह वाक्य है इस के अनुसार सम्पूर्ण बेद का स्वर्गादिरूपी पुरुषार्थ के प्रति कारण होना सिद्ध होता है वैसे ही 'श्रावयेचतुरो बर्णान' इत्यादि वाक्यों से पढ़ने, सुनने, अर्थसमझने और इस के अनुसार काम करने आदि के द्वारा स्वर्गादिरूपी पुरुषार्थ के प्रति, इतिहास और पुराणों का कारण होना पूर्णरूप से सिद्ध होता है।

अब इस से अधिक, बेद की तुल्यता (जो कि इतिहास और पुराण के बिषय में कहीं गई) क्या हो सकती है ? और इस अनन्तरोक्त वाक्य में 'चतुः ' (चारो बर्णों को) इस शब्द से यह भी स्पष्ट हो गया कि इतिहास और पुराण के अवणादि में सर्वसाधारण को अधिकार है।

(१४) ऐसे ही 'एतद् इतिहासपुराणस्य प्रमाण्यमभ्यवदन् ' यह पूर्वोक्त अथर्ववेद का वाक्य, इतिहास और पुराण का प्रमाण होना मुक्तकण्ठ हो कर ऐसा स्पष्टक्त से कहता है जैसी पुराणानां प्रामाण्ययाचछे ईहरां च प्रतिपदोक्तं प्रामाण्यं वेदेनापि दुर्लभिव किम्रुत विद्यान्तरैः निह 'वेदाः प्रमाणिं त्याकारिका श्रुतिः काचित्प्रत्यक्षा किन्त्वनुमीयतएवपामाण्यमीश्वरोक्त-ह्वादपौरुषेयत्वाद्वा बेदानाम्। तथा च यथा परिहितानिर्णिक्तविविक्तपतनुवसनोऽन्तरन्तश्रक्षु-र्हिश्यपरसाक्षात्कृतपरिधानशून्यत्रिचतुरतत्तत्पतीकश्चैत्रः केवलात्स्वस्पादन्यइव भवन्नपि चैत्र-एवायमिति विवेचकैः प्रत्यभिज्ञायते तथैव तत्तत्पद्विनिमयब्यत्यासब्यवधापितनिजार्थतया साक्षात्कारितत्तत्ति जिन्दतया च प्रयुक्तया पुराणसज्ज्ञयाऽऽत्मानं व्यवधाय स्थितोऽपि वेदः स्वीयेनैव वेदशब्देन श्रितगुणबृत्तिना शास्त्रतात्पर्यपर्यालोचनकुशलैः पण्डितरूपेश्र,पुराण-मिति सामान्यैराख्यातोऽपि बेदइत्येव प्रत्यभिज्ञायते नास्तिकानां तु परिहितचित्रवसना-लङ्कारत्वानायं चेत्रइति बालानाभिव, पुराणं न प्रपाणिमिति ब्यामोहकोलाहलः स्थाने स्थाने सम्रुह्मसमस्थानेऽपि स्थाने एव इत्थं च बेदस्य 'प्रापाण्यमम्युपगम्यते नतु पुराणानामि'ति केषाश्चिदुक्तिर्यदि पूर्वोक्तपुराणस्वरूपतत्त्वविवेकसहचरी तदा कैतवोक्तिरेव। नो चेत् तर्हि वालोक्तिरेवेत्युभयथाऽप्युपेक्षणीयैंव प्रेक्षावद्भिः चरितार्थश्रैतादशोक्तिशालिषु 'सोऽयं शिर-इछेदेऽपि शतं न ददाति विंशतिपञ्चकं तु पयच्छतीतिन्यायः नहि विश्रियमाणार्थकवाकयः प्रामाण्यमनुगम्यमानेन विवरणवाक्यस्याप्रामाण्यमुपवर्णियतुं शक्यते तयोर्थस्यैकत्वेन तत्र बाधितत्वाबाधितत्वरूपविरुद्धधमयोरभ्युपगमासम्भवात् तदध्यासाभ्युपगमे त्वर्थभेदापत्त्याः

कि बेदों के प्रमाण होने को भी कोई वाक्य स्पष्ट नहीं कहता, क्योंकि 'बेद प्रमाण है ' ' ऐसा कोई वेदवाक्य प्रत्यक्षपिठत नहीं है किन्तु अनादि और अपै। रूपेय होने से बेद की प्रमाणता का

अनुमान ही होता है जो कि बेददुर्गसज्जन में पूर्व ही कहा जाचुका है।

अब यह सिद्ध हो चुका कि जैसे कोई (देवदत्त) अपना बेष परिवर्तन कर देने से साधारण मनुप्यों के देखने में अन्य पुरुष ज्ञात हो तब भी परीक्षक छोग उस की अभिज्ञा (पह-चान) सहज में कर लेते हैं वैसे ही बेद ही अपने बेष को बदल कर इतिहास और पुराण के बेष में यद्यपि प्रकट हुआ है और सामान्य मनुष्य उस को बेद नहीं कहते किन्तु इतिहास ही पुराण कहते हैं तथापि पूर्वोक्त बिचार के द्वारा उत्तम पाण्डितों को यह निश्चय होना कठिन नहीं है कि बेद ही अपना बेष बदल कर इतिहास और पुराण, अपने को कहलाता है।

और नास्तिकों का तो 'इतिहास और पुराण, नहीं प्रमाण हैं 'इस प्रकार के अनेक कोलाहल जो स्थान २ पर उठते रहते हैं वे सब वैसे ही हैं जैसे कि बेष बदले हुए देवदत्त के

विषय में 'यह देवदत्त नहीं हैं' इत्यादि बालकों के कोलाहल होते हैं।

तथा यह कथन, कि 'बेंद तो प्रमाण है परन्तु इतिहास और पुराण नहीं प्रमाण हैं" यदि पूर्वोक्त विचार के समझने के अनन्तर है, तो जान बूझ कर अपने किसी अर्थ से मिश्याभाषण ही है और यदि पूर्वीक्त बिचार के समझे बिना ही उक्त कथन है तो कथन क्या ? वह बालकों की छीं ही है। और इस बिषय में यह दृष्टान्त बहुत ही उचित और सँलम है कि 'गला कटने पर भी सौ रुपये न दूंगा पांच बीस रुपये तो जब चाहो मुझ से ले लो' अर्थात् गला कटने पर भी इतिहास और पुराण को प्रमाण न मानूंगा बेद को तो जब चाहो मुझ से प्रमाण मनवा छो। क्यों कि जो पुरुष मूळ को प्रमाण मानता ह वह कब उस की टीका (ब्याख्यान) को प्रमाण नहीं मान पकता। और इस में कारण भी यही है कि मूल और टीका का अर्थ एक ही है तो एक ही अर्थ CC-0. Ankur Joshi Collection Gujarat. An eGangotri Initiative

विवरणत्वस्यैव भक्तमसङ्गात् तदेतत्सकलमभिनेत्यैव न्यायभाष्ये भगवान्वात्स्यायनोऽिष ब्राह्मणभागवाक्यानुसारेण पुराणप्रामाण्यस्रपवर्णयामास। एवं वेदप्रामाण्येऽभ्युपगतेऽनन्तरो-क्तानां पुराणप्रामाण्यप्रमापकाणां वेदवाक्यानामि प्रामाण्यमभ्युपगतमेव अतश्च तत्ममापिते पुराणप्रामाण्ये कथमपलापावकाशसम्भावनाऽिप तदपलापे हि तत्प्रमापकस्य वेदस्यैव पामाण्यमपलापेतं स्थात् ततश्च तदभ्युपगमरूपस्त्रियाव्याधातरूपो दण्डो न खण्डियतुं शक्येत ब्राह्मणभागानामेव पुराणसञ्ज्ञित तु यद्यपीदं वात्स्यायनीयं भाष्यस्प्रपन्यस्य महामोहिबद्दावणे पूर्व निराकृतमेव तथाि तत्र श्रुत्यादिविरोधोऽिप दुर्वारोऽवधारणीयः 'खुराणं वेदानां पञ्चमो वेद' इत्येवजातीयाभिः श्रुतिभिद्धि पुराणस्य पञ्चमत्वमभिद्धतीिभ वेदचतुष्ट्यातिरिक्तत्वं पुराणस्य स्पष्टमेवोद्दक्ष्यते उक्तब्रह्मयज्ञ्चस्त्र च ब्राह्मणानि पुराणेभ्यः पृथगेव दिश्ताति । एवं वेदात्पृथक् पुराणं परिगणयन्त्यावनन्तरोक्ते मनुयाज्ञवल्कय-स्मृती अपि वेदपुराणयोर्भिथोभेदमेवासन्दिग्धमभिव्यक्कः । ब्राह्मपाञ्चादिपुराणीय-तात्विकतात्पर्यनिचयानाविविञ्चद्धिश्चम्बकापसदैस्तूच्यमाने वेदस्य पुराणत्वे तेषां क्षेत्रिये रोगे घृकावलोकिते दिवातमसीव घृकदेहत्यागायमानात् जन्मान्तरे भाविनि भूयः

॥ भाषा ॥

को सत्य और मिथ्या दोनों कैसे कोई कह सकता है ? । और यदि मूल और टीका के अर्थ में भेद है तब तो वह टीका ही नहीं है । तात्पर्य यह है कि बेद, मूल है इतिहास और पुराण टीका हैं तीनों का अर्थ एक ही है तो ऐसी दशा में यदि वह अर्थ सत्य है तो वे भी प्रमाण हैं और यदि मिथ्या है तो बेद भी प्रमाण नहीं है, परन्तु यह कदापि नहीं हो सकता कि बेद तो प्रमाण है और इतिहास, पुराण, प्रमाण नहीं ।

(१५) इन्हीं सब उक्तयुक्तियों के अभिप्राय से भगवान् बात्स्यायनमहार्ष ने पूर्वोक्त 'चातुराश्रम्य०' इस वाक्य से ब्राह्मणभाग के वाक्यानुसार पुराणों के प्रामाण्य को सिद्ध किया है।

(१६) और समझने की बात है कि जब बेद प्रमाण है और बेद ही के पूर्बोक्त वाक्य, इतिहास और पुराण को प्रमाण कहते हैं तो इतिहास पुराण के प्रमाणय में सन्देह ही कैसे हो सकता है क्यों के इतिहास और पुराण प्रमाण नहीं हैं तो उन को प्रमाण कहने वाला बेद, मिध्या-भाषी है इस से वहीं कैसे प्रमाण हो सकता है ? । "बाह्मणभाग ही का नाम पुराण है" यह खामी का कथन तो क्षुद्रोपद्रवाबद्रावण में उद्धृत महामोहाबद्रावणप्रनथ में अनन्तरोक्त बात्स्यायनवाक्य के बिरोध से यद्यपि पूर्व हीं खण्डित हो चुका है तथापि "इतिहासपुराणं बेदानां पञ्चमो बेदः" इत्यादि पूर्वोक्त बेदवाक्यों का बिरोध भी उस मत में दुर्वार ही है क्योंकि यदि बेद ही के भाग का नाम पुराण है तब पुराण, चार बेद ही में अन्तर्गत हो गया पुनः बेद पाँचवां कैसे हो सकता है ? तथा पूर्वोक्त ब्रह्मयझ्श्रुति का भी विरोध उस मत में है क्योंकि उस में पुराणों से पृथक ब्राह्मणभाग कहा हुआ है और "पुराणं मानवो धर्मः" तथा "पुराणन्यायमीमांसा" इन मनु और याझबल्क्य के पूर्वोक्त वाक्यों का बिरोध भी उक्त मत में पड़ता है क्योंकि इन में भी बेद से पृथक पुराण कहे हुए हैं ॥ और पुराणों के वास्तविकताल्य को समझे बिना, खामी ने जो बेद ही को पुराण कह दिया यह उन का भ्रम वैसा ही है जैसा कि सूर्य के प्रकाश में उल्लुओं को अन्धकार का भ्रम होता है और अम उल्लु के जन्म में नहीं छूटता किन्तु वह जब मर कर जन्मान्तर पाते हैं तब ही छूटती

शास्त्राध्ययनादितरो न कश्चित्रतीकार इति किमत्र क्रियताम्।

अथाधुनातनिखिल्जना निर्वणितसकललोकानुभवद्रवाधिततादशार्थवोधकानामिप ब्राह्मपाद्मादिपुराणानां कस्मादकस्मादेतावतींमहतीमारभटीमारचय्य प्रमाणिशिरोमणीनां वेदानामिव प्रामाण्यग्रुपवर्ण्यते। कथं च किचिन्न्वतात्किचिन्नारायणात्किचिद्रणेशादेश्च विश्व- सृष्टितिस्येवमादिकमर्थसहस्मन्योन्यन्यहतमेषु बहुशः प्रतिपाद्यमानमपि न मनागप्यनु- सन्धीयते। कथं वा पौरुषेयेष्वमीषु भ्रम्भमादिविप्रलिप्साप्रभृतिपुंसाधारणदोषराशिवशंवद- मप्यप्रामाण्यमचधीर्यते। नच तद्भयातपुराणप्रामाण्यप्रमापकाः श्रुत्याद्य उपचिरतार्थतया इन्यथैवार्थाप्यन्ते। वैसर्जनहोमीयवासोग्रहणस्मृतिवच्चामीषु स्फुरन्तीमपि दृष्टलोभादिम् लकता मनवकल्य कथनाम श्रद्धाजाङ्याद्धेदम्लकता कल्पते। यच्चाधुनिका वञ्चकचुम्बका निर्मूलानिपि ताँस्तानर्थान्पुरस्कत्य निवन्धाभासान् निर्माय पुराणीकृत्य प्रमाणीकृत्य च सुकरेण सुद्रणादिनोपायेन निर्विद्यमेवानर्गलानिप स्वमनोरथान्पूर्यन्तो दृश्यन्ते ततोऽपि वा

है। तात्पर्य यह है कि स्वामी का उक्त भ्रम क्षेत्रिय (एक जिन्मयां) रोग था जिस का औषध जन्मान्तर ही में तब हो सकता था जब कि वह शास्त्रों को अच्छी रीति से पढ़ते।

- (प्र०१) इस का कोई कारण नहीं ज्ञात होता कि प्रमाणों के शिरोमाण बेदों, के तुल्य बना कर इतिहास और पुराणों का प्रमाण्य क्यों इतने परिश्रम और बल से सिद्ध किया जा रहा है ? क्योंकि इतिहास और पुराण में अनेक स्थान में ऐसे समाचार कहे हुए हैं कि जो इस समय के सकल मनुख्यों के अनुभवों से बहुत ही दूर अर्थात् आश्चर्यक्त हैं अर्थात् लोगों के अनुभव से सर्वथा बिरुद्ध हैं।
- (२) और क्यों इस पर ध्यान नहीं दिया जाता कि उन में से किसी में जगत् की सृष्टि, नारायण से और किसी २ में गणेश आदि से कही हुई है तथा ऐसी ही सहस्रों बातें उन में हैं जो स्पष्ट ही अन्योन्य में बिरुद्ध हैं ?
- (३) तथा जब वे पुरुषों के रचित हैं और भ्रम, प्रमाद, धूर्तता, आदि दोष पुरुषों के स्वभाव हैं इस लिये उन का प्रमाण न होना सहज में सिद्ध है तो ऐसी दशा में कारण नहीं ज्ञात होता कि उन को क्यों न अप्रमाण कहा जाय ?
- (४) तथा पूर्वीक्तयुक्ति के अनुसार जब वे सर्वथा अप्रमाण ही हैं तब उन के प्रमाण होने के बिषय में जो २ बेदवाक्यादि प्रमाण पूर्व में कहे गये हैं उन का अक्षरार्थ क्यों न बद्छ दिया जाय ?

(५) और यद्यपि पुराण आदि स्मृतिरूप हैं तथापि जब उन के अर्थ, बाधित (मिध्या) हैं तब उन को लोभादिमूलक कहना चाहिय पुन: ऐसी दशा में बिश्वास से जड हो कर उन को बेद्मूलक क्यों कहा जाता है ?

(६) और जब यह बहुत बड़ी हानि प्रत्यक्ष है कि इस समय के कोई २ अधपढ़े बञ्चक अनेक बिषयों में अपना मनमाना प्रन्थ बना २ कर और उन की पुराण के नाम से प्रमाण कर सुद्रण आदि के द्वारा सहज में प्रचलित कर अपने २ दुष्ट मनोरथों को पूर्ण करते हुए देखे जाते हैं तो ऐसी दशा में इतिहास और पुराण को प्रमाण सिद्ध करना, उन दुष्टों को दुष्टमार्ग दिखलाना

कथं न भीयते उपष्ठाव्यते च नास्तिकैरिव पुराणम् छताकल्पनेनाजानिकमपि वेदानां प्रामाण्यं स्वारूढशास्वास्वयंछेदन्यायेनेति किमेतदाश्चर्यमिति चेत्।

अत्रोच्यते-

न तावत् पुराणानि साम्प्रतिकानिखिलजनादृष्टार्थत्वेन प्रामाण्यमपद्दातुम्हिनित तथासित सर्वजगद्भचवस्थाबिलोपप्रसङ्गात् तथाहि स्वपुरुषचतुष्ट्यादुपरितनाः पुरुषा वेदानीन्तने दृश्यन्ते ततश्च चतुर्थपुरुषाणामजारजत्वनिर्णायकप्रमाणाभावादाद्यात्विकानिखिलम् कुलानां जारजत्वापत्तिः जाराणां च पञ्चमपुरुषाणां जातिनिर्णयस्येदानीं दुष्करतया —

अनादाविह संसारे दुर्बारे मकरध्वजे ।

कुले च कामिनीमूले का जातिपरिकल्पना ॥ १॥

इति न्यायेन सर्वेषामेव सङ्करजातीयत्वापत्तिश्व । ततश्च छुप्येरन्नेव सकला वर्णाश्रम-धर्माः उत्सीदेदेव च तत्मितिपादकानां श्रुतिस्मृत्यादीनां प्रामाण्यम् प्रसरदेव च पशुमैथुन-न्यायो मनुष्येषु एवं पितापुत्रभावब्यवस्थाऽपि छुप्येत केन हि नाम स्त्रीजठरे प्रविश्य हश्यतेऽस्यैव पुरुषस्य रेतसाऽऽरब्धेन कललेनैतच्छरीरमारब्धमिति मात्राऽपि हीदं दुर्दर्श किमुतान्येन मातृवाक्यमपि चैवमस्मिन्नर्थे प्रमाणं नैव स्यात् तथाच स्यादेव जगदान्ध्यम्

॥ भाषा ॥

नहीं है तो क्या है ?

(७) तथा जैसे कोई अपनी चढ़ी हुई बृक्षशाखा के मूळ को अपनी गाढ़ी मूर्खता से छेदन करता है वैसा ही इतिहास और पुराण को प्रमाण सिद्ध करना है क्यों कि ऐसी २ झूठी बातों के कहने वाले इतिहास और पुराणों की प्रमाणता को पूर्वोक्त बेदवाक्य कह रहे हैं तो वे बेद भी अपनी प्रमाणता से क्या हाथ नहीं घो बैठे ? बड़े आश्चर्य की बात है कि जो इस मूलनाश पर दृष्टि न दे कर पुराण और इतिहासों को प्रमाण, सिद्ध किया जाता है।

ह०—(१) इस समय के मनुष्यों के प्रत्यक्ष में, पुराण और इतिहास के बहुत से समाचार नहीं आते इतने मात्र से पुराण और इतिहास अप्रमाण नहीं हो सकते क्यों कि यदि एसा हो तो जगत् के सब ब्यवहार छुप्त ही हो जायंगे क्यों कि अपनी चार पीढ़ी से ऊपर के पुरुष इस समय के मनुष्यों को प्रत्यक्ष नहीं होते जिस से कि यह निश्चय हो कि चौथा पुरुष (जारज) व्यभिचार से उत्पन्न) नहीं था क्यों कि पश्चम आदि पुरुष (जो कि प्रत्यक्ष नहीं हैं) की जाति का ठीक र निर्णय नहीं हो सकता जैसा कि "अनादाविह" इस उलोक में नास्तिकों ने कहा है कि जब संसार अनादि है और कुल के मूल क्षियां हीं हैं तथा कामदेव का बेग दुर्बार है तो जातिपाति की कल्पना कदापि नहीं हो सकता इति । तब तो वर्ण और आश्रम के धर्म सब झूठ ही हैं और उन धर्मों के प्रतिपादक बेद शास्त्र आदि का प्रामाण्य तो दूर ही भागिगा तथा पश्चमेश्चन की रीति से, बिना किसी नियम के मैश्चनब्यवहार प्रचलित हो जायगा और पिता पुत्र की व्यवस्था भी लुप्त हो जायगी क्योंकि क्यियों के पेट में शुस कर कौन देख सकता है कि किस पुरुष के बीर्य के साथ उस की के रुधिरमेलन से कौन लड़का उत्पन्न हुआ क्योंकि यह बात तो उस स्त्री को भी प्रत्यक्ष नहीं हो सकती, और इस बिषय में माता का वाक्य भी अप्रमाण ही हो जायगा तथा एक चार्वाक वर्तन ही शास्त्र रह जायगा और जगत की सृष्टि संहार कहनेवाले बेदवाक्य, अप्रमाण ही हो

दर्शनं च चार्वाकमतशेषमेव स्यात्। किंच पुरातनेदानीन्तननिखिमनुनादृष्टिमंद्दारिविधिकवेदवाक्यानामप्रामाण्यमेत्र स्यात् अपि च कुलमाद्दात्म्यं वंशपरपरानिर्देशश्रत्युभयमपि सकलातीयपुरुषसाधारणं प्रमाणाभावाद्विष्ठवेततराम् सर्वे चेतिद्दासग्रन्थाः संस्कृत-वाङ्मया अन्यभाषामयाश्र द्रादेव प्रामाण्यं परिहरेयुः इदानीन्तनमनुनादृष्टार्थप्रतिपादक-त्वात्। एवं चागत्येदानीन्तननिखिलमनुनादृष्टार्थकानां ग्रन्थानामपि प्रामाण्येऽभ्युपगम्यमाने किमिति पुराणेरेवापराद्भ् । किंच इदानीन्तनमनुन्नदृष्टार्थकस्येव शब्दस्य प्रामाण्यं नतु पुरातनमनुन्नदृष्टार्थकस्येत्यत्र विनिगमनाविरहो दुर्वार एव चार्वाकमत्वेवास्त्विति तु दर्शन-काण्डे निराकरिष्यते ॥ एवं वाधितार्थकत्वमपि न पुराणानां प्रामाण्ये वाधकम् तथा हि पौराणिकानां विधिनिषेधवाक्यानां तावद्रह्ममन्वादिस्मृतिस्थविधिनिषधवाक्यानामिव धर्म-मोक्षसम्वन्धिनां वैदिकविधिनिषधम्लकत्वया, अर्थसुलाविषयाणां चावाधितलोकव्यवहार-मूलकत्या प्रामाण्यमञ्जुवानानामर्थेषु कचिद्वाधगन्धोऽपि नोद्धावायितुं शक्यते उपयोगोऽपि च तेषां प्रवृत्तिनिवृत्योः स्पष्टप्रव

तथाच बार्त्तिकम्-

''तत्र यावद्धर्ममोक्षसम्बन्धि तद्धेदमभवम् यत्त्वर्धसुखिषयं तल्लोकव्यवहारम् लक्षिति

जायँगे क्योंिक आधुनिक किसी मनुष्य ने जगत् की सृष्टि वा संहार को नहीं देखा है तथा सब पुरुष (चाहे वे कोई जाति हों) अपने २ कुळों का माहात्म्य और वंशपरम्परा की जो कहते हैं वह सब कहना लुप्त ही हो जायगा क्योंिक इस में कुछ प्रत्यक्षप्रमाण नहीं है तथा संस्कृत वा अन्यान्य भाषाओं के जितने इतिहास के प्रन्थ हैं सभी झूठे हो जायँग क्योंिक विषय, आधुनिक-मनुष्यों को प्रत्यक्ष नहीं हैं। इस रीति से जगत् ही एक ओर से अन्धकार में मग्न हो जायगा! इस उक्त महादोष के निवारणार्थ सब को अनन्यगति हो कर यह अवश्य स्वीकार करना पड़ता है कि जिन के अर्थों को आधुनिकमनुष्य प्रत्यक्ष से नहीं देखते ऐसे शब्द भी प्रमाण हैं। तो ऐसी दशा में इतिहास और पुराण ने क्या विशेष अपराध किया है ? कि जिस से ये प्रमाण न मान जायँ।

उ०—(२) इस में भी कोई प्रमाण नहीं है कि "इसी समय के मनुष्यों के प्रत्यक्ष हुए समाचारों के कहने वाले शब्द प्रमाण हैं न कि पूर्वसमय के मनुष्यों के प्रत्यक्ष हुए समाचारों के कहने वाले शब्द भी "क्यों कि मनुष्य चाहे किसी समय के हों, परन्तु उन का प्रत्यक्ष एक सा ही होता है और ऐसी दशा में पूर्वसमय के मनुष्यों के प्रत्यक्ष किये हुए समाचारों को कहने वाले हितहास और पुराण, अन्यान्यभाषा के इतिहासप्रन्थों के नाई अवश्य ही प्रमाण हैं। और चार्वाक दर्शन की चर्चा तो इस अवसर पर नहीं करने योग्य है और उस का खण्डन भी दर्शनकाण्ड में पूर्णक्ष्य से किया जायगा।

उ०—(३) इतिहास और पुराणों में जितने विषय कहे हुए हैं उन में से एक विषय
भी लोकानुभव से विरुद्ध नहीं है क्योंकि ऐसा करो, ऐसा न करो, इत्यादि जितने वाक्य धर्म
और मोक्ष से सम्बन्ध रखते हैं वे बेदमूलक, और जो अर्थ वा सुख से सम्बन्ध रखते हैं वे लोकभूलक हैं उन का फल भी अच्छे कभीं में पुरुषों की प्रवृत्ति और दुष्ट कभीं से निवृत्ति है। इस से

विवेक्तन्यम् एषैनेतिहासपुराणयोरप्युपदेशवाक्यानां गतिः" इति । मन्त्रभागेऽपि च विधेयस्मारके पाठजपमात्रेणादृष्टजनके वा वेदमूलके वाधो न सम्भवत्येव । पुण्यकादीनां नामधेयानामपि स्वार्थसमपेणेन विधिवाक्यार्थवोधमुपार्जयतामर्थेषु वाधासम्भवः सुज्ञान एव जीनेश्वरब्रह्मतत्त्वशोधनप्रधानानां वैदिकोपनिषन्म् लिकानां पौराणिकोपनिषदामर्थभयोऽपि तत्तदर्शनोक्तमानतर्ककलापप्रतापप्रत्याख्यातो दूरत एवापसरित पापोऽसौ वाधवराकः । तस्मात् पौराणिकार्थवादभागमात्रस्य प्रामाण्यमुपपादियतुमविश्चित्वते वाधश्च तदर्थभ्य उद्धिम्, भूयाँश्वायमेव भागः पुराणेषु, एतेनैव च भागेनान्यविद्याब्यावृत्तेन पुराणिमितिसञ्ज्ञाऽपि नियम्यते । मल्लग्रामवद्भयसैव भागेन ब्यपदेशस्य न्याय्यत्वात् ।

तदुक्तम् —
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च बंशो मन्वन्तराणि च ।
बंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥ इति ।

अस्य चार्थवादभागस्य प्रामाण्यं वैदिकार्थवादभागवत् अर्थे बाघोद्धरणमीप वैदिकार्थ-

ऐसे वाक्यों के अर्थ में छोकानुभव के बिरोध का गन्ध भी नहीं हो सकता । ऐसे ही इतिहास और पुराण के मन्त्रभाग में भी लोकानुभव का बिरोध नहीं हो सकता क्यों कि कोई मन्त्र, बिहितकमें का स्मारक होता है और कोई पाठ और जप मात्र से फल देता है उस में बैदिकमन्त्रों के नाई लोकानुभव का बिरोध हो ही नहीं सकता। ऐसे ही 'पुण्यक ' आदि जो व्रतिबेशेष आदि के नाम हैं उन में भी उक्त बिरोध का सम्भव नहीं है। तथा इतिहास और पुराण के उपनिषद्भाग में भी लोक बिरोध के बारण के सहस्रों दृढतर प्रकार वे ही हैं जो कि बेदान्तदर्शन के अन्थों में बैदिक उपनिषदों के लिय कहे हुए हैं। एसे इतिहास के बिधि, निषेध, मनत्र, नामधेय, उपनिषद्, इन पाँच भागों में प्रमाणता, धिद्ध हो चुकी तथा लोकानुभव के बिरोध का बारण भी हो गया। अब पुराण आदि का एक ही अर्थवाद्माग (जिस को उपाख्यान कहते हैं) अवशिष्ठ है अर्थात् इसी एक साग की प्रमाणता सिद्ध करना और इसी के बिषय में लोकानुभव के बिरोध का बिशंषरूप सं बारण करना अविशष्ट है जो अब किया जाता है, और इसी एक भाग के बिषय में अधपढ़ों और नास्तिकों के बिवाद भी बिशेषरूप से हुआ करते हैं तथा इसी भाग के कारण से 'पुराण' यह नाम भी प्रसिद्ध है क्यों कि इस में पुराने समाचार हैं। जैसे जिस प्राम में दुर्बलपुरुष भी रहते हैं वह, मलों के अधिक और प्रधान होने से मलुप्राम कहा जाता है वैसे ही पुराणों में यद्यि अन्यान्य बिषय भी है तथापि पुराने उपाख्यानों के अधिक और प्रधान होने से उन का पुराण नाम ही पड़ गया है तथा यही उपाख्यानरूपी छठाँ भाग (जिस के विषय में अब बिचार होगा) पुराणों के सब भागों में बड़ा और प्रधान भी है और इस में पाँच भाग हैं (१) जगत् का सृष्टिभाग (२) संहारभाग (३) बड़ों के बंश का भाग (४) मनुओं के अन्तर (आधकारसमय) का भाग (५) उक्त बंशों के चरित्र का भाग। और इन भागों में भी प्रथम चार भागों के विषय में विवार बहुत न्यून है किन्तु चरित्रभाग के बिषय में बिवाद अधिक है और यह उपाल्यामभाग इतिहास और पुराणों का अर्थवादभाग है इसी से जिस रीति के अनुसार बैदिकअर्थवादों का प्रामाण्य सिर्ध होता है वैसे ही इतिहास और पुराण के उपाख्यानभाग का भी, और जैसे वैदिकअर्थवादों के विवय में छोकानुभव के विरोध का बारण किया जाता है वैसे ही इन उपाख्यानों के विषय में भी।

वादार्थवद्वोध्यम् । तत्र वैदिकार्थवादानां मामाण्यं तद्ये वायोद्धारस्तेषामुपयोगश्च वेददुर्गसद्धानेऽर्थवादाधिकरणे करत्तळामळक्कवत्समपञ्चमधस्तादुपदार्शतानि । मकृतेतु दार्ष्टान्तिके
तन्त्र्यायातिदेशमाश्रमविषयते अतस्तदेथेदानीं मद्दर्यते तथा हि—"पिवत मागवतं रसम् " "श्रावयेषत्रो वर्णानिति" सर्वतत्तत्पुराणेतिहासव्यापिभिः श्रवणविधिमिहिः
पुराणीयानां भागान्तराण। मिवार्थवादभागस्यापि पुरुषार्थपर्यवसायिता स्फुटतरमेव मत्याय्यते।
सा च नान्तरेण विधिनिषेधवाक्यैकवाक्यतां सम्भवतीति पौराणिकानामर्थवादानामपि
पौराणिकिविधिनिषेधवाक्यैः सहैकवाक्यतां सिध्यति । सा च मञ्चतिनिञ्त्यपकारिणोः
स्तुतिनिन्दाक्ष्ययोर्थवादवाक्यानां छक्षणां विना नोपपद्यत इति श्रवणविधिवळादेवार्थवादवाक्यानां स्ववाच्यार्थद्वारेण स्तुतिनिन्दयोद्वारिणोर्थयोर्थथायथं ळक्षणाऽङ्कीक्रियते ।

न चैवं विधिनिषेषवाक्यसाभिषिपाठितानां पौराणिकानामुपाख्यानार्थवादानामुप-योगेऽपि विधिनिषेषवाक्यासाभिहितानामेककर्त्तकचारितकथनात्मकानां परकृतिसमाख्याना-मनेककर्त्तकचरितकथनात्मकानां पुराकल्पाख्यानां चोपाख्यानार्थवादानां कथङ्कारमुपयोगः

॥ भाषा॥

(प्र०) बैदिकअर्थवादों के दृष्टान्तमात्र से पौराणिक और ऐतिहासिक उपाख्यानों की प्रमाणता कैसे सिद्ध हो सकता है जब तक कि फोई युक्ति, विशेषरूप से न दरसाई जाय ?

(उठ) बैदिकअर्थवादों के प्रामाण्य, उक्त विरोध का बारण और उन के उपयोग में जो र युक्तियां हैं उस का विशेषरूप से निरूपण, बेददुर्गसज्जन के अर्थवादप्रकरण में पूर्व हीं हो चुका है। अब प्रकृत अर्थात् उपाख्यामों के बिषय में उन युक्तियों की विशेषरूप से लगा देना ही केवल अवशिष्ट है जिस की रीति यह है कि "पिवत भागवतं रसम्" (हे भक्तजन तुम भागवत अर्थात् इस धुराण के रस को पान करों) "श्रावयेषतुरों वर्णान्" (चार वर्ण महाभारत को सुनें) इत्यादि अनेक विधिवाक्य ऐसे हैं कि जो, जैसे पुराण और इतिहास के अन्यान्य भागों की पुरुषार्थ के प्रति, कारणता को बतलाते हैं वैसे ही खंपार्क्यानंभाग की भी पुरुषार्थ के प्रति, कारणता को। और वह कारणता, उपाल्यानों में तब ही हो सकती है कि जब पौराणिक और ऐतिहासिक विधिवाक्य बा मिषेधवाक्य के साथ उक्त उपाख्यांनों की एकवाक्यता (हेल मेल) अर्थात् सम्बन्ध हो और यह एकवाक्यता भी तभी हो सकती है कि जब उपाल्यानों के अक्षरार्थ का उल्लान कर लक्षणावृत्ति के द्वारा, स्तुति था निन्दा उन उपाख्यानों का अर्थ माना जाय क्योंकि उक्त उपाख्यानों के अक्षरार्थ सिखरूपी होते हैं इस कारण उन से पुरुष की प्रवृत्ति वा निवृत्ति नहीं हो सकती और जब उक्त रीति के अनुसार, विधिवाक्यों से विहित कमें। की स्तुति उन का अर्थ है तब उन कमों में पुरुषों की प्रमाति होती है और उस कर्म के अनुष्ठानद्वारा स्वर्गादि पुरुषार्थ का लाभ होता है इसी रीति से पीराणिक और ऐतिहासिक उपाख्यान, स्वर्गादिहाणी पुरुषार्थ के कारण होते हैं तथा निषधवाक्यों से निवारित ब्रह्महत्यादि कमें। की निन्दारूपी अपने अर्थ के द्वारा उक्त उपाख्यान, पौराणिक आदि निषेधवाक्यों के साथ मिल कर ब्रह्महत्यादि पापों से पुरुषों की निकृति के द्वारा नरक आदि दु:खों के अभावक्तपी पुरवार्थ के प्राप्ति का कारण होते हैं।

(प्रथ) जिन उपाल्यानों के समीप में विधिवाक्य वा निषधवाक्य पठित हैं उस की प्रमाणता और उपयोग यदापि उक्त सिति से हो सकता है किन्तु जिन के समीप में वैसे वाक्य

स्यात् असन्निधानेनैव तेषां बिधिनिषेधैकवाक्यताया बक्तुमशक्यत्वादिति वाच्यम् । सन्निधी बिध्यश्रवणेऽपि रात्रिसत्रन्यायेन यस्मात्पूर्वैमहात्मिभरेवं कृतं तस्मादन्यैरपि कर्तव्याम् स्यनुमिन्नविधिशेषत्या तेषामप्युपयोगस्य सुवचत्वात् । नच कस्य प्रमाणस्य बळादेषा क्षिष्ट-कल्पनाऽऽश्रीयत इति वाच्यम् ।तत्तच्छ्रवणिवध्यन्यथानुपपत्तेरेव बळत्वात् । नच पारायणा- हष्टकल्पनामात्रेण कथं व सन्तुष्यत इति वाच्यम् । वैदिकार्थवादन्यायादेव हष्टोपयोगकल्पनेन श्रवणिविधिसार्थक्यं सम्भवति तस्य गौरवेणवान्याय्यत्वात् । अथैवमपि वाधितानामर्थानां तत्र तत्रोपन्यासात्कथम्रपाख्यानानां पामाण्यसम्भव इति चेत् 'आदित्यो वै यूपः' 'यजमानः प्रस्तरः' ' धूमएवाग्नेदिवा दद्दशे बार्चिः '' इत्यादीनां वैदिकार्थवादानामिवेति गृह्यताम् । ॥ भाषा ॥

पठित नहीं हैं उन उपाख्यानों की क्या गति है अर्थात उन की एकवाक्यता किस के साथ होगी ?

(उ॰) जैसे "प्रतितिष्ठान्ति ह वा य एता राज्ञीकपयान्ते" (जो छोग राज्ञिसत्र नामक यज्ञ करते हैं वे प्रतिष्ठा पाते हैं) इस बैदिकअर्थवाद के समीप में यद्यपि कोई विधिवाक्य नहीं है वथापि "प्रतिष्ठाकामा: सन्नमासीरम्" (प्रतिष्ठा चाहने वाछे राज्ञिसत्र को करें) इस विधिवाक्य की कल्पना कर उक्त अर्थवाद की एकवाक्यता होती है वैसे ही विधिवाक्य और निषेधवाक्य की कल्पना कर उन्हीं के साथ उन पौराणिक आदि उपाख्यानों की भी एकवाक्यता होती है कि जिन के समीप में विधिवाक्य वा निषेधवाक्य पिठत नहीं हैं अर्थात् उन उपाख्यानों से ऐसे वाक्यों की कल्पना होती है कि "अमुक कर्म को कर अमुक ने अमुक सुख पाया इस से अमुक कर्म करें" तथा "अमुक ने अमुक कर्म को न करें"

(प्र॰) ऐसी कल्पना किस प्रमाण के बल से होती है ?

(क्) पूर्वेकि "पिवत भागवतं रसम् " "श्रावयञ्चतुरो वर्णान् इन पूर्वेकि विधिवाक्यों ही के वल से ।

(प्र०) इन विधिवाक्यों से इतना ही निकाल कर क्यों नहीं सन्तेष किया जाता कि

पौराणिक आदि उपाख्यान केवल अपने पाठमात्र के द्वारा पुरुषार्थ के कारण हैं ?

और जब इतने ही से वे बिधिवाक्य चारितार्थ हो जाते हैं तो क्यों उक्त उपाख्यानों से बिधिवाक्य और निषेधवाक्य की करूपना होती है ?

(उ०) जैसे "स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" इस वाक्य के रहते भी बैदिक अर्थवादों के पाठमात्र से फल की कल्पना इस कारण नहीं होती कि पाठमात्र से फल होना लोक में प्रसिद्ध नहीं है वैसे ही पौराणिक आदि उपाख्यानों के पाठमात्र से भी फल की कल्पना नहीं हो सकती क्योंकि उक्त उपाख्यानों के पाठपात्र से स्वर्गादिक्षणी पुरुषार्थ का लाभ लोक में प्रसिद्ध नहीं है।

(प्र०) जिन उपाख्यानों का अक्षरार्थ लोकानुभव से विरुद्ध है वे उपाख्यान कैसे

प्रमाण हो सकते हैं ?

(उ०) जैसे "यजमान: प्रस्तर: " (कुशों की कँटिया यजमान है) इस बैदिक अर्थवाद का अक्षरार्थ यद्यपि छोकानुभव से बिरुद्ध है क्यों कि प्रस्तर कुशरूपी अचेतन है वह यजमान नहीं हो सकता तथापि यजमान शब्द का अक्षरार्थ वहां नहीं छिया जाता किन्तु यजमान के सहश्रूष्पी गौण अर्थात् अमुख्य ही अर्थ वहां यजमान शब्द का है और उसी के अनुसार उक्त

अथैतेषु वैदिकेष्वर्थेषु वाधपारिहाराय गुणवाद आश्रीयते । तथाच वेददुर्गसज्जने उपन्यस्तं व्याख्यातं च जीमिनिम्नूत्रम् 'गुणवादस्तु' इति । एतद्रीतिरिप तिसिद्धिजाति-सारूप्यमग्नसाभूपिकक्षरूपा मथमाध्यायस्य चतुर्थपादे भगवता जीमिनिनेव मपञ्चिता। तथाच गुणवृत्येच वैदिकार्थपादानां मामाण्यम् इह तु कथं तदिति चत् तद्देव गुणवृत्येचेति सन्तुष्य-ताम् । एवं पदानाक्षीण्या बृत्या बाधपरिहारः कार्यः एवं च पदसमन्वयळभ्यो वाक्यार्थः सर्वोपाख्यानेषु मायो निर्वाध एव स एव च द्वारभूतो वाक्यार्थः । नच तस्य योग्यानुप-छब्धा कथं न वाधः स्यात् निह नृतिह्वारीरं, स्तस्माद्वा तदुत्यत्तिरित्यादयोऽर्था औपाख्यानिका इदानीन्तनानां विश्वासपदवीमध्यासितुं समर्थो इति वाच्यम् ।

"सम्बद्धं वर्तमानं च गृह्यते चक्षुरादिने " तिरीत्याऽतिकान्तबृत्तान्तानामिदानीन्तन-

अर्थवाद का यह अर्थ होता है कि प्रस्तर, यजमान के सहश है अर्थात् जैसे यज्ञ करने में यजमान प्रधान होता है वैसे ही प्रस्तर भी, और इसी अर्थ में उक्त अर्थवाद का तात्पर्य होता है। वैसे ही उक्त हपाख्यानों में जहाँ किसी वाक्यों का अक्षरार्थ लोकानुभव से विरुद्ध होता है वहाँ अक्षरार्थ को लोड़ कर गौण अर्थ की कल्पना से उक्त अनुभवाविराध का बारण किया जाता है। इस रीति से उक्त हपाख्यानों के किसी वाक्य का अर्थ ऐसा नहीं है कि जिस में लोकानुभव का विरोध हो और पौराणिक तथा ऐतिहासिक सब हपाख्यान, वैदिकडपाख्यानों के समान अपने अर्थ में ठीक र प्रमाण हैं।

(प्र0) पौराणिक आदि उपाख्यानों के अर्थ प्रायः छोक के अनुभव से बाधित होते हैं क्योंकि नरसिंद का शरीर और स्तम्भ से उन का प्रादुर्भाव इत्यादि उपाख्यानों पर छौकिकों का

बिश्वास केले हो सकता है ? ।

(६०) अभाव के निश्चय का नाम काथ है और यह निश्चय, तब होता है कि जब किसी स्थान पर प्रत्यक्ष के योग्य किसी पदार्थ का प्रत्यक्ष न हो। तथा प्रत्यक्ष के योग्य वही पदार्थ है। कि जो बर्तमानसमय में नेत्रादि इन्द्रियों से सम्बन्ध रखता है और जिस के प्रत्यक्ष में कोई बिघन नहीं है जैसे जिस समय उंजियाले में घड़ा रक्खा हुआ है और उस के साथ नेत्र का सम्बन्ध हुआ तो अन्धकारादि बिघ्नों के न रहने से घड़ा प्रत्यक्ष के योग्य है और उंजियाले में यदि घड़ा प्रत्यक्ष नहीं होता तो नेत्रादि इन्द्रियों से घड़े के अभाव का निश्चय होता है कि 'यहां घड़ा नहीं है 'क्योंकि यदि होता तो अक्टय प्रत्यक्ष होता और अन्धकार में तो घड़े के अभाव का निश्चय इस कारण नहीं होता कि उस समय अन्धकार होता और यह भी नियम है कि नहीं है इसी से अन्धकार में घड़े के अभाव का निश्चय नहीं होता। और यह भी नियम है कि जिस इन्द्रिय से जो पदार्थ प्रत्यक्ष होता है उस पदार्थ के अभाव का निश्चय भी उसी इन्द्रिय से होता है इसी से शब्द के अभाव का निश्चय नेत्र से नहीं होता। अभाव के निश्चय की रीति यही है। और नरसिंहशरीर वा स्तम्भ से उन का प्राहुर्भाव आदि अर्थों को हुए अनेकों युग बीत गये इस कारण जब वे अर्थ बर्त्यानसमय से इई नहीं हैं तो वे इस समय प्रत्यक्षके योग्य नहीं हैं और इसी दशा में उन के प्रत्यक्ष न होने से उन के अभाव का निश्चय नहीं हो सकता कि ''उस समय ऐसी दशा में उन के प्रत्यक्ष न होने से उन के अभाव का निश्चय नहीं हो सकता कि ''उस समय ऐसी दशा में उन के प्रत्यक्ष न होने से उन के अभाव का निश्चय नहीं हो सकता कि ''उस समय ऐसी दशा में उन के प्रत्यक्ष न होने से उन के अभाव का निश्चय नहीं हो सकता कि ''उस समय में सी वे न थे ''।

लौकिकपत्यक्षयोग्यताबिरहेण योग्यानुपल्डधेरनवतारात्। न च पूर्वमिप नोपालिस्मिष्तेति वाच्यम्। तथासिति तिन्नबन्धनानुपपत्यापत्तेः। नच मिध्यैव तिन्नबन्धनिमिति वाच्यम्। बाधकाभावात्। नचेदानीन्तनकार्यकारणभावमर्यादाबिरोध एव बाधक इति वाच्यम्। एकर्तुकार्यकारणभावपर्यादाबिरोधेनापर्यतुकार्यकारणभावस्यापि तथैव वाधप्रसङ्गात्। नचोभयोरिप कार्यकारणभावयोरनुभवसिद्धत्वान्नोक्तबाधमसङ्ग इति वाच्यम्। वैशेषिकस्य युगान्तरीयकार्यकारणभावस्यापि तदानीन्तनानुभवसिद्धतयैव तद्धाधायोगात्। नचैतस्युगीय-युगान्तरीयवैशेषिककार्यकारणभावयोर्नेकपुरुषानुभवसिद्धत्वमिति वाच्यम्। अनुभव

(प्र०) यह क्यों नहीं कह सकते कि उस समय भी उन अर्थोंका प्रत्यक्ष नहीं हुआ-था अर्थात् वे अर्थ सर्वथा ही झूठे हैं।

(उ०) प्रश्नकर्ता को यह कहना पहुँगा कि नरसिंहशरीरादि इस समय के छोगों को प्रत्यक्ष नहीं थे ? वा उस समय के छोगों को ? प्रथमपक्ष से कोई हानि नहीं है क्योंकि इस समय के छोगों को प्रध्वीराज प्रत्यक्ष नहीं थे क्योंकि उस समय इस समय के छोग ही नहीं थे, तो इतने से यह निश्चय नहीं हो सकता कि उस समय प्रध्वीराज न थे ऐसे ही इस समय के छोगों के प्रत्यक्ष न होने से यह निश्चय नहीं हो सकता कि उस समय भी नरसिंहादि पदार्थ न थे । द्वितीयपक्ष तो सर्वथा मिध्या ही है क्योंकि यदि उस समय भी नरसिंहादि पदार्थ उस समय के छोगों को प्रत्यक्ष न होते तो पुराणों में उन की कथा ही न छिखी जाती क्योंकि जो विशेष-पदार्थ किसी समय में किसी को प्रत्यक्ष होता है उस पदार्थ को प्रत्यक्षकर्ता पुरुष अन्यान्य पुरुषों से कहता है अथवा उस पदार्थ के बिषय में कोई प्रन्थरचना कर देता है इसी रीति से उस पदार्थ के ज्ञान की परम्परा बहुत पीछे तक यथासम्भव चळी आती है और प्रन्थों में भी वे पदार्थ छिखे जाते हैं । इसी से यह कहा जाता है कि " मूळ के बिना, प्रसिद्धि नहीं होती " तो ऐसी दशा में नरसिंहादि पदार्थ यदि सर्वथा झुठे ही अर्थात् उस समय में भी किसी को प्रत्यक्ष नहीं होते तो कैसे आज तक पुराणों में उन की कथा छिखी चळी आती ?

प्राची नहीं कह सकते कि पुराणों में उन की कथा झूठी ही लिखी हुई है ? उ० — उन कथाओं के सत्य होने में जब कोई बाधक प्रमाण नहीं दिखलाया जाता तो झूठा कहने से वे पदार्थ झूठ नहीं हो सकते क्यों कि यदि ऐसे २ झूठे पदार्थ ऐसे प्रन्थों में लिखे जायं तो बन्ध्या का पुत्र, खरहे का सींग, कछुही का दूध, अन्धों का प्रत्यक्ष, गूंगों का बोलना, इत्यादि झूठों की कथा क्यों पुराणों में नहीं लिखी गर्या ?

प्र०—होक में कार्य और कारण की जो रीति प्रसिद्ध है उस के बिरोध पड़ने से नरसिंह शरीरादि पदार्थ मिध्या ही हैं क्योंकि छोक में कार्य कारण की रीति यह है कि सिंह से सिंह कीर मनुष्य से मनुष्य उत्पन्न होता है न कि स्तम्भ से।

उ०—यदि ऐसा बिरोध डाला जाय तो यह भी बिरोध पड़ सकता है कि जब जाड़ों में अन्न उत्पन्न होने का नियम है तो गर्भियों में क्यों अन्न उत्पन्न होता है ? यदि इस का यह उत्तर दिया जाय कि अन्न उत्पन्न होने का एक ही नियम नहीं है किन्तु अनेक नियम हैं अर्थात समय के शक्तियों की घटनाएं बहुत बिचिन्न हुआ करती हैं इसी से कोई अन्न किसी समय में उत्पन्न होता है न कि सब एक समय में अर्थात एक २ वस्तु के कार्यकारणभाव निराले होते हैं।

सिद्धत्वमात्रस्यैव बाधाभावप्रयोजकतयैकपुरुषीयत्वस्यािकश्चित्करत्वात् । नच युगान्तरेष्विषे ताहशकार्यकारणभावानां प्रत्यक्षिद्धत्वमासीदिति वाच्यम् । तथा सत्युपाख्यानेषु तिब्वन्धनानुपपत्तेः । नच तिन्मध्यैवेति पुनरिप वाच्यम् । ताहशनिवन्धनस्य मिध्यात्वे युगान्तरीयाणां कार्यकारणभाविवशेषाणां तदानीन्तनप्रत्यक्षसिद्धत्वाभाविसिद्धिः तस्यां च सत्यां ताहशनिवन्धस्य मिध्यात्वसिद्धिरित्यन्योन्याश्रयप्रसङ्गात् । तथाच युगान्तरीय-ताहशकार्यकारणभाविवशेषाणामुक्तरीत्या वाधाभावक्षपं सत्यत्वमर्थादेव सिद्धम् । नचैवं पुराणाद्यनुक्तमि किञ्चदाश्चर्यभूतं युगान्तरीयत्वेन स्वप्रन्थे निवध्येदानीन्तनो जनः

॥ भाषा ॥

तब तो यह भी अवश्य कह सकते हैं कि उस समय की ऐसी ही शक्ति थी कि स्तम्भ से नरासिंह-शरीर उत्पन्न हुआ।

प्र०—उस १ समयि शेष में उस २ अझ उत्पन्न होने का नियम छोक में प्रत्यक्ष-सिद्ध है परन्तु स्तम्भ से नरसिंहशरीर उत्पन्न होने का नियम जब किसी समय में प्रत्यक्षसिद्ध नहीं है तो कैसे वह सत्य कहा जा सकता है ?

- (उ०) अभी कहा जा चुका है कि स्तम्भ से नरसिंहशरीर का उत्पन्न होना उस समय के लोगों के प्रत्यक्ष से सिद्ध है क्यों कि यदि ऐसा न होता तो पुराणों में उन की कथा क्यों लिखी जाती ?
- (प्र०) यह भी तो कहा जा चुका है कि वे कथाएं झूठी ही हैं तो इस पर क्यों न ध्यान दिया जाय ?
- (उ०) इस पर ध्यान न देने का कारण अन्योन्याश्रय " जिस का सामान्य स्वरूप पूर्व हीं लिखा जा चुका है" रूपी अटल दोष ही है क्योंकि जब यह सिद्ध हो जाय कि उस काल में सम्म से नरसिंह शरीर का उत्पन्न होना किसी को प्रत्यक्ष नहीं था तब ही यह सिद्ध हो सकता है कि " पुराणादि में लिखी हुई उस की कथा मिध्या ही है" और जब उक्त कथा का झूठी होना सिद्ध हो जाय तब ही यह सिद्ध हो सकता है कि स्तम्म से नरसिंह शरीर का उत्पन्न होना उस समय के लोगों को प्रत्यक्ष नहीं था। तात्पर्य यह है कि प्रश्नकर्ता को प्रथम अन्यान्य उक्तियों से यह सिद्ध करना चाहिए कि स्तम्म से नरसिंह शरीर का उत्पन्न होना उस समय के लोगों को प्रत्यक्ष न था। प्रश्चात् यह कहना चाहिए कि पुराणलिखित उस की कथा मिध्या है। परन्तु प्रश्नकर्ता, जो कि अभी आज का उत्पन्न है कदापि किसी प्रमाण से यह सिद्ध नहीं कर सकता कि सिम्भ से नरसिंह शरीर का उत्पन्न होना (जिस के प्रश्चात् अनेक युग उपतीत हो चुके) उस समय के लोगों को प्रस्थक्ष नहीं था और विशेषतः ऐसी दशा में कि जब उस समय के लोगों के रचित प्रशाणों में उस की कथा आज तक उजागर है।
- (प्र०) यदि ऐसी २ कथा सत्य होने लगीं तब तो अच्छा हुआ क्योंकि अब जो पुरुष चाहैगा एक किसी आश्चर्यरूपी झूठे बृत्तान्त को कल्पना कर प्रनथरूप से लिख डालैगा और यह कह कर उस को प्रमाण कर देगा कि यह अमुक महार्ष का रिचत है तथा इस में बहुत भाषीन बातें लिखी हुई हैं और इस रीति से वह अपना बहुत सा अनुचित काम चला लेगा क्योंकि उस को कोई कैसे मिण्या कह सकता है ?

प्रमाणीकुर्यादिति वाच्यम्। तत्र विस्नम्मकारणाभावात् । नच पौराणिकेष्वि ताह्यो-पाख्यानेषु ार्के विस्नम्मकारणम् पौरुषेयत्वाविशेषादिति वाच्यम्। पुराणपामाण्ये प्रमाणतया पूर्वम्रपवर्णितानां वेदवाक्यानामेव तत्र कारणत्वात् मन्वादिस्मृत्युक्तयुगान्तरीयकालिकः शक्तिविशेषाणां युगान्तरेषु योगाभ्यासभूस्ना तपोमाहिस्ना चाणिमादिसिध्याविभीवपयुक्तः विशेषसहस्राणां च सत्वनोपाख्यानानामसम्भावनास्पर्शासम्भवाच । अथेदानीन्तनम्युक्तः शक्त्यनुसारिक्यवहारमात्रदर्शिनः कथमेवाम्बधेषूपाख्यानेषु प्रामाण्यसम्भावनाऽपि-स्यादिति चेत् । तर्हि चरितार्थीऽत्र "सोयम्पवनतनयवार्ताम्रपश्चत्य स्पर्द्वमानो बालवानसः कियदिष महार्णवे समुत्युत्व निपतितः पाह अपार्णवायमकूपारोः मिथ्यारामायणिभी तिन्यायः।

(उ०) ऐसे प्रन्थों के सत्य होने में कोई कारण ही नहीं है कि जिस से उस पर परीक्षकों का विश्वास हो सके । और यदि अल्प दिनों के लिये किसी को उस पर विश्वास भी हो जाय तो ऐसे मन्थ के वास्तविक कर्ता की लोभादिरूपी पोल, बिना प्रसिद्ध हुए न रहेगी:। तथा जब पुराणाहिः के नाम और सङ्ख्या विशेषरूप से शालों में कहे हुए हैं (जैस। कि पूर्व प्रकरण में लिखा जा चुका है) तब उक्त प्रकार के प्रन्था पर (जो कि परिगणितासङ्ख्या से बहिर्भूत है) कदापि किसी को विश्वास नहीं हो सकता।

(प्र०) पौराणिक और ऐतिहासिक उपाख्यानों पर भी बिश्वास करने का क्या कारण है ?

(ड० १) पुराण और इतिहास के बिषय में जो बहुत से बैदिकवाक्य और स्मृतिवाक्य भी प्रमाण दिख्तस्त्रये गये हैं वे ही पुराणादि के उपाख्यानों पर बिश्वास करने के कारण हैं।

(ड॰ २) तथा जब मनु आदि की स्मृतियों में अन्ययुगों के पदार्थों की विचित्र र शक्तियां कही हुई हैं और अन्ययुगों में योगाभ्यास तथा तपस्या आदि की महिमा से अणिमां आदि अनेक सिद्धियों के सहस्रों विशेष होते हैं, तब स्तम्भ से नरसिंहशरीर का उत्पन्न होना आदि अर्थों के उपाल्यानों पर विश्वास न करने ही का कोई कारण नहीं है।

(प्र०) इस समय के मनुष्यों और पदार्थी की शक्ति को देखने वाले को कैसे

काश्चर्यरूपी उक्त उपाख्यानों पर विश्वास हो सकता है ?

(द०) एक सामान्य बानर ने रामायण में हनुपान जी के समुद्र के उझझन करने की कथा सुन कर यह निश्चय किया कि हनुपान के नाई में भी बानर हूं, अब इस कथा की सत्यता की परीक्षा कर छं, अर्थात देखें कि में कूद कर समुद्र के पार जा सकता हूं बा नहीं, और ऐसा बिचार कर वह बानर समुद्र के तट से कूद कर समुद्र के जल में दम हाथ पर गिरा तदनन्तर उस ने यह कहा कि समुद्र का कहीं पार नहीं है, रामायण सब मिध्या ही है। तो क्या उस बानर के इस कहने से रामायण मिध्या हो सकता है ? तात्पर्य यह है कि इस समय के पुरुषों का यह समझना कि " अन्ययुगों में भी पदार्थों की ऐसे ही शक्ति थी जैसी की अब है " मिध्या ही है।

(प्र०) समयों की शक्ति के बिचित्र होने में त्रें। कोई सन्देह नहीं हैं परन्तु पहार्थी की शिक्तियाँ तो प्रत्येक युगों में एक सी ही होती हैं क्योंकि किसी युग में धान के बीज बोने से गेहूँ नहीं उत्पन्न हो सकता, ऐसे ही स्तम्भ से सिंह नहीं उत्पन्न हो सकता तो ऐसी दश्रा में

पौराणिक और ऐ। तहासिक उपाख्यान क्यों नहीं भिध्या हैं ?

किश्च तण्डुलीयकं शाकं शाकान्तरसामान्यात्पाप्तां स्ववीजकारणतामुल्लक्ष्य तण्डुलकणाद्भवति तथैव बृश्चिको गोमयात् कदलीकाण्डानि दावदग्धवेत्रवीजादित्यादिरीत्येदानीन्तन्योऽपि कार्यकारणभावमयीदा यथौत्सर्गिक्यो बैशेषिकेः कार्यकारणभावैः स्वस्वविषये बाध्यन्ते तथैव युगान्तरेष्वण्यबाध्यन्ते तत्र को नाम किस्सथावकाशः।

अपिच

अदृश्ला जनपदाः शिवश्लो द्विजातयः। कामिन्यः केश्वश्लिन्यो भविष्यन्ति कलौ युगे॥

म भाषा ॥

(७०१)-कार्य और कारण की सब रीतियों में सामान्य और विशेष होते हैं जैसे तण्डुलीयक जाक, "चौराई" शाक होने के कारण, अन्य शाकों के नाई प्राय: चौराई के बीज से उत्पन्न हुआ करता है परन्तु बिशेष यह है कि चावल जिस भूमि पर प्रतिदिन धोये जाते हैं उस भूमि पर बीज के बिना ही चावल के कणों से चौराई उत्पन्न होता है इसी से गावँ की बोली में इस को बीराई कहते हैं क्योंकि गावँ के लोग चावल को चाउर कहते हैं। तथा यह सामान्य है कि बिच्छ से बिच्छू उत्पन्न होता है परन्तु बिशेष यह है कि गोबर से भी बिच्छू उत्पन्न होता है। तथा कदली के पौधे से कदलीबृक्ष, सामान्यतः उत्पन्न होते हैं परन्तु बिशेष यह है कि बेंत के बन में दावानल "बनडाढ़ा" लगने से बेंत के बीज जो दग्ध हो जाते हैं उन से थोड़े ही काल के अनन्तर हरे २ कद्छी बृक्ष घरपन्न होते हैं। और गोह स्त्री "गोधिका" में गोह पुरुष से सामान्यत: गोह उत्पन्न हुआ करते हैं, किन्तु बिद्दाष यह है कि गोह की में कालसर्व "गोहुअन" पुरुष से गोह पैदा होते हैं जिन की संस्कृत में "गौधर" और भाषा में विषखोपड़ा कहते हैं और कालसर्प से उत्पन्न होने हीं के कारण उन में षिष अधिक होता है। तथा सामान्यतः घोड़े से घोड़ी में घोड़ा भौर गदहे से गदही में गदहा उत्पन्न होता है किन्तु विशेष यह है कि गदहे से घोड़ी में खचर उत्पन्न होता है और ऐसे ही बैद्यशास्त्र में कही हुई भौषधियों के मेल से अनन्त प्रकार के विचित्र कार्य होते ही हैं। तथा जलजन्त आदि सूक्ष्मकृमि पदार्थों की अनेक विचित्र शक्तियों से ऐसे २ अनेक नवीन रीग समय २ पर उत्पन्न हुए देखे जाते हैं कि जिन के निदान और औषध का निश्चय ही दुर्घट हो जाता है। तात्पर्य यह है कि कार्य और कारण की सामान्य और विशेष रीतियों की सङ्ख्या नहीं हो सकती और न उन सब रीतियों को कोई जीव पूर्णरूप से कदापि जान सकता किन्तु उन सब रीतियों को यथार्थ जानने वाळे एक परमेश्वर ही हैं तो ऐसी दशा में "प्रह्लाद" ऐसे महाभक्त के वैसी दढमिक और बिश्वास तथा उस युग की शक्ति आदि सब कारणों से सिहत स्तम्भ से यदि नरसिंह उत्पन्न हुये तो इस में आश्चर्य ही क्या है ? और क्या असम्भव है ? क्यों कि उक्त कारणों की वैसी घटना होने पर किस ने देखा है कि नरसिंह नहीं उत्पन्न हुए ? क्यों कि वैसे सब कारणों की घटना जब आज तक पुन: नहीं हुई तो उस समय के अनन्तर स्तम्भ से नरसिंह का उत्पन्न न होना उचित ही है।

(८०२)—" अट्टशूला" (किल्युग में बैदय से अन्य प्रजा भी अन्नविक्रय कर जीवेंगी विशा निह्माण भी बेदिक्रय से जीवेंगे और ख़ियाँ भी भगिषक्रय से जीवेंगी) इत्यादि पुराणों की भविष्यत् बाणियां भी जब इस समय की घटना के अनुसार सत्य हो रही हैं तब नरसिंह आदि के ब्यतीत ब्रुत्तान्तों के वर्णन करने वाली उक्त उपाख्यानरूपी पुराण और इतिहास की बाणियों

इत्यादीनां पुराणीयभाविष्यद्वादानामपीदानीन्तनैर्यथा सत्यत्वमनुभूयते तथा पुराणीय-भूताथोपाल्यानानामपि सत्यत्वमेवाङ्गीकरणीयम्।

अन्यत्र अद्यापि कलिकातादिनगरगतेष्वाश्चर्यालयेषु साम्प्रतिककुञ्जरादिद्धयद्वयसा॰
न्याधुनिकानेककुञ्जरादिसमायामिबस्ताराणि द्वापरान्तिकानि कुञ्जरादिकङ्कालपञ्जराणि
बलीयसाऽप्याधुनिकपुरुषेण स्थानादिष चालियतुमशक्यानि धन्त्रिष तथा बहव एविम्बधा
अपरेऽपि पदार्था युगान्तरीयातिश्चयिबशेषसंवावद्का दृश्यन्त एवेति न नास्तिकयेनापि
तादृशोपाख्यानाप्रामाण्यशङ्काया ईषद्ष्यवकाशः।

॥ भाषा ॥

के सत्य होने में क्या सन्देह हो सकता है ? क्योंकि जो समाचार हुए ही नहीं हैं किन्तु होने वाले हैं उन को भी जिस ने सत्य २ कह दिया उस के लिये यह बहुत ही सहज है कि हुए २ समाचारी को सत्य २ कह दे।

(७० ३) - वर्तमानसमय में भी कलकत्ताआदि प्रधाननगरों के आश्चर्यालय "म्यूजियम् बा अजायबधर " में हाथी की हिंडुयों की समूची ठटरी रक्खी हैं जो कि इस समय के हाथियों से दो गुनी ऊंची और चौगुनी सम्बी है तथा ऐसे र सींग आदि के बने हुए घनु और खड्ग आदि रक्खे हुए हैं कि जिन की इस समय के बळवान मनुष्य उठा तक नहीं सकते और उन से काम छेना तो इस समय बहुत ही दूर है और ऐसे २ बहुत से पदार्थ इन आश्रयी छयों में आज भी स्थित हैं जो इस समय के मनुष्यों के उपयोग में आने योग्य नहीं हैं जिस से यह स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि पूर्वकाल के पदार्थी तथा पुरुषों के सामर्थ्य किस प्रकार के होते थे तो ऐसी दशा में कोई नास्तिक भी ऐसा नहीं कह सकता कि पूर्वकाल के वस्तुओं का स्वभाव और पुरुषों का सामर्थ्य इस समय की अपेक्षा अनेक गुण अधिक नहीं था। और ये उक्त पदार्थ भी कुछ बहुत अधिक समय के नहीं हैं, किन्तु चार ही पाँच सहस्र वर्षों के भीतर के हैं इस से यह भी अनुमान ठीक २ होता है कि उस से भी पूर्वसमय के वस्तुओं का स्वभाव और पुरुषों का सामध्ये, उस समय की अपेक्षा भी कहीं अधिक था। इस रीति से ज्यों २ पूर्व २ समयों पर दृष्टि दी जाती है सों २ वस्तुओं का स्वभाव और पुरुषों का सामर्थ्य अधिक से अधिक सिद्ध होता चलता है। और यह ध्यान तो सर्वथा उलटा ही है कि पूर्वकाल के वस्तुओं और पुरुषों की अपेक्षा इस काल के वस्तुओं का स्वभाव और पुरुषों का सामध्ये, अधिक होता है तात्पर्य यह है कि थोड़े २ वर्षों के लिये यह अनुमान नहीं है किन्तु युगों के लिये है तो ऐसी दशा में पूर्वयुगीं के वस्तुस्वभाव और पुरुषसामर्थ्य के अमुसारी पौराणिक और ऐतिहासिक उपाख्यानों के संस होने में कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता। उन्नति को अनन्त कहने वाले प्रथम २ अपने २ अपिरी ही पर ध्यान दें पश्चात दिन में सूर्य के प्रकाश पर, तदमन्तर जङ्गळी बृक्षों पर, तब बृक्षों के फर्छों पर, और उत्पन्न पदार्थ को किसी ने नित्य होते नहीं देखा है। तथा उन्नति और अवनति, पुनः **उन्नति और पुन: अवनति के उदाहरण लोक में बहुत से हैं इसी से श्रीवेद** व्यास का वाक्य है कि " पतनान्ताः समुच्छ्याः" अर्थात् उन्नति का अन्ते अवनति है। मेरे समझ में तो यह आता है कि भावित्ती अवनति के ध्यान से छोगों के उन्नति के उत्साह में शिथिछता के वारणार्थ ही उक्त महाश्या उन्नति को अनन्त कहते हैं जैसा कि योहम के महाश्यों का प्रायः निश्चय है कि "उन्नति की पंज्यपरा अमन्त ही होती है "।

किञ्च थाष्टुनिकान्यपि तिहत्तन्त्रीधूमध्वजस्यन्दनादीनि दैववशाद्यदि तिरोहितानि अवयुर्द्रष्टारश्च तेषां क्लप्तक्रमेण कालिकीं गतिमनुगच्छेयुः सहस्रपरिवत्तरान्ते च तेषां पुस्तकान्येव पिरिशिष्येरन् क्रमेण च किलकालमतापोद्रेकवशात् "स्वल्पायुषः स्वल्पसत्वा" इत्युक्त- पारमर्षन्यायेन शक्तिचुद्धादिहासमणाल्योऽस्मादिप कालादितितमां विज्ञम्भेरन् तदा तदातना जना आधुनिकतिहत्तन्त्र्याद्युषाच्यानेषु पुस्तकस्थेषु खबुद्धिश्चक्यादिनिदर्शनानु- सारेणाप्रामाण्यमेव मन्वीरँस्तिहें किमतेषां बाध एव तदनुसारादध्यवसेयो बुद्धिमता श आहोस्ति तेषां बाधबुद्धरेवाप्रामाण्यमध्यवसेयामिति पक्षपातमुत्सार्य विचार्यताम् । तथवाधुनिकरिपियुगान्तरीयातिकान्तिविषयकोपाख्यानेष्वप्रामाण्यत्रर्णनमेवात्यन्तमप्रामाणिक- मित्येव मन्तव्यम् । अपिच जम्बुद्धीपदिक्षणक्षारोदसमुद्रे चत्वारिशत्कोशिवस्तृतः क्रोश- चतुःशतसमायतः सेतुर्भगवता श्रीरामेण निर्मापितः। तत्र च भगवतः श्रीचन्द्रमौलेलिङ्गं रामेश्वराख्यं तेनैव स्थापितमिति रामायणे पुराणादौ च सुप्रसिद्धम् । दृत्तान्तश्चायमस्मिन् वैवस्ततमन्वन्तरे चतुर्विशस्य त्रेतायुगस्य तत्रव श्रीरामावतारस्य प्रतितः।

तथाच हरिबंशे --

चतुर्विशे युगे चापि विश्वामित्रपुरःसरः।

जज्ञे दशरथस्याथ पुत्रः पद्मायतेक्षणः॥ (खं० १ अ० ४१ श्लो० ९२९) इति कलियुगंचदमष्टाविंशमित्यधुनाऽपि सङ्कल्पवाक्यैरभिल्जप्यते इति चतुर्विशात्त्रेतायुगादि-दानीयावदुपोनाविंशानि युगानि तद्धर्षसङ्कलनया च पादोनकोटित्रयमितानि वर्षाणि भवन्ति । एतावन्ति च वर्षाणि पूर्वोक्तसेतुश्रीभगविङ्कित्रयोरेकाकारा सकललोकब्यापिनी श्रीरामोपज्ञ-

(उ०४)—परमेश्वर ऐसा न करें, किन्तुं तार रेलगाड़ी आदि इस समय के अनूठे प्रवर्ध काल की दुर्घटना से किसी समय में यदि पूर्ण क्ष्य स मिट जायँ (जैसा कि सदा से हाता आया है) और इन पदार्थों के दंखने वाले सब मनुष्य भी काल के प्रताप से लीन हो जायँ तथा ऐसा ही दो चार सौ वर्ष तक रह जाय अर्थात ये उक्त पदार्थ पुस्तकों ही में रह जायँ तब उस के अनन्तर उत्पन्न हुए मनुष्यों का सामर्थ्य और बँच बँचाए वस्तुओं के अतिन्यून स्वभाव को देख कर उस के अनुसार उस समय के लोग उक्त पुस्तकों को झूठा बतलावें तो क्या उस स इस काल के य अनूठे पदार्थ मिध्या हो सकते हैं? कदापि नहीं। ऐसे ही इस काल के मनुष्यों के असम्भव २ कियन से, पूर्वयुग के अनूठे २ बृत्तान्तों के पौराणिक और ऐतिहासिक उपाल्यान भी कदापि मिध्या नहीं हो सकते।

(उ०५)—रामायण, पुराणों और इतिहासों में यह प्रसिद्ध है कि जम्बूद्धीप के दक्षिणसमुद्र में भगवान् श्री राम ने, ४००कोस लम्बा और ४० कोस चौड़ा सेतु बंधवाया और उस पर
भगवान् श्री शिव जी का रामेश्वर नामक लिङ्ग का स्थापन किया जिस को पौने तीन कोटि वर्षों के
छगभग हुआ क्योंकि इस अठ्ठाईसवीं त्रेता में रामावतार नहीं हुआ किन्तु चौबीसवीं त्रेता में,
जैसा कि "चतुर्विशे युगे चापि॰" (हरिबं॰ खं० १ अ० ४१ श्लो० १२१) में कहा है और यह
किलियुग इस मन्वन्तर (बैवस्तत) में अठ्ठाईसवां है जैसा कि सङ्कल्पवाक्यों में कहा जाता है
इस के अनुसार रामावतार हुए उन्नीस युगों के लगभग हुआ। और उक्त प्रसिद्धि, सेतु की

मुक्तव्यान्तस्य मिर्गिद्धारा निर्वाषमनुधावन्ती यावन्महाकल्पं धाविता तस्य च सेतोर्भागस्त्व श्रीभगविक्षक्षमद्यापि जागृत एव। अद्यापि च भारतरणभूमौ हस्तमार्ती भूमि राजकर्मचारिभ्यो क्षपक्षभतकादिकं साम्वत्सिरिकं मूल्यं राजग्राह्यं दत्वा खनन्तो हिरण्मयानि त्सक्षमभूतीनि महागुरूणि महामूल्यानि चायुधाङ्गानि भूषणगणमत्युप्तानि बज्रादीनि च भारतयुद्धवीरै-रपविद्धानि साम्प्रतिकरतिदुर्वहाणि परमदुर्लभानि च लभमाना उपलभ्यन्ते। नास्तिकास्तु भारतयुद्धमेव नाभूत् बादस्ययणेन तु भारतमाख्यायिकाकल्पं स्वकपोलकल्पनयैव जल्पितम् इत्यादिकं लोकमत्यक्षवाधितं जल्पन्तः परीक्षकैरुपेक्ष्या एव। एवं च पौराणिकस्य चरित्रभागस्य प्रामाण्यं च शक्यमपहोतुम्। नयने निमील्य नास्तिक्यादेव बेदप्रामाण्यमाक्षिप्य-तद्घोधितपुराणप्रामाण्याक्षेपे तु बेददुर्गसज्जनमकरणे पूर्वमुक्ता बेदप्रामाण्योपपादिकां युक्तीराह्वास्यामः। एवमेव पुराणमूलभूतस्य ब्राह्मणभागस्य बेदत्वमाक्षिप्य पुराणप्रामाण्याक्षेपे-ऽपि क्षुद्रोपद्रविद्वावणे पूर्वम्रपद्धिता ब्राह्मणभागस्य बेदत्वोपपादिकां युक्तीराकारियण्यामः।

॥ भाषा॥

रचनासमय से आज तक सब छोगों में आबिच्छिन्न चली आती है तथा आगामी समय में भी चलती रहेगी। और उस सेतु का भाग तथा वह शिविछिङ्ग भी आज तक हैं और रहेंगे। आज करह भी भारतरणभूमि अर्थात् कुरुक्षेत्र में हस्तमात्रभूमि के छिये राजकर्मचारियों को सौ रुपये आदि उपयुक्तबार्षिक राजकर दे कर ब्यापारीछोग भूमि को खन कर सुवर्णमय खड़मुष्टि आदि भारी व बहुमूल्य आयुधों के दुकड़ों को और सुवर्णकुण्डल आदि में बिध हुए हीरे तथा मानिक आदि रह्मों को भी (जो कि आज करह के मनुष्यों के लिये भारी होने के कारण दोने के अयोग्य और अतिदुर्लभ हैं) पाते हुए देख पड़ते हैं। नास्तिकलोग जो यह कहते हैं कि भारतयुद्ध कभी हुआ ही नहीं, ब्यासदेव का यह महाभारत तो उन की कपोलकरूपना की लीला अथवा कहानी ही है सो लोक और प्रत्यक्ष से बाधित होने के कारण सुविचारकसज्जनों से किसी तरह आदर पाने के योग्य नहीं है। इस से भी रामायण, पुराणों और इतिहासों के चरित्रभागों की प्रमाणता सिद्ध है।

प्र०—यदि कोई नास्तिक यह कहै कि "जब बेद नहीं प्रमाण है तो उस के प्रमाण कहे हुए इतिहास और पुराण भी नहीं प्रमाण हैं" तब क्या किया जायगा ?

च०—यही किया जायगा कि पूर्व हीं बेददुर्गसज्जन में कही हुई सैकड़ों दुर्भेद्य युक्तियों में से दो ही चार युक्तियों को सुना कर उस नास्तिक के मुख को बिमुद्रित कर दिया जायगा और यदि उस के पूर्वपुण्य सहाय हुए तो उस की नास्तिकता को नाश कर उस को आस्तिक कर दिया जायगा।

प्र0—यदि कोई खामी का अनुयायी ऐसा कहै कि "जब ब्राह्मणभाग बेद ही नहीं है तो ब्राह्मणभाग के पूर्वोक्त वाक्यों के बल से इतिहास और पुराण कैसे प्रमाण हो सकते हैं" तब क्या किया जायगा ?

ड०—यही किया जायगा कि पूर्व हीं "श्चुद्रोपद्रविद्रावण" में जो, सहस्र प्रमाण ने निर्देश गए हैं उन में से दो ही चार प्रमाणों को सुना कर खामी के अनुगढ़ सुख में अग्रेडा 'गजबरन' समर्पण कर दिया जायगा जिस से पुनः ऐसे २ दुष्ट्रवाक्य इस के सुखद्वार से निक्छ न सकैंगे।

अपि च बेदगतानां छुङादीनां क्षुद्रोपद्रविद्रावणे पूर्वमुक्तेन प्रकारेण भूतकाछार्थत्वाभावेऽप्यनादौ विश्वसृष्टिप्रछयप्रवाहे वेदिकोपाख्यानाविषयाणां वृत्तान्तानां प्रायः कदाकदाविद्वनादिकाछपाष्ट्यवशादाविर्भूतानां त्रिकाछदर्शिना भगवता द्वैपायनन पौराणिकोपाख्यानेषु निबन्धनं कृतम्। बेदिकार्थवादाभ्यासप्रयुक्तास्त्वयानेव विशेषो यत्कचिद्भूतार्थभागप्रवन्धे वैदिकार्थवादस्थस्य कस्य कस्याचिदभूतस्याप्यर्थश्चिस्याख्यायिकान्यायेन निवन्धनं
तेन कृतम् नच तावन्मात्रेणाप्रामाण्यम्पौराणिकोपाख्यानानामित्यनुपदमेव वश्यते।

अन्यत्र पृथ्वीराजस्य शब्दविधिशरप्रयोगोपाख्यानं क्षुद्रजनप्रणीतं प्रामाणिकमर्जुनादिब्रह्माह्मादिप्रयोगोपाख्यानन्तु भगवता कृष्णद्रैपायनेन प्रणीतमप्रमाणिकमिति को नामः
वितनी वक्तुपर्हति ऋते वेदपुराणद्रेषद्षितेभ्यः प्रज्ञाचक्षुभ्यः कोहीदानीन्तनः पृथ्वीराजस्य
तादृशशरप्रयोगं साक्षादकृत यस्तदुपाख्यानस्य प्रामाण्यमनुमन्यते। को वा, धनुर्वेद इदानीः
छ्रप्त इति तदानीमिप नासीदिति वदन् विश्वसनीयवचनो भवितुमहिति। एवं च धनुर्वेदाभ्यासप्रयुक्तानां युगान्तरीयाणां पौराणिकोपाख्याननिवेशितानां कार्यकारणभावविशेषाणामप्रामाणिकत्वमाचक्षणः को नाम नोन्मत्तवदुपेक्षणीयः स्यात् तस्माद् द्वारभृतः पौराणिकानाग्रुपाख्यानानां वाक्यार्थो न बाधेन स्प्रष्टुमपि शक्यते। पौराणिकविधिनिषेधान्यतरवाक्यैकवाक्यतां पौराणिकेष्वर्थवादेषु घटयन् श्रवणिक्षिधिकभ्यः स्तुतिनिन्दान्यतररूपोः

विश्व की सृष्टि और प्रलय का प्रवाह जब अनादि है तब बैदिक उपाख्यानों में कहे हुए कि लिपत-समाचार भी कभी न कभी होते ही हैं और त्रिकाल दर्शी ब्यासों ने यदि उन्हीं बैदिक उपाख्यानों को अपने पुराण और इतिहास में बांध दिया तो बैदिक उपाख्यानों से पौराणिक उपाख्यानों की एकता स्पष्ट ही है। विशेष इतना हीं हो सकता है कि किसी उपाख्यान में बैदिक उपाख्यान का कोई. ऐसा अर्थीश भी लिखा जाता है जो कि उस ब्यास के समय तक नहीं हुआ रहता किन्तु उस से पश्चात् कभी होता है। इस लिये उस अर्थ के विषय में लौकिक और बैदिक कि तिपतआ ख्यायिकाओं की नाई वह उपाख्यान आख्यायिका एप होता है परन्तु इतने मात्र से उस उपाख्यान के प्रामाण्य में कोई विन्न नहीं हो सकता जैसा कि अभी आगे चल कर कहा जायगा।

(उ०६) जब कि पृथ्वीराजादि के शब्दबंधी बाण के प्रयोगादि का उपाख्यान (जो कि सामान्य मनुष्यों के रचित हैं) इस समय प्रमाण माने जाते हैं, तो भगवान कृष्णद्वेपायनब्यास के रचित अर्जुनादि के ब्रह्मास्त्रप्रयोगादि के उपाख्यानों को शास्त्रविद्वेष के बिना इस समय का कौन मनुष्य अप्राम्माणिक कह सकता है ? और कौन यह कह सकता है कि जैसे धनुर्वेद का प्रचार इस समय नहीं है ऐसे ही पूर्व में भी कभी नहीं था ?

इतने बिचार से अब यह सिद्ध हो गया कि पौराणिक और ऐतिहासिक उपाख्यानों के अक्षरार्थ के अनुसारी जितने समाचाररूपी वाक्यार्थ हैं उन में से एक भी मिध्या नहीं है और अक्षरार्थ के अनुसारी जितने समाचाररूपी वाक्यार्थ हैं उन में से एक भी मिध्या नहीं है और इस्हीं वाक्यार्थों को 'द्वारी अर्थ कहते हैं। और जैसे कि बैदिक अर्थवादों के द्वार अर्थ, पूर्व में कहे जा चुके हैं वैसे ही पौराणिकादिउपाख्यानों के भी उक्त वाक्यार्थरूपी द्वार अर्थ होते हैं।

(उ० ७) अब पौराणिकादि उपाल्यानों के 'द्वारी' अर्थ का वर्णन किया जाता है कि जैसे "स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" इस उक्त बैदिक विधिवाक्य के बल से अन्यान्य विधिवाक्य और मुक्तव्यान्तस्य मिर्बिष्वारा निर्वाधमनुधावन्ती यावन्महाकरणं धाविता तस्य च सेतोभीगस्तव्य श्रीभगविश्वक्रमद्यापि जागृत एव। अद्यापि च भारतरणभूमो हस्तमात्रीं भूमि राजकर्मचारिभ्यो क्ष्यक्रयत्वकादिकं साम्बत्सिकं मूर्र्यं राजग्राद्यं दत्वा खनन्तो हिरण्मयानि त्सक्षमभृतीनि महागुर्छाण महामूर्यानि चायुधाङ्गानि भूषणगणपत्युप्तानि बज्रादीनि च भारतयुद्धवीरै-रपविद्धानि साम्प्रतिकरतिदुर्वहाणि परमदुर्छभानि च छभमाना उपछभ्यन्ते। नास्तिकास्तु भारतयुद्धमेव नाभूत् बादस्यणेन तु भारतमाख्यायिकाकरणं स्वकपोछकरणनयैव जिल्पतम् इत्यादिकं छोकपत्यक्षवाधितं जर्यन्तः परीक्षकेरुपेक्ष्या एव। एवं च पौराणिकस्य चित्रभागस्य प्रामाण्यं च शक्यमपहोतुम्। नयने निमील्य नास्तिक्यादेव बेदपामाण्यमाक्षिप्य-तद्घोधितपुराणप्रामाण्याक्षेपे तु बेददुर्गसज्जनप्रकरणे पूर्वमुक्ता बेदपामाण्योपपादिका युक्तीराह्यास्यामः। एवमेव पुराणमूरुभूतस्य ब्राह्मणभागस्य बेदत्वमाक्षिप्य पुराणप्रामाण्याक्षेपे- उपि क्षुद्रोपद्वविद्वावणे पूर्वमुपदिक्षिता ब्राह्मणभागस्य बेदत्वोपपादिका युक्तीराकारियण्यामः।

॥ भाषा॥

रचनासमय से आज तक सब लोगों में आबिन्छिन्न चली आती है सथा आगामी समय में भी चलती रहेगी। और उस सेतु का भाग तथा वह शिविलिङ्ग भी आज तक हैं और रहेंगे। आज करह भी भारतरणभूमि अर्थात् कुरुक्षेत्र में हस्तमात्रभूमि के लिये राजकर्मचारियों को सौ रुपये आदि उपयुक्तबार्षिक राजकर दे कर ब्यापारीलोग भूमि को खन कर सुवर्णमय खड़मुष्टि आदि भारी व बहुमूल्य आयुधों के दुकड़ों को और सुवर्णकुण्डल आदि में विधे हुए हीरे तथा मानिक आदि रह्नों को भी (जो कि आज करह के मनुष्यों के लिये भारी होने के कारण होने के अयोग्य और अतिदुर्लभ हैं) पाते हुए देख पड़ते हैं। नास्तिकलोग जो यह कहते हैं कि भारतयुद्ध कर्मी हुआ ही नहीं, ब्यासदेव का यह महाभारत तो उन की कपोलकरपना की लीला अथवा कहानी ही है सो लोक और प्रत्यक्ष से बाधित होने के कारण सुविचारकसज्जनों से किसी तरह आदर पाने के योग्य नहीं है। इस से भी रामायण, पुराणों और इतिहासों के चरित्रभागों की प्रमाणता सिद्ध है।

प्र0—यदि कोई नास्तिक यह कहै कि "जब बेद नहीं प्रमाण है तो उस के प्रमाण कहे हुए इतिहास और पुराण भी नहीं प्रमाण हैं" तब क्या किया जायगा ?

ड०—यही किया जायगा कि पूर्व हीं बेददुर्गसज्जन में कही हुई सैकड़ों दुर्भेद्य युक्तियों में से दो ही चार युक्तियों को सुना कर उस नास्तिक के मुख को बिमुद्रित कर दिया जायगा और यदि उस के पूर्वपुण्य सहाय हुए तो उस की नास्तिकता को नाश कर उस को आस्तिक कर दिया जायगा।

प्र0—यदि कोई खामी का अनुयायी ऐसा कहै कि "जब ब्राह्मणभाग बेद ही नहीं है तो ब्राह्मणभाग के पूर्वोक्त वाक्यों के बल से इतिहास और पुराण कैसे प्रमाण हो सकते हैं" तब क्या किया जायगा ?

ड०—यही किया जायगा कि पूर्व हीं "क्षुद्रोपद्रविषद्रावण" में जो, सहस्र प्रमाण निष्ठा बेदता में दिये गए हैं उन में से दो ही चार प्रमाणों को सुना कर खांमी के अनुगढ़ मुख में अगेळा 'गजबरन' समर्पण कर दिया जायगा जिस से पुनः ऐसे २ दुष्ट्रवाक्य इस के मुखद्वार से निक्छ न सकेंगे।

अपि च बेदगतानां छङादीनां क्षुद्रोपद्रविद्रावणे पूर्वमुक्तेन प्रकारेण भूतकाछार्थत्वाभावेऽत्यनादौ विश्वसृष्टिप्रलयप्रवाहे वैदिकोपाच्यानिवषयाणां वृत्तान्तानां प्रायः कदाकदाविद्वनादिकालप्रावल्यवशादाविभूतानां त्रिकालदर्शिना भगवता द्वैपायनन पौराणिकोपाच्यानेषु निवन्धनं कृतम्। वैदिकार्थवादाभ्यासप्रयुक्तास्त्वयानेव विशेषो यत्कचिद्धतार्थभागप्रवन्धे वैदिकार्थवादस्थस्य कस्य कस्याचिदभूतस्याप्यर्थाश्रस्याख्यायिकान्यायेन निवन्धनं
तेन कृतम् नच तावन्मात्रेणाप्रामाण्यस्पौराणिकोपाख्यानानामित्यनुपदमेव वक्ष्यते।

अन्यत्र पृथ्वीराजस्य शब्दविधिशरमयोगोपाख्यानं क्षुद्रजनमणीतं मामाणिकमर्जुनादिब्रह्माह्मादिश्रयोगोपाख्यानन्तु भगवता कृष्णद्रैपायनेन मणीतमप्रमाणिकमिति को नामः
चेतनो वक्तुपर्हति ऋते वेदपुराणद्रेषद्षितेभ्यः मज्ञाचक्षुभ्यः कोहीदानीन्तनः पृथ्वीराजस्य
तादृशशरमयोगं साक्षादकृत यस्तदुपाख्यानस्य मामाण्यमनुमन्यते। को वा, धनुर्वेद इदानीः
छुप्त इति तदानीमपि नासीदिति वदन् विश्वसनीयवचनो भवितुमहिति। एवं च धनुर्वेदाभ्यासमयुक्तानां युगान्तरीयाणां पौराणिकोपाख्याननिवेशितानां कार्यकारणभावविशेषाणामन्नामाणिकत्वमाचक्षणः को नाम नोन्मत्तवदुपेक्षणीयः स्यात् तस्माद् द्वारभृतः पौराणिकानाप्रपाख्यानानां वाक्यार्थों न वाधेन स्मष्टुमपि शक्यते। पौराणिकविधिनिषेधान्यतरवाक्यैकवाक्यतां पौराणिकेष्वर्थवादेषु घटयन् श्रवणक्षिधिकभ्यः स्तुतिनिन्दान्यतररूपोः
वाक्यैकवाक्यतां पौराणिकेष्वर्थवादेषु घटयन् श्रवणक्षिधिकभ्यः स्तुतिनिन्दान्यतररूपोः

विश्व की सृष्टि और प्रख्य का प्रवाह जब अनादि है तब बैदिक उपाख्यानों में कहे हुए कि लिपत-समाचार भी कभी न कभी होते ही हैं और त्रिकाछदर्शी ब्यासों ने यदि उन्हीं बैदिक उपाख्यानों को अपने पुराण और इतिहास में बांध दिया तो बैदिक उपाख्यानों से पौराणिक उपाख्यानों की एक ता स्पष्ट ही है। बिशेष इतना हीं हो सकता है कि किसी उपाख्यान में बैदिक उपाख्यान का कोई. ऐसा अर्थीश भी छिखा जाता है जो कि उस ब्यास के समय तक नहीं हुआ रहता किन्तु उस से पश्चात् कभी होता है। इस छिये उस अर्थ के विषय में छौकिक और बैदिक कि लिपत आख्यायिकाओं की नाई वह उपाख्यान आख्यायिकारूप होता है परन्तु इतने मात्र से उस उपाख्यान के प्रामाण्य में कोई बिझ नहीं हो सकता जैसा कि अभी आगे चल कर कहा जायगा।

(इ० ६) जब कि पृथ्वीराजादि के शब्दबंधी बाण के प्रयोगादि का उपाख्यान (जो कि सामान्य मनुष्यों के रचित हैं) इस समय प्रमाण माने जाते हैं, तो भगवान कृष्णद्वेपायनब्यास के रचित अर्जुनादि के ब्रह्मास्त्रप्रयोगादि के उपाख्यानों को शास्त्रविद्वेष के बिना इस समय का कौन के रचित अर्जुनादि के ब्रह्मास्त्रप्रयोगादि के उपाख्यानों को शास्त्रविद्वेष के बिना इस समय का कौन मनुष्य अप्रामाणिक कह सकता है ? और कौन यह कह सकता है कि जैसे धनुर्वेद का प्रचार समय नहीं है ऐसे ही पूर्व में भी कभी नहीं था ?

रत समय नहा ह एस हा पूज म ना कना गए। जा . इतने किचार से अब यह सिद्ध हो गया कि पौराणिक और ऐतिहासिक उपाख्यानों के अक्षरार्थ के अनुसारी जितने समाचाररूपी वाक्यार्थ हैं उन में से एक भी मिध्या नहीं है और अक्षरार्थ के अनुसारी जितने समाचाररूपी वाक्यार्थ हैं उन में से एक भी मिध्या नहीं है और इस्हीं वाक्यार्थों को दूरिश अर्थ कहते हैं। और जैसे कि: बैदिक अर्थवादों के द्वार अर्थ, पूर्व में कहे जा चुके हैं वैसे ही पौराणिकादिउपाख्यानों के भी उक्त वाक्यार्थरूपी द्वार अर्थ होते हैं।

(उ० ७) अब पौराणिकादिउपाख्यानों के 'द्वारी' अर्थ का बर्णन किया जाता है कि बैसे "स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" इस उक्त बैद्किबिधवाक्य के बल से अन्यान्य विधिवाक्य और छक्ष्यो वाक्यार्थस्तु, देवासुरसङ्ग्रामोपाख्यानस्य स्वर्गेऽपि दुःखाक्रान्तत्वाद्धेय इति निन्दायां वैराग्योपयोगिन्याम्, क्षीरिधमन्थनोपाख्यानस्य, हरिचरणपराङ्मुखानां करकालितोऽप्यर्थे नश्यति । यथा देत्यानाममृतिमिति निन्दायां भगवदुपासनोपयोगिन्याम्, भरतेणपोषणी-पाख्यानस्य 'कृपयाऽपि कृतः सङ्गः पतनायैव योगिनः, इति पदर्शयन्ताह भरतस्यैणपोषणम्'। इत्युक्तरीत्या सङ्गानिन्दायां ताहश्याम् रासे रमाद्युपाख्यानस्य, 'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः' इत्युक्तरीत्या धैर्यकाष्ठापश्यास्य, अजामिलोपाख्यानस्य च, हरिनामोच्चारणमाहात्म्यस्तुतावुपासनोपयोगिन्याम्, नरिसंहस्तम्भानिर्गमोपाख्यानस्य च, हरिनामोच्चारणमाहात्म्यस्तुतावुपासनोपयोगिन्याम्, नरिसंहस्तम्भानिर्गमोपाख्यानस्य

निषेधवाक्य के साथ बैदिकअर्थवादों की एकवाक्यता के लिये उन अर्थवादों का बेदबिहित और बेदनिषिद्ध कर्मों की स्तुति और निन्दा में लक्षणावृद्धि के अनुसार मुख्यतात्पर्थ्य स्वीकार किया जाता
है जैसा कि अर्थवाद के प्रकरण में पूर्व हीं कहा जा चुका है और उसी स्तुतिनिन्दारूपी लक्ष्यार्थ
को द्वारी अर्थात् मुख्य अर्थ कहते हैं। वैसे ही "श्रावयेषतुरों वर्णान्" इत्यादि पूर्वोक्त ऐतिहासिक
और पौराणिक बिधवाक्यों के बल से पौराणिक और ऐतिहासिक अर्थवादरूपी उपाख्यानों की
अन्यान्य पौराणिकादि बिधवाक्यों और निषधवाक्यों के साथ एकवाक्यता (मेल) के लिये इन
उपाख्यानों का भी पुराणादिबिहित और पुराणादिनिषद्ध कर्मों की स्तुति और निन्दा में लक्षणावृत्ति के द्वारा मुख्यतात्पर्य स्वीकार किया जाता है और यही स्तुतिनिन्दारूपी लक्ष्यार्थ, पुराणादि
के उपाख्यानों का मुख्यार्थ अर्थात् द्वारी अर्थ कहलाता है। और पौराणिकादिउपाख्यानों का
मुख्यार्थ अर्थात् द्वारी अर्थ के निकालने की रीति भी यही है कि—

देवता और देख के युद्धों के जपाल्यान का इस निन्दा में तात्पर्य है कि जब स्वर्ग भी अनेक उपद्रवों से किसी किसी समय में आकुल ज्याकुल हो जाता है तब दूसरे लोकों की गणना ही क्या है इस लिये लौकिक सभी सुख लागने के योग्य हैं। और इस निन्दा का उपयोग, विषय-वैराग्य में है।

समुद्रमन्थन के उपाख्यान का इस निन्दा में तात्पर्य है कि परमेश्वर से बिमुखों के हाथ में आये हुये पदार्थ भी नष्ट हो जाते हैं जैसे दैत्यों का अमृत, अर्थात् देवताओं की अपेक्षा दैत्यलोग समुद्रमथन में यद्यपि अधिक परिश्रम किये थे इस से अमृत में उनका भाग अधिक होना चाहता था तथा दैत्यलोग अपनी प्रबलता से अमृत को देवताओं के हाथ से छीन भी लिये थे तथापि वे भगविद्वमुख थे इस लिये मोहनीमूर्त्ति ने दैत्यों के हाथ से अमृत निकाल, देवताओं को दे दिया। इस निन्दा का भगवद्वित्ति में उपयोग है।

भरत ऋषि के, हरिणबालक के पालन के उपाल्यान का इस निन्दा में तात्पर्य है। कि योगी हो कर भी जो काई दया से भी किसी का संग करता है वह योगभ्रष्ट हो कर अनेक दु:ख पाता है जैसे भरत ने दया के कारण हरिणपालन से दु:ख पाया-इस से योगी के लिये संग, बहुत ही अनर्थकारी है। इस निन्दा का बैराग्य में उपयोग है।

कृष्णभगवान के रास के उपाख्यानों का इस प्रशंसा में तात्पर्य है कि बिगाड़ की सामग्री रहते भी जो मन की धीरता नहीं बिगाड़ती उसी धीरता को धीरता कहते हैं। और बिगाड़ की सामग्री न रहने पर तो सभी धीर ही हैं और कहावत भी है कि "जी के बिना ब्रह्मचारी" इस निर्न्दा की वैराग्य ही में उपग्रोग है—

सर्वशक्तिमत्तया भगवतस्तद्भक्तेश्व स्तुतानुक्तोपयोगिन्याम्, रामादिचित्तोपाख्यानस्य च सर्वस्यैव,ऐहिकाम्राष्मिकसकलपुरुषार्थोपियक्यां शिक्षायां तात्पर्यमित्यादिरीत्या सर्वत्रैवोन्नेयः। अयमेव द्वारी वाक्यार्थ इत्युच्यते मुख्यश्वासौ मुख्यतात्पर्यविषयत्वादेव । एवं-विधेभ्यश्च द्वारिभ्यो मुख्यवाक्यार्थेभ्यः पौराणिकेभ्यः, श्रौतेभ्यस्तेभ्य इव दृरत एवापसराति वाधशङ्काबराकी, एवं चोक्तरीत्या द्वयोगि द्वारद्वारिणोर्थयोरवाधितत्वात्पौराणिकार्थ-वादानां प्रामाण्यं श्रौतार्थवादानामिवाब्याहतमेव।

नन्वेवमि शैववैष्णवादिसम्भदायेषु मत्येकमेकप्रशंसाऽन्यनिन्दयोस्तत्र तत्र पुराणेषू-पल्लम्भेन परस्परिवरुद्धार्थमितपादकतया कथमत्रांशे पुराणानां प्रामाण्यमिति चेन्न "प्रातः प्रातरतृतं ते वदन्ती" त्यादिवैदिकनिन्दार्थवादवाक्यानाभिवैकनिन्दावाक्यानांतिनिन्दायां

अजामिलादि के उपाख्यान का हरिमक्ति और हरिनाम के उच्चारण की स्तुति में तात्पर्य है और इस स्तुति का भगवान की उपासना में उपयोग है। स्तम्भ से नरिसंह के प्रादुर्भावादि बिचिन्न-समाचारों के बर्णक सभी उपाख्यानों का ऐसी स्तुतियों में तात्पर्य है कि परमेश्वर सर्वशक्तिमान और करणामृति हैं और उन के एकान्तभक्त लोग बड़े महानुभाव होते हैं तथा उन में भक्ति करने से विषयसुख और मोक्षसुख अर्थात् सब आनन्दों का लाभ होता है। और इस प्रशंसा का भी भगवान की उपासना में उपयोग है। रामचरितादि के उपाख्यानों का ऐसी प्रशंसा में तात्पर्य है कि बेद और शास्त्र के अनुसार सब कामों के करने का यह फल है कि लोक में कीर्ति होती है और परलोक में पूर्ण सुख होता है। इस प्रशंसा का लोकशिक्षा में उपयोग है इतादि।

और इन्हीं स्तुति तथा निन्दारूपी अर्थों को द्वारी वाक्यार्थ कहते हैं और ये ही अर्थ मुख्य भी हैं क्योंकि पौराणिकादिउपाख्यानों का मुख्यतात्पर्य इन्हीं अर्थों में है । और जैसे वैदिकउपाख्यानों के स्तुति और निन्दारूपी द्वारी अर्थ में लोकिबरोधादि दोषों की शंकामात्र भी नहीं हो सकता वैसे ही पौराणिक और ऐतिहासिक उपाख्यानों के अनन्तरोक्त स्तुति और निन्दा-रूपी द्वारी अर्थ में भी।

इस रीति से जब बैदिक उपाख्यानों के नाई पौराणिक और ऐतिहासिक उपाख्यानों के हार और द्वारी दोनों वाक्यार्थ, बाध और बिरोध से शून्य हैं तब इस में कुछ भी सन्देह नहीं है कि जैसे बैदिक उपाख्यान प्रमाण हैं वैसे ही पौराणिक और ऐतिहासिक उपाख्यान भी प्रमाण हीं हैं।

प्र० जब कि पुराणों में बैडणवसम्प्रदाय के अवसर पर शैवादिसम्प्रदायों की और शैवसम्प्रदाय के प्रकरण में बैडणवादिसम्प्रदाय की निन्दा प्रत्यक्ष लिखी हुई है तो इस अंश में प्रताण कैसे प्रमाण हो सकते हैं ? क्यों कि अन्योन्य के बिरोध से वे दोनों प्रकार की निन्दाएं मिध्या ही हो जाती हैं।

ड०—(जैसे) "प्रातः प्रातरनृतं ते वदन्ति पुरोदयाज्जुह्नित येऽिमहोत्रम्" (सूर्योदय से पूर्व जो अमिहोत्र करते हैं, वे प्रति प्रातःकाल झूठ बोलते हैं, अर्थात् जैसे प्रतिदिन प्रातःकाल झूठ केलना अतिनिन्दित है वैसे सूर्योदय के पूर्व अग्निहोत्र करना भी) यह अर्थवादवाक्य यद्याप स्पष्टरूप से अनुदिनहोम की निन्दा करता हुआ प्रतीत होता है तथापि वैसा नहीं है क्योंकि "तस्मादुदिते होतन्यम्" (इस कारण सूर्योदय के अनन्तर होम करें) इस बिधि का, उक्त अर्थवाद, वाक्यशेष है अर्थात् उक्तिविधि के साथ इस की एकबाक्यता होती है इसी से अनुदितपद्ध की निन्दा इस

तात्पर्यविरहेणान्यस्तुतिमात्रतासमप्कतया विरोधाभावात्। एकसम्प्रदायपश्चंसायाश्चान्य-सम्प्रदायपशंसया सह बिरोधे मानाभावात् । प्रपश्चितश्चैतद्वेददुर्गसज्जनेऽर्थवादपकरणेः पूर्वमेव । अथैवमपि गृध्रगोमायुर्हसकाकादिसंवादप्रायाणास् पौराणिकोपाख्यानानां वाक्यार्थः "गाको वा सत्रमासत" ''बनस्पतयः सत्रमासत' बाधस्य कथमुद्धार इति चेत् न इत्यादिवैदिकार्थवादवाक्यवदेव तत्र द्वारभूतवाक्यार्थे बाघोद्धारिबरहेऽपि क्षतिबिरहात । तथाहि सत्यपि कचिद् द्वारवाक्यार्थवाधे न पौराणिकानाष्ठ्रपाख्यानार्थवादानां प्रामाण्यं केनापि कटाक्षयितुं शक्यते न हि लौकिकानां क्षुद्रजननिर्मितानामपि।

पर्वताग्रे रथो याति भूमौ तिष्ठति सारिथः। भ्रमँश्र बायुवेगेन पदमेकं न गच्छति ॥ १॥

इत्यादिवाक्यानां मुख्यतात्पर्याविषयस्य वाच्यार्थस्य बाधेऽपि कचित्केनचिद्रपामाण्यः

श भावा ॥

का अर्थ नहीं है किन्तु यही अर्थ है कि सदितहोम प्रशस्त है क्योंकि यदि अनुदितपक्ष की निन्दा इस से होती तो उदितहोम के बिधिवाक्य के समीप में इस का पाठ न होता और अनुदितहोम के विधिवाक्य से बिरोध भी पड़ जाता क्योंकि कहां विधान और कहां निन्दा ? (पूर्व हीं बेद-दुर्गसज्जन के अर्थवादप्रकरण में इस विषय का पूर्णरूप से निरूपण हो चुका है) (वैसे ही) पुराणों में जो बैब्जवसम्प्रदाय के प्रकरण में शैबादिसम्प्रदायों की निन्दा छिखी हुई है उस का तात्पर्य, निन्दा में नहीं है किन्तु बैब्णवसम्प्रदाय की प्रशंसा ही में तात्पर्य है क्योंकि यदि निन्दा में तात्पर्य होता तो बैडणवसम्प्रदाय के प्रकरण में ऐसे निन्दावाक्य न पढ़े जाते किन्तु जिसा की निन्दा है उस के प्रकरण में पढ़े जाते और अन्यपुराण में जो शैवादिसम्प्रदायों का विधान है उस के साथ इन निन्दावाक्यों का विरोध भी हो जाता इस छिये बैडणवसम्प्रदाय की प्रशंसा ही उक्त निन्दा-वाक्यों का द्वारी अर्थ है अर्थात् उसी में इन का मुख्यतात्पर्य है। और प्रशंसारूपी अर्थ में किसी का बिरोध नहीं पड़ सकता क्योंकि उन २ सम्प्रदायों के प्रकरण में उन सम्प्रदायों की प्रशंसा खित ही है।

प्र०-यह तो सब हुआ, परन्तु गीध और मीद्ड़ का, तथा इंस और काग का संवाद आदि रूपी पौराणिक उपाख्यानों का द्वारवाक्यार्थ (अक्षरार्थ) तो बाधित (झ्ठा) ही है ?

च०—जैसे 'बनस्पतयः सत्रमासत ' (बृक्षों ने यज्ञ किया) 'गाबो बा सत्रमासत ' (गौओं ने यज्ञ किया) इत्यादि वैदिकअर्थवादों का तथा काद्म्बरी आदि आख्यायिकाओं का और मालतीमाधवादि नाटकों का तथा अन्यान्य भाषा में बने हुए अनेक उपन्यासों का द्वारवाक्यार्थ के बाधित होते से उन की प्रमाणता में कोई हानि नहीं होती वैसे ही उक्त कतिपयउपख्यानों की भी क्योंकि उन के द्वारी अर्थ वाधित नहीं होते। प्रसिद्ध ही है कि लौकिक सामान्यपुरुषों की बनाई हुई 'पर्वतार्पे' (पहाड़ की चोटी पर रथ चळता है, और सारथी मूमि पर खड़ा है, तथा रथ, बायु के नाई बेग से चळता है तथापि अगाड़ी को एक पद भी नहीं रख सकता) इत्यादि छीकिक पहेछियों के द्वार अर्थ के मिध्या होने पर भी कहीं कोई इन पहेलियों को अप्रमाण नहीं कहता और अप्रमाण नः कहने में कारण भी यहीं ्रहोता है कि इन का जब अपने द्वार अर्थ में मुख्यतात्पर्य ही नहीं है तब उस के मिध्या होते से इन की प्रमाणता में को हानि नहीं हो सकती वरुक उछटे (पर्वत अर्थात् कुम्भकार की खूंटी के अप्रभागः पर् रथ अर्थात् कुललिचक चलता है और उस का सारथी अर्थात् चलानेवाला कुलाल भूमि पर रहता है, तथी CC-0. Ankur Joshi Collection Gujarat. An eGangotri Initiative

इयवाहियते मुक्यतात्पर्यविषयस्य लक्ष्यार्थस्य तमसा तपनस्येव वाघेन काळत्रयेऽपि स्प्रव्हुमशक्यत्वात् प्रत्युतैतादृशवाक्यमुक्यतात्पर्यविषयार्थप्रतिभाभाजां पाण्डित्यमेव इयपदिश्यते छोकैः। यथा—

पश्चभर्त्री न पाञ्चाळी द्विनिह्या नच सर्पिणी। इयामास्या न च मार्जारी यो जानाति स पण्डितः॥ १॥

इत्यादौ, वोधस्त बाधितस्यापि द्वारवाक्यार्थस्य ''अत्यन्तासत्यपि द्वानमर्थे शब्दः करोति हि '' इति न्यायेन शब्दशक्तिस्वाभाव्यादुष्ठसन्नदण्डवारित इतित्वन्यदेतत्, ईद्वादेव च वाधितार्थादपि बोधाचमत्कृतिरनुभूयते छोके, अनुगृह्वात्येव च प्रत्युत वाच्यार्थ- वाधोऽर्थान्तरवोधप्रसोत्रीं छक्षणाम् । वाक्यार्थ एव चामीपामीदशे सन्दिहाना उद्विजमानाश्च बाछबुद्धयः केचनाक्षिपन्त्यापे। एवमेव वाधितद्वारवाक्यार्थान्पौराणिकान्काँस्काँश्चिदुपाख्याना- र्थवादानुद्दिश्य यदि ग्राष्टिना गगनामिव गृह्वाना अनधीतशास्त्रत्वात्पौराणिकार्थवादग्रख्य- तात्पर्यपर्यां छोचनशक्तिश्चर्याः केचनाधुनिकाः पण्डितम्मन्या बेदवाह्या आक्षेपख्काण्यक्षराणि शिष्टजनसमक्षमाचक्षते, प्रत्याचक्षते च तान् द्वारवाक्यार्थावाधदुराग्रहग्रहवशंवदाः प्रज्ञाचक्षुषः केचन वैदिकम्मन्या मन्याग्रुत्वमय्य ''नास्तिकाःस्थे' त्यादिभीरोक्ष्यसन्धिक्षतत्तरै-॥ माषा॥

रथ, बायु के नाई बेग से घूमता है परन्तु एक पद भीआगे को नहीं चलता) इत्यादि द्वारी अर्थ के सत्य होने से ये पहेलियां लोक में प्रमाण गिनी जाती हैं। और इतना ही नहीं है कि ये प्रमाण गिनी जाती हैं किन्तु इन के द्वारी अर्थ के समझने वाले मनुष्य की प्रशंसा भी होती है जैसे " पश्चमर्त्री०" (जिस के पांच भर्ता हैं परन्तु वह द्रौपदी नहीं है और दो जिह्ना हैं किन्तु वह सर्पिणी नहीं है तथा उस का मुख काला है परन्तु वह बिल्ली नहीं है उस को अर्थात् लेखनी को जो समझता है वह पाण्डित है) इति । तात्पर्य यहं है कि शब्दशक्ति के अनुसार इन पहेलियों से द्वार अर्थ का बोध होता ही है तथा उस मिथ्या अर्थ के बोध से भी श्रोताओं के हृद्य में चमत्कार भी होता है और उस द्वार अर्थ के ठीक न बैठने से बालक सब यह भी कहते हैं कि यह झूठा है, यह सब दूसरी बातें हैं। परन्तु द्वार अर्थ के मिथ्या होने पर भी वे पहेलियां अप्रमाण नहीं गिनी जाती हैं क्यों-कि द्वार अर्थ में इन का मुख्यतात्पर्य ही नहीं है और द्वारी अर्थ के सत्य होने से प्रमाण गिनी जाती हैं क्योंकि उन में इन का तात्पर्य है। और जब छौकिक छोटे २ वाक्यों में यह दशा है तब पौराणिक और ऐतिहासिक उक्त कतिपयडपाख्यानों में यदि द्वार अर्थ मिध्या भी हैं तो उन की प्रमाणता में कैसे कुछ सन्देह हो सकता है ? क्यों कि जिस में उन का मुख्यतात्पर्य है वह निन्दा बा लुति रूपी उन का द्वारी अर्थ तो किसी प्रमाण से बाधित नहीं है किन्तु सर्वथा सत्य ही है । और यह भी है कि जैसे पहेलियों के गूढ अर्थ को न समझने वाल घृष्ट बालक, उन के अर्थी में सन्देह करते २ निश्चय न होने से उद्विग्न हो कर उन को असत्य कह बैठते हैं वैसे ही उक्त कतिपय उपाख्यानों के द्वार अर्थ को झूठा समझ कर उन के सत्य द्वारी अर्थ के न समझने से शास्त्र के अनेपढ़, बेदवाह्य और पण्डितमानी मनुष्य, मानों आकाश को मूठ में पकड़ते हुए, शिष्टजनों के समक्ष " यह उपाख्यान मिथ्या है " इत्यादि, आक्षेप से रूक्ष अक्षर यद्यपि प्रायः बोल बैठते हैं शीर इन उपाख्यानों के द्वार अर्थ की सत्यता पर दुराम्रह करने वाले पौराणिकमानी प्रज्ञाचक्षु (भन्धा) कोई २ मनुष्य गर्दन ऊंची कर " तुम नास्तिक हो " इत्यादि रूक्षतर अक्षरों को उन के र्दुरक्षरिनकरैं:, सन्धुक्षतेतरां चायमाक्षेपप्रत्याक्षेपकक्ष्याशृङ्खित उभयोः पक्षप्रातिपक्षयोः मेहामोहकळहकळकळ तदा को नाम तत्र पौराणिकानान्ताहश्रोपाख्यानार्थवादानां मन्तु चुपन्तुमईः, नेष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यतीति न्यायात्। स्तुतिनिन्दे अपि सन्धा मारोपिताभ्यामसन्धां च गुणदोषाभ्यां घटमाने न सर्वत्रैव द्वारवाक्यार्थसत्यतायामागृङ्कीत इति न तयोरपि तत्र कश्चिदपराधः। एवं च द्वारवाक्यार्थस्यावाधितत्वं न क्षचनोपाख्यान-प्रामाण्योपयोगि तदेतत्सकलमभित्रत्यैवोक्तम्।

सर्वोपाख्यानेषु च तात्पर्ये सित "श्रावयदिति" विधेरानर्थक्यात् कथिक्चिद्रम्यमान-स्तुतिनिन्दापरिग्रहः तत्परत्वाच नातीवोपाख्यानेषु तत्त्वाभिनिवशः कार्य इति ।

भट्टसोमेश्वरोऽपि।

अम्यपरत्वादेव स्वार्थसत्यत्वमनावश्यकाियाह क्षतत्परत्वाचितिक इति ब्याचछ। अत्र च 'सर्वेषु उपाख्यानेषु च' उपाख्यायमानेषु सिद्धेषु द्वारवाक्यार्थेष्वेवेति यावत्, 'तात्पर्ये सति' उपाख्यानार्थवादानां मुख्ये तात्पर्ये स्वीकृते सति स्तुतिनिन्दयोर्छक्षणाया अनङ्गीकारे स्रतीति यावत् "श्रावयेदिति विकेः आनर्थक्यात्" सिद्धार्थस्य प्रकृत्तिनिवृत्त्यनुपयोगि-तयोपाख्यानार्थवादानां तद्द्वारेण विधिनिषयेकवाक्यत्वापसकत्या परम्परयाऽपि विधेय-निषध्यविषयकप्रवृत्तिनिवृत्तिस्पर्शाभावेन पुरुषार्थपर्यावसायिताया द्र्निरस्तत्या तत्पर्यव-सायिनः श्रवणविधेवाधितार्थत्वपसङ्गात् । तद्धारणाय "कथिन्चत्" उक्तश्रवणविधिवला-त्स्तुतिनिन्दयोर्छक्षणास्वीकारेण, 'गम्यमानयोः' लक्षणया बोध्यमानयोर्भुख्यतात्पर्यविषययोः 'स्तुतिनिन्दयोः' (परिग्रहः) विध्येकवाक्यतायामुपायत्वेनाङ्गीकारः "तत्परत्वाच " उक्त-लक्ष्यार्थयोरेव मुख्यतात्पर्यांच ।

'उपाख्यानेषु' उपाख्यायमानेषु द्वारवाक्यार्थेषु (तत्त्वामिनिवेशः) सर्वत्रैवाबाधितत्वदुराग्रहः (अतीव) द्वारवाक्यार्थस्य क्षचिदिष बाधितत्वे प्रामाण्यमेवोषाख्यानार्थवादानां
नोषपद्येतिति सम्भाव्य प्रत्येकं पदार्थे वाक्यार्थे चाबाधितत्वमेव वक्तव्यमिति श्रद्धाजाङ्ग्न (न कार्यः) मुख्यतात्पर्यार्थस्यैवाबाधेन सर्ववाक्यानां प्रामाण्यस्याभ्युपगमात्प्रकृतेऽिष तथैव तस्य स्वीकरणीयत्वादिति बार्तिकार्थः। नचैवमसत्योषाख्यानांशे कथं तत्प्रणेतृणा-

माषा॥
उत्तर में कह भी बैठा करते हैं और उन दोनों का पक्ष, प्रतिपक्ष, को छ कर महामोह से आक्षेप और प्रत्याक्षेप रूपी कछह भी हुआ करता है तथापि उस कछह में इन उपाख्यानों का क्या अपराध है ? क्योंकि गड़े हुए खूंट (अर्थात् कीछे) पर यदि अन्धे ठोकर खा कर गिरत हैं तो क्या खूंटा अपराधी होता है ?

इन्हीं गीध, शृगालादि उपाख्यानों के बिषय में पूर्वोक्त युक्तियों के अभिप्राय से मीमांसाबार्तिक में कुमारिलमट्टपाद ने यह कहा है कि "जब उपाख्यानों के मुख्यतात्पर्य, स्तुति और जिन्दारूपी द्वारी अर्थ में हुआ करते हैं तब इन उपाख्यानों के प्रत्येक द्वार अर्थ में सत्यता का दुराप्रह नहीं करना चाहिये" और अनन्तरोक्त प्रकरण में भट्टपाद के अन्यान्य वाक्यों के साथ इस वाक्य को उद्धृत कर अन्यान्य विषयों में भी पुराण आदि का प्रामाण्य भली भांति सिद्ध कर दिया गया है इसी से इस अवसर पर केवल उपाख्यानों हीं के विषय में विशेष विचार इस कारण किया

वाप्तत्वमवधारणीयमिति वाच्यम् । जपाख्यानानामिषं वहूनां वैदिकोपाख्यानम् इकत्वस्य वहूनां च छोकम् इकत्वस्य दर्शनेन छोकरञ्जनार्थेषु स्वात्पेक्षितेषु काव्यपायेषु पुरञ्जनोपाख्यान-प्रमृतिषु ग्रुख्यतात्पर्यार्थस्तुत्यादिरूपसत्यार्थकतयेव पूर्वोक्तरीत्योपपादितप्रामाण्येषु वृद्धिकेन्द्रमतर्दनाद्यारच्यायिकावत् छोकिकमाछतीमाधवप्रवोधचन्द्रोद्यादिनाटकवत् ताद्दश्चासवद्त्ताद्यारच्यायिकावत् भाषामयचन्द्रकान्ताद्यपन्याससदसवच विप्राष्टिपतिपादकाः पृत्वावधारणस्याप्रत्यूदत्वात् । एवं पौराणिकार्थवादानां सर्गप्रतिसर्गादिपतिपादकाः पृत्वावधारणस्याप्रत्यूद्वात् । प्रराणानाग्रुपपुराणानां च पूर्वमेवार्षेवीक्यैः परिगणितत्वाच चुम्बक-वृद्धवानां प्रराणानाग्रुपपुराणानां च पूर्वमेवार्षेवीक्यैः परिगणितत्वाच चुम्बक-वृद्धवानां छङ्छङ्किदां न काळिवशेषार्थकत्वं एवं विश्वष्ठवामदेवदुष्यन्तपरीक्षिता-दिनाम्नापपि वेदगतानां यत्किश्चित्काळिविशेषाविशेषित्वव्यक्तिपतिपिपादियषया तत्र निवन्धनमार्ग्यायिकान्यायाद्वोधसौकर्यमात्रार्थमेव तथा पुराणेषु न नियमः । पुराणब्यक्ते-राधुनिकत्वात् । नापि नामादिसाम्यमात्रमनुसृत्य पुराणनिबद्धनाम्नाभेव पुरुषविशेषाणां वेदे निर्देश इत्यादिकं तु क्षुद्रोपद्रविद्वावणे पूर्वमिभिदितमेव । यथा च ब्राह्मणभागेपूपक्रमोन

॥ भाषा॥

जाता है कि इन के विषय में अज्ञानियों के झगड़े बहुत अधिक हुआ करते हैं।

प्र०-इन उपाख्यानों पर सत्यता का बिश्वास क्यों कर हो सकता है ?

च०—वाह क्या अच्छा प्रश्न है, इस प्रश्न के सुनने से एक और प्रश्न का स्मरण होता है कि एक बुद्धिवताल महाशय ने रामायण की सब कथा सुन कर अपने ब्यास से पूछा कि महाराज! सब रामायण का अर्थ आप के छपा से मुझै निश्चित हो गया, परन्तु एक ही सन्देह थोड़ा सा रह गया है कि रामचन्द्र राक्षस थे अथवा रावण? वही दशा इस प्रश्न की है, क्यों कि जब इतिहास और पुराणों में सहस्रों उपाल्यान ऐसे भी हैं कि जिन का मूल लोकानुभव ही है और कितपयउपाल्यान ऐसे भी हैं कि जिन का द्वार अर्थ यद्यपि बाधित है तथापि द्वारी अर्थ सल ही है और जिन के दृष्टान्त में इन्द्रप्रतर्दन नारद सनत्कुमार आदि बैदिक सैकड़ों उपाल्यान और मालतीमाधव, प्रबोधचन्द्रोदय, आदि अनेक नाटक तथा अन्यान्य भाषाओं में चन्द्रकान्तादि उपन्यास प्रसिद्ध ही हैं और पूर्व में अनेक रीति से यह भी वर्णन हो चुका है कि भ्रम, प्रमाह और धूर्तता आदि के कारण से ये उपाल्यान रिचत नहीं हुए तथा यह भी अभी कहा गया है कि इन उपाल्यानों का द्वारी अर्थ बाधित नहीं है, तो एसी दशा में भी यदि यह प्रश्न पुन: होता है तो इस के उत्तर में इतना ही कहना योग्य है कि 'इस का उत्तर हो चुका'।

इस रीति से पौराणिक और एतिहासिक उपाख्यानों के सृष्टिसंहारादि पूर्वोक्त पाँची भागों की प्रमाणता भली भांति बर्णित हो चुकी।

इस लिये जो जिह्ना पुराणों और इतिहासों पर अप्रमाण के कलक का आरोप करती है इस को यही समझना चाहिये कि वह अपने बश में नहीं है किन्तु नास्तिकों के बश में है। और हराणों के बिषय में कुछ अधिक युक्तियां भी क्षुद्रोपद्रविद्रावण में बेदवाक्यों के मतलण्डन के अससर पर पूर्व हीं कही जा चुकी हैं इसी से पुन: यहाँ वे नहीं लिखी गयीं। पसंहाराभ्यासापूर्वताफलार्थवादोपपितिभः षह्भिः प्रमाणैस्सिद्धार्थोपदेश्ववाक्यानां तात्पर्यनिर्णयो भवति तथैव पौराणिकानामपि ताद्दशोपदेशवाक्यानाम् एषेव रितिरितिहासेष्विषे
बोध्या,केचित्त्वाशुनिकाः प्रतिपादितां शास्त्रीयां पुराणप्रामाण्योपपादनसरिणं स्वमेऽप्यश्चतवन्तः
पुराणपामाण्यं प्रति सम्प्रति प्रचरितान् नास्तिकानामाक्षेपानाकण्याप्रतिभाततत्प्रतिविधाना गलितवयस्कतया ल्व्यप्रतिष्ठतया च शास्त्रीयगूढतात्पर्यनिवेदकग्रन्थानामुपाध्यायेभ्यो
ऽध्ययनापत्रपमाणा दौष्कर्यश्चश्चया च ततो विभ्यतो गत्यन्तरिवरहादिहाल्बतमेवास्थाय
नवनीतकमनीयपुराणितिहासनिदानं ब्राह्मणभागम् असौ वेद एव नेति दुग्धमेव निश्शेषं
पिवान्तिस्मेति त्वन्यदेतत् । पुराणीयेषु केषु केषुचिदुपाल्यानस्थलेषु काँस्काँश्चिद्वाधान्
दर्शयन्त आधुनिकाः केचन भाषामयाग्रन्थास्तु भाषामयरेवाधुनिकंस्तत्प्रतिविधानग्रन्थेईण्डुमा
इव गरुद्धैः कविलता यक्षानुक्ष्पो बलिरिति न्यायादतः कृतं तेषु कटाक्षनिःक्षेपेणिति दिक्।

इति विशेषतः पुराणप्रामाण्यनिरूपणम् । अथ सदाचारात्मतुष्ट्योः प्रामाण्यं निरूप्यते । अपि वा कारणाग्रहणे प्रयुक्तानि प्रतीयेरन् ॥ (मी. द. अ. १पा, ३ सू. ७) अर्थः ।

कारणात्राम् छोभादीनामप्रामाण्यकारणानाम् अग्रहणे अदर्शने पयुक्तानि अनुष्ठितानि ॥ भाषा ॥

(उ०७)—तथा जगत् की सृष्टि और संहार सहस्रों बार हो चुके तब यह कोई असम्भव की बात नहीं है कि कोई सृष्टि नारायण से और कोई सृष्टि शिव से और कोई शक्ति से तथा कोई गणेश से हुई और उसी के अनुसार पुराणों में उन सृष्टियों का वर्णन है तो क्या बिरोध है ?

और दो एक आधुनिक पुरुष (जिन ने कि पुराण के प्रमाणता की पूर्वोक्त बक्तियों को स्वप्त में भी नहीं सुना तथा इतिहास और पुराण पर नास्तकों के पूर्वाक्षेपों को सुन कर बिहान हुए और बिचार करने पर भी बन का बारण नहीं कर सके और अवस्था तथा प्रतिष्ठा अधिक होने के कारण पुनः शास्त्र पढ़ने में छज्जा और असाध्यता समझा) ने तो अनन्यगति हो कर नास्तिकों के आक्षेपों से बँचने के छिये, बिडालब्रत को स्वीकार कर इतिहास और पुराण रूपी कोमल मधुर, बलबर्डक और मुखदायी सबे नवनीत (नैन्) के आदिकारण ब्राह्मणभागरूपी दुग्ध ही को पी गये अर्थात् यही कह दिया कि ब्राह्मणभाग बेद ही नहीं है। और यह तो दूसरी बात है कि दो एक पुराणों के किसी र अंश में छोट र बिरोध के दिखलाने वाले जो आज कल्ह के भाषामय प्रन्थ हैं उन को तो सनातनधर्मियों के आज कल्ह के भाषामय प्रन्थों ने ऐसा निगल लिया है कि जैसे गरुडपक्षी डुण्डुभों (जल में रहनेवाले निर्विषसर्प) को निगला करते हैं। इसी से जैसा देव वैसी पूजा समझ कर मैं उन भाषाप्रस्थों में कहे हुए आक्ष्रपों पर यहाँ दृष्टि नहीं देता हूं। जीसा देव वैसी पूजा समझ कर मैं उन भाषाप्रस्थों में कहे हुए आक्ष्रपों पर यहाँ दृष्टि नहीं देता हूं।

यहां तक पुराण और इतिहास के प्रामाण्य का विशेषक्ष से निक्ष्पण समाप्त हो गया। अब धर्म के विषय में सदाचार और आत्मतुष्टि (दूसरा और तीसरा परिखा अर्थात खाई) के प्रामाण्य का निक्ष्पण किया जाता है। इस के विषय में मीमांसावार्तिककार कुमारिल महूवाद ने "अपि वा कारणाप्रहणे प्रतीयेरन्" (पू० मी० द० अ०१ पा०३ सू७) इस सूत्र (जिस का अर्थ आगे किया जायगा) के तन्त्रवार्तिक में अधिकरणक्ष्प से विचार किया है (जो कि अपर संस्कृतभाग में छिसा है) कि यद्यपि धर्म के विषय में सदाचार का प्रमाण होना उन भूति स्मृति

आचरणानि प्रतीयेशन् प्रमाणं स्युरिति।

अत्र बार्तिकम्।

अत्र सदाचारानुदाहृत्य त्रिवर्गासिद्ध्यर्थ विचार्यते । तद्धिपरीतसङ्कीर्णव्यवहारिषु विद्येष्ट्यकारिषु वैद्यातु वद्विस्नम्भणीयचरितत्वात्सम्भाव्यमानवेदम् छत्वाच धर्मसंशयं द्यायित्वा "धर्मस्य शब्दम् छत्वात् अश्रव्दमनपेश्च्यमि" ति पूर्वः पक्षः क्राचिच 'विरोधे स्वनपेश्च्य' मित्येतन्न्यायानुसारेण सदाचारेषु हि 'दृष्टो धर्मव्यतिक्रमः साहसं च महताम्' प्रजापतीन्द्रविश्विविध्वामित्रयुधिष्ठिरकृष्णद्वैपायनभीष्मधृतराष्ट्रवासुदेवार्जुनभभृतीनां वहूना-मद्यतनानां च । प्रजापतेस्तावत् "प्रजापतिरुषसमभ्यत्स्वांद्वादितरः" मिति अगम्यागमन्द्रपा-

और युक्तियों से सिद्ध ही है जो कि आंग चल कर सिद्धान्त के निरूपण में कही लायँगी इस से धर्म के विषय में आचार के प्रमाण न होने का धन्देह ही नहीं हो सकता और ऐसे ही पूर्वपक्ष भी उस का नहीं हो सकता, इस लिये अधिकरण की रचना इस विषय में नहीं हो सकती तथापि अच्छे लोगों का भी आचार, जब धर्म, अर्थ, काम से विरुद्ध और अधर्म, अर्थ, दु:ल के कारणक्ष आत्मधातआदि दुराचारों से हिला मिला देखा जाता है तब यह कैसे धर्म में प्रमाण हो सकता है ? क्यों कि जैसे ख्यं रोगप्रस्त बैद्य के अपध्य आचार को देख कर रोगी लोग उस बैद्य की किया पर विश्वास नहीं करते वैसे ही स्वयं पाप करते हुए मनुष्य के आचार पर भर्म में प्रमाण होने का विश्वास कीन कर सकता है ? और आचार का धर्म में प्रमाण होने का विश्वास कीन कर सकता है ? और आचार का धर्म में प्रमाण होने के कहा जाता है। इस कारण धर्म के विषय में सदाचार के प्रमाण न होने और होने का सन्देह अवइय हो सकता है कि—

(सं०) धर्म के विषय में सदाचार प्रमाण नहीं है अथवा प्रमाण है ?

(पू०) धर्म के विषय में सदाचार, प्रमाण नहीं है क्यों कि पूर्व हीं स्मृति के अधिकरण में "धर्मस्य शब्दम् छलादशद्ध मनमेक्ष्यं स्यात्" इस पूर्वपक्षस्त्र से स्मृतियों के अप्रमाण होने में जो कारण दिखलाया गया है वह कारण सदाचारों के विषय में भी है अर्थात् धर्म, बेद ही से ज्ञात हों सकता है और आचार तो न बेद हैं न बेदमूलक, क्योंकि आचार अनन्त प्रकार के हैं उन सब का एक बेदवाक्य मूल नहीं हो सकता और एक २ आचार के एक २ बंदवाक्य यदि मूल हों तो अनन्त बेदबाक्यों की कल्पना करनी पड़ेगी इस से ये धर्म में प्रमाण नहीं हो सकते। तथा बेदबाह्य अनन्त बेदबाक्यों की कल्पना करनी पड़ेगी इस से ये धर्म में प्रमाण नहीं हो सकते। तथा बेदबाह्य खुदादि की स्मृतियों के प्रामाण्यखण्डन का जो कारण, "बिरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादस्रति ह्यनुमानम्" खुदादि की स्मृतियों के प्रमाण्यखण्डन का जो कारण, "बिरोधे त्वनपेक्ष्यं स्थादस्रति ह्यनुमानम्" इस पूर्वोक्तसूत्र से दिखलाया गया है वह सदाचारों के विषय में भी है क्योंकि सदाचार में भी इस पूर्वोक्तसूत्र से दिखलाया गया है वह सदाचारों के विषय में भी है क्योंकि सदाचार में भी अर्थात आदि का विरोध देखा जाता है जैसा कि गौतममहर्षि ने अपने धर्मशास्त्र में कहा है कि— अर्थात आदि का विरोध देखा जाता है जैसा कि गौतममहर्षि ने अपने धर्मशास्त्र में कहा है कि— आदि दोषों के बशीभूत होने से अवद्ययमावी दु:खरूपी अनर्थ को न देख कर अधर्म करना, आदि दोषों के बशीभूत होने से अवद्ययमावी दु:खरूपी अनर्थ को न देख कर अधर्म करना, की साहस अर्थात् अर्थात् धर्मब्यतिक्रम और साहस बड़े लोगों में भी देखे गये हैं इति।

इस के उदाहरण भी थोड़े से दिखलाये जाते हैं।

"प्रजापतिरुषसमभ्येत् स्वां दुहितरम्" (प्रजापति, उषा नामक अपनी बेटी के अभिमुख

जाता है) इस बेदवाक्य से बिदव के कर्ती और लक्षाध्यायी स्मृति के बनाने वाले ब्रह्मा का भा

द्धमीचरणाद्धमैब्यतिक्रमः" इन्द्रस्यापि तत्पदस्थस्य च नहुषस्य परदोराभियोगाद्धमैब्यति-क्रमः । तथा बशिष्ठस्य पुत्रशोकार्तस्य जलप्रवेशात्मत्यागसाहसम् । विश्वामित्रस्य चाण्डाल-याजनम् । बशिष्ठवत्पुरूरवसः प्रयोगः ।कृष्णद्वेपायनस्य ग्रहतिनिष्ठिक ब्रह्मचर्यस्य विचित्रवीर्य-दारेष्वपत्योत्पादनप्रसङ्गः । भीष्मस्य च सर्वाश्रमधर्मव्यतिरेकेणावस्थानम् । अपन्नीकस्य च रामवत् कतुप्रयोगः । तथान्यस्य धृतराष्ट्रस्येज्यापाण्ड्वितिरेधनिरित्यनिषक्रतिक्रया । ॥ भाषा ॥

भर्मब्यातिक्रम स्पष्ट है।

तथा गौतममहार्ष की पत्नी अहल्या के गमन से इन्द्र का भी धर्मक्यतिक्रम है।

और जिस समय ब्रह्महत्या के कारण अपने अधिकार से च्युत हो कर खर्ग लोक से इन्द्र निकल गये थे उस समय उन के आसनिध्यत राजा नहुष का इन्द्राणी के समीप गमन के लिए उद्योग करने से धर्मव्यितकम हुआ।

तथा जिस समय बिशिष्ठमहर्षि के शक्ति नामक ज्येष्ठपुत्र की राक्षस ने अक्षण किया उस के अनन्तर पुत्रशोक से जलप्रवेश आदि के द्वारा आत्मघात करने का साहस बिशिष्ठ का स्पष्ट ही है।

ऐसे ही विश्वामित्र का चाण्डालयाजन साहस है क्योंकि ब्राह्मण के कन्याहरण से कुपित हुए पिता के शाप से चाण्डाल हुए राजा त्रिशङ्क से विश्वामित्र ने यज्ञ करवाया।

ऐसा ही राजा पुरूरवा का आत्मघात में प्रवृत्त होना साहस है क्योंकि चर्बशी नामक अप्सरा के विरहशोक से उन्हों ने आत्मघात का उद्योग किया।

और कृष्णद्वेपायनव्यास का धर्मव्यातिक्रम यह है कि उन्हों ने अपने अपुत्र छोटे भाई, विचित्रवीर्य की पत्नी अन्विका में घृतराष्ट्र को और चित्राङ्गद की पत्नी अन्वालिका में पाण्डु को तथा अन्वालिका की प्रेषित दासी में बिदुर को उत्पन्न किया। इस में प्रथम अनुचित यह है कि विधवा के साथ नियोग भी बहाचारी के लिए सदा ही निषिद्ध है, दूसरा अनुचित यह है कि नियोग का विधान एक ही अपत्य के लिए है परन्तु उन्हों ने अनेक अपत्यों को उत्पन्न किया।

तथा भीष्म के दो धर्मब्यितकम हैं एक नैराश्रम्य (किसी आश्रम में न रहना) दूसरा खीरहित हो कर भी अश्वमेधयक्ष करना क्योंकि भारत में "स एव भीष्मः" यह कहा हुआ है कि भीष्म ने तीस अश्वमेध किया। दाशरिथ राम का धर्मब्यितकम यह है कि सीता के त्यागसमय में उन्हों ने यहा किया।

शौर राजाधृतराष्ट्र का एक धर्मन्यतिक्रम यह है कि वह अन्ध होने से यक्त करने के अधिकारी न थे परन्तु यक्त किया। यह तो कह नहीं सकते कि जनमान्ध का कोई अंश नहीं होता और वह जनमान्ध थे इस से उन के पास कोई धन हीं नहीं था तो उन्हों ने यक्त कहां से किया? क्योंकि उन्हों ने पाण्डुराज अपने भाई के अर्जित धन से यक्त किया जैसा कि आरत में कहा है "तस्य बीरस्य विकान्तै: सहस्रशतदक्षिणै:। अश्वमेधशतैरीजे धृतराष्ट्रो सहामसे:" (उस बीर अर्थात् पाण्डु के पराक्रम से उपार्जन किये हुए लाखों रुपयों से धृतराष्ट्र ने अनेक अश्वमेधया किया) और यह भी नहीं कह सकते कि पाण्डु के धन को, बिना उन के दिये ले लेना एक दूधरा धर्माञ्यतिक्रम हुआ, क्योंकि भारत ही में " सुहृदश्चापि धर्मात्मा धनेन समत्वियत् " (धर्मात्मा धर्मेन समत्वियत् " (धर्मात्मा धर्मेन समत्वियत् " (धर्मात्मा धर्मेन समत्वियत् के लिए

तथा युधिष्ठिरस्य कनीयोऽर्जितभ्रातृजायापरिणयनमाचार्यब्राह्मणवधार्यमृतभाषणं च । बासुदेवार्जुनयोः मतिषिद्धमातुलदुहित्रुविमणीसुभद्रापरिणयन 'सुभौ मध्वासवक्षीवावि' तिसुरापानाचरणम् । अद्यत्वेऽप्यहिच्छत्रमथुरानिवासिब्राह्मणीनां सुरापानम् । केसर्यश्वा-श्वतरखरोष्ट्रोभयतोदद्दानमतिग्रहाविक्रयव्यवहारभार्याऽपत्यमित्रसहभोजनाद्यदीच्यानाम् ।

॥ माषा॥

पाण्डु का धन देना कहा हुआ है। और दूसरा धर्मव्यतिक्रम यह है कि अपने छोटे भाई पाण्डु के धन से अपना काम चलाना धृतराष्ट्र को उचित न था।

तथा राजा युधिष्ठिर के दो धर्मन्यितिकम हैं एक यह कि अपने छोटे माई अर्जुन की जीती हुई द्रौपदीरूपी आतृबधू (भयहू) के साथ बिवाह करना, क्यों कि " इदं सज्ज धनुः करवा सज्जेननेन सायकै: । अतीत्य छक्ष्यं यो बेसा स छभेत सुतामिमाम् " (इस धनुष को सुसाज्जित कर इस के द्वारा बाणों से इस मत्स्यरूपी छक्ष्य को जो आगे बढ़ कर मारे वह मेरी इस द्रौपदीरूपी पुत्री को पावैगा) हुपद की इस घोषणा के अनन्तर अर्जुन ने वैसा ही किया तदनन्तर राजा हुपद ने द्रौपदी को अर्जुन के अधीन कर दिया। तथा यह भी था कि द्रौपदी के आता ने द्रौपदी को " बिद्धेत य इमं छक्ष्यं तं बृणीव्य बरानने " (हे बरानने ! इस मत्स्यरूपी छक्ष्य को जो मार दे इस को तू बरण अर्थात् स्वीकार कर) यह आज्ञा दी थी जिस के अनुसार द्रौपदी ने मत्स्यवेध के अनन्तर ही अर्जुन का बरण कर छिया। इस कारण, विवाहविधि होने से पूर्व ही अर्जुन के शास्त्रिय भार्यासम्बन्ध का आरम्भ हो चुका था और अर्जुन, युधिष्ठिर के छोटे माई थे। और दूसरा धर्मव्यतिकम यह है कि राजायुधिष्ठिर यह मछी मांति जानते थे कि, द्रोण, ब्राह्मण और इमारे धनु-वेदाचार्य हैं तथा जब तक इन के हाथ में शस्त्र रहे तब तक इन को कोई नहीं मार सकता और अपने पुत्र अर्थत्थामा के मारे जाने पर यह अवश्य शस्त्र त्याग कर देंगे तब भी आचार्य जी से शस्त्र त्याग कराने के छिये उन्होंने यह भिध्यामाषण किया कि " अर्थत्थामा हत: "

तथा बासुदेव और अर्जुन के दो २ धर्मव्यितक्रम हैं एक यह है कि बासुदेव ने रुक्मिणी और अर्जुन ने सुभद्रा, अपनी २ मातुलकन्या के साथ विवाह किया। और दूसरा सुरापान है जैसा कि " उभी मध्वासवक्षीवौ दृष्टों में माधवार्जुनौ " केशव और अर्जुन दोनों को में ने मधु आसव से मत्त देखा) यह भारत में सख्य ने कहा है।

ऐसे ही आज कल्ह (भट्टपाद के समय) के छोगों का भी धर्मव्यतिक्रम है। जैसे कि अहिच्छत्र आर मधुरा के ब्राह्मणियों का सुरापान।

और उदीक्यों (बिन्ध्य पहाड़ के उत्तरवासी) में धर्मब्यितकम घोड़ा, खबर, गदहा, केट, आदि का छादना, प्रतिप्रह और विक्रयादिव्यवहार है क्योंकि "न केसरिणोददाति " (केसरी अर्थात् गर्दन के बड़े बाछ वाछों की दान न करें) " नोभयतोदतः प्रतिगृह्णाति" (जिन पशुओं के कंपर नीचे दोनों क्षोर दांत होते हैं उन का दान न छे) ये बेदवाक्य हैं, सथा " ब्राहियवाजाश्व-भूमिधेन्वनडुहश्चेके" (धान, जव, बकरी, घोड़ा, भूमि, धेनु, और बैछों को न बेंचे) यह गौतम-भिषे का वाक्य है और " उभयता दद्भिन व्यवहारः " (जिन पशुओं के नीचे ऊपर दोनों ओर दांत होते हैं उन के दान प्रतिग्रहादि का व्यवहार न करें) यह बोधायनऋषि का वाक्य है तथा पत्नी, छड़का और मित्र के साथ एक पात्र में भोजन करना इत्यादि उदीच्यों का धर्मव्यतिक्रम है।

मातुलदुहितुद्वाहासन्दीस्थभोजनादीनि दाक्षिणात्यानाम् । मित्रस्वजनोच्छिष्टस्पृष्टभोजनं सर्ववर्णपरस्परस्पृष्टताम्बूलादनतदवसानानाचपनिर्णेजकघौतवस्त्रगर्दभारूढवस्त्रपरिधानब्रह्म-हत्याऽतिरिक्तमहापातककार्यपरिहरणादीन्युभयेषामितस्थूलानि । प्रतिपुरुषजातिकुलावस्थित-सक्ष्मस्वधर्मव्यतिक्रयणानि त्वनन्तभेदानि सर्वत्र बिगानहेतुदर्शनानि च पायेणैव सम्भवन्तीति नैवंजातीयकमिश्रसदाचारधर्मत्वाध्यवसानसम्भवः। किंच।

के शिष्टा ये सदाचाराः सदाचाराश्च तत्कृताः। इतीतरेतराधीननिर्णयत्वादनिर्णयः ॥

सदाचारप्रमाणत्वं मन्वादिभिरपि स्मृतम् । आत्मतुष्टिः स्मृताऽन्या तैर्द्धमें सा चानवस्थिता ॥

यथाभ्यासं ह्यात्रयवैचित्रयेण शुभाशुभोभयहीनक्रियानुष्ठायिनामात्मतुष्टिरपि विचित्रवभवति॥

और दाक्षिणत्यों (बिन्ध्य से दक्षिणदेशवासी) का मातुलकन्याविवाह और सामान्यासन पर बैठ कर भोजन करना इत्यादि धर्मब्यातिक्रम है।

दाक्षिणात्य उद्चिय दोनों के और भी धर्मव्यतिक्रम हैं जैसे मित्रादि जब उच्छिष्ट (अपाबित्र) रहते हैं तब भी उनका छूआ खाना, सब बणों के छूए हुए ताम्बूछ का भक्षण तदनन्तर आचमन न करना, धोबी के छूये, गदहे पर लादे, वस्न का धारण, ब्रह्महत्या से अन्य महापातक करने वालों का त्याग न करना इत्यादि ये मोटे २ धर्मव्यतिक्रम हैं।

और सूक्ष्म २ धर्मव्यतिक्रमों के भेद तो अनन्त हैं कहां तक गिनाये जा सकते हैं। इस उक्तरीति से यह सिद्ध हो गया कि आचारों में श्रुति और स्मृतियों का बिरोध है। सदाचार के प्रमाण न होने में यह भी कारण है कि अन्योन्य में एक दूसरे के आचार की निन्दा किया करता है और खार्थ छोम आदि दुष्ट कारण भी आचारों के देखे जाते हैं।

तथा इस कारण भी शिष्टों के आचार प्रमाण नहीं हो सकते कि उन के प्रमाण मानने में अन्योन्याश्रय दोष पड़ता है क्योंकि यदि यह प्रश्न किया जाय कि शिष्ट कीन हैं ? तो इस का उत्तर यही है कि जिन के आचार अच्छे हैं वे ही शिष्ट हैं पुन: यह प्रश्न होगा कि आचार किन के अच्छे हैं ? और इस का उत्तर यह होगा कि शिष्टों के।

- (स) जब कि मनु आदि स्मृतियों का प्रमाण होना पूर्व में सिद्ध हो चुका है और मनु ने "बेदे। ऽिखलो धर्ममूलं स्मृतिशील च तद्विदाम्। आचारश्चेव साधूनां" इस वाक्य से श्रुति और स्मृति के नाई सदाचार को भी धर्म में प्रमाण कहा है तब कैसे उस के प्रमाण होने का खण्डन किया जाता है?
- (खं०) यदि उक्तस्मृति के अनुसार सदाचारों को प्रमाण माना जाय तो शिष्टों की आत्मतुष्टि (अपनी इच्छा) को भी प्रमाण मानना पहुँगा क्यों कि जिस महुस्मृति के ऋोक के तीन चरण समाधान में कहे गये हैं उसी का चतुर्थचरण यह है। कि " आत्मनस्तुष्टिरेव च " (शिष्टी की अपनी इच्छा भी धर्म में प्रमाण है)
 - (स०) धर्म में आत्मतुष्टि के प्रमाण होने से हानि क्या है ?
 - (खं०) हानि यह है कि यह नियम नहीं है कि आत्मतुष्टि धर्म ही में होती है क्यों कि

तथाहि।

कस्य चिज्जायते तुष्टिरशुभेऽपि हि कर्मणि । शाक्यस्येव कुहेतूक्तिर्वेदब्राह्मणद्षणे ॥

पशुः हिंसादिसम्बद्धे यज्ञे तुष्यन्ति हि द्विजाः। (तथा) तेभ्य एवं हि यज्ञेभ्यः शाक्याः कुध्यन्ति पीहिताः ॥

शूद्रान्नभोजनेनापि तुष्यन्त्यन्ये द्विजातयः। (तथा) स्वमातुलसुतां प्राप्य दाक्षिणात्यस्तु तुष्यति ॥ अन्ये तु सब्यलीकेन मनसा तन्न कुर्वते।

ततश्चानवस्थितत्वाद्ययेवात्मनम्तुष्टिरेवचेत्येतन्यनुवचनं कथमन्यथा नेतव्यमेव'माचारश्चेत्र साधनामि'त्येतदपीति ॥

स्वयमज्ञातमुळाश्च शिष्टाचारप्रमाणताम्। वदन्तोऽपि न शोभन्ते स्मृतिकारास्ततोऽधिकाः।।

॥ माबा ॥

आत्मतुष्टि अधर्म में भी बहुतों की देखी जाती है तो वह यदि धर्म में प्रमाण हो तो अधर्म भी थमें और धर्म भी अधर्म हो जायगा। जैसे बेद और ब्राह्मण के खण्डन और दुष्टयुक्तियों के करने में जैनों की आत्मतु हि होती है ता क्या वह धर्म है ? तथा यज्ञों में पशुहिंसा के विषय में जैनों की आत्मतुष्टि नहीं है प्रत्युत द्वेष है तो क्या यज्ञ, धर्म नहीं है ?

(स०) जब कि साधुओं (शिष्टों) हीं की आत्मतिष्टि की उक्तवाक्य से मनु ने धर्म में

प्रमाण कहा है तो जैनादि की आत्मतुष्टि से धर्म में क्या प्रयोजन है ?

क्योंकि साधु नाम बैदिकों का है और जैनादिक तो बैदिक नहीं हैं किन्तु बेदिबरुद्ध हैं।

(सं०) जब कि बैदिकों की भी आत्मतुष्टि एक सी नहीं होती किन्तु अन्योन्य में विरुद्ध होती है जैसे शूद्रान्न के भोजन से भी बहुत से ब्राह्मण सन्तुष्ट होते हैं और अपनी मातुल-कन्या के साथ बिवाह करने से दाक्षिणात्य छोग सन्तुष्ट होते हैं तथा इन्हीं कामों को अन्य छोग बुरी दृष्टि से देख कर नहीं करते, ऐसी दशा में साधुओं की आत्मतुष्टि, धर्म में कैसे प्रमाण हो सकती है ?

(प्र०) यदि ऐसा है तो सदाचार और आत्मतुष्टि को प्रमाण बतछाने वाले मनुवाक्य

का क्या अर्थ है ? (७०) यही अर्थ है कि जो आचार और आत्मतुष्टि श्रुति और स्मृति के अनुसारी हैं

वे ही प्रमाण हैं। (प्र०) यदि ऐसा है तब कैसे आचार और आत्मतुष्टि के प्रमाण होने का खण्डन

किया जाता है ?

(७०) प्रश्नकर्ता ने खण्डन के आशय को नहीं समझा, क्योंकि जो आचार और थात्मतुष्टि श्रुति और स्मृति के अनुसारी अर्थात् उन में विधान किये हुए हैं उन के प्रमाण होने, का खण्डन यहां नहीं किया जाता है क्योंकि वे तो श्रुति और स्मृति में हीं आ गये इस लिये वे पृथक् पमाण ही नहीं हो सकते। किन्तु उन आचार और आत्मसुष्टि के प्रमाण होने का खण्डन यहां किया स्मृतिकारवचनार्थो हि शिष्टैराचरितव्यः शिष्टत्वायान्यथा हि तदनपेक्षाः स्वातन्त्रपेण व्यवहरमाणा दुष्टा भवेयु र्न शिष्टाः ॥

नच तेषां श्रुतिर्मूलं व्यवहारस्य दृश्यते ॥
यदि च स्यात्परोक्षाऽपि स्मर्थतेव ह्यसौ ध्रुवम् ॥
अपि वा कारणाग्रहणे प्रयुक्तानि प्रतीयरिन्निति ॥
दृष्ठकारणहीनानि यानि कर्माणि साधुभिः ।
प्रयुक्तानि प्रतीयरन्धमत्वेनेह तान्यपि ॥
श्रुक्तानि प्रतीयरन्धमत्वेनेह तान्यपि ॥
श्रुक्तानि प्रतीयरन्धमत्वेनेह तान्यपि ॥
श्रुक्तानि प्रतीयरन्धमत्वेनेह तान्यपि ॥
श्रुक्तानि प्रतीयरन्धमत्वेनेह तान्यपि ॥
श्रम्थितये यानि सुलार्थं वा प्रयुक्तते ।
शर्मत्वेन प्रपन्नानि शिष्टयानि तु कानि चित् ।
वैदिकैः कर्तृसामान्यात्तेषां धर्मत्विमिष्यते ॥
पदानानि जपो होमो मातृयज्ञाद्यस्तथा ।
शक्रध्वजमहोयात्रा देवतायतनेषु च ॥

॥ भाषा ॥

जाता है कि जिन का बिधान श्रुति स्मृति में नहीं है।

(ड० पूर्वोक्त उत्तर में जो अर्थ उक्त मनुवाक्य का किया है वह भी ठीक नहीं है क्यों कि आचार के मूलमूत बेदवाक्य को मनु ने देखा था वा नहीं ? यदि नहीं देखा था तो अब के लोग कैसे उस को देख सकते हैं ? इस लिय जब आचारों का बेदवाक्यरूपी मूल ही नहीं है तब मनु ने कैसे उन को प्रमाण कहा ! इस लिये उक्त मनु वाक्य का कोई दूसरा हो अर्थ करना चाहिय और यदि दूसरा अर्थ न हो सके तो भी यही कहना चाहिय कि बिना बेदरूपी मूल के, मनु ने जो आचारों को प्रमाण कहा है यह बहुत ही अनुचित है इस से उन के उस कथन को नहीं मानना चाहिए । और यदि आचारों के मूलभूत बेदवाक्यों को मनु ने देखा था तो जैसे अन्य बेदवाक्यों के अर्थ को अपने स्मृतिवाक्यों में बांध दिया वैसे ही आचार के मूलभूत बेदवाक्यों के अर्थों को क्यों वहां अपने वाक्यों में बांधा ? इस प्रश्न का क्या उत्तर है ?

इस लिये सदाचार और आत्मतुष्टि, धर्म के बिषय में कदापि नहीं प्रमाण हो सकते।
सि०—" अपि वा कारणाप्रहणे प्रयुक्तानि प्रतीयरेन्" (पू० मी० द० अध्या० १ पा० रे
सू० ७) (अप्रमाण होने के लोभादिरूपी दृष्टकारण के बिना, जो आचार, केवल धर्मबुद्धि से
साधुओं के किये हुए हैं वे धर्म में प्रमाण होंगे) इस से यह निकलता है कि जो अपने शरीर की
स्थिति, वा सुख, अथवा किसी अपने अर्थ के लिये जो आचार किये जाते हैं वे भोजनादि के नाई
धर्म में प्रमाण नहीं हैं। और उन के करने वाले शिष्ट ही लोग उन को धर्म नहीं मानते। तथा जा
आचार केवल धर्म समझ कर शिष्टविदिकों के किये हुए हैं वे तो अवश्य धर्म हैं क्यों के जैले
स्मृतियों के कर्ता मनु आदि वैदिक हैं वेसे इन आचारों के कर्ता भी। वे आचार ये हैं जैसेन्देना,
जप, होम, माएयहा, (देवीपूजा) इन्द्रध्वज की उत्सव, (सुबृष्टि के लिये बह किया जाता है और
वर्तमानसमय में भी नेपालनगर में प्रसेक बर्षा करते में होता है और जहां यह उत्सव होता है
स्मृतियों के का नाम ही 'इन्द्रचीक' है जो कि हाजभवन से खोड़ी हुई है और इसी के व होते है
इस देश में अवरेण से दुर्दशा छाई रहती है) देवमन्दिरों की यात्रा, कार्तिकशुक्क बर्धी तिथि में

कन्यकानां च सर्वासां चतुर्थ्याद्युपवासकाः। प्रदीपप्रतिपद्दानमोदकापूपपायसाः।।

अनिप्रक्रम। घमप्रमीपौर्णमासीफालगुनीप्रतिपद्धसन्तोत्सवादीनां नियमिक्रयाप्रमाणं न शास्त्राहते किञ्चिद्दास्त । स्मृतिकाराञ्चा 'चाराश्चेवमाधूनां देशकालकुल्जातिधर्माश्चाम्यन्ते । तथाऽ नध्यायाधिकारे 'उर्ध्वभोजनादुत्सव' इति देशनगरोत्सवप्रामाण्याश्रयणम् । वेदेऽपि च महाब्रते 'प्रञ्जमारु होता शंसती' त्येतद्वाक्यशेषे श्रूयते, 'यदा वै प्रजामह आविशान्ति प्रश्चन्ति । सहःशब्दवाच्योत्सवप्रामिद्धिरन्ति । यत्तं परिमितशास्त्रप्रमेयत्वात् धर्माधर्मयोरिह च तदसम्भवादित्युक्तं तद्वेदम्लत्वानुमानात् पूर्ववदेव प्रत्याख्येयम् । न च स्मृतिर्निम्ला, विस्तारवचनानामपि प्रपाठकमात्रेणोपसंहारात्किम्रतसङ्कोपवचनस्य । शक्यं

॥ भाषा ॥

सब बर्णों की कन्याओं का उपवासन्नत, और कार्तिक गुक्र प्रतिपदा तिथि में दीपदान और छड्डू, पूआ, खीर का दान और भोजन तथा कालपक वस्तुओं का दान भोजन, माघसुदी अचलासप्तमी का उत्सव, फ!ल्गुन की पूर्णिमा में होछिका और उस के अनन्तर प्रतिपद् तिथि में बसन्तेत्सव (फंगुंआ) इत्यादि। इन आचारों के नियम से अनुष्ठान में लोभ आदि कोई दृष्टकारण नहीं है तथा स्मृतिकर्ता महार्षे छोग भी ऐसे आचारों को प्रमाण मानते हैं जैसा कि मनु के पूर्वीक्त वाक्य में "आचारश्चेव साधूनाम्" यह सामान्यरूप से कहा है और अन्यस्मृति में भी "देशकुलनाति-धर्माश्चामायैरविरुद्धाः प्रमाणम् " (देशाचार, कुलाचार, जात्याचार व धर्म में प्रमाण हैं जो कि वेद से विरुद्ध नहीं है) एसा कहा है। और अन्य स्मृति में भी अनध्याय के प्रकरण में "ऊर्ध्व-भोजनादुत्सव " (देश बा नगर के उत्सव के दिन, भोजन के अनन्तर पढ़ने का अनध्याय है) यह कहा है। और बंद में भी "यदा बै प्रजा महआबिशन्ति प्रेक्कं तह्यारोहन्ति" (जब प्रजाएं उत्खव करती हैं तब झूछे पर चढ़ती हैं) इसं वाक्य के 'मह' शब्द से उत्सवरूपी आचार का अनुवाद है। इन प्रमाणों से सदाचार का धर्म में प्रमाण होना सिद्ध है। और पूर्वपक्ष में जो यह कहा गया है कि "आचारों के बिषय में मूछवेद की कल्पना नहीं हो सकती" इस का उत्तर वही है जो कि स्मृतियों के विषय में मूल वेदवाक्य की सिद्धि के लिये स्मृति के अधिकरण में कहा गया है अर्थात् अन्य मूल की कल्पना की अपेक्षा बेदवाक्यरूपी मूल की कल्पना में लाघव है इति । तथा जब यह, स्मृति के अधिकरण में सिद्ध हो चुका कि "मनु आदि की स्मृतियां बेदमूलक हैं" और मतु ने अपनी स्मृति में "आचारश्चेव साधूनाम्" इस बाक्य से सदाचार को धर्म में प्रमाण कहा है तम सदाचार के मूलभूत बेदवाक्य के अनुमान में कोई सन्देह नहीं है क्यों कि बेदमूलक हुए बिना आचार कैसे धर्म में प्रमाण हो सकते हैं ?

प्र०-जब कि आचार के भेद अनन्त हैं तब उन के मूलभूत बेदबाक्य भी अनन्त ही होंगे इस कारण उन बेदबाक्यों का पाठ नहीं हो सकता इस लिये जब व पठित नहीं हैं तब भाषारों के मूल कैसे हो सकते हैं ?

च०-अनन्त आचारों का भी एक ही वाक्य से सङ्क्षेप हो सकता है जैसे कि "सदा-भाराः प्रमाणम्" इस एक छौकिकवाक्य से, इस छिये मूळभूत एक ही बेदवाक्य का अनुमान च स्मृत्यनुक्पमेव बेदवचनमनुबातुम्।

तथाहि।

शिष्टेराचार्यमाणानां सतां गोदोहनादिवत्। फलसम्बन्धमप्राप्तं बोधयच्छास्त्रपर्धवत्।।

बहि तदेवैकं शास्त्रं प्रमाणं घश्य स्वरूपमित तब एवावगन्तव्यम्। अनेकाकारस्य हि

प्रमेयस्य कश्चिदेवाकारः केनचित्प्रमाणेन प्रमीयते। तत्र प्रत्यक्षाद्यवगम्येऽप्याचारस्वकृषे
दिधिगोदोहनादिवत् फलसम्बन्धः शास्त्रणावगम्यते। यागादिष्विप च नैव स्वरूपज्ञानेन
॥ साषा॥

भाचारों के बिषय में हो सकता है।

प्र०—यदि आचारों के विषय में "आचारखें व साधूनाम्" इस स्मृति के अनुसार किसी बेदवाक्यरूपी मूळ की कल्पना होगी तो वह भी सदाचार से उपलाक्षत ही होगी। ऐसी दक्षा में यदि उस शास्त्र के प्रचार से प्रथम भी शिष्टों के आचार होते आये तो वह पूर्ववाक्य ही व्यर्थ हो जायगा क्योंकि शिष्टों ने उस वाक्य के अनुसार से आचार नहीं किया। और यदि यह माना काय कि उस वाक्य के उत्तरकाल में शिष्टों ने उस के अनुसार आचार आरम्भ किया, तो अन्यी-न्याश्रय खोष पहुणा क्योंकि जब सदाचार का आरम्भ हो जाय तब उसके उपलक्ष्य मूळवाक्य की सिद्धि हो, और जब उस मूळवाक्य की सिद्धि हो जाय तब उस के अनुसार आचार की सिद्धि हो, तो ऐसी दक्षा में मूळवाक्य की कल्पना कैसे हो सकती है ?

(ए॰) बेद के अर्थ दो प्रकार के होते हैं एक वह कि जिसका खरूप, और किसी फल के प्रति साधन होना ये दोनों बंद ही से ज्ञात होते हैं जैसे अग्निष्टोमादि यज्ञ, क्यों कि वे पूर्व और पर की सङ्गित से बंधी हुई कियाओं के समूहरूपी हैं और उन के इस खरूप का ज्ञान प्रथम र बेद ही से होता है तथा उन यज्ञों का खर्गादिरूपी पुरुषार्थ के प्रति कारण होना बेद ही से ज्ञात होता है। और द्वितीय अर्थ यह है कि जिस का खरूप प्रत्यक्षादि लांकिकप्रमाण से सिद्ध है इसी से पुरुषार्थ के प्रति उसका कारण होना मात्र बेद ही से ज्ञात होता है जैसे "दन्ना जुहाति" इत्यादि बेदवाक्यों में दिधे का होम करना आदि प्रत्यक्ष से सिद्ध है इस लिये उन होमादि में स्वर्गादिरूपी पुरुषार्थ के प्रति कारण होना मात्र बेद ही से सिद्ध होता है। तात्पर्य यह है कि यज्ञादिरूपी कियाओं का खरूपमात्र तो किसी समय में प्रत्यक्षादि प्रमाणों से भी ज्ञात होता है परन्तु खर्गादिरूपी पुरुषार्थ के प्रति उन का कारण होना मात्र बेद ही से ज्ञात होता है ऐस ही दानादिकियारूपी आचारों का खरूप भी प्रत्यक्षादिरूपी प्रमाणों के द्वारा पूर्व ही से सिद्ध होता है अर्थात् उस के ज्ञान में मुलभूत बेदवाक्य की अपेक्षा नहीं रहती इसी से अन्योन्याश्रयदोष नहीं हो सकता क्यों के अन्योन्याक्यदोष वहां होता है जहां अन्योन्य के ज्ञान में अन्योन्य की अवश्य अपेक्षा होती है।

प्र• — यदि मूलभूत वेदनाक्य के विना हीं आचारों में शिष्टों की प्रवृत्ति होती है तो जैसे भोजनादि में तृति आदि फल के प्रति कारण होना ज्ञात रहता है इसी से भोजन में लोगों की प्रवृत्ति होती है वैसे ही दानादिक्षण सदाचारों में फल के प्रति साधन होना भी प्रथम हीं से ज्ञात हुआ क्योंकि यदि ऐसा नहीं है तो शिष्टों की प्रवृत्ति, हन आचारों में कैसे हुई इस रीति स जब सदाचारों का खक्ष के नाई, फल के प्रति कारण होना भी मूलभूत वेदवाक्य के विना अर्थात लीकिक प्रमाण ही से कात हो गया तो वह मूल वेदवाक्य क्या क्यों नहीं हुआ ?

(७०) मुखभूत बेदवान्य नैसे अनाष्ट्रि है बैसे ही शिष्टाचारों की परम्परा भी, तथा

शास्त्रमपेक्षितम् । फलसम्बन्धमात्रस्यैवातीन्द्रियत्वेन तदपेक्षितत्वादतो न नामोपलक्षणान्तरेण श्वास्त्रं प्रबृत्ताः प्रविकालं तु शिष्ट्वयवहारशास्त्रयोरविभागात् व्यवहारा देवापोद्धत्य केचित्स्वर्गादिसाधनत्वेन नियम्यमानाः कादाचित्कत्वपरित्यामेन नित्य-प्रयोज्या विद्यायन्ते । तेषां चार्यावर्तनिवासिशिष्टप्रयोज्यत्वमेवापलक्षणं वेदेनापि सरस्वती-विन्यत्वस्त्रम्यादिस्यम्त्रम्यादिस्यम्वयमनुमातुम् ॥

नतु शास्त्रार्थकारित्वाच्छिष्टत्वं गम्यते तदा । शिष्टत्वेन च शास्त्रोक्ति रित्यन्योन्याश्रयं भवेत् । नैव तेषांसदाचार-निमित्ताशिष्टता मता । साक्षाद्विहितकारित्वाच्छिष्टत्वे सति तद्वचः ॥

प्रत्यक्षवेदिविधिमिकियया हि छब्धशिष्ठत्वब्यपदेशाः यत्परम्पराप्राप्तमन्यद्पि

अनादिकाल से शिष्टाचार और उस के मूलभूत बेद का अन्योन्य सम्बन्ध भी चला आता है इसी से इस बिषय में अन्योन्याश्रय अथवा मूलवाक्य के व्यर्थ होने का आशक्का नहीं हो सकती और आचारों ही में से बहुत से आचार जिन की परम्परा अनादि है स्वर्गादिरूपी पुरुषार्थ के साधक होने से सदा ही करने के योग्य हैं और उन्हीं के मूलभूत बेदवाक्य का करूपना की जाती है।

(प्र०) मातुलकन्याबिवाह।दि जो आचार निनिदत हैं वे भी मूल बेदवाक्य के हपलक्षण क्यों न हों ?

- (उ०) जब वे आचार स्मृतिबिरुद्ध होने के कारण स्मृति के मूलभूत बेद से बिरुद्ध हैं तब वे मुलबेदवाक्य के उपलक्षण नहीं हो सकते किन्तु आर्यावर्त के निवासी शिष्टों के आचार (जो कि स्मृतियों में प्रशस्त कहे हैं । ही मूलबेदवाक्य के उपलक्षण हो सकते हैं और उन्हीं के उपलक्ष्य बेदवाक्य की करपना होती है और ऐसी करपना में प्रमाण भी वे स्मृतिवाक्य ही हैं जो कि आर्यावर्त देश की प्रशंसा करते हैं।
- (प्र०) शिष्टाचार के प्रमाण होने में जो अन्योन्याश्रयदोष पूर्वपक्ष में दिया गया है इस का क्या उत्तर है ?
- (७०) यही उत्तर है कि यदि सदाचार ही के धारणमात्र से वे शिष्ट कहलाते और शिष्टों ही के करने मात्र से वे आचार, सदाचार, कहलाते तब तो अन्वोन्यश्रयदोष होता परन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि बेद में प्रत्यक्षपठित अनेकवाक्यों से बिधान किये हुए अन्योन्यकर्मों के करने से वे पुरुष शिष्ट कहे जाते हैं और वे ही लोग केवल धर्मबुद्धि से पूर्वोक्त दानादि आचारों (जिन का कि बर्त्तमान बेदभाग में बिधान नहीं मिलता) को करते हैं इसी से ये आचार शिष्टाचार कहे जाते हैं । इस रीति से जब पूर्वोक्त आचारों ही के करने से वह, शिष्ट नहीं कहलाते तब अन्योन्याश्रयदोष कैसे पड़ सकता है ?
- (प्र०) यदि बेदाबिहित कर्मी के करने से वे शिष्ट हैं तो शिष्ट होने में बेद की अपेक्षा आ गई तथा उन के किये हुए आचार के अनुसार मूळभूत बेदवाक्य का जब अनुमान हुआ तब बेद में भी शिष्टों की अपेक्षा हो गई इस रीति से जब शिष्ट और बेद में अन्यान्य में अपेक्षा है तब अन्यान्याश्रय दोष क्यों नहीं है ?
- (उ०) बृक्ष की उत्पात्त में बीज की अपेक्षा होती है और बीज की उत्पात्त में बृक्ष की, तो यहां अन्योन्याश्रयदोष क्यों नहीं पड़ता ? यह तो कह नहीं सकते कि अन्योन्याश्रयदोष

धर्मबुद्ध्या कुर्वन्ति तदिप स्वर्ग्यत्वाद्धर्मरूपमेव । तद्यथाशुश्रुवान्बिद्धाननूचानश्च बैदिकः । पुनस्तरलक्षितो बेदे तेनैवाध्ययनादिषु ॥ तेनाहोगत्रपौर्वापर्यवदनादित्वाद्धेदतदर्थानामितरेतराश्रयत्वापसङ्गः । स्मृतिर्प्याचारं बेद्यचनं बोपलभ्याभ्यनुज्ञानायैवप्रवृत्तेत्यदोषः ।

यत्तु हैत्वन्तरं हं छ्वा वेदमूळ निवारणम् । प्रत्यक्षवेदमू लेऽपि तद् हष्टे स्तदकारणम् ॥

पड़ने से कुछ हानि नहीं है, क्योंकि यह हानि प्रत्यक्ष ही है कि खूश और बीज दोनों में से किसी की उत्पत्ति न होगी क्योंकि साधारणमनुष्य भी प्रायः यह प्रश्न किया करते हैं कि प्रथम खूश्च कि प्रथम बीज १ तो ऐसी दशा में प्रश्नकर्ता यदि बुध और बीज के अन्ये। न्याश्रयदोष का बारण कर हैं तो शिष्ट और बेद के अन्योन्याश्रय का भी बारण हो जायगा।

(प्र०) बृक्ष और बीज के अन्योन्याश्रय का यह समाधान है कि बृक्ष और बीज की परम्परा अमादि चळी आती है और जिस बीजन्यिक की उत्पत्ति जिस बृक्षन्यिक से होती है इस बुक्षन्यिक की उत्पत्ति जैसे बीजन्यिक से नहीं होती किन्तु अन्य ही बीजन्याक्त से होती है इस खे अन्योन्य में अपेक्षा नहीं होती। तात्पर्य यह है कि जब बीज और बृक्ष की परम्परा अनादि है तो यह प्रश्न ही नहीं हो सकता, कि, प्रथम बीज हुआ अथवा बृक्ष, परन्तु शिष्ट और बेद के उक्त अन्योन्याश्रय का क्या समाधान है।

(उ०) यही समाधान है कि जो प्रश्नकर्ता ने किया है क्योंकि शिष्टों की परम्परा और बेद, ये दोनों अनादि हैं इस से यह प्रश्न नहीं हो सकता कि, 'प्रथम बेद कि प्रथम शिष्ट ' ? तथा शिष्ट होने में प्रसक्षपित ही बेदवाक्य की अपेक्षा है न कि कल्पना किये हुए बेदवाक्य की। और प्रसक्षपित बेदवाक्य में भी शिष्टों की अपेक्षा नहीं है तो अन्योन्याश्रय कैसे हो सकता है ?

(प्र०) पूर्वपक्ष के आन्तिम उत्तर (२) के अन्त में जो खण्डन किया गया है उस का क्या समाधान है ?

(ए०) यह समाधान है कि यह कोई नियम नहीं है कि मनु आदि स्मृतिकार छोग बेद की सब शाखाओं को पढ़े थे और ऐसी दशा में यदि आचार के मूलवाक्य को मनु आदि ने बेद में प्रत्यक्ष नहीं देखा तो इतने से यह सिद्ध नहीं हो सकता कि बेद में वह मूलवाक्य ही नहीं है। और यदि यह मान लिया जाय कि आचारों के मूलवाक्यों को मनु आदि ने बंद में देखा, तब भी यह पश्र नहीं हो सकता कि अपनी स्मृतियों में उन वाक्यों के अर्थी को उन्हों ने बिशेषक्ष से क्यों नहीं लिखा ? क्योंकि जब मनु ने 'आचारश्चेव साधूनाम् ' इस अपने वाक्य में आचार सम्बन्धी बेदबाक्यों के अर्थों को सामान्यक्ष से लिखा दिया है तब बिशेषक्ष से नहीं लिखा तो क्या हानि है ? और बिशेषक्ष से न लिखने का एक यह भी कारण है कि यदि वैसा लिखते तो प्रन्थ बहुत बढ़ जाता। और उन मूलबेदवाक्यों का तात्पर्य भविष्योत्तरपुराणादि में लिखा भी है क्योंकि उन में होलिका आदि उक्त सदाचारों का बिस्तर से निक्षण है।

(प्र॰) उक्त आचारों के विषय में सामान्यरूपी एक ही मूलवेदवाक्य की कहपती होती है अथवा पृथक् २ एक २ आचार के एक २ मूल वेदवाक्य की ?

(ड॰) दोनों प्रकार की कल्पना हो सकती है क्योंकि दोनों प्रकार की कल्पनाएं निदीब हैं। (प्र०) जब कि पूर्वोक्त सदाचारों से छौकिक सुखादिफल भी होत हैं तब तो सुख बेदेपि हि बहून्येव दृष्टार्थगन्थस्पृष्टानि विधीयन्त इति न तावता बेदमूलत्वाभावः ।

यानि तु म्लेच्छादिसामान्यानि नियतानियतिक्रयाण्यर्थसुखसाधनकुषिसेवावाणिज्यादीनि

मिष्टान्नपानमृदुशयनासनरमणीयमृदोद्यानालेख्यगीतनृत्यगन्धपुष्पादिकर्माणि प्रातिषिद्धानि
तेषु नैव कस्यचिद्धर्मत्वाशङ्कास्तीति न तत्सामान्यतोदृष्टेनेतरनिराक्रियोपपात्तः केषांचिद्धा

धर्मत्वाभ्युपगमान्न सर्वेषामेव तत्प्रसङ्कः । किन्तु ।

देवब्राह्मणपूजादि यत्तेषामि किञ्चन । तत्रेष्टमेत्र धर्मत्वं शिष्टाचारमतं हि तत् ॥ होके हि कश्चिदाचारः शिष्टत्वेन विशिष्यते । कश्चित्त प्राणिसामान्यपाप्तस्तैरिप सङ्गतः ॥ तत्र यः कार्यरूपेण शिष्टानेवानुवर्तते । स एत केवलो धर्मो नेतरः प्राणिमात्रगः ॥ एतेन वैदिकानन्त-धर्मधीसँस्कृतात्मनाम् । आत्मतुष्टेः प्रमाणत्वं प्रसिद्धं धर्मशुद्धये ॥

तथ्व बहुकालाभ्यस्तबेदतदर्थज्ञानाहितसँस्काराणां वेदनियतमार्गानुसारिप्रातिभानां

के लोभ से उन का किया जाना प्रसिद्ध ही है, इसी से जब लोभादिमूलक हैं तब उन को बेदमूलक

कहना कैसे डाचित है ?

(उ०) जब कि बेद में भी बहुत से ऐसे कमों का विधान किया जाता है कि जिस का फल लौकिक है जैसे 'चित्रा' आदि योगों का पशु लाभ आदि फल है तो ऐसी दशा में पूर्वोक्त आचार, यदि लौकिकफलों की कामना से किये जाते हैं तो भी उन के बेदमूलक होने में कोई असम्भव नहीं है।

(प्र०) यदि ऐसा है तो अर्थाचार और कामाचार की अपेक्षा धर्मरूपी अर्थाचार में क्या विशेष है ? और यदि यह विशेष कहा जाय कि कृषि, सेवा, बाणिज्यादिरूपी अर्थाचार, तथा अपनी की का सेवनादिरूपी कामाचार, म्लंच्छादि सब लोगों में साधारण है इस लिये वे धर्म नहीं हैं और उन की अपेक्षा उक्त धर्माचारों में यही विशेष है कि ये सब साधारण नहीं हैं, तो दान, दया, देवपूजा आदि आचार भी धर्म नहीं कहलावेंगे क्योंकि म्लंच्छ आदि में भी अपने देव की पूजा, दान, दया आदि प्रसिद्ध ही हैं। तथा यह भी नहीं कह सकते कि म्लंच्छ आदि के किये हुए दान आदि, धर्म नहीं हैं, क्योंकि तब "दानं दया दमः शान्तिः सर्वेषां धर्मलक्षणम् " इत्यादि स्पृतियों से बिरोध हो जायगा क्योंकि इन स्मृतियों में सर्वेसाधाण के लिये दान आदि धर्मों का विधान है।

(उ०) अर्थाचारों और कामाचारों की अपेक्षा पूर्वोक्त धर्माचारों में यही विशेष है कि ये शिष्टों के आचार हैं तात्पर्य यह है कि पूर्वोक्त दान आदि आचारों को शिष्ट त्रेविणक ही करते हैं और यि शूद्रादि भी इन आचारों को करते हैं तो शिष्ट ही बनने के लिये, इसी से शूद्रादि के किये हुए देवपूजा आदि कर्म भी शिष्टाचार के अनुसारी होने से धर्म कहला सकते हैं। और अन्य अर्थात् सामान्य दान और दया आदि में तो मनुष्यमात्र का अधिकार है इसी से वे जैसे शिष्ट त्रेविणिकों के धर्म हैं वैसे ही अन्यलोगों के भी इस लिये पूर्वोक्त शिष्टाचार धर्म में अवश्य प्रमाण हैं

ऐसे ही बेद के द्वारा अनन्तधर्मों के ज्ञान से जिन के अन्त:करणों का संस्कार दृढ हो चुका है ऐसे साधुओं अर्थात् शिष्टों का आत्मतुष्टि भी वहां धर्मनिर्णय में मूल हो सकती हैं जहां कि धर्म में कोई सन्देह हो, क्योंकि जैसे बेदरूपी मूल के बिना पूर्वोक्त सदाचार नहीं हो सकते इस लिये वे सदाचार, बेदमूलक हैं ऐसे ही बैदिक साधुओं का आत्मतुष्टि भी बेदरूपी मूल के बिना नहीं हो सकती इस लिए वह भी बेदमूलक है। और पूर्वोक्त "आचारश्चेव साधूनाम् " इस

नोन्मार्गेण प्रतिभानं सम्भवतीत्याश्चित्योच्यते। 'यदेव किञ्चनान् चानोऽभ्यूहत्यार्धं तद्भवती'ित वैदिकवासनाजनितत्वाद्धेः एव स भवति ॥

॥ तथाहि ॥

यथा रुमायां छवणाकरेषु मेरौ यथा बोज्वलरुक्मभूषौ। यज्ञायते तन्मयमेव तत्स्यात् तथा भवद्भद्विदात्मतुष्टिः ॥ इदं च बिद्दस्चनाद्धिनिर्गतं प्रसिद्धरूपं कवि।भिर्निरूपितम्। सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रबृत्तयः॥

बहुदिनाभ्यस्तधर्मब्याप्तात्मनो हि न कथाञ्चद्धर्मकरणरूपात्मतुष्टिरन्थत्र सम्भवतीति

॥ भाषा ॥

वाक्य के " साधूनाम् " इस शब्द का " आत्मनस्तुष्टिरेव च " इस बाक्य में भी सम्बन्ध होने से यह अर्थ स्पष्ट ही निकलता है कि साधुओं 'बेदाभ्यासी शिष्टों ' ही की आत्मतुष्टि धर्म में प्रमाण है न कि अन्यों की। और यहां शिष्ट उसी को कहा है जो कि बेद से बदार्थ का सली मांति निश्चय कर उस के अनुसार कमों को करता है क्यों कि ऐसे मनुष्य की प्रतिमा बेद बिरुद्ध मार्ग पर नहीं जा सकती। जैसा कि " यदेव कि व्वनानूचानो इभ्यूह्यार्षे तद्भवति " (बंद से बेदार्थ के ज्ञान का सदा अभ्यास रखने वाला पुरुष, धर्म के सन्दह में अपनी प्रतिभा से जो कुछ निर्णय कर देता है वह बेद ही है) इस बेदवाक्य में साक्षात् ही कहा हुआ है। और ठीक भी यही है क्यों कि जैसे छवण के खाते में जो कुछ उत्पन्न होता है वह लवणमय ही होता है, तथा सुवर्ण के पर्वत अर्थात् सुमेर में जो कुछ उत्पन्न होता है वह सुवर्णमय ही होता है वैसे ही बेदार्थ के अभ्यासी अनन्तरोक्त साधु के अन्त:करण में प्रतिभा के द्वारा जो कुछ निर्णय होता है वह बेदमय ही होता है। और इस विषय को अनेक विद्वानों ने कहा है तथा कवियों ने भी इस विषय का प्रसिद्ध रूप से निरूपण किया है जैसा कि अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में शकुन्तला को देख कर " यह कन्या मेरे बिवाह के योग्य है बा नहीं " इस सन्देह के अनन्तर दुष्यन्त ने " असंशयं क्षत्रपरिप्रहक्षमा यदार्य स्यामिसिलापि मे मनः" (इस में कुछ सन्देह नहीं हैं कि यह कन्या क्षत्रिय के विवाहने योग्य हैं क्यों कि मेरा निर्देश हृदय इस कन्या को चाहता है) इस पूर्व इलोकाई में आत्मतुष्टि (अपनी इच्छा) ही के अनुसार उक्त सन्देह के निवारण से निर्णय किया और "अपनी इच्छामात्र से धर्म का निर्णय कर छेना कैसे उचित है " ? इस शङ्का को " सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाण मन्त:करणपबृत्तय: " (ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिए क्यों कि जिस बिषय में धर्म के होने और न होने का सन्देह होता है वहां साधुओं की अन्त:करण की प्रवृत्ति अर्थात् आत्मतुष्टि प्रमाण हुआ करती है अर्थात् सन्देह को दूर कर निश्चय कराती है तो जब मेरी अत्मतुष्टि इस कन्या के बिवाह में हो चुकी तब इस के बिवाह में धर्म और अधर्म का सन्देह कैसे ठहर सकता है?) इस उत्तरार्द्ध से आधुओं की आत्मतुष्टि को धर्म में प्रमाणं बतला कर उक्त शङ्का को भी निबृत्त किया। इन उक्त प्रमाणों और युक्तियों से यह सिद्ध हो गया कि साधुओं की आत्मतुष्टि, धर्म से अन्य अर्थात् अधर्म में नहीं जाती और इस में कारण भी बेद से बेदार्थज्ञान का सदा अभ्यास ही है इस छिये साधुओं की आत्मतुष्टि भी सदाचार के नाई धर्म में प्रमाण है । इन्हीं सब तात्पर्यों की मन में छ कर मनुजी ने कहा है कि " आत्मनम्तुष्टिरेव च " जिस का यह अर्थ है कि साधुओं की

धर्मस्बेनाभ्य बुद्धायते ॥

यहा शिष्ठात्मतुष्ठीनां वचनादेव धर्मता । पुण्यकुद्ध्यानवत्तस्मादाचारेष्विप सा तथा ॥
यथा बा बरदानादों देवताराधनोद्भवे । यद्वश्यिस स मन्त्रस्ते विषप्न इति मन्त्रिते ॥
छोकः स्मरति तं मन्त्रं विषापहरणादिषु । यथा बा सर्वसिद्धान्ते नकुछो यां किछौषिपम् ।
दन्तैर्गृह्णाति तामाहुः समस्तिबषहारिणीम्। यथा बा यां भ्रुवं किथदध्यावसाति पुण्यकृत्।
तत्सम्पर्कपवित्रत्वात्सेष्यतं पुण्यकारणम् । तथाचारात्मतुष्ट्यादि धर्म्यं धर्ममयात्मनाम् ।
बेदोक्कमिति निश्चित्य प्राह्मं धर्मबुभ्रत्सु।भेः ॥ इति ॥

यतु मनापतिरूपसमभ्यैत्स्वांदुहितरमहत्त्यायां मैत्रेय्यां इन्द्रो नार आसीदित्येवमादि-दर्शनादितिहासदर्शनाच शिष्टाचारेषु धर्मातिक्रमं पश्याद्धिः शिष्टाचारमामाण्यं दुरध्यवसान-मिति तत्रोच्यते ॥

> श्रुतिसामान्यमात्राद्धाः न दोषोऽत्र भविष्यति । मनुष्यप्रतिषेधाद्धाः तेजोब छवशेन वा ॥ यथा वा न बिरुद्धत्वं तथा तद्गमयिष्यति ।

> > ॥ भाषा ॥

बात्मतुष्टि भी धर्ममूळ अर्थात् सन्देह होने पर धर्म के निश्चय का कारण है।

इस बात पर ध्यान देना भी अत्यावश्यक है कि साधुओं के भी वे ही आचार और आत्मतुष्टि धर्म में प्रमाण हैं जो कि श्रुति और स्मृति से बिरुद्ध न हों तथा वे ही आचार और आत्मतुष्टि श्रुति और स्मृति से बिरुद्ध नहीं होते जो कि लोभ और शोक आदि लौकिककारण से उत्यन्न नहीं होते। इसी से "अपि बा कारणाग्रहणे" इस पूर्वोक्त सिद्धान्तसूत्र में जैमिनिमहर्षि ने स्पष्ट कहा है कि "जिन आचारों और आत्मतुष्टियों का लोभादिरूपी दृष्टकारण नहीं हैं वे धर्म में प्रमाण होंगे" इसी से उक्त मनुवाक्य का भी यही तात्पर्य है कि साधुओं के वे ही आचार और आत्मतुष्टि धर्म में प्रमाण हैं जो कि श्रुति और स्मृति से बिरुद्ध नहीं हैं। और यदि वे आचार और आत्मतुष्टि, श्रुति और स्मृति में प्रत्यक्ष बिशेषरूप से बिहित नहीं हैं तो वे 'श्रुति ' और 'स्मृति' कहने में बिशेष से अन्तर्गत नहीं हो सकते इसी लिये मनु ने उन को प्रथक् प्रमाण कहा है।

यद्यपि पूर्वपक्ष में जो धर्मन्यितक्रम और साहस बड़ोंक दिखलाये गये वे यदि सत्य भी हों तो प्रकृत में कोई हानि नहीं हो सकती क्योंकि उन सब के, कामशोकादि अनुवित मूलकारण प्रत्यक्ष हैं इस लिये वे सदाचार धर्म में प्रमाण नहीं हैं और जो दीपदानादिक्षणी सदाचार धर्म के विषय में प्रमाण कहे गये हैं उन का कोई मूलकारण अनुचित नहीं है तथापि प्रसंग से पृथीक धर्मन्यितक्रमों और साहसों में सत्यासत्य का विवेक भी किया जाता है।

प्रजापित का धर्मब्यितकम जो श्रुति से दिखलाया गया, वह सत्य नहीं है क्यों कि श्रुति में 'प्रजापित' शब्द का सूर्य अर्थ है क्यों कि सूर्य प्रजापालन करते हैं और सूर्यक्रपी अर्थ होने में प्रमाण भी उसी श्रुति में कहा है कि 'उषा' (प्रातः काल) अर्थात प्रातःकाल में सूर्य का उदय-की हो । और उषा को जो दुहिता 'पुत्री' कहा है उस का भी पुत्री अर्थ नहीं है किन्तु ''पुत्री के सिह्मा" अर्थ है अर्थात् जैसे पिता से पुत्री उत्पन्न होती है तैसे उषा भी सूर्य से उत्पन्न है। अव सिह्मा" अर्थ है अर्थात् जैसे पिता से पुत्री उत्पन्न होती है तैसे उषा भी सूर्य से उत्पन्न है। अव सिह्मा श्रुति में बातःकाल के सूर्योद्य का वर्णन स्पष्ट है और अर्थ-व्यक्तिक का सम्बन्ध इस श्रुति में

प्रजापतिस्तावत्प्रजापालनाधिकारादादित्यएवाच्यते। स चारुणोद्यवेलाप्रुषसप्रधस्वभ्यते सा तदागमनादेवोपजायत इति तद्दुहितृत्वेन ब्यपदिश्यते तस्यां चारुणाकरणाक्य
बीजनिक्षेपात्स्विःपुरुषयोगवदुपचारः। एवं समस्ततेजाः परमैश्वर्यनिमित्तेनेन्द्रशब्दवाच्यः
सावतैवाहनि लीयमानतया रात्रेरहल्याशब्दवाच्यायाः क्षयात्मक नरणहेतुत्वाज्जीर्यत्यसाः
दनेनैवोदितेनत्यादित्यएवाहल्या जारइत्युच्यते नतु परस्त्रीब्यभिचारात्। नहुषेण पुनः
परस्त्रीप्रार्थननिमित्तानन्तरकालाजगरत्वपाप्त्यवात्मनोदुराचारत्वं प्रख्यापितम् शच्याथपतिभक्तिनिमित्तपुण्यातिश्चयजानेतन्निराकणावाप्तप्रभावंलाभःख्यात एव।।

बिश्वष्टियापि यत्पुत्रशोकब्यामोहचेष्टितम् । तस्याष्यन्यनिमित्तत्वान्नैव धर्मत्वसंशैयः॥

॥ भाषा॥

कुछ भी नहीं है किन्तु उषा में सूर्य अपने किरणरूपी बीज को डालते हैं इसी से सूर्य और उषा में पुरुष और स्त्री का रूपक लगा कर उपाल्यान में प्रजापतिशब्द को ब्रह्मपरक बना कर आख्यायिका-रूप से कल्पित कथा लिखी हुई है जिस का केवल यही तात्पर्य है कि ब्रह्मा से भी अपराध हो जाता है इस लिये बहुत चैतन्य हो कर अपराधों से बचना चाहिये। और इसी उक्त रीति से उस उपाल्यान का यही श्रुति मूल है।

ऐसे ही इन्द्र का धर्मब्यातिक्रम भी असत्य ही है क्यों कि उस की कथा का मूळ यह श्रुति है "अहल्यायां मैत्रेय्यामिन्द्रों जार आसीत्" (इन्द्र अहल्या के जार हैं) यहां अहल्या रात्रि को कहते हैं क्यों कि 'अहन्' [दिन] में जो लीन हो "नष्ट हो" उसे अहल्या कहते हैं और रात्रि, दिन में लीन हो जाती है इस लिये वहीं अहल्या है तथा 'इन्द्र' शब्द का यहां सूर्य्य अर्थ है क्यों कि इन्द्र शब्द का बड़ा ऐश्वर्यवाला अर्थ होता है और जार का जरण [नाश] करनेवाला अर्थ है इस से इस श्रुति का यह अर्थ हुआ कि 'सूर्य्य रात्रि का नाश करनेवाला है" अर्थात् उस के उदब से रात्रि नष्ट हो जाती है।

परन्तु इन्द्र शब्द का देवराज अर्थ भी हो सकता है और जार शब्द का डपपित (ब्यिभचार करनेवाला) भी अर्थ होता है तथा अहल्या शब्द खीलिङ्ग होने से खी का भी नाम हो सकता है इसी से मालतीमाधवादि नाटक के नाई इन्द्र के ब्यिभचार तथा गौतम के शाप से उन के शरीर में सहस्र भग होने और गौतम के अनुप्रह से उन भगों के नेत्रक्षि होने की कथा पौराणिक उपाख्यानों में रचित है जिस का केवल यही तात्पर्य है कि परस्विगमन का दु:खरूपी फल इन्द्र को भी हुआ इस लिये परस्वीगमन नहीं करना चाहिये। तथा बाल्मीकीयरामायण में जो अहल्या के उद्धार की कथा है वह भी श्रीरामचन्द्र जी के माहात्म्यवर्णन के लिये किल्पत आख्यायिका ही है। और अनन्तरोक्त प्रकरण में पौराणिक और ऐतिहासिक उपाख्यानों के लिये जी ब्यवस्था दिखलायी गई है उस के अनुसार वही निर्णय उचित है जो यहां किया गया और उक्त उपाख्यान यदि उक्तश्रुतिमूलक नहीं और सत्य ही अर्थान् स्वतन्त्र है तो भी इन्द्र के दुराचार की जब दु:खफल इसी में कहा है इस से इस को कोई सदाचार नहीं कहता है।

तथा नहुष का धर्मन्यितिक्रम सत्य ही है और छन्हों ने उस का फल भी पाया कि अजगर हुए। तथा बाशिष्ठ का पूर्वोक्त धर्मन्यितिक्रम सत्य ही है इसी से वह धर्म में प्रमाण नहीं हो सकता कि जो आचार केवल धर्मनुद्धि से किया जाता है वही धर्म के लिये आदर्श (दर्ण) होता है।

यो हि सदाचारः पुण्यबुद्ध्या क्रियते स धर्मादर्शत्वं प्रतिपद्यत यस्तु कामक्रोधलोभमोहशोकादिनोपलभ्यते स यथाविधिप्रतिषेधं वर्तिष्यते तेन विश्वामित्रस्यापि यद्गागद्वेषपूर्वकमपि तपोवलारूढस्य चरितं तत् ' सर्वं वलवतः पथ्य ' मित्यनन न्यायेन महान्ति च
वणांसि कृत्वा तानि क्षयं नयत उत्तरकालं वा पापशुद्धि प्रायाश्चित्तेः कुर्वाणस्य जीर्यत्यपि ।
मन्दतपसां तु गजैरिव महावटकाष्ट्रादिभक्षणमात्मिवनाशायेव स्यात् द्वैपायनस्यापि 'गुरुनियोगादपातरपत्यलिप्सुर्देवरान् 'गुरुप्रोरितानृतुमतीयाया' दित्येवमागमान्मातृसम्बन्धभ्रात्जायापुत्रजननं प्रावकृतपश्चात्करिष्यमाणतपोवलेन नातिदुष्करम् । अन्योऽपि यस्तादक्तपाबलोनिर्वहत्स कुर्यादेव । रामभीष्मयोस्तु स्त्रहापितृभक्तिवशात् विद्यमानधममात्रार्थदारयोरेव
साक्षाद्व्यवहितापत्यकृतिपत्रानृण्ययोर्यामसिद्धिः। हिर्ण्ययसीताकर्णं च लोकापवादाभिया॥ माषा ॥

क्षीर जो आचार काम, क्रीध, लोभ, मोह और शोकादि के कारण से होता है वह श्रुति और स्मृति के बिधि और निषेध के अनुसार कोई धर्म का आदर्श और कोई अधर्म का आदर्श होता है।

ऐसे ही बिश्वामित्र का उक्त आचार भी अधर्म ही है क्यों कि उन्हों ने तीन कारण से वैसा किया एक तो आपत्काल में तिराङ्क ने उन के कुटुम्ब का पालन किया उस का बदला उन को देना था दूसरे उन को अपना प्रभाव दिखलाना था कि चाण्डाल को भी यज्ञ करा कर उसी द्यार से उस को में स्वर्ग पहुंचा सकता हूं और इस कर्म से जो पाप है उस को अपने केशक पानक तपस्थाओं के थोड़ से अंश को प्रायश्चित्तक से दे कर नाश भी कर सकता हूं। तीसरे बिशाष्ठ के कथनानुसार पिता के शाप से त्रिशङ्क चाण्डाल हुए थे, और बिश्वामित्र को बारीष्ठ से उस समय द्वेष था।

कुल्णहेपायनव्यास का भी धर्मव्यातिक्रम इतने अंश में सत्य है कि ब्रह्मचारी को वैसा नहीं करना चाहिए तथा यद्यपि वाग्दत्ता बिधवा स्त्री में देवर का नियोग किल से अन्य युग में शास्त्राबिहित है तथापि चित्राङ्गदादि, व्यास के कानिष्ठश्राता थे तथा अम्बालिकादि का बिवाह उन के साथ पूर्णरूप से हो चुका था न कि वाग्दानमात्र, इस से उन स्त्रियों के साथ व्यास का वह काम अनुचित ही था परन्तु केवल वंशच्लेद से बंचने और माता की आज्ञा पालने के निमित्त उन्हों ने एसा किया न कि अपने कामसुख के लिये। तथा अपने सागराकार तपोराशि के बिन्दुतुल्य एक छोटे से अंश को प्रायश्चित्तरूप से दे कर इस धर्मव्यितिक्रम का नाश भी कर दिया। और अब भी यदि कोई वैसा तपस्त्री हो तो वैसी दशा में एक बार वैसा कर के भी पापदु: स से बंच सकता है।

एसे ही श्रीरामचन्द्र जी का धर्मन्यतिक्रम मिध्या ही है क्यों कि बिवाह के तीन प्रयोजन हैं (१) पुत्र (२) यज्ञ का अनुष्ठाम (३) रितसुख, य तीनों यद्यिप श्री सीता से उन के सिद्ध थे और रितसुख के लिये उन्हों ने एक की का प्रतधारण भी किया था तथापि सीता के त्याग-समय में केव्स यज्ञ के लिये द्वितीय बिवाह उन्हों ने अवश्य किया । रामायणादि में यद्यपि इस बिवाह की चर्ची नहीं है तथापि थोड़े ही समझने की बात है कि ऐसे मर्यादापुरुषात्तम हो कर बिना पत्नी के वह यज्ञ कैसे कर सकते थे ?

(प्र०) यदि ऐसा था तो यज्ञ के समय में अपने समीप श्रीरामचन्द्र जी ने सुवर्ण की सीता बनवा कर क्यों स्थापित किया था ?

(ए०) लोगों को यह चेतावने के लिये सुवर्ण की सीता स्थापित किया था कि मैं

त्यक्तसीतागतानृशंस्याभावाशङ्कानिबृत्यर्थम् । भीष्मश्च ।

भ्रातृणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत् । सर्बे तेनैव पुत्रेण पुत्रिणो मनुग्ववीत् ॥ इत्येवं विचित्रवीर्यक्षेत्रजपुत्रलब्धापित्रनृणत्वः केवलयज्ञार्थपत्नीसम्बन्ध आसीदि-

त्यर्थापत्त्याऽनुक्तमपि गम्यते ॥

यो वा पिण्डं पितुः पाणी विज्ञातेऽपि न दत्तवान्। शास्त्रार्थातिक्रमाद्भीक्षो यजेतैकाक्यसी कथम्।।

॥ भाषा ॥

निर्मूळ लोकापवाद को भी नहीं चाहता इसी लिय केवल मैंने सीता का द्याग किया नहीं तो वास्तव में सीता में कोई अपराध न था इसी से सीता में मेरा प्रेम अन भी पूर्ववत है जिस कारण सुवर्ण की सीता यह मेरे समीप खापित हैं। ऐसे ही भीका का भी पूर्वोक्त धर्मव्यितिक्रम मिथ्या ही है क्योंकि भीका ने सत्यवती के पिता के समक्ष यह प्रतिक्षा की थी "अपत्यहेतोरिंप च करोम्ये- बिद्धिनिश्चयम् अद्य प्रभृति मे दाश ब्रह्मचर्थ भविष्यित " (हे दाश महाह) अपन लड़के के लिये भी मैं यह निश्चय करता हूं कि अाज से मेरा ब्रह्मचर्य ही रहेगा अर्थात् में खीसङ्ग न करूंगा जिस से कि मेरे पुत्र न होगा इस वाक्य में "अद्य प्रभृति " (आज से) इस शब्द से स्पष्ट ही सिद्ध होता है कि इस प्रतिज्ञा से पाहल उन का ब्रह्मचर्य न था किन्तु विवाह हुआ था और उन की खी वर्तमान थी (नहीं तो यह कहते कि मैं बिवाह न करूंगा) परन्तु पुत्र न था तो ऐसी दशा में अपनी पत्नी के साथ यज्ञ करना उचित ही था।

- (प्र०) तब भी ऋतुकाल में पत्नीगमन न करने से उन का धर्म ब्याति क्रम क्यों नहीं हुआ ?
- (७०) जैसे बेदाध्ययन नित्यकर्म है परन्तु नैमित्तिक आशौच से उस का बाध होता है अर्थात् आशौच में बेदाध्ययन नहीं किया जाता ऐसे ही ऋतुकाल में पत्नीगमन नित्य है परन्तु पिए- भिक्त से पूर्वीक्त प्रतिज्ञा करना नैमित्तिक है इस कारण उक्तप्रतिज्ञा से उक्तगमन का बाध ही होता है इसी से ऋतुकाल में पत्नीगमन न करने से उन का धर्मक्यतिक्रम नहीं हुआ।
 - (प्र०) भीष्म के निवाह का उपाख्याच भारत में क्यों नहीं छिखा गया ?
 - (७०) भीष्म के विवाह में कोई अद्भुत कृतान्त नहीं था इस छिये वह नहीं किखा गया।
 - (प्र०) तब किस प्रमाण सं यह ज्ञात होता है कि उन का विवाह हुआ था?
- (ए०) "आज से मेरा ब्रह्मचर्य होगा" यह भीष्म की पूर्वोक्त प्रतिका ही छन के विवाह होने में प्रथम प्रमाण है क्योंकि इस से स्पष्ट बिदित होता है कि इस प्रतिज्ञा से पूर्व भीष्म गृहस्थ थे और द्वितीय प्रमाण यह है कि जो भीष्म, शास्त्र पर ऐसा विश्वास रखते थे कि भूभि से साक्षात निकले हुए, अपने पिता के इस्त का भी अनादर कर उस पर श्राद्धपिण्ड नहीं दिया किन्तु साम्रासुसार कुन्नों ही पर दिया जैसा कि भीष्म ने स्वयं कहा है कि "श्राद्धकाले मम पितुर्ममा पिण्ड: समुखतः । तं पिता मम हस्तेन भित्त्वा भूमिमयाचत ॥ नैष कल्पविधिर्दृष्ट इति निश्चित्य चाष्महम् । कुशेष्ट्रेव तहा पिण्डं दत्तवानविचारयन् " ॥ (श्राद्ध के काल में जब पिता के छिन्ने मेंने पिण्ड उलाया उसी समय भूमि को भेदन कर अपना हान्न निकाल पिता ने साक्षात ही पिण्ड को माँगा परन्तु शास्त्र में पिता के हाथ पर पिण्ड देने का कोई विधान नहीं है इस छिये मैंने निस्सन्देह कुशों ही पर पिण्ड रक्ष दिया) उन के विषय में इस बात का समभव ही नहीं हो सकता कि पत्नी के किया वे अन्यमेध किये होंगे।

धृतराष्ट्रोऽपि व्यासानुग्रहादाश्चर्यपर्वणि पुत्रेदर्शनवत्ऋतुकालेऽपि दृष्ट्यानेव । शापानुग्रहसमर्था हि महर्षयः श्रूयन्ते । तद्यथैव तद्वचनादमावन्धो जातो विज्ञायते तथा यज्ञानुष्ठानवचनात्तावित काले दृष्ट्वानित्यर्थापत्त्या सुज्ञानम् । यद्वा, यज देवपूजासङ्गतिकरणदाने विविति, दानार्थप्वायं यजिभेविष्यति । ऋतुक्रस्रमानानि च दानतपश्चरणादीन्यपि
श्रूयन्ते तत्कारण।त्क्रतुक्रियोपचारः ।

या चोक्ता पाण्डुपुत्राणोमकपत्नीबिरुद्धता। साऽपि द्धपायनेनैव ब्युत्पाच प्रतिपादिताः॥

धृतराष्ट्र का भी पूर्बोक्त धर्मन्यतिक्रम मिध्या ही है क्योंिक जैसे ब्यास ही के याक्य से धृतराष्ट्र अंधे उत्पन्न हुए तथा भारतयुद्ध के समय कृष्णद्वैयायनन्यास ने युद्ध देखन के लिये उन को नेत्र देना चाह। और युद्ध के बहुत पश्चात् धृतराष्ट्र को नेत्रिन्द्रिय दे कर अपने तपःप्रभाव से उन के मृतपुत्रों को बुला कर ब्यासजी ने उन को दिखला दिया (जैसी कि कथा आश्चर्यपर्व में लिखी है) वैसे ही यज्ञसमय में ब्यास जी ने उन को अवश्य नेत्र दिया होगा जिस से कि उन्हों ते यहां किया और पाण्डु के दिये हुए धन से यज्ञ करना उन का कुल अमुचित नहीं है।

भौर पाण्डु क पुत्रों का जो धर्मे व्यक्तिकम. पूर्वपक्ष में कहा गया वह भी ठीक नहीं है क्यों कि उस के विषय में वही समाधान यथार्थ है जो कि महाभारत ही में कृष्णद्वैपायनव्यास ही का कहा हुआ है कि ''कुमारी चैव तन्बन्नी बेदिमध्यात्समुत्थिता। श्यामा पद्मपछाशाक्ष्मी पीनोन्नत-पयोधरा।। द्रीपखेषा हि सा यन्न सुता ते देवक्षिणी। पश्चानां विहिता पन्नी कृष्णा पार्वयनिन्दिता।। वर्गाकी पाण्डवार्थाय समुत्पन्ना महामखें' (हे हुपद कुमारी पतछी श्यामा, स्थूछ और उच स्तक्ष्माछी भीर कमछपत्रों के समान नेत्र वाछी तुम्हारी देवक्षिणी पुत्री यन्नवेदी के मध्य से निकछी हमी से कृष्णा स्वर्गछोक की क्या पार्वती, पाण्डवों के छिये यन्न में उत्पन्न हुई इस छिये वैदिकिषि के अनुसार यह पांचो की पन्नी है) जिस का तात्पर्य यह है कि युवावस्था की कन्या और यन्नवेदी से उत्पन्न होपदी, बाह्मणादिवर्ण में अन्तर्गत नहीं है, क्योंकि योनिज नहीं है और योनिज ही के छिये वेद और शास्त्र में निवेधवाक्य हैं इसी से अश्वमेधादियनों का यह फछ है। कि स्वर्गछोक में उर्वभी आदि क्षियों का भोग मिळता है क्योंकि यन्नकर्ता का सरीर योनिज नहीं होता और वहां के उर्वभी आदियों का शरीर योनिज नहीं है तो ऐसी दशा में द्रीपदी के पांच पति होने से कोई पर्मेव्यतिक्रम नहीं है।

(प्र०) यद्यपि द्रौपदी योनिज नहीं थी तथापि पाण्डव छोग योनिज होने से मनुष्य थे

तो उन का धर्मव्यतिक्रम क्यों नहीं है ?

(उ०) इस का उत्तर भी भारत ही में व्यास ही जी ने दिया है कि "स्क्ष्मीश्चेषा
पूर्वभेषोपिदेष्टा भार्याचेषां द्रौपदी दिव्यरूप। कथं हि स्त्री कर्मणां उन्ते महीतलात् समुित छद्दन्ययादेवयोगात्" (में पूर्व ही यह कह चुका हूं कि दिव्यरूपवाली यह द्रौपदी लक्ष्मी और पांच पाण्डवों
की भार्या बिहित है क्योंकि यदि एसा न होता तो दैव (प्रारब्धकर्म) की अक्कुतघटना के बिन्स,
यज्ञकर्म के अन्त में पृथ्वीतल से यह कैसे निकलती) तात्पर्य यह है कि द्रौपदी लक्ष्मी यीं और
यज्ञकर्म के अन्त में पृथ्वीतल से यह कैसे निकलती) तात्पर्य यह है कि द्रौपदी लक्ष्मी यीं और
लक्ष्मी का भोग अनेक पुरुष कर सकते हैं। और इसी से यह कथा भारत ही में है कि लक्ष्मी ने
मनुष्यरूप धारण कर पृति के लिये तप करते २ बृद्धा हो गई अन्त में श्रीशिवजी ने आ कर कहा
कि वर मांगो, लक्ष्मी ने क्षोभ से पित पित ऐसा पांच बार कहा तदनन्तर शिवजी ने यह कहा कि

यौवनस्थैव कृष्णा हि बेदिमध्यात्सम्रात्थिता।सा च श्रीः श्रीश्र भूयोभिर्भुज्यमाना न हुष्यति॥ अतएव चोक्तम्।

इदं च तत्राद्भुतरूपमुत्तमं जगाद विप्रार्षिरतीतमानुषम् । महानुभावा किल सा सुमध्यमा वभूव कन्यैव गते गतेऽहिन ॥ इति ।

निह मानुषि विवस्प्रपद्यते तेनातीतमानुषित्युक्तम् । अतएव बासुदेवेन कर्ण छक्तः "षष्ठे च त्वामहिन द्रीपदी पर्युपस्थास्यती' ते । इतरथा हि कथं प्रमाणभूतः सन्नेवं वदेत् । अथवा वह्च्य एव ताः सदशस्त्रा द्रीपद्य एकत्वेनोपचित्ता इति ब्यवहारार्थापत्त्या गम्यवे । यद्वा नार्यर्जुनस्यैव केवलस्य भविष्यति । साधारणप्रसिद्धिस्तु निश्छिद्रत्याय दर्शिता ॥

यथा युधिष्ठिरोपदेशात्सभामध्यमानीयमाना सहसैव रजखलाबेषं सपुत्रकस्य धृतराष्ट्रस्यापयशाउत्पाद्यितुमात्मानं प्रख्यापयितुं द्रौपदी कृतवती तथैव केवलार्जनभार्याय एव सत्याः श्रीत्वं च जननेनाविदितं परस्परसन्धानातिशयं च भेदपयोगानवकाशार्थं दर्शियतुं

तुम ने पांच बार जो 'पति' का उचारण किया इस छिये जनमान्तर में तुम को पांच पति सिछैंगे। ऐसा सुन कर लक्ष्मी ने "यदि मे पतयः पश्च बरामिच्छामि याचितुम्। कौमारमेव तत्सर्वे सङ्गमे सङ्गमे भवेत्" (यदि मेरे पांच पति होंगे तो मैं एक बर और मांगती हूं कि प्रत्येक पुरुष के सङ्गम के अनन्तर में सर्वथा कुमारी ही हो जाऊं अर्थात् मेरे किसी अंग में कोई ।विकार रह न जाया करें लक्ष्मी ने यह बर मांगा और श्रीशिवजी ने दिया। भारत में यह भी कहा है कि 'इद्व तत्रा' (बिप्रिष अर्थात् ब्यास ने वहां एक अति आश्चर्यरूप और अति उत्तम तथा मनुष्यस्वभाव से बिलक्षण यह बात भी कहा जिस से कि वह महानुभावां द्रौपदी प्रतिदिन कन्या हीं हो जीती थीं) तथा कृष्णभगवान् ने भी कर्ण को दुर्योधन के ओर से तोड़ने के छिये बहुत सा प्रहोभन दिखला कर यह कहा कि मातृसम्बन्ध के अनुसार तुम पाण्डवों के ज्येष्ठ भ्राता होते हैं। इस लिये पाण्डवलोग इस राज्य को जीत तुम्हीं को इस का राजा बनावैंगे तथा द्रौपदी भी प्रत्येक छठवें दिन तुम्हारे समीप आया करैंगी। यदि द्रौपदी मनुष्य होती तो ऐसे समय में कृष्णभगवान् ऐसा न कहते और कर्ण भी अवस्य विशेषरूप से इस का खण्डन करते जो कर्ण ने नहीं किया। तात्पर्य यह है कि नास्तिकपुरुष इस अंश में धर्मव्यतिक्रम नहीं कह सकता क्योंकि तब उस को यह अवस्य स्वीकार करना पड़ैगा कि 'बेदी के मध्य से युवावस्थावाली द्रौपदी निकली', और जब कह इस बात को सत्य मानैगा तो उक्त समाधानकथा को वह मिध्या नहीं कह सकता और यदि द्रौपदी के उत्पत्ति के प्रकार को भी बह मिथ्या कहैगा तो पांच पति का होना भी उस के छिय मिध्या ही है क्योंकि वह भी तो उसी कथा में कहा है।

(अनन्तरोक्त प्रकरण में नरसिंह के प्रादुर्भाव के अवसर पर जो छोकिक रीतियां दिखछायी गयी हैं उन युक्तियों से नास्तिक के प्रति भी यह भछी भांति सिद्ध किया जा सकता है कि द्रौपदी के विषय में महाभारत का उक्त उपाख्यान सब सत्य ही है। और सब विषय में यह साधारण नियम है कि जो २ ब्यवहार धर्मबुद्धि से नहीं किये जाते किन्तु राग छोभादि से किये जाते हैं उन ब्यवहारों का शिष्ट ही छोग धर्म में गणना नहीं करते इस छिये वे ब्यवहार धर्म में

अभाग नहीं हैं। दया युधिष्ठिर का मिध्याभाषण जो पूर्व में कहा गया है उस का सराचार न होना साधारण्यप्रख्या निमत्येवमादिविकल्पैः सुपिरहरत्वाद्रागले। भकृतव्यवहारस्य च शिष्टैरेव-धर्मत्वेवापरिग्रहस्योक्तत्वादनुपालम्भः।

तया च द्रोणवधाङ्गभूतानृतवादपायिश्वतं 'कामकृतेऽप्येक' इत्यवमन्तेऽप्यश्वमेधः प्रायश्चित्तत्वेन कृत एवेति न तस्य सदाचारत्वाभ्युपगमः। यत्तु वासुद्वार्जनयोमेद्यपानमातुल्र-दृहितृपरिणयनं स्मृतिविरुद्धमुपन्यस्तम् तत्रान्नविकारसुरामात्रस्य त्रेवाणिकानां प्रतिषधः॥

सुरा व मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते।

तस्माह्राह्मणराजन्यौ बैश्यश्च न सुगां पिवेत् ॥ इति. म. अ. ११ श्लो. ९२ ॥ मधुसीध्वोस्तु क्षत्रियबैश्ययोर्नेव प्रतिषेधः केवलब्राह्मणाबिषयत्वात् ' मद्यं निघ्नं ब्राह्मणस्ये 'ति वचनात् ।

यदप्येतत् -गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ॥ यथैवैका तथा सर्वा न पेया ब्रह्मवादिभिः ॥ (म. अ. ११ श्लो. ९४)

॥ भाषा ॥

युधिष्ठिर ही को खीकृत था क्योंकि उसी के प्रायश्चित्त में उन्हों ने अश्वमेध्यज्ञ किया।

(प्र०) "कामतो ब्राह्मणबधे निष्कृतिर्न विधीयते" (जान वूझ कर की हुई ब्रह्महत्या का

प्रायश्चित्त नहीं होता) इस स्मृतिवाक्य के बिरुद्ध युधिष्ठिर ने क्यों प्रायश्चित्त किया ?

(७०) कामकृतेऽप्येक' (जान बूझ कर की हुई ब्रह्महत्या का भी प्रायश्चित्त होता है एक आचार्य का ऐसा सिद्धान्त है। इस गौतमस्मृति के वाक्यानुसार उन्हों ने प्रायश्चित्त किया। एस ही बासुदेव और अर्जुन का घमें व्यतिक्रम मिध्या ही है क्यों कि सुरा (तं बुल का विकार मद्या। ही त्रैवर्णिकों के लिये शास्त्र में निषिद्ध है जैसा कि मनु ने कहा है "सुरा वै मल" (सुरा ही अत्रों का मल है अर्थात् पाप है इसी से ब्राह्मण, श्वत्रिय, और वैश्य, सुरा को न पीतें) तात्पर्य यह है कि अन्न ही की बनी हुई सुरा क्षत्रिय और वैश्य के लिये निषद्ध है और माध्वी (महुआ की) तथा सीधु अर्थात् गौडी सुरा क्षत्रिय और वैश्य के लिये नहीं निषद्ध है। इसी से गौतममहार्ष ने यह कहा है कि "मद्यं निन्द्यं ब्राह्मणस्य" (ब्राह्मण के लिये ग्यारहो प्रकार के मस्र निषद्ध हैं) तथा पूर्वपक्ष में भी कृष्ण और अर्जुन के लिये 'मध्व।सव' (माध्वी) ही का प्रमाण दिखलाया गया है इस से अर्भव्यतिक्रम नहीं है।

(प्र०) जब कि मनु के "गोडी पैष्टी च०" (सुरा तीन प्रकार की होती है गोडी, (गुड की सुरा) पैष्टी २ माध्वी ३ जैसी एक वैसी सब, ब्रह्मवादी अर्थात् (बेदाधिकारियों के पानयोग्य नहीं हैं) इस वाक्य में "सर्वा न पेया ब्रह्मवादि। मः" यह कहा हुआ है तब सभी सुरा त्रेबणिकों के लिय निषिद्ध हैं इस लिये पूर्वोक्त मनुवाक्य (सुरा बै०) में भी 'सुरा' शब्द का तीनों सुरा अर्थ करना चाहिय न कि " सुरा अन्नों का मल है" इतने कथनमात्र से वहां ' सुरा ' शब्द का के केवल पैष्टी सुरा अर्थ करना चाहिय तब तो क्षत्रिय और बैदय के लियं गोडी और माध्वी का केवल पैष्टी सुरा अर्थ करना चाहिय तब तो क्षत्रिय और बैदय के लियं गोडी और माध्वी

सुरा निषिद्ध है इस लिये बासुरेव और अर्जुन का धर्मन्यतिक्रम क्यों नहीं है ?

(उ०) 'मद्यं निन्द्यं ब्राह्मणस्य' इस गौतमवाक्य ही से अभी इसका उत्तर हो चुका है। (प्र०) हो तो चुका परन्तु " गौडी पैष्टी " इस मनुवाक्य की क्या गित होगी ! क्यों

कि इस में सब ब्रह्मवादिओं अर्थात त्रैबार्णकों के लिये तीनों सुराओं का निषेध है ?

(उ० उक्त मनुवाक्य की यही गति है जो कि " मद्यं निन्दं ब्राह्मणस्य " इस वाक्य

एतदिप ब्रह्मचादिश्रब्दस्य तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारित्विमित्तत्वात् प्रवचनाश्रयणेन बञ्बदत्योरेकार्थत्वात् 'प्रब्रूयाह्राह्मणस्त्वेषा'मिति नियमाद्यस्यैव प्रवचनं स एव तच्छील-स्तद्धर्मा तत्साधुकारी वा भवति तस्माद्राह्मणा एव ब्रह्मवादिनः । तथा च मद्यसामान्य-प्रतिषेधाङ्गनिन्दार्थवादेऽभिहितम् ॥

अकार्यमन्यत्कुर्याद्धि ब्राह्मणो मदमोहित, इति ॥

तसादेतदुक्तं भवति यथैवैकाऽन्नसुरा त्रयाणामप्यपेया तथा सर्वा ब्रह्मवादिभिः रपेयेति इतरथा 'थथैवैके'ति च 'ब्रह्मबादिभि'रितिं चोभयमप्यनर्थकमेव स्यात्। श्लोकान्तर-निर्देशेनैव वर्णत्रयसम्बन्धळाभात्। तेनो 'भौमध्वासवक्षीबावि'त्यविरुद्धम्। तथा चान्यार्थ-

॥ भाषा ॥

की है अर्थात् जैसे उक्त गौतमवाक्य से ब्राह्मण ही के छिये सुरा से आविरिक्त ताड़ी आदि मचों का निषेध है वैसे ही गौडी, पैष्टी, इस मनुवाक्य से भी ब्राह्मण ही के छिये तीनों का निषेध है।

(प्र०) यदि ऐसा है तो इस वाक्य में 'ब्रह्मवादिभिः 'क्यों कहा है ? क्योंकि ब्रह्म

अर्थात् बेद् के वादी अर्थात् पढ़ने वाळे तीनों वर्ण हैं।

- (उ०) ब्रह्मवादी ज्ञब्द से तीनों वर्ण यहां नहीं लिये जाते क्योंकि " ब्रह्मबेदिता" (बेद पढ़ने वाला) यहां नहीं कहा है किन्तु ब्रह्मवादी कहा है इस का यह अर्थ है कि "सदा मली मांति बेद पढ़ाने वाला और जिस का बेद पढ़ाना धर्म है" और ऐसी दशा में 'ब्रह्मवादी' शब्द का ब्राह्मण हीं अर्थ हो सकता है क्योंकि " प्रब्रूयाद्भाह्मणस्त्रेषाम्" (इन तीनों वर्णों में ब्राह्मण ही पढ़ावें) इस स्मृतिवाक्य से पढ़ाने का आधिकार ब्राह्मणों हीं को है। और इस कारण भी यहां ब्रह्मवादी शब्द का ब्राह्मण ही अर्थ है कि "अकार्यमन्यत्कुर्याद्धि ब्राह्मणों मद्मोहित: " (ब्राह्मण को कोई मद्म नहीं पीना चाहिए क्योंकि मद से मोहित हो कर ब्राह्मण और भी बहुत सा पाप कर सकता है) इस श्रुति स्मृति में 'ब्राह्मण ' अष्ट ही कहा है और यह स्मृति भी ''गोढ़ी पेष्टी" इस उक्त मनुस्मृति की नाई सब मद्यों के बिषय में है ॥
- (प्र०) जब यह स्वीकार है कि पैष्टी सुरा का निषेध तीनों वर्णों के लिए है और उक्त मह-वाक्य में भी 'सर्वा (सव) शब्द से स्पष्ट ज्ञात होता है कि सब सुरा का निषेध है तब इस स्मृति को केवल ब्राह्मण ही के विषय में लगाना कैसे ठीक हो सकता है ?
- (उ॰) यदि 'गौडी पैष्टी 'यह ममुवाक्य तीनों बणों के बिषय में हैं तो यह अवश्य स्वीकार करना पड़ैगा कि इतने ही के छिये इस वाक्य में 'ब्रह्मवादिभिः कहा गया कि जिस में शूद्रादि के छिये निषेध न हो, और इतना प्रयोजन तो "ब्रह्मवक्तिभः" (बेद्मध्ययन के अधिकारी) इतने मात्र से सिद्ध हो सकता था क्योंकि शूद्रादि को बेद्मध्ययन में अधिकार नहीं है तो ऐसी दशा में "ब्रह्मवादिभिः" (सदा बेद पढ़ाने वाछा) कहना ब्यर्थ ही हो जायगा । तथा " यथैवैका तथा सबी" (जैसी एक वैसी सब) यह कहना भी ब्यर्थ ही हो जायगा । क्योंकि तीनों बर्ण के बिषय में सुरापान का निषेध 'सुरा बै मल 'इस पूर्व श्लोक ही से सिद्ध है ।

(प्र०) यदि ऐसा है तो " गौडी पैष्टी " इस मनुवाक्य का क्या अर्थ है ?

(उ०) यह अर्थ है कि जैसे एक अर्थात् पैष्टी सुरा तिनों बणों के छिये पानयोग्य नहीं हैं नेसे सब अर्थात् तीनों सुरा ब्राह्मणों के छिये पानयोग्य नहीं हैं। इस समय के मनुस्मृतिपुक्तकों में "गौडी पैष्टी" इस स्रोक के चौथे चरण का "न पातव्या द्विजोत्तमें: " यह पाठ नवीन है

दर्शनमभ्यनुज्ञानवचनम् यन्माल्यमासीत्तत्पश्चात्पर्योद्दतसुरा वै माल्यं तस्रो राजन्यमसजत तस्माण्ड्यायाँश्च स्नुषा च श्वश्चरश्च सुरां पीत्वा विक्रपन्तश्चासते पाप्मा वै माल्यं तस्मान्द्राह्मणः सुरां न पिवेत् पाप्मना न संस्रुष्ट्या इति तदेतत् श्रित्रयो ब्राह्मणं ब्रूयान्नैनंसुस-वितादिनस्ति य एवं विद्वान् सुरां पिवतीति । मधुश्रीधुविवश्चयैतत् । यत्तु मातुल्रदुहित्-पिण्यनंतयोस्तन्मातृस्वस्नीयादिसम्बन्धव्यवधानेऽपि स्नात्रादिव्यवहारादिवरुद्धम् । यद्याप वासुदेवस्वसेति सुभद्रा ख्याता तथाप्युत्पत्तौ वल्रदेववासुदेवयोरेकानंशायाश्चनिजत्वान्वा- ख्यानान्मातृस्वस्नीया वा सुभद्रा तस्य मातृपितृस्वस्नीया दुहिता वेति परिणयनाभ्यनुज्ञाना दिश्चायते ॥

बसुदेवाङ्गजाता च कॉन्तेयस्य बिरुध्यते । नतु ब्यवेतसम्बन्धप्रभवे तद्धिरुद्धता ॥ (येन धन्यत्रैबमुक्तम्) मम बर्त्मानुबर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः । स यत्प्रमाणं कुरुते छोकस्तदनु वर्तते । इति ।

स कथं लोकादर्शभूतः सन् बिरुद्धाचारं प्रवर्तियव्यति । एतेन रुनिपणीपरिणयनं व्याख्यातम् । यत्त्वद्यतनानामाहिच्छत्रकमाथुरब्राह्यणीनां सुरापानादि, दाक्षिणात्यानां मातुल्रदुहितृबिबाहादि स्मृतिधिरुद्धमुपन्यस्तम् । तत्र केचित्ताबदाहुः । स्मृत्याचारयोरितरे तरिनर्पेक्षबेदम्लत्वेन तुल्यबल्रत्वाद्धिहितप्रतिधिद्धिबकल्पानुष्ठानाश्रयणाददोष इति

माषा ॥
क्यों कि यदि यह प्राचीन होता तो बार्तिककार इतना परिश्रम न करते क्यों कि द्विजोत्तम ब्राह्मण ही है। इसी से बेद में भी ब्राह्मण के छिये पैष्टी सुरा के निषध के द्वारा क्षत्रिय और बैदय के छिये गौही और माध्वी सुरा के पान की अनुज्ञा है 'यन्माल्यमासीत् तत्परचात्पर्योहत सुरा बै माल्यं ततो राजन्यमस्जत तस्माञ्च्यायाँ सनुषा च श्रद्धुरश्च सुरां पीला बिळपन्तश्चासते पाप्मा बै माल्यं तस्मा-द्वाह्मणः सुरां न पिवेत् पाप्मना न संसुज्या इति तदेतत् क्षत्रियो ब्राह्मणं ब्र्यात्रेनं सुरा पीता हिनस्ति य एवं बिद्वाम् सुरां पिवाति '' क्षत्रिय ब्राह्मण से कहता है कि, जो माल्य ' अर्थात् पाप था उस का प्रजापित ने पश्चात् निकाल दिया और माल्य सुरा ही है तदनन्तर क्षात्रियों की सृष्टि किया इसी से ब्राह्मण और उन की पतोहू तथा श्रद्धुर सुरा को पी कर रोत रहते हैं इसी से ब्राह्मण पाप से बंचने के किये सुरा न पीने " क्योंकि जो श्वत्रिय इस बिवेक से सुरा अर्थात् गौडी और माध्वी का पान करता है उस का बह पान कहीं है।

एसे ही रुक्मिणी के साथ बासुदेव का और सुभद्रा के साथ अर्जुन का बिवाह भी उचित ही था क्यों कि यह कहीं नहीं स्पष्ट लिखा है कि रुक्मिकी, कुष्ण की साक्षात् मातुलक्ष्म्या थीं और यह भी कहीं नहीं लिखा है कि सुभद्रा, कुष्ण की साक्षात् भगिनी थीं, और भगिनी आदि का व्यवहार तो अनेक परम्परासम्बन्धों से भी हो सकता है। तथा जो आधुनिकों के विषय में सुरापान और मातुलकन्या-परम्परासम्बन्धों से भी हो सकता है। तथा जो आधुनिकों के विषय में अब कहा जाता है कि बिवाहादिक्रणी धर्मव्यितिक्रम पूर्वपक्ष में दिखलाये गये हैं उन के विषय में अब कहा जाता है कि कोई बिद्धाम् इस विषय में यह कहते हैं कि स्मृति और आचार ये होनों तुस्य ही कक्षा के प्रमाण हैं क्योंकि दोनों का मूल बेद ही है और जब स्मृतियों में उक्त आचारों का निषेध है और वे आचार किया काल से चले आते हैं तो उन के बिषय में विकल्प ही उचित है अर्थात् करने वाला है करे वा करने इस्ति। परन्तु वह कथम उचित नहीं है क्योंकि आगे चल कर कुक्तियों से यह सिद्ध किया

तत्तु वक्ष्यमाणबलाबलिभागाज्ञानादुक्तम् ॥

अन्यत्वेवमाहुः। सर्वेषामेवयादीनां प्रातिदेशं व्यवस्थया।
आपस्तम्बेन संहत्य दुष्टादुष्टत्वमाश्रितम्॥
येषां परम्पराप्राप्ताः पूर्वजैरप्यनुष्टिताः।
त एव तैनेदुष्येयुराचारैनेतरे पुनः॥

तथामनुनाऽप्युक्तम् ॥ येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ।
तेन यायात्सतां मार्गे तेन गच्छन्न दुष्यति ॥

येषां तु यः पित्रादिभिरेवार्थो नाचिरतः स्मृत्यन्तरप्रतिषिद्धश्च ते तं परिहरन्त्येव। अपरिहरन्तो बा स्वजनादिभिः परिद्धियन्ते। नतु गौतमेनाम्त्रायाबिरुद्धानामाचाराणा-मप्रामाण्यम्रक्तम्।। आह ।।

यदि बेदबिरोधः स्यादिष्येर्तवाप्रमाणता । स्मृतिराम्नायशब्देन न तु बेदवदुच्यते ॥
नत्वेतदिष युक्तम् स्मृतिग्रन्थेऽप्याम्नायशब्दपयोगात् । स्मार्तधर्माधिकारे हि शङ्खछिखिताभ्याम्रुक्तम् 'आम्नायः स्मृतिधारक' इति ग्रन्थकारगतायाः स्मृतेस्तत्कृतग्रन्थाम्नायः
स्मृतिग्रन्थाध्यायिनां स्मृतिधारणार्थत्वेनोक्तः ततश्च मन्बादिवाक्यप्रतिषिद्धाचाराणां प्रामाण्य

॥ भाषा ॥

जायगा कि स्मृतियों की अपेक्षा आचार दुर्बल प्रमाण है।

तथा अन्य पण्डितों का इस बिषय में यह मत है कि-

आपस्तम्बमहर्षि ने देशमेद से इस बिषय में ब्यवस्था किया है कि जिस के कुल में जिस आचार की परम्परा बहुत काल से चला आती है वह आचार यदि स्मृतिबिरुद्ध भी हो तो उसी के लिये धर्म में प्रमाण है और अन्य के लिये वह आचार अधर्म ही है तथा मनु ने भी 'येनास्य पितरो ' (जिस पुरुष के पिता और पितामहादि जिन आचारों को करते आये उन सदाचारों को वह पुरुष किया करें) कहा है।

(प्र०) ''देशाचारकुलधमिश्चाम्नायैरिवहद्धाः प्रमाणम्'' (देशाचार और कुलाचार धर्म में प्रमाण हैं यदि आम्नाय (बद) स विरुद्ध न हों) इस गौतममहार्षि के स्मृतिवाक्य से जब बेदिबरुद्ध आचार का अप्रमाण होना सिद्ध है तब उक्त सुरापान आदि आचार कैसं धर्म हो सकते हैं?

(ड०) डक्त आचारों में बेद का बिरोध नहीं है और स्मृति के बिरोध से वे अप्रमाण नहीं हो सकते क्योंकि डक्त गीतमस्मृति में " आम्नाय " शब्द कहा है जिस का बंद ही अर्थ है न कि स्मृति इति । •

यह मत भी उचित नहीं है क्योंिक आम्नायशब्द से स्मृतियों को भी कहा जाता है जैसे कि—शङ्क और लिखित की स्मृति के स्मार्तधर्मके प्रमाण में "आम्नाय: स्मृतिधारक: " कहा है इस का यह अर्थ है कि (मनु आदि के स्मरण का धारण करने वाला प्रन्थ अर्थात मनु आदि की धमेशास्त्र आम्नाय है) इस से मरा (भट्टपाद का) यह मत है कि स्मृतियों से विरुद्ध होने के कारण उक्त सुरापानादि आचार अधर्म हीं हैं और आपस्तम्ब के वचन का तो बौधायनमहार्ष ने निराकरण कर दिया क्योंिक उन्हों ने यह कहा है कि जो देशाचार वा कुलाचार स्मृति से विरुद्ध हैं वे धर्म में प्रमाण नहीं हैं और 'येनास्य पितरो याताः' इस पूर्वोक्त मनुवाक्य में भी ''सतां मार्गम्' कहा है

मशक्यमभ्युपगन्तुम् । आपस्तम्बवचनन्तु बौधायनेन स्मृतिविरुद्धदुष्टाचारोदाहरणान्येव प्रयच्छता निराकृतम् । स्पष्टकामादिद्देत्वन्तरदर्शनान्न विरुद्धाचाराणामापस्तम्बवचनस्य वा श्रुतिमूछत्वापपत्तिः इति ॥

शिष्टाचारपामाण्ये शब्दप्रमाणं तु-

तैतिरीयोपनिषदि ११ अनुवाके।

अथ यदि ते धर्मिबिचिकित्सा वा बृत्तिविचिकित्सा वा स्यात् ये तत्र ब्राह्मणाः संमिक्षिनः युक्ता आयुक्ता अलूक्षा धर्मकामाः स्युः यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथाः । अथाभ्याख्यातेषु ये तत्र ब्राह्मणाः संमिक्षिनः यक्ता आयुक्ता अलूक्षा धर्मकामाः स्युः यथा ते तेषु वर्तेरन् तथा तेषु वर्तेथाः इति ।

अत्र भगवत्पादीयं भाष्यम्।

यदि कदाचित् ते श्रौते स्मार्ते वा कर्माण वृत्ते वा आचारस्रक्षणे विचिकित्सासंश्रयः स्यात् भवेत् ये तत्र तास्मिन्देशे काले वा ब्राह्मणास्तत्र कर्मादौ युक्ता अभियुक्ताः कर्मणि वृत्ते वा आयुक्ता अपरमयुक्ता अलूक्षा अक्षा अक्र्मा अक्र्मान्तयः धर्मकामा अदृष्टार्थिनः अकामहताः ते यथा तत्र तस्मिन्कर्माण वृत्ते वा वर्त्तरन् तथा त्वमपि वर्तेथाः। अथाभ्याख्यातेषु अभ्युक्त-दोषेण सन्दिद्यमानेन संयोजिताः केनचित् तेषु च यथोक्तं सर्वस्रुपनयेत् ये तत्रेत्यादि इति। अत्रानन्दिगिरिः।

एवं कर्तव्यमर्थम्यद्विष्यानुष्ठानकाळोत्पन्नसंशयनिबृत्यर्थः श्विष्ठाचारः प्रमाणितव्य इत्याह यथैविमत्यादिना इति ॥

सद्चारे बश्चकब्यवहारत्वराङ्कातृद्यनाच।योक्तन्यायेन निरसनीया।

जिस का सदाचार अर्थ है न कि आचारमात्र, इस से यह स्पष्ट ही है कि जो सदाचार अर्थात् श्रुति और स्मृति के अविरुद्ध आचार, जिस के कुछपरम्परा से चला आता है वह उस को करना चाहिये और जैसे काम और लोभादि से उत्पन्न होने के कारण पूर्वोक्त सुरापानआदि आचार बेद- मूलक नहीं हैं वैसे ही उक्त आपस्तम्बवाक्य भी बेदमूलक नहीं हो सकता और यदि उस वाक्य पर मूलक आग्रह है तो यही कहना चाहिए कि उस का तात्पर्य केवल निन्दा के कारण मात्र में है।

यहां तक बार्तिककार का ब्याख्यान सदाचार और आत्मतुष्टि के बिषय में पूर्ण हुआ।
सदाचार के प्रमाण होने में (तैत्तिरीय उपनिषद् ११ अनुवाक) "अथ यदि ते०" यह
सदाचार में प्रमाण है जिस का यह अर्थ है कि शिष्य से गुरू कहता है कि यदि कदाचित् तुम
को श्रीत स्मार्त कर्म अथवा आचार में सन्देह हो तो उस देश बा काल में जो ब्राह्मण उद्यत हो
को श्रीत स्मार्त कर्म अथवा आचार में सन्देह हो तो उस देश बा काल में जो ब्राह्मण उद्यत हो
कर अपना कर्म और आचार किसी अन्य की प्रेरणा के बिना किया करते हों तथा दयालु और
परलोक के आस्तिक तथा लोभरहित हों वे लोग उस सन्दिग्ध काम बा आचार को जैसे करते हों

वैधे ही तू भी कर इति ।

यह बेदवाक्य और इस का शङ्करभाष्य तथा भाष्य की आनन्दगिरिकृतटीका भी पूर्व

यह बेदवाक्य और इस का शङ्करभाष्य तथा भाष्य की आनन्दगिरिकृतटीका भी पूर्व

हीं धर्मराजसज्जनप्रकरण में पूर्ण उद्धृत हो चुके हैं और यहां भी ऊपर संस्कृतभाग में उस का थोड़ा

ही भाग उद्धृत है इस छिये यहां इस का अधिक विचार नहीं किया जाता है।

तथाच — म्यायकुसुमाञ्जलौ १ स्तवके —
अस्तु दृष्टमेव सद्दकारिचक्रं किमपूर्वकलपनयेतिचेन्न विश्ववृत्तितः।
विकला विश्ववृत्तिनीं न दुः वैकफलाऽपि वा।
दृष्टलाभफला नापि विमलम्भोऽपि नेदशः॥ ८॥

यदि हि पूर्वपूर्वभूतपरिणातिपरम्परामात्रमेवोत्तरोत्तरानिबन्धनं, न परछोकार्थी कश्चि-दिष्टापूर्तयोः मवर्तेत । नहि निष्फले दुःस्वैकफले वा कश्चिदेकोऽपि प्रेक्षापूर्वकारी घटते पामेव जगत् । लाभपूजाख्यात्यर्थभिति चेत्, लाभादय एव किन्निबन्धनाः नहीयं प्रबृत्तिः

॥ भाषा ॥

बेदमूलक किसी धाचार पर यदि बञ्चना की शङ्का हो तो उस के बारण करने का अकार वैसा ही स्वीकार करना चाहिये जैसा कि न्यायकुसुमाञ्जलि के स्तवक एक में न्यायाचार्य इस्यन ने कहा है, जो यह है कि 'अस्तु दृष्टमंव०' इत्यादि। इस का भावार्थ यह है कि—

- (प्र०) नास्तिक० प्रसिक्षप्रमाण से सिद्ध जो पृथ्वी अभि कारणों के समुदाय हैं उन्हीं के सब कार्य हो सकते हैं उन कारणसमुदाय के चालन करने वाले हमी लोग हैं और उक्त विलक्षणसमुदायों से विलक्षणकार्यों का सिद्ध होना तुम (नैयायिक) ने सिद्ध किया है तो इस से क्या हुआ ? क्योंकि प्रसिक्ष कारणसमुदाय (सामग्री) से प्रसिक्ष कार्य का होना तो तुम भी मानते ही हो और जब इतने हीं से सब कार्यों का निर्वाह हो सकता है तो धर्म और अधर्म रूपी अदृष्ट-कारण की कल्पना में क्या मूलकारण ? और क्या प्रयोजन है ?
 - (ड०) कार्यों में लोगों की प्रबृत्ति ही अदृष्ट में प्रमाण है ।।
 - (प्र०) इस वाक्य का क्या विवरण है ?
- (ए०) यह क्विरण है कि यदि यह नियम है कि दृष्ट ही सामगी से दृष्ट ही कार्य होता है तो कोई परलोकार्थी इष्ट (यज्ञ) अथवा पूर्त (बापी कूप तडागादि) कर्म में प्रवृत्त न होगा क्यों कि निष्फल अथवा केवल दु: खफलवाले कर्मों में सब को कौन कहे, एक भी विवेकी प्रवृत्त नहीं हो सकता अर्थात् इष्ट और पूर्त्त का कोई फल उस के कर्ता को इस लोक में दृष्ट नहीं है किन्तु केवल परले ही के लिये इष्ट और पूर्त्त किये जाते हैं बरुक इस लोक में परिश्रम और धनव्ययरूपी दु:ख ही सब का फल है तो ऐसो दशा में यदि परलोकरूपी अदृष्ट फल (कार्य) मिध्यम ही है तो इष्ट और पूर्त्त निष्फल ही अथवा उन का केवल दु:ख ही फल है और ऐसे कार्यों में कोई एक विवेकी भी प्रवृत्त नहीं हो सकता परन्तु इस के विरुद्ध अनादिकाल से लाखों विवेकी पुरुष इष्ट और पूर्त्त में प्रवृत्त को करते चले आते हैं इस से यह सिद्ध होता है कि इष्ट और पूर्त्त का परलोकरूपी अदृष्टकार्य सर्वथा सत्य ही है इसी से इष्ट और पूर्त्त निष्फल नहीं हैं और उन का फल केवल दु:ख ही नहीं है।

(प्र॰) अपने किसी लाभ वा पूजापाने वा यश के लिये इष्ट और पूर्त में लोगों की प्रवृत्ति होती है न कि अदृष्ट परलोक के लिये तब कैसे उस की सिद्धि हो सकती है ?

(उ० १) उक्त लाभादि, यज्ञ में प्रवृत्त होने का फल नहीं है क्योंकि यज्ञादि में प्रवृत्त होने से कोई लाभादि होते नहीं दिखलाई देवे बरुक परिश्रम और द्रव्यनाश्च ही उस से होता देखा जाता है।

ख्ररूपत एव तद्धेतुः, यतो बाडनेन लब्धव्यं यो बैनं पूजियव्यति, स किमर्थम् १ व्यात्यर्थ-मनुरागार्थश्च जनो दाति मानियति च रज्यते, जनानुरागप्रभवा हि सम्पदः इति चेत् न । नीतिनर्भसचिवेष्वेव तदर्थं दानादिब्यवस्थापनात्। त्रेबिद्यतपस्विनो धूर्तवका एवेति चेत् न ।

(४० २) यदि इस से छौकिकछाभ होता तो क्या नास्तिक इस को न करते ? क्योंिक वे तो छौकिकछाभरूपी गुड़ के मक्खो होते हैं।

(४० ३) जिन पुरुषों का लौकिकविषयों पर अनुराग न्यून होता है वे ही प्रायः यज्ञादि-कर्मों को करते हैं इस लिये लौकिकलाभादि, यज्ञादिकों का फल नहीं है।

(७० ४) लौकिकविषयों से पूरे विरक्त और विरुद्ध ही लोग तत्त्वज्ञान और योग-साधन में प्रवृत्त होत हैं और अनेक लौकिक छेश उठाते हैं ता क्या योग और तत्त्वज्ञान, यज्ञादि वैदिकक मों से वाह्य हैं ? अथवा छेश उठाने को भी कोई मूर्ख से भी मूर्ख मनुष्य कह सकता है कि यह लाभ है ?

(छ० ५) यज्ञादि करने वाले को यदि कोई कुछ देगा तभी उस को लाभ होगा और को देगा उस को देन में क्या लाभ है ? किन्तु धन का व्यर्थ फेंकना परम हानि है और परलोक- रूपी अदृष्टफल तो है ही नहीं कि जिस के लिये देगा तो ऐसी दशा में लाभादि, कदापि नहीं यज्ञादि का फल हो सकता।

(प्र०) यज्ञादिकर्ता को जो छोग दान देते वा पूजन करते हैं वे अपने नाम और अपने पर, छोगों के अनुराग उत्पन्न करने के छिये ऐसा करते हैं क्योंकि छोकानुराग से अनेक प्रकार के छाभ होते हैं ता ऐसी दशा में उन दान और पूजन का भी छौकिकछाभ ही फल है न कि अदृष्ट परछोक, तब कैसे अदृष्ट की सिद्धि हो सकती है ?

(उ० । नांम और छोकानुराग के छिये नट भट आदि नीति और क्रीडा के सम्बन्धी पुरुषों हीं को दान दिया जाता है जिस का शास्त्र में दृष्टार्थदान कहते हैं क्योंकि उसी प्रकार के पुरुष, दान से प्रसन्न हो कर देश र में दाता की प्रशंसा करते हुए उस के नाम को प्रसिद्ध करते हैं पुरुष, दान से प्रसन्न हो कर देश र में दाता की प्रशंसा करते हुए उस के नाम को प्रसिद्ध करते हैं पुरुष, दान से प्रसन्न हो करता है तो नट भट आदि ही को देता है न कि यझकर्ता को क्योंकि छोकानुराग के छिये कोई दान करता है तो नट भट आदि ही को देता है न कि यझकर्ता को क्योंकि को का दान देने से कदापि नाम और छोकानुराग नहीं हो सकता किन्तु दुनीम और कोक का बिराग ही होगा कि यह मूर्ख व्यर्थ ही धननाश करता है । निदान यदि नाम के छिये छोक का बिराग ही होगा कि यह मूर्ख व्यर्थ ही धननाश करता है । निदान यदि नाम के छिये छोक का बिराग ही होगा कि यह सूर्ख व्यर्थ ही धननाश करता है । अोर यझादिकर्ताओं को छोग कोई दान देता तो नटादि ही को देता न कि यझादिकर्ताओं को । और यझादिकर्ताओं को छोग दोन देते हैं इस से यह सिद्ध होता है कि परछोकरूपी अदृष्टकार्य सदा है। इस छिये यझकर्ता को देना भी अदृष्ट परछोक की सिद्धि में प्रमाण है।

(प्र०) बैदिक तपस्ती बकुलाभगत हैं। वे दूसरों के ठगने ही के लिये तपस्ती बन बैठते हैं, और बद भी एक बञ्चना का उपाय ही है तो क्या अच्छी परलोक की सिद्धि हुई ?

(७०) बश्चना का यह स्वभाव है कि वह किसी रष्ट ही प्रयोजन के छिये की जाती है और बैदिकतपत्वी किसी दृष्ट्रफल की इच्छा नहीं रखते अर्थात् प्रत्यक्षरूप से भी धन छेने की इच्छा जिन को नहीं रहती वह भी तप करता है तो ऐसे तपिखयों में बश्चना का सम्भव भी कैसे है ?

तेषां दृष्टसम्पदं प्रत्यनुपयोगात् । सुलार्थं तथा करोतीति चेत् न । नास्तिकैरपि तथाकरणः प्रसङ्गात् सम्भोगवत् । लोकन्यवहारसिद्धत्वादफलपि क्रियते बेदन्यवहारसिद्धत्वा-त्सन्ध्योपासनवदिति चेत्, गुरुमतमेतत्, नतु गुरोर्मतम्, ततो नदमनवसर एव वक्तुमुचितम् वृद्धीर्विपलन्धत्वाद्धालानामिति चेन्न, बृद्धानामि प्रवृत्तेः । न च विपलम्भकाः स्वात्माक्ष-मिप विपलभन्ते । तेऽपि बृद्धतरैरित्यवमनादिरिति चेत् । न तिर्हे विप्रलिप्सः कश्चिद्त्र,

(प्र०) तब भी किसी न किसी छौकिक ही सुख के छिये वे तप करते हैं क्योंकि कोई मूर्ख भी निष्फल कार्य नहीं करता तब परलोक की सिद्धि कैसे हो सकती है ?

(उ०) यदि लौकिक ही सुख के लिये तप होता तो नास्तिक भी जैसे लौकिकसुख के लिये कामिनीसम्भोगादि सुखकमों को करते हैं वैसे तप्रको भी अवश्य करते, परन्तु नास्तिक तप को नहीं करते इस से यह सिद्ध है कि तप का कोई लौकिकसुख फल नहीं है इस लिये तप भी परलोकरूपी अदृष्टकार्य में प्रमाण है।

(प्र०) पूर्व २ वैदिकबृद्धों ने उत्तरोत्तर बालकों की बश्वना की इसी से यह यज्ञादि वैदिक व्यवहार चलता है तब कैसे यह परलोक की सिद्धि में प्रमाण हो सकता है ?

(ड० १) जिस ने बश्चना किया उस ने भूछ से किया अथवा जान बूझ कर, यदि भ्रम से किया तो वह बञ्चना ही नहीं है अर्थात् जब लौकिक छेश रूपी महादु:खों से पूर्ण यज्ञादि वैदिककमाँ को पूर्वबृद्धों ने स्वयं किया तब चाहै भ्रम हीं से किया हो तो भी वे बश्वक नहीं थे क्योंकि यदि अपने को उस क्रेश से बंचा कर अन्यों को उपदेश देते तो वे बञ्चक हो सकते और जब प्रथम वह आप ही तप आदि क्वेशों को कर चुके और पश्चात् उन्हों ने अन्यों को तप आदि करने के लिये उपदेश किया तो यह निश्चय है कि उन का अभिप्राय बहुत शुद्ध था, प्रसिद्ध ही है कि जिस भोजन में किसी दोष की शङ्का होती है उस को बृद्धलोग प्रथम आप खा कर पश्चात् छड़कों को खिलाते हैं। तथा यह भी नहीं कोई कह सकता कि बृद्धों ने भ्रम से खयं तप आदि किया क्योंकि परलोकरूपी फल सत्य है इस लिये यथार्थ ही ज्ञान से बृद्धों ने वैसा किया और परलोक के मिथ्या न होने पर तो इस समय बिचार ही हो रहा है अर्थात् निर्णय नहीं हो चुका है तो इस समय कैसे परलोक की मिथ्या मान कर बुद्धों के ज्ञान को कोई भ्रम कह सकता है। और यह भी है कि सब ज्ञान खाभाविक यथार्थ ही होते हैं। जो पुरुष किसी ज्ञान को भ्रम कहता है उस को भाव इयक है। के उस ज्ञान के विषय में दोष दिखलावे और विषय का दोष, उस का मिध्या होना ही है। और परलोक का मिथ्या होना इस समय बिचार ही में है न कि उस का निर्णय हुआ तो ऐसी दशा में बृद्धों का परलोकज्ञान यथार्थ ही कहा जा सकता है न कि भ्रम और ऐसे ही जान बूझ कर भी बञ्चना का सम्भव नहीं है क्योंकि पूर्वबृद्धों ने यज्ञादिक में को प्रथम खयं किया है और ऐसा कोई बश्वक नहीं हो सकता जो अपनी बश्वना करे।।

(प्र०) क्या ऐसा नहीं हो सकता कि एक बृद्ध की बश्चना उस के बृद्ध ने की और उस की बश्चना उस के बृद्धों ने ? और ऐसे ही बश्चकों की परम्परा चली आती है ? तो ऐसी दशा में अपना बश्चक कैसे कोई हुआ ?

(उ०) वाह क्या अच्छा प्रश्न है, क्योंकि जब अनादिकाल से बश्चना की परम्परा मानी ज़ायगी तब यज्ञादि बैदिककर्मों की परम्परा भी अनादि माननी पड़ेगी और तब तो यह यतः प्रतारणशङ्का स्यात् । इदं प्रथममेव कश्चिदनुष्ठायापि धूर्तः पराननुष्ठापयतीति चेत्, किमसौ लोकोत्तर एव, यः सर्वस्वदक्षिणया सर्ववन्धुपरित्यागेन सर्वसुखिवमुखो ब्रह्मचर्येण

॥ भाषा ॥

बश्चनाहीं नहीं है क्यों कि ऐसी बश्चना आज तक किसी ने न देखा न सुना जो कि अनादि हो, बरुक इस के उलटे यही प्रसिद्ध है कि जो ज्यवहार अनादिकाल से हाता है वह निर्दोष और सत्य होता है जैसे जगत् की सृष्टि और प्रलय का प्रवाह आदि, और जो ज्यवहार अनादि नहीं है अर्थात् किसी समय से किसी का चलाया हुआ है वह यदि अनादि ज्यवहारों के विरुद्ध नहीं है तभी सत्य होता है इस से उस की सत्यता का मूल भी अनादि ही ज्यवहार है तथा जो नवीन ज्यवहार अनादि ज्यवहार के विरुद्ध है वह अनादि ज्यवहारमुलक नहीं हो सकता इसी से उस का मूल बश्चना ही होता है, बश्चना के निर्णय करने की यही रीति है और इस रीति से अनादि ज्यवहार के विरुद्ध इस का निन्दा करना ही बश्चना है।

(प्र०) यदि ऐसा माना जाय कि "किसी समय में किसी धूर्त ने प्रथम २ लोकवश्वना के लिये यज्ञादिकमाँ का आरम्भ किया और तभी से यह अन्धपरमार। चली आती है " तो क्या असम्भव है ?

(उ० १) जब तक विशेषरूप से यह सिद्ध न हो जाय कि " अमुक समय में अमुक पुरुष ने अमुक यज्ञादिकर्म का आरम्भ प्रथम २ किया और अन्यों को ठीक अमुक समय में अमुक यज्ञादिकर्म करने का उपदेश किया " तब तक अनन्तरोक्त प्रश्न का सम्भव ही नहीं हो सकता। और इस विषय के सिद्ध करने के लिये कोई प्रमाण न आज तक मिला न मिलता है और व आगे तक। मिल सकैगा। बदक इस के बिरुद्ध बहुत से प्रमाण ऐसे मिले हैं जो कि पूर्व ही बेददुंगसज्जन में विशेषरूप से दिखला दिये गए हैं जिन से कि यह सिद्ध हो चुका है कि " जैसे विश्व की सृष्टि और प्रलय की परम्परा अनादि हैं वैसे ही बेद भी " तो ऐसी दशा में बैदिक यज्ञादिकर्मों के डयबहार की परम्परा भा अनादि ही हो सकती हैन कि नवीन।

(उ० २) यह बार्ता, बेद धर्मशास्त्र इतिहास पुराण आदि में सहस्रशः प्रसिद्ध है कि बेदिक यज्ञादि के कर्ता महापुरुषों ने अपने २ पुत्रों को यज्ञादिकमाँ का उपदेश किया है जैसे बद्धिक यज्ञादि के कर्ता महापुरुषों ने अपने २ पुत्रों को यज्ञादिकमाँ का उपदेश किया है जैसे बद्धिक नारद मनु आदि को इत्यादि और इस समय में भी प्रसिद्ध है कि बड़े लोग अपने पुत्रों को अच्छे कर्मों का उपदेश करते हैं तथा नीतिशास्त्र की आज्ञा भी यही है कि " सर्वतो जयमान्वच्छे तपुत्रादेकं पराजयम्" पुरुष को चाहिए कि सब को जीतना चाहै परन्तु केवल पुत्र से हारना चाहै तपुत्रादेकं पराजयम् " पुरुष को चाहिए कि सब को जीतना चाहै परन्तु केवल पुत्र से हारना चाहै अर्थात यह चाहै कि पुत्र मुझ से भी अधिक गुणी हो) और धूर्तत्ता (बञ्चना) च तुर्थ के बिना नहीं होती इस लिये नास्तिक को यह अवद्य स्वीकार करना पड़िंगा कि ब्रह्मदेवादि यदि धूर्त थे सो चतुर अवद्य थे, अब थोड़े ही बिचार का काम रह गया कि अपने पुत्रों का बञ्चना वे लोग कैसे करते ?

(उ० ३) ऐसे बञ्चक को आज तक किसी ने न देखा कि जो सब के लिये अनेक सुख-दायी जीविका का उपदेश करें और अपने तथा अपने कुटुम्ब के लिये खेतों में छूटे टूटे फूट दानों से मरणपर्यन्त जीविका करें और उस का उसदेश भी दें। 'बिश्वाजित् याग' में अपना सर्वस्व दाश्चिणा दें डालै और दूसरों को भी वैसा उपदेश दें, पराक आदि अनेक उपवासन्नत को प्राय: ä

तपमा श्रद्धया वा केवलपरवश्चनकुतुहली यावज्जीवमात्मानमवसादयाति। कथं वैनमेकं मेक्षापूर्वकारिणोऽप्यनुविदध्युः । केन वा चिह्नेनायमीदशस्त्वया लोकोत्तरप्रक्षेन प्रतारक इति निर्णीतः । नह्यतावतो दुःखराशेः प्रतारणसुलं गरीयः । यतः पाखण्डाभिमतेष्वप्येतं दृश्यत इति चेत् न । हेतुदर्शनादर्शनाभ्यां विशेषात् । अनादौ चैवंभूतेऽनुष्ठाने प्रतायमाने ॥ माषा ॥

किया करें और दूसरों को भी उस का उपदेश दे, 'सर्वखार' यज्ञ कर उस के मध्य में खयं आनिन प्रवेश कर जाय जैसा कि शरभङ्गमहार्ष ने श्रीराम जी के समक्ष किया (रामायण) और सब परिवार अर्थात् पुत्र पत्नी आदि तथा सब समृद्धि और छौकिक मुखों को छोड़ परमहंस हो कर यावज्ञीव दुकड़ा मांग २ कर खाया करें।।

(उ० ४) यदि उस आदिपुरुष को थोड़े समय के लिये बञ्चक भी मान लिया जाय तो इस का सम्भव कैसे होगा कि एक ओर से सब बुद्धिमान् पुरुष उसी के उपदेशानुसार आज तक यज्ञादिकमाँ को करते आते क्यों सब के सब अन्धे हो गयं ? क्या जब उस ने उपदेश किया उस समय इस काल के नास्तिकबालक के ऐसा कोई एक भी बिचारवान् नहीं था ? और सच भी है कि उस समय ऐसा महात्मा कोई नहीं था जैसा कि आज करह के होते हैं।

(उ० ५) नास्ति कं ने किस चिन्ह के देखने से यह निश्चय किया कि वह आदिपुरुष वश्चक था ? क्योंकि पूर्वोक्त यज्ञादिरूपी अनेक महादु:खों की अपेक्षा उस वश्चना में क्या छाम आधिक था ? जिस के छिये उन दु:खों को उठा कर उस ने बश्चना किया ?

(प्र०) पाखण्डी भी क्या ऐसे नहीं होते कि जो अनेक दु:खों को उठा कर छोक-षश्चना करें ?

(ए० १) हां हो भी सकते हैं, परन्तु उन के ज्यवहारों में स्वार्थ की पोछ रहती है. इसी से वे बहुत समय तक नहीं चळते और वैदिकज्यवहार में यदि कोई पोछ होती तो आज तक वह नहीं चळती। इस से अनक सहस्र युगों तक वैदिकज्यवहार का प्रचार ही इस बात को दृढ सिद्ध करता है कि उस का प्रचारक पुरुष कदापि बञ्चक नहीं था। पाखण्डी और अपाखण्डी के बिबेक करने का यही एकमात्र उपाय है जो कि अभी कहा गया है और नास्तिक को भी अनन्यगित हो कर इसी उपाय को स्वीकार करना पड़ता है क्यों के यदि वह इस उपाय का स्वीकार न करें ता उस को यह कहना पड़िगा कि सभी पाखण्डी हैं और ऐसा कहने पर उस को अपने मुख से अपने को पाखण्डी कहना पड़िगा क्यों के सब के भीतर वह भी है और तब ऐसे पाखण्डी का प्रभ, उत्तर देने के योग्य भी न होगा। अर्थात वह प्रभ, केवल बायुचेष्टा हो जायगा।

(उ० २) उक्त उत्तर तो यज्ञादि बैदिकब्यवहारों को ना स्तिकमतानुसार नवीन मान कर दिया गया है परन्तु वास्तिक में पूर्वों का अटलयुक्तियों के अनुसार वह अनादि ही है और ना सिकों की निन्दारूपी व्यवहार नवीन और बञ्चनारूपी है क्यों कि यदि प्रथम से यज्ञादिक में का प्रचार न होता तो ना स्तिक किस की निन्दा करते, अब ऐसी दशा में बिबेकी लाग सहज में यह निर्णय कर सकते हैं कि सनातन यज्ञादिक में और उन की निन्दारूपी ना स्तिकक में में से कौन एक धूर्तता और बञ्चनारूपी है।

आर बचनालपा हा (ड०३) यदि यज्ञादिरूपी बैदिकब्यवहार अनादि और निर्दोष नहीं है तो इस से अन्य कौन सा ब्यवहार अनादि और निर्दोष है ? और यदि ऐसा ब्यवहार दूसरा नहीं है तो कैंग्रे प्रकाशन्तरमाश्रित्यापि बहुवित्तब्ययायासोपदेशमात्रेण प्रतारणा स्यात्, नत्वनुष्ठानागोचरेण कर्मणा। अन्यथा प्रमाणिबरोधयन्तरेण पाखण्डित्वप्रसिद्धिरपि न स्यात्। इति। अथैतेषां धर्मप्रमाणानां मिथोबिरोधे बळाबळानिरूपणम्। विरामित्रोदये परिभाषायकाशे।

अथैतेषां विरोधे बळाबळम् । तत्र श्रुत्योविरोधेऽगृह्यमाणविशेषत्वात् द्वयोरि तुल्य-बळस्वम् अनुष्ठाने परं विकल्पः । यथा षोडाशिग्रहणाग्रहणादौ । एवं स्मृत्योराचारयोरिप विरोधे द्रष्ट्रव्यम् तुल्यन्यायत्वात् । श्रुतिस्मृत्योविरोधे तु श्रुतिर्बळीयसी निरपेक्षत्वात् । स्मृतेस्तु मूळभूतवेदानुमानसापेक्षत्वेन बिळम्बितत्वात् दुर्बळत्वम् । यथौद्धुम्बरीं स्पृष्ट्रेद्धाये-दौदुम्बरी सर्वा बेष्टियतव्येति स्मृत्याचारयोविरोधे स्मृतिर्बळीयसी स्मृतेः साक्षाच्छुत्य-नुमापकत्वात् । आचारस्तु स्मृतिद्वारा तद्नुमापकत्वात् दुर्बळः । यथा सूर्याविदे वध्नवस्नं-दद्यादितिस्मृत्या चतुर्थेऽहि वध्नवस्नपरिधानाद्याचारो विरुद्धः । सूर्याः तद्देवत्या ऋचः । तथा मातुळकन्यापरिणयनम्, 'मातुळस्य सुताम्द्वे'तिस्मृतिबिरुद्धम् ।

इक्त बैदिकब्यवहार में बञ्चना की शङ्का हो सकती है ? क्योंकि जैसे मूख के निवारणार्थ अझ-भक्षण और प्यास के मिटाने के लिये जलपानादिब्यवहार अनादिकाल से चले आते हैं वैसे ही यज्ञादिब्यवहार भी सब सृष्टियों में अनादिकाल से आज तक चले आते हैं। इति ।।

श्रुति स्मृति आदि धर्ममुळें। के अन्योन्य में बिरोध की दशा में एक के प्रबल और अन्य के दुर्बल होने का बिबेक, यद्यपि मीमांग्रादर्शन के प्रत्यों में कहा गया है तथापि वह बड़े बिस्तार से है इस लिये बीरिमित्रोदय नामक प्रन्थ के परिभाषाप्रकरण में सङ्क्षेप से कहे हुए उक्त बिबेक को उद्भुत कर यहां में दिखाता हूँ कि दो श्रुतियों में यदि अन्योन्यिबरोध हो तो दोनों हीं तुल्य-प्रमाण हैं परन्तु उन के बिधान किये हुए कमीं के करने में कर्ता के इच्छानुसार बिकल्प होता है जैसे " अतिरात्रे षोड़िशनं गृह्णाति " (अतिरात्रयज्ञ में षोड़िशी नामक पात्र का प्रहण करें) "नाति-रात्रे षोड़िशनं गृह्णाति " (अतिरात्रयज्ञ में षोड़िशी नामक पात्र का प्रहण करें) यहां बिकल्प से अनुष्ठान होता है अर्थात् यज्ञमान चाहै तो षोड़िशी का प्रहण करें और यदि न चाहै तो न करें।

ऐसे ही स्मृतियों में अन्योन्यां वर्षा वा आचारों में अन्योन्यां वर्षा में भी विकल्प ही होता है। तथा श्रुति और स्मृति के अन्योन्यां वर्षा की दशा में स्वतन्त्र होने के कारण श्रुति ही प्रवल है और श्रुतिमूलक होने के कारण स्मृति दुर्वल है जैसे " औदुम्बरी स्पृष्ट्वोद्गायंत्" (गूल्डर की शाखा की स्पर्श कर गान करें) इस श्रुति के विरोध से " औदुम्बरी सर्वा वेष्टायितव्या (ओदुम्बरी का बख्न से पूर्ण वेष्टन करें) यह स्मृति दुर्वल है क्यों कि पूर्ण वेष्टन करने पर औदुम्बरी का स्पर्श नहीं हो सकता (यह विरोध का उदाहरण, मीमांधादर्शन के भाष्यकार शवरस्वामी के मत से है, बार्तिककार भट्टपाद ने तो यहां अन्योन्यविरोध का खण्डन कर श्रुतिविरोध का यह उदाहरण दिया है कि श्रुतिविरोध के कारण बौद्धादि की स्मृतियाँ अप्रमाण हैं। जो कि इस प्रनथ में अनन्तर-प्रकरण में उद्धृत हो चुका है) तथा स्मृति और आचार के अन्योन्यविरोध में स्मृति ही प्रवल कि मातुलस्य सुतामूढ्या मातृगात्रां तथैव च। समानप्रवरां चैव त्यक्ता चान्द्रायणं चरेत्" (मातुल की कन्या का मातुलगोत्र के अथवा प्रवर की कन्या का विवाह यदि करले तो उस का कि कर चान्द्रायण करें) इस स्मृति के विरोध से दाक्षिणात्यों का मातुलकन्याविवाहरूपी आचार

श्रुत्यादीनां बिशेषग्रहणे बाध्यबाधकभाव उच्यते । तथाहि सन्दिग्धमसन्दिग्धेन. बाध्यते । यथाऽक्ताः शर्करा इति तेजो बै बृत्तमित्यनेन । दुर्बछाश्रयं बलवदाश्रयेण । यथा बेदं कुत्वा बेदिं कुर्यादिति दुर्बलकमाश्रयं बलवत्पदार्थाश्रयेण क्षुतादिनिमित्ताचमनवाक्येन. उपसंहारस्थमुपक्रमस्थेन, यथोचैक्रेचािक्रयत इत्युपसंहारस्थमुक्पदं त्रयो बेदा अजायन्ते-त्युपक्रमस्थवेदपदेन । बहुवाधोऽल्पवाधेन यथा यावतोऽश्वान्प्रतिगृह्णीयादित्यत्र प्रातिग्रहीत्-रिष्टिश्चेत् प्रजापतिर्बरुणायात्वमनयत्सस्वान्देवतामाच्छीदिति वाक्ये, बरुणायेति चतुर्थी पञ्चम्यर्थे नयतिर्गृह्णात्यर्थो देवतापदं चाबिविक्षतार्थमिति बहुबाधो, दातुरिष्टौ गृह्वातिरेको-दानलक्षणार्थ इत्यल्पबाधेन बाध्यते। बेदान्तरोत्पन्नं बेदान्तरिबिहितेन । यथा सामबेदोत्पन्नं बारवन्तीयाश्र्यमुचैस्त्वमुपांशुयजुषेतिबिनियोजकयजुर्बेदस्वरूपेणोपांशुत्वेन । अपर्श्वाखा-बिहितमग्रीषोमीयादेद्दीदशकपाळत्वादि, स्वशाखाबिहितेनैकादशकपाळत्वादिना । नित्यं, पञ्चदश्वसामधेनीरनुबूयादिति पाञ्चदश्यं नैमित्तिकेन सप्तदश वैश्यस्येति साप्तदश्येन । द्विबिधमप्येतत्क्रत्वर्थे चेत्पुरुषार्थेनैकविंशतिमनुबूयात्मातिष्ठाकामस्येत्याद्येकविंशत्वादिना । अ-नारभ्याधीतं सप्तदशसामधेनीरनुब्र्यादिति साप्तदश्यं प्राकरणिकेन पाञ्चदश्येन । यद्युद्रा-ताऽपाच्छिन्द्याददक्षिणेन यजेत यदि प्रतिहर्ता सर्वस्वदक्षिणेनेत्यदाक्षिण्यसर्वस्वदाक्षिण्ययो निंमित्तक्रमेण पौर्वापर्यप्राप्तौ परेण पूर्वस्य बाधः । कुश्रमयं बाईर्भवतीत्यतिदेशप्राप्तं शरमयं बर्हिभवतीति बैकृतेन । औद्गात्रसमाख्याते इयेने अतिदेशपासेषु पाकृतेष्वक्रेषु प्रयोगवचना-त्याप्तमुद्गातृमात्रकर्तृत्वं चोदकाश्रयेण नानर्तिकर्तृकत्वेन । ब्राह्मणक्रमावगतमाग्रेयस्याग्री-षोमीयोत्तरत्वं पन्त्रक्रमावगतेनाग्नीषोमीयात्पूर्वत्वेन बाध्यते। आहवनीयेजुहोतीति होमसामान्ये बिहित आहवनीय: पदेजुहोतीति होमबिशेषबिहितेन पदेन । यत्किञ्चित्माचीनमग्री-षोमीयात्तेनोपांशुचरन्तीति यत्किञ्चिदिति सर्वनाम्ना सावकाशेन दीक्षणीयादाविप प्रिथत-मुपांशुत्वं यावत्या वाचा कामयीत तावत्या दीक्षणीयायामनुब्रूयादिति निरवकाशेन दीक्षणीया-मात्रे बिहितेनोचैस्त्वेनेति । एवं स्मृतिष्यि " नात्मानं घातयेत्पाज्ञः " इत्याद्याप्तपन्वादि-स्मृत्या "केदारे पातये देह" मित्याचनाप्तपाखण्डस्मृति वीध्यते । तथा भायीश्रतस्तो बिनस्येत्याप्तस्मृतिगीप ।

यदुच्यते द्विजातीनां श्रुद्रादारोपसङ्ग्रहः ।

अप्रमाण और अधर्म है।

श्रुतियों में अन्योन्यिवरोध होने की दशा में अनेक प्रकार की ब्यवस्थाएँ मीमांसादर्शन में मली मांति की हुई हैं जो कि यहाँ संस्कृतभाग में सङ्क्षेप से उद्धृत हैं परन्तु आधुतिकों के अति उपयोगी न होने के कारण उन का भाषानुबाद नहीं किया जाता है। स्मृतियों में अन्योन्यिवरोध की दशा में ब्यवस्थाएँ सङ्क्षेपरूप से ये हैं कि "नात्मानं घातयेत्प्राज्ञः " (बुद्धिमान् आत्मघात न करें) इत्यादि आप्त (यथार्थवादी) मनु आदि के स्मृतिवाक्यों से बिरोध होने के कारण "केदारे पातयेदेहम् " (केदार में देहत्याग करें) यह पाखण्डस्मृति अप्रमाण है। और "भार्यीश्रवसी पातयेदेहम् " (चारो वर्णों की कन्याएँ, ब्राह्मण की मार्या हो सकती हैं) यह आप्त की स्मृति भी श्रूर्य किया के संश्रेष्ठ भें अप्रमाण ही है क्योंकि " यदुच्यते " (स्मृतियों में जो श्रूर्यकन्या के सार्य के सार्य

'न तन्ममत' मिति याज्ञबल्क्याद्यविगीतस्मृतिभिर्विगीता। तथा "न जातु ब्राह्मणं हुन्या" दित्यदृष्टार्थया जिघां सन्तं जिघांसीयादित्यात्मरक्षणादिदृष्टार्था। तथा पुत्रं प्रतिग्रहीष्य-न्बन्धूनाहूय राज्ञे निवेद्य निवेशनस्य मध्ये ब्याहृतिभिर्द्धत्वा प्रतिगृह्णीयादिति होमादीति-कर्तव्यताविषयत्वाच्छ्रतिभभवया न शेषो अग्ने अन्यजातमस्ती' त्यादेः, शेषोऽपत्यनाम अपत्य-मन्योत्पादितं नास्तीत्याद्यभिधायित्वेन दत्तपुत्रनिषधिक्षद्भत्वात्तरभवा।

बीजिनो यस्य ये जातास्तस्य ते नेतरस्य तु, इत्याद्या।
तथा 'तद्यथैवादौ पनुष्यराज आगतेऽन्यस्मिन् बाऽईत्युक्षाणं वा बेहतं वाक्षदन्ते 'इति
पन्थनार्थवादभभवा।

महोक्षं बा महाजं बा श्रोत्रियायोपकल्पयेत्, इत्याद्या ।

"मागामनागामदितिंबधिष्ठे" ति बिधिश्रुतिमभवया गोब्राह्मणानळान्नानि नोच्छिष्ठो

॥ भाषा॥

ब्राह्मणों का विवाह कहा है वह मेरा मत नहीं है क्योंकि पित, भार्यों में साक्षात् पुत्ररूप से उत्पन्न होता है) इस याज्ञवल्क्यस्मृति से उक्तस्मृति की निन्दा की गयी है। तथा "न जातु ब्राह्मणं हन्यात्" (किसी दशा में ब्राह्मण को न सारे) यह स्मृति अदृष्टार्थ परलोक में दुःखवारण के लिये है, तथा "जिधांसन्तं जिधांसीयात्" (जो अपने को मारना चाहै उस को मारे) यह स्मृति दृष्टार्थ है क्योंकि इस का प्रयोजन आत्मरक्षा है जो कि प्रत्यक्ष है, और यह सिद्धान्त है कि दृष्टार्थ-स्मृति की अपेक्षा अदृष्टार्थस्मृति, प्रवल होती है क्योंकि दृष्टार्थस्मृति, साधारण लौकिकवाक्यों के तुल्य है और अदृष्टार्थस्मृति, वेद के तुल्य है। इस कारण "न जातु ब्राह्मणं" इस पूर्वोक्तस्मृति के बिरोध से "जिधांसन्तं" यह स्मृति अप्रमाण ही है।

"पुत्रं प्रतिप्रहीष्यन् बन्धूनाहूय राज्ञे तिबेद्य निबेशनस्य मध्ये ब्याहृतिभिर्हुत्वा प्रतिगृह्णीयात्"

[जिस को दत्तकपुत्र छेना हो वह बन्धुओं को बुछा राजा से निवेदन कर गृह के आंगन में ' भू: ' आदि मन्त्रों से होम कर पुत्र को छे] यह स्मृति बेदमूछक है क्यों कि यहां के ऐसी होमादिकिया का इस में विधान है। और "न रोषो अम्रे अन्यजातमस्ति" (हे अमे अन्य का उत्पन्न किया अपत्य अर्थात् पुत्र नहीं होता) इस श्रुति में दत्तक का निषेध ज्ञात होता है। और इसी श्रुति को मूछ छे कर "बीजिनो यस्य ये जाता स्तस्य ते नेतरस्य तु" (जिस के बीर्य से जो उत्पन्न होता है उसी का वह पुत्र है अन्य का नहीं) इसादि स्मृति है जिस से कि दत्तकपुत्र का निषेध है परन्तु " पुत्रं प्रति" इस उक्त स्मृति के विरोध से "बीजिनो" यह उक्त स्मृति अपमाण है क्योंकि पूर्वस्मृति, विधानरूपी है कि, 'पुत्र छे 'और दूसरी स्मृति तथा उस का मूछमूत बेद ये दोनों छोकानुभव का अनुवादमात्र करने से छौकिकवाक्य के तुल्य हैं। तथा 'तद्यथैवादो मनुष्यराज्ञ आगतेऽन्यस्मिन् बाऽईत्युक्षाणं बा बेहतं बाक्षदन्ते" (जैसे मनुष्यराज्ञ वा अन्य महात्मा के आने पर छोग बेछ बा गो को मारते हैं) इस अर्थवादश्रुतिरूपी मूछ के अनुसार " महोक्षं वा महाजं वा श्रोत्रियायोपकरूपयेत्" (श्रोत्रिय अर्थात् बड़े बैदिक के छिये बढ़े बैछ बा बढ़े वकरे का बिछ हैं) इत्यादि स्मृति है तथा " मागा मनागा मित्र वि विधिष्ठ " (इस निरपराध गो को मत मारो) इस निषेध करनेवाछी श्रुति को मूछ छे कर " गो बाह्मणा०" (गी, ब्राह्मण, अगिन, और अञ्च अपनी अपवित्रता की दशा में मनुष्य स्पर्ध न करे और पवित्रता की दशा में भी चरण से

न पदा स्पृशेत्। न निन्दाताडने कुर्यादित्याद्यया।

एवमाचारेष्विप अभियुक्ततराणामार्याणां पीत्वादिशब्दस्य बृक्षविशेषे प्रयोगाचारेण, म्लेच्छानां इस्त्यादौ प्रयोगाचारो बाध्यते । आचारात्मतुष्टिसम्यक्सङ्कल्पजकामानां पूर्वपूर्व-बलीयस्त्विमिति मिताक्षरायाम् कचिद् दुर्बलेनापि बलवतो बाधः ।

यथा सौत्रामण्यां सुराग्रहान् गृह्णातीति प्रत्यक्षश्रुतेरि —

कलौ युगे त्विमान्धर्मान्बज्यांनाहुर्मनीषिणः । इतिस्मृत्या, अन्ययाऽऽनर्थक्यापत्तेः । मनुबिरुद्धा स्मृतिरप्रमाणमित्याह बृहस्पतिः ॥

> बेदार्थोपनिबन्द्रृत्वात्प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम् । मन्वर्थाबपरीता तु या स्मृतिः सा न शस्यते ॥ इति । कल्पतरुरप्येवम् ।

गौतमः, देशजातिकुलंधर्मा आस्त्रायैरेबिरुद्धाः प्रमाणस्।

आस्नायैः बेदस्मृतिपुराणैः देशाद्याचाराणां वळवत्प्रमाणविरुद्धानामपि आन्धक्य-प्रतिहतानां विपरीतं वळावळमिति न्यायेन वळवत्त्वे प्राप्ते इदम्रुच्यते । एते देशादिधमी

इन का स्पर्श न करें और इन की निन्दा न करें तथा ताडन भी न करें) यह स्मृति है। यहां दितीयस्मृति के बिरोध से प्रथमस्मृति अप्रमाण है क्योंकि द्वितीयस्मृति की मूलभूत श्रुति निषेध करने वाली है "न मारों" और प्रथमस्मृति की मूलश्रुति अर्थवाद अर्थात् लोकानुवादमात्र है और यह सिद्धान्त है कि अर्थवाद की अपेक्षा बिधि और निषेध प्रधान तथा प्रबल होते हैं क्योंकि प्रश्रृत्ति और निष्ध प्रधान तथा प्रबल होते हैं क्योंकि प्रश्रृत्ति और निष्टित उन से साक्षात् ही होती हैं।

ऐसे ही आचारों में भी समझना चाहिये जैसे आर्य लोग 'पीलु ' शब्द का बृक्षिबिशेष में प्रयोग करते हैं यह आर्य बैदिकों का आचार है और म्लेच्छ लोग हाथी में 'फील 'प्रयोग करते हैं परन्तु बैदिक 'पीळु' शब्द के बिषय में आयें। के आचार से बिरोध होने के कारण म्लेच्छ का आचार अप्रमाण है। कहीं दुर्बल से भी प्रबल का बाध होता है जैसे "सौत्रामण्यां सुराप्रहान् गृह्णाति " (सौत्रामाणि नामक यज्ञ में सुरा के पात्रों का प्रहण करें) यह प्रत्यक्षश्रुति " कलो युगे त्वमान्धमान्बर्ज्यानाहुर्मनीषिण: " (किलियुग में तो, बेदिक पण्डितलोग इन धर्मी को बार्जित कहते हैं) इस स्मृति के कारण उक्तश्रुति किलयुग में नहीं मानी जाती क्यों कि यदि यह श्रुति किंखुग में मानी जाय तो उक्तस्मृति ब्यर्थ ही हो जायगी और कालियुग में उक्तस्मृति के स्वीकार करने पर भी उक्तश्रुति ब्यर्थ नहीं हो सकती क्योंकि वह अन्ययुगों के छिये चरितार्थ है इस से उक्त-श्रुति और स्मृति दोनों को चरितार्थ करने के छिये यही ब्यवस्था करने के योग्य है कि कि छियुग के छिये उक्तश्रुति को नहीं मानना चाहिये। और बृहस्पतिमहार्षि ने यह कहा है कि मनुस्मृति के बिरोध होने की दशा में अन्य कोई स्मृति नहीं प्रमाण होतीं जैसा कि उन का वचन है कि "बेदा-र्थोप० " (सब स्मृतिकारों में मनु प्रधान है क्यों कि बेदों में उन का स्मृतिकार होना कहा है तथा मनु ने जितनी बातें अपने धर्मशास्त्र में कहा है उन में से एक भी ऐसी बात नहीं है कि जी वेद का अर्थ नहीं है इस छिये जो कोई स्मृति, मनु के विरुद्ध हो वह प्रमाण नहीं है) और कल्पतक ने भी ऐसा ही कहा है। गौतममहर्षि ने यह कहा है कि 'देश जाति' (देशाचार, जात्याचार भौर कुळाचार तभी प्रमाण हो सकते हैं यदि वे बेद, स्मृति, बा पुराण, से विरुद्ध न हों) और

आम्नायबिरुद्धा न प्रमाणम् किन्तु प्रमाणाभासा वामागमवत् इत्यर्थः । स्मृतिरित्यनुवृत्तौ, भविष्यपुराणे—

श्रुत्या सह बिरोधे तु बाध्यते विषयं विना। व्यवस्थयाऽविरोधेन कार्योऽन्यत्र परीक्षकैः।।

विषयं विना कुत्रापि विषयेऽवकाश्यमन्तरेण यतः स्मृतिर्वाध्यते वाधितार्थिका भवति अतस्तस्या अविरोधेन व्यवस्थयाऽविरोधेन व्यवस्थाये अन्यत्र विरुद्धश्चल्यदर्शनकालादौ विषयः कार्योऽवाधितार्थकत्वं कल्पनीयमिति कल्पतरुखरसः। व्यवस्थयेति चतुर्थ्ये तृतीया। श्वरानुसारिणस्तु विषयं विना विषयवाधाद् विरुद्धा स्मृतिर्वाध्यतएव। यत्र तु विषयान्तर-कल्पनं सम्भवति तत्राह व्यवस्थयेत्यादीत्याहुः। भाट्टास्तु विरुद्धा स्मृतिर्विषयं विना श्रुतिमूलकत्वसन्देहेन प्रामाण्यसन्देहाद्धिषयिनश्चयं विना वाध्यते तत्प्रतिपाद्यानुष्ठानं वाध्यत इत्याहुः।

तत्राद्ये पक्षे बाधितार्थस्मृतिकर्तुर्भ्रमप्रमादादिदोषकरूपनाद्दिकद्धसमृत्याचारेष्वप्यनान्धासप्रसङ्गः । द्वितीये तु समृतेः प्रमाणत्वात्तन्भूलकश्चतेः कचित्केनापिपुरुषेणानुपलम्भस्य निष्पमाणत्वादनुपसंहरणीयार्थश्चितिद्वयस्य च ग्रहणाग्रहणवत्सम्भवात् किंनिमित्तमनुष्ठानम् । न च श्चातिविरुद्धा समृतिः किं "अङ्गं बा समिष्वयाहारा" दितिवन्न्यायाभासमूला जताष्टकादि-समृतिवच्छ्वतिमूलेत्यप्रामाण्यसंशयात्तदितिवाच्यम्। अविरुद्धसमृतिष्विपितस्यानिवार्यत्वादिति।

॥ भाषा ॥

यदि बिरुद्ध हों तो बाममार्ग के शास्त्रों के नाई अप्रमाण हीं हैं। भविष्यपुराण में भी स्मृति के प्रकरण में " श्रुत्या स०" यह वाक्य है जिस का अर्थ कल्पतरु ने यह किया है कि श्रुति के साथ यदि स्मृति का बिरोध हो तो उस के हटाने के छिये परीक्षकों को उस स्मृति का ऐसा अर्थ करना चाहिये जिस से उस का ऐसा बिषय निकलै कि जिस में श्रुति का बिरोध न पड़ै। और मीमांसादर्शन के भाष्यकार शवरस्वामी के अनुयायी छोग उक्त वाक्य का यह अर्थ करते हैं कि श्रुति के साथ स्मृति के विरोध होने पर स्मृति का बाध ही होता है अर्थात् उस का विषय मिथ्या होता है परन्तु जहां कहीं समृति के एक विषय के बाध होने पर भी अन्य विषय की कल्पना हो सकै वहां परीक्षकों को चाहिये कि ब्यवस्था से उस अन्यविषय में उस स्मृति को प्रमाण कर दें। मीमांसादर्शन के बार्तिक-कार कुमारिलभट्टपाद के अनुयायी लोग तो इस वाक्य का यह अर्थ करते हैं कि श्रुतिविरोध की दशा में यह सन्देह हो जाता है कि " यह स्मृति, श्रुतिमूलक है वा नहीं ? " और इस सन्देह से यह सन्देह होता है कि " यह स्मृति, प्रमाण है वा नहीं ?" इसी से जब स्मृति के विषय का निश्चय नहीं होता तब उस में कहे हुये कर्म का अनुष्ठान नहीं हो सकता। यही उस स्मृति का बाध है। इन दो पक्षों में से प्रथमपक्ष में यह दोष है कि ऐसी मिध्या स्मृति के कर्ता पुरुष में भ्रम प्रमाद आदि दोष की कल्पना अवर्य करनी पड़ैगी तब उस पुरुष के कहे हुए सत्य स्मृतिवाक्य, पर भी बिश्वास न होगा। और द्वितीय पक्ष में यह दोष है कि जब श्रुतिबिरुद्ध स्मृति भी अन्य विषय छे कर प्रमाण होने छगीं तब श्रुतिबिरोध ही कहां रह गया ? और जहां अन्य बिषय की फिल्पना नहीं हो सकती वहां भी स्मृति से उस के मूलभूत श्रुति की कल्पना होगी और दोनों श्रुतियों में परस्पर बिरोध होने के कारण पूर्वोक्त षोडशीयह के नाई उन दोनों श्रुतियों में कहे हुये कमी के अनुष्टान में यजमान की इच्छा से बिकल्प हो जायगा।

अत्र वदान्ति,

अतः स परमो धर्मो यो बेदादवगम्यते । अवरः स तु बिज्ञेयो यः पुराणादिषु स्मृतः ॥

इति व्यासवचनाद्धेदस्मृत्यवबोधितयोधिमयोरुत्कर्षापकर्षाववगम्यते । तथाच बैदिको धर्मो मुख्यः उत्कृष्टत्वात् स्मार्तोऽनुकल्पः अपकृष्टत्वात् । मुख्यासम्भवे चानुकल्पानु-ष्ठानात्फळं भवति न तत्सम्भवे ।

प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन बर्तते ।

न साम्परायिकं तस्य दुर्मतेर्बिद्यते फलम् (मनु अ०११ श्लो० ३०)

इति मनूक्तेः तथाच श्रुतिबिरुद्धार्थानुष्ठाने फलाभाव एव बीजम् नतु अपामाण्य-सन्देहादि । अबिरोधे तु स्मृत्यर्थानुष्ठानादेव फलं तस्या अपि धर्मे प्रमाणत्वात् इति सर्वे सुस्थम् इति । आयुर्वेदादीनां चतस्रणां बिहःपरिखाणां प्रामाण्यन्तु बिप्रतिपत्त्यविषयत्वा-द्धमप्रधानत्वाभावाच नेह बिशेषतां निरूप्यते ।

इति परिखापरिष्कारः।

इति धर्मप्रमाणप्रामाण्यानिरूपणं पूर्वाद्म ॥

। भाषा ॥

यहां पिण्डत छोग यह कहते हैं कि "अतःस०" (पूर्वोक्त कारण से मुख्य धर्म वह है कि जो बेद से ज्ञात होता है और जिस धर्म का पुराणादि में स्मरण है उस धर्म को अमुख्य समझना चाहिये) इस ज्यासवचन के अनुसार यही सिद्ध होता है कि बैदिक धर्म मुख्य अर्थात् प्रथम करूप है क्योंकि बेद स्वतन्त्र प्रमाण है और स्मार्त (स्पृति में कहा) धर्म अमुख्य अर्थात् अनुकरूप (मुख्यधर्म के स्थानापन्न अर्थात् उस का प्रतिनिधि है क्योंकि स्पृति, स्वतन्त्रप्रमाण नहीं होती किन्तु बेदमूळक ही होने से प्रमाण होती है) और अनुकरूप के अनुष्ठान से तभी फळ हो सकता है जब कि मुख्यकरूप का अनुष्ठान न हो सके। जैसा कि "प्रमु:प्रथम०" (जो पुरुष प्रथमकरूप के कर्म करने में समर्थ होने पर भी अनुकरूप के कर्म को करता है उस दुर्मति (मूर्ख) को परछोक में उस कर्म का फळ नहीं मिळता) इस वाक्य में मनु ने कहा है । तात्पर्य यह है कि अति से बिरुद्ध काम करने में यही बाधक है कि उस कर्म का फळ नहीं होता और यह बाधक नहीं है कि उक्त कर्म के बिधान करनेवाळी स्मृति पर अप्रमाण होने का सन्देह होता है । और जहाँ श्रुति से बिरोध नहीं है वहाँ तो स्मृति में कहे हुए कर्म के अनुष्ठान से फळ होता ही है इस रीति के स्विकार में कोई दोष नहीं पड़ता इति ।

भार आयुर्वेदादि चार विद्याओं (जो कि वेद्दुर्ग की वाह्यपरिखाएं पूर्व में कही जानुकी हैं) के प्रामाण्य का यहां विशेषरूप से निरूपण दो कारणों से नहीं किया जाता है, एक यह कि उन के प्रामाण्य में विवाद नहीं है तथा दूसरा यह कि यह धर्मप्रनथ है और उन विद्याओं में धर्म, प्रधान नहीं है किन्तु अर्थ और काम ही प्रधान हैं। यहाँ तक परिखापरिष्कारप्रकरण समाप्त हो चुका ॥

और 'धर्मप्रमाणप्रामाण्यनिकपण' नामक पूर्वाद्धे मी समाप्त हुआ।



